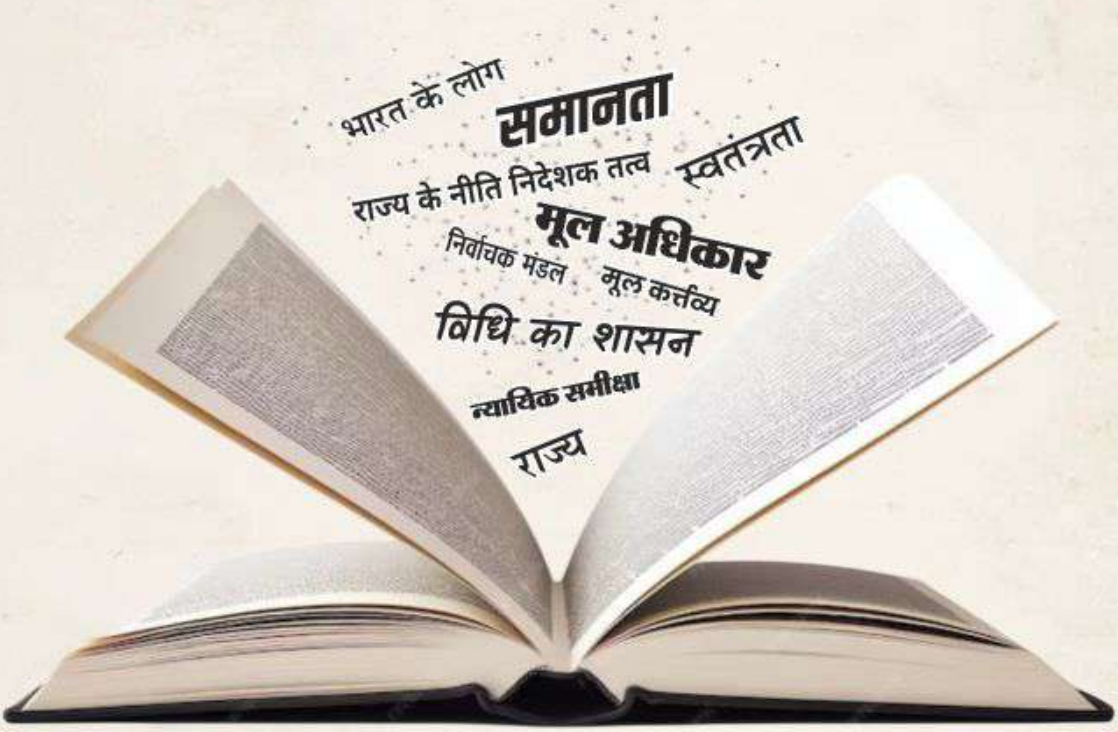
ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-81

जनवरी-मार्च 2024

(भारतीय संविधान विशेषांक)



वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION (DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-81

जनवरी-मार्च 2024

(भारतीय संविधान विशेषांक)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY
MINISTRY OF EDUCATION
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)
GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु "मानविकी और सामाजिक विज्ञान" की एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है- हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी एवं अन्य छात्रों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध लेख, तकनीकी निबंध, शब्द संग्रह, शब्दावली-चर्चा, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखक के लिए निर्देश-

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रमाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो ताकि विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़े।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/ वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकता अनुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य है।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र-व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट लगा लिफाफा साथ ना भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए प्रोत्साहन के तौर पर आयोग के नियमानुसार मानदेय दिया जाएगा। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

संपादक, ज्ञान गरिमा सिंधु,
वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली- 110066.

11. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/ पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

पत्रिका का शुल्क	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा
सामान्य ग्राहकों / संस्थाओ के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64 डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83 डॉलर 18
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93 डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30	पौंड 3.50 डॉलर 2.88

वेबसाइट: http://www.cstt.education.gov.in
कॉपीराइट @ 2024
प्रकाशक: वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली – 110066

बिक्री हेतु पत्र व्यवहार का पता:
प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड 7, रामकृष्ण पुरम
नई दिल्ली - 110066
टेलीफोन: 011- 20867172

बिक्री स्थान:
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार, सिविल लाइंस,
दिल्ली- 1100054
फेक्स : 011 - 26105211/246

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक मंडल की इनसे सहमति आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष की कलम से...

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न वैज्ञानिक, तकनीकी, उच्चतर शिक्षा एवं मानविकी आदि से संबद्ध क्षेत्रों में तैयार की गई शब्दावली का समुचित प्रयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने हेतु `ज्ञान गरिमा सिंधु 'पत्रिका का प्रकाशन करता आया है। आयोग द्वारा समय-समय पर इस पत्रिका के कुछ विषय-केंद्रित विशेषांकों का प्रकाशन किया जाता रहा है। इसी श्रृंखला में पत्रिका के अंक - 81 (जनवरी-मार्च, 2024) को अपने सुधी पाठकों एवं लेखकों को उपलब्ध कराते हुए मुझे अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। प्रस्तुत अंक भारतीय संविधान विशेषांक है। इस अंक में भारतीय संविधान के विविध पक्षों से संबंधित विविध लेखों का समावेशन किया गया है। संविधान सभा, लोकतंत्र, कल्याणकारी राज्य, संघवाद, नागरिकता, शिक्षा, निर्वाचन तथा अन्य विविध विषयों से संबंधित उल्लेखनीय लेखों को इस अंक के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतीय संविधान पर आधारित इस अंक में भारतीय संविधान की उद्देशिका, लैंगिक गतिशीलता, संविधान सभा में डॉ. बी. आर. अंबेडकर के अंतिम भाषण, संसद और भारतीय लोकतंत्र, दिव्यांगजन से संबंधित अधिनियम, जनजाति से संबंधित अधिनियम, समान नागरिक संहिता आदि विषयों पर आधारित विशिष्ट ज्ञानपरक लेखों को चयनित किया गया है। भारतीय संविधान के शिक्षायी पक्ष, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विश्लेषण, भारतीय संघवाद, चुनाव सुधार, सूचना का अधिकार आदि से संबंधित लेख भी उल्लेखनीय हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ न केवल संस्था-विशेष के ज्ञान एवं वैशिष्ट्य का परिचायक होती हैं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण नीति-निर्माण, अनुसंधानों तथा शोध-कार्यों का एक समेकित व जनोपयोगी सार्थक मंच भी प्रस्तुत करती हैं।`ज्ञान गरिमा सिंधु 'का उद्देश्य मूलतः हिंदी में मानविकी व सामाजिक विज्ञान विषयक लेखन को प्रचारित-प्रसारित करना है, जिसका कार्यान्वयन व अनुपालन पत्रिका अपने प्रत्येक अंक में करती रही है। पत्रिका का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण व संग्रहणीय है। देश भर से विभिन्न विषयों पर चिंतन-मनन करने वाले विभिन्न मनीषियों के विविध-विषयक सारगर्भित आलेख प्रस्तुत अंक में संकलित हैं।

यह महत्वपूर्ण अंक आपको समर्पित करते हुए मैं देश के प्रतिनिधि विश्वविद्यालयों, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं अन्य संस्थानों के अध्यापकों, वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों से अपेक्षा करता हूँ कि वे आयोग के विशेषज्ञ विद्वानों के सहयोग से तैयार की गई प्रामाणिक व मानक शब्दावली के अधिकाधिक प्रयोग के माध्यम से इसे सर्वजन-सुलभ बनाने में अपना सार्थक योगदान दें । साथ ही मैं विद्वानों, शोधार्थियों, अन्य लेखकों से विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे इस पत्रिका के लिए आलेख लिखें। आयोग की शब्दावलियाँ https://shabd.education.gov.in/ पर खोज प्रक्रिया में उपलब्ध हैं। जहाँ से आयोग द्वारा निर्मित आधिकारिक शब्दावली को प्राप्त कर के आलेख लिखे जा सकते हैं।

प्राप्त आलेखों को सम्पादित कर प्रकाशन योग्य तैयार करने का उत्तरदायित्व डॉ.शाहजाद अहमद अंसारी ने बड़े मनोयोग से निभाया है। मैं इस पत्रिका के परामर्श एवं संपादन-समिति के प्रत्येक विशेषज्ञ तथा संपादक डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी के प्रति धन्यवाद व्यक्त करते हुए इस अंक के लेखकों को भी साधुवाद देता हूँ। सुधी पाठकों के अमूल्य सुझावों एवं सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रो. धनंजय सिंह
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादकीय

`ज्ञान गरिमा सिंधु 'का 81 वाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह अंक 'भारतीय संविधान विशेषांक' होने के नाते स्वयं में विशिष्ट है। प्रस्तुत अंक में भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया से लेकर अद्यतन अनुच्छेदों से संबंधित विविध पक्षों को समाहित करने वाले प्रमुख आलेखों को इस अंक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत अंक में संविधान की भारतीय पृष्ठभूमि, भारत का समावेशी संविधानवाद, भारतीय लोकतंत्र में राज्य सभा की बदलती भूमिका, भारतीय संविधान का सामाजिक आर्थिक दर्शन, मानवाधिकार, पंथनिरपेक्षता और बहुलवाद के बीच संतुलन, भारतीय संघवाद के मुद्दे एवं चुनौतियाँ, लोककल्याणकारी नीतियाँ एवं मतदान व्यवहार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, निर्वाचन तथा अन्य विविध विषयों से संबंधित उल्लेखनीय लेखों को सम्मिलित किया गया है। ये सभी लेख विशेष रूप से पठनीय हैं।

अध्यक्ष महोदय के निर्देशानुसार एवं उनके द्वारा 'ज्ञान गरिमा सिन्धु 'के इस अंक हेतु प्राप्त आलेखों के मूल्यांकन, संयोजन एवं सम्पादन का अवसर मिला। यद्यपि अत्यल्प समय में इसके मूल्यांकन व सम्पादन का कार्य वास्तव में कठिन था, तथापि नित्य-प्रति के प्रयासों और विशेषज्ञ-समिति के सहयोग से आलेखों का मूल्यांकन, सम्पादन एवं प्रूफ-शोधन प्रारंभ हुआ। प्राप्त कुल सौ से अधिक आलेखों में से सम्पादित एवं चयनित कर इस अंक हेतु बावन आलेखों को स्थान दिया गया है, जिसे क्रमवार प्रस्तुत किया गया है ताकि विषय की समेकित समझ बन सके।

मैं सभी लेखकों एवं परामर्श- संपादन समिति के सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

मैं माननीय अध्यक्ष महोदय के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके मार्गदर्शन व प्रोत्साहन से यह कार्य नियत समय पर निष्पादित हो सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत अंक पाठकों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध होगा। विद्वत समाज और सुधी पाठकों के सुझाव की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी
सहायक निदेशक (विषय),
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

परामर्श मंडल

प्रो. रजनीश शुक्ल अध्यक्ष

पूर्व कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो. नागेश्वर राव सदस्य

निदेशक, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला-171005

प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी सदस्य

कुलपति, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रो.राजेश्वरी पंढरीपांडे सदस्य

सेवानिवृत्त प्रो.अरबाना इलिनोइस विश्वविद्यालय शैम्पेन, यूएसए

प्रो. धनंजय कुमार सिंह सदस्य

सदस्य सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली -110067

प्रो. सच्चिदानंद मिश्र सदस्य

सदस्य-सचिव, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली - 110 062

प्रो (डॉ.) रवि प्रकाश टेकचंदानी सदस्य

निदेशक, राष्ट्रीय सिंधी भाषा प्रचार परिषद, दिल्ली – 110066

डॉ. मिथिलेश मिश्र सदस्य

निदेशक,दक्षिण एशियाई भाषा समन्वयक
अरबाना - केंपेन इलिनोइस विश्वविद्यालय
अरबाना, आईएल 6180

प्रो. अनिल जोशी सदस्य

अध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संसथान, आगरा

परामर्श एवं संपादन मंडल

प्रधान संपादक
प्रोफेसर धनंजय सिंह
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी,
सहायक निदेशक (विषय)

संपादन समिति

प्रो. पवन कुमार शर्मा
राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

प्रो. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय
प्राचार्य, देशबंधु महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार झा
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. शांतेष कुमार सिंह
अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, संगठन और कूटनीति अध्ययन केंद्र,
अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार तिवारी
शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. सुमन कुमार
राजधानी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. अनिल कुमार सिंह
आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शाईस्ता (प्रूफ़ शोधन)
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1.	संविधान सभा का प्रथम सत्र: एक मूल्यांकन	दिनेश कुमार गहलोत	1-9
2.	भारतीय संविधान के लक्ष्य(उद्देशिका) सम्बन्धी प्रस्ताव पर विभिन्न वक्ताओं के वक्तृत्व: भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट के आलोक में	पवन कुमार शर्मा शिवम् वार्ष्णेय	10-20
3.	संविधान सभा में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का अंतिम भाषण: कृतज्ञता, आशंकाएं, सुझाव और संकल्प	शिव पूजन प्रसाद पाठक	21-28
4.	संविधान सभा एवं भारत का समावेशी संविधानवाद	अभय प्रसाद सिंह कृष्ण मुरारी	29-37
5.	राष्ट्र की संरचना: संविधान सभा में लैंगिक गतिशीलता	विजया लक्ष्मी सिंह	38-41
6.	संविधान की भारतीय पृष्ठभूमि	शकील हुसैन	42-52
7.	भारतीय संविधान कि 75 वर्षो की यात्रा और गांधीवादी दर्शन: भविष्य के लिए एक सीख	शशि भूषण सिंह एवं लोकेश कुमार	53-64
8.	भारत का संविधान: लोकतंत्र और सामाजिक न्याय का दस्तावेज	हरिराम परिहार	65-70
9.	संसद और भारतीय लोकतंत्र: एक तथ्यात्मक विश्लेषण	प्रवीण कुमार झा	71-83
10.	भारतीय लोकतंत्र में राज्य सभा की बदलती भूमिका	मंगल देव शम्भु नाथ दुबे	84-92
11.	संविधान, सामाजिक समानता और मानसिक विऔपनिवेशीकरण: डॉ. बी. आर. अंबेडकर के विचार	अभिनव स्मिता	93-100
12.	भारतीय संविधान के तहत लोककल्याणकारी राज्य का विश्लेष्णात्मक अध्ययन	उमराव सिंह	101-110
13.	भारतीय संविधान की सामाजिक एवं नैतिक दर्शन के आलोक में प्रासंगिकता: एक विश्लेषण	अखलाख अहमद	111-117
14.	भारतीय संविधान का समाजिक-आर्थिक दर्शन: एक समालोचना	उमा आभाष कुमार सौरभ	118-124
15.	अस्पृश्यता की समस्या एवं भारतीय संविधान	मो० इर्शाद अली	125-131

16.	भारत में दिव्यांगजन का विकास एवं समावेशन: कानूनी एवं सवैधानिक प्रयासों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	त्रिलोकी सिंह रजनी रंजन सिंह	132-151
17.	अवसरों की समानता एवं समावेशन का मार्ग प्रशस्त करता दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम-2016	राजेंद्र प्रसाद अखिलेश यादव	152-162
18.	ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ: एक अवलोकन	चाँद बी मीनाक्षी शर्मा	163-173
19.	लैंगिक समानता व महिला आरक्षण अधिनियम प्रस्तुति	तूलिका चक्रवर्ती	174-184
20.	भारतीय संविधान में जनजातीय अधिकार, सांस्कृतिक धरोहर, संसद एवं सरकार द्वारा नयी पहल - एक समीक्षात्मक अध्ययन	मनीष कर्मवार अनुष्का श्रीवास्तव	185-192
21.	थारू जनजाति की ऐतिहासिकता से सम्बन्धित विविध मतों का विवेचनात्मक अध्ययन	दीपाली गुप्ता प्रवीण कुमार तिवारी	193-204
22.	संविधान में निहित विकास एवं पर्यावरणीय मूल्य: एक अवलोकन	मनीष कुमार मिश्रा मनस्वी सेमवाल	205-212
23.	मानवाधिकार और भारतीय संविधान	विपिन कुमार गुप्ता स्वाति सुचारिता नंदा	213-222
24.	भारत में नागरिकता नीति के विमर्श का बदलता प्रतिमान: उभरते रुझान	मो० मुबारक अली नावेद जमाल	223-229
25.	एक राष्ट्र, एक कानून: भारत में समान नागरिक संहिता की व्यावहारिकता का मूल्यांकन	सविता चंदन सिंह	230-243
26.	भारत में समान नागरिक संहिता पर बहस: पंथनिरपेक्षता और बहुलवाद के बीच संतुलन	अभय कुमार शालिनी प्रसाद रत्नेश कुमार यादव	244-253
27.	समान नागरिक संहिता: मानव अधिकारों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों पर प्रभाव	एकता चौधरी आकाश प्रताप सिंह	254-265
28.	उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता के प्रभाव: लैंगिक न्याय और सामाजिक समरसता की ओर एक कदम	गौरव सिंह पडियार एंव सीता रमोला एम.एम. सेमवाल	266-275
29.	भारतीय संविधान, संघवाद और राज्यों की परिवर्तनीय प्रकृति	स्मिता अग्रवाल अभय कुमार शुक्ल	276-285

30.	भारतीय संघवाद के मुद्दे एवं चुनौतियाँ: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	मो. रेयाज अहमद	286-294
31.	असममित संघीय प्रावधान और संजातीय स्वायतता	संजय शर्मा दीपक धपोला	295-302
32.	सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण की समीक्षा	पंकज अरोड़ा	303-310
33.	श्रीरामचरितमानस में वर्णित राजनीतिक तत्वों की विवेचना	सिम्मी गुप्ता प्रवीण कुमार तिवारी	311-325
34.	भारत में लोकतंत्र एवं शिक्षा के साहचर्य का स्वातन्त्र्योपरांत साक्ष्य-आधारित अनुभवात्मक अध्ययन	चन्द्र शेखर पाण्डेय	326-338
35.	भारत में भाषाई विविधता: संस्कृत भाषा का संवैधानिक और सांस्कृतिक महत्व	भानु प्रताप सिंह चेतना चौधरी	339-351
36.	वस्त्र से विचार तक: महामना मालवीय, स्वदेशी और स्वराज	भुवन कुमार झा	352-361
37.	भारतीय संवैधानिक शैक्षिक मूल्य एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : एक विश्लेषण	अखिलेश कुमार गौतम ओम प्रकाश	362-372
38.	भारतीय संविधान में निहित संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका	प्रिया गौतम अमित कुमार	373-380
39.	समावेशी शिक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान: उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ	प्रवीण चंद सिंह	381-392
40.	भारत का संविधान, शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020	संदीप कुमार	393-401
41.	सशक्तिकरण के लिए एक उपकरण के रूप में शिक्षा: संवैधानिक परिप्रेक्ष्य	पतंजलि मिश्र	402-412
42.	भारतीय संविधान और शिक्षा एक अवलोकन	अरुणा कुमारी ज्योति वत्स	413-418
43.	भारतीय संविधान का शिक्षायी परिप्रेक्ष्य	विनीत कुमार आर्य रामबाबू सिंह	419-423
44.	भारत में चुनाव सुधारों की आवश्यकता: दशा एवं दिशा	नमो नारायण कुलवीर सिंह चौहान	424-432

45.	एक राष्ट्र एक चुनाव	संगीता विनायक राय	433-443
46.	लोककल्याणकारी नीतियां एवं मतदान व्यवहार	बालूदान बारहठ	444-450
47.	सूचना का अधिकार: एक सिंहवालोकन	राकेश कुमार मीणा विपिन कुमार गुप्ता	451-458
48.	भारत का डिजिटल युग: सरकारी नीतियों से सशक्त नागरिकता तक	आबिदा बानो शमीना खान मुकर्रम बदर खान सोनी कुमारी ठाकुर	459-469
49.	भारत की विदेश नीति और संविधान: संप्रभुता, राष्ट्रीय हित और वैश्विक संबंध	नरेन्द्र कुमार आर्य	470-479
50.	संवैधानिक नैतिकता और लोकतांत्रिक आदर्श: आधुनिक शासन में बाबा साहेब डॉ. बी. आर. अंबेडकर का स्थायी योगदान	इंद्रजीत	480-488
51.	परंपरा और आधुनिकता का अंतर्संबंध: भारत के संविधान का बहुलवादी ढांचा	प्रियंका शर्मा नीतीश कुमार शकूर बशीर	489-497
52.	21वीं सदी में भारतीय संविधान में परंपरा और आधुनिकता: एक विश्लेषण	महेंद्र कुमार सिंह अनु यादव	498-507

1

संविधान सभा का प्रथम सत्र: एक मूल्यांकन

डॉ. दिनेश कुमार गहलोत

निदेशक, अंबेडकर अध्ययन केन्द्र, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज)

भारतीय संविधान का निर्माण औपचारिक रूप से गठित संविधान सभा द्वारा किया गया था। यह संविधान सभा कैबिनेट योजना के तहत् गठित हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन के ऊपर बढ़ते दबाव और भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रचण्ड प्रवाह के कारण ब्रिटेन की सरकार ने भारतीयों के लिये संविधान निर्माण की विधि का पता लगाने हेतु 1946 के प्रारम्भ में अपने तीन कैबिनेट मंत्रियों को भारत भेजा था। सर पैथिक लॉरेंस, ए.वी. एलेक्जेंडर और सर स्टेफर्ड क्रिप्स का यह मिशन मार्च 1946 में भारत पहुँचा। इधर दूसरी ओर कांग्रेस 1934 से ही वयस्क मताधिकार के आधार पर गठित संविधान सभा की मांग कर रही थी। कैबिनेट मिशन के मस्तिष्क में भी यही विचार था।

कैबिनेट मिशन ने भारत पहुँचने के बाद भारत में विभिन्न वर्गो, समुदायों, संगठनों और विचारधाराओं के साथ विचार विमर्श किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचें कि वयस्क मताधिकार के आधार पर सभा का गठन संभव नहीं है। मिशन ने संयुक्त भारत के आधार पर 10 लाख की जनसंख्या पर सभा में एक सदस्य लेने की अनुशंसा की। उस समय भारत की जनसंख्या लगभग 40 करोड़ थी। इस कारण से सभा की संख्या 389 निर्धारित की गई। उस समय के भारत को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। एक भारत जो प्रत्यक्ष ब्रिटिश नियंत्रण में था, उसे ब्रिटिश भारत तथा देश का एक भाग राजा-महाराजाओं के अधीन था, उसे देशी भारत कहा जाता था। ब्रिटिश भारत से 296 (292 सदस्य प्रान्तों व 4 सदस्य कमीशनर प्रान्तों से) व 93 सदस्य देशी भारत से लिये जाने का प्रावधान किया गया। **[01]**

दिल्ली, अजमेर - मेरवाड़ा, कुर्ग तथा बलुचिस्तान उस समय चार चीफ कमीश्नरी प्रांत थे। प्रांतों में चूंकि विधानमंडल कार्य कर रहे थे, इस कारण वहां से सदस्यों का अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन किया गया, जबकि देसी रियासतों से मनोनयन की व्यवस्था की गई। हालांकि देसी रियासतों से भी सदस्य निर्वाचीत ही किये गये। **[02]**

संविधान सभा की प्रथम बैठक की तिथि 9 दिसम्बर, 1946 तय की गई। तिथि और प्रथम बैठक की अध्यक्षता को लेकर ब्रिटिश सरकार एवं तत्कालिन कांग्रेस संगठन के बीच गहरा मतमेद था। सभा के सदस्यों के चुनाव में कांग्रेस को 211 तथा मुस्लिम लीग 73 को स्थान प्राप्त हुये थे। **[03]** मुस्लिम लीग द्विराष्ट्र के सिद्धान्त पर कार्य करते हुये अलग पाकिस्तान देश की मांग कर रही थी। इसलिये उसने सभा की बैठकों के बहिष्कार की घोषणा कर रखी थी। ब्रिटिश सरकार भी इसका लाभ लेना चाहती थी। दूसरी ओर कांग्रेस प्रथम बैठक 9 दिसम्बर को करने पर अड़ी हुई थी।

प्रथम बैठक की अध्यक्षता को लेकर मी ब्रिटिश सरकार व कांग्रेस के बीच मतभेद था। ब्रिटिश सरकार इसका निर्धारण स्वयं करना चाह रही थी।

इन सब परिस्थितियों में संविधान सभा का प्रथम सत्र 9 दिसम्बर, 1946 से शुरु हुआ। यह सत्र 23 दिसम्बर तक चला। इस सत्र में कुल 12 दिन बैठकें हुई। 9 दिसम्बर, 1946 को सभा के प्रथम सत्र की प्रथम बैठक में सर्वप्रथम वक्ता के रूप में संयुक्त प्रांत से सभा के सदस्य जे.बी. कृपलानी बोलें। उन्होंने डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का संक्षिप्त परिचय देते हुये उन्हें अस्थायी सभापति के रूप में पद ग्रहण करने का आहवान किया। श्री कृपलानी ने उनके परिचय के अर्न्तगत ही यह स्पष्ट कर दिया था कि डॉ. सिन्हा का कार्य सभा की कार्यवाही का उद्घाटन करना है। **[04]** आचार्य कृपलानी ने ही डॉ. सिन्हा को आसन तक पहुँचाया।

सर्वप्रथम डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने अमेरीका, चीन और आस्ट्रेलिया से प्राप्त शुभकामना संदेश सभा के समक्ष पढ़े। प्रथम दिन ही उनके समक्ष ब्रिटिश बलुचिस्तान से सभा के प्रतिनिधि नवाब मुहम्मद खां जोग जाई के प्रतिनिधित्व पर आपत्ति प्रकट की गई। उन्होंने इसका निर्णय स्थायी सभापति पर छोड़ दिया।

उन्होंने अपने उद्बोधन में यह स्वीकार किया कि उन्हें सभा का सबसे वयोवृद्ध सदस्य होने के कारण सभापति का दायित्व प्राप्त हुआ है। **[05]** उन्होंने विश्व के अन्य देशों के संविधान व संविधान सभाओं का उदाहरण देते हुये भारतीय संविधान सभा की बैठक को भारतीय इतिहास का महान् व स्मरणीय अवसर की संज्ञा दी। उन्होंने अपने उद्बोधन में मुस्लिम लीग द्वारा अलग संविधान सभा की मांग, सप्रू समिति द्वारा संविधान निर्माण का प्रयास और महात्मा गाँधी द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से संविधान सभा की मांग का भी उल्लेख किया।

चूंकि डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा सभा के सबसे वयोवृद्ध सदस्य थे और अस्वस्थ भी थे, इस कारण से उन्होंने उपसभापति के रूप में फ्रेंक एन्थॉनी का प्रस्ताव रखा। जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया। प्रथम दिन बंगाल से सभा में निर्वाचीत सदस्य प्रसन्न देव रेकुट के निधन पर शोक भी प्रकट किया गया। प्रथम दिन सभा के 207 सदस्यों ने अपना परिचय पत्र पेश करते हुये रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये। इसमें मद्रास से 43, बम्बई से 19, बंगाल से 25, संयुक्त प्रान्त से 42, पंजाब से 12, बिहार से 30, मध्य प्रांत और बरार से 14, असम से 7, सीमा प्रांत से 2, उड़ीसा से 9, सिंध से 1, दिल्ली से 1, अजमेर- मेरवाड़ा से 1 और कुर्ग से 1 सदस्य ने प्रथम बैठक में भाग लेते हुये हस्ताक्षर किये। इन 207 सदस्यों में से 10 महिला सदस्य भी थी। इनमें मद्रास से अम्मू स्वामिनाथन, दक्षायनी वेलायुदन, जी. दुर्गाबाई, बम्बई से हंसा मेहता, बंगाल से लीला रे, संयुक्त प्रांत से पूर्णिमा बनर्जी, सुचेता कृपलानी, कमला चौधरी, बिहार से सरोजनी नायडू और उड़ीसा से मालती चौधरी शामिल है।

संविधान सभा की यह प्रथम बैठक कोई सामान्य बैठक नहीं थी। यह किसी संगठन का मेल मिलाप समारोह नहीं था। यह एक महान् कार्य का श्रीगणेश था। यह एक प्रकार से विश्व को आश्चर्य चकित कर देने वाले लोकतंत्र की नींव रखी जा रही थी। पाश्चात्य विद्वानों और राजनीतिज्ञों के लिये यह बैठक उनकी सोच की सीमा से परे थी। लेकिन मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति और उनके तेवर जरूर इस खुशनमा माहौल को कम कर रहे थे।

मिशन की योजना के तहत् सभा में 389 सदस्य होने चाहिये थे। लेकिन प्रथम बैठक में केवल 207 सदस्यों ने ही भाग लिया था। अर्थात लगभग 53% सदस्यों ने प्रथम बैठक में भाग लिया था। कई बार इसे केवल मुस्लिम लीग के बहिष्कार से जोड़कर सीमित कर दिया जाता है। जबकि यह केवल एक कारण था। क्योंकि मुस्लिम लीग से 73 सदस्य सभा के सदस्य थे, जबकि अनुपस्थितों की संख्या 182 है। फिर दूसरे कौन सदस्य थे, जो सभा की प्रथम बैठक में भाग नहीं ले पाये ? देसी रियासतों से 93 सदस्य लिये जाने थे और उनको सभा में लिये जाने की विधि आगे आने वाले सत्रों में तय होनी थी। इस कारण से देसी रियासतों का कोई प्रतिनिधि सभा में नहीं थे। इसलिये यह कहा जाना चाहिये कि 296 सदस्यों में से प्रथम बैठक में 207 सदस्य उपस्थित थे। उनमें से मुस्लिम लीग के 73 सदस्यों की अनुपस्थिति के पश्चात महज 16 अन्य सदस्य ही अनुपस्थित माने जाने चाहिये। उनमें भी विजयलक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृत्त कौर जैसी सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की बैठकों में भाग लेने हेतु भारत से बाहर थी।

10 दिसम्बर, 1946 को सभा की दूसरी बैठक हुई। आचार्य जे.बी. कृपलानी ने सभा के स्थायी अध्यक्ष के चुनाव की विधि के सन्दर्भ में प्रस्ताव रखा जिसे संक्षिप्त विचार विमर्श के बाद स्वीकार कर लिया गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्ताव का समर्थन किया। सभा में इस प्रस्ताव पर कुछ शब्दों में परिवर्तन हेतु मध्य प्रांत और बरार से सदस्य डॉ. पी.एस. देशमुख ने संशोधन का सुझाव दिया। हालांकि उसे स्वीकार नहीं किया गया। लेकिन यह कहा जा सकता है कि सभा में पहला संशोधन प्रस्ताव डॉ. पी.एस. देशमुख ने रखा। हालांकि अभी संविधान का प्रारूप बनना शुरू नहीं हुआ था। यह केवल सभापति के चुनाव सम्बन्धी नियमों की विधि में शाब्दिक संशोधन के सन्दर्भ में प्रस्ताव था।

संविधान सभा की कार्यप्रणाली के सन्दर्भ में अभी नियमों का निर्धारण होना शेष था। इसलिये सभा की कार्यवाही के सुचारु संचालन हेतु पं. जवाहरलाल नेहरू ने केन्द्रीय संसद के नियमों के अनुकुल सभा में कार्य करने का प्रस्ताव 10 दिसम्बर को ही रखा था जिसे सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। हालांकि उड़ीसा से सभा के सदस्य विश्वनाथ दास ने पं. नेहरु से इस प्रस्ताव को वापस लेने को कहा। उन्होंने इस प्रस्ताव को पारित करने का विरोध किया। हालांकि उन्होंने स्वयं ने 'विरोध' जैसे शब्द का प्रयोग नहीं किया । **[06]** यहाँ यह बताना आवश्यक है कि विश्वनाथ दास स्वयं कांग्रेस के टिकट पर ही सभा के सदस्य थे। **[07]**

संविधान सभा की प्रथम बैठक भले ही 9 दिसम्बर, 1946 को हुई हो, लेकिन सभा के सन्दर्भ में कार्य महिनों से चल रहा था। सर बी. एन. राव सभा के संवैधानिक सलाहकार, एच. वी. आर. आयंगर सचिव, बी. एफ. एच. बी. तैयबजी उपसचिव, खान बहादुर एस. जी. हस्नैन अवर सचिव, के. वी. पदमनाभन सहायक सचिव और मार्शल के रूप में सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका थे। स्वयं पं. नेहरू ने सभा में कहा ''गत कई महिनों से संविधान सभा का कार्यालय काम कर रहा है और हमारे पहले यानि इस सभा के समवेत होने के पहले जो कुछ हो चुका है, उसको इसी ने संगठन किया था। इसका बहुत कुछ काम तो नेपथ्य में ही हुआ है"।**[08]** इस कारण से पं. नेहरू ने सभा के कार्यालय के वर्तमान संगठन की स्वीकृति का प्रस्ताव रखा, जिसे सभा ने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

सभा का कार्य संचालन किस प्रकार से होगा, क्या कार्य प्रणाली रहेगी, सभापति, सदस्यों के क्या अधिकार होंगे, यह सब अभी तक निर्धारित नहीं हुये थे। इस कारण से आचार्य कृपलानी ने कार्य संचालनार्थ नियम समिति के गठन का प्रस्ताव रखा। इस समिति में सभापति के अलावा 15 सदस्यों का प्रावधान किया गया। इस प्रस्ताव पर सभा में विस्तृत चर्चा हुई और कई संशोधन रखे गये। सभा द्वारा सभी संशोधन स्वीकार किये गये।

कई बार संविधान सभा के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि सभा में सभी प्रस्ताव/संशोधन सर्वसहमति से स्वीकृत्त होते थे। यह तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है। सभा की दूसरी बैठक (10 दिसम्बर, 1946) में ही एक संशोधन पर मतदान करवाना पड़ गया था। नियम समिति के सन्दर्भ में संयुक्त प्रांत से सदस्य मोहनलाल गुप्ता एक शब्द जोड़ने हेतु संशोधन प्रस्ताव लाये थे। इस पर तत्त्कालिन सभापति डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने सचिव आयंगर को सभा के सदस्यों द्वारा पक्ष-विपक्ष में दिये गये मतों को गिनने का आदेश दिया था। संशोधन के पक्ष में 50 तथा विपक्ष में एक मत प्राप्त हुआ था। हालांकि पं. नेहरु ने सभापति से मत नहीं गिनने का आग्रह किया था। उनके अनुसार "जब तक विरोध नहीं हो, इसकी तो कोई आवश्यकता नहीं हैं"। **[09]**

10 दिसम्बर, 1946 के दिन ही सभा में बोली जानी वाली भाषा के विषय पर सभापति एवं संयुक्त प्रांत के आर. वी. धुलेकर के बीच भी तीखी बहस हुई। श्री धुलेकर द्वारा हिन्दुस्तानी भाषा में संवाद शुरु करने पर सभापति ने बहुतेरे सदस्यों की समस्या को देखते हुये उनसे अंग्रेजी में बात रखने का आग्रह किया। इस पर श्री धुलेकर ने कहा कि,"जो हिन्दुस्तानी नहीं जानते उन्हें हिन्दुस्तान में रहने का अधिकार नहीं है। जो लोग यहाँ भारत का संविधान निर्माण करने आये हैं और हिन्दुस्तानी नहीं जानते हैं, वे इस सभा के सदस्य होने योग्य नहीं है। अच्छा हो, वे सभा से चले जायें"। **[10]**

10 दिसम्बर को ही सभा के स्थायी सभापति और नियम समिति के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी विज्ञप्ति जारी की गई। 11 दिसम्बर, 1946 को सभा के स्थायी सभापति के निर्वाचन की घोषणा अस्थायी सभापति डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा द्वारा की गई। सभापति के लिये कुल चार प्रस्ताव आये और दोनों में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का नाम प्रस्तावित किया गया था। एक प्रस्ताव में जे.बी. कृपलानी प्रस्तावक व वल्लभभाई पटेल अनुमोदक थे तथा दूसरे प्रस्ताव में हरेकृष्ण मेहताब प्रस्तावक व नन्द किशोर दास अनुमोदक थे। इन दोनों प्रस्तावों से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की सहमति का उल्लेख था। दो अन्य प्रस्ताव टी. प्रकाशम व सर सर्वपल्ली राधाकृष्ण द्वारा रखे गये थे। लेकिन दोनों प्रस्ताव में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की सहमति शामिल नहीं थी। इस प्रकार से सभा के स्थायी सभापति हेतु केवल एक ही नाम होने के कारण डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को नियमानुसार निर्वाचीत सभापति घोषित किया गया।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापति पद पर निर्वाचीत हो जाने पर सभा के सदस्यों ने उन्हें अपने उद्बोधन द्वारा बधाई दी गई। सर्वपल्ली राधाकृष्णन, एन. गोपालास्वामी आयंगर, एफ. आर. एंथोनी, सर कामेश्वर सिंह, डॉ. जोसफ आल्बन डीसूजा, वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लै, खान अब्दुल गफ्फार खान, एच.वी. कामथ, सोमनाथ लाहिरी, सरोजनी नायडू आदि ने इस अवसर पर अपने विचार प्रकट किये। जे. बी. कृपलानी ने डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का आभार प्रकट किया।

इस अवसर पर नये सभापति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का भी उद्बोधन हुआ। उन्होंने हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषा में अपना उद्बोधन दिया। उन्होंने संविधान सभा को प्रभुत्व सम्पन्न मानते हुये यह स्पष्ट कहा कि "मैं यह मानता हूँ कि इस संविधान सभा को पूरा अधिकार, मुकम्मिल अख्तियार इस बात का है कि वह अपनी कार्यवाही जिस तरीके से चाहे करें। इसके अन्दर वह जो कुछ करना चाहे करें। किसी भी बाहरी ताकत को अख्तियार नहीं है कि इसकी कार्यवाही में वह कुछ भी हस्तक्षेप या दखलन्दाजी कर सके"। **[11]**

डॉ. प्रसाद का यह वक्तव्य कई संदेशों से युक्त है। दरअसल ब्रिटिश सरकार लगातार मुस्लिम लीग द्वारा बैठकों का किये गये बहिष्कार को हवा दे रही थी, दूसरी ओर सभा कार्यवाहियों को कैबिनेट मिशन के दायरे में रखना चाह रही थी, डॉ. प्रसाद ने अपने उद्बोधन से स्पष्ट कर दिया कि एक बार सभा के गठन के पश्चात सभा अपने अनुकुल कार्य करने हेतु स्वतंत्र है।

11 दिसम्बर को ही 15 सदस्य नियम समिति का गठन हो गया। इसे हेतु केवल 15 नामांकन ही आये थे, इसलिए वे सभी निर्वाचीत घोषित किये गये। इनमें जगजीवन राम, शरतचन्द्र बोस, एफ. आर. एन्थोनी, अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर, बक्शी सर टेकचन्द, रफी अहमद किदवई, जी. दुर्गाबाई, जोसेफ आल्बन डीसूजा, एन. गोपालास्वामी आयंगर, पुरुषोत्तम दास टंडन, गोपीनाथ बारदोलोई, पटाभि सीतारम्मैया, के. एम. मुंशी, मेहरचन्द खन्ना तथा सरदार हरनामसिंह शामिल थे। सभा के सभापति ही इस समिति के पदेन अध्यक्ष थे।

प्रायः लोग यह मानते हैं कि 12 दिसम्बर को सभा की कोई बैठक नहीं हुई। यह भी तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है। पंडित नेहरु द्वारा सभा में उद्देश्य प्रस्ताव पहले 12 दिसम्बर को ही रखना प्रस्तावित था लेकिन सदस्यों ने इस सन्दर्भ में अध्यक्ष को यह बताया कि उन्हें उद्देश्य प्रस्ताव पर चर्चा हेतु अधिक समय चाहिये। इस कारण 12 दिसम्बर को प्रस्ताव नहीं रखा गया और संक्षिप्त विचार विमर्श के बाद सभा स्थगित हो गई। 13 दिसम्बर को पं. नेहरू ने सभा में उद्देश्य प्रस्ताव रखा। उन्होंने इस अवसर पर एक विस्तृत भाषण दिया। पं. नेहरु द्वारा सभा के जीवन काल में कई ऐतिहासिक भाषण दिये गये। यह सभा में उनका पहला ऐतिहासिक भाषण कहा जा सकता है। उन्होंने विस्तार से देश की समस्यायें, संविधान सभा की ताकत, उसकी सीमायें, संविधान के उद्देश्यों और जनता के प्रति कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का उल्लेख किया।

इस उद्देश्य प्रस्ताव में आठ बिन्दुओं का उल्लेख किया गया। इसमें संविधान सभा द्वारा भारत को गणतंत्र घोषित करने का संकल्प था। इसमें भारत को संघ (यूनियन) बनाने, प्रदेशों को स्वाधीन ईकाई बनाने, संघ और प्रदेशों के मध्य विषयों का बंटवारा करने, शासन द्वारा सभी शक्ति जनता से प्राप्त करने, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, अल्पसंख्यकों, पिछड़े, कबाइली प्रदेशों और दलितों हेतु संरक्षण का उल्लेख किया गया। इसके अलावा गणतंत्र की अक्षुण्णता, संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने का उल्लेख किया गया। उद्देश्य प्रस्ताव दरअसल भावी भारत के स्वरूप और संविधान के उद्देश्यों को रेखांकित कर रहा था।

यह उद्देश्य प्रस्ताव ही बाद में संविधान की प्रस्तावना का आधार बना। इस कारण ही प्रस्तावना को उद्देशिका भी कहा जाता है। इस दिन संयुक्त प्रांत के पुरुषोत्तम दास टंडन का भी बड़ा उद्बोधन हुआ। अपने उद्बोधन में उन्होंने इस

उद्देश्य प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। 14 व 15 दिसम्बर को सभा का अवकाश था। 16 दिसम्बर को बम्बई के एम. आर. जयकर ने इस उद्देश्य प्रस्ताव पर चर्चा के स्थगन का प्रस्ताव रख दिया। उन्होंने इस सन्दर्भ में मुस्लिम लीग और देशी रियासतों का सहयोग पाने हेतु इस चर्चा को स्थगित करने का प्रस्ताव रखा। **[12]** चूंकि मुस्लिम लीग सभा की बैठकों का बहिष्कार कर रही थी और देसी रियासतों का प्रतिनिधित्त्व अभी तय नहीं हुआ था। इस कारण एम. आर. जयकर के अनुसार उनकी अनुपस्थिति में उद्देश्य प्रस्ताव को पारित करना तकनीकी रूप से ठीक नहीं है। उनके अनुसार इससे सभा की मेहनत बेकार हो जायेगी।

डॉ. एम. आर. जयकर बॉम्बे के माने हुये वकील रहे हैं। ये हिन्दु महासभा के प्रथम अध्यक्ष थे। स्वराज पार्टी से जुड़े रहे। डॉ. जयकर बाद में फेडरल कोर्ट में न्यायधीश भी बने। वे सप्रू समिति के भी सदस्य थे जिसने अपना संविधान बनाया था। वे कांग्रेस के टिकट से ही सभा के सदस्य बने थे। पं. नेहरू के द्वारा रखे गये उद्देश्य प्रस्ताव पर स्थगन प्रस्ताव आश्चर्य जनक था। लेकिन डॉ. जयकर का उद्देश्य साफ था। वे जानते थे कि एक बार मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति पर यदि उद्देश्य प्रस्ताव पारित हो गया तो लीग सभा की बैठकों में कभी शामिल नहीं होगी। दूसरा उनका यह मानना था कि सभा की प्रारम्भिक बैठक में संविधान के बुनियादी प्रश्नों पर विचार नहीं किया जा सकता है। **[13]** उनका यह मानना था कि इससे सभा कैबिनेट मिशन योजना से बाहर चली जाती है।

उद्देश्य प्रस्ताव पर डॉ. सर हरिसिंह गौड़, श्यामनंदन सहाय ने भी संशोधन रखे थे। सोमनाथ लाहिरी को इस विषय पर संशोधन रखने की अनुमति नहीं मिली। 17, 18 और 19 दिसम्बर को भी सभा में उद्देश्य प्रस्ताव पर चर्चा हुई। 17 दिसम्बर को ही विजयलक्ष्मी पंडित ने सभा में अपना परिचय पत्र सौंपते हुये रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये थे। 17 दिसम्बर को बम्बई के एम. आर. मसानी ने अपने उद्बोधन में इस उद्देश्य प्रस्ताव का समर्थन किया तो बंगाल के एफ. आर. एंथोनी ने डॉ. जयकर के प्रस्ताव का समर्थन किया। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने डॉ. जयकर के प्रस्ताव की आलोचना करते हुये कहा कि "यहाँ (संविधान सभा में) आकर इस तरह की आपत्ति उठाना तो मुस्लिम लीग के फंदें में पड़ना है और ब्रिटेन के प्रतिक्रियावादियों का हाथ मजबूत करना है"। **[14]** उन्होंने संविधान सभा पर किसी भी प्रकार की सीमाओं को मानने से इंकार करते हुये स्पष्ट कहा कि "एक बार अस्तित्त्व में आ जाने पर इसे (संविधान सभा) इस बात का पूरा अधिकार है कि अगर वह चाहे तो भारत की स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये तथा जाति, धर्म और सम्प्रदाय को भूलकर समूची जनता की भलाई के लिये जो भी आवश्यक और उचित समझती हो, करें"। **[15]**

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी बंगाल से संविधान सभा के सदस्य थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े थे और हिन्दुत्व के समर्थक थे। डॉ. एम. आर. जयकर भी हिन्दुत्त्व के समर्थक थे। लेकिन उद्देश्य प्रस्ताव के पारित करने के सन्दर्भ में दोनों सदस्यों के विचार नितांत विपरीत थे। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर 17 दिसम्बर को ही पहली बार सभा में बोले थे। उन्होंने डॉ. जयकर के स्थगन प्रस्ताव का समर्थन किया। उनके अनुसार "वह (संविधान सभा) इस दृष्टिकोण से विचार न करें कि उसे इस प्रस्ताव को पास करने का हक है या नहीं। वरन् इस ख्याल से कि क्या इसे अभी पास करना बुद्धि संगत होगा, नीतिज्ञता की बात होगी? मेरा कहना है कि ऐसा करना बुद्धिमता और नीतिज्ञता से विपरीत है"। **[16]** सरदार उज्ज्वल सिंह, सेठ गोविन्ददास, जे. जे. एम. निकोल्स राय, आर. के. सिधवा, विश्वनाथ दास, हृदयनाथ कुंजरू, गोपालास्वावी आयंगर, सोमनाथ लाहिरी, हंसा मेहता, पी. आर. ठाकुर, अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर, जयपाल सिंह,

डी. पी. खेतान, डम्बर सिंह गुरंग, डॉ. हरिसिंह गौड़, दक्षायणी वेलायुदन ने अपने उद्बोधन द्वारा इस उद्देश्य प्रस्ताव का समर्थन किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभा में पाँच दिन तक उद्देश्य प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष पर विस्तार से चर्चा हुई। जहाँ एक ओर उद्देश्य प्रस्ताव पर चर्चा के स्थगन का प्रस्ताव डॉ. एम. आर. जयकर ने रखा जिसका एफ. आर. एंथोनी और डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने समर्थन किया वहीं दूसरी ओर अन्य सदस्यों ने उद्देश्य प्रस्ताव को ऐतिहासिक बतलाते हुये शीघ्र पारित करने की बात कही। सेठ गोविन्ददास ने तो सभा से इस प्रस्ताव को प्रस्ताव नहीं मानकर प्रतिज्ञा मानने का आहवान किया। **[17]** डॉ. एम. आर. जयकर हिन्दु महासभा से जुड़े हुये थे, जबकि डॉ. अम्बेडकर दलितोंत्थान में शामिल थे और एफ. आर. एंथोनी आंग्ल भारतीय थे और सभा में उनके हितों के लिये अत्यधिक पैरोकार रहे। यह तीनों विचारात्मक रूप से अलग थे, लेकिन उद्देश्य प्रस्ताव के संदर्भ में तीनों के विचार लगभग एक जैसे थे। पं. नेहरू कांग्रेस के बड़े नेता थे। उन्होंने ही उद्देश्य प्रस्ताव रखा था जिसका पूर्ण समर्थन डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने किया जो स्वयं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े थे। यह सभा की लोकतांत्रिक प्रणाली और लोकतंत्रात्मक स्वरुप का उदाहरण कहा जा सकता है।

21 दिसम्बर को मध्य प्रांत और बरार से राजकुमारी अमृत कौर तथा संयुक्त प्रान्त से पदमपद सिंघानिया सभा के सदस्य बने। चूंकि सभा में अभी तक देसी रियासतों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित नहीं हुआ था। इसका कारण यह था कि अभी तक रियासतों के बीच सदस्य संख्या का वितरण नहीं हुआ था और न हीं रियासतों से प्रतिनिधियों को चुनने का तरीका तय हुआ था। कैबिनेट मिशन योजना के तहत् केवल सदस्य संख्या (93) ही तय की गई थी। अतः देसी रियासतों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने हेतु एक निगोशियेटिंग कमेठी के गठन का प्रस्ताव के. एम. मुंशी ने रखा। इस कमेटी को नरेन्द्र मंडल (Chambery of the Princes) की निगोशियेटिंग कमेटी से संवाद कर यह कार्य सुनिश्चित करना था। प्रस्ताव पर कुछ संशोधन भी रखे गये और लम्बा विचार विमर्श भी हुआ।

कुछ सदस्यों ने यह आशंका प्रकट की थी कि कहीं यह समिति ही अन्तिम निर्णय नहीं ले लें। पहले पं. नेहरू और बाद में के. एम. मुंशी ने इस आशंका को दूर करते हुये स्पष्ट किया कि इस समिति का प्रतिवेदन सभा में रखा जायेगा और इस सन्दर्भ में सभा को ही अन्तिम निर्णय लेना है। बंगाल के पी. आर. ठाकुर ने रियासतों में दलितों की खराब स्थिति के कारण एक दलित सदस्य तथा जयपाल सिंह ने रियासतों में आदिवासियों की बड़ी संख्या के कारण समिति में एक आदिवासी सदस्य रखने की मांग की। के. एम. मुंशी ने इस सन्दर्भ में स्थिति को स्पष्ट करते हुये कहा कि यह एक छोटी समिति है और यह किसी वर्ग या समुदाय विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। सदस्यों की मांग पर मुंशी के इस प्रस्ताव में यह शब्दावली भी जोड़ दी गई कि इस समिति का प्रतिवेदन सभा में रखा जायेगा।

चूंकि उद्देश्य प्रस्ताव पर सभा में लगभग पाँच दिन तक चर्चा हुई और कुछ सदस्यों का यह मानना था कि अभी इसे पारित करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये । अतः 21 दिसम्बर को सभा के अगले सत्र तक इस पर बहस स्थगित करने की घोषणा सभापति द्वारा कर दी गई।

10 दिसम्बर, 1946 को सभा ने अपने नियम बनाने हेतु 15 सदस्यों की एक नियम समिति का गठन किया था। सभापति ही इस समिति के पदेन अध्यक्ष थे। 21 दिसम्बर को समिति ने अपना प्रतिवेदन सभा में रखा। 21 दिसम्बर को सभा की बैठक दूसरी पारी (दोपहर के बाद) में भी हुई। लेकिन अब सम्पूर्ण सभा ने समिति का रूप ले लिया। नियम समिति के सदस्य के. एम. मुंशी एक-एक करके नियम रखते और सभी सदस्यों को उन पर संशोधन रखने और विचार व्यक्त करने का अधिकार था। जब सभा समिति के रूप में कार्य कर रही थी, उस समय यह सम्पूर्ण कार्यवाही बंद कमरें में हो रही थी। अर्थात उस दौरान दर्शक दीर्घा खाली करवा दी गई। 21 से 23 दिसम्बर, 1946 तक सभा ने इसी प्रकार से समिति के रूप में कार्य करते हुये नियमों को स्वीकार किया।

इन नियमों में सभापति का नामकरण अध्यक्ष, प्रस्ताव व संशोधन रखने की प्रक्रिया, रिक्त स्थानों की पूर्ति, सभा का बैठक स्थल, विभिन्न समितियों के गठन, कार्य व कार्यप्रणाली, गणपूर्ति, पाँच उपाध्यक्ष, अध्यक्ष की शक्तियाँ, सभा के कार्यालय, सदस्यों के भत्तों इत्यादि का निर्धारण किया गया। वैसे यह नियम अन्तिम नहीं थे। इनमें आगे के सत्रों में परिवर्तन होता रहा। देश विभाजन के फलस्वरुप उत्पन्न स्थितियों के कारण कई नियमों में परिवर्तन किया गया।

23 दिसम्बर को सभा ने थोड़ी देर के लिये समिति की स्थिति से बाहर आकर सभा के रूप में भी कार्य किया। इस रूप में सभा ने सभी नियमों को स्वीकार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि संविधान सभा का प्रथम सत्र करोड़ो सपनों को साकार करने का श्रीगणेश था। सभा के स्थायी अध्यक्ष का चुनाव और नियम समिति द्वारा निर्धारीत नियमों को अंतिम स्वीकृत्ति इस सत्र की बड़ी उपलब्धियाँ थी। सभा में उद्देश्य प्रस्ताव रखा जा चुका था। हालांकि वह इस सत्र में पारित नहीं हुआ, लेकिन उस पर हुये विचार विमर्श ने सभा के लोकतांत्रिक स्वरूप और कार्य प्रणाली को दुनियां के सामने ला दिया। विभिन्न जातियों, वर्गो, सम्प्रदायों और विचारधाराओं में विभाजित भारत एक साथ संविधान निर्माण के कार्य में जुट गया। यह किसी आश्चर्य से कम नहीं था। प्रथम सत्र में मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति जरुर थोडी कमी के रूप में दिख रही थी, लेकिन यह लीग द्वारा सभा को असफल करने की रणनीति ही थी, जो अगले सत्रों तक बिल्कुल स्पष्ट हो गई।

इस प्रथम सत्र में कुल 210 सदस्यों ने भाग लिया उनमें से 12 महिला सदस्य थी। उस समय की परिस्थितियों के अनुसार यह एक प्रकार से सुखद संकेत था। हालांकि जब सभा के सदस्यों का चुनाव हुआ, उस समय सभा में 15 महिलाओं का निर्वाचन हुआ था। लेकिन मुस्लिम लीग द्वारा सभा की बैठकों का बहिष्कार किये जाने के कारण मुस्लिम लीग से निर्वाचीत तीन महिला सदस्यों - बेगम अय्याज रसूल, बेगम जहाँआरा शाह नवाज और शाहिस्ता सोहरावर्दी ने प्रथम सत्र की बैठकों में भाग नहीं लिया। हालांकि भारत विभाजन के बाद के सत्रों में बेगम अय्याज रसूल ने भाग लिया था। लेकिन अन्य दो ने भारतीय संविधान सभा की बैठकों में कमी भी भाग नहीं लिया।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संविधान सभा का प्रथम सत्र एक महान् कार्य की शुरूआत थी। पूरे विश्व की नजर भारत पर थी और सभा ने अपने प्रथम सत्र में महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कर सम्पूर्ण विश्व को एक सकारात्मक संदेश दे दिया।

संदर्भ सूची

[1] परांजपे एन.पी., भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, आठवाँ संसकरण, 2008, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या - 408

[2] भारतीय संविधान के विवाद की सरकारी रिर्पोट, हिन्दी संस्करण, खण्ड 1, पुस्तक संख्या 1, 2015, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 28 अप्रैल, 1947, पृष्ठ संख्या - 24

[3] वही, परांजपे एन.वी., पृष्ठ संख्या - 418

[4] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 9 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 2

[5] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 9 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 5

[6] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 10 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 9

[7] **www.constitutionofindia.net/members/biswanath-das**

[8] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 10 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 12

[9] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 10 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 32

[10] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 10 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 21

[11] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 11 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 29

[12] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 16 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 5

[13] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 16 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 3

[14] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 17 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 9

[15] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 17 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 11

[16] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 17 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 19

[17] वही, संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 17 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ संख्या - 29

2

भारतीय संविधान के लक्ष्य(उद्देशिका) सम्बन्धी प्रस्ताव पर विभिन्न वक्ताओं के वक्तृत्व: भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट के आलोक में

पवन कुमार शर्मा
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, 250004
शिवम् वार्ष्णेय
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, 250004

भारत का संविधान, जो कि भारत की एकता, अखंडता, स्वराज एवं संप्रभुता का द्योतक है, को हम आज जिस स्वरुप में हम देखते हैं वह एक लम्बी विरासत, संघर्ष और सामूहिक समन्वित प्रयासों का परिणाम है | औपनिवेशिक शासन से मुक्ति संग्राम के दौरान मुख्यतः 2. वीं शताब्दी के शुरूआती दशकों से ही विभिन्न संस्थाओं व स्वतंत्रता सैनानियों द्वारा, बालगंगाधर तिलक के कथन 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की मूलभावना के अनुरूप भारत के लिए पूर्ण स्वराज की मांग को प्रबल रूप से पोषित किया जा रहा था, साथ ही आज़ाद भारत के भविष्योंमुखी विधान (संविधान) निर्माण हेतु भारतीयों द्वारा जनतान्त्रिक रूप से निर्मित संविधान निर्मात्री सभा की मांग भी लगातार दृढ़ होती जा रही थी | इस बात की पुष्टि भारत की संविधान सभा के प्रथम दिवस 9 दिसम्बर 1946 को अस्थाई सभापति डा. सच्चिदानंद सिन्हा द्वारा दिए गये उद्घाटन भाषण के दौरान महात्मा गाँधी के एक कथन के जिक्र से होती है, जिसमें महात्मा गाँधी ने 1922 में दिए गये एक वक्तव्य में कहा था कि – "स्वराज ब्रिटिश पार्लियामेंट की ओर से एक उपहार की तरह नहीं होगा | यह तो भारत की समस्त मांगों की स्वीकृति सूचक एक घोषणा होगी, ... जब यह समझौता होगा तो ब्रिटिश पार्लियामेंट भारतीय प्रजा की इच्छानुसार चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त की हुई भारतीय जनता की मांगों को स्वीकार करेगी|"[1] इसके अतिरिक्त भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नें अपनी अधिकारिक नीति में संविधान सभा की मांग 1934 में शामिल की थी |[2]

इस प्रकार विभिन्न प्रयासों और संघर्षों की फलश्रुति के रूप में आज़ादी के पूर्व संध्याकाल में कैबिनेट मिशन 1946 के प्रावधानों के तहत भारत की संविधान निर्मात्री सभा आस्तित्व में आयी | कांग्रेस का महिमामंडन करते हुए कहा गया कि- 'संविधान सभा ही कांग्रेस है और कांग्रेस ही भारत का पर्याय'|[3] जबकि वास्तव में ऐसा था नहीं क्योकि यह तो विभिन्न दल व विचार आधारित संस्था थी| 9 दिसम्बर 1946 को प्रथम बार समवेत हुई इस संविधान सभा ने आगामी लगभग ३ वर्षों में भारत की सनातन संस्कृति के लोकतान्त्रिक मूल्यों को वैधानिक स्वरूप प्रदान कर अंततः भारत के संविधान का निर्माण कार्य पूर्ण किया|

विभिन्न विद्वानों द्वारा भारत के संविधान की उद्देशिका/प्रस्तावना को 'संविधान की आत्मा' के रूप में संबोधित किया जाना स्वयं ही इसके महत्त्व को रेखांकित करता है| मूलतः संविधान सभा के समक्ष पं. जवाहर लाल नेहरु द्वारा प्रस्तुत 'लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव' को भारत की संविधान निर्मात्री सभा द्वारा एक लम्बे वाद विवाद एवं संवाद के पश्चात् संविधान के अंतिम मसौदे में इसी को भारत के संविधान की प्रस्तावना के रूप में स्वीकार किया गया | इस शोध पत्र के

माध्यम से शोधार्थियों द्वारा 'भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट' के आलोक में लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार रखने वाले वक्ताओं के वक्तृत्व को सार रूप में बताया जायेगा ताकि अध्येयताओं को सम्पूर्ण संविधान के मूलदर्शन और उसके हेतु को आसानी से समझा जा सके |

पंडित जवाहर लाल नेहरु - 9 दिसम्बर 1946 से भारत की संविधान सभा के कार्य के श्री गणेश के उपरांत औपचारिकताओं को पूर्ण करते हुए पहली बैठक के पाचवें दिन, 13 दिसम्बर 1946, को पंडित नेहरु द्वारा लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव को प्रस्तुत किया गया |[5] पंडित नेहरु नें इस प्रस्ताव की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए सभा से इस प्रस्ताव की स्वीकृति की आशा की | इस प्रस्ताव को 'भारतीय स्वतंत्रता का घोषणा पत्र' के शीर्षक से पढ़ा गया जिसमें कुल 8 बिंदु के माध्यम से भारतीय स्वातंत्र्य समर की मूल भावना का सारगर्भित प्रकटीकरण था |[6] अपने वक्तव्य में अनेक अन्य बातों के साथ भारत के अतीत, वर्तमान व भविष्य की परम्परा , चिंता और स्वरुप का वर्णन करते हुए संविधान सभा से सकारात्मक उम्मीद के साथ पंडित नेहरु ने इन शब्दों के साथ अपनी वाणी को विराम दिया – "मैं इस प्रस्ताव को इसी दृष्टि से देखता हूं और मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह अपने महान अतीत को, वर्तमान के जबर्दस्त उथल-पुथल को और उदित होने वाले महत्तर भविष्य को दृष्टि में रखकर उस पर विचार करे।"[7]

श्री पुरुषोतम दास टंडन – पहले वक्ता के रूप में श्री टंडन ने इस लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन किया | साथ ही इस बैठक को ऐतिहासिक अवसर बताते हुए भारत के स्वर्णिम अतीत को याद किया | उन्होंने भारत की वसुधैव कुटुम्बकम की नीति-रीति व भारतीय सहिष्णुता पर प्रकाश डालते हुए कहा -" हमारा इतिहास बतलाता है कि हमने बाहरी देशों से आये हुए आदमियों का सदा स्वगात किया, जो भी सहायता जरूरी थी, हमने उन्हें दी और यहां बसने में उनकी हर तरह मदद की।"[8] ज्ञातव्य हो कि मुस्लिम लीग द्वारा 'टू नेशन थ्योरी' का राग अलापते हुए संविधान सभा की बैठकों का बहिष्कार किया गया था जिस कारण संविधान सभा के कुछ सदस्य इस बात के पक्ष में थे कि मुस्लिम लीग का इंतजार किया जाये और उनके आने तक लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव जैसे महत्वपूर्ण विषय ना प्रस्तुत किये जाये | इस पर मुस्लिम लीग को कटघरे में खड़े करते हुए टंडन जी ने कहा कि – " लीग की सहयोग-प्राप्ति के लिए हमने अपने आदर्शों के प्रतिकूल भी बहुत-सी बातें मंजूर कर ली हैं अब हमें यह बन्द कर देना चाहिए।"[9]इसके अलावा श्री टंडन नें ब्रिटिश दोहरी मानसिकता व उसके कुप्रभावों के विषय पर भी बोला एवं हिन्दू-मुस्लिम मनमुटाव की समस्या को भी अंग्रेजजन्य बताया | मुस्लिम लीग के मनसूबे और 'टू नेशन थ्योरी' को नकारते हुए श्री टंडन ने कहा कि -"हम भारत को विभक्त करने का प्रस्ताव कभी स्वीकार न करेंगे।"[1.]

डॉ. एम. आर. जयकर – डॉ. जयकर नें संविधान सभा की एक बड़े धड़े की इच्छा के विरूद्ध लक्ष्य सम्वन्धी प्रस्ताव में, मुस्लिम लीग की अनुपस्तिथि को लेकर केबिनेट मिशन योजना के तकनीकि पक्षों को बताते हुए, एक संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत कर समूची सभा में एक अजीब सा कौतुहल उत्पन्न कर दिया | जिसके अनुसार इस प्रस्ताव को तब तक के लिए स्थगित रखा जाये जब तक सदन में मुस्लिम लीग और देशी रियासतों के प्रतिनिधि शामिल ना हों | इस प्रस्ताव का विभिन्न अन्य सदस्यों यथा - डॉ. पट्टाभि सीतारमैया, के. संथानम, एन. वी. गाडगिल, आर. के सिधवा, बल्लभ भाई पटेल, प. गोविन्द्राल्लभ पन्त आदि द्वारा तत्काल तार्किक खंडन किया गया |[11] परन्तु डॉ. जयकर नें अपनी प्रस्ताव को दोहराते हुए कहा कि – " वर्तमान समय में यह जरूरी है कि मुस्लिम लीग को यहां बुलाने के लिए हम हर तरह प्रयास करें और यह नहीं कि हम उनका यहां आना और कठिन बना दें।"[12] अंततः मुस्लिम लीग के इस

प्रकार के प्रस्ताव पास करने के रास्ते को संकटग्रस्त और विभाजनकारी नीति का प्रशस्ता बताया "[13] डॉ. जयकर द्वारा जताई गयी आशंका भविष्य में सही ही साबित हुई और मुस्लिम लीग अपने लिए अलग पाकिस्तान बनवाने और भारत बंटवारे के इस दुष्कृत्य में कामयाव हुई |

श्री रायबहादुर श्यामनंदन सहाय – श्री रायबहादुर द्वारा लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव के विभिन्न बिन्दुओं पर संशोधन प्रस्तुत किये गये | भारत के लिए "संघ" शब्द पर आपत्ति जताते हुए कहा – " मैं समझता हूं कि हिंदुस्तान, हिंदुस्तान है, इसे संघ की जरूरत नहीं है। उसे तो दैव से ही एक महान ''संघ'' प्राप्त हुआ है। और इसको दुहराने से, पुनः प्रयुक्त करने से यह अर्थ लगाया जा सकता है कि भारतीय संघ अभी बनना बाकी है।"[14] पुनःउन्होंने देशी रियासतों आदि के संविधान निर्मात्री सभा में अनुपस्तिथि से सशंकित होते हुए कहा – " यह प्रस्ताव विधान-परिषद के काम का प्रारम्भ का श्रीगणेश है और यह कोई नहीं चाहेगा कि बाद में परिस्थिति में परिवर्तन होने से प्रस्ताव में भी परिवर्तन आवश्यक हो जाये।"[15] अतः सभा समग्र विचारोपरांत ही प्रस्ताव को स्वीकृत करे |

श्री कृष्ण सिन्हा – लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन करते हुए सिन्हा जी ने कहा कि – " मेरी राय में वस्तुतः यह दुर्भाग्य की बात है कि इस तरह का पवित्र प्रस्ताव भी आलोचना से न बच पाया और इस पर अनेक संशोधन पेश किये गये हैं।"[16] इसके अतिरिक्त मुस्लिम लीग वाले प्रश्न और उस कारण उत्पन्न हो सकने वाले व्यवधान की शंका को संबोधित करते हुए श्री सिन्हा ने कहा कि – "मैं यह नहीं समझ पाता कि आखिर यह प्रस्ताव उनके भविष्य में यहां आने में कैसे रुकावट डालता है।...इस प्रस्ताव में कोई ऐसी चीज न हो जिससे आगे चल कर मुस्लिम लीगी मित्रों के शामिल होने में कोई रुकावट पेश हो।"[17] इसके अतिरिक्त श्री सिन्हा ने भविष्य में भारत को एशियाई क्षेत्र के नेतृत्वकर्ता के रूप में स्थापित करने आवश्यकता पर जोर देते हुए भारत को एक आदर्श राज्य के रूप में स्थापित करने की कामना की और कहा " हम उस तरह का प्रजातंत्र कायम करेंगे जिसकी कल्पना इस प्रस्ताव में आ गई है, चाहे हमारे रास्ते में कितनी ही मुश्किलें क्यों न आयें।"[18]

श्री एम. आर. मसानी – मसानी महोदय मूलतः पारसी समाज से थे परन्तु लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते समय उन्होंने कहा – "यद्यपि मैं भारत के एक बड़े छोटे अल्प-संख्यक सम्प्रदाय का सदस्य हूं पर फिर भी मैं एक भारतीय की हैसियत से ही बोलूंगा।"[19] उनका यह कथन उनके राष्ट्र प्रथम के सन्देश का परिचायक है | अपने वक्तव्य में स्वयं को समाजवादी घोषित करते हुए एवं लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव में समाजवाद के स्वरुप को सन्निहित बताकर इस प्रस्ताव के माध्यम से जनता को मिलने बाले अधिकारों पर ख़ुशी जताते हुए उन्होंने अपने वक्तव्य को समाप्त किया|

श्री एफ. आर. एंथोनी – इनके द्वारा अपने लघु वक्तव्य में लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव की सार्थकता बताते हुए डॉ. जयकर के संशोधन का समर्थन किया एवं कहा कि – "हम सभी यह चाहते हैं कि हमारे दोनों प्रमुख दलों में अधिक-से-अधिक सद्भावना और मतैक्य हो, इसलिये यह संशोधन मंजूर किया जाना चाहिये।"[20]

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी - सर्वप्रथम संविधान निर्मात्री सभा के इस इस कार्य को 'पवित्र कर्तव्य' बताते हुए डॉ. जयकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन को नकारा एवं कहा –"मुझे दुःख है कि मैं इस संशोधन का समर्थन करने में असमर्थ हूं।"[21] 'अल्पसंख्यक' शब्द को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि- 'सिर्फ मुसलमान ही अल्पसंख्यक नहीं हैं। अपितु भारत के विभिन्न प्रान्तों में हिन्दू भी अल्पसंख्या में हैं। अतः अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा का लाभ हर प्रान्त के अल्पसंख्यकों को मिलना चाहिये'|[22]

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर – डॉ. अम्बेडकर नें प्रस्ताव के सिद्धांतों के विषय में कहा कि "यह सिद्धान्त हमारी (भारत की) विचारधारा या दृष्टिकोण में व्याप्त है।"[23] 'उन्होंने प्रस्ताव में अधिकारों के साथ साथ उनके संरक्षण के उपचारों पर भी जोर दिया' |[24] मुस्लिम लीग के मुद्दे पर आशा व्यक्त करते हुए कहा उन्होंने कहा कि- 'हम अवश्य ही एक होंगे'|[25] इसके अतिरिक्त प्रान्तों और केंद्र के संबंधों के विषय में भारतवर्ष के लिए मजबूत केंद्र वाली व्यवस्था का पक्षधर होते हुए उन्होंने कहा कि – "मैं एक दृढ़ और संयुक्त-केन्द्र चाहता हूं उससे भी ज्यादा मजबूत केन्द्र जो सन् 1935 के एक्ट के मुताबिक बना है।"[26] पुनः उन्होंने मुस्लिम लीग पर सहानुभूतिपूर्वक कहा कि 'यद्यपि इस समय लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पास करना सभा के अधिकार क्षेत्र में है तथापि वह नीतिज्ञता का परिचय ना होगा क्योकि यह दलगत शान का नहीं अपितु राष्ट्र के भाग्य का प्रश्न है |'[27] अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए सभा से सभी वर्गों को साथ लेकर चलने का अनुरोध किया |

श्री सरदार उज्जवल सिंह – स्वतंत्रता संग्राम के विलक्षण पलों एवं उसके अहिंसात्मक स्वरुप को प्रसंशाकृत याद करते हुए सरदार उज्जवल सिंह ने प्रस्ताव का समर्थन किया एवं इस प्रस्ताव से आशान्वित होते हुए उन्होंने कहा कि- "हो सकता है कि प्रस्ताव की वाक्य-रचना को लेकर अथवा कहीं-कहीं इसके बहुत संक्षिप्त होने पर कुछ मतभेद हो पर कुल मिलाकर प्रस्ताव भारतीय जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति है।"[28] सिख प्रतिनिधि के रूप में सिक्खों के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान को याद करते हुए उन्होंने 'स्वतंत्रता समर में सिख समुदाय के योगदान और कुर्बनियों को याद किया'[29] अंततः सभा से सावधानी से एवं दृढ़संकल्पित होकर कार्य करने के अनुरोध के साथ अपना वक्तव्य समाप्त किया |

सेठ गोविन्ददास – इस तथ्य पर जोर देते हुए कि मैं अपनी बात राष्ट्रीय भाषा में ही कहूँगा |[3.] सेठ गोविन्ददास जी नें लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन एवं उस पर डॉ. जयकार द्वारा प्रस्तावित संशोधन का विरोध किया | महात्मा गांधी के अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए एवं ब्रिटिश मंसूबों को सख्त भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने कहा कि – " हम युद्ध नहीं चाहते बल्कि शान्ति चाहते हैं, न तो हम मुसलमानों से लड़ना चाहते हैं और न ब्रिटिश गवर्नमेंट से, लेकिन यदि ब्रिटिश हुकूमत मुसलमानों को शिखंडी बनाकर हमसे लड़ाना चाहती है तो हम भीष्म पितामह की तरह इसलिए शस्त्र नहीं रख देंगे कि हमारे सामने शिखंडी खड़ा किया गया है |... यदि वे साथ आना चाहते हैं तो ठीक नहीं तो हम इसके लिए काम नहीं रोकेंगे।"[31] अपने वक्तव्य के समाप्तांश में उन्होंने सभा से अनुरोध किया कि इस प्रस्ताव को प्रस्ताव नहीं अपितु प्रतिज्ञा समझकर पास करें तथा इस तरह से आगे बढ़ें जिस तरह से एक स्वतंत्र देश आगे बढ़ता है |

माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकोल्स राय- निकोल्स राय महोदय द्वारा न केवल लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया गया अपितु पूर्ण आत्मबल से सभा को विश्वास दिलाया गया कि "मैं समझता हूं कि हिन्दुस्तान के किसी भी कोने में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो इस प्रकार के उद्देश्य के विरूद्ध हो।"[32] उन दिनों की ब्रिटिश लार्ड्स सभा में वाइकाउंट साइमन के भारत के संविधान निर्मात्री सभा के विधान निर्माण को 'हिन्दुराज' की संज्ञा पर विरोध दर्ज कराते हुए अपने वक्तव्य में जोर देकर कहा "जो लोग यहां सम्मिलित हुए हैं वे -चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई हों या किसी दूसरे धर्म के अनुयायी- एक ऐसा विधान बनायें, जो लोकतंत्रात्मक हो, जिसमें हर एक के प्रति न्याय हो तो मेरी समझ में नहीं आता कि वह विधान 'हिन्दू राज' का विधान क्यों कहा जाये।"[33] और अंततः महात्मा गाँधी की

शिक्षाओं का जिक्र करते हुए ईश्वर से प्रार्थना की कि इस विधान निर्माण कार्य की समस्त रुकावटें दूर हों व हम जो विधान बनायें वह सारे देश के लिए कल्याणकारी हो |

श्री आर. के. सिधवा- सिधवा महोदय नें लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया | केंद्र राज्य सम्बन्ध एवं प्रान्तों के सीमांकन पर विचार रखते हुए उन्होंने एक शक्तिशाली केंद्र सरकार का पक्षधर होना चाहा एवं प्रान्तों के भी तत्कालीन बेमेल निर्माण के स्थान पर उनके उचित सीमांकन की वकालत की |[34] उन दिनों की कॉमन्स सभा और लार्ड्स सभा के विसंगतपूर्ण भाषणों से अल्पसंख्यकों को सावधान करते हुए ब्रिटिशर्स के इस कृत्य को ढोंगमात्र एवं 'संप्रादायिक कलह का भय खड़ा करने बाला'[35] बताया | श्री सिधवा अल्पसंख्यक समुदाय 'पारसी' के सदस्य थे, भारत की सहिष्णुता एवं सबको साथ लेकर चलने व सबको आश्रय देने की नीति तथा इस सम्बन्ध में पूर्व उक्त पुरुषोत्तमदास टंडन के भारत सम्बन्धी उदारता के कथन की प्रतिपुष्टि करते हुए कहा कि-" पूर्वकाल में इस देश में जो कोई भी आया उसका स्वागत किया गया। 130. वर्ष पूर्व, जैसा कि इतिहास बतलाता है, जब हम ईरान से निकाल दिये गये और तीन महीने तक समुद्र में भ्रमण करते रहे, तो सिवाय गुजरात में संजान के जधवा राना के हमें और किसी ने शरण नहीं दी। हम सब उनके कृतज्ञ हैं।...मैं सिर्फ यह दिखाना चाहता हूं कि बहुसंख्यक जाति ने हमको कभी नहीं भुलाया और हम भी अपना योग देने में पीछे नहीं रहे।"[36] इसके अतिरिक्त उन्होंने संविधान सभा में एंग्लोइंडियन सदस्यों को संविधान निर्मात्री सभा में प्रतिनिधित्व की स्वीकार्यता को भी भारत की अल्पसंख्यकों के प्रति समानुभूति की भावना का प्रदर्शन बताया और अंततः मुस्लिमों के स्वघोषित हितचिंतकों को हिदायत देकर व विधान बनाने के अपने दृढ़संकल्प की पुनरावृत्ति कर अपने वक्तव्य को समाप्त किया |

श्री विश्वनाथ दास – श्री दास द्वारा लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन करते हुए उसमे प्रदत्त व्यवस्थाओं के प्रति विश्वास प्रकट किया साथ ही प्रस्ताव सम्वन्धी अम्बेडकर साहब के एक तकनीकि प्रश्न का सारगर्भित उत्तर दिया | इसके अतिरिक्त तत्कालीन समय में ब्रिटिश संसद द्वारा भारत की संविधान सभा को बहुसंख्यक हित समर्थक बताकर किये जा रहे दुष्प्रचार का भी श्री दास द्वारा प्रतिउत्तर देते हुए कहा गया कि " श्रीमान्, इस महान असेम्बली में केवल बहुसंख्यक हिन्दुओं के प्रांतों के हिन्दुओं के ही प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि उन अल्पसंख्यक हिन्दुओं के भी प्रतिनिधि हैं जो ऐसे प्रांतों में रहते हैं, जहां मुसलमानों का बहुमत है। यहां परिगणित जातियों, ईसाइयों, सिक्खों, पारसियों, ऐंग्लो-इंडियनों और कबाइली और अंशतः प्रथक क्षेत्रों के भी प्रतिनिधि हैं। हमारे बीच में महान मुस्लिम जाति के भी प्रतिनिधि हैं, सिवाय इसके कि यहां मुस्लिम लीग के नेता नहीं हैं। इस दशा में यह बहुत ही अनुचित है और बड़े दुर्भाग्य की बात है कि यह महान असेम्बली, जिसमें कि महान भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं, सवर्ण हिन्दुओं की सभा कही जाये और विशेषतः यह कि ब्रिटिश पार्लियामेंट को वैदेशिक प्रचार का मंच बनाया जाये।"[37] और अंततः जिन्ना महोदय को सद्बुद्धि प्राप्ति की आशा करते हुए उन्होंने अपना वक्तव्य समाप्त किया |

माननीय पंडित हृदयनाथ कुंजरू- पंडित जी द्वारा अपने वक्तव्य का आरम्भ डॉ. जयकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन प्रस्ताव पर स्पष्टीकरण से प्रारंभ हुआ, उन्होंने कहा इस संशोधन का उद्देशय सभा के काम में बाधा डालना नहीं अपितु उसको सहूलियत प्रदान करना है ताकि हमारा कार्य निश्चित ही सफलता की ओर अग्रसर होवे | मुस्लिम लीग – ब्रिटिश गठजोड़ द्वारा इस संविधान निर्मात्री सभा को विफल कर देने की साजिश की भी भर्त्सना करते हुए पंडित जी ने कहा कि- "इस असेम्बली की बैठक पूर्वनिश्चित तिथि के अनुसार हो, हमने एक बड़ी मंजिल तय कर ली है।"[38] साथ

ही मुस्लिम लीग को उनके हितसाधन की आशा देते हुए कहा कि "हम उनकी (मुस्लिम लीग) सभी उचित मांगों पर विचार करने के लिये तैयार हैं लेकिन हम किसी भी सूरत में इस पर राजी नहीं हो सकते कि वह इस असेम्बली के भाग्य का निर्णय करे। "[39]

माननीय दीवान बहादुर सर एन. गोपालस्वामी आयंगर – आयंगर महोदय द्वारा लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का पुरजोर समर्थन करते हुए इस पर वाद विवाद को समाप्त किये जाने का अनुरोध किया गया और उन्होंने कहा "हमने इस समय एक महान कार्य का बीड़ा उठाया है और यह आवश्यक है कि हम अपने देश को और संसार को यह समझा दें कि हम वास्तव में कुछ काम कर दिखाना चाहते हैं।"[4] इसके अलावा उन्होंने अपने वक्तव्य में मुस्लिम लीग और अभी तक इस सभा में शामिल ना हो पाए देशी रियासतों की गैरमौजूदगी पर होने वाली तकनीकी समस्या और उसके सरल निदान को भी विस्तृत रूप में बताया जिसको दिनांक 18 दिसम्बर 1946 के दिन की वाद विवाद की रिपोर्ट में सम्यकता से पढ़ा जा सकता है |

श्री सोमनाथ लाहिरी – श्री सोमनाथ जी द्वारा डॉ. जयकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन पर कटाक्ष करते हुए कहा गया कि "डॉ. जयकर राजाओं की प्रतीक्षा करना चाहते हैं कि वे आवें और हमारी भावी स्वतंत्रता का रूप बिगाड़ दें।"[41] इसके अतिरिक्त मुस्लिम लीग के लिए एक अलग आधार पर उन्होंने कहा कि "लेकिन मुझे मुस्लिम लीग के यहां न होने पर खेद नहीं है।"[42] अपने सम्पूर्ण वक्तव्य में उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों व उनकी कुत्सित नीयत की जमकर आलोचना की इसी सम्बन्ध में उन्होंने अपने वक्तव्य की अंतिम पंक्तिओं में कहा "देखिये यदि आप (ब्रिटिश सत्ता) यह सोचते हैं कि विभाजन आपकी प्रतीक्षा कर रहा है, आप त्रुटि करते हैं। हम अखंड भारत के लिए एक विनधा लागू करना चाहते हैं और उसमें विभाजन के लिए स्थान नहीं है।"[43]

श्रीमती हंसा मेहता – लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन करने के साथ ही श्रीमती मेहता ने स्त्रियों के लिए अवसर समानता उत्पन्न करने पर जोर दिया, उन्होंने कहा बिना स्त्री के सहयोग के समाज अधिक अग्रसर नहीं रह सकता एवं "स्त्री की उन्नति करने में पुरुष केवल अपनी ही उन्नति नहीं करता, वरन् समस्त जाति की उन्नति करता है।"[44] संविधान लागू होने के 75 वर्ष उपरांत वर्तमान की विधान निर्मात्री सभा ने 106 वा संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत कर श्रीमती मेहता के विचार को उचित सम्मान देकर ना केवल महिला समभाव की उस प्रतिज्ञा को पूर्ण किया है अपितु तत्कालीन प्रस्ताव में अंकित उद्देश्यों को क्रियात्मक स्वरुप प्रदान किया है |

श्री पी. आर. ठाकुर – इनके द्वारा लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन कुछ इस प्रकार किया गया – "भारत की जनता के हृदय में स्वतंत्रता की आशाओं को प्रसारित करने वाला यह सबसे उत्तम अधिकार-पत्र है।"[45] महात्मा गाँधी व उनके हरिजन पत्र के विचारों के हवाले से उन्होंने दलित वर्गों के हित संरक्षण हेतु विशेष प्रवंधों की वकालत की | अपने क्षेत्र बंगाल पर, मुस्लिम लीग द्वारा प्रायोजित पाकिस्तान सम्मिलन के खतरों वाले बादल की छठा को छिन्न भिन्न करते हुए उन्होंने सख्त सन्देश दिया- "मैं बंगाल का हूं, ...हम मुस्लिम लीग के, अपने प्यारे बंगाल को हमसे छीनने और पाकिस्तान में मिला देने के, किसी भी दावे को अस्वीकार करते हैं।"[46] अपने वक्तव्य का समापन करते हुए भारत की स्वतंत्रता और विधान निर्माण प्रक्रिया के विषय में उन्होंने कहा "संसार में कोई भी शक्ति नहीं है जो इसे रोक सके |"[47]

दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर- अय्यर महोदय नें अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने न केवल लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया अपितु डॉ. जयकर द्वारा संबोधित विषयों को तीन प्रमुख भागों में तोड़कर उनका उचित समाधान बताते हुए अंत में डॉ. जयकर से अपने संशोधन को बापस लेने पर भी विचार करने को कहा | प्रस्ताव के विषय में उन्होंने कहा –" प्रस्ताव में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिस पर कि मुसलमान या रियासतें यदि सम्मिलित होने का निश्चय करती हैं, तो अपवाद कर सकें |"[48]

श्री जयपाल सिंह - सभा में आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए श्री सिंह ने कहा –"तीन करोड़ से अधिक आदिवासियों की ओर से मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं... |"[49] सिंध की तराई की सभ्यता का परिचायक, आदिवासियों की लम्बे समय से चली आ रही स्वशासन प्रणाली का हर्षित उद्घोष करते हुए उन्होंने कहा–" यह प्रस्ताव आदिवासियों को जनतंत्र शासन व्यवस्था सिखलाने के लिए नहीं है। आप जंगली कौमों को जनतंत्र शासन व्यवस्था नहीं सिखा सकते हैं, आपको जनतंत्रात्मक प्रयोग उनसे सीखने होंगे। पृथ्वी पर वे सर्वोच्च कोटि के जनतंत्रात्मक व्यक्ति हैं |"[5.] स्वयं को अल्पसंख्यक नहीं मानने पर उन्होंने जोर देकर कहा कि "हम किसी विशेष रक्षा की मांग नहीं रखते हैं। हम चाहते हैं कि अन्य भारतीय व्यक्ति के समान हमसे भी व्यवहार किया जाये |"[51] इसके अतिरिक्त 3 करोड़ आदिवासिओं के 6 प्रतिनिधि सदन में होने के बाबजूद भी उनको मंत्रिप्रतिनिधि मंडल में स्थान न देने के कारण कांग्रेस पर नीति-रीति भिन्नता का आक्षेप लगाकर सभा के समक्ष प्रश्नगत स्वरुप में उन्होंने कहा –"क्या तीन करोड़ से अधिक व्यक्तियों का पूर्णतया विस्मरण कर मंत्रिप्रतिनिधि मंडल ने हमारे साथ लापरवाही का बर्ताव नहीं किया है ?"[52] और अंततः उन्होंने कहा – "आओ, हम साथ-साथ बैठकर, साथ-साथ काम कर, साथ ही साथ लड़ें। तभी हमें वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त होगी।"[53]

श्री देवीप्रसाद खेतान – व्यापारिक दल के प्रतिनिधि के रूप में श्री खेतान द्वारा पंडित नेहरु द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन तथा डॉ. जयकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन प्रस्ताव पर विरोध दर्ज कराया गया | अपने वक्तव्य में श्री खेतान नें कहा कि सभा द्वारा विविध विषयों पर विधान निर्माण हेतु विभिन्न समितियों का होना, विधायन के लिए प्रभावी व समीचीन होगा | इसके अतिरिक्त उन्होंने जिन्ना महोदय को अनावश्यक 'हिन्दू फोबिया' से ग्रसित बताया |[54] एवं उनकी कुत्सित आकांक्षाओं को कटघरे में खड़े करते हुए कहा कि "हम अनेकों बार मिस्टर जिन्ना से मिले। क्या हम कभी उनके हृदय को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये सच्चाई से और हमसे ईमानदारी से मिलने के लिये पिघला सके ?"[55] अर्थात सभा के विभिन्न सदस्यों द्वारा उनको शामिल करने के प्रयास सदा ही एकतरफा प्रयास होने के कारण असफल साबित हुए | अंत में उन्होंने सभा से अनुरोध किया कि हम सभी समय व्यर्थ ना करते हुए अपने इस पवित्र कार्य की ओर अग्रसर हो|

श्री डम्बर सिंह गुरंग – गोरखा समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में श्री गुरंग द्वारा लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया गया | 'हम देखें और प्रतीक्षा करें'(लीग इत्यादि की) की नीति को सदन की दुर्बलता बताकर उन्होंने डॉ. जयकर व डॉ. अम्बेडकर को इसका प्रतिपादक बताया और हास्यस्पद कटाक्ष करते हुए कहा कि "सौभाग्य से ये डॉक्टर औषधेपचार के डॉक्टर नहीं हैं। अन्यथा ऑपरेशन में देर कर ये रोगी को मार डालते।"[56] इसके अतिरिक्त गुरखों की लम्बे समय से चली आ रही उपेक्षा से एवं भविष्य में ऐसा न होने की उम्मीद को भी उन्होंने सभा के समक्ष रखा | अपने वक्तव्य के अंतिम शब्दों में उन्होंने कहा – "अन्त में श्रीमान् जी, मैं एक शब्द और कहूंगा। यदि मिस्टर जिन्ना अपने आपको भारतीय समझते हैं, तो मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे भारतवर्ष में आयें और यहां आकर अपने मतभेदों को तय करें।

क्योंकि यह हमारा घरेलू झगड़ा है। वे क्यों उन लोगों की सहायता खोजते हैं, जिन्होंने कि शताब्दियों तक हमें दासता में रखा है? मैं एक विदेशी के पाखंडपूर्ण दुलार से भाई की ठोकर को अधिक हितकर समझूंगा।...हम अखंड भारत के समर्थक हैं।...गुरखे उनके साथ लड़ेंगे, जो अखंड भारत चाहते हैं और उनका विरोध करेंगे जो भारत का विभाजन चाहते हैं।"[57]

डॉ. सर हरीसिंह गौड़- डॉ. गौड़ द्वारा 4 प्रमुख विषयों को रखा गया | इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजों के दोहरे चरित्र से लीग को सावधान करते हुए एवं अमेरिका का उदाहरण देते हुए अखंड भारत में ही मुसलमानों के हित को सुरक्षित बताया | अपने इस कार्य में मिलने वाली सफलता की आशा के साथ उन्होंने अपना वक्तव्य समाप्त किया |

श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन – महात्मा गाँधी को याद कर उनसे प्रेरणा लेते हुए इन्होने प्रस्ताव का समर्थन किया| साथ ही उन्होंने कहा "संविधान सभा केवल संविधान ही नहीं बनती, वरन जनता को जीवन का नया स्वरुप भी देती है |"[58] अलगाववाद को राष्ट्रीयता को कमजोर करने वाला कारक बताया तथा कम्युनिस्टों को विभेदक बता उनसे सावधान होंने हेतु सभा को चेतावनी भी दी |

सर एस. राधाकृष्णन- दूसरे चरण की बहस को शुरू करते हुए राधाकृष्णन जी द्वारा दार्शनिक भूमिका में सर्वप्रथम संविधान के लक्ष्यों को स्पष्ट किया गया | बिना नाम लिए ही विभाजनकारी लोगों को उन्होंने सभा के माध्यम से खरी खरी सुनायीं | भारत की महान सांस्कृतिक व गणतंत्रात्मक परम्परा को बताते हुए उन्होंने साक्ष्यात्मक रूप से पाणिनी, मेगस्थनीज, कौटिल्य व महात्मा बुद्ध काल का उल्लेख किया |[59] डॉ. राधाकृष्णन द्वारा लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव को 'लोगों से एक प्रतिज्ञा और सभ्य संसार से एक संधि' बताया गया और सभा से इसके आलोक में विधान बनाने के की ओर अग्रसर होने को कहा |

श्री एन. वी. गाडगिल- गाडगिल महोदय द्वारा न केवल लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव का प्रबल समर्थन किया गया अपितु अन्य विषयों यथा – ब्रिटिश धूर्तता, अल्पसंख्यक मुद्दों व भारत की एकता अखंडता पर भी विस्तृत व्याख्यान दिया गया | अंततः स्वतंत्र के पवित्र उद्देश्य की आवश्यकता को दोहराते हुए उन्होंने कहा - "काकोपि जीवित चिरायः बालिमथा भुकते |"[6.]

माननीया विजयलक्ष्मी पंडित – 1937 में उत्तरप्रदेश विधान सभा के माध्यम से, अपनी संविधान सभा बनवाने मांग को याद करते हुए कहा –' 1. वर्षों बाद इसका पूरा होना ऐतिहासिक है'[61] और अंततः उन्होंने कहा – 'सभा इस प्रस्ताव को पास कर दिखा दें कि उनका प्राचीन देश भूतकालीन आदर्शों और परम्पराओं का पालन कर सकता है'|[62]

इन सब के अलावा इसी दिन (2. जनवरी 1947) को ही अन्य सदस्य यथा – प्रो. एन. जी. रंगा , डॉ. पी. के. सेन, श्री एस. नागथा, श्री जगतनारायण लाल, श्री अलगूराय शास्त्री नें भी उपरोक्त संबोधित विषयों पर अपने विचार रखे जिनको विस्तृत रूप में दिनांक 2. जनवरी 1947 के वाद विवाद की रिपोर्ट में देखा जा सकता है | इसके अलावा प्रस्ताव पर बहस को अंतिम रूप देते हुए 21 जनवरी 1947 को भी कई सदस्यों यथा- श्री के.माधवन मेनन, श्री बी. दास, देवेन्द्र नाथ सामंत, जेरोम डिसूजा, श्री खांडेकर, श्री धुलेकर, श्री पातस्कर, एच.एस. प्रेटर नें भी लक्ष्य प्रस्ताव पर अपने विचार रखे | इसके अतिरिक्त अपने प्रस्ताव रखे जाने के एक माह से अधिक व्यतीत होने पर भी मुस्लिम लीग के ना शामिल होने पर आशातीत होते हुए डॉ. जयकर ने अपने संशोधन प्रस्ताव को वापस लेते हुए कहा कि- "मैं अपने संशोधन को और आगे नहीं बढ़ाना चाहता"|[63] इनके बाद दो अन्य सदस्यों सी.एम. पुनाका व श्री विश्वम्भरदयाल

त्रिपाठी ने भी लक्ष्य प्रस्ताव को अपना समर्थन दिया | इस प्रकार लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर नेहरु जी के अतिरिक्त पहले चरण में 24 व दूसरे चरण में कुल 17 सदस्य बोले अर्थात लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर कुल 42 सदस्यों नें अपने विचार रखे |[64]

लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर पंडित जवाहर लाल नेहरु का समापन वक्तव्य -

22 जनवरी 1947 के ऐतिहासिक दिन पंडित नेहरु ने सभा का धन्यवाद ज्ञापित करते हुए व मुस्लिम लीग के भविष्य में शामिल हो सकने की गुंजाइश के साथ प्रस्ताव के विषय में कहा – "यह प्रस्ताव भूखों को भोजन तो नहीं देगा, पर उन्हें आज़ादी का, भोजन का और सबको सामान अवसर देने का विश्वास दिलाता है |"[65] उन्होंने प्रस्ताव को सद्भावनापूर्ण बताते हुए भावपूर्ण स्वर में कहा – "हम लोग स्वतंत्र सर्वसत्ता संपन्न भारतीय गणतंत्र के लिए एक संविधान बनायेंगे |"[66] अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा – "ईश्वर करे यह प्रस्ताव फलीभूत हो और वह समय आये जब इस प्रस्ताव के अनुसार यह प्राचीन भूमि विश्व में अपना समुचित और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करे और संसार की शान्ति और मानव-कल्याण की उन्नति के लिए अपना पूरा तथा हार्दिक सहयोग दे|"[67] और अंततः सभी सदस्यों नें खड़े होकर इस प्रस्ताव का समर्थन किया | आज़ादी के इस स्वर्णिम काल में आज के शीर्ष नेतृत्व, भारत को पंडित नेहरु द्वारा कही गयी अंतिम पंक्तिओंनुसार संसार की शान्ति और मानव-कल्याण की उन्नति की दिशा में निरंतर विश्व मित्र के रूप में आगे बढ़ा रहा है |

संदर्भ सूची

1. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, द्वितीय पुनर्मुद्रण (2015) अंक-1, दिनांक 9 दिसम्बर, 1946, पृ. 9
2. ऑस्टिन, ग्रेनविल (2019); भारतीय संविधान: राष्ट्र की आधारशिला (हिंदी अनुवाद – नरेश गोस्वामी), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 29
3. ऑस्टिन, ग्रेनविल (2019); भारतीय संविधान: राष्ट्र की आधारशिला (हिंदी अनुवाद – नरेश गोस्वामी), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 37
4. काश्यप, सुभाष (2013); हमारा संविधान:भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ. 29
5. काश्यप, सुभाष (2013); हमारा संविधान:भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ. 29
6. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, द्वितीय पुनर्मुद्रण (2015) अंक-1, दिनांक 13 दिसम्बर, 1946, पृ. 5
7. तदैव, दिनांक 13 दिसम्बर, 1946, पृ. 14
8. तदैव, दिनांक 13 दिसम्बर, 1946, पृ. 16
9. तदैव, दिनांक 13 दिसम्बर, 1946, पृ. 17
10. तदैव, दिनांक 13 दिसम्बर, 1946, पृ. 21

11. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 5-14
12. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 15
13. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 19
14. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 25
15. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 26
16. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 29
17. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 32-33
18. तदैव, दिनांक 16 दिसम्बर, 1946, पृ. 36
19. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 2
20. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 7
21. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 8
22. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 12
23. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 15
24. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 15
25. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 16
26. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 18
27. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 21
28. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 22
29. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 26
30. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 26
31. तदैव, दिनांक 17 दिसम्बर, 1946, पृ. 27
32. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 6
33. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 11
34. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 13
35. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 13
36. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 14
37. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 20
38. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 23
39. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 24
40. तदैव, दिनांक 18 दिसम्बर, 1946, पृ. 26
41. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 5
42. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 5

43. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 12
44. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 13
45. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 14
46. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 16
47. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 16
48. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 17
49. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 21
50. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 21
51. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 22
52. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 22
53. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 25
54. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 27
55. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 26
56. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 26
57. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 29
58. तदैव, दिनांक 19 दिसम्बर, 1946, पृ. 34
59. तदैव, दिनांक 20 दिसम्बर, 1946, पृ. 7-8
60. तदैव, दिनांक 20 दिसम्बर, 1946, पृ. 15
61. तदैव, दिनांक 20 दिसम्बर, 1946, पृ. 15
62. तदैव, दिनांक 20 दिसम्बर, 1946, पृ. 17
63. तदैव, दिनांक 21 जनवरी, 1947, पृ. 34
64. राय, रामबहादुर (2022); भारतीय संविधान: अनकही कहानी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 93
65. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, द्वितीय पुनर्मुद्रण (2015) अंक-1, दिनांक 22 जनवरी, 1947, पृ. 3
66. तदैव, दिनांक 22 जनवरी, 1947, पृ. 9
67. तदैव, दिनांक 22 जनवरी, 1947, पृ. 13

3

संविधान सभा में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का अंतिम भाषण: कृतज्ञता, आशंकाएं, सुझाव और संकल्प

डॉ० शिव पूजन प्रसाद पाठक

सह-आचार्य, डॉ अंबेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

भारतीय संविधान अपनी यात्रा का 75 वर्ष 26 नवम्बर 2024 को पूरा कर लेगा। यह यात्रा भारतीय जनतंत्र ने संविधान की मान्यताओं के आधार पर तय किया है । भारत कई बाधाओं को पार करते हुए अपने आपको एक संवैधानिक देश के रूप में स्थापति किया है। राष्ट्र के जीवन में यह अवधि बहुत बड़ी नहीं होती है लेकिन फिर भी यह एक समीक्षा का अवसर है। ऐसे में, प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का संविधान सभा में अंतिम भाषण 25 जनवरी 1949 को हुआ है । यह भाषण बहुत ही सार्थक और प्रासंगिक है जिसमें वे संविधान की कार्य प्रणाली, जनतंत्र के सफल होने की पूर्व दशाएं और असफल होने की आशंकाएं बताई हैं। साथ में संविधान सभा की बैठक, विषय, सफल संचालन, सदस्यों के सहयोग, असहयोग और विरोध की भी चर्चा किया है। एक प्रकार से यह भाषण संविधान सभा के लिए धन्यवाद प्रस्ताव है लेकिन इस भाषण में डॉ अम्बेडकर ने संविधान के सफलता और लोकतंत्र के स्थापना का मन्त्र भी देते हैं। साथ में, आशंका व्यक्त करते हैं कि क्या भारत पुन: परतंत्र तो नहीं होगा और भारत अपने गणतंत्र में अपने संविधान की रक्षा कैसे करेगा। इस उद्बोधन की मूल विशेषता यह है कि प्रत्येक वाक्य एक सूत्र वाक्य की तरह हैं।

सबसे पहले डॉ अम्बेडकर उन आरोपों को निराधार बताते हैं जो संविधान सभा पर लगाये जा रहे थे। संविधान सभा पर यह आरोप भी आने लगा था कि इसका कार्यकाल बडा हो रहा है और इसकी लागत बढती जा रही है, जो एक प्रकार से अपव्यय है । इसलिए वह संविधान सभा के कार्यवाही के विषय में बताते हुए कहता हैं कि जैसा विदित है कि संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को समवेत हुई थी और पूरा संविधान दो वर्ष ग्यारह महीने और सत्रह दिन में तैयार हुआ था जिसके लिए संविधान सभा के कुल सत्रह सत्र हुये। इन सत्रह सत्रों में से प्रथम छः सत्र लक्ष्यमूलक संकल्प पारित करने और मूलाधिकार विषयक, संघ संविधान विषयक, संघ की शक्तियों, प्रान्तीय संविधान विषयक, अल्पसंख्यक-वर्ग विषयक तथा अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों विषयक समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार करने में लगे। सातवें, आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें सत्रों में संविधान के प्रारूप पर विचार हुआ। संविधान सभा के इन ग्यारह सत्रों में 165 दिन लगे। इनमें से सभा ने 114 दिन संविधान के पारूप पर विचार करने में लगाये।[i]

पारूप समिति का निर्वाचन संविधान सभा ने 29 अगस्त 1947 को किया था। उसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई। 30 अगस्त से इसकी बैठक 141 दिनों तक हुई और इस समय में वह संविधान का मसौदा तैयार करने में लगी रही।

प्रारूप समिति के कार्य करने के लिये संवैधानिक परामर्शदाता द्वारा तैयार किये गये संविधान के मूल प्रारूप में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थीं। प्रारूप समिति द्वारा जिस रूप में संविधान का प्रथम प्रारूप संविधान सभा में उपस्थित किया गया था उसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। विचार-स्थिति के समाप्त होने पर संविधान के प्रारूप में अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 386 हो गई। अपने अन्तिम रूप में संविधान के मसौदे में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं। संविधान के मसौदे पर भेजे गये कुल संशोधन की संख्या लगभग 7635 थी। इनमें से सभा में पेश किये गये संशोधन की संख्या 2473 थी। इस प्रकार संविधान सभा के कार्यकाल का बचाव करते है।

साम्यवाद और समाजवाद

इसके बाद डॉ अम्बेडकर वैचारिक आलोचना का उत्तर देते हैं। वे कहते हैं कि इस संविधान की अधिकतर निन्दा दो क्षेत्रों से हुई - साम्यवादी पक्ष द्वारा और समाजवादी पक्ष।[ii] वे क्यों इस संविधान की निन्दा करते हैं? क्या इस लिये कि यह संविधान वास्तव में खराब है? मैं यह कहने का साहस करता हूं कि 'नहीं हैं।' साम्यवादी पक्ष श्रमिकों की तानाशाही के सिद्धांत पर आधारित संविधान चाहते हैं। वे संविधान की इस कारण निन्दा करते हैं कि यह संसदीय लोकतंत्रा पर आधारित है। समाजवादी दो बातें चाहते हैं। पहली बात जो वे चाहते हैं वह यह है कि यदि उनके हाथ में शक्ति आ जायेगी तो बिना प्रतिकर दिये सारी निजी सम्पनि के राष्ट्रीयकरण करने या समाजीकरण करने की स्वतन्त्र संविधान द्वारा उन्हें मिलनी चाहिये। दूसरी बात समाजवादी यह चाहते हैं कि संविधान में वर्णित मूलाधिकार निरपेक्ष तथा बिना किसी परिसीमा के होने चाहिये जिससे कि यदि उनके पक्ष के हाथ में शक्ति आ जाये तो उन्हें आलोचना करने के लिये ही नहीं वरन् राज्य को उलटने तक के लिये भी पूरी पूरी आजादी मिल जाये।

डॉ अम्बेडकर संसदीय लोकतंत्र को अचूक नहीं मानते और न ही राजनैतिक लोकतंत्र का आदर्श स्वरूप मानते है। मैं यह नहीं कहता हूं कि बिना प्रतिकर संपत्ति अर्जन न करने का सिद्धांत इतना पवित्र है कि इसकी अवहेलना ही नहीं की जा सकती मैं यह नहीं कहता हूं कि मूलाधिकार कभी निरपेक्ष नहीं हो सकता है और उनपर जो परिसीमा लगाई गई है उनको कभी नहीं उठाया जा सकता है। वे कहते हैं कि इस संविधान में जो सिद्धांत निहित हैं वे इस वर्तमान पीढ़ी के विचार या संविधान सभा के सदस्यों के विचार हैं। संविधान सभा की भी अपनी सीमायें हैं। वे अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति जेफरसन के माध्यम से यह सन्देश देना चाहते हैं कि आने वाली पीढियां इसमें युगानुरूप परिवर्तन कर सकते हैं। केन्द्रीकरण के सन्दर्भ में उनका कहना था कि संविधान में राज्यों के आधिकारों का उल्लेख संविधान में है और आपात स्तिथि में ही इसका अतिक्रमण हो सकता है।

कृतज्ञता-

दूसरे चरण में, डॉ अम्बेडकर का संविधान सभा के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करते है। वे अपने विषय में कहते हैं कि मैं संविधान सभा में अनुसूचित जातियों के स्वार्थों की रक्षा कराने के लिए आया था। इसके अतिरिक्त उनकी और कोई महानतर आकांक्षा नहीं थी। वे कहते है कि "मुझे स्वप्न में भी यह विचार नहीं हुआ था कि मुझे और भी बड़े-बड़े प्रकार्यों को हाथ में लेने के लिये आमंत्रित किया जायेगा। इस कारण जब सभा ने मुझे प्रारूप समिति में निमंत्रित किया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। और जब मुझे प्रारूप समिति का सभापति चुना गया तो मुझे और भी

अधिक आश्चर्य हुआ। प्रारूप समिति में मुझसे बड़े, मुझसे अच्छे और मुझसे अधिक सक्षम व्यक्ति विद्यमान थे जैसे कि मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर। संविधान सभा और प्रारूप समिति का मै कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझ में इतना विश्वास तथा भरोसा किया तथा मुझे अपना एक सामान बनाया और देश की सेवा करने का मुझे यह अवसर दिया"।[iii]

यह धारणा बन गया है कि संविधान के निर्मार्ता डॉ अम्बेडकर ही हैं, लेकिन वे कहते हैं कि इस पक्रिया में सभी लोग ने बहुत सराहनीय प्रयास किया है। वे संविधान निर्माण को सामूहिक कार्य का परिणाम मानते हैं। वे कहते हैं कि जो श्रेय मुझे दिया गया है उसका वास्तव में मैं अधिकारी नहीं हूं। उसके अधिकारी श्री बी.एन. राउ भी हैं जो इस संविधान सभा के संवैधानिक परामर्शदाता हैं और जिन्होंने प्रारूप समिति के विचारार्थ संविधान का एक मोटे रूप में प्रारूप बनाया। इसका श्रेय पारूप समिति के सदस्यों को मिलना चाहिये। वे कहते हैं कि प्रारूप समिति ने 141 दिन तक बैठक की और उनके नये सूत्र खोजने के कौशल के बिना तथा विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति सहनशील तथा विचारपूर्ण सामथ्र्य के बिना यह संविधान बनाने का कार्य इतनी सफ़लतापूर्वक समाप्त न हो पाता। सबसे अधिक श्रेय इस संविधान के मुख्य प्रारूप लेखक श्री एस.एन. मुखर्जी को है। बहुत ही जटिल प्रस्थापनाओं को सरल से सरल तथा स्पष्ट से स्पष्ट वैध भाषा में रखने की उनकी योग्यता की बराबरी कठिनाई से की जा सकती है और न कठिन परिश्रम करने की उनकी सामर्थ्य की तुलना की जा सकती है।

कांग्रेस के विषय में कहते हैं कि कांग्रेस के एक दल रूप में उपस्थिति से सभा कार्यवाहियों में व्यवस्था और अनुशासन दोनों बना रहा। उनका कहना था कि कांग्रेस में अनुशासन के कारण ही प्रारूप समिति यह निश्चित रूप में जानकर कि प्रत्येक अनुच्छेद और प्रत्येक संशोधन का क्या भाग्य होगा इस संविधान का संचालन कर सकीं। संविधान के प्रारूप के शान्त संचालन के लिये कांग्रेस पक्ष को आभार व्यक्त देते हैं।

इस वैचारिक साम्यता के साथ, सभा में वैचारिक भेद थे जिसका नेतृत्व श्री कामत, डा. पी.एस. देशमुख, श्री सिंधवा, प्रो. सक्सेना और पंडित ठाकुरदास भार्गव कर रहें थे। इनके साथ-साथ मुझे प्रो. के.टी. शाह, और पंडित हृदयनाथ कुंजरू का भी उल्लेख करना चाहिए। जो प्रश्न उन्होंने उठाए वे बड़े सिद्धांतपूर्ण थे उनके सुझावों को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार नहीं था इस बात से उनके सुझावों का मूल्य कम नहीं होता और न उनकी इस सेवा में कोई कमी आती है जो उन्होंने इस सभा की कार्यवाहियों को रोचक बनाने में की है। मैं उनका कृतज्ञ हूं।

डॉ अम्बेडकर ने प्रथम राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद को सभा के कार्यवाही संचालन के लिए आभार व्यक्त करते हैं और उनकी उदारता और सदस्यों के साथ सहहृदयता को याद करते हैं। उनका कहना था कि कई ऐसे क्षण आये "जबकि केवल पारिभाषिक आधार पर प्रारूप समिति के संशोधनों को रोकने का प्रयास किया गया। मेरे लिये वे बड़े चिन्तापूर्ण क्षण थे। मैं आपका इस बात के लिये बड़ा कृतज्ञ हूं कि आपने विधिवाद की संविधान निर्माण कार्य पर विजय नहीं होने दी।"[iv] डॉ अम्बेक्दर दो व्यकित की भूरि भूरि प्रसंशा करते हैं। इस संविधान की जितनी भी प्रतिरक्षा की जा सकती थी उतनी प्रतिरक्षा मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्येर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने की है।

आशंकाएं-1 : क्या यह स्वतंत्रता स्थायी होगी ?

यह सहज आशंका भारतीय और पाश्चात्य जगत में था कि स्वतंत्र भारत कब तक स्वतंत्र रहेगा। यह प्रश्न अम्बेडकर के समक्ष भी था।[v] प्रारूप समिति के अध्यक्ष होने के कारण इसका उत्तर भी जानना आवश्यक था। इसलिए डॉ अम्बेडकर कहते हैं कि 26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र देश होगा उसकी स्वाधीनता का क्या परिणाम होगा? क्या वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेगा या उसको फिर खो देगा? मेरे मन में सर्वप्रथम यह विचार आता है। यह बात नहीं कि भारत कभी स्वाधीन न रहा हो। बात यह है कि एक बार वह पाई हुई स्वाधीनता को खो चुका है। क्या वह दुबारा भी उसे खो देगा? यही वह विचार है जिसके विषय में भविष्य के प्रति डॉ अम्बेडकर बहुत चिन्तित हैं। कहते हैं कि जो तथ्य मुझे बहुत परेशान करता है वह यह है कि भारत ने पहले एक बार अपनी स्वाधीनता खोई ही नहीं वरन् अपने ही कुछ लोगों की कृतघनता तथा फूट के कारण वह स्वाधीनता आई गई हुई। एक प्रकार से भारत में देशघात का इतिहास रहा है यहां मैं अपना भाषण समाप्त कर देता। पर मेरा मस्तिष्क अपने देश के भविष्य विषयक विचारों से इतना परिपूर्ण है कि मैं यह अनुभव करता हूं कि इस अवसर पर इस विषय पर मैं अपने विचारों को व्यक्त करूं। यह भय डॉ अम्बेडकर का तथ्यों से प्रमाणित होता है। वे इतिहास के दर्पण से कुछ दृष्टान्त लेते है और लिखते हैं कि मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध पर आक्रमण करते समय दाहर राजा के सेनापति ने मुहम्मद बिन कासिम के अभिकर्नाओं से घूंस ले ली और अपने राजा की ओर से युद्ध करने से मना कर दिया। वह जयचन्द था जिसने मुहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने और पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये निमंत्रण दिया और अपनी तथा सोलंकी राजाओं की सहायता का बचन दिया। जब शिवाजी हिन्दुओं की मुक्ति के लिये युद्ध कर रहा था उस समय अन्य मराठा सरदार और राजपूत राजा मुगल बादशाओं की ओर से युद्ध कर रहे थे। 1857 में जब भारत के एक विशाल भाग ने अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता के संग्राम की घोषणा की तो मूक दर्शकों की भांति सिख खड़े खड़े तमाशा देखते रहे।

पहली आशंका और चिंता का कारण यही है कि क्या इसी इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? इस तथ्य के कारण, कि जाति और मत मतान्तर के रूप में हमारे प्राचीन दुश्मनों के साथ साथ हम विरोधी राजनैतिक मत मतान्तर के आधार पर कई राजनैतिक पक्ष बनाते चले जा रहे हैं, यह चिन्ता और भी अधिक उग्ररूप धारण कर लेती है। डॉ अम्बेडकर के प्रश्न और भी हैं। वे पूछते हैं कि क्या भारतीय मत मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानेंगे या देश को मत मतान्तरों से श्रेष्ठ मानेंगे? मैं इस बात को नहीं मानता हूं। पर यह सत्य है कि यदि ये पक्ष मत मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानते हैं तो हमारी स्वाधीनता फिर संकट में पड़ जायेगी और संभवतः सदैव के लिए हाथ से जाती रहेगी। इस संकट से हम सबको दृढ होकर रक्षा करनी चाहिये। वे आह्वान भी करते हैं कि 'अपने खून की अन्तिम बूंदों से अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए हमें दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिये।'

आशंका-2 संविधान का भविष्य क्या होगा ?

दूसरी आशंका डॉ अम्बेकर का भारतीय संविधान के भविष्य को लेकर है। वे कहते हैं कि जब भारत 26 जनवरी 1950 को गणतंत्र हो जायेगा तो उसके इस लोकतन्त्रात्मक संविधान का क्या भविष्य होगा? अर्थात क्या वह इसकी रक्षा कर सकेगा या इसको फिर खो देगा। यह दूसरा विचार है जो उनके मन में उत्पन्न होता है और पहले विचार की भांति व्यथित करता है।[vi] डॉ अम्बेडकर मानते हैं कि भारत में लोकतंत्र और गणतंत्र दोनों था। भारत गणराज्यों से सुसज्जित था जहाँ राजा थे वहां भी या तो वे निर्वाचित होते थे या उनके अधिकार सीमित रहते थे। उनको परमाधिकार

प्राप्त न ही थे। आगे कहते हैं कि भारत संसद या संसदीय प्रक्रिया से परिचित था। बौद्ध भिक्षु-संघ के अध्ययन से विदित होता है कि "केवल संसद ही नहीं थी संघ संसद के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते थे वरन् आधुनिक युग में संसदीय प्रक्रिया के जितने भी नियम हैं उन सबसे ये संघ परिचित थे। उनके यहां बैठने के प्रबंध सम्बन्धी नियम, प्रस्तावों, संकल्पों, गणपूर्ति, उन्मोधक, मतगणना, शलाका द्वारा मतदान, अविश्वास-प्रस्ताव, व्यवस्था, पहले निर्णय हुए अभियोग इत्यादि सम्बन्धी नियम थे।" यद्यपि बुद्ध इन नियमों को संघ की बैठकों में लागू करते थे, पर उन्होंने इन नियमों को देश की तत्कालीन राजनैतिक सभाओं में प्रचलित नियमों में से लिया होगा।

आशंका-3

अब एक प्रश्न था कि संविधान की गुणवत्ता क्या है ? डॉ अम्बेडकर संविधान और राजनीतिक संस्कृति से जोड़ते हैं और कहते हैं कि "मैं समझता हूं कि संविधान चाहे जितना भी अच्छा हो यदि उसे कार्यान्वित करने वाले लोग बुरे हैं तो वह निस्संदेह बुरा हो जाता है। संविधान का क्रियाकरण पूर्णतया संविधान के प्रकार पर निर्भर नहीं करता है।" संविधान तो एक मात्र व्यवस्था हैं जिसमे सरकार के विभिन्न अंगों के सुचारू रूप से संचालन के लिए निर्मित किया गया। संविधान का भविष्य इस बात पर निर्भर करता हैं कि सामान्य नागरिक किसे रूप में इस राजनैतिक प्रक्रिया में भागीदार बनता है। उन्ही के शब्दों में 'राज्य के इन अंगों का क्रियाकरण जिन पर निर्भर करता है वह जनता और उसके द्वारा स्थापित किये गये राजनैतिक पक्ष है जो उसकी इच्छा और नीति पालन करने के साधन होते हैं।' यह कौन कह सकता है कि भारत की जनता और उसके पक्ष किस प्रकार का व्यवहार करेंगे? क्या वे अपने प्रयोजनों को सिद्ध करने में संविधानिक साधनों को काम में लेंगे या वे क्रान्तिकारी साधनों को अधिमान देंगे? यदि वे क्रान्तिकारी साधन अपनाते हैं तो चाहे संविधान कितना ही अच्छा हो यह कहने के लिये किसी देवदूत की आवश्यकता नहीं है कि वह असफल होगा। अतः इस संविधान पर बिना इस निर्देश के कि जनता और पक्ष किस प्रकार की प्रवृत्ति दिखायेंगे कोई निर्णय देना व्यर्थ है।[vii]

डॉ अम्बेडकर कहते हैं कि भारत से यह लोकतंत्रात्मक व्यवस्था मिट गई। अब एक नये संविधान के माध्यम से पुन: स्थापित किया जा रहा है। अब प्रश्न है कि क्या हम फिर इस व्यवस्था को मिटा देगा? इसका उत्तर केवल भारत की जनता ही दे सकते है। भारत जैसे देश में, जहां लोकतंत्र के एक दीर्घ काल से अप्रयुक्त रहने से यह एक नई सी वस्तु समझी जाती है, संभवतया लोकतन्त्र के स्थान में तानाशाही के होने का संकट वर्तमान है। यह बहुत कुछ संभव है कि यह नवजात लोकतंत्र अपना स्वरूप बनाये रखे पर वास्तव में अपने स्थान में तानाशाही की स्थापना कर दे। यदि कोई दुर्घटना होती है तो दूसरी संभावना के साकार होने की अधिक आशा है।[viii] यह बाबा साहब की तीसरी आशंका और चिंता थी।

सफल लोकतंत्र:

पाश्चत्य विद्वानों ने एक सफल लोकतंत्र के लिए कुछ अनिवार्य दशाओं का उल्लेख किया था। भारत में वे पूर्वशर्ते नहीं थी। इसलिए डॉ अम्बेडकर भी कुछ पूर्व शर्तों को का उल्लेख करते हैं . । वे भारत के सन्दर्भ में लोकतंत्र और संविधान

के सफलता के लिए तीन बात कहते हैं-क्रांति मार्ग को त्यागना, व्यक्ति पूजा से विच्छेदन और राजनीतिक लोकतंत्र का सामाजिक और आर्थिक समाज के साथ समन्वयन।[ix]

भारतीय चिंतन परम्परा में साध्य और साधन के बीच के संबंध पर लगभग सभी विचारकों ने अपनी राय प्रकट की है। लोकतंत्र की स्थापना राज्य का उद्देश्य है और संविधान उसका साधना है। डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि सशक्त व सफल लोकतंत्र के लिए सामाजिक और आर्थिक उद्देशियों की पूर्ति के लिये हम संविधानिक रीतियों को दृढ़ता पूर्वक अपनाना होगा। अर्थात क्रांति के रस्ते को त्यागना होगा। स्वतंत्रता आन्दोलन सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह की रीति का हम परित्याग करें। आर्थिक तथा सामाजिक उदेश्यों की पूर्ति के लिये जब कोई मार्ग न रहे तब तो इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना कुछ रूप में न्यायपूर्ण हो सकता है। पर जब संविधानिक रीतियों का मार्ग खुला हुआ है कि इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना कभी न्यायसंगत नहीं हो सकता है। ये रीतियां अराजकता के सूत्रापात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जितना शीघ्र इनका परित्याग किया जाये उतना ही हमारे लिये अच्छा है।

दूसरी बात जिस पर डॉ. अम्बेडकर ध्यान दिलाते हैं कि व्यक्ति पूजा लोकतन्त्र के लिए अच्छा नहीं होता हैं। उनका कहना था कि किसी भी महान व्यक्तियों के प्रति, जिन्होंने जीवन पर्यन्त देश की सेवा की हो, कृतज्ञ होने में कोई बुराई नहीं है। पर कृतज्ञता की भी सीमा है। भारत में भक्ति या जिसे भक्ति मार्ग या वीर पूजा कहा जाता है उसका भारत की राजनीति में इतना महत्वपूर्ण स्थान है जितना किसी अन्य देश की राजनीति में नहीं है। धर्म में भक्ति आत्म-मोक्ष का मार्ग हो सकता है। पर राजनीति में भक्ति या वीर पूजा पतन तथा अन्ततः तानाशाही का एक निश्चित मार्ग है।

तीसरा, राजनीतिक लोकतंत्र के साथ सामाजिक लोकतंत्र का होना आवश्यक है। राजनैतिक लोकतन्त्र को सामाजिक लोकतंत्रा का रूप भी देना चाहिये। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ जीवन के उस मार्ग से है जो स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व को जीवन केसिद्धांतो के रूप में अभिज्ञात करता है।

डॉ अम्बेडकर का कहना है कि स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व को संयुक्त रूप से ही देखना चाहिए। एक का दूसरे से विच्छेद करना लोकतंत्र के मूल प्रयोजन को ही विपफल करना है। स्वतंत्रता को समता से पृथक नहीं किया जा सकता, समता को स्वतंत्रता से पृथक नहीं किया जा सकता। और न स्वतंत्रता या समता को ही बन्दुत्व से पृथक किया जा सकता है। समता विहीन स्वतंत्रता से कुछ व्यक्तियों की अनेक व्यक्तियों पर प्रभुता का प्रादुर्भाव होगा। स्वतंत्रता विहीन समता व्यक्तिगत उपक्रम का हास करेगा। बंधुत्व के बिना स्वतंत्रता और समता अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते।

डॉ. अम्बेडकर आगाह करते हैं कि भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतया अभाव है। इनमें से एक समता है। सामाजिक स्तर पर हमारे भारत में हमारा एक ऐसा समाज है जो क्रमानुसार निश्चित असमता के सिद्धांत पर आश्रित है जिसका अर्थ कुछ व्यक्तियों की उन्नति और कुछ का पतन है। आर्थिक स्तर पर हमारा एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास अतुल संपत्ति है और कुछ ऐसे हैं जो निरी निर्धनता में जीवन बिता रहे हैं। 26 जनवरी 1950 को हम विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। राजनैतिक जीवन में हम समता का व्यवहार

करेंगे और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में असमता का। राजनीतिक और सामाजिक व् आर्थिक जीवन में एक समन्वय के भाव की आवश्यकता है।

एक दूसरी बात जिसके ओर वे संकेत करते है बह बंधुत्व का भाव है। बंधुत्व का अर्थ समस्त भारतवासियों के मन में सद्भाव से है डॉ अम्बेडकर कहते हैं कि यह वह सिद्धांत है जो सामाजिक जीवन को एकता तथा दृढ़ता प्रदान करता है। बिना बंधुत्व के राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया कठिन है क्योंकि भारत में जातियां हैं। ये जातियां राष्ट्रीयता की विरोधनी है। सर्व प्रथम इस कारण कि ये सामाजिक जीवन में अलगाव प्रस्तुत करती हैं। ये इस कारण भी राष्ट्रीयता की विरोधनी हैं कि परस्पर जातियों में इर्षा और द्वेष उत्पन्न करती हैं। परन्तु यदि हम वास्तव में एक राष्ट्र के रूप में होना चाहते हैं तो हमें इन सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना है। बंधुत्व बिना समता और स्वतंत्रता की जड़ उतनी ही गहरी हो सकेगी जितनी रंग की सतह की जड़ होती है। इसलिए समरस और समतामूलक समाज का निर्माण जितना तीव्र गति से होगा उतना ही अधिक संभवना लोकतंत्र के सशक्त होने को होगी।

संकल्प

डॉ अम्बेडकर का कहना था कि स्वाधीनता हर्ष का विषय है, पर उससे अधिक यह दायित्व भी है। स्वाधीनता के कारण, सफलता और सफलता का दायित्व भी लेना होगा। त्रुटियाँ के लिए किसी अन्य को दोष नहीं दे सकते हैं। जनता जिसमें हमारे देश की जनता भी शामिल है नई विचार धाराओं से प्रभावित हो रही है। जनता द्वारा शासन से वह परेशान होती चली जा रही है। वह जनता के लिये सरकार बनाने के लिये तैयार है और इस बात के प्रति उदासीन है चाहे वह जनता को जनता द्वारा सरकार हो या न हो। यदि हम इस संविधान का रक्षण करना चाहते हैं जिसमें हमने जनता के लिये जनता द्वारा जनता की सरकार के सिद्धांत की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है तो हम इस बात का संकल्प करें कि जो बुराइयां हमारे मार्ग में हैं और जिनके कारण जनता के लिये सरकार को जनता द्वारा सरकार से अधिक पसन्द करती है उन बुराइयों को समझने में विलंभ न करें और उन बुराइयों को दूर करने के उपक्रम में दौर्बल्य न दिखायें। देश की सेवा करने का यही मार्ग है। इससे अच्छे मार्ग से मैं परिचित नहीं हूं।[x]

भारत ने लगभग 75 वर्षों से, बिना किसी रूकावट व अंतराल के अपने संविधान के आधार पर लोकतंत्र से शासित हो रहा है। सत्ता का हस्तांतरण निष्पक्ष, स्वतंत्र और नियति अवधि पर हो रहा है। सभी दलों और विचारों का शासन का अवसर प्राप्त हुआ है। भारत ने उन निरधार आशंकों को दूर कर दिया और स्वराज्य के स्थापना की ओर अग्रसर है। सामाजिक न्याय के पथ पर आर्थिक और सामाजिक समानता की प्रति समर्पित सरकारें हैं। विकसित भारत संविधान के आदर्शों पर प्राप्त करने के लिए उत्सुक है।

(यह लेख डॉ अम्बेडकर का संविधान सभा में 25 जनवरी के भाषण पर आधारित है।)

संदर्भ सूची

1. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, (2015), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4216.
2. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, (2015), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4220
3. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, (2015), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4218
4. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4219
5. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4224
6. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, (2015), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4225
7. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4226
8. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4226
9. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4226-27
10. डॉ बी. आर. अम्बेडकर, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, अंक 11, संख्या -11, पृष्ठ-4229

4

संविधान सभा एवं भारत का समावेशी संविधानवाद

डॉ. अभय प्रसाद सिंह
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, पीजीडीएवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. कृष्ण मुरारी
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, शहीद भगत सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संविधान एक प्रस्तावना के साथ-साथ किसी देश में सरकार की संरचना का खाका होता है। यह किसी समाज के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की भी दृष्टि है। इवो डी. डुचासेक के अनुसार, एक संविधान में अक्सर निम्नलिखित चार तत्व शामिल होते हैं: 1. प्रस्तावना, 2. सरकार की संरचना, 3. अधिकारों का विधेयक, 4. संशोधन प्रक्रिया।[1] प्रस्तावना आम तौर पर संविधान के मूलभूत मूल्यों और लक्ष्यों की घोषणा करती है। सरकार की संरचना उसके विभिन्न अंगों और उनके बीच अंतर्संबंधों की रूपरेखा तैयार करती है। मौलिक अधिकारों का एक चार्टर, अमेरिकी संविधान (1787-1789) से शुरू होकर अब तक हाल के संविधानों की एक नियमित विशेषता बन गया है, हालांकि यह आमतौर पर ब्रिटिश और न्यूजीलैंड के संविधानों के बारे में सच नहीं है, जो किसी भी तरह से अलिखित हैं, और ऑस्ट्रेलियाई संविधान का भी जो लिखित है। कनाडाई संविधान, जो आंशिक रूप से लिखित भी है, 1982 तक इस परंपरा के अनुरूप हो गया जब इसने अधिकारों और स्वतंत्रता के चार्टर को अपनाया। बदलते समय और परिस्थितियों के अनुरूप ढलने के लिए लिखित संविधान में संशोधन सूत्र एक आवश्यक घटक है। मार्क टशनेट कहते हैं कि एक संविधान किसी देश की संपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया को व्यवस्थित और निर्देशित भी करता है।[2] मार्क टशनेट ने संविधान की व्यापक परिभाषा पेश करते हुए इस बात पर जोर दिया है कि संविधान न केवल सरकार की संरचनात्मक रूपरेखा है, बल्कि किसी देश की संपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया को व्यवस्थित और निर्देशित भी करता है।[3]

प्रस्तावना के पाठ का विश्लेषण संविधान से संबंधित कई बिंदुओं को स्पष्ट करता है। पहला, राजनीतिक संप्रभुता का स्रोत भारत के लोगों में स्थित है। बारीकी से जांच करने पर यह सवाल उठता है कि यह कहां तक सच है। भारत में चीन, क्यूबा, दक्षिण कोरिया और कम्बोडिया की तरह राजनीतिक क्रांति नहीं हुई, जहां लोगों ने सत्ता अपने हाथों में ले ली और एक नई सरकार स्थापित करने के लिए पहले से मौजूद सरकार को उखाड़ फेंका। भारत में सत्ता का हस्तांतरण, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के परिणाम स्वरुप, भारत की संविधान सभा को हुआ, जिसने वास्तव में अंतरिम संसद एवं सरकार की भूमिका निभाई। यह भी जोड़ा जा सकता है कि 3 जून 1947 योजना के तहत, भारत में रियासतें, जो तब तक सहायक गठबंधनों की एक श्रृंखला के आधार पर ब्रिटिश क्राउन की सर्वोपरिता के तहत रखी गई थीं, को तीन विकल्प मिले: वे भारत के साथ विलय का विकल्प चुन सकते थे या पाकिस्तान के साथ विलय कर सकते थे या स्वतंत्र रह सकते थे। कांग्रेस ने 3 जून की योजना पर अपनी सहमति दे दी थी जो भारत को दो क्षेत्रों - भारत और

पाकिस्तान में विभाजित करने के बारे में थी। भारत तब ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र और 565 रियासतों का मिश्रण था। रियासतों को दोनों देशों में से किसी एक में शामिल होने या स्वतंत्र रहने के बीच चयन करना था। त्रावणकोर, हैदराबाद, जूनागढ़, भोपाल और कश्मीर जैसी कुछ रियासतें भारत के राज्य में शामिल होने के खिलाफ थीं, जबकि ग्वालियर, बीकानेर, बड़ौदा, पटियाला और अन्य रियासतें सक्रिय रूप से भारत में शामिल हो गईं।[4]भारत में रियासतों के विलय की प्रक्रिया में लौहपुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल की भूमिका निर्णायक रही।

किसी राज्य के प्रभावी कामकाज की सुचारू रूप से गति देने के लिए, शक्ति को सीमित करने के उपाय आवश्यक हैं। संविधानवाद की अवधारणा सरकार की शक्तियों पर ये न्यायोचित सीमाओं का निर्धारण करता है। साथ ही, लोगों को कुछ मौलिक मानवाधिकारों को सुरक्षित करना। संविधानवाद का अर्थ समझना राज्य की प्रकृति से शुरू होता है। संविधानवाद प्रभावी शासन के लिए अपरिहार्य है और यह अधिकार के साथ शक्ति का संतुलन स्थापित करता है।[5] भारत के संविधान का मूल भाग, सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता, कानून का शासन, सकारात्मक कार्रवाई और न्याय के माध्यम से समावेशी संविधानवाद को बढ़ावा देता है।

समावेशी संविधानवाद की पृष्ठभूमि

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 को शुरू हुई। पटना उच्च न्यायालय बार के वरिष्ठ बैरिस्टर सच्चिदानंद सिन्हा, संविधान सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य होने के नाते, सर्वसम्मति से अंतरिम अध्यक्ष चुने गए। एक असाधारण विद्वतापूर्ण उद्घाटन भाषण में, उन्होंने लोकतांत्रिक दुनिया भर में प्रचलित प्रमुख संवैधानिक मॉडलों को रेखांकित किया। उन्होंने सभा की शुरूआत की प्रारंभिक औपचारिकताएं भी निभाईं और नियमित अध्यक्ष के रूप में राजेंद्र प्रसाद के सर्वसम्मति से चुनाव की घोषणा की।

कैबिनेट मिशन योजना को अभी तक औपचारिक रूप से नहीं छोड़ा गया था, और अभी भी यह आशा थी कि मुस्लिम लीग अपने प्रारंभिक इनकार पर फिर से विचार कर सकती है और संविधान सभा में शामिल हो सकती है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता के रूप में, जवाहरलाल नेहरू ने कैबिनेट मिशन योजना के अनुरूप 22 जनवरी, 1947 को उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया। हालाँकि, 3 जून, 1947 को, ब्रिटिश भारत सरकार ने आधिकारिक तौर पर कैबिनेट मिशन योजना को रद्द कर दिया और पाकिस्तान बनाने के लिए भारत के विभाजन की माउंटबेटन योजना की घोषणा की। भारतीय संविधान सभा एक मजबूत संसदीय केंद्र के साथ संसदीय-संघीय संविधान बनाने के लिए आगे बढ़ी। संविधान के निर्माण में गहन विचार-विमर्श को सुविधाजनक बनाने के लिए सर बेनेगल नरसिम्ह राव द्वारा प्रस्तुत प्रथम प्रारूप संविधान दस्तावेज के आधार पर कई समितियों का गठन किया गया। इनमें से, अधिक उल्लेखनीय थे संघ संविधान समिति (अध्यक्ष नेहरू), रियासती राज्य समिति (अध्यक्ष नेहरू), प्रांतीय संविधान समिति (अध्यक्ष वल्लभभाई पटेल), मौलिक अधिकार समिति (अध्यक्ष पटेल), मसौदा समिति (अध्यक्ष भीमराव रामजी अंबेडकर), आदि। सभा के संवैधानिक सलाहकार सर बेनेगल नरसिम्ह राव और विभिन्न समितियों की रिपोर्टों के आधार पर मसौदा समिति ने संविधान का पूरा मसौदा तैयार किया। डॉ. अम्बेडकर ने 4 नवंबर, 1948 को संविधान सभा में बहस के लिए संविधान का मसौदा पेश किया।

संविधान के निर्माण के संदर्भ में दो पहलू हैं जिन पर यहां चर्चा की जानी चाहिए: नेतृत्व की भूमिका और निर्णय लेने की प्रक्रिया। भारत में संविधान निर्माण के अपने निर्णायक अध्ययन में ग्रानविले ऑस्टिन (1966) ने विशेष रूप से

नेहरू, पटेल, राजेंद्र प्रसाद और मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद के 'राजनीतिक कुलीनतंत्र'[6] की भूमिका पर जोर दिया है। ये चारों भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी योद्धा थे। वे तब सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी, अंतरिम कांग्रेस सरकार, संविधान सभा और अंतरिम संसद में महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। विभाजन और मुस्लिम लीग के सदस्यों के जाने के बाद संविधान सभा में कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व और भी अधिक हो गया था। अन्य पार्टियों में, कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी भी संविधान सभा का हिस्सा नहीं थीं क्योंकि उन्होंने इसका बहिष्कार किया था।

राजनीतिक कुलीनतंत्र द्वारा निर्धारित राजनीतिक लाइन के आलोक में, उस दृष्टिकोण को लागू करने और उन्हें संविधान के प्रावधानों में प्रारूपित करने का कार्य सर बेनेगल नरसिम्ह राव, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी, टी.टी. कृष्णामाचारी जैसे प्रमुख कानूनी दिग्गजों पर पड़ा।[7]

ये संविधान सभा के सदस्य अंतरिम सरकार, पार्टी एवं संविधान सभा की विभिन्न समितियों का नेतृत्व कर रहे थे। कुछ नेता संविधान सभा में कई समितियों के अध्यक्ष थे: मुंशी (6), अय्यर और अयंगर (5 प्रत्येक), आजाद, पटेल और सीतारमय्या (4 प्रत्येक), नेहरू, गोविंद वल्लभ पंत और अंबेडकर (3 प्रत्येक), प्रसाद और सिन्हा (2 प्रत्येक)।[8] अगर हम इन ग्यारह में जोड़ दें तो संविधान सभा से नौ अन्य नाम - एम.ए. अय्यंगार, जयरामदास दौलतराम, शंकर राव देव, दुर्गाबाई देशमुख, आचार्य कृपलानी, टी.टी. कृष्णामाचारी, एच.सी. मुकर्जी, सर बेनेगल नरसिम्ह राव और मोहम्मद सादुल्ला - हमें संविधान सभा के बीस सबसे प्रभावशाली सदस्यों का एक पैनल मिलता है। उन्होंने विभिन्न क्षमताओं और पृष्ठभूमियों का प्रतिनिधित्व किया। वे सभी विश्वविद्यालय के स्नातक थे। उनमें से चार - नेहरू, पटेल, अम्बेडकर और आजाद ने विदेशी विश्वविद्यालयों या उनके समकक्ष संस्थानों में अध्ययन किया था। वहाँ बारह वकील या कम से कम कानून की डिग्री धारक थे। वहाँ एक चिकित्सक, दो शिक्षक, तीन उच्च सरकारी अधिकारी और एक व्यापारी था। दो मुसलमानों और एक ईसाई को छोड़कर बाकी सभी हिंदू थे। हिंदुओं में, अंबेडकर एक अनुसूचित जाति के थे, नौ ब्राह्मण थे और अन्य सात अन्य हिंदू उच्च जातियों से संबंधित थे।[9]

उपरोक्त समूह में केवल 50 प्रतिशत व्यक्तियों ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था या भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े थे। किसी समय नौ व्यक्ति कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य रहे थे। उनमें से छह तब या उससे पहले कांग्रेस अध्यक्ष रह चुके थे। 20 में से पांच अपने जीवन में कभी भी कांग्रेस से नहीं जुड़े थे। उनमें से दो वास्तव में कांग्रेस के विरोधी दलों से संबंधित थे - अम्बेडकर (अनुसूचित जाति महासंघ) और सादुल्ला (मुस्लिम लीग)।

संविधान निर्माण की प्रक्रिया में संविधान सभा में कांग्रेस पार्टी और अंतरिम संसद में अंतरिम सरकार में कांग्रेस पार्टी ने कामकाज की ऐसी प्रक्रियाओं का पालन किया जो एक दूसरे से बिल्कुल अलग थीं। दोनों संदर्भों में पार्टी अनुशासन को अलग-अलग समझा जाना चाहिए। अंतरिम संसद में कांग्रेस सदस्य अक्सर पार्टी व्हिप के तहत काम करते थे। हालाँकि, जब वे संविधान सभा की कार्यवाही में शामिल हुए तो उन्हें अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता थी और व्यावहारिक रूप से पार्टी का कोई नियंत्रण नहीं था। संविधान सभा में कांग्रेस पार्टी की बैठकों की अध्यक्षता पार्टी अध्यक्ष द्वारा की जाती थी, जबकि अस्थायी संसद में कांग्रेस पार्टी की बैठकों की अध्यक्षता प्रधान मंत्री या उप प्रधान मंत्री द्वारा की जाती थी। संविधान सभा की बैठकों में कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष ने आम तौर पर आम सहमति नहीं बनने तक किसी निर्णय को मजबूर करने के लिए चर्चा को बंद करने की कोशिश नहीं की।[xi] ऑस्टिन के अनुसार, संविधान

निर्माण के प्रति भारतीय दृष्टिकोण निम्नलिखित विशेषताओं से चिह्नित है: 1) सर्वसम्मति से निर्णय लेना, 2) सांस्कृतिक और सामाजिक विविधताओं के बीच सामंजस्य, और 3) सर्वोत्तम संवैधानिक प्रावधानों और प्रथाओं का चयन विश्व के विभिन्न संविधान और उनका भारत की स्थिति एवं आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकूलन।[11]

सभा ने 9 दिसंबर, 1946 से 26 नवंबर, 1949 तक 2 साल, 11 महीने और 17 दिनों तक संविधान-निर्माण पर विचार-विमर्श किया। यह संभवतः किसी भी अन्य देश में संविधान-निर्माण के लिए समर्पित समय से अधिक था।

समावेशी संविधान सभा

भारतीय संविधान के निर्माण में ब्रिटिश भारत एवं रियासतों के प्रतिनिधियों की समावेशी सहभागिता सुनिश्चित की गई। यदि हम संविधान सभा के सदस्यों की सामाजिक एवं क्षेत्रीय पृष्ठभूमि का आकलन करें तो यह स्पस्ट है कि देश के सभी हिस्सों एवं सामाजिक वर्गों का इस सभा में प्रतिनिधित्व था।[13]

9 दिसंबर 1946 को, भारत की संविधान सभा की पहली बैठक कॉन्स्टिट्यूशन हॉल में हुई, जिसे अब लोकप्रिय रूप से संसद भवन का सेंट्रल हॉल कहा जाता है। 207 सदस्य उपस्थित थे जिन्होंने रजिस्टर पर हस्ताक्षर कर अपना परिचय पत्र प्रस्तुत किया। धर्म के आधार पर देखें तो हिन्दू सदस्य-147, मुस्लिम सदस्य-23, ईसाई सदस्य-11, सिख सदस्य-6, पारसी सदस्य-3, एवं बौद्ध सदस्य-1 थे। संविधान सभा में हिंदुओं (94.6%) का वर्चस्व था, अन्य प्रमुख धार्मिक समुदायों के सदस्यों को भी संविधान सभा में जगह मिली। इनमें ईसाई, पारसी, सिख और मुस्लिम शामिल थे जिनका प्रतिनिधित्व फ्रैंक एंथोनी, मीनू मसानी, जी गुरमुख सिंह और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसे व्यक्ति करते थे। जयपाल सिंह मुंडा पिछड़ी जनजातियों के छह सदस्यों की अगुआई कर रहे थे।[xii] इन्होने संविधान में पांचवीं एवं छठी अनुसूची के प्रावधानों के निर्णयन में महती भूमिका निभाई।[xiii] जेंडर मोर्चे पर, संविधान सभा पुरुष-प्रधान थी; केवल 15 सदस्य महिलाएँ थीं।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, जो संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे और जिन्होंने संविधान सभा में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, एक दलित थे। अन्य दलित सदस्यों में एस. नागप्पा और दक्षिणायनी वेलायुधन शामिल थे।

संविधान सभा में 12 ब्रिटिश भारतीय प्रांतों से 229 सदस्य आये थे। रियासतों का प्रतिनिधित्व 70 व्यक्तियों ने किया। छह सदस्य पिछड़ी जनजातियों से थे। लगभग 80% सदस्य कांग्रेस के टिकट पर चुने गए, लेकिन पार्टी के भीतर भी वैचारिक विविधता थी।[xiv] यह बात समग्र संविधान सभा के बारे में भी कही जा सकती है। के.टी. शाह समाजवादी थे और वामपंथी विचारधारा से थे, हिंदू महासभा के अध्यक्ष श्यामा प्रसाद मुखर्जी थे, और ठाकुर दास भार्गव और के.एम. मुंशी भी दक्षिण पंथी थे। मीनू मसानी जैसे उदारवादी भी थे।

भारत में संविधान निर्माण एवं महिला प्रतिनिधित्व

भारतीय संविधान सभा के कुल सदस्यों में से 15 महिलाएँ थीं। इनमे से 11 हिन्दू, 3 ईशाई एवं एक मुस्लिम थीं। दाक्षायनी वेलायुधन एक मात्र महिला दलित प्रतिनिधी थीं। एनी मास्कारेन, बेगम ऐज़ाज़ रसूल एवं दाक्षायनी वेलायुधन गैर कांग्रेसी महिला प्रतिनिधी थीं। उनके योगदानों का संक्षिप्त विश्लेषण अग्रलिखित है।

अम्मू स्वामीनाथन : वे अपने विचार और कार्य में निडर थीं, यह बात उनके सामाजिक कार्यकर्ता और राजनीतिज्ञ के रूप में उनके जीवनकाल में स्पष्ट हुई। विमेंस इंडिया एसोसिएशन में अपने काम के माध्यम से, उन्होंने महिला श्रमिकों के आर्थिक मुद्दों और समस्याओं को संबोधित किया। यह महिलाओं के लिए वयस्क मताधिकार और संवैधानिक

अधिकारों की मांग करने वाले पहले संगठनों में से एक था। अम्मू की दूसरी संतान लक्ष्मी सहगल, सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय सेना में रानी झाँसी रेजिमेंट का नेतृत्व की थीं।

एनी मास्कारेनी: मस्कारेनी भारतीय राष्ट्र के भीतर रियासतों की स्वतंत्रता और एकीकरण के लिए आंदोलनों के नेताओं में से एक थीं। जब राजनीतिक दल त्रावणकोर राज्य कांग्रेस का गठन हुआ, तो वह इसमें शामिल होने वाली पहली महिलाओं में से एक बन गईं। उन्होंने संविधान सभा की चयन समिति में भी काम किया, जो हिंदू कोड बिल पर विचार कर रही थी।

दाक्षायनी वेलायुधन: संविधान सभा के लिए चुनी जाने वाली एकमात्र दलित महिला, उन्होंने संविधान सभा के सदस्य के रूप में और 1946-52 तक अंतरिम संसद के एक सदस्य के रूप में कार्य किया। 34 साल की उम्र में, वह संविधान सभा की सबसे कम उम्र की सदस्यों में से एक थीं। वेलायुधन का जीवन और राजनीति केरल में कठोर जाति व्यवस्था से प्रभावित और परिभाषित थी।

बेगम ऐज़ाज़ रसूल: बेगम संविधान सभा में एकमात्र मुस्लिम महिला सदस्य थीं, ऐज़ाज़ रसूल ने औपचारिक रूप से 1937 में पर्दा छोड़ दिया जब उन्होंने गैर-आरक्षित सीट से अपना पहला चुनाव जीता और उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्य बनीं।

दुर्गाबाई देशमुख: एक प्रमुख समाज सुधारक, जिन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान गांधी के नेतृत्व वाली नमक सत्याग्रह गतिविधियों में भाग लिया, उन्होंने आंदोलन में महिला सत्याग्रहियों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके कारण ब्रिटिश राज अधिकारियों ने उन्हें 1930 और 1933 के बीच तीन बार कैद किया। चीन, जापान की अपनी विदेशी यात्राओं के दौरान अध्ययन करने के बाद दुर्गाबाई अलग पारिवारिक न्यायालय स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर देने वाली पहली महिला थीं।

हंसा जीवराज मेहता: हंसा जीवराज मेहता ने संविधान सभा में कार्य किया और मौलिक अधिकार उप-समिति, सलाहकार समिति और प्रांतीय संवैधानिक समिति के सदस्य थीं। 15 अगस्त 1947 को, आधी रात के कुछ मिनट बाद, मेहता ने "भारत की महिलाओं" की ओर से संविधान सभा में राष्ट्रीय ध्वज प्रस्तुत किया - स्वतंत्र भारत पर फहराने वाला पहला ध्वज।

कमला चौधरी: कमला चौधरी हिन्दी कहानीकार थीं। उन्होंने 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। वह संविधान सभा की सदस्य थीं और संविधान अपनाने के बाद उन्होंने 1952 तक भारत की प्रांतीय सरकार के सदस्य के रूप में कार्य किया।

लीला रॉय: एक स्वतंत्रता सेनानी और सामाजिक कार्यकर्ता, जिन्होंने भारत में महिलाओं की शिक्षा के लिए काम किया, रॉय बंगाल से संविधान सभा में एकमात्र निर्वाचित महिला सदस्य थीं। उन्होंने भारत के विभाजन के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करने के लिए अपने पद से इस्तीफा दे दिया। वह नेताजी सुभाष चंद्र बोस की करीबी सहयोगी थीं।

मालती चौधरी: स्वतंत्रता के बाद, मालती चौधरी ने भारत की संविधान सभा के सदस्य के रूप में और उत्कल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के रूप में, ग्रामीण पुनर्निर्माण में शिक्षा, विशेष रूप से वयस्क शिक्षा की भूमिका पर जोर देने की पूरी कोशिश की। वह आचार्य विनोबा भावे के भूदान आंदोलन में भी शामिल हुईं और टैगोर और गांधी दोनों से गहराई से प्रभावित हुईं।

पूर्णिमा बनर्जी: पूर्णिमा बनर्जी यूपी की महिलाओं के एक कट्टरपंथी नेटवर्क में से एक थीं, जो 1930-40 के दशक के अंत में स्वतंत्रता आंदोलन में सबसे आगे खड़ी थीं। वह इलाहाबाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समिति की सचिव थीं। बनर्जी प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, शिक्षक और कार्यकर्ता अरुणा आसफ अली की छोटी बहन थीं।

राजकुमारी अमृत कौर: अमृत कौर संयुक्त प्रांत से संविधान सभा के लिए चुनी गईं। उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान महिलाओं की व्यापक राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने में था। वह भारत में स्वास्थ्य मंत्री के रूप में कैबिनेट पद संभालने वाली पहली महिला बनीं। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन केंद्र, दिल्ली में लेडी इरविन कॉलेज और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) जैसे कुछ प्रतिष्ठित संसथानों की स्थापना में उनकी महत्पूर्ण भूमिका रही है।

रेणुका रे: पश्चिम बंगाल से संविधान सभा के हिस्से के रूप में, उन्होंने संविधान सभा में महिलाओं के अधिकारों के मुद्दों, अल्पसंख्यकों के अधिकारों और द्विसदनीय विधायिका प्रावधान सहित कई हस्तक्षेप किए। वह अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में भी शामिल हुईं और महिलाओं के अधिकारों और पैतृक संपत्ति में विरासत के अधिकारों के लिए कड़ा अभियान चलाया।

सरोजिनी नायडू: 'भारत कोकिला' के नाम से लोकप्रिय सरोजिनी नायडू एक भारतीय स्वतंत्रता कार्यकर्ता और कवयित्री थीं। नायडू की कविताओं में बच्चों की कविताएँ और देशभक्ति, रोमांस और त्रासदी सहित अधिक गंभीर विषयों पर लिखी गई कविताएँ शामिल हैं। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं और बाद में उन्हें संयुक्त प्रांत का राज्यपाल नियुक्त किया गया।

सुचेता कृपलानी: सुचेता कृपलानी को 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में उनकी भूमिका के लिए याद किया जाता है। उन्होंने 1940 में कांग्रेस पार्टी की महिला शाखा की स्थापना की। उन्होंने संविधान सभा के स्वतंत्रता सत्र में वंदे मातरम गाया था। वह भारत की पहली महिला मुख्यमंत्री भी थीं।

विजयलक्ष्मी पंडित: एक कार्यकर्ता, मंत्री, राजदूत और राजनयिक के रूप में वह राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की भूमिका में क्रांति लाने वाले कुछ लोगों में से थीं। ब्रिटिश काल में पहली महिला कैबिनेट मंत्री, पंडित संविधान बनाने के लिए भारतीय संविधान सभा का आह्वान करने वाले पहले नेताओं में से एक थीं।

संविधान सभा की प्रमुख समितियों के प्रारूप संस्तुतियों पर व्यापक बहस के पश्चात 17 नवम्बर 1949 को संविधान का सम्पूर्ण प्रारूप सभा सदस्यों के समक्ष प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीम राव अम्बेडकर एवं संविधान सभा अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद के द्वारा सदन की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया। 17 नवम्बर से 24 नवम्बर 1946 तक 125 सदस्यों ने संविधान के इस अंतिम प्रारूप पर अपना विचार रखा और अंततः 25 और 26 नवम्बर को डॉ. भीम राव अम्बेडकर और डॉ. राजेंद्र प्रसाद द्वारा विस्तृत उद्बोधन एवं सदस्यों के संशय निवारण के उपरांत संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया। इस दौरान हुई बहस पारदर्शी एवं रचनात्मक विमर्श की अभिवक्ति थी। साथ ही इस विमर्श के मूल में समावेशी सरोकार की केंद्रियता थी।

मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के प्रारूप को बहस के लिए प्रस्तुत करते हुए संविधान की प्रमुख विशेषताओं पर इस प्रकार प्रकाश डाला। सबसे पहले, उन्होंने इसकी संघीय विशेषताओं का उल्लेख किया, लेकिन बाद में यह भी जोड़ दिया कि अमेरिकी संविधान के विपरीत, भारतीय संविधान न तो दोहरे संविधान (एक संघ के लिए

और दूसरा राज्यों के लिए) और न ही दोहरी नागरिकता की अनुमति देता है। इसके अलावा, भारतीय संविधान राष्ट्रपति कार्यकारिणी को अपनाने के बजाय सरकार के संसदीय-सह-कैबिनेट स्वरूप का प्रावधान करता है। दूसरा, भारतीय संविधान दोहरी संप्रभुता का समर्थन नहीं करता है और सहकारी संघवाद को प्राथमिकता देता है। तीसरा, भारतीय संविधान एक प्रकार से दो संविधानों का प्रावधान करता है, जैसे कि यह सामान्य समय में एक संघीय प्रणाली के रूप में काम करता है और संवैधानिक रूप से चिंतनशील आपात स्थिति के समय एकात्मक संविधान में बदल जाता है। चौथा, भारतीय संविधान सर्वोच्च न्यायालय से लेकर उच्च न्यायालयों से लेकर जिला न्यायालयों तक अदालतों के एक एकीकृत एकीकृत पदानुक्रम के साथ एक संघीय न्यायपालिका का प्रावधान करता है। पांचवां, भारतीय संविधान अखिल भारतीय सेवाओं के एक अद्वितीय कैडर की भी परिकल्पना करता है। अखिल भारतीय सेवाएँ केंद्रीय और राज्य सिविल सेवाओं के अतिरिक्त हैं।

संविधान सभा में बहस के अंतिम छोर पर डॉ. अम्बेडकर फिर से बहस का जवाब देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने एक और लंबा भाषण दिया. उन्होंने इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि जिस संविधान को संविधान सभा ने मंजूरी दी है वह अच्छा है, और यदि यह विफल होता है, तो इसका कारण यह नहीं होगा कि संविधान खराब था; बल्कि ऐसा इसलिए होगा क्योंकि जिन लोगों ने इस पर काम किया वे असफल हो गए थे। उन्होंने इसकी सफलता के लिए कुछ शर्तों को भी रेखांकित किया, अर्थात्, एक अच्छा प्रशासन और अच्छे शासन का विकास। उन्होंने सोचा कि संविधान के लागू होने के अगले दिन हम विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश करेंगे। हम कानूनी और राजनीतिक तौर पर तो बराबर हो जाते लेकिन सामाजिक और आर्थिक तौर पर असमान ही बने रहेंगे। देश में राजनीतिक लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए हमें सामाजिक लोकतंत्र की भी आवश्यकता है। उन्होंने आगे कहा कि अब जब हमारा स्व-निर्मित संविधान लागू हो गया है, तो हमें कानून तोड़ना बंद कर देना चाहिए, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह के बारे में भूल जाना चाहिए। वे तब प्रासंगिक थे जब हमारे अपने संविधान और कानूनों के लिए हमारे रास्ते खुले नहीं थे। ऐसा करना जारी रखना 'अराजकता के व्याकरण' के अलावा और कुछ नहीं होगा।

भारत के स्वतंत्रता के बाद के इतिहास से पता चलता है कि अंबेडकर के संविधानवाद और गांधीवादी सत्याग्रह दोनों ने भारत के संविधानवाद और लोकतंत्र के अस्तित्व और सापेक्ष सफलता में अपने अलग-अलग तरीकों से योगदान दिया है। यदि संविधान ने भारत को अच्छी स्थिति में खड़ा किया है, तो गांधीवादी सत्याग्रह की राष्ट्रीय वैचारिक विरासत ने भी। 1975-1977 में आंतरिक राष्ट्रीय आपातकाल जैसे राजनीतिक संकट और संविधान के लिए खतरे के समय में, यकीनन, जे.पी. आंदोलन और चुनावी रथ दोनों ने देश में लोकतंत्र और संवैधानिकता को बचाया।

समापन करते समय, 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में राजेंद्र प्रसाद के समापन भाषण का उल्लेख करना उचित होगा। संविधान सभा के सदस्यों को बधाई देते हुए, प्रसाद ने उदारवादी, कल्याणकारी, लोकतांत्रिक और संघीय विशेषताओं की व्यावहारिक व्याख्या पेश की। संविधान का. संविधान की ऐसी गहन, असामयिक तथा भविष्योन्मुखी दृष्टि सभा के किसी अन्य भाषण में मिलना विशेष रूप से कठिन है। इस संदर्भ में, उन्होंने राज्यसभा, न्यायपालिका, लोक सेवा आयोग, भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक और संविधान की पांचवीं, छठी और सातवीं अनुसूचियों जैसी संस्थाओं के बीच बातचीत का स्पष्ट संदर्भ दिया था।

संदर्भ सूची

1. डुचासेक, इवो डी. (1987). 'कांस्टीट्यूशन / कांस्टीट्यूशनलिज्म', वेर्मन बोग्ड़ेनोर (सं) द *ब्लैकवेल एनसाइकलोपीडिया ऑफ़ पोलिटिकल इंस्टीट्यूशंस*, न्यू यॉर्क, ब्लैकवेल पृष्ठ 142-44।
2. तुश्नेट, मार्क. (2011). *व्हाई द कांस्टीट्यूशन मैटर्स?* लंदन: येल यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 1।
3. *वही*।
4. पी.आई.बी. (2017) 'सरदार पटेल – मैन हु यूनाइटेड इंडिया' (पोस्टेड ऑन 30 अक्टूबर) https://pib.gov.in/PressNoteDetails.aspx?NoteId=150410&reg=3&lang=1 26 नवम्बर 2022 को लिया गया।
5. बाबी, पी.टी. एवं ए.पी. भानु (2022) द फॉर्म एंड फार्मेशन ऑफ़ कांस्टीट्यूशनलिज्म इन इंडिया, *लॉज़*, 11(33), https://digital.library.adelaide.edu.au/server/api/core/bitstreams/910a09a5-5471-4fd4-bb56-99180135ce9e/content 26 नवम्बर 2023 को लिया गया।
6. ऑस्टिन, ग्रानविल. (1999). द *इंडियन* कांस्टीट्यूशन*: कार्नर स्टोन ऑफ़ ए नेशन*, न्यू दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (प्रथम प्रकाशित 1966) पृष्ठ 21-25।
7. *वही*. पृष्ठ 18।
8. *वही*. पृष्ठ 19।
9. राव बी. शिवा. एवं अन्य (सं) (1966) द *फ्रमिंग ऑफ़ द इंडियन कांस्टीट्यूशन : सेलेक्ट डाक्यूमेंट्स वोलुम एक*, न्यू दिल्ली: आई आई पी ए, पृष्ठ 292।
10. ऑस्टिन, ग्रानविल. (1999). द *इंडियन* कांस्टीट्यूशन*: कार्नर स्टोन ऑफ़ ए नेशन*, न्यू दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (प्रथम प्रकाशित 1966) पृष्ठ 22-25।
11. *वही*. पृष्ठ 311-325।
12. इसकी संरचना के अनुसार, कैबिनेट मिशन द्वारा अनुशंसित योजना के अनुसार, सदस्यों को प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुना जाता था। व्यवस्था इस प्रकार थी: (i) प्रांतीय विधान सभाओं के माध्यम से 292 सदस्य चुने गए; (ii) 93 सदस्यों ने भारतीय रियासतों का प्रतिनिधित्व किया; और (iii) 4 सदस्यों ने मुख्य आयुक्तों के प्रांतों का प्रतिनिधित्व किया। इस प्रकार संविधान सभा की कुल सदस्यता 389 होनी थी। हालाँकि, 3 जून 1947 की माउंटबेटन योजना के तहत विभाजन के परिणामस्वरूप, पाकिस्तान के लिए एक अलग संविधान सभा की स्थापना की गई और कुछ प्रांतों के प्रतिनिधि संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे। . परिणामस्वरूप, संविधान सभा की सदस्य संख्या घटकर 299 रह गई। (लोक सभा, (एन.डी.) 'कांस्टीट्यूएंट असेंबली', https://sansad.in/ls/about/constituent-assembly. 26 नवम्बर 2022 को लिया गया।)
13. भारत सरकार, (एन.डी.), 'द कांस्टीट्यूशन फ्रेमर्स' https://www.constitutionofindia.net/the-constitution-framers/ 22 जून 2023 को लिया गया।
14. भारत सरकार, (एन.डी.), 'द कांस्टीट्यूशन फ्रेमर्स' https://www.constitutionofindia.net/the-constitution-framers/ 22 जून 2023 को लिया गया।

15. भारत सरकार, (एन.डी.), 'कांस्टीट्यूएंट असेंबली', https://www.constitutionofindia.net/constituent-assembly/ 22 जून 2023 को लिया गया।
16. तिवारी, सागर. (2022). फ्रेमिंग द फिफ्थ सेड्यूल: ट्राइबल एजेंसी एंड द मेकिंग ऑफ़ द इंडियन कांस्टीट्यूशन (1937-1950) मॉडर्न एशियन स्टडीज 56(5) पृष्ठ 1556-1594।
17. भारत सरकार, (एन.डी.), 'कांस्टीट्यूएंट असेंबली', https://www.constitutionofindia.net/constituent-assembly/ 22 जून 2023 को लिया गया।
18. संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, (एन.डी.), 'रोल ऑफ़ वीमेन इन द कांस्टीट्यूएंट असेंबली', https://cmsadmin.amritmahotsav.nic.in/blogdetail.htm?48 22 जून 2023 को लिया गया।
19. भारत सरकार. (2003). *कांस्टीट्यूएंट असेंबली डिबेट*, बुक नंबर 2, न्यू दिल्ली: लोक सभा सेकरेटेरियट (चौथा रीप्रिंट), पृष्ठ 31-44।
20. भारत सरकार. (2003). *कांस्टीट्यूएंट असेंबली डिबेट*, बुक नंबर 5, न्यू दिल्ली: लोक सभा सेकरेटेरियट (चौथा रीप्रिंट), पृष्ठ 972-981।
21. *वही.* पृष्ठ 984-995।

5

राष्ट्र की संरचना: संविधान सभा में लैंगिक गतिशीलता

विजया लक्ष्मी सिंह
आचार्य, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय संविधान एक जीवंत दस्तावेज़ है जो भारतीय समाज में परिवर्तनकारी प्रक्रिया के लिए एक मार्गदर्शक शक्ति है और शक्ति और परिवर्तन की अवधारणा के केंद्र में लैंगिक समानता है जिसने भारत में महिलाओं की सामाजिक और राजनीतिक पहचान को आकार दिया है। संविधान सभा 1946 से 1950 तक लगातार उन सिद्धांतों पर बहस और विचार-विमर्श करती रही जो नए गणराज्य के लिए मार्गदर्शन करने वाले थे। इन ऐतिहासिक बहसों में, अपनी सभी जटिलताओं और विरोधाभासों के साथ, विचारों का समृद्ध भंडार था जो समकालीन पीढ़ी को प्रतिनिधित्व, धर्मनिरपेक्षता, मौलिक अधिकारों आदि जैसे मुद्दों पर महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता था। उपनिवेशी अतीत की राजनीतिक बहसों ने, जिसमें उपनिवेशी प्रशासक, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता, मुस्लिम लीग आदि शामिल थे, संविधान सभा के निर्णय को प्रभावित किया।

महिलाओं ने स्वतंत्रता संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, सामाजिक सुधारों की वकालत की और ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के खिलाफ आंदोलन में भाग लिया। संविधान सभा ने 1946 से 1949 के बीच भारत के संविधान का मसौदा तैयार किया, जिसमें 299 सदस्य थे, जिनमें से केवल 15 महिला सदस्य थीं। महिलाओं ने भारतीय संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने लैंगिक समानता और महिला अधिकारों की वकालत की। संविधान सभा की महिला सदस्यों की भागीदारी केवल प्रतिनिधित्व के बारे में नहीं थी, यह सुनिश्चित करने के बारे में थी कि राष्ट्र के भविष्य को आकार देने में महिलाओं की आवाज़ सुनी जाए। इसके बावजूद, बहसों और चर्चाओं में महिलाओं के लिए चुनौतियों को बनाए रखना आसान नहीं था, जहां उन्हें अक्सर गंभीरता से नहीं लिया जाता था और उनकी आवाज़ों का मज़ाक उड़ाया जाता था।

महिला सदस्यों की राजनीति उनके जीवन अनुभवों द्वारा आकारित की गई थी। सभी 15 महिलाएं एक ही सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से नहीं आई थीं, लेकिन वे बेहतर भारत की इच्छा के लिए एकजुट थीं। इन महिलाओं में विभिन्न विचारधाराएं थीं। सरोजिनी नायडू, हंसा मेहता, राजकुमारी अमृत कौर, विजया लक्ष्मी पंडित, पूर्णिमा बनर्जी, मालती चौधरी गांधीवादी थीं और अहिंसा के सिद्धांतों का पालन करती थीं। लीला रॉय क्रांतिकारी थीं। रेणुका रे और सुचेता कृपलानी दोनों विचारधाराओं के बीच में थीं। अन्य में बेगम कुद्सिया ऐजाज़ रसूल, एनी मास्करीन (लैटिन क्रिश्चियन) दक्षयानी वेलाउधन (दलित), अम्मू स्वामीनाथन, दुर्गाबाई देशमुख, कमला चौधरी शामिल थीं।

सरोजिनी नायडू ने संविधान सभा में अन्य महिलाओं को प्रभावित किया। विजया लक्ष्मी पंडित ने अपनी व्यक्तिगत संस्मरण में लिखा है कि यह उनकी महत्वाकांक्षा थी कि वह सरोजिनी नायडू की तरह बनें। हंसा मेहता द्वारा समान भावनाएं व्यक्त की गईं। 1946 में सरोजिनी को बिहार से संविधान सभा के लिए चुना गया था। उन्होंने संविधान सभा में

अपने भाषण में कहा कि भारत का संविधान हर भारतीय के लिए, चाहे वह राजकुमार हो या किसान, स्वतंत्रता और सशक्तिकरण का संविधान है। उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज के संकल्प पर भी बोला। उनके भाषण हमेशा आशा और आशावाद से भरे होते थे।

हंसा मेहता, ने अपने सहयोगियों पर प्रभाव डाला कि वे एक लिंग तटस्थ अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार ढांचा चुनें जो यह घोषित करता है कि सभी मानव जन्म से स्वतंत्र और समान हैं। वह अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की सदस्य थीं और 1945 में सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए सदस्यों को विभिन्न संविधानों से महिला अधिकारों से संबंधित प्रासंगिक दस्तावेज़ एकत्र करने का निर्देश दिया। उन्होंने महिलाओं की आर्थिक स्थिति को उठाने के बारे में भी बात की। उन्होंने अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में महिलाओं के अधिकारों और कर्तव्यों का एक चार्टर प्रस्तुत किया जिसे केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों को मजबूती से अनुरोध किया गया कि मौलिक अधिकारों और आर्थिक और सामाजिक निर्देशों को भारतीय संविधान का अभिन्न अंग बनाया जाए। वह 1946 में बॉम्बे प्रेसीडेंसी से संविधान सभा के लिए चुनी गई थीं। स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर, 14 अगस्त 1947 को, उन्होंने संविधान सभा को भारत की महिलाओं की ओर से राष्ट्रीय ध्वज प्रस्तुत किया, यह कहते हुए कि भारत को विश्व पर आध्यात्मिक प्रभुत्व बनाए रखने के लिए त्याग की परंपरा को संजोना हर भारतीय पुरुष और महिला का कर्तव्य है, जिसका प्रतीक केसर है। हंसा मेहता मौलिक अधिकारों पर संविधान सभा उप समिति की सदस्य भी थीं, जिसमें राजकुमारी अमृत कौर भी शामिल थीं। हालांकि उन्होंने धर्म के अधिकार के लिए बहस और वकालत की, लेकिन वे धर्म के नाम पर प्रचलित कई प्रथाओं, जैसे कि पर्दा, बाल विवाह, बहुविवाह, असमान विरासत के कानून, जाति विवाहों को रोकने, मंदिरों को समर्पित किए गए लड़कियों के विषय में चिंतित थे, जिन्हें वे समाज की बुराइयों के रूप में मानते थे और वे चाहते थे कि मौलिक अधिकारों में कोई भी धारा इन बुराइयों को मिटाने के लिए भविष्य के कानून निर्माण को असंभव न बनाए। वे विवाह, तलाक, अभिभावकत्व, और अन्य नागरिक संबंधों के लिए एक समान नागरिक संहिता की वकालत कर रहे थे, अर्थात एक धर्मनिरपेक्ष कानून। लेकिन यह साकार नहीं हो पाया। हंसा मेहता ने महिलाओं की व्यक्तिगत स्थिति की मान्यता के लिए बहस की, जहां उनके अधिकार पति या परिवार पर निर्भर नहीं थे।

राजकुमारी अमृत कौर, एक राजकुमारी ने गरीबों और उत्पीड़ितों की उन्नति के लिए अपने धनी जीवन का त्याग किया और महिलाओं के अधिकारों की आंदोलन की अगुवाई की। अमृत को मध्य प्रांतों और बेरार से संविधान सभा के लिए चुना गया था। उन्हें पचास सदस्यीय सलाहकार समिति में नामांकित किया गया था और बाद में बेगम कुद्सिया ऐजाज़ रसूल के साथ महिला सदस्य के रूप में शामिल हो गईं। अमृत को मौलिक अधिकार समिति में हंसा मेहता के साथ नामांकित किया गया था। संविधान का निर्माण चुनौतीपूर्ण था क्योंकि लक्ष्य न्याय, समानता और स्वतंत्रता प्राप्त करना था। एजेंडा में सामाजिक सुधार भी शामिल थे। अमृत ने, ईसाई होने के बावजूद, धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक आरक्षण का विरोध किया और अंततः संविधान सभा ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सीमित आरक्षण का निर्णय लिया। वह यूनेस्को, विश्व स्वास्थ्य संगठन, और अंतर्राष्ट्रीय रेड क्रॉस असेंबली में प्रतिनिधित्व करती थीं।

रेणुका रे को संविधान सभा का सदस्य चुना गया था और उन्होंने धार्मिक शिक्षा, हिंदू संहिता विधेयक, देवदासी प्रथा, और मौलिक अधिकार के रूप में संपत्ति के अधिकार पर अनेक बहसों में भाग लिया। उन्हें संविधान सभा में लिंग के

आधार पर चुना गया था लेकिन उन्होंने सभाओं और संसद में महिलाओं के आरक्षण का विरोध किया क्योंकि यह उनकी स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में क्षमता को सीमित कर सकता है।

सुचेता कृपलानी गांधीवादी थीं जो क्विट इंडिया आंदोलन के दौरान अपनी गुप्त गतिविधियों के लिए जानी जाती थीं और उसके बाद नोआखाली और दिल्ली में राहत शिविर चलाती थीं। वह संविधान सभा की चुनी गई सदस्य थीं और उन्होंने कहा था 'हम महिलाओं को समाज में समान स्थान देने के लिए प्रतिबद्ध हैं।' दुर्गा बाई देशमुख अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की सदस्य थीं और उन्हें संविधान सभा के लिए चुना गया था। वह स्टीयरिंग समिति की सदस्य थीं जिसकी अध्यक्षता वल्लभ भाई पटेल कर रहे थे और उन्हें संशोधनों की समीक्षा की जिम्मेदारी दी गई थी। वह प्रारंभिक संसद के अध्यक्ष पैनल में शामिल होने वाली एकमात्र महिला थीं। संविधान सभा की बहसों में उन्होंने विभिन्न विषयों पर बोला जैसे कि भाषा, भिखारी के रूप में बुराई, बच्चों और युवाओं को शोषण से बचाना, धार्मिक स्वतंत्रता, राज्य सभा में आयु मानदंड, न्यायालयों की भूमिका, न्यायाधीशों की नियुक्ति, और न्यायपालिका की स्वायत्तता। डॉ. बी.आर. आंबेडकर, मसौदा समिति के अध्यक्ष ने दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार किया और राज्य सभा में आयु पात्रता को 35 से 30 कर दिया। वह हिंदू संहिता विधेयक पर बहस का हिस्सा थीं और हिंदू संहिता विधेयक पर चयन समिति की सदस्य भी थीं। उन्होंने टिप्पणी की, 'विधेयक का पारित होना भारत के सामाजिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर होगा' और उनकी कई महिला समकक्षों की तरह माना जाता है कि हिंदू संहिता विधेयक का अधिनियमित न होना एक महान दुर्भाग्य होगा। अम्मू स्वामीनाथन एक महिला नेता थीं जिन्हें 1946 में मद्रास प्रेसीडेंसी से संविधान सभा का सदस्य बनाया गया था। उन्हें हिंदू संहिता विधेयक के मसौदे के माध्यम से जाने के लिए बीस सदस्यों की चयन समिति का सदस्य बनाया गया था जिसमें महिलाओं के उत्तराधिकार का अधिकार चर्चा में था, जिसकी अध्यक्षता डॉ. बी.आर. आंबेडकर कर रहे थे। दुर्भाग्य से, यह अलमारी में रख दिया गया। एनी मास्करीन, एक ईसाई अल्पसंख्यक समुदाय की संविधान सभा सदस्य थीं जिन्हें संविधान सभा में राष्ट्र के निर्माण में भूमिका का पता था। उनका राजनीतिक अनुभव त्रावणकोर विधान सभा में उनकी बहसों और चर्चाओं में मदद करता था। उन्होंने केंद्र में विधान सभा के प्रतिनिधित्व के बारे में बात की। बेगम कुद्सिया ऐजाज़ रसूल ने अल्पसंख्यक के कारण की वकालत की। बहसों के दौरान उन्होंने मुस्लिमों से किसी भी विशेष विशेषाधिकारों को छोड़ने का आग्रह किया और कांग्रेस को अल्पसंख्यकों के विशेष संरक्षण के लिए सराहा। दक्षयानी वेलाउधन, एक गांधीवादी तथा संविधान सभा में अकेली दलित महिला थीं। उन्होंने दलित समुदाय की उन्नति के लिए स्वयं को समर्पित किया था, और अपने भाषणों में संविधान सभा में मांग की थी कि ऐतिहासिक रूप से वंचित जाति समूहों को अन्य भारतीयों की तरह ही स्वतंत्रता और अधिकार प्रदान किए जाएँ। कमला चौधरी, एक कथा लेखिका ने भी संविधान सभा में महिलाओं के हितों की वकालत की। वह हिंदू संहिता विधेयक की समर्थक थीं। लीना रॉय को संविधान सभा में नामांकित किया गया था और वह भारत के विभाजन का दृढ़ता से विरोध करती थीं। वह सुभाष चंद्र बोस के आदर्शों की उत्साही अनुयायी थीं। मालती चौधरी को उड़ीसा से नामांकित किया गया था और उन्होंने वंचितों के कारण की वकालत की। विजया लक्ष्मी पंडित और पूर्णिमा बनर्जी ने सच्चे लोकतंत्र की स्थापना पर बहस की।

संविधान सभा भारत का एक सूक्ष्म रूप मानी जाती थी इसलिए 15 महिलाओं का प्रतिनिधित्व महत्वपूर्ण था। उनके पुरुष समकक्षों की तरह महिला सदस्य राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में गहराई से जुड़ी हुई थीं, उनके जीवन राष्ट्र

निर्माण के साथ उलझे हुए थे और उनके अनुभवों ने भारत गणराज्य को आकार दिया। भारत का संविधान हर सार्वजनिक चर्चा के केंद्र में है। हम वर्तमान प्रश्नों के लिए, जैसे कि एकीकृत नागरिक संहिता, नागरिकता का मुद्दा, संपत्ति के उत्तराधिकार का मुद्दा आदि के लिए अपने संविधान की ओर देखते हैं।

संदर्भ सूची

1. अच्युत चेतन, 'From Subject to Sovereign: Authors of the Nation, Founding Mothers of Indian Republic: Gender Politics in the framing of the Indian Constitution', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2022.
2. विजया लक्ष्मी पंडित, 'The Scope of Happiness: A Personal Memoir', वाइडनफेल्ड और निकोलसन, 1979, पृष्ठ 59।
3. हंसा मेहता, 'Indian Women', बुताला एंड कंपनी, 1981, पृष्ठ 188.
4. संविधान सभा की बहसें, खंड 1, 11 दिसंबर 1941.
5. रोहित दे, 'A People's Constitution: The Everyday Life of Law in the Indian Republic', प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018.
6. एंजेलिका अरिबाम, आकाश सत्यवाली, 'The Fifteen: The Lives and Times of the Women in India’s Constituent Assembly', हैचेट इंडिया, 2024, पृष्ठ 97.
7. संविधान सभा की बहसें, खंड XI, 22 नवंबर 1949.
8. बी. शिवा राव, 'The Framing of the Indian Constitution, Select Documents', वॉल्यूम II, आईआईपीए, 1968, पृष्ठ 146.
9. राजकुमारी अमृत कौर: A Profile, 'Eminent Parliamentarians Monograph Series', पृष्ठ 10.
10. Gandhian Era and After'.
11. संविधान सभा की बहसें, खंड XI, 24 नवंबर 1949.
12. संविधान सभा की बहसें, खंड IV, 29 जुलाई 1949.
13. वसंत मून संपा., डॉ. बी. आर. अंबेडकर: Writings and Speeches, वॉल्यूम 144, भाग 1, बी. आर. अंबेडकर फाउंडेशन, 2014.
14. संविधान सभा की बहसें, खंड VII, 16 जून 1946.
15. एंजेलिका अरिबाम, आकाश सत्यवाली, 'The Fifteen: The Lives and Times of the Women in India’s Constituent Assembly', हैचेट इंडिया, 2024, पृष्ठ 49.
16. एंजेलिका अरिबाम, आकाश सत्यवाली, 'The Fifteen: The Lives and Times of the Women in India’s Constituent Assembly', हैचेट इंडिया, 2024, पृष्ठ 124-125.

6

संविधान की भारतीय पृष्ठभूमि

डॉ. शकील हुसैन
सहायक प्रध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्वशासी महाविद्यालय
दुर्ग, छत्तीसगढ़

भारतीय राजनीतिक संस्थाओं भारतीय संविधान का भी पाश्चात्य विकसित देशों की राजनीतिक प्रणालियों और संविधान की भांति उद्विकास हुआ है। भारतीय राजनीतिक संस्थाओं और भारतीय संविधान के इस विकास के अध्ययन के लिए विशेषकर तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्याप्त से अधिक अध्ययन सामग्री विद्यमान है। जिनपर बहुत इस दृष्टि से बहुत अधिक शोधपरक कार्य नही किया गया कि मौजूदा भारतीय संविधान पश्चिमी दुनिया की देन नहीं है बल्कि भारतीय परंपराओं पर आधारित है। औपनिवेशिक शक्तियों और आक्रांताओं ने नियोजित तरीके से भारतीय इतिहास को मिथको के साथ इस प्रकार मिला दिया कि वह अविश्वसनीय लगने लगे और बहुत हद तक वह इस षड्यंत्र में सफल भी रहे। ऐतिहासिक तथ्यों को कपोल कल्पित कथाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया।

वेदो, पुराणों, हमृतियो, धर्म शास्त्रों, बौद्ध ,जैन साहित्यो आदि मे उल्लिख राजनीतिक विचारो, आदर्शो को धार्मिक कह कर खारिज करने की प्रवृत्ति विकसित की गयी। स्वतंत्रता समानता न्याय लोकतंत्र गणराज्य व्यक्ति की गरिमा जैसे चिर परिचित भारतीय विचार को पाश्चात्य विचारों के रूप में प्रस्तुत किया गया , या यूं कहें कि इन विचारों पर पश्चिम का एक पेटेंट मान लिया गया जहां भी जिस संविधान में भी यह विचार है वह पश्चिम से आयातित है। उपनिवेशवादी एवं पश्चिमी नॉरेटिव के तहत शायद इसे हमने इसी भावना के साथ स्वीकार कर भी कर लिया कि हमारा संविधान पश्चिमी मूल्यों पर आधारित है और यह 1935 के भारत सरकार के अधिनियम की नकल है।

"हम पूर्व में स्वतंत्र संस्थाओं की अनुपस्थिति के बारे में सुनने के आदी हैं, इसलिए हम इस संबंध में अपनी कथित हीनता को स्वीकार कर लेते हैं और इन्हें पश्चिम का एकमात्र पेटेंट मानते हैं। हम स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन के लिए ग्रीस, रोम या उत्तरी और पश्चिमी यूरोप के देशों की ओर रुख करते हैं और अपने देशों को निरंकुश सत्ता का जन्मस्थान और विशिष्ट निवास स्थान मानते हैं।" (बन्धोपाध्याय *1954* पृ *3)*।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक प्रणालियों में केवल राजतंत्र का उल्लेख किया गया और यह दर्शाया गया कि भारत में केवल राजतंत्रात्मक शासन था उनमें भी अत्याचारी राजाओं का शासन अधिक था यह उनकी संख्या अधिक थी। "देवांनाम पिय पिय दसि सम्राट" (पाण्डेय : 1986) जैसे वाक्यांशों का मनमाना अर्थ निकालकर यह स्थापित करने की कोशिश की गई कि भारत में राजपद केवल दैवीय था। राज्य की उत्पत्ति का दैवीय सिद्धांत ही प्रचलित था और एक संप्रभु निरंकुश और सर्वाधिकारवादी राजतंत्र का इतिहास ही भारतीय राजनीतिक प्रणाली का इतिहास है । जबकि

आक्रांताओं अवश्य की आक्रांताओं के एक लंबे आक्रमणकारी इतिहास के कारण भारतीय राज्यों ने जो अराजकता देखी उसमें एक सार्वभौम निरंकुश राजतंत्र को विकसित होना स्विभाविक था क्योकि इसी के द्वारा आक्रांताओ का सामना किया जा सकता था।

"प्राचीन भारतीय अभिलेखों का सावधानीपूर्वक अध्ययन हमारे सामने ऐसे तथ्य रखता है जो न केवल इसके विपरीत साबित करते हैं।" (बन्धोपाध्याय *1954* पृ *04)*।

अतः इन सब में प्राचीन भारतीय गणतंत्र, राजाओं का निर्वाचन, वेतन भोगी राजा, जनप्रतिनिधित्व प्रणाली, इन सबको भुला दिया गया, जिसके प्रमाण भारतीय अभिलेखों और भारतीय साहित्य का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से स्पष्ट रूप से हमारे सामने आते हैं।

इस प्रकार स्वतंत्रता समानता न्याय व्यक्ति की गरिमा लोकतंत्र गणराज्य आदि मूल्यों को पाश्चात्य मानना परमुखापेक्षी होना है। ये राजनीतिक आदर्श पूर्णतः भारतीय चेतना प्रसूत है, भारतीय संस्कृति मे गौम्फित रहे है। भारतीय संविधान विश्व के प्रमुख संविधानों की अच्छी बातों का संकलन मात्र नही है। बल्कि भारतीय संविधान में जो राजनीतिक आदर्श हैं , जिन्हें राजनीति विज्ञान की आधुनिक और मूल आदर्श माना जाता है , पूर्णतः भारतीय है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना मे नीहित राजनतिक आदर्श

हम भारत के लोग
पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता
पंथनिरपेक्षता
लोकतंत्रात्मक
गणराज्य
समानता
स्वतंत्रता
न्याय
व्यक्ति की गरिमा
बंधुत्व

समाजवाद

सी ई एम जोड का प्रसिद्ध कथन है कि समाजवाद उस टोप की भांति है कि जिसे इतने अधिक लोगों ने पहना है कि उसकी शक्ल बिगड़ गई है। पश्चिमी दुनिया में समाजवाद की व्याख्या और उसको परिभाषित करने का संबंध में बहुत कठिनाई है, यह वैज्ञानिक समाजवाद से लेकर के काल्पनिक समाजवाद तक अनेक प्रकार की परिभाषात्मक शब्दावलियों में उलझा हुआ है। लेकिन जो सामान्य प्रचलित अर्थ है उसमें यह है कि समाज में समता का भाव होना चाहिए और उत्पादन के साधनों पर सबका स्वामित्व होना चाहिए। उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार ना हो और

वितरण प्रणाली न्यायपूर्ण हो। इस दृष्टि से भारतीय सामाजिक राजनीतिक परंपरा में सदैव से समाजवादी विद्यमान रहा है। वैदिक काल से लेकर छठी शताब्दी ईसा पूर्व के गणराज्यों तक और उसके बाद के साहित्य में भी इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं जिसमें सर्वजन हिताय और सर्जन सुखाय की भावना बहुत ही बलवती दिखाई देती है। सबके साथ समानता पूर्ण व्यवहार चाहे नर हो या नारी हो या समाज का कोई अन्य वर्ग हो सबके साथ समतापूर्ण व्यवहार की वकालत की गई है उसके लिए निर्देश दिए गए है। ऋग्वेद में इस प्रकार के अनेक उदाहरण है जो समता पूर्ण समाज की स्थापना सुनिश्चित करते हैं।

गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

अर्थात अर्थात सब लोग मिलकर एक सूत्र में बंधे रहे परस्पर संवाद करें एक दूसरे के सुख-दुख और अभिप्राय को सुन समझे और सब एक लक्ष्य बनाकर कार्य करें और सब के साधन और लक्ष्य एक हो। (ऋग्वेद 10.191.2)

समानो मन्त्र: समितिः समानी समानं मन: सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

अर्थात सभी मनुष्यों के विचार कार्य प्रवृत्ति मन, चित्त और स्तुति समान होनी चाहिए सब समान भाव से समान रूप से रहे। (ऋग्वेद 10.191.3)

हम भारत के लोग एवं पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता

भारत का संविधान इन्हीं शब्दों से प्रारंभ होता है और ये शब्द भारत के लोगों के संप्रभुता की घोषणा करते हैं , अर्थात भारत के नागरिक ही भारत के हम्प्रभु है। हम भारत के लोग वाक्यांश भारत के लोगों की सर्वोच्च प्रभुता की घोषणा करते हैं और इस बात की ओर संकेत करते हैं कि संविधान का आधार सर्वसाधारण भारतीय जन का प्राधिकार है। (बसु 1989) दूसरे शब्दों में भारत की वास्तविक शक्ति भारत की जनता में नीहित है। इसे भी राजनीतिक संप्रभुता बताकर पश्चिम की अवधारणा बताई जाती है। डायसी ने इसे राजनीतिक सम्प्रुता कहा है , और इसका स्रोत जान लाक के दर्शन को बताया है। जबकि जॉन लॉक से हजारों साल पहले भारत में ऐसी गणतंत्रात्मक राजनीति प्रणाली विद्यमान थी जहां जनता में ही संप्रभुता निवास करती थी। 326 ईसा पूर्व में सिकंदर के आगमन के पश्चात पश्चिम उत्तर भारत का जो वर्णन यूनानियों ने किया है उसमें इसका स्पष्ट उल्लेख है कि भारत में अल गणराज्य विद्यमान थे, जहां जनता ही राजा को निर्वाचित करती थी और सारी शक्ति जनता के पास होती थी

"कथियों या कथों के संविधान की ओर बढ़ते हुए हम एक निर्वाचित 'राजा' पाते हैं। इस राज्य में बच्चे अपने माता-पिता से पहले नागरिक के रूप में और बाद में व्यक्ति के रूप में जन्म लेते थे, राज्य यह तय करता था कि भावी नागरिकों में से कौन 'अंगों और विशेषताओं' में परिपूर्ण है और उनमें से किसे वयस्क होने दिया जाना चाहिए (डियोडोरस, *XCI)*। सौभूत संविधान भी ऐसा ही था। इन राज्यों में, मनुष्य वास्तव में एक राजनीतिक प्राणी था।" (जायसवाल 1943 पृ 74)

पंथनिरपेक्षता

पंथनिरपेक्षता का अंग्रेज़ी अनुवाद सेक्युलरिज्म जिसे साधारण भाषा में धर्मनिरपेक्षता कहा जाता है पश्चिम में 15वीं शताब्दी में पैदा हुआ । जब चर्च के अत्याचारों और विखंडन कारी नीतियों से योरोप त्राही त्राही कर रहा था । राजनीतिक दार्शनिक मेकियावली ने द प्रिंस नामक अपनी रचना मे ईसाई धर्म को राज्य से पूरी तरह बहिष्कृत कर दिया और एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली की कल्पना की जिसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं था बल्कि धर्म उसके लिए एक उपादान था । किंतु भारत में पंथनिरपेक्षता या पश्चिमी अर्थ में भी अगर धर्मनिरपेक्षता , हजारों साल पुरानी है । भारतीय संस्कृति में विभिन्न धर्मावलबियों एवं विभिन्न पंथअनुयायियों के बीच किसी प्रकार का विभेद न हो इसका निर्देश बारंबार राजनीतिक प्रणाली को दिया गया है । इसके अनेकानेक उद्धरण है सबसे महत्वपूर्ण उद्धरण नारद स्मृति से है - जिसमें राजा को आस्तिक और नास्तिक पंथों के बीच भेद न करते हुए न्याय करने की का निर्देश दिया गया है -

"पाषांदानिगामा श्रेणि पूगवृता गणादिषु समरक्षेत् संयम राजा दुर्गे जनपदे तथा"

अर्थात् राजा को सभी वैदिक विश्वासियों (नायगमों) और वेों में अविश्वास करने वालों (पाषाणि) और अन्य लोगों की रक्षा करनी चाहिए ।(नारद स्मृति)

इसी प्रकार मनु स्मृति मे निर्देशित है कि जिस प्रकार धरती माता सभी जीवित प्राणियों को समान सहायता प्रदान करती है, उसी प्रकार राजा को भी बिना किसी भेदभाव के सभी को समान सहायता प्रदान करनी चाहिए।

"यथा सर्वाणि भूतानि धारा धार्यते समम्; तथा सर्वाणि भूतानि बिभर्ते पार्थिवं वर्तम्। "

(मनुसमृति)

इसी प्रकार का वर्णन वृहदारण्यक उपनिषद में लिखित है की दुर्बल व्यक्ति को भी बलशाली के सम्मुख किसी भी प्रकार से भेदभाव रहित न्याय का अधिकार है । धर्म का गन यही है कि वह उत्तम स्वरूप न्याय करें जिसमें किसी भी प्रकार की मान्यताओं पैंटों आदि के बीच कोई भी भेद नहीं होना चाहिए

स नैव व्यवहारत, तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजाता धर्मम्; तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मः, तस्माद्धर्मादपरं नास्ति, अधो अबलियान् बालियान्समासंसते धर्मेण, यथाराजनैवम्; यो वै स धर्मः सत्यं वे तत्, तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुः, धर्म बदतिति, धर्म वा वदन्तं सत्यं वदतिति, एतद्धयेवैतदुभयं भवति || (बृहदारण्यक उपनिषद)

लोकतंत्र

लोकतंत्र की जन्मस्थली के रूप में ब्रिटेन का महिमामंडन किया जाता है और यह बताया जाता है कि 1215 में किस प्रकार मैग्नाकार्टा के द्वारा राजा के अधिकारों को छीनकर सामंतों को दिया गया और उसके बाद धीरे-धीरे राजा के अधिकारों में कमी होती गई और सांसद मजबूत होती गयी। लेकिन धरती के सबसे पुराने ग्रंथ ऋग्वेद जिसके बारे मे मैक्समूलर ने लिखा है कि "विश्व के इतिहास में, वेद एक ऐसे अंतराल को भरता है जिसे किसी अन्य भाषा में कोई साहित्यिक कार्य नहीं भर सकता। यह हमें उस समय में वापस ले जाता है जब हमारे पास कहीं भी कोई रिकॉर्ड नहीं है और हमें उन लोगों की पीढ़ी के शब्द देता है जिनके बारे में अन्यथा हम केवल अनुमान और अनुमान के माध्यम से ही अस्पष्ट अनुमान लगा सकते थे। जब तक मनुष्य अपनी जाति के इतिहास में अपनी रुचि बनाए रखता है, और जब तक

हम पुस्तकालयों और संग्रहालयों में पिछले युगों के अवशेष एकत्र करते हैं, तब तक पुस्तकों की उस लंबी पंक्ति में पहला स्थान जिसमें मानव जाति की आर्य शाखा के रिकॉर्ड शामिल हैं, हमेशा ऋग्वेद का होगा। (मुलर एट अल। *1968,* पृष्ठ *63)*। स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि

सारी प्रजा जिसे चाहे वही राजा बनेगा।

आ त्वा॑हार्ष॒मन्तर॑भूर्ध्रु॒वस्ति॒ष्ठावि॑चाचलत्। विश॑स्त्वा॒ सर्वा॑ वाञ्छन्तु॒ मा त्वद्रा॒ष्ट्रमधि॑ भ्रशत्॥ (ऋग्वेद 10.173.1)

इस प्रकार राजा के निर्वाचन और रिग्वैदिक जनप्रतिनिधित्व की समिति नामक संस्था द्वारा राजा का चयन किया जाना भारत को नि:संदेह लोकतंत्र की जजनी बनाता है। ग्वेद मे समिति का सबसे महत्वपूर्ण कार्य राजा का निर्वाचन करना ही बताता गया है। अथर्ववेद में भी इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है -

आ त्वा॑हार्ष॒मन्तरे॑धि ध्रु॒वस्ति॒ष्ठावि॑चाचलिः। विश॑स्त्वा॒ सर्वा॑ वाञ्छन्तु॒ मा त्वद्रा॒ष्ट्रमधि॑ भ्रशत्॥

*(*अथर्ववेद *6.87.1))*

अर्थात प्रजागण सबसे उत्तम पुरुष को राजा बना कर उपदेश करें, जिससे वह सदा धार्मिक पुरुषार्थी रहे और बुरे आचरण से राज्य नष्ट न होवे l प्रोफेसर के पी जायसवाल ने इसकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार दी है

“ समिति वेदों से पूरे लोगों का प्रतिनिधित्व करती थी कि रिकॉर्ड पर सबसे शुरुआती समय में राष्ट्रीय जीवन और गतिविधियाँ लोकप्रिय सभाओं और संस्थाओं के माध्यम से व्यक्त की जाती थीं। इस तरह की सबसे बड़ी संस्था हमारे वैदिक पूर्वजों की समिति थी। समिति (सम् + इति) शब्द का अर्थ है 'एक साथ मिलना, यानी एक सभा। समिति पूरे लोगों या विशः (विशः) की राष्ट्रीय सभा थी;[1] क्योंकि हम पाते हैं कि 'पूरी जनता या समिति, वैकल्पिक रूप से, राजन (राजा) या राजा का चुनाव और फिर से चुनाव करती थी। पूरी जनता को सभा में उपस्थित होना चाहिए था। समिति के कार्यों को इसके विभिन्न संदर्भों से समझा जा सकता है। समिति के सबसे महत्वपूर्ण कार्य अर्थात राजन का चुनाव करना। एक ऐसे राजा को पुनः चुनें जिसे निर्वासित कर दिया गया था। इस प्रकार वे संवैधानिक दृष्टिकोण से एक संप्रभु निकाय थे। समिति में राज्य के मंत्रों पर चर्चा की गई। राजा ने समिति में भाग लिया और यह आवश्यक समझा गया कि राजा को ऐसा करना चाहिए। …..समिति के समक्ष राजा का कर्तव्य था, और यदि वह समिति में उपस्थित नहीं होता, तो उसे 'असत्य' माना जाता।” (जायसवाल*1953* पृ *16-17)*

गणराज्य

गणराज्य का आधुनिक अर्थ है वह राज्य जहां राज्य का सर्वोच्च प्रधान निर्वाचित हो। इस दृष्टि से वैदिक कालीन शासन प्रणालियां गणराज्य ही थी क्योंकि जनता द्वारा राजा का प्रत्यक्ष चुनाव होता था। उत्तर वैदिक काल और उसके पश्चात गड़राज्यों की बहुत ही समृद्ध परंपरा भारत में रही है छठी शताब्दी ईसापुर का भारत गणराज्यों का भारत है जिसमें अनेक गणराज्यों का वर्णन बौद्ध और जैन साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इन राज्यों में जो राजनीतिक प्रणाली थी उसमें जनता द्वारा राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लिया जाना और राजा का चुनाव करना शामिल थे। पाणिनी और अर्थशास्त्र मे भी गणराज्यों की सूची दी हुई है।

*“*पाणिनि ने संघ पर पाणिनि को अपने समय के हिंदू गणराज्यों के बारे में सबसे मूल्यवान जानकारी दी है, जिन्हें मैं लगभग *500* ईसा पूर्व मानता हूं। उन्होंने संघों से जुड़े शब्दों के निर्माण के बारे में कई नियम दिए हैं। नियमों की बड़ी

संख्या से यह पता चलता है कि पाणिनि के समकालीन लोग मौजूदा गणराज्यों को कितना महत्व देते थे। किसी भी अन्य महत्वपूर्ण, रूढ़िवादी संस्था की तरह गणराज्यों ने भी रूढ़िवादी व्याकरणविदों का ध्यान आकर्षित किया। इसके अलावा, पाणिनि ने अपने समय में देश के किस हिस्से और क्षेत्र में गणराज्यों का बोलबाला था, इसका संकेत दिया।" *(* जायसवालपृ *30)*

न्याय

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता और समानता जैसे राजनीतिक आदर्श से पहले न्याय के राजनीतिक आदर्श को स्थान दिया गया है और उसमें भी राजनीतिक न्याय से पहले सामाजिक आर्थिक न्याय को स्थान दिया गया है । इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान निर्माताओं की दृष्टि में सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय वह महत्वपूर्ण पूर्वापेक्षा है जिसके बिना स्वतंत्रता और समानता की प्राप्ति संभव नहीं है । इसलिए उन्होंने न्याय के आदर्श को प्राथमिकता दी । न्याय के प्राचीन व्याख्याकारों मे प्लेटो एवं आधुनिक व्याख्याता में जान राल्स अपना वितरणात्मक न्याय लेकर के आते हैं, उसके पश्चात समकालीन न्याय की व्याख्याता में वाल्जर एवं माइकल सैंडल का नाम उल्लेखनीय है। किंतु इन सब ने जिस प्रकार न्याय की व्याख्या की है उसकी स्पष्ट ध्वनी हमें वैदिक कालीन साहित्य, पुराणों और स्मृतियों में सुनाई देती है । अर्थात इनमें से कोई भी विचार ऐसा नहीं है जो प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध न हो । अतः न्याय की अवधारणा को भारतीय संस्कृति प्रस्तुत मनाना जाना चाहिए । सामाजिक आर्थिक न्याय के लिए सामाजिक आर्थिक समानता और संभव से संबंधित अनेक उदाहरण ऋग्वेद सर्वेद समितियां आदि में विद्यमान है किंतु न्याय है और विधि व्यवस्था से संबंधित प्रमुख दायित्व समितियां पर था जिसमें से दो स्मृतियां बहुत ही प्रसिद्ध है और लिखनी है मनुस्मृति और नारद स्मृति । इसमें नई पद्धति का विस्तृत विवरण है और नारद स्मृति से पता चलता है की कितनी उन्नत नया प्रणाली और विधि व्यवस्था प्राचीन भारत में विद्यमान थी। जिस सामाजिक न्याय की प्राप्ति का आदर्श भारतीय संविधान में दिया गया है और जिसकी उपलब्धता हेतु अनुच्छेद 15 16 17 18 इत्यादि में मौलिक अधिकारों के रूप में प्रावधान किए गए हैं उस सामाजिक न्याय की स्पष्ट ध्वनी नारद स्मृति में सुनाई देती है जहां स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि विभिन्न वर्णों द्वारा एक दूसरे के व्यवसाय को करने में कोई आपत्ती नहीं है और यह सर्वसाधारण द्वारा स्वीकार्य है ।

उत्कृष्टं चापकृष्टं च तयोः कर्म न विद्यते ।
मध्यमे कर्मणी हित्वा सर्वसाधारणे हि ते ॥ ५८ ॥

न्यायलयीन प्रक्रिया

जिस तरह की न्यायलयीन प्रक्रिया आधुनिक न्याय पद्धति में अपनायी जाती है और जो शब्दावलियां प्रचलित है जैसे - वादी, प्रतिवादी, शपथ पत्र, इत्यादि । इन सभी का वर्णन स्पष्ट रूप से प्राचीन भारतीय न्याय प्रणाली में मिलता है जिससे पता चलता है की जो नई प्रणाली आधुनिक समय में आधुनिक न्याय के नाम से स्थापित है वह हजारों वर्ष पूर्व भारत में विद्यमान थी । नारद स्मृति में उल्लेखित है कि -

लिखितं साक्षिणश्चैव द्वौ विधी परिकीत्तितो ।

संदिग्धार्थ विशुद्ध्यर्थं द्वयोविवदमानयोः ॥ ३ ॥
अर्थात विवादों में दो पक्षों के संदिग्ध विषय का निराकरण कर विशुद्धि प्रकाश करने के लिये दो विधियाँ निश्चित हैं-एक है लिखित पत्र और दूसरा है साक्षी।
सोत्तरोऽनुत्तरश्चैव स विज्ञेयो द्विलक्षणः।
सोत्तरोऽभ्यधिको यत्र विलेखापूर्वकः पणः ॥ ४ ॥
अर्थात यह व्यवहार का दो प्रकार हैं। यथा- सोत्तर और अनुत्तर। जब पण रख कर वादी या प्रतिवादी उत्तर देता है तब व्यवहार सोत्तर होता है। यह व्यवहार लेखापूर्वक होना चाहिये।
विवादे सोत्तरपणे द्वयोर्यस्तत्र हीयते।
स एव हि पणं दाप्यो विनयं च पराजये ॥ ५ ॥
दोनों के बीच बादी या प्रतिवादी जो पराजित होता है वह पण देता है और राजा के द्वारा विदित दण्ड भी भोगता है।

सारस्तु व्यवहाराणां प्रतिज्ञा' समुदाहृता।
तद्धानौ हीयते वादी तरंस्नामुत्तरो भवेत् ॥ ६ ॥
अर्थात मुकद्दमा में भाषा पत्र में लिखित सार वस्तु 'प्रतिज्ञा' * शपथपत्र) के रूप में मानी जातो है। इस प्रतिज्ञा में लिखित वस्तु यदि प्रमाणित नहीं हो सकती तो वादी पराजित होता है और प्रमाणित होता है तो विजयी होता है।

समानता
भारतीय संविधान में समानता को मौलिक अधिकार का स्थान प्राप्त है जिसमें विधि के समक्ष समानता, अवसर की सामान्य, भेदभाव का निषेध, इत्यादि महत्वपूर्ण समानताएं है। इसकी स्पष्ट प्रतिध्वनि भारतीय वेदों में सुनाई देती है जहां विधि के समक्ष समानता और अवसर की समानता आदि के उपलब्धता के निर्देश दिए गए हैं -
विधि के समक्ष समानता
सम॒नी व॒ आकू॑तिः सम॒ना हृद॑यानि वः।

सम॒नमस्तु वो॒ मनो॒ यथा॑ वः सुस॒हास॑ति॥
अर्थात स्त्री पुरुष सभी वर्ण वर्ग समान है, सबके हृदय समान होने चाहिए, सबका समान होना चाहिए, सब में परस्पर सहयोग होना चाहिए और सबको परस्पर सहयोग के साथ रहना चाहिए। (ऋग्वेद 10.191.4)

अवसर की समानता , व विभेद का निषेध।
यथे॒मां वाचं॑ कल्या॒णीमा॒वदा॑नि॒ जने॑भ्यः।
ब्र॒ह्म॒रा॒ज॒न्या॒भ्या शूद्राय॒ चार्या॑य॒ च॒ स्वाय॒ चार॑णाय च।
प्रि॒यो दे॒वाना॑ं दक्षि॑णायै दा॒तुरि॒ह भू॑यासम॒यं मे॒ काम॒ः समृ॑ध्यता॒मुप॑ मा॒दो न॑मतु॥

अर्थात किसी को पक्षपात का अधिकार नहीं है और किसी को भी इस बात का अनाधिकार है कि उसके साथ पक्षपात हो सभी मनुष्यों में समानता और सभी मनुष्यों में समान व्यवहार आवश्यक है

(यजुर्वाद 60.2)

स्वतंत्रता

भारतीय संविधान में जीवन विचार विभक्ति व्यवसाय संगठन बनाने आदि की स्वतंत्रता दी गई है जिसमें शिक्षा को भी स्वतंत्रता के रूप में मौलिक अधिकारों में शामिल किया गया है प्राचीन भारतीय साहित्य में विशेष कर वेदों में स्वतंत्रता के समस्त उच्चतम आदर्श का वर्णन है और ज्ञान दान विचार अभिव्यक्ति आदि के बारे में स्पष्ट रूप से कथन है उपनिषदों का महत्वपूर्ण युक्ति है वादे वादे जायते तत्वबोध: अर्थात वाद विवाद वार्तालाप संवाद से तत्व का ज्ञान होता है। इस प्रकार ऋग्वेद का महत्वपूर्ण शलोक है आ नो॑ भद्राः क्रत॑वो यन्तु वि॒श्वतोऽद॑ब्धासो॒ अप॑रीतास उ॒द्भिदः॑।
दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद् वृ॒धे अस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वेऽदि॑वे ॥
अर्थात अच्छे विचारो को विश्वभर से आने दिया जाए।
(ऋग्वेद 1.89.1)

शिक्षा दायित्व माता-पिता और अभिभावकों का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने पुत्र पुत्री की समुचित शिक्षा व्यवस्था करें और उनका विवाह कर गृहस्त में प्रवेश कराएं। इस प्रकार बिना किसी लिंग भेद के सभी बालक बालिकाओं की शिक्षा का अनिवार्य दायित्व हजारों साल पहले वैदिक ऋषियों ने एक महत्वपूर्ण पारिवारिक दायित्व के रूप में उल्लिखित कर दिया था -

अव॑ स्पृधि पि॒तरं॒ योधि॑ वि॒द्वान्पु॒त्रो यस्ते॑ सहसः सून ऊ॒हे।
क॒दा चि॑कित्वो अ॒भि च॑क्षसे॒ नोऽग्ने॑ क॒दाँ ऋ॑त॒चिद्या॑तयासे ॥९॥ (ऋग्वेद ***5.3.9)***

लिखित संविधान

साधारणतः यही उल्लिखित किया जाता है कि विश्व का पहला लिखित संविधान अमेरिकी संविधान है लेकिन भारतवर्ष को यह गौरव प्राप्त है की छठी शताब्दी ईसा पूर्व के समय ही भारतीय गणराज्यों के संविधान लिखित थे। उसका बहुत विस्तृत विवरण ब्राह्मण ग्रंथो में मिलता है विशेष कर ऐतरेय और तैतरेय ब्राह्मण में । इसका विस्तार से उल्लेख प्रोफेसर केपी जायसवाल ने किया है -

"भौज्य संविधान का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण ने किया है। भौज्य संविधान पाली कैनन में कुलपुत्त के लिए खुले करियर की गणना की गई है। इनमें, राजा-वाणिज्यदूत के बाद, हमारे पास रत्तिक और पेत्तानिक हैं। अशोक ने अपने शिलालेखों में भोज को रत्तिक या राष्ट्रिका के बराबर बताया है। अंगुत्तर निकाय पर टिप्पणी में पेत्तानिक को वंशानुगत नेतृत्व (सम्नेय) के रूप में समझाया गया है, जो पूर्वजों से चला आ रहा है। राष्ट्रिक और भेजक या भोज, जो कि पेत्तानिकों के विपरीत थे, का स्पष्ट रूप से गैर-वंशानुगत नेतृत्व था। सम्नेयम नेतृत्व से पता चलता है कि प्रत्येक मामले में एक से अधिक नेता थे। महाभारत में भी शासकों की विभिन्न श्रेणियों की सूची में भोज का उल्लेख एक श्रेणी के रूप में किया गया है (शांति, अध्याय *LXVII, श्लोक 54)*।"...इस व्याख्या के लिए मैं खारवेल के शिलालेख से भी सहमत हूँ,

जिसमें राष्ट्रकों और भोजकों को संप्रभुता के साज-सामान के साथ सामूहिक निकाय के रूप में वर्णित किया गया है। बाद के शिलालेखों में भोज और महाभोज हैं जो नेताओं के उच्च और साधारण वर्ग को दर्शाते हैं। संप्रभुता भोज नेताओं में निहित थी। संविधान को ही ऐतरेय ब्राह्मण में भौज्य कहा गया था।"

वैराज्य संविधान ऐतरेय ब्राह्मण वैराज्य को उत्तर के कुछ 'राष्ट्रों' के राष्ट्रीय संविधान के रूप में वर्णित करता है। इलाके को "हिमालय के किनारे" शब्दों से परिभाषित किया गया है। यजुर्वेद के समय में दक्षिण में इसी प्रकार का संविधान प्रचलित था। इससे पता चलता है कि सरकार का यह रूप केवल उत्तर तक ही सीमित नहीं था, बल्कि व्यापक रूप से विभिन्न इलाकों में अपनाया गया था।**"**

(जायसवाल**1943** पृ **80-81)**

भौज्य और वैराज्य के अलावा राषेट्रीका**,** पट्टानिका आदि गणराज्यो के संविधान का विवरण भी डॉक्टर केपी जायसवाल ने दिया है।

संसदीय प्रक्रिया

गणराज्यों मे बैठक व्यवस्था प्रतिवेदन समिति प्रणाली बैठकों के कोरमा वार्तालाप की प्रक्रिया मतदान की प्रक्रिया मतदान में अनुपस्थित रहने की प्रक्रिया समितियां में संभाषण की पद्धति और प्रतिनिधित्व की प्रणाली इन सब का विस्तृत विवरण बौद्ध और जैन ग्रंथो में विद्यमान है । जिससे पता चलता है कि मौजूदा संसदीय प्रणाली से लगभग ढाई हजार साल पहले भी भारतीय जनमानस पूर्णतया परीक्षित था ।

सीट

"सभी सदस्य जिन्हें उपस्थित होने का अधिकार था, वे इस प्रयोजन के लिए नियुक्त एक विशेष अधिकारी के निर्देशन में रखी गई सीटों पर सभा में उपस्थित थे"

*(*जायसवाल *1943* पृ *91)*

कोरम

यदि कोई कार्य अपेक्षित संख्या में सदस्यों की उपस्थिति के बिना किया जाता था, तो उस कार्य को अवैध और निष्क्रिय माना जाता था: "हे भिक्षुओ, यदि कोई आधिकारिक कार्य अपूर्ण मण्डली द्वारा अवैध रूप से किया जाता है, तो वह कोई वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए।न्यूनतम संख्या में गण-पूरक या सचेतक सदस्यों को एकत्रित करने का दायित्व सदस्यों में से एक को सौंपा गया।" *(* जायसवाल *1943* पृ *93)*

वोट

वोट को छंद कहा जाता था। छंद का शाब्दिक अर्थ है वोट, स्वतंत्र इच्छा और चुनाव। 'इच्छा', 'इच्छा'। इसका अर्थ है कि मतदान में, एक सदस्य अपनी इच्छा व्यक्त कर रहा था। बैठक में उपस्थित रहने के हकदार सदस्यों के वोट, लेकिन जो किसी बीमारी या विकलांगता के कारण उपस्थित नहीं हो सके, उनके वोटों को सावधानीपूर्वक एकत्र किया गया।

ऐसा करने के लिए आयोग ने कार्यवाही को दूषित कर दिया। लेकिन अगर इकट्ठे सदस्यों द्वारा आपत्ति की जाती है तो ऐसे वोटों को खारिज कर दिया जाता है। सदस्यों के लिए उन्हें गिनना वैकल्पिक था, लेकिन आमतौर पर उन्हें एकत्र किए जाने की उम्मीद थी: "हे भिक्षुओ! यदि किसी नति-दुतिया पर सभी भिक्षु कार्य न करें,वोट देने के हकदार मौजूद हैं, लेकिन अगर उन लोगों का छंद जिन्हें यह घोषित करना होगा कि उनका छंद संप्रेषित नहीं हुआ है।
(जायसवाल *1943* पृ *94)*

सार्वभौम मताधिकार और नागरिकता

"गणराज्यों में मताधिकार का आधार परिवार था। …मताधिकार का आधार हिंदू गणराज्य के अंदर जन्म और परिवार के आधार पर समानता संवैधानिक समानता का निर्माण करती थी। संघ में प्रत्येक स्वतंत्र व्यक्ति अपने जन्म से समान था और राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रत्येक परिवार समान था। पाली कैनन में एक अंश भी कुल को मताधिकार का आधार मानता है। लिच्छवियों के पुत्रों को उपदेश देते हुए बुद्ध कहते हैं कि कुल-पुत्र या परिवार के कैडेट के लिए उच्च करियर खुले हैं यदि वे शासक बन सकते हैं, तो वह राष्ट्रिका, या पेट्टनिक, या जनरलिसिमो, या किसी टाउनशिप (गामगामनिक) का अध्यक्ष, या किसी औद्योगिक संघ (पुगागामनिक) का अध्यक्ष बन सकता है। इसका मतलब है कि ये सभी पद निर्वाचित थे और गण-राज्य में कुल-पुत्र इन सभी के लिए पात्र था"
(जायसवाल 1943 पृ 102)

प्राचीन भारतीय साहित्य की विवेचना से स्पष्ट रूप से सिद्ध करती है की स्वतंत्रता समानता न्याय व्यक्ति की गरिमा बंधुता सार्वभौम अधिकार प्रतिनिधित्व की प्रणाली संसदीय प्रक्रिया इत्यादि पाश्चात्य अवधारणाएं नहीं है बल्कि पूर्णत: भारतीय अवधारणाएं हैं। जब पश्चिम में अभी सभ्यता विकसित भी नहीं हुई थी तब भी भारत में यह सारी प्रक्रिया विद्यमान थी। अतः इन अवधारणाओं को पूरी तरह भारतीय मानना चाहिए।
भारतीय संविधान को विभिन्न पश्चिमी संविधानों की नकल करना पूरी तरह से भारतीयता का अपमान करने जैसा है। भारतीय प्रस्तावना में वर्णित संविधान के आदर्श मौलिक अधिकार निर्देशक तत्व नागरिकता सार्वभौम मताधिकार संघवादी व्यवस्था आदि सभी कुछ भारतीय राजनीतिक सामाजिक संस्कृति से उत्पन्न हुई है ,और इसकी जड़ें हमारी प्राचीन सभ्यता संस्कृति और साहित्य में तथ्यात्मक रूप से दस्तावेजी प्रमाण के रूप में विद्यमान है। अतः इन्हें कभी भी किसी भी तरीके से पश्चिमी अवधारणा नहीं कहा जा सकता। प्राचीन भारतीय साहित्य की राजनीति विज्ञान और राजनीति विज्ञान की अवधारणाओं के संदर्भ में व्यापक गवेषणा और शोध की आवश्यकता है क्योंकि इन्हें धार्मिक साहित्य बताकर खारिज कर दिया गया था, जबकि इनमें आधुनिक राजनीतिक मूल्य पूरी तरह गौम्फित है, विद्यमान है। बाह्य आक्रमणों और एक लंबे औपनिवेशिक शासन के कारण भारतीय लोकतांत्रिक संसदीय प्रथाएं बाधित आवश्यक हो गई। और कालांतर में जिस रूप में इन्हें अपनाया गया उससे यह ध्वनित हुया कि यह पश्चिमी अवधारणाएं है। किंतु भारतीय साहित्य की विवेचना यह स्पष्ट कर देती है की औपनिवेशिक शासन में यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया बाधित अवश्य हुई थी किंतु भारतीय संविधान के मौलिक आदर्श पूरी तरह भारतीय हैं और भारतीय संस्कृति प्रसूत हैं, भारत वर्ष ही लोकतंत्र की जननी है।

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद 6.87.1, यह सूक्त ऋग्वेद में है–१०।१७३।१-३। और यह मन्त्र यजुर्वेद में है–१२।११ ॥
2. बन्धोपाध्याय सी ए : हिन्दू पालिटि एण्ड पोलिटिकल थियरीज कलकत्ता 1954 पृ 01
3. बसु डी (1989) भारत का संविधान एक परिचय प्रेन्टस हाल प्रकाशन नयी दिल्ली पृ 21
4. बृहदारण्यक उपनिषद 1.4.14 ऐसा होने पर भी वह सफल नहीं हुआ। वह उत्तम स्वरूप, न्याय, उसने (धर्म) विशेष रूप से प्रदर्शित किया। क्षत्रिय इस धर्म के द्वारा नियंत्रित होता है। फलस्वरूप, उससे बढ़कर कुछ भी नहीं है। राजा के साथ संघर्ष करते हुए, दुर्बल व्यक्ति भी गुण के द्वारा बलवान को (पराजित करना) चाहता है। वह धर्म निस्संदेह सत्य है। फलस्वरूप, जो व्यक्ति सत्य बोलता है, उसके बारे में कहा जाता है कि 'वह धर्म बोलता है', या जो व्यक्ति सत्य बोलता है, उसके बारे में कहा जाता है कि 'वह सत्य बोलता है", क्योंकि दोनों ही धर्म हैं।
5. पाण्डेय वी. (1985) प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास , सेन्ट्र फब्लिंशिंग हाउस इलाहाबाद , 1984.
6. जायसवाल के पी (1943) हिन्दू पालिटि बैगलोर प्रेस 1943 पृ 74
7. नारद स्मृति, धर्मकोष, पी-870
8. नारद स्मृति अध्याय एक श्लोक 3,4,5,
9. मनु स्मृति IX-311
10. मौलर एम (869) कुमार, शैलेंद्र, और संघमित्रा चौधरी। 2021. प्राचीन वैदिक साहित्य और धर्मशास्त्रों के श्लोकों से मानव अधिकारों के तत्वों को समझना। साहित्य 1: 24–40। https://doi.org/10.3390/literature1010004 मे नीहित ।
11. ऋग्वेद 10.173.1 - पुरोहित राजा को राजसूययज्ञ में वेदी पर प्रतिष्ठित करता है और सारी प्रजाएँ उसे चाहें, राजा को इस प्रकार शासन करना चाहिये कि प्रजाएँ सब सुखी रहें, प्रसन्न रहें और राष्ट्र विपत्ति को प्राप्त न हो । एवं विभिन्न श्लोक ।

7

भारतीय संविधान कि 75 वर्षो की यात्रा और गांधीवादी दर्शन: भविष्य के लिए एक सीख

डॉ. शशि भूषण सिंह
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज सांध्य, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. लोकेश कुमार
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, सत्यवती कॉलेज सांध्य, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय संविधान ने 75 वर्षो की गौरवमयी यात्रा पूर्ण कर वैश्विक रूप से ऐतिहासिक मील के पत्थर को पार कर लिया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी का मानना है कि "अंबेडकर का संविधान" के रूप में वर्णित, यह दस्तावेज़ भारत के लोकतंत्र की आधारशिला और इसके लचीलेपन का प्रतीक है। विश्व में जहाँ संविधान अक्सर दशकों के भीतर सामाजिक-राजनीतिक उथल-पुथल के आगे झुक जाते हैं,वहीँ भारत अपने संस्थापक सिद्धांतों पर अडिग रहते हुए अपनी विविध आबादी की ज़रूरतों के अनुसार खुद को ढालते हुए दृढ़ रहा है। यह ऐतिहासिक वर्षगांठ न केवल इसके धीरज का जश्न मनाने का अवसर है, बल्कि राष्ट्र की यात्रा पर इसके गहन प्रभाव को प्रतिबिंबित करने का भी अवसर है। हम सभी जानते है कि प्रत्येक स्वतंत्र देश के लिए, राज्य के दिन-प्रतिदिन के सुचारू संचालन के लिए राष्ट्र के एक पौराणिक कानून यानी संविधान की आवश्यकता होती है। हमारे देश ने 26 जनवरी 1950 को अपने सर्वोच्च कानून को मान्यता दी और भारत को एक संप्रभु, लोकतांत्रिक और गणतंत्र देश घोषित किया। जहाँ जीवन के हर पहलू में संस्कृति, भाषा, खान-पान, रीति-रिवाज और परंपरा में विविधताएँ हैं, लेकिन एकता है कि हम सभी भारतीय हैं, हमारा मातृ संविधान सभी को भारतीय के रूप में बांधता है। संविधान सभा में 389 सदस्य थे लेकिन महात्मा गांधी इस सभा के सदस्य नहीं थे या उन्होंने सीधे तौर पर इसमें भाग नहीं लिया था, लेकिन उनके विचार और विचारधारा ने हमारे संविधान में भाग लिया और ये सिद्धांत प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत, मौलिक कर्तव्यों और संविधान के किसी भी अन्य भाग में प्रतिबिंबित होते हैं। गांधी की विचारधारा ने न केवल हमारे संविधान में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया, बल्कि विभिन्न नियमों, विनियमों, पंचवर्षीय योजना, विदेशी संबंध, विदेश नीति,

कूटनीतिक समझौते एव संधि, मेक इन इंडिया, स्वच्छ भारत अभियान और भारत के जी-20 में के सफल आयोजन से भी प्रतिबिंबित होता है। इस लेख के माध्यम से गांधीवादी सिद्धांतों और विचारधारा को उजागर करने का प्रयास किया गया है और कैसे ये सिद्धांत न केवल व्यक्ति के बल्कि राष्ट्र के चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में भी सहायक होते हुए वैश्विक राजनैतिक परिवेश में भी प्रतिबिंबित होते हैं।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है जिसके पास दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान है, जो सर्वोच्च कानून है, जिसने भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और गणतंत्र राज्य घोषित किया है।

संविधान की इस 75 वर्षो कि यात्रा में महात्मा गाँधी का योगदान सराहनीय है उन्होंने विभिन्न प्रेरणादायक स्रोतों जैसे भगवत गीता, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, बाइबिल, गोपाल कृष्ण गोखला, टॉल्स्टॉय और जॉन रस्किन से प्रेरणा लेकर गांधीवादी विचारधारा को आगे बढाया जो कि न केवल 1920 से लेकर 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक प्रचलित रही और वल्कि एक अनूठे तरीके से राष्ट्रीय मुक्ति प्राप्त करने में सफल होने का गौरव प्राप्त किया, साथ ही कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारे स्वतंत्रता संघर्ष में सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित एक नए प्रयोग का सफल क्रियान्वयन विश्व के समक्ष में दिखाया। "गांधी का 1920-21 का पहला प्रयोग, जिसे अहिंसक और असहयोग आंदोलन कहा जाता है, ने दिखाया कि पहली बार हिंदुओं और मुसलमानों के बड़े वर्गों ने एक राष्ट्रीय लक्ष्य - भारत में स्वशासन के लक्ष्य के लिए सहयोग किया।" गांधी ने लोगों की ऊर्जा को विशिष्ट दिशाओं में निर्देशित करके रचनात्मक आकार दिया, जिसकी अभिव्यक्ति 1920-22 के असहयोग आंदोलन, 1930-32 के सविनय अवज्ञा आंदोलन और अंततः 1942-44 के भारत छोड़ो आंदोलन में हुई। यह उनके करिश्माई प्रभाव के कारण ही था कि उनकी आवाज़ देश की आवाज़ बन गई और उनके कहने पर जनता ने स्वराज की लड़ाई के मैदान में स्वयं को झोंक दिया। वे अंतरराष्ट्रीयता और सार्वभौमिकता के कट्टर समर्थक थे। चूँकि गांधीजी एक प्रखर राष्ट्रवादी थे, इसलिए उन्होंने भारतीय समाज के पुनर्निर्माण और ग्रामीण क्षेत्रों के उत्थान के लिए कुछ मौलिक विचारों पर जोर दिया जैसे कुटीर उद्योग और लघु उद्योग जो ग्रामीणों को उनके मुख्य व्यवसाय कृषि के अलावा अतिरिक्त आय दे सकें। गांधी ने कहा "अहिंसक राज्य सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के उद्देश्य से लोगों की आर्थिक स्थितियों को समान करने का प्रयास करेगा।" उनके इन्ही विचारो को हम भारतीय संविधान की 75 वर्षो की यात्रा में क्या योगदान रहा उसको ही जानने और समझने का प्रायस करेंगे।

भारत के लिए संविधान का गांधी का दृष्टिकोण

गांधी के पास मानवता के हर पहलू के बारे में एक दृष्टिकोण और धारणा थी, जिसे उन्होंने अपने अनगिनत लेखों और भाषणों के माध्यम से दुनिया के साथ बेहिचक साझा किया। वह अपने विचारों को संप्रेषित करने और खुद को संशोधित करने के लिए अन्य नेताओं और आम लोगों के साथ चर्चा शुरू करने के लिए उत्सुक थे। इस प्रक्रिया में, गांधी ने स्वतंत्र भारत द्वारा अपनाए जाने वाले सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोणों पर भी विचार-विमर्श किया। वह जानते थे कि भारत को एक संविधान की आवश्यकता होगी, जिसे उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के मूल सिद्धांतों और हमारी समृद्ध सामाजिक-राजनीतिक परंपराओं और संस्कृति द्वारा पोषित लोकाचार और मूल्यों के अनुरूप लिखा हुआ एक स्मारकीय दस्तावेज माना।

भारत के लिए संविधान को आकार देने में गांधी की भूमिका को विभिन्न चरणों में समझा जाना चाहिए। 1909 की शुरुआत में, गांधी ने 'हिंद स्वराज' में भारत के भविष्य के संविधान पर अपने विचार लिखे। इसमें उन्होंने संसदों के बारे में अपनी शंकाओं को जोरदार तरीके से व्यक्त किया। संविधान की संरचना और संरचना के बारे में गांधी की धारणा की एक और अधिक प्रमुख अभिव्यक्ति 1923 में औंध के लोगों के लिए तैयार किए गए संविधान में देखी जा सकती है।

उस संविधान में, गांधी ने एक विकेंद्रीकृत सरकार की कल्पना की थी, क्योंकि वे अक्सर केंद्रीकृत सत्ता के प्रति अपनी उपेक्षा साझा करते थे, जिसे वे महंगी, अक्षम, निर्दयी और सदेव सत्ता की लालसा रखने वाली व्यवस्था मानते थे। गांधी द्वारा परिकल्पित विकेंद्रीकृत सरकार में ग्राम पंचायतें, पंचायत अध्यक्षों द्वारा गठित तालुक और तालुकों द्वारा

भेजे गए सदस्यों द्वारा गठित विधान सभा थी। इस नीचे से ऊपर की ओर दृष्टिकोण ने ग्राम पंचायत के सदस्य के औंध के प्रधानमंत्री बनने की संभावना सुनिश्चित की। दूसरी शर्त जिस पर गांधी ने औंध में जोर दिया वह यह थी कि केवल साक्षर नागरिक ही मतदान कर सकते थे। पहले चुनाव से पहले, उन्होंने शासक को लोगों को साक्षर बनाने में मदद करने के लिए व्यवस्था करने का सख्त निर्देश दिया। उन्होंने यह भी जोर दिया कि राजकुमार को औंध के एक गरीब नागरिक के रूप में दस साल तक औंध में रहना और काम करना चाहिए। गांधी ने मौलिक अधिकारों को भी शामिल करना सुनिश्चित किया।

फिर भी, 1930 के दशक तक, उन्होंने भारत में संविधान और संसदीय प्रणाली के खिलाफ गंभीर आपत्तियाँ व्यक्त करना जारी रखा। 1928 की नेहरू रिपोर्ट में मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तावित संविधान के बारे में उनकी टिप्पणियों में भी यही झलकता था। लेकिन, जवाहरलाल नेहरू के प्रभाव में, गांधी ने धीरे-धीरे संवैधानिक मामलों में रुचि लेना शुरू कर दिया। गांधी ने दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया और भारत के भावी संविधान के लिए अपने विचारों का योगदान दिया। वे संवैधानिक सुधारों पर चर्चा करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (कांग्रेस) द्वारा आयोजित सत्रों में भी सक्रिय रूप से शामिल थे। इन सभी अवसरों पर, गांधी ने 'स्वराज', एक राज्यविहीन समाज के विचार को आवाज़ दी, क्योंकि उन्होंने केंद्रीकृत, अखंड राज्य को एक 'आत्माहीन मशीन' के रूप में देखा जो नागरिकों के अधिकारों का हनन करेगा। उन्होंने राजनीतिक सत्ता की भ्रष्ट प्रकृति और राजनीतिक दलों की सत्ता की राजनीति का तिरस्कार किया। स्वराज का मतलब पुनर्निर्माण के अपने सिद्धांतों को प्राप्त करने के लिए लोगों और राज्य को सशक्त बनाना था। यंग इंडिया (10 सितंबर 1931) में गांधी ने इस संबंध में कुछ विचार साझा किए, विशेष रूप से, अस्पृश्यता निषेध, लैंगिक समानता, अहिंसा, जाति-आधारित भेदभाव को समाप्त करने आदि से संबंधित प्रावधानों को सुनिश्चित करने की उनकी इच्छा। उन्होंने लिखा, "मैं एक ऐसे संविधान के लिए प्रयास करूंगा, जो भारत को सभी गुलामी और संरक्षण से मुक्त करेगा।"

1934 में, एम.एन. रॉय ने एक संविधान सभा की स्थापना की मांग की, जिसे कांग्रेस ने जल्द ही आगे बढ़ाया; गांधी को संदेह था। लेकिन, 1939 में, उन्होंने जवाहरलाल नेहरू के साथ मिलकर कांग्रेस के प्रस्तावों में संविधान सभा की मांग को शामिल किया, क्योंकि उन्हें लगा कि यह सांप्रदायिक समस्याओं और अन्य समस्याओं को हल करने का 'एकमात्र तरीका' है, साथ ही यह जन राजनीतिक और अन्य शिक्षा का माध्यम भी है। बाद में, 1946 में, जब कैबिनेट मिशन योजना ने एक संविधान सभा का प्रस्ताव रखा और भारतीय राजनीतिक बिरादरी ने इसे इसके विवादास्पद प्रांतीय व्यवस्थाओं के लिए अस्वीकार कर दिया, तो गांधी ने संविधान सभा में शामिल होने के लिए कांग्रेस कार्य समिति के प्रस्ताव को मंजूरी देने के पक्ष में बात की। उन्होंने समझा कि इसकी संरचना में कई दोष थे और कहा, "संविधान सभा आपके लिए गुलाब की सेज नहीं बल्कि केवल कांटों की सेज होगी", लेकिन, उन्होंने यह भी कहा कि ... एक सत्याग्रही सही परिस्थितियों के आने तक प्रतीक्षा या देरी नहीं कर सकता" और कांग्रेस पार्टी से संविधान सभा को "सत्याग्रह का विकल्प" मानने का आग्रह किया, क्योंकि उन्होंने इसे "रचनात्मक सत्याग्रह" कहा था।

संविधान पर गांधी के विचारों का एक और प्रलेखित संग्रह मिलता है श्रीमन नारायण अग्रवाल द्वारा 1946 में लिखी गई पुस्तक 'स्वतंत्र भारत के लिए गांधीवादी संविधान' में महात्मा गांधी ने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखी थी, और

इसमें शासन के सहभागी स्वरूप पर उनके विचार शामिल थे, जिसमें ग्राम पंचायत प्राथमिक राजनीतिक इकाई थी, जिसका उद्देश्य सामाजिक-सांस्कृतिक सद्भाव और कल्याण को राजनीति का लक्ष्य बनाना था।

अग्रवाल (1946:) भारतीय संविधान की गांधीवादी धारणा को "स्वराज के लिए स्वदेशी संविधान" के रूप में घोषित करते हैं। उन्होंने विभिन्न अवसरों पर गांधी द्वारा प्रस्तावित विकेंद्रीकरण के तीन आयामों की पहचान की और उन पर विस्तार से चर्चा की। जबकि जमीनी स्तर से प्रेरित शासन के विकेंद्रीकरण के राजनीतिक पहलू ने "हितों के सामंजस्य और राजनीतिक जीवन की सहजता" को बढ़ावा देने पर जोर दिया, आर्थिक विकेंद्रीकरण ने एक ऐसी उत्पादन प्रणाली की परिकल्पना की जो उपभोग और वितरण के साथ-साथ हो। विकेंद्रीकरण का मूल दर्शन "सादा जीवन और उच्च विचार" पर केन्द्रित था।

श्रीमन नारायण अग्रवाल ने गांधी की संवैधानिक योजना को समेकित किया और गांधी के परामर्श से 'स्वराज संविधान' में निम्नलिखित विशेषताएं सूचीबद्ध कीं:

13 मौलिक अधिकार और तीन कर्तव्य

- पंचायती राज संस्थाएँ
- प्रांतीय सरकारें (3 वर्ष का कार्यकाल; तालुक पंचायतों के अध्यक्षों से बनी)
- रियासतों का विघटन
- एक सदनीय केंद्रीय सरकार (3 वर्ष का कार्यकाल; प्रांतीय पंचायतों के अध्यक्षों से बनी)
- पंचायत स्तर की अदालतों और इस तरह की औपनिवेशिक कानूनी प्रणाली को प्रतिस्थापित करना
- सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों को अस्वीकार करना और साक्षर मतदाताओं की प्रासंगिकता पर जोर देना
- शांति और विश्व महासंघ पर आधारित विदेश नीति की इच्छा
- अल्पसंख्यकों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान
- आर्थिक विकेंद्रीकरण, शिक्षा और स्वास्थ्य पर अधिक खर्च, और धन की सीमा
- 14 वर्ष की आयु तक मुफ्त और अनिवार्य बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता, कृषि, सामाजिक सेवा आदि के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देने वाला पाठ्यक्रम।

संक्षेप में, औद्योगिकीकरण और आधुनिकता पर आधारित पश्चिमी सभ्यता की गांधी की आलोचनाओं ने उन्हें एक स्वतंत्र भारत की अवधारणा की कल्पना करने के लिए प्रेरित किया, जो आध्यात्मिक खोज और व्यावहारिक कार्यों के माध्यम से गरीबी और हिंसा के दोषों को खत्म करने के लिए दृढ़ संकल्पित था। इसमें विकेंद्रीकरण, ग्रामीण उत्थान, सहकारी खेती, ग्रामोद्योग, नई शिक्षा, महिला सशक्तिकरण आदि शामिल थे। यह सब और बहुत कुछ महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित रचनात्मक कार्यक्रम का गठन करता है।

भारतीय संविधान ने राष्ट्र निर्माण के लिए एक संपूर्ण कानूनी ग्रंथ के रूप में अधिनियमित होने के लिए दुनिया भर के संविधानों से विशेषताओं को अपनाया। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के कई प्रावधानों के साथ-साथ, संविधान ने संसदीय सरकार, प्रधानमंत्री का पद, शक्तिशाली निचला सदन, एकल नागरिकता, कानून का शासन, विधायी प्रक्रिया,

मौलिक अधिकार, न्यायिक समीक्षा, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, प्रस्तावना, संशोधन प्रक्रिया, संघीय विशेषताएँ, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्श, समवर्ती सूची, मौलिक कर्तव्य आदि जैसी प्रमुख विशेषताओं को उधार लिया।

राष्ट्रपिता के रूप में, यह संभवतः उचित है कि स्वतंत्र भारत का सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ महात्मा के सपनों को बनाए रखने का प्रयास करें। हम पाते हैं कि यह कई कारणों से एक स्वाभाविक और आसान घटना नहीं थी। सबसे पहले, स्वतंत्र भारत के बारे में अपनी धारणाओं के बारे में विभिन्न मंचों पर विपुल रूप से लिखने के बावजूद, गांधी ने संविधान में शामिल किए जाने वाले प्रावधानों पर अपने विचारों को शामिल करते हुए एक भी पाठ नहीं लिखा था। यह एक अविश्वसनीय सत्य है कि गांधी संविधान सभा के सदस्य नहीं थे। गांधी ने प्रांतीय चुनावों से दूर रहने का फैसला किया और जब संविधान सभा संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए मिली, तो वह जल्द ही सांप्रदायिक दंगों को शांत करने के लिए देश के विभिन्न हिस्सों की यात्रा कर रहे थे। कोई यह तर्क दे सकता है कि यह संयोगवश अलगाव और संविधान सभा के सदस्यों का ब्रिटिश और अमेरिकी संविधानों के प्रति विवादास्पद झुकाव संविधान के मसौदा तैयार करने के शुरुआती चरण के दौरान गांधी और उनके विचारों की मध्यम उपेक्षा का कारण बना।

कई संविधानवादियों द्वारा विवेकपूर्ण टिप्पणियों के बावजूद कि संविधानों को आयात करना अतार्किक है, कोई यह पा सकता है कि भारत के संविधान ने प्रमुख उदार, संसदीय लोकतंत्रों, विशेष रूप से ब्रिटिश संविधानों से भारी मात्रा में उधार लिया है। 1916 की कांग्रेस-लीग योजना और देशबंधु सी.आर. दास और डॉ. भगवानदास द्वारा 'स्वराज की रूपरेखा योजना' (1922) के बाद से, शासन के पश्चिमी पैटर्न की ओर झुकाव भारतीय चर्चाओं में केंद्रीय स्थान प्राप्त कर रहा था। नंदा लिखते हैं कि एनी बेसेंट द्वारा भारत के राष्ट्रमंडल विधेयक (1925), मोतीलाल नेहरू द्वारा नेहरू रिपोर्ट (1928) और सप्रू समिति की रिपोर्ट (1945) ने संघीय विशेषताओं के सुविधाजनक समामेलन के साथ सरकार की केंद्रीकृत लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली पर जोर दिया।

13 दिसंबर 1946 को संविधान सभा में जवाहरलाल नेहरू द्वारा दिए गए प्रसिद्ध भाषण (उद्देश्य प्रस्ताव) में, इसके उद्देश्यों और सिद्धांतों का प्रस्ताव करते हुए, उन्होंने संविधान का मसौदा तैयार करने के हर चरण में गांधी को याद रखने का आग्रह किया। उन्होंने कहा, "एक और व्यक्ति है जो यहाँ अनुपस्थित है और जो आज हममें से बहुतों के मन में अवश्य होगा - हमारे लोगों के महान नेता, हमारे राष्ट्रपिता - जो इस सभा के निर्माता रहे हैं...वे यहाँ नहीं हैं, क्योंकि अपने आदर्शों की खोज में वे भारत के सुदूर कोने में निरंतर काम कर रहे हैं।" प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान, संविधान सभा के एक सदस्य, एम.आर. मसानी ने लोकतांत्रिक राज्य की अपनी धारणा को स्पष्ट करने के लिए गांधीजी का उल्लेख किया। उन्होंने लुइस फिशर से कहे गए गांधीजी के शब्दों को उद्धृत किया, "अब सत्ता का केंद्र नई दिल्ली, या कलकत्ता या बॉम्बे, या बड़े शहरों में है। मैं इसे भारत के सात लाख गाँवों में बाँटना चाहूँगा...तब इन सात लाख इकाइयों के बीच स्वैच्छिक सहयोग होगा।" आगे की चर्चा में, लगभग सभी वक्ताओं ने एक स्वर में महात्मा गांधी के योगदान के लिए उनका आभार व्यक्त किया।

लेकिन, संविधान का मसौदा तैयार करते समय, विकेंद्रीकरण के गांधीवादी मॉडल को अव्यावहारिक, काल्पनिक और दरकिनार माना गया। इसके अलावा, नेहरू और उस समय के कई युवा नेताओं ने देश के लिए महत्वपूर्ण रणनीति के रूप में तेजी से औद्योगिकीकरण और मशीनीकरण की वकालत की। 1947 में, गांधी ने संविधान के मसौदे में ग्राम

पंचायत शब्द की अनुपस्थिति की भी आलोचना की। उन्होंने कहा, "यह निश्चित रूप से एक चूक है, जिस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है यदि हमारी स्वतंत्रता को लोगों की आवाज़ को प्रतिबिंबित करना है। पंचायतों की शक्ति जितनी अधिक होगी, लोगों के लिए उतना ही बेहतर होगा।" उन्होंने यह भी कहा, "अगर गांव को इसमें उचित स्थान नहीं मिलता है तो संविधान का क्या फायदा होगा?" लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि मौजूदा व्यवस्थाएँ इस सपने को साकार करने के लिए पर्याप्त नहीं थीं। उन्होंने रचनात्मक कार्यकर्ताओं से 'गांव को पुनर्जीवित करने' और 'अहिंसक सामाजिक व्यवस्था' स्थापित करने के मिशन को आगे बढ़ाने का आग्रह किया। गांधी ने शायद खुद को यह मानने के लिए तैयार कर लिया था कि केंद्रीकृत संसदीय प्रणाली का पश्चिमी मॉडल अपरिहार्य था और वह "ग्राम गणराज्यों पर आधारित संसदीय स्वराज" के अपने सपनों को एक तरफ रखने के लिए तैयार थे। फिर भी, उन्होंने गांवों को सशक्त बनाने और सुधारने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम का अभ्यास करने की इच्छा को जारी रखा।

दिलचस्प बात यह है कि बहुत से सदस्यों ने जल्द ही इस शून्यता को महसूस किया और संविधान की संरचना में गांधीवादी विचारों को शामिल करने पर जोर दिया। संविधान के प्रारूपण में गांधीवादी विचारों को संविधान के दायरे में अपनाने के संदर्भ में विचार-विमर्श में थोड़ा झुकाव पाया गया।

भारत के संविधान में गांधीवादी सिद्धांत

राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत कई कारणों से अद्वितीय हैं। संविधान के भाग IV (अनुच्छेद 36-51) में शामिल पंद्रह अनुच्छेद चार संशोधनों के साथ राज्यों को एक 'आधुनिक, कल्याणकारी राज्य' के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कार्यक्रमों को अपनाने और क्रियान्वित करने का निर्देश देते हैं। इन गैर-न्यायसंगत सिद्धांतों को भारत सरकार अधिनियम, 1935 में दिए गए 'निर्देशों के साधन' के अनुरूप तैयार किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि इसने देश के समग्र विकास के लिए उनके द्वारा परिकल्पित कुछ गांधीवादी विचारों को आत्मसात किया है। उनकी विचारधारा का सम्मान करने के लिए भारतीय संविधान के भाग IV यानी राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में गांधीवादी सिद्धांत का गठन किया गया ये अनुच्छेद 40, अनुच्छेद 43, अनुच्छेद 43 बी, अनुच्छेद 46, अनुच्छेद 47 और अनुच्छेद 48 हैं। जो कि इस प्रकार हैं: अनुच्छेद 40 पंचायतों के संगठन से संबंधित है, जो 22 नवंबर, 1948 की संविधान सभा की बहस के बाद ग्राम पंचायतों के कार्यान्वयन की परिकल्पना करता है। यह कहता है कि राज्य पंचायत प्रणाली का आयोजन करेगा और उन्हें ऐसी शक्तियां प्रदान करनी चाहिए जो स्व-सरकार प्रणाली की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक होंगी। संविधान के 73वें और 74वें संशोधन जो क्रमशः पंचायती राज और नगर निगमों से संबंधित हैं।

अनुच्छेद 43 उचित मजदूरी और सभ्य जीवन स्तर के बारे में बात करता है। इसमें कहा गया है कि राज्य उचित कानून या आर्थिक संगठन के माध्यम से कृषि, औद्योगिक या अन्य क्षेत्रों में कार्यरत सभी श्रमिकों को काम, जीविका मजदूरी, काम की स्थिति, सभ्य जीवन स्तर और अवकाश और सामाजिक-सांस्कृतिक अवसरों का आनंद सुनिश्चित करने का प्रयास कर सकता है और देश के ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दे सकता है। अनुच्छेद 43 बी सहकारी समितियों को बढ़ावा देने से संबंधित है। इसे 2011 में 97वें संशोधन अधिनियम द्वारा शामिल किया गया था। इसमें कहा गया है कि राज्य सहकारी समितियों के प्रबंधन को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा ताकि इसमें लगे लोगों की मदद की जा सके।

अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और कमजोर वर्गों को शोषण से बचाने से संबंधित है। राज्य समाज के कमजोर वर्गों यानी अनुसूचित जातियों और जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष ध्यान से बढ़ावा देगा और उन्हें सभी प्रकार के शोषण से बचाने के लिए प्रावधान करेगा जिसमें सामाजिक अन्याय भी शामिल है।

अनुच्छेद 47 पोषण, जीवन स्तर और सार्वजनिक स्वास्थ्य के बारे में बात करता है। इसमें कहा गया है कि राज्य अपने लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने के मामले पर ध्यान देगा और सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार पर नजर रखना राज्य का कर्तव्य है। राज्य औषधीय प्रयोजनों को छोड़कर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मादक पेय और दवाओं के सेवन पर प्रतिबंध लगाने का प्रयास करेगा। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, मिड डे मील योजना, आयुष्मान योजना आदि जैसे कई सामाजिक विकास कार्यक्रम हैं जो समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों यानी महिलाओं, बच्चों, कमजोर वर्गों आदि को लक्षित करते हैं।

अनुच्छेद 48 वैज्ञानिक कृषि और पशुपालन के बारे में बात करता है। इसमें कहा गया है कि राज्य आधुनिक तरीकों और वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग करके कृषि और पशुपालन को व्यवस्थित करने का प्रयास करेगा जो लोगों को अधिक उन्नत बनाता है और आसानी से अपनी आजीविका कमाने में मदद करता है और राज्य मौजूदा नस्लों को संरक्षित और सुधारने और गायों और अन्य मवेशियों के वध को प्रतिबंधित करने के लिए कुछ प्रगतिशील कदम उठाएगा।

संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों में भी गांधी के विचार प्रतिबिंबित होते हैं। भेदभाव को रोकने (अनुच्छेद 15), अस्पृश्यता को समाप्त करने (अनुच्छेद 17), धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने (अनुच्छेद 25) और अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने (अनुच्छेद 29-30) के लिए अनुच्छेद शामिल किए गए हैं। 42 अनुच्छेद 21ए के माध्यम से शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए संविधान (86वां संशोधन) अधिनियम, 2002, जिसमें राज्य को छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया है, एक और स्वागत योग्य कदम है। इसी तरह, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को अपनाना और क्षेत्रीय भाषाओं को शामिल करना जनता को सत्ता का हस्तांतरण और देश की बहुसांस्कृतिक प्रकृति का सम्मान करने के गांधीवादी विचारों के अनुरूप है। हालाँकि गांधी ने मौलिक कर्तव्यों को छोड़ने के लिए मसौदा समिति की खुले तौर पर आलोचना की थी, लेकिन अनुच्छेद 51ए के तहत इसे 1976 में 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया।

नागरिक जीवन पर गांधी दर्शन की प्रासंगिकता

सत्य और अहिंसा के आदर्श जो पूरे दर्शन का आधार हैं, वे सभी मानव जाति के लिए प्रासंगिक हैं और गांधीवादियों द्वारा सार्वभौमिक माने जाते हैं। लोगों को संगठित करने की गांधीवादी तकनीक को संयुक्त राज्य अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग, दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला और म्यांमार में आंग सान सू जैसे लोगों के नेतृत्व में दुनिया भर के कई उत्पीड़ित समाजों द्वारा सफलतापूर्वक नियोजित किया गया है, जो महात्मा गांधी की निरंतर प्रासंगिकता का एक स्पष्ट प्रमाण है। दलाई लामा का संस्करण "आज हमारे पास शांति और भौतिकवाद की शक्ति और मन के बीच विश्व युद्ध, लोकतंत्र और अधिनायकवाद के बीच एक बड़ा युद्ध चल रहा है"। इन बड़े युद्धों से लड़ने के लिए ही गांधीवादी दर्शन को समकालीन समय की आवश्यकता थी।

गांधी का न्यायिक सिद्धांत

सत्य, समानता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित न्याय का गांधीवादी सिद्धांत। लोक अदालत की अवधारणा विश्व न्यायशास्त्र में एक अभिनव भारतीय योगदान है और यह गांधीवादी सिद्धांत पर आधारित है। यह म.प्र. राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम प्रतीक जैन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में आयोजित किया गया था। महात्मा गांधी ने राय की अनुमति दी और उपदेश दिया कि कानून का सम्मान करना चाहिए। लेकिन कानून उचित, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण होना चाहिए और यदि कानून अन्यायपूर्ण, अनुचित या अनुचित है तो लोगों को ऐसे कानून का पालन नहीं करना चाहिए। कई बार उन्होंने सविनय अवज्ञा का समर्थन किया और आपराधिक अवज्ञा का विरोध किया। महात्मा को उद्धृत करते हुए उपराष्ट्रपति जगदीश धनकड़ ने कहा कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंतर्निहित हिस्सा नहीं है और मानव बंधुत्व, लोगों का कल्याण और समाज के अंतिम व्यक्ति की भलाई "भारतीय संस्कृति की आधारशिला" रही है। उन्होंने कहा, "गांधीजी का दर्शन 'वसुधैव कुटुम्बकम' - पूरी दुनिया एक परिवार है - की सदियों पुरानी शिक्षा पर आधारित है।" उन्होंने आगे कहा, "उसी गांधीवादी आदर्शों को 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास, सबका प्रयास' के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता में अभिव्यक्ति मिली है। यह कोई राजनीतिक प्रतिबद्धता नहीं है, यह एक राष्ट्रीय प्रतिबद्धता है।"

लोकतंत्र पर गांधीवादी दृष्टिकोण

लोकतंत्र पर महात्मा गांधी का दृष्टिकोण "अपनी समग्रता में, लोकतंत्र का तात्पर्य है कि विकास और प्रशासन के कार्य को सौंपे गए किसी भी लोकतांत्रिक ढांचे से न केवल चुनाव के सिद्धांत के अनुसार लोकतांत्रिक रूप से गठित होने की अपेक्षा की जाती है, बल्कि लोगों की स्वतंत्र इच्छा को भी प्रतिबिंबित करना चाहिए और उनके संविधान और उनके दिन-प्रतिदिन के कामकाज में लोकतंत्र के तत्व के अनुसार कार्य करना चाहिए।" लोकतंत्र से अधिक लोकप्रिय और प्रचलित, और फिर भी अधिक विवादास्पद कोई शासन प्रणाली नहीं है। यह सभी व्यक्तियों की समानता और जीवन, स्वतंत्रता और खुशी की खोज के समान अधिकारों की मौलिक धारणा पर आधारित सरकार का एक रूप है। लोकतंत्र एक महान संस्था है और इसलिए इसका बहुत अधिक दुरुपयोग होने की संभावना है। बहुमत और विपक्ष के बीच निरंतर रस्साकशी सरकार को चौकन्ना रखती है। नीतिगत निर्णयों के बारे में, गांधी ने कहा, कि जब हम "धैर्यपूर्वक अपने विरोधियों को बदलने की कोशिश करते हैं, तब और केवल तभी, अंततः आम सहमति प्राप्त हो सकती है"। राय के हिंसक प्रदर्शन के स्थान पर, गांधी ने "मीठे अनुनय" का समर्थन किया। गांधी के अनुसार: "क्रोध हमारी असहिष्णुता को साबित करता है", और कहा कि "एक दूसरे की आलोचनाओं को सहन करने की क्षमता सार्वजनिक जीवन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है।" गांधी की पुष्टि करते हुए, बर्ट्रेंड रसेल ने कहा: "यदि आपकी खुद की राय के विपरीत एक राय आपको क्रोधित करती है, तो यह एक संकेत है कि आप अवचेतन रूप से इस बात से अवगत हैं कि आपके पास ऐसा सोचने का कोई अच्छा कारण नहीं है।' हिंसक होने का सबसे सम्मोहक कारण यह है कि हम तर्क का उपयोग करके किसी बहस को नहीं जीत सकते।" समय के साथ लोकतंत्र की धारणा काफी विकसित हुई है और आम तौर पर, लोकतंत्र के दो मौजूदा प्रकार प्रत्यक्ष और प्रतिनिधि हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में, लोग सीधे विधायिका पर विचार-विमर्श करते हैं और निर्णय लेते हैं। प्रतिनिधि लोकतंत्र में, लोग संसदीय या राष्ट्रपति लोकतंत्र जैसे कानूनों पर विचार-विमर्श करने और निर्णय लेने के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण

गाँधी का मानना था की सर्वोदय समाज को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की मूल इकाई होना चाहिए। सर्वोदय एक शब्द है जिसका अर्थ है 'सार्वभौमिक उत्थान' या 'सभी की प्रगति'। यह शब्द सबसे पहले गांधी द्वारा गढ़ा गया था और बाद में विनोबा भावे जैसे गांधीवादियों ने इस शब्द को स्वतंत्रता के बाद के भारत में सामाजिक आंदोलन के नाम के रूप में अपनाया, जिसने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि आत्मनिर्णय और समानता भारतीय समाज के सभी वर्गों तक पहुंचे। ऐसे समाजों में सभी को सभ्य और सम्मानजनक जीवन जीने के लिए ईमानदारी से काम करके पर्याप्त उत्पादन और कमाई करने का समान अवसर मिलेगा। जो लोग अधिक कमाते हैं वे अपनी अधिक कमाई का बड़ा हिस्सा समाज की भलाई के लिए इस्तेमाल करेंगे। ऐसे समाज में, भूमि सहित सभी धन को सभी के कल्याण के लिए उपयोग की जाने वाली सामान्य संपत्ति माना जाएगा। प्रत्येक वयस्क को निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिलता है, और निर्णय 'पसीने से राजी' होकर लिया जाता है। कोई पार्टी प्रणाली नहीं होगी और समाज बहुमत के अत्याचार की बुराई से मुक्त होगा। गांधीवादी समाजवाद महात्मा गांधी के सिद्धांतों की राष्ट्रीय व्याख्या पर आधारित समाजवाद की शाखा है।

अस्पृश्यता पर गांधीजी के विचार

गांधीजी का मानना था कि ईश्वर मनुष्यों में उनके रूप, त्वचा के रंग या जीविका के लिए उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के आधार पर कोई अंतर नहीं करता है। उनका मानना था कि धर्म भी जाति या आस्था के आधार पर जनसांख्यिकीय विभाजन की अनुमति नहीं देता है और ऐसी कोई भी प्रथा समाज और राष्ट्र के लिए विनाशकारी है। गांधीजी ने अछूतों को भी ईश्वर की सच्ची संतान माना, इसीलिए उन्होंने उन्हें "हरिजन" यानी ईश्वर की संतान नाम दिया। अपने पूरे जीवन में उन्होंने जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए काम किया और विशेष रूप से अस्पृश्यता की निंदा की। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था कुछ और नहीं बल्कि मानव मन की एक बुरी रचना है, जो केवल 'वर्ण' या जीविका के लिए किए जाने वाले कार्य पर आधारित है। उन्होंने यह भी माना कि छुआछूत जातिवाद से भी अधिक गंभीर अपराध और पाप है। गांधीजी ने अछूतों के उत्थान के लिए हर संभव प्रयास किया। उन्होंने समाज को साफ करके भगवान की सच्ची सेवा करने के लिए "भंगियों" को भी संरक्षण दिया। उन्होंने उनके सामाजिक उत्थान के लिए अथक प्रयास किए। उन्होंने लोगों से अछूतों को समाज में सम्मानजनक और समान दर्जा देकर अछूत प्रथा के अमानवीय और पापपूर्ण व्यवहार के लिए पश्चाताप करने की अपील की। वह इस तथ्य से अवगत थे कि जातिवाद का पूर्ण उन्मूलन संभव नहीं होगा; फिर भी, उन्होंने अछूत प्रथा की कड़ी निंदा की और इसे धर्मनिरपेक्षता के लिए सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखा

गांधीजी ने अहिंसा को न केवल एक दर्शन और एक राजनीतिक रणनीति के रूप में बढ़ावा दिया, बल्कि न्याय और परिवर्तन प्राप्त करने के साधन के रूप में भी। शायद गांधीजी की सबसे महत्वपूर्ण विरासत शांति की संस्कृति का निर्माण करना, अहिंसक असहयोग की प्रभावशीलता को साबित करना और दुनिया का ध्यान इस ओर आकर्षित करना था कि हम क्या करते हैं और हम क्या करने में सक्षम हैं। गांधीजी के विचार हर दिन समानता, सशक्तिकरण और वैश्विक नागरिकता के काम को आगे बढ़ाते हैं। हमारे संविधान निर्माताओं ने गांधी के न्याय के दर्शन के महत्व को

अच्छी तरह से समझा और इसे हमारे संविधान की आधारशिला बनाया। समानता के सिद्धांत, अस्पृश्यता की निंदा, मौलिक कर्तव्य, निर्देशक सिद्धांत और 73 वें संशोधन द्वारा संविधान में पंचायती राज की शुरूआत, सभी गांधी की न्याय की अवधारणा और ऐसे न्याय को प्राप्त करने के साधनों को रेखांकित करते हैं।

पिछले सात दशकों में, केंद्र और राज्य सरकारों ने राष्ट्रपिता के सपनों को साकार करने के लिए विभिन्न परियोजनाओं, योजनाओं, विनियमों और अधिनियमों को लागू किया है। इन प्रयासों के बावजूद, गांधी द्वारा परिकल्पित सिद्धांतों और प्रावधानों तथा वास्तविक संविधान में शामिल सिद्धांतों और सरकारों द्वारा लागू किए गए सिद्धांतों की बारीकी से तुलना करने पर जानबूझकर कर किया गया अंतर सामने आएगा कि गाँधी के सपनों का भारत निर्माण करने के पथ पर वर्तमान राजनैतिक , सामाजिक आर्थिक व्यवस्था कितना कारगर सिद्ध हुई है

संदर्भ सूची

1. Constituent Assembly Debates: Volume I, (From 9th December, 1946 to 21st December, 1946) Constituent Assembly Secretariat, New Delhi - 1946.
2. Constituent Assembly Debates: Volume VI, (From 4th November 1948 to 1st January, 1949) Constituent Assembly Secretariat, New Delhi - 1948.
3. Constituent Assembly Debates: Volume VI, (From 4th November, 1948 to 8th January, 1949) Constituent Assembly Secretariat, New Delhi - 1949.
4. Gandhi. M.K: "India of My Dreams", NAvjivanPublishing House, Ahmedabad, 1970.
5. Gandhi, M.K. : An Autobiography of the Story of "My Experiments with Truth" Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1956.
6. Gandhi, M.K. : Socialism of My Conception Bhartiya Vidya Bhavan, Chopatty, Bombay-1966.
7. Gandhi. M.K.: Panchayat Raj (Compiled by Prabhu R.K.) Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1969.
8. Gandhi,M.K.:KHADI (Hand spun cloth) Why and How? Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1959.
9. Gandhi.M.K.:"Man V. Machine", Bhartiya Vidaya Bhawan, Bombay, 1966.
10. Gandhi,M.K.:"Hind Swaraj of Indian Home Rule" Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1956.
11. Gandhi.M.K.:"Satyagraha in South Africa"Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1950.
12. Gandhi. M.K.: The Science of Satyagraha, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1962.
13. Gandhi, M.K.: Communal Unity (N.P. House, Ahmedabad) 1940.
14. Gandhi. M.K.: An Autobiography (Navjivan Press, Allahabad) 1961.

15. Gandhi, M.K.: Constructive Programme: Its Meaning and Place, Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1950.
16. Ahluwalia, B.K. :Facts of Gandhi. Lakshmi Book House, New Delhi, 1968.
17. Acharya, J.B. Kriplani: Gandhian Thought Punjab University Publication Bureau, Chandigarh, 1964.
18. Austin Granvilla: The Indian Constitution. Cornerstone of a Nation, Oxford University Press, Bombay, 1979.
19. Bose, Nirmal Kumar : Selections From Gandhi. Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1948.
20. Bose, Nirmal Kumar: Gandhi-The man and his Misson Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1966.
21. Bhagwan, Vishnoo: Indian Political Thinkers, AtmaRam & Sons, Delhi, 1983.
22. Bakshi, S.R.: Gandhi and Non-Co-operation Movement 1920-22. Capital Publishers, New Delhi, 1983.
23. Chaudhary Ram Narayan: Bapu As I saw him. Navjivan Publishing House, Ahmedabad,1959.
24. Chatterjee, A.: Constitutional Development of India. 1937-47.Firma K.L.M. Calcutta, 1958.
25. Chaudhary, P.C. Roy:Gandhi's First Struggle in India,Navjivan Publishing House,Ahmedabad, 1963.
26. Desai, Mahadev:Gandhiji in Indian Villages, S.Ganesan, Madras, 1927.
27. Dhawan, G.N. :The Political Philosophy ofMahatma Gandhi. The PopularBook Depot, Bombay, 1948.
28. Patil, S.H.:Gandhi &Swaraj, Mittal Publishers, Delhi, 1983.
29. Sen S.P. (Editor) : Dictionary of National Biography, Institute of Historical Studies, Calcutta, 1973.
30. Sankhdherm M.M.: Gandhi, Gandhism and the Partition of India. Deep Publishers, New Delhi, 1981.
31. Sharma, Bishan Samp: Gandhi as a Political Thinker. India Press (Publication) Pvt. Ltd., Allahabad, 1956.
32. Sen,N.B.: Wit And Wisdom ofMahatma Gandhi. New Book Society of India Publishers, New Delhi 1960.
33. Shah, Ghanshyam& :Gandhian approach to Rural Chautervedi Hit. Development, Ajanta Publishers, Delhi, 1981.

34. Shridhar, Krishan Lal: The Mahatma and the World. Thacker & Co. Ltd., Bombay, 1946.
35. Chatterjee, Bijoylal: Gandhi The Champion of Decentralization, The Modem Review. Vol. 97, No. 5, (May, 1955).
36. Dey, S.K.: "Gandhi's Concept of Indian Democracy", Kurukshetra, Vol. XVII, Annual Number, (October, 1966).
37. Gupta, Ram Chander : Gandhi's Approach to Socialism" Sexena, K.S. (ed.) Gandhi Centenary Papers, Vol. IV (Publishing Division Council of Oriented Research, New Delhi) 1972.
38. Gangal, S.C.: "Gandhi and World Order", Mishra, K.P. and Gangal, S.C. (ed.) Gandhi and the Contemporary World (Chankya Publications, Delhi) 1981.
39. Jones, Morris, W.H.:Mahatma Gandhi Political Philosopher, Indian Journal of Political Science, Vol.XXLNo.3 (July-September, 1960).
40. Kabadi P. Woman: The Immortal Mahatma (Indian Readers Digest Publication Yeshanand & Co. Book-sellers &Publishers Fort, Bombay, 1948.
41. Mukherjee, Hiren:"Gandhi and The Village", Kurukshetra, Vol. XVII, Annual Number (October 1969).Pradhan, R.C. :Gandhi and The Language Problem in India:(Indian Political Science Review) Vol. IV The Deptt. of Pol. Science, University of Delhi, October 969 to March 1

8

भारत का संविधान: लोकतंत्र और सामाजिक न्याय का दस्तावेज

डॉ.हरिराम परिहार

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, एस. बी. के. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,जैसलमेर (राजस्थान)

संविधान वह दस्तावेज है जिसमें किसी देश की शासन व्यवस्था, सरकार के स्वरूप, नागरिकों के अधिकार और उनकी समुचित रक्षा का प्रावधान होता है। भारतीय संविधान को देश का सर्वोच्च पवित्र ग्रंथ कहा जाता है। यह दस्तावेज देश में लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है। संविधान निर्माण की कहानी से इसके महत्व को समझा जा सकता है। बाल गंगाधर तिलक द्वारा रखे गये स्वराज विधेयक (1895) में सर्वप्रथम संविधान निर्माण के बीज खोजे जाते हैं। इसके बाद महात्मा गाँधी द्वारा संविधान निर्माण हेतु संविधान सभा जैसे संगठन की अप्रत्यक्ष मांग, नेहरू रिपोर्ट, एम.एन. राय द्वारा संविधान सभा के गठन की स्पष्ट मांग और कांग्रेस द्वारा सभा के गठन का प्रस्ताव (1934) इस संदर्भ में महत्वपूर्ण घटनायें हैं। अगस्त प्रस्ताव (1940) में अंग्रेजों ने भी पहली बार संविधान सभा के गठन का प्रस्ताव रखा था और क्रिप्स प्रस्ताव में तो पूर्ण रूप से भारतीयों से युक्त सभा के गठन का प्रस्ताव रखा गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैण्ड में हुये राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। एटली की सरकार द्वारा भारत की समस्याओं पर विचार करने हेतु अपने तीन कैबिनेट मंत्रियों (कैबिनेट मिशन) को भारत भेजा गया। इसी कैबिनेट मिशन (सर पैथिक लॉरेंस, ए.वी. एलेक्जेंडर, सर स्टेफर्ड क्रिप्स) योजना के तहत् संविधान सभा का गठन हुआ था। इस योजना के अनुसार प्रत्येक दस लाख की जनसंख्या पर एक सदस्य लेने का प्रावधान किया गया। इसके अनुसार सभा की संख्या 389 निर्धारित की गई। इनमें से 296 (292 ब्रिटिश प्रांतों व 4 चीफ कमीश्नरी प्रांतों) सदस्य ब्रिटिश भारत व 93 सदस्य देसी भारत से लिये जाने का प्रावधान किया गया। **[01]** 9 दिसम्बर, 1946 को सभा की प्रथम बैठक डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता मे हुई। जिसमें कुल 207 सदस्यों ने भाग लिया। जिनमें 10 महिलायें थी। 11 दिसम्बर, 1946 को सभा ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को अपना स्थायी अध्यक्ष निर्वाचीत किया जबकि 13 दिसम्बर को पं. जवाहरलाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव रखा जिसे सभा द्वारा 22 जनवरी, 1947 को स्वीकार किया गया। 29 अगस्त, 1947 को सभा की महत्वपूर्ण समिति-प्रस्ताव समिति का गठन हुआ। 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा द्वारा अंगीकृत्त किया और इस दिन कुल 16 अनुच्छेद लागू हुये। **[02]** जबकि 26 जनवरी, 1950 को संविधान पूर्ण रूप से लागू हुआ। सभा के कुल 12 सत्र हुये। जिसमें 167 दिन सभा की बैठकें हुई। कुल 15 महिलाओं का संविधान निर्माण में योगदान रहा। संविधान लागू होते समय इसमें 22 भाग, 8 अनुसूचियाँ तथा 395 अनुच्छेद थे।

विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान, विधि का शासन, संघात्मक और संसदात्मक शासन व्यवस्था, मौलिक अधिकारों व राज्य के नीति निदेशक तत्वों में सामजंस्यता, मूल कर्त्तव्यों की विद्यमानता, एकल नागरिकता, एकल न्यायपालिका, शक्तियों का पृथक्करण, वयस्क मताधिकार और स्थानीय स्वशासन की ईकाईयों का विस्तृत उल्लेख इस संविधान की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं।भारतीय संविधान लोकतंत्र और सामाजिक न्याय का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसे निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता हैं -

वयस्क मताधिकार - वयस्क मताधिकार लोकतंत्र की आवश्यक शर्त हैं। संविधान लागू होने के साथ ही अनुच्छेद 326 के तहत् सभी 21 वर्ष के नागरिकों को मताधिकार प्रदान किया गया। अनुच्छेद 326 के अनुसार "लोकसभा और प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिये निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे।"**[03]** 52 वें संविधान संशोधन द्वारा 1985 में इस आयु को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। भारत में संविधान लागू होने के साथ वयस्क मताधिकार प्रदान करना एक क्रान्तिकारी कदम था। इंग्लैण्ड, अमेरिका जैसे देशों में इसे चरणबद्ध तरीके से प्रदान किया गया। वहीं हमारे संविधान निर्माताओं ने इसे एकदम लागू किया। अमेरिका में महिलाओं को 1919 में मताधिकार प्रदान किया गया।

संविधान सभा में 26 नवम्बर, 1949 को बोलते हुये डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इसे संविधान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता बतलाया उन्होंने कहा - "यदि उनको (मतदाताओं) वस्तुस्थिति समझा दी जाये तो वे केवल निर्वाचन की बारीकियों को ही नहीं समझेंगें बल्कि बुद्धिमानी पूर्वक अपना मत भी देंगे और इसलिये इनके कारण भविष्य के प्रति मुझे कोई शंका नहीं है।" **[04]** आज भारत में लगभग 96.88 करोड़ (1 जनवरी, 2024) मतदाता है जो विश्व में सर्वाधिक है व इनमें से 49.72 करोड़ पुरूष तथा 47.15 करोड़ महिला मतदाता है। 48,044 थर्ड जेंडर भी है। **[05]** बिना किसी भेदभाव के मताधिकार ने भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाया है। अनुच्छेद 325 मताधिकार के संदर्भ में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव का निषध करता है।

शक्तियों का पृथक्करण - शासन के तीनों अंग - व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में शक्तियों का समान वितरण और नियंत्रण एवं संतुलन का सिद्धांत भी लोकतंत्र की आवश्यक शर्त है। भारतीय संविधान इन तीनों अंगों के न केवल पृथक्करण का प्रावधान करता है बल्कि उनमें संतुलन भी बनाये रखता है। व्यवस्थापिका के रूप से संसद (लोकसभा व राज्यसभा) है जो विधि निर्माण की सर्वोच्च संस्था है, जबकि कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् है जो क्रियान्वयन हेतु जिम्मेदार हैं। न्यायपालिका का मुख्य कार्य संविधान के अनुसार विधि निर्माण व उसके क्रियान्वयन पर निगरानी रखना है। संसद के पास अनुच्छेद 368 के तहत् संविधान में संशोधन की शक्ति है, वहीं न्यायपालिका भी संविधान के आधारभूत ढाँचे के सिद्धांत (केशवानंद भारती बनाम् केरल राज्य) के आधार पर किसी संशोधन की समीक्षा कर सकती है। शक्तियों के इस पृथक्करण से शासन का कोई भी अंग किसी पर हामी नहीं हो सकता है। फलस्वरूप नागरिकों के संविधान प्रदत्त सुरक्षित रहते हैं।

मौलिक अधिकार - संविधान के भाग तीन द्वारा नागरिकों को छह मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। इन मौलिक अधिकारों द्वारा नागरिकों को अपने व्यक्तित्व के विकास का समुचित अवसर प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 14 में जहाँ एक ओर विधि के समक्ष समानता प्रदान कर सभी भेदभाव का निषेध कर दिया गया है वहीं दूसरी ओर इसी अनुच्छेद में विधि का समान संरक्षण उल्लेखित कर समाज के पिछड़े वर्गों को भी संरक्षण प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 17 के तहत् छुआछुत का अंत कर सभी व्यक्तियों को समान दर्जा प्रदान किया गया है वहीं अनुच्छेद 18 द्वारा उपाधियों (शिक्षा व सेना को छोड़कर) का अंत कर समाज में वी.आई.पी. संस्कृति को समाप्त किया गया। बेगार प्रथा, मानव व्यापार और बालश्रम का अंत कर भारतीय संविधान लोकतंत्र के सिद्धांतों को मजबूत करता है। जहाँ एक ओर धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28) सभी व्यक्तियों को अन्त:करण की स्वतंत्रता प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा और संस्कृति का अधिकार (अनुच्छेद 29-30) अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति के संरक्षण को भी सुनिश्चित करता है। जहाँ एक ओर संविधान सभी नागरिकों को भारत के राज्यक्षेत्र में अबाध घूमने करने और निवास करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19 (1) (d) प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जनजाति के हितों की रक्षा के लिये इन पर युक्तियुक्त निर्बंधन (अनुच्छेद (5)(2)) का भी प्रावधान करता हैं।

मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर उनके समुचित संरक्षण हेतु संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32) संविधान की एक सुन्दर विशेषता हैं। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने इस अधिकार को भारतीय संविधान की आत्मा की संज्ञा दी थी। संविधान में केवल मौलिक अधिकारों की ही व्यवस्था नहीं है, बल्कि उनका संरक्षण भी स्वयंमेव एक मौलिक अधिकार हैं।

पिछड़े वर्गों के प्रावधान - भारतीय संविधान पिछड़े वर्गों के कल्याण की समुचित व्यवस्था करता है। समाज के अंतिम व्यक्ति को स्वतंत्रता समानता और न्याय जैसी अवधारणाओं से परिचय करवाता है। मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत अनुच्छेद 15 व 16 द्वारा क्रमश: शिक्षण संस्थाओं व लोक नियोजन में सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया है, इसी प्रकानर से अनुच्छेद 15(3) में महिलाओं और बच्चों के लिये विशेष प्रावधान का उल्लेख है। अनुच्छेद 41 से बेकार, बुजुर्ग, बीमार और नि:शक्तों हेतु काम, शिक्षा और लोक सहायता का अधिकार, अनुच्छेद 42 में काम की न्यायसंगत और मानवोचित्त दशायें, अनुच्छेद 43 में न्यूनतम वेतन जैसे प्रावधान भारतीय संविधान को सामाजिक न्याय का घोषणा पत्र बना देते हैं। अनुच्छेद 46 में दुर्बल वर्गों के कल्याण का उल्लेख हैं।

अनुच्छेद 330 द्वारा लोकसभा में अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों तथा अनुच्छेद 332 द्वारा विधानसभा में अनुसूचित जातियों व जनजातियों हेतु स्थानों का आरक्षण का प्रावधान पिछड़े वर्गों को समाज की मुख्य धारा में लाने और उनकी नीति निर्धारण में भूमिका को तय करता है। इसी प्रकार से अनुच्छेद 335 में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिये अर्हता अंकों में छूट का प्रावधान करता है। 73वें और 74वें संविधान संशोधन द्वारा क्रमश: पंचायत राज संस्थाओं और नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाओं हेतु स्थान आरक्षित किये गये हैं। इस संदर्भ में 106वें संविधान संशोधन (नारी शक्ति वंदन अधिनियम) की भी चर्चा करना आवश्यक है जो लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं हेतु 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करता है।

इस हेतु संविधान में 330 क, 332 क और 334 क नामक तीन नये अनुच्छेद संविधान में जोड़े गये हैं। यह संशोधन अभी भले ही लागू नहीं हुआ है, लेकिन इस 106वें संशोधन ने समाज की आधी आबादी का नीति निर्माण संस्थाओं में न्यूनतम एक तिहाई भागीदारिता सुनिश्चित कर संविधान को और अधिक लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान कर दिया है।

भाषा संबंधी प्रावधान - संविधान सभा में सर्वाधिक बहस भाषा के विषय पर हुई। 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू होते समय आठवीं अनुसूची में 14 भाषाओं को शामिल किया गया। अनुच्छेद 343 के अर्न्तगत हिन्दी को राजभाषा बनाया गया। इस विषय पर बहस के दौरान सभा ने पूर्णतया लोकतांत्रिक विधि का अनुसरण करते हुये संविधान लागू होने के अगले 15 वर्षों तक अंग्रेजी को भी जारी रखने का निर्णय लिया। 14 भाषाओं को एक साथ मान्यता संविधान को समावेशी बनाता है। वर्तमान में आठवीं अनुसूची में 22 भाषायें हैं। 21वें संशोधन द्वारा 1967 में सिंधी, 71वें संशोधन द्वारा 1992 में कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली तथा 92वें संशोधन द्वारा वर्ष 2004 में इसमें बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली जैसी भाषाओं को शामिल किया गया। 22 भाषाओं को संविधान प्रदत्त मान्यता ने भारतीय संविधान को सबका साथ, सबका विकास से युक्त दस्तावेज बना दिया है। बोलने वालों की संख्या कम हो जाने के बावजूद भी उन भाषाओं को संवैधानिक संरक्षण नि:सन्देह लोकतांत्रिक आदर्शों को फलीतार्थ करने का प्रयास है।

पाँचवीं व छठी अनुसूची - स्वतंत्रता से पूर्व आदिवासी समुदाय के लोक जंगलों में रहते थे। मुख्यधारा के लोगों से दूर उनकी अपनी जीवन शैली और नियम थे। उनकी विशेष संस्कृति को संरक्षण प्रदान करना संविधान निर्माताओं के समक्ष बड़ा प्रश्न था। साथ ही उन्हें अन्य समुदायों के साथ जोड़ना भी था। उन्हीं उद्देश्यों को लेकर संविधान में पाँचवीं व छठी अनुसूची जोड़ी गई। इन तीनों अनुसूचियों द्वारा अनुसूचित जनजाति की विशेष संस्कृति को संरक्षण प्रदान किया गया है। 26 नवम्बर, 1949 को सभा में बोलते हुये डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि इन प्रावधानों से जनजातियाँ प्रशासन पर अपना प्रभाव डाल सकेगी। **[06]** पाँचवीं व छठी अनुसूची के कारण अनुसूचित क्षेत्र स्थापित करना संभाव हुआ है। यह क्षेत्र जनजातियों की विशेष संस्कृति का संरक्षण सुनिश्चित करते हैं। इस प्रकार से संविधान के यह प्रावधान सामाजिक न्याय और लोकतंत्र के उपकरण सिद्ध हो रहे हैं।

पंथनिरपेक्षता - भारतीय संविधान के पंथनिरपेक्ष स्वरूप ने अल्पसंख्यकों की आशंकाओं को दूर किया है। केशवानंद भारती बनाम् केरल राज्य (1973) के वाद में न्यायालय ने इसे संविधान का आधारभूत ढ़ांचा स्वीकार किया है। हालांकि मूल प्रस्तावना में इस शब्द का उल्लेख नहीं था और इसे 42वें संविधान संशोधन द्वारा 1976 में जोड़ा गया था। राज्य का कोई एक धर्म नहीं होने, राज्य द्वारा सभी पंथों को समान मानने की प्रकृत्ति ने संविधान को और अधिक लोकतांत्रिक बनाया है। अभी हाल ही में (25 नवम्बर, 2024) को उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तावना में उल्लेखित 'पंथनिरपेक्ष' शब्द को हटाने हेतु लगाई गई याचिका का निस्तारण करते हुये कहा कि यह शब्द प्रस्तावना का अतरंग भाग बन गया है और इसे व्यापक स्वीकृत्ति भी प्राप्त हो गई है। **[07]**

स्थानीय स्वशासन - संविधान के अनुच्छेद 40 में प्रावधान है कि "राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिये कदम उठायेगा" हालांकि यह एक नीति निदेशक तत्व है लेकिन इसका प्रावधान लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में संविधान निर्माताओं के विश्वास को प्रकट करता है। 73वें और 74वें संविधान संशोधन तो भारत को स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में विश्व में अलग राष्ट्र के रूप में स्थापित कर दिया। विश्व के किसी भी देश के संविधान में स्थानीय स्वशासन इकाईयों के संदर्भ में इतने विस्तृत प्रावधान नहीं है। 73वाँ संशोधन संविधान में 16 नये अनुच्छेद जोड़ता है जबकि 74वें संशोधन द्वारा 18 नये अनुच्छेद जोडे गये हैं। ग्राम सभा का गठन, संरचना और उसकी प्रक्रिया भारत में प्रत्यक्ष लोकतंत्र को साकार करते हैं।

राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ - राज्य सभा राज्यों का सदन है। राज्य सभा की स्थापना संघ स्तर पर राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिये की गई है। भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था होने के कारण केन्द्र और राज्यों के बीच विषयों का बंटवारा किया गया है। इस हेतु तीन सूचियाँ - संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची बनाई गई है। कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर संसद को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में आवश्यक है तो राज्यसभा इस सन्दर्भ में संकल्प पारित करती है। **[08]** राज्य सूची के विषयों पर संसद विधि बनायें, यह संघात्मक व्यवस्था के प्रतिकुल है लेकिन यह शक्ति राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदन अर्थात राज्य सभा को प्रदान की जो कि भारतीय संविद्यान के लोकतंत्रात्मक स्वरूप को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार से अखिल भारतीय सेवाओं के गठन के सन्दर्भ में भी प्रावधान है। अखिल भारतीय सेवाओं पर संघ सरकार का ही नियंत्रण होता है, राज्य सरकारों का आंशिक नियंत्रण होता है। अतः नई अखिल भारतीय सेवाओं के गठन के सन्दर्भ में भी लोकतांत्रिक सिद्धांतों का अनुसरण किया गया है। अनुच्छेद 312 के तहत यदि राज्यसभा ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषित किया कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक है तो संसद विधि द्वारा एक या अधिक अखिल भारतीय सेवा का सृजन कर सकेगी। **[09]**

नये राज्यों का गठन - प्रथम दृष्टया नये राज्यों का गठन पूर्णतया संसद के अधीन ही प्रतीत होता है। लेकिन अनुच्छेद तीन के प्रावधान इस सन्दर्भ में राज्यों की भूमिका का भी प्रावधान करते हैं। दरअसल अनुच्छेद तीन में नये राज्यों के गठन, राज्यों की सीमा अथवा नाम में परिवर्तन की प्रक्रिया का उल्लेख करता है। लेकिन इसमें यह भी प्रावधान किया गया है कि इस प्रयोजन के लिये कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना और जहाँ विधेयक में अन्तर्विष्ट प्रस्थावना का प्रभाव राज्यों में से किसी के क्षेत्र, सीमा या नाम पर पड़ता है, वहाँ राज्य के विधानमंडल के विचार भी प्राप्त किये जायेंगें। **[3]** यह प्रावधान न केवल संघात्मक शासन व्यवस्था के अनुकुल है, बल्कि संविधान की लोकतंत्रात्मक प्रकृति को भी प्रकट करता है। संविधान संशोधन की प्रक्रिया - अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन की प्रक्रिया है। इसके अनुसार संविधान में दो तरीकों से संशोधन किये जाते हैं। संविधान के कुछ प्रावधानों यथा - राष्ट्रपति का निर्वाचक मंडल, निर्वाचन विधि, सातवीं अनुसूची इत्यादि में संशोधन हेतु आधे राज्यों के विधानमंडल के अनुमोदन की भी आवश्यकता होती है। संविधान संशोधन की शक्ति पूर्णतया संसद में निहित नहीं की गई है। बल्कि कुछ प्रावधानों के सन्दर्भ में राज्यों के विधानमंडल की भूमिका को सुनिश्चित कर संविधान ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अनुसरण किया है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में कई ऐसे प्रावधान हैं जो संविधान को लोकतांत्रिक आदर्शों और सामाजिक न्याय का सर्वोच्च दस्तावेज बनाते हैं। अमेरीकन इतिहासकार ग्रेनविल ऑरिटन ने ठीक ही लिखा है कि भारतीय संविधान एकता, सामाजिक क्रान्ति और लोकतंत्र के उद्देश्य से बनाया गया है। **[10]**

संदर्भ सूची

[1] परांजपे एन.पी., भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, आठवाँ संसकरण, 2008, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, पृष्ठ संख्या - 408

[2] अनुच्छेद 394, भारत का संविधान, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ संख्या - 305

[3] वही, भारत का संविधान, पृष्ठ संख्या - 230

[4] भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिन्दी संस्करण), लोकसभा सचिवालय, खण्ड X से XII, पुस्तक संख्या - 8, 26 नवम्बर, 1949, पृष्ठ संख्या - 4241

[5] **Pib.gov.in/PressRelease Page.aspx-9/02/24**

[6] वही, भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट, 26 नवम्बर, 1949, पृष्ठ संख्या - 4243

[7] डॉ. बलराम शाह व अन्य बनाम् भारत संघ व अन्य, सिविल पिटिशन संख्या - 465, 2020

[8] वही, भारत का संविधान, पृष्ठ संख्या - 178

[9] वही, भारत का संविधान, पृष्ठ संख्या - 215

[10] ऑस्टिन ग्रेनविल, भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला; वा

9

संसद और भारतीय लोकतंत्र: एक तथ्यात्मक विश्लेषण

डॉ. प्रवीण कुमार झा

आचार्य, राजनीतिक विज्ञान विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के समक्ष पहला कार्य एक ऐसी शासन प्रणाली स्थापित करना था जो राष्ट्र निर्माण तथा राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के विशाल कार्य को पूरा करने में सक्षम हो। इस कठिन कार्य के लिए एक शक्तिशाली संस्था की आवश्यकता थी जो लोगों का विश्वास और आस्था प्राप्त कर सके। सभी उपलब्ध विकल्पों का विश्लेषण करने के पश्चात संविधान निर्माताओं ने भारत के लिए संसद की सर्वोच्चता और विधायिका (जो लोगों के प्रतिनिधियों से बनी होती है) के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही पर आधारित संसदीय लोकतंत्र के वेस्टमिंस्टर मॉडल को अपनाया। ऐसा माना गया कि सरकार की यह नई संसदीय प्रणाली अपने संचालन से राष्ट्र की विविधता और लोगों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं का सम्मान करने में सक्षम होगी। भारत में संसदीय प्रणाली भारत सरकार अधिनियम 1935 से ली गई है। भारत का संविधान केंद्र और राज्यों दोनों में संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना करता है। अनुच्छेद 74 और 75 संघ स्तर पर संसदीय प्रणाली की कार्यप्रणाली से संबंधित हैं, तथा अनुच्छेद 163 और 164 राज्यों में संसदीय प्रणाली की कार्यप्रणाली के बारे में प्रावधान करते हैं।

संविधान निर्माताओं ने भारत के लिए यू.के. के वेस्टमिंस्टर मॉडल को कई कारणों से चुना, जैसे:

- देश के लोगों का सरकार की प्रणाली और उसके संचालन के तरीकों से परिचित होना।
- धर्म, नस्ल, जाति, लिंग और जन्म-स्थान के आधार पर विभाजित देश के सभी लोगों को प्रतिनिधित्व प्रदान करना।
- एक जवाबदेह, सुलभ और उत्तरदायी सरकार के गठन का प्रावधान करना।

संसद एक बहुआयामी संस्था है - यह सरकार प्रदान करती है, कानून बनाती है, लोगों की समस्याओं को समझती है और उनका समाधान करती है, कानून का शासन और सुशासन सुनिश्चित करती है तथा लोगों और सरकार के बीच एक प्रभावी कड़ी के रूप में कार्य करती है। देश में विधायी संस्था इस तरह से संरचित है, क्योंकि यह लोकतांत्रिक संस्था की पाँच मूलभूत विशेषताओं से सुसज्जित मुख्य प्रतिनिधि संस्था के रूप में कार्य करती है - इसे लोगों के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना चाहिए, संचालन में पारदर्शी होना चाहिए, आसानी से सुलभ होना चाहिए, लोगों के प्रति जवाबदेह होना चाहिए और संचालन में प्रभावी होना चाहिए। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र निर्माण और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण और जटिल कार्य को संसद द्वारा संवैधानिकता के लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर निपटाया और हल किया गया है। भारत, आपातकाल (1975-77) की काली छाया के बावजूद कानून के शासन, स्वतंत्र

न्यायपालिका, स्वतंत्र प्रेस, लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के आधार पर एक जीवंत, स्थिर और सबसे बड़े कार्यात्मक लोकतंत्र के रूप में विकसित हुआ।

संसदीय लोकतंत्र और प्रतिनिधि संस्थाओं के स्वर्णिम काल में धीरे-धीरे शासन के संकट, बड़े घोटाले, प्रतिनिधि संस्थाओं की शिथिलता और लोकतांत्रिक अपर्याप्ता के कारण व्यवस्थित क्षय और गिरावट देखी गई। लोगों का यह मोहभंग लोकतंत्र की लोकप्रिय धारणा के लूटतंत्र में बदलने से स्पष्ट है। इस प्रकार, संसद, जिसे प्रमुख लोकतांत्रिक संस्था माना जाता है, जहां सरकार को "लोगों की, लोगों के लिए और लोगों द्वारा" कहा जा सकता है, देश में लोकतांत्रिक स्थिरता और सुशासन को बनाए रखने में दोषपूर्ण और विफल रही है। इसके दो कारण हैं। पहला, यह राष्ट्रीय हित और सदन में लोगों की आवाज को उनके सच्चे प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करने वाली वास्तव में सुलभ संस्था प्रदान करने में विफल रही। दूसरा, यह जवाबदेही की जिम्मेदारी का सम्मान करने में विफल रही। इससे हम इस लेख के दो प्रश्नों की ओर आते हैं:

- क्या भारतीय संसद ने वास्तव में पहुंच, जिम्मेदारी और प्रतिनिधित्व के सवालों पर अच्छा प्रदर्शन किया है? क्या यह देश में मौजूद विविध समूह का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम है?
- संसद के कामकाज से क्या हम कह सकते हैं कि संस्था ने पारदर्शी, उत्तरदायी और जवाबदेह शासन प्रदान किया है?

संसद का मूल कार्य विचार-विमर्श, चर्चा और बहस के लोकतांत्रिक सिद्धांत पर आधारित एक जिम्मेदार और उत्तरदायी सरकार प्रदान करना है। पहली लोकसभा के बाद से संसद के कामकाज की तथ्यात्मक जांच से कुछ दिलचस्प और बहुत परेशान करने वाले तथ्य सामने आते हैं। पहला आम चुनाव फरवरी 1952 में हुआ था और पहली लोकसभा का गठन 2 अप्रैल 1952 को हुआ था। तब से लेकर अब तक सभी लोकसभाओं के गठन, उनके विघटन, सत्रों की संख्या और बैठकों की संख्या का विवरण नीचे दी गई तालिका 1 में दिया गया है:

Table 1

लोक सभा	लोक सभा के गठन की तिथि	कार्यकाल समाप्ति की तिथि	विघटन की तिथि	सत्ता में सरकार की अवधि	सत्रों की संख्या	बैठकों की संख्या
पहला	02.04.52	12.05.57	04.04.57	5 years 2 days	15	677
दूसरा	05.04.57	09.05.62	31.03.62	4 years 11 months 26 days	16	581
तीसरा	02.04.62	15.04.67	03.03.67	4 years 11 months 1 day	16	578
चौथा	04.03.67	15.03.72	27.12.70	3 years 9 months 23 days	12	469

पांचवां	15.03.71	18.03.77	18.01.77	5 years 7 months 3 days	18	613
छठा	23.03.77	24.03.82	22.08.79	2 years 5 months	9	267
सातवां	10.01.80	20.01.85	31.12.84	4 years 11 months 21 days	15	464
आठवां	31.12.84	14.01.90	27.11.89	4 years 10 months 27 days	14	485
नौवां	02.12.89	17.12.94	13.03.91	1 year 3 months 11 days	7	109
दसवां	20.06.91	08.07.96	10.05.96	4 years 10 months 20 days	16	423
ग्यारहवां	15.05.96	21.05.2001	04.12.97	1 year 6 months 19 days	6	125
बारहवां	10.03.98	22.03.03	26.04.99	1 year 1 month 16 days	4	88
तेरहवां	10.10.99	19.10.04	06.02.04	4 years 3 months 27 days	14	356
चौदहवां	17.05.04	01.06.09	18.05.09	5 years 1 day	15	332
पंद्रहवां	18.05.09	31.05.14	18.05.14	5 years	15	357
सोलहवां	18.05.14	03.06.19	25.05.19	5 years 7 days	17	331
सत्रहवां	25.05.19	16.06.24	16.06.24	5 years 21 days	11	230
अट्ठारहवां	24.06.24	24.06.29	Continued			

स्रोत: Statistical Handbook 2023, https://mpa.gov.in/; Union Cabinet recommends dissolution of 17th Lok Sabha, https://ddnews.gov.in/

शुरुआती वर्षों में राष्ट्र निर्माण और विकास के विशाल कार्य को ध्यान में रखते हुए, जिसके लिए तत्काल चर्चा, बहस और समाधान की आवश्यकता थी (और राष्ट्र निर्माण के कार्य में स्वतंत्रता के बाद नेताओं के नए उत्साह के कारण), बैठकों की संख्या और सदन द्वारा प्रस्तुत और पारित किए गए विधेयकों की संख्या बहुत अधिक थी। अब ऐसा लगता है कि वह उत्साह कहीं खो गया है क्योंकि हम सदन द्वारा प्रस्तुत और पारित किए गए विधेयकों की संख्या में कमी देख रहे हैं। इसका विवरण तालिका 2 में दिया गया है, जो इस प्रकार है:

Table 2

लोक सभा	प्रस्तुत विधेयकों की संख्या	पारित विधेयकों की संख्या	विघटन के समय व्यपगत विधेयकों की संख्या
पहला	282	333	7
दूसरा	286	327	7
तीसरा	268	272	38
चौथा	196	216	36
पांचवां	379	487	12
छठा	161	135	47
सातवां	378	336	16
आठवां	270	355	15
नौवां	71	63	24
दसवां	248	284	30
ग्यारहवां	67	64	21
बारहवां	71	60	20
तेरहवां	252	302	43
चौदहवां	219	261	39
पंद्रहवां	213	192	68
सोलहवां	219	205	4 6
सत्रहवां	162	169	--
अट्ठारहवां	Continued	Continued	Continued

स्रोत: Statistical Handbook 2023, https://mpa.gov.in/;

इसके अलावा, पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न विधेयकों पर बहस के घंटों में भी कमी देखी गई है। यह सबसे विश्वसनीय लोकतांत्रिक संस्था में लोकतांत्रिक मूल्यों और प्रथाओं के घटते महत्व को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इतना ही नहीं, सदन में रखे गए विधेयकों को गहन बहस, चर्चा और मूल्यांकन के लिए संबंधित संसदीय समितियों को भेजने में भी भारी कमी आई है। अधिकांश विधेयक संसद द्वारा बिना अधिक बहस और संसदीय समितियों को भेजे बिना ध्वनि मत से पारित कर दिए गए। संसद के लोकतांत्रिक कामकाज की अनुपस्थिति ने अध्यादेशों के बढ़ते प्रचार में प्रकट होने वाले संसद के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने के लिए कार्यपालिका के हाथ में विवेकाधिकार बढ़ा दिया है। इस संबंध में पूर्व स्पीकर शिवराज पाटिल ने सरकार को आगाह करते हुए तर्क दिया था कि "अध्यादेश केवल तभी जारी किया

जाना चाहिए जब बहुत जरूरी हो। एक जिम्मेदार सरकार को इस बारे में सावधान रहना चाहिए"।[xv] संसद में सत्ता पक्ष और विपक्ष द्वारा संसदिय मर्यादाओं एवं मानदंडों का उल्लंघन तथा लोकतांत्रिक मुल्यों के अवमूल्यन के कारण देश को तीन कृषि कानूनों {कृषक उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सरलीकरण) अधिनियम, 2020, कृषक (सशक्तीकरण व संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार अधिनियम, 2020 तथा आवश्यक वस्तुएं संशोधन अधिनियम, 2020} के पश्चात एक असहज स्थिति का सामना करना पड़ा। नीचे दी गई तालिका 4 में सभी लोकसभा के औसत वार्षिक बैठक के दिन दिखाए गए हैं:

Table 3

लोकसभा	पारित विधेयक	1 घंटे से कम समय में पारित	2 घंटे में पारित हुए	2-3 घंटे में पास हुआ	3 घंटे से अधिक समय के बाद पारित
पंद्रहवां	192	36%	21%	21%	22%
सोलहवां	205	15%	25%	27%	32%
सत्रहवां	169	35%	13%	22%	30%

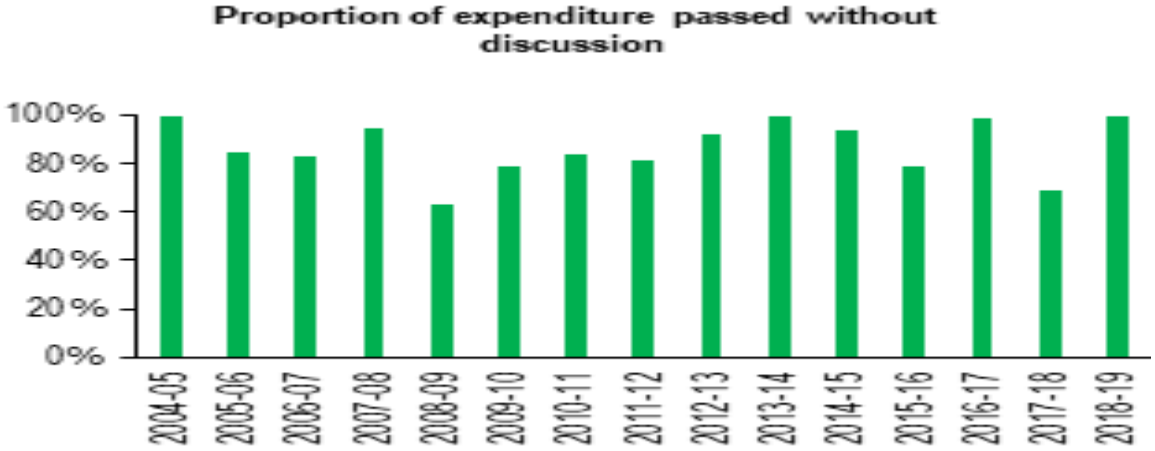
Source: Source: MPA's Statistical Handbook, 2021.

Table 4

औसत वार्षिक बैठक दिवस	
पहला	135
दूसरा	116
तीसरा	117
चौथा	123
पांचवां	105
छठा	110
सातवां	93
आठवां	99
नौवां	85
दसवां	86
ग्यारहवां	80
बारहवां	78
तेरहवां	82
चौदहवां	66
पंद्रहवां	71
सोलहवां	66
सत्रहवां	55
अट्ठारहवां	Continued

Source: MPA's Statistical Handbook, 2021.

नीचे दिया गया चार्ट सदन द्वारा बिना बहस और चर्चा के पारित विधेयकों की संख्या में वृद्धि दर्शाता है।



Source: MPA's Statistical Handbook, 2021.

बजट सत्र की अवधि में तेजी से कमी आ रही है, जो देश की वित्तीय स्थिति और प्रगति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, यह विकासात्मक गतिविधियों के लिए आवंटित धन से पता चलता है। मेहता ने कहा कि "संसद तेजी से गैर-पेशेवर हो गई है, लगभग बिना किसी जांच के बजट पारित कर रही है, जो गिरावट का स्पष्ट संकेत है।"[xvi] संसद के सत्रों को न्यूनतम तक सीमित कर दिया गया है और सत्रों के दौरान सांसदों की अनुपस्थिति लगातार बढ़ रही है। विपक्षी सदस्यों की शिकायत है कि उन्हें मुद्दे उठाने और सरकार से उचित तरीके से पूछताछ करने की अनुमति नहीं है। संसद एक रबर स्टैंप बनकर रह गई है, जिसमें पर्याप्त चर्चा या बहस के बिना कानून पारित किए जा रहे हैं।

यह सब इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पर्याप्त कारण है कि संसद के कामकाज में गिरावट आई है। बलवीर अरोड़ा ने तर्क दिया कि भारतीय संसद द्वारा किए जा रहे सभी कार्यों के बावजूद, इसकी गुणवत्ता में स्पष्ट पतन देखी जा रही है, जिसका श्रेय वे राजनीतिक दलों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा को देते हैं।[xvii] लोकतंत्र के मंदिर के उच्च सम्मान और प्राचीन गौरव में भारी पतन आई है। इसके कारणों को संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है:

संसदीय समितियों का घटता महत्व: संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने एक बार टिप्पणी की थी, 'यह कहना सत्य से बहुत दूर नहीं है कि सत्र में कांग्रेस सार्वजनिक प्रदर्शन पर कांग्रेस है, जबकि समिति कक्षों में कांग्रेस (तथा) काम पर कांग्रेस है।'[xviii] इस कथन की वैधता निस्संदेह समय और स्थान की कसौटी पर खरी उतरी है। इस कथन की वैधता निस्संदेह समय और स्थान की कसौटी पर खरी उतरी है। संसदीय प्रणाली में समिति प्रणाली के महत्व को संविधान निर्माताओं ने भी अच्छी तरह समझा था और इसलिए उन्होंने अनुच्छेद 105 और अनुच्छेद 118 के तहत इसके लिए प्रावधान किया। इसका उद्देश्य इस तथ्य को पहचानना था कि भविष्य में पूर्ण या प्रासंगिक और आवश्यक जानकारी की कमी और संचालन के बढ़ते पैमाने के कारण सदन में सभी विधेयकों पर विस्तार से चर्चा करना संभव नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में संसद सदस्यों से बनी संसदीय समितियां क्षेत्र-विशिष्ट चिंताओं को उठा सकती हैं और उनका मूल्यांकन कर सकती हैं। समय बीतने के साथ, इसमें कोई संदेह नहीं है कि संसद के काम की मात्रा और जटिलता बढ़ गई है, लेकिन साथ ही इन संसदीय समितियों को विधेयक भेजने की संख्या भी कम हो गई है। नीचे दी गई तालिका में यही बताया गया है:

Table 4				
लोक सभा	**चर्चा किए गए विधेयकों की कुल संख्या**	**पारित किए गए विधेयकों की कुल संख्या**	**व्यपगत हुए विधेयकों की कुल संख्या**	**संसदीय समितियों को भेजे गए विधेयकों का प्रतिशत**
चौदहवाँ	219	261	39	60%
पंद्रहवाँ	213	192	68	71%
सोलहवाँ	219	205	46	25%
सत्रहवाँ	162	169	--	16%

Source: Statistical Handbook 2023, https://mpa.gov.in/; 'Half of the Bills passed by 17th Lok Sabha discussed for less than 2 hours each', https://economictimes.indiatimes.com/, 'The role of Parliamentary Committees', https://www.thehindu.com/news

यह राष्ट्रीय विधान प्रणाली में विशेषज्ञों की जांच के अधीन होने में पतन की प्रवृत्ति को दर्शाता है। इस समस्या का समाधान राष्ट्रीय और सार्वजनिक हित में आवश्यक है। संसद के पटल पर रखे गए विधेयकों को मूल्यांकन, सलाह और राय के लिए उचित समितियों को अनिवार्य रूप से संदर्भित करने का प्रावधान करके इसे सुनिश्चित किया जा सकता है। सरकार और लोगों के बीच किसी भी टकराव से बचने और सरकार को शर्मिंदगी (कृषि कानून) से बचाने के लिए संसद में पेश किए जाने से पहले संवैधानिक सुधार के प्रस्तावों की जांच करने के लिए एक संविधान समिति का गठन किया जाना चाहिए।

सासंदों की पृष्टभूमि: संविधान निर्माताओं ने बहुमतवादी वेस्टमिंस्टर मॉडल को विशुद्ध रूप से सरकार की लोकतांत्रिक प्रणाली बनाने के लिए चुना, जहाँ प्रतिनिधि लोगों द्वारा चुने जाते हैं और सरकार निरंतर आधार पर उनके प्रति जवाबदेह होगी। इस कारण से, डॉ. बी.आर. अंबेडकर, हिंदू महासभा के श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे अलग और अक्सर विरोधी आवाज़ों को संविधान सभा के कामकाज में भागीदारी दी गई। हालाँकि समायोजन से कई लाभ हुए, लेकिन बाद के वर्षों में उसी सिद्धांत का पालन नहीं किया गया।

यद्यपि वर्तमान संसद पहले के सदनों की तुलना में राजनीति का अधिक प्रतिनिधित्व करती है तथा महिलाओं को उचित स्थान देती है, लेकिन सदस्यों की गुणवत्ता के संदर्भ में हमें चुनाव में उम्मीदवारी के मानदंडों पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षों में चुनावी प्रणाली विभाजनकारी साबित हुई है तथा चरित्रवान तथा गुणवत्ता वाले प्रतिनिधियों को चुनने में विफल रही है। संख्यात्मक आयाम पर जोर देने वाली प्रथम-पास्ट-द-पोस्ट प्रणाली लोगों के जनादेश के साथ न्याय करने में विफल रही है। यह संसदीय चुनाव जीतने के लिए धन और बाहुबल वाले उम्मीदवारों के लिए नवीन अवसर प्रदान करता है। नेशनल इलेक्शन वॉच और एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स की रिपोर्ट के अनुसार, 2019 के लोकसभा में घोषित आपराधिक मामलों वाले उम्मीदवार के जीतने की

संभावना 15.5 प्रतिशत है, जबकि साफ पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवार के लिए यह 4.7 प्रतिशत है। धन, माफिया और बाहुबल के अंधाधुंध इस्तेमाल ने राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण और राजनीतिक व्यवस्था में काले धन के भारी प्रवाह को जन्म दिया है और संसद के प्रतिनिधि चरित्र को लूट लिया है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स की रिपोर्ट (एक लेख में प्रकाशित) के अनुसार, 2024 के लोकसभा चुनावों में चुने गए 46% सांसदों (543 में से 251) के खिलाफ आपराधिक मामले लंबित हैं, जिनमें 31% प्रतिशत (170) पर गंभीर आपराधिक आरोप हैं, जिनमें हत्या, हत्या का प्रयास और महिलाओं के खिलाफ अपराध शामिल हैं। भाजपा के 240 विजयी उम्मीदवारों में से 39 प्रतिशत पर आपराधिक आरोप हैं, जबकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए यह आंकड़ा 49 प्रतिशत है। क्षेत्रीय दलों की बात करें तो यह आंकड़ा और भी अधिक है। 24 जून को, जब उम्मीदवार लोकसभा में शपथ ले रहे थे, अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस के 45 प्रतिशत सांसद, टीडीपी के 50 प्रतिशत सांसद, समाजवादी पार्टी के 57 प्रतिशत सांसद, डीएमके के 59 प्रतिशत सांसद, शिवसेना के 71 प्रतिशत सांसद आपराधिक आरोपों में लिप्त थे।

- '40% (306) मौजूदा सांसदों (17th लोक सभा) के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं, जिनमें से 25% (लगभग 194) पर हत्या, अपहरण और महिलाओं के खिलाफ अपराध के आरोपों के तहत गंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं'
- 'लोकसभा (17th लोक सभा) और राज्यसभा के प्रत्येक सांसद की संपत्ति का औसत मूल्य ₹38.33 करोड़ है।'
- 53 (7%) अरबपति हैं'

Source: '40% sitting MPs have Criminal Cases, 25% serious criminal cases: ADR', https://www.thehindu.com/news/, September 12, 2023.

यह तथ्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सार्वजनिक और राष्ट्रीय हित में सरकार चलाने के लिए लोगों द्वारा भरोसेमंद नेताओं की गुणवत्ता में गिरावट आई है।

संसदीय कारवाई और लोकतांत्रिक सिद्धांत:

लोकतांत्रिक तरीके से काम करने वाली सरकार की पहचान संसद के सदन में नियमित विचार-विमर्श, बहस और चर्चा से पता चलती है, जिसमें निर्वाचित विधायक सार्वजनिक महत्व के विभिन्न मुद्दों पर चर्चा और बहस करते हैं और उनके समाधान की मांग करते हैं। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में यह देखा गया है कि विपक्षी दलों द्वारा प्रदर्शनों, धरनों, वॉकआउट, घेराव और व्यक्तिगत मंत्रियों के बहिष्कार से संसदीय सत्र बाधित होते हैं। इसी तरह, सत्ता पक्ष द्वारा विपक्ष को डराने-धमकाने और पर्याप्त चर्चा के बिना विधेयक पारित कराने के प्रयास भी होते हैं। बहुमत वाली पार्टी या सत्ताधारी पार्टी आम तौर पर विधेयक में किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं देती है, भले ही सुझाव वैध या चिंताजनक क्यों न हो। बहस, शिष्टाचार और अनुशासन के गिरते स्तर के साथ-साथ बढ़ती अनुपस्थिति की समस्या सार्वजनिक मुद्दों और चिंताओं के प्रति सांसदों की उदासीनता और उदासीनता को दर्शाती है। हाल के दिनों में, आधे घंटे की चर्चाओं, स्थगन प्रस्तावों, छोटी अवधि की चर्चाओं की संख्या में भी कमी आई है (जैसा कि तालिका 5 में दर्शाया गया है)। विधायी कार्य और संसदीय कार्य को कम महत्व दिया गया है, जबकि सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों ही

बेंचों पर विधायकों द्वारा की गई नाटकीयता और निलंबन का उपयोग करके एक-दूसरे पर हावी होने की कोशिशें कार्यवाही पर हावी रही हैं। शोभना के. नायर के अनुसार, " 58% विधेयक उनके पेश किए जाने के दो सप्ताह के भीतर पारित हो गए। लोकसभा में एक घंटे से भी कम समय की चर्चा में 35% विधेयक पारित हो गए। राज्यसभा के लिए यह आंकड़ा 34 था।"

Table 5

लोक सभा	अल्प सूचना प्रश्न स्वीकृत	आधे घंटे की चर्चाओं की संख्या	लघु अवधि की चर्चाओं की संख्या	चर्चा किए गए स्थगन प्रस्तावों की संख्या	चर्चा किए गए अविश्वास प्रस्तावों की संख्या	कार्य के घंटे
पहला	266	38	36	1	--	
दूसरा	233	108	31	3	--	
तीसरा	288	109	17	7	6	
चौथा	240	183	66	12	6	
पांचवां	70	124	64	11	4	
छठा	63	59	12	6	2	
सातवां	56	85	56	5	3	
आठवां	18	65	94	5	1	
नौवां	6	11	24	8	--	
दसवां	6	16	33	4	3	2527-56
ग्यारहवां	4	7	13	--	--	816-37
बारहवां	-	4	15	--	--	577-43
तेरहवां	18	25	59	5	1	1994-01
चौदहवां	5	14	55	7	--	1782-36
पंद्रहवां	-	7	41	2	--	1344-36
सोलहवां	-	5	33	--	1	1612-10
सत्रहवां	--	1	11	--	--	1151-08

स्रोत: Statistical Handbook 2023, https://mpa.gov.in/;

लोकसभा में काम के घटते घंटे नीचे दिए गए ग्राफ से देखे जा सकते हैं:



स्रोत: https://prsindia.org/media/media-updates/prs-parliament-diary-overview-16th-lok-sabha

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसी घटनाएं विद्वानों को यह निष्कर्ष निकालने के लिए मजबूर कर रही हैं कि भारतीय संसदीय कार्यप्रणाली में गिरावट आ रही है। 18वीं लोकसभा की शुरुआत दस साल बाद विपक्ष के आधिकारिक नेता के नेतृत्व में आक्रामक रुख के साथ हुई। विपक्ष ने गैर जिम्मेदार रुख अपने हुए प्रधानमंत्री के भाषण में बाधा डाली तथा धरना प्रदर्शनों, वॉक-आउट और घेराव द्वारा संसदीय सत्र को बाधित किया। ये घटनाएं एक मजबूत और जीवंत लोकतंत्र के लिए स्वस्थ संकेत नहीं हैं। संसद का सुचारु संचालन काफी हद तक सत्तारूढ़ दल और विपक्ष को महत्वपूर्ण मुद्दे उठाने के लिए उनके द्वारा प्रदान की गई जगह पर निर्भर करता है। पीठासीन अधिकारी यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है कि संसद के भीतर सभी महत्वपूर्ण आवाजों को सुना जाए। 1956 में लोकसभा के पहले अध्यक्ष जी.वी. मावलंकर ने कहा था, "एक सफल संसदीय लोकतंत्र आपसी सम्मान, सहिष्णुता की भावना और अलग-अलग विचारों को समझने की इच्छा के आधार पर निर्भर करता है।"[xix]

संसदीय सुधार

संसद से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों पर फिर से विचार करने और स्वस्थ संसदीय प्रथाओं को स्थापित करने के लिए कुछ उपाय की तत्काल आवश्यकता है;

संसदीय कार्यवाही में पारदर्शिता एवं लोकतंत्रीकरण: सत्र के दौरान संसदीय बहसों और चर्चाओं तथा मतदान का प्रसारण करके संसद के कामकाज में पारदर्शिता सुनिश्चित किया जा सकता है। यहां हम स्वीडन का उदाहरण ले सकते हैं, जहां संसदीय कार्यवाही जनता के लिए खुली होती है तथा इसे जनता के देखने के लिए प्रसारित भी किया जाता है। (भारत में भी संसदीय की कार्यवाही का सीधा प्रसारण संसद टेलिविज़न किया जाता है) जटिल विधेयकों और नीतियों का विश्लेषण करने में सक्षम बनाकर समिति प्रणाली को सशक्त बनाना तथा विधेयकों को उचित समितियों को अनिवार्य रूप से भेजने का प्रावधान करना। संसदीय समितियों के सुझावों और सिफारिशों के आधार पर सभी विधेयकों पर खुली चर्चा, विचार-विमर्श और बहस को प्रोत्साहित करना। इससे प्रभावी शासन सुनिश्चित करने और लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बनाए रखने में मदद मिलेगी।

संविधान समिति का गठन: संविधान संशोधनों को विधेयक के रूप में सामान्य कानून की तरह संसद में प्रस्तुत करने के बजाय, संसद की संविधान समिति का गठन किया जा सकता है। राजनीतिक दलों को रोस्टर प्रणाली अपनाकर सदन की कार्यवाही के दौरान अपने विधायकों में से कम से कम 50% की उपस्थिति सुनिश्चित करनी चाहिए। इसके लिए हम

अमेरिकी कांग्रेस बजट कार्यालय की तरह एक 'संसदीय बजट कार्यालय' (पीबीओ) का निर्माण कर सकते हैं। पीबीओ एक स्वतंत्र और निष्पक्ष संस्था होनी चाहिए जो किसी भी विधेयक का तकनीकी और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने के लिए समर्पित हो।

विपक्ष की भूमिका: विपक्ष की भूमिका को मजबूत करने के लिए भारत में छाया मंत्रिमंडल की संस्था बनाई जा सकती है। विपक्ष को एजेंडा तय करने के लिए कुछ निश्चित दिन निर्धारित किए जाने चाहिए।किसी विधेयक की प्रगति या उपयोगिता या लोगों की चिंता के किसी अन्य मामले के बारे में सीधे प्रधानमंत्री से सवाल करने के लिए उन्हें निश्चित समय और दिन देना। यहाँ हम यू.के. के संवैधानिक सम्मेलन का उदाहरण ले सकते हैं जिसे प्रधानमंत्री प्रश्न के रूप में जाना जाता है जो प्रत्येक बुधवार को दोपहर 12 बजे आयोजित किया जाता है। इसमें प्रधानमंत्री यू.के. के संसद सदस्यों द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देते हैं। निष्पक्ष पीठासीन अधिकारियों की नियुक्ति जो सत्ताधारी पार्टी के प्रवक्ता के रूप में कार्य करने के बजाय विपक्ष को उचित स्थान देते हुए निष्पक्ष रूप से कार्य करें।

चुनावी सुधार: फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट सिस्टम की विविधता को दूर करने के लिए हाइब्रिड प्रणाली अपनानी चाहिए। यह फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट सिस्टम और आनुपातिक प्रतिनिधित्व मतदान प्रक्रिया दोनों का मिश्रण है। इसके अलावा, राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाना बेहद आवश्यक है। इसके लिए सरकार को आपराधिक राजनीतिज्ञों पर अधिकतम एक वर्ष की अवधि के भीतर समयबद्ध तरीके से मुकदमा चलाने के लिए अधिक संख्या में फास्ट ट्रैक अदालतें स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। अगला सुधार महिला आरक्षण विधेयक का अधिनियमन से संबंधित है। इसके लिए संसद और राज्य विधानसभाओं में सभी सीटों में से 33% सीटें महिलाओं के लिए आरक्षण नीति को तत्काल लागू करना आवश्यक है। इसके अलावा विधि आयोग ने अपनी 170वीं रिपोर्ट में सुझाव दिया था कि लोकसभा में 25% या 136 सीटें बढ़ाई जानी चाहिए और उन्हें आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा भरा जा सकता है। इससे समाज के सभी वर्गों का बेहतर प्रतिनिधित्व हो सकेगा। यह देखा गया है कि चुनाव के दौरान राजनीतिक दल प्रचार और वोट जीतने पर बेहिसाब धन खर्च करते हैं। इससे रोकने के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक दलों को RTI अधिनियम 2005 के घेरे में लाया जाए। इससे चुनाव प्रणाली में अधिक पारदर्शिता आएगी और लोगों को उनके प्रतिनिधि की आय के स्रोत और व्यय के क्षेत्रों के बारे में पता चल सकेगा। इसके अलावा, यदि लोग अपने प्रतिनिधि के काम से संतुष्ट नहीं हैं, तो उन्हें उन्हें वापस बुलाने का अधिकार होना चाहिए।

दलबदल विरोधी कानून में सुधार: यह कानून केवल अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के दौरान ही लागू होना चाहिए। अन्य सभी परिस्थितियों में व्यक्तिगत सांसदों को अभिव्यक्ति और मतदान की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। दलबदल विरोधी कानून के संबंध में स्पीकर की निर्णायक शक्ति को भारत के चुनाव आयोग को हस्तांतरित किया जा सकता है।

भारत में संसद सबसे महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक संस्था है, जिसके पास राष्ट्र के भाग्य को बदलने या नया स्वरूप देने की शक्ति है। एक संस्था के रूप में संसद के पास महान प्रतीकात्मक संसाधन हैं और अपने कामकाज से, यह दूरगामी परिणामों के साथ बड़े बदलाव लाने और चुनौतियों का सामना करने की क्षमता रखती है, जैसा कि इसने इन सभी वर्षों में किया है। सबसे बढ़कर, केवल संसद के पास संसदीय कामकाज और अन्य संचालन से संबंधित नीतियों में संशोधन करने का आवश्यक अधिकार है। निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि संसद को संरचनात्मक प्रथाओं में संलग्न होना चाहिए जो मौजूदा संसदीय मानदंडों और परंपराओं का पालन करते हुए और उनका लाभ उठाते हुए अधिक

विचार-विमर्श सुनिश्चित करते हैं, ताकि हमारी संसद उत्तरदायी, जवाबदेह और लोकतांत्रिक संस्था के नये आयाम स्थापित करें।

संदर्भ सूची

1. Arora, Balveer, "The Indian Parliament and Democracy" in *The Indian Parliament : A Comparative Perspective* by Ajay .K.Mehra and Gert W.Kueck, Konark Publishers, New Delhi,2006.
2. C. F. Ray, Ashwini. K., " Indian Violent Democracy" , Illustrated Weekly of India, New Delhi, September 21-27, 1991.
3. 'Half of the Bills passed by 17th Lok Sabha discussed for less than 2 hours each', https://economictimes.indiatimes.com/,
4. 'Legislative decline:On government's actions and a disregard for deliberative Democracy', https://www.thehindu.com/opinion/editorial/, December 19, 2023
5. 'The role of Parliamentary Committees', https://www.thehindu.com/news
6. https://prsindia.org/media/media-updates/prs-parliament-diary-overview-16th-lok-sabha
7. https://prsindia.org/files/parliament/vital_stats/Functioning-17th_Lok_Sabha.pdf
8. Mehta, Pratap Bhanu, "The rise of Judicial sovereignty", *Journal of Democracy,* Vol.18, No.2, 2007.
9. Nair, Sobhana K., 'Parliament's average sitting days down to 55 in the 17th Lok Sabha from 135 in the first', https://www.thehindu.com/news/, February 11, 2024.
10. O'Brien, Derek, Inside Parliament: Views from the Front Row, Harper Collins, India, 2017.
11. Pai, Sudha, The Indian Parliament: A Critical Appraisal, Orient Blackswan Pvt. Ltd. New Delhi, 2014.
12. Rodrigue, Valerian and B. L. Shankar, The Indian Parliament: A Democracy at Work, Oxford University Press, 2010.
13. Saxena, Rekha, B. D. Dua and M. P. Singh, The Indian Parliament: The Changing Landscape, Manohar, India, 2014.
14. Sen, Ronojoy, *House of the People: Parliament and the Making of Indian Democracy*, Cambridge University Press, 2022
15. Singh, Devender, The Indian Parliament-Beyond the Seal and Signature of Indian Democracy, Universal Law Publishing Co. Pvt. Ltd., 2016.
16. *Statistical Handbook 2023, https://mpa.gov.in/*

17. Verma, Kashvi and Amit Mahapatra, 'The role of Parliamentary Committees'. https://www.thehindu.com/news/national/ , The Hindu, April 12, 2023.
18. '40% sitting MPs have Criminal Cases, 25% serious criminal cases: ADR', https://www.thehindu.com/news/, September 12, 2023.

10

भारतीय लोकतंत्र में राज्य सभा की बदलती भूमिका

डॉ. मंगल देव
सहायक आचार्य, पी.जी. डी.ए.वी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
डॉ शम्भु नाथ दुबे
सह-आचार्य, ए.आर.एस.डी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत की द्विसदनीय विधायी प्रणाली संसद के ऊपरी सदन, राज्यसभा पर बहुत अधिक निर्भर करती है, जिसे राज्यों की परिषद (शास्त्री, 2024) के रूप में भी जाना जाता है। इसका उद्देश्य "विचार-विमर्श" के सदन के रूप में कार्य करना था, जो कानून की गहन जांच के लिए एक मंच प्रदान करता था और यह गारंटी देता था कि स्थानीय चिंताएं राष्ट्रीय विधायी प्रक्रिया में प्रतिबिंबित होती हैं, जैसा कि भारतीय संविधान के संस्थापक सदस्यों (अरोड़ा और वर्ने, 1995) द्वारा परिकल्पित किया गया था। राज्य सभा एक स्थायी निकाय है जिसे लोकसभा के विपरीत भंग नहीं किया जा सकता है। इसे अनुभव और क्षमता वाले लोगों को एक साथ लाने के लिए भी डिज़ाइन किया गया है, मुख्यतया उन क्षेत्रों में जिनमें विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। लेकिन इसकी स्थापना के बाद से, भारत के संस्थागत, सामाजिक और राजनीतिक बदलावों को प्रतिबिंबित करने के लिए राज्यसभा का कार्य में परिवर्तन हुए है। जब भारत ने 1950 में अपने संविधान को मंजूरी दी, तो नव निर्मित संघ में राज्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक संघीय संसद के रूप में राज्यसभा की स्थापना की गई थी। यह संघात्मक राज्य अमेरिकी के सीनेट या एकात्मक राज्य ब्रिटिश के हाउस ऑफ लॉर्ड्स के समान ही उच्च सदन है।

इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि राज्य-स्तरीय चिंताओं का राष्ट्रीय विधायिका में पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो और अधिक सीधे निर्वाचित लोकसभा के प्रति संतुलन के रूप में कार्य करे। नीचले सदन में चुनावी राजनीति की अस्थिरता को देखते हुए उच्च सदन को एक स्थिर निकाय के रूप में देखा जाता है, जो लोक सभा द्वारा किए गए लोकलुभावन और जल्दबाजी के निर्णयों पर नियंत्रण का कार्य करती है। यद्यपि इसमें वित्तीय मामलों पर समान अधिकार क्षेत्र का अभाव है, जहाँ लोक सभा का प्राथमिक नियंत्रण है, इस व्यवस्था ने राज्य सभा को विधायी प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण जाँच के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाया और इसे कानून की जाँच करने, बदलने और यहाँ तक कि स्थगित करने की क्षमता प्रदान की।

संविधान के अनुच्छेद 80 में राज्य सभा के गठन का प्रावधान किया गया है। कुल सदस्य संख्या 250 है, जिसमे 238 सदस्यों को राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों की विधानसभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा चुना जाता है। अन्य 12 सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा विज्ञान, साहित्य और कला सहित सामाजिक सेवाओं से जुड़े विशेष लोगों को मनोनीत किया जाता हैं। सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष का होता है , जिसमे से एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक 2 वर्ष में निवृत्त हो जाते है । राज्यों का प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व करने और अपनी संघीय भूमिका निभाने की राज्य सभा की क्षमता समय के साथ बदलती रही है। इसका एक कारण

राजनीतिक दलों की बढ़ती शक्ति है, जो अक्सर स्थानीय लोगों की तुलना में अपने राष्ट्रीय पार्टी के हितों के अनुरूप राज्य सभा के सदस्यों का बदलाव करते हैं।

राजनीतिक कारकों के कारण राज्य सभा की भूमिका में भी बदलाव आया है। 1990 के दशक में गठबंधन सरकारों के विकास के साथ ही राज्य सभा छोटे और क्षेत्रीय दलों के लिए राष्ट्रीय नीति को प्रभावित करने के लिए एक आवश्यक मंच बन गया। ऊपरी सदन में बहुमत की कमी होने पर यह सामान्यतया सत्तारूढ़ गठबंधन पर अंकुश लगाने का काम करती है। इसने इसे राजनीतिक चर्चा और सत्ता-साझेदारी के लिए एक मंच के रूप में और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया, लेकिन इससे यह आरोप भी उठे कि राज्यसभा राजनीतिक अवरोध पैदा करने का मंच बनती जा रही है, सामान्य तौर पर तब जब यह लोकसभा द्वारा बनाए गए महत्वपूर्ण कानूनों में बाधा डालती है। आलोचकों का तर्क है कि विधायी समीक्षा और राज्य प्रतिनिधित्व में इसके निरंतर महत्व के बावजूद, यह अक्सर राजनीतिक दलों के लिए विधायी प्रक्रिया को रोकने या स्थगित करने के माध्यम के रूप में कार्य करता है। इसके अतिरिक्त इस बात की चिंता है कि विभिन्न विषयों के पेशेवरों के बजाय राजनीतिक व्यक्तित्वों की नियुक्ति से सदन के मूल उद्देश्य से समझौता हो सकता है। इन कठिनाइयों के बावजूद, राज्यसभा भारत के लोकतंत्र का एक अनिवार्य हिस्सा बनी हुई है, जो लोकसभा की कार्यवाही पर नियंत्रण और संतुलन के रूप में कार्य करती है और यह गारंटी देती है कि कानून को लागू करने से पहले उस पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाता है। राजनीतिक परिदृश्य के साथ-साथ राज्यसभा की भूमिका भी बदलेगी, जो इसकी निरंतर प्रयोज्यता, राज्यों के वास्तविक प्रतिनिधित्व के रूप में सेवा करने की इसकी क्षमता और तेजी से बदलती विधायी स्थिति में इसकी प्रभावकारिता के बारे में महत्वपूर्ण चिंताएँ पैदा करती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

भारतीय संविधान के संस्थापकों को दूसरे सदन के अस्तित्व के पक्ष और विपक्ष में तर्कों की पूरी जानकारी थी, इसलिए उन्होंने अंततः संघीय स्तर पर द्विसदनीयता के पक्ष में फैसला किया। 1935 का अधिनियम, जिसने भारत सरकार अधिनियम 1919 के प्रासंगिक भागों के आधार पर एक केंद्रीय सरकार के तहत प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना की, परन्तु अगस्त 1947 में सत्ता के हस्तांतरण से पहले दस वर्षों के लिए भारत के संवैधानिक ढांचे को अनिश्चित बना दिया। भारत में केंद्रीय विधानमंडल की स्थापना भारत सरकार अधिनियम, 1919 के तहत की गई थी। इसमें गवर्नर जनरल और दो सदन शामिल थे: राज्य परिषद और विधान सभा। विधान सभा के 140 सदस्य और राज्य परिषद में 60 सदस्य थे। 1935 के अधिनियम में दो सदनों वाली विधायिका का भी आह्वान किया गया: विधानसभा का सदन (जिसे संघीय विधानसभा भी कहा जाता है) में 375 सदस्य और राज्य परिषद में 260 सदस्य होंगे ऐसा प्रावधान किया गया। इसके अतिरिक्त, इसने वर्ग और सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को मजबूत किया। वही 1935 के अधिनियम द्वारा स्थापित संघीय योजना और विधायी निकायों को कभी लागू नहीं किया गया। दूसरे शब्दों में कहें तो, पहले के अधिनियमों द्वारा स्थापित विधायी संस्थाओं का ढांचा और स्वरूप नए संविधान के तहत स्वतंत्र भारत के विधानमंडल के निर्माण के लिए पर्याप्त आधार प्रदान नहीं करता था (ऑस्टिन, 2021)। इसलिए, संविधान सभा को बिना किसी पूर्व निर्देश के इस मुद्दे पर विचार करना पड़ा।

संविधान सभा की बहस

संविधान सभा ने संघ संविधान समिति का गठन किया, जिसके अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे। 21 जुलाई, 1947 को विधानसभा को सौंपी गई अपनी रिपोर्ट में, समिति ने संघ के केंद्र में दूसरे सदन के बारे में कुछ सिफारिशें कीं। 28 जुलाई, 1947 को संविधान सभा ने समिति की रिपोर्ट की भी जांच की। चर्चा के दौरान दूसरे सदन के अस्तित्व पर अलग-अलग राय व्यक्त की गई। उदाहरण के लिए, कुछ सदस्यो का मानना था कि दूसरा सदन आवश्यक नहीं था। वही कुछ सदस्यों का मानना था कि दूसरा सदन लाभकारी और बिल्कुल आवश्यक होगा। उनका मानना है कि दूसरा सदन होने से संयम और पुनर्विचार को बढ़ावा मिलेगा।

बी.एन. राव का मानना था कि जल्दबाजी में लिए गए निर्णय पर एक नियंत्रणकरी निकाय, और शालीन व् शांतिपूर्ण विचार-विमर्श हेतू आवश्यक है(ऑस्टिन 2017)। इसके बिना, राज्य के विधायकों को इस प्रक्रिया में शामिल करना चुनौतीपूर्ण होगा। श्री गोपालस्वामी अयंगर ने कहा: दुनिया में लगभग हर जगह दूसरे सदन की मांग की गई है, जहाँ महत्वपूर्ण संघ हैं। दूसरे सदन को, अधिक से अधिक, महत्वपूर्ण मुद्दों पर सम्मानजनक चर्चा करनी चाहिए और उन कानूनों को स्थगित करना चाहिए जो वर्तमान भावनाओं का परिणाम हो सकते हैं जब तक कि वे भावनाएँ शांत न हो जाएँ और विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले उपायों पर शांतिपूर्वक विचार किया जा सके। इसलिए, दूसरे सदन का अस्तित्व केवल संभावित रूप से जल्दबाजी में लिए गए निर्णयों को स्थगित करने और अनुभवी व्यक्तियों को अवसर प्रदान करने के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य करता है, जो सीधे तौर पर राजनीतिक मुद्दों में शामिल नहीं हो सकते हैं, लेकिन वे उस स्तर के ज्ञान और महत्व के साथ चर्चा में योगदान देने के इच्छुक हो सकते हैं जो आम तौर पर लोक सभा से जुड़ा होता है। नेहरु रिपोर्ट को आधार बनाते हुए संविधान सभा ने राज्यों को सामान प्रतिनिधित्व के स्थान पर जनसँख्या और प्रान्तों के आकार को देखते हुये असमान प्रतिनिधित्व देने का निर्णय लिया । 28 जुलाई, 1947 को संविधान सभा ने संशोधन को मंजूरी दी। मार्च 1952 में, काउंसिल ऑफ स्टेट्स का पहला चुनाव हुआ और उसी वर्ष 3 अप्रैल को उच्च सदन की स्थापना हुई। 23 अगस्त, 1954 को इसका नाम बदलकर हिंदी में राज्य सभा कर दिया गया (दास बसु, 2022)।

राज्य सभा की भूमिका

राज्य सभा, जिसे राज्यों की परिषद के रूप में भी जाना जाता है, भारत की द्विसदनीय संसदीय प्रणाली में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय संविधान में निर्दिष्ट इसकी शक्तियाँ संसद के निचले सदन लोक सभा (लोगों का सदन) से पूरक और अलग दोनों हैं। राज्य सभा एक ऐसा निकाय है जो राज्यों के हितों को दर्शाता है और अधिक गहन और जानबूझकर विधायी चर्चा के लिए एक स्थान प्रदान करता है, जबकि लोक सभा सीधे लोगों का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुनी जाती है। यह अब भारत के लोकतंत्र में कई महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाता है, जो समय के साथ अपने प्रारंभिक उद्देश्य से आगे बढ़ गया है (श्रीनिवास, 2022)। श्री हामिद अंसारी(गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस, 2009) के अनुसार राज्य सभा को तीन कार्य करने के लिए डिज़ाइन किया गया था:

(i) विधेयकों पर चर्चा और संशोधन करने के लिए एक विधायी कक्ष के रूप में कार्य,

(ii) भारतीय राज्यों के हितों की रक्षा करने के लिए एक संस्था के रूप में कार्य, और

(iii) महत्वपूर्ण मुद्दों पर विविध अनुभव लाने के लिए एक गहन विचार-विमर्श कक्ष के रूप में कार्य।

इस प्रकार सहभागी शासन संसदीय लोकतंत्र के लिए मौलिक सिद्दांत है। दुनिया भर के अनुभवों ने प्रदर्शित किया है कि लोकतंत्र पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करता है। राज्य सभा ने विभिन्न प्रकार के कार्य करके हमारी राजनीतिक व्यवस्था और संविधान के ढांचे में एक अद्वितीय स्थान स्थापित किया है। इसकी विविध जिम्मेदारियाँ इस प्रकार हैं: -

विधेयको की समीक्षा और जाँच सदन के रूप में कार्य -

राज्य सभा का एक प्रमुख कार्य समीक्षा निकाय के रूप में कार्य करना है, जो लोक सभा द्वारा अधिनियमित विधानों पर दूसरी नज़र डालता है। दोनों सदनों को उन विधेयकों पर चर्चा करनी चाहिए और उन्हें पारित करना चाहिए जो किसी भी सदन में प्रस्तुत किए जाते हैं (धन विधेयकों को छोड़कर, जहाँ राज्य सभा के पास सीमित अधिकार हैं)। राज्य सभा गहन बहस और विश्लेषण के लिए एक मंच प्रदान करती है, जिसमें अक्सर विशेष ज्ञान या अनुभव वाले सदस्यों का योगदान होता है। राज्य सभा के पास विधेयकों में बदलाव की सिफारिश करने और उन्हें समीक्षा के लिए लोक सभा को वापस भेजने का अधिकार है। यह प्रणाली सीधे निर्वाचित और राजनीतिक रूप से आवेशित लोक सभा द्वारा जल्दबाजी में या बिना सोचे-समझे बनाए गए विधानों की जाँच करती है। इसका लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि जो कानून बनाए जाते हैं, वे अच्छी तरह से विचार-विमर्श करके बनाए जाते हैं और देश के हितों की सेवा करते हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (योगेंद्र नारायण, 2003)के अनुसार एक व्यापक धारणा है कि यह सदन अनावश्यक है क्योंकि इसके पास सरकारें बनाने या भंग करने का कोई अधिकार नहीं है। हालाँकि, कुछ ऐसे कार्य हैं जिन्हें संशोधन सदन सफलतापूर्वक कर सकता है। हमें इस देश के लोगों को यह समझाने का हर संभव प्रयास करना चाहिए कि जल्दबाजी में कानून बनाने से रोकने के लिए दूसरा सदन आवश्यक है, क्योंकि हम नई संसदीय प्रणाली के तहत केंद्र में इसे लागू करने वाले पहले देश हैं। हमें दिए गए सुझावों की निष्पक्ष और तटस्थता से जांच करनी चाहिए।

संघीय प्रतिनिधित्व के सदन के रूप में

राज्यसभा केंद्रीय विधायी प्रक्रिया में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करती है, जो इसे भारत की संघीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाता है। राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव किया जाता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि राज्य के हितों का राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो। यह भारत जैसे बहुसांस्कृतिक समाज में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ राज्य और क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ राष्ट्रीय हित से अलग हो सकती हैं (अरोड़ा और वर्ने, 1995)। राज्य सभा संघीय सरकार और राज्यों के बीच शक्ति संतुलन बनाए रखने में सहायता करती है, जिससे उन्हें अपनी शिकायतें व्यक्त करने का एक मंच मिलता है। यह भारत की संघीय प्रकृति को बनाए रखने और यह सुनिश्चित करने के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि विधायी प्रक्रिया के दौरान राष्ट्रीय हित क्षेत्रीय चिंताओं पर प्रभावी न हों। वी.वी. गिरी के अनुसार, भविष्य में राज्य सभा हमारे देश की विकसित हो रही संघीय प्रणाली में एक बड़ी भूमिका निभाएगी। मुझे विश्वास है कि यहाँ मौजूद प्रतिनिधि दृष्टिकोणों की विस्तृत श्रृंखला और वर्तमान मुद्दों पर हमारी नियमित चर्चाओं से एकजुटता की एक मजबूत भावना और एक अधिक स्थायी राष्ट्रीय सहमति पैदा होगी।

द्विसदनीय विधानमंडल में शक्तियों को संतुलित करने वाले सदन के रूप में

राज्यसभा, लोकसभा की शक्तियों को संतुलित करके भारत की संसदीय प्रणाली को स्थिर करती है। जबकि लोकसभा, जो सीधे निर्वाचित होती है, बहुसंख्यक राजनीति और अल्पकालिक लोकलुभावन पहलों के लिए अधिक प्रवण होती है, वहीं राज्यसभा एक जाँच और संतुलन के रूप में कार्य करती है। सामान्ययतया यह अधिक शांत और निष्पक्ष बातचीत के लिए एक मंच प्रदान करता है। यह विशेष रूप से तब सच होता है जब विभिन्न राजनीतिक दलों का दोनों सदनों पर नियंत्रण होता है क्योंकि राज्यसभा यह सुनिश्चित कर सकती है कि लोकसभा में सत्तारूढ़ दल के विधायी एजेंडे को संतुलित करके सरकार के विचारों पर व्यापक रूप से चर्चा की जाए।

स्थायी सदन और संस्थागत निरंतरता के रूप में

राज्यसभा एक स्थायी निकाय है, जबकि लोक सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है और वह भंग हो सकती है। यह भंग नहीं होती, यद्यपि इसके एक-तिहाई सदस्य हर दो साल में सेवानिवृत्त हो जाते हैं। यह निरंतरता इस बात की गारंटी देती है कि हमेशा एक कार्यशील विधायी निकाय होता है, तब भी जब लोक सभा चुनावों के लिए भंग हो जाती है। संसदीय प्रणाली स्थिर है क्योंकि राज्य सभा की आयु लंबी है, जो राजनीतिक अस्थिरता के समय में भी विधायी मामलों में संस्थागत स्मृति और निरंतरता की अनुमति देती है।

एक सदन के रूप में, कार्यकारी जवाबदेही सुनिश्चित करना

अपनी कई समितियों के माध्यम से, संसद का एक घटक, राज्य सभा कार्यकारी जवाबदेही सुनिश्चित कर रही है। संसद में अब 24 विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों में से आठ हैं जो राज्य सभा की अध्यक्षता में काम करती हैं। संबंधित मंत्रालयों और विभागों ने पाया है कि समितियों के विचारशील सुझावों और रचनात्मक आलोचना ने उन्हें अपने संचालन को बेहतर बनाने और नागरिकों के सामान्य कल्याण के लिए व्यावहारिक योजनाएँ, बजट और कार्यक्रम बनाने में मदद की है। इन समितियों ने कई महत्वपूर्ण कानूनों की जांच की है और संसद के दोनों सदनों को रिपोर्ट भेजी है।

संविधान संशोधनों में भूमिका

भारतीय संविधान के संशोधन की प्रक्रिया में राज्य सभा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संविधान में संशोधन संसद के किसी भी सदन में पेश किए जा सकते हैं, लेकिन उन्हें दो-तिहाई बहुमत से लोकसभा और राज्य सभा दोनों द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए। यह दायित्व गारंटी देता है कि देश के मूल संविधान में संशोधन करने वाले प्रमुख निर्णयों में उच्च सदन शामिल है। राज्य सभा की भागीदारी यह गारंटी देती है कि संवैधानिक संशोधन न केवल लोकसभा में सत्तारूढ़ पार्टी के राजनीतिक एजेंडे से प्रेरित होते हैं, बल्कि व्यापक आम सहमति से भी प्रेरित होते हैं। संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है।

राज्य सभा की बदलती भूमिका

भारत के संसदीय लोकतंत्र में राज्य सभा की भूमिका राजनीतिक वातावरण, पार्टी की गतिशीलता और विधायी प्रक्रियाओं में बदलाव की प्रतिक्रिया में विकसित हुई है। राज्य सभा की भूमिकाएँ और राजनीतिक महत्व तब से बहुत बदल गए हैं जब से इसे पहली बार राज्य के हितों को बढ़ावा देने और कानून पर एक गंभीर दूसरा दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए एक निकाय के रूप में बनाया गया था। गठबंधन राजनीति का उदय, बढ़ता राजनीतिक ध्रुवीकरण, दलीय

राजनीति का प्रभुत्व, तथा समकालीन विधायी प्रक्रिया में राज्यसभा के स्थान पर चर्चाएं कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, जिन्होंने संसद की भूमिका को बदलने में योगदान दिया है (रूबिनॉफ़, 2013)।

संघीय भूमिका में गिरावट

राज्यसभा की प्राथमिक जिम्मेदारियों में से एक राष्ट्रीय विधायी प्रक्रिया में राज्यों का प्रतिनिधित्व करना था। इसके सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से राज्य विधानसभाओं द्वारा चुने जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक संघीय निकाय बनता है जो क्षेत्रीय चिंताओं की वकालत करता है। लेकिन राज्य हितों के रक्षक के रूप में राज्यसभा का कार्य समय के साथ कम होता गया है। राज्यसभा के सदस्य राजनीतिक दलों, विशेष रूप से राष्ट्रीय दलों से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं, सामान्यतया जो उन्हें अपने राज्यों के सामने आने वाले विशेष मुद्दों से पहले पार्टी के एजेंडे को आगे रखने के लिए मजबूर करते हैं। इस प्रवृत्ति ने क्षेत्रीय मुद्दों के लिए एक मंच के रूप में राज्यसभा की भूमिका को कमजोर कर दिया है। सदस्य अक्सर उन्हें चुनने वाली राज्य विधानसभा के हितों का प्रतिनिधित्व करने के बजाय पार्टी लाइन के आधार पर वोट करते हैं। परिणामस्वरूप, संघवाद का समर्थन करने और केंद्रीकरण की प्रवृत्तियों पर प्रतिसंतुलन के रूप में कार्य करने के राज्यसभा के मूल उद्देश्य से समझौता किया गया है (डोगरा और खान, 2021)। राज्यसभा के सदस्य राज्य के मुद्दे पर कभी एक साथ नहीं होते अपितु दलीय आधार पर समर्थन और विरोध करते है ।

क्षेत्रीय दलों और गठबंधन की राजनीति का उदय

गठबंधन की राजनीति के उदय से, विशेष रूप से 1990 के दशक के बाद, राज्यसभा के कार्य में भारी बदलाव आया (राज, 2015)। जैसे-जैसे क्षेत्रीय दलों ने प्रभावशाली स्थिति हासिल की और राष्ट्रीय राजनीति बिखर गई, राज्यसभा राजनीतिक सौदेबाजी के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गई। राज्यसभा क्षेत्रीय दलों और छोटे दलों के लिए एक उपयोगी मंच साबित हुई, जिनका अक्सर लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होता था (कुमार, 2017)। गठबंधन सरकारों के दौरान, राज्यसभा का कार्य तेजी से प्रमुख हो गया क्योंकि किसी भी एक पार्टी के पास भारी बहुमत नहीं था। इसने क्षेत्रीय दलों, विशेष रूप से गठबंधन सरकारों में, राष्ट्रीय कानून को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त लाभ उठाने की अनुमति दी। इस माहौल में, राज्यसभा ने अधिक राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू कर दी, जो अक्सर लोकसभा में सत्तारूढ़ पार्टी या गठबंधन के विधायी एजेंडे पर अंकुश लगाने का काम करती थी। पार्टी प्रणालियों के अंदर सत्ता के इस समेकन ने स्वतंत्र विचार और विविध दृष्टिकोणों के लिए एक मंच के रूप में राज्यसभा की भूमिका को कमजोर कर दिया है। अपने राज्यों के हितों के लिए बोलने या विधायी वार्ता में अपने स्वयं के ज्ञान का योगदान देने के बजाय, सदस्य अब अपने राष्ट्रीय दलों के निर्देशों का पालन करने के लिए अधिक इच्छुक हैं।

राजनीतिक गतिरोध और बाधा-

राज्यसभा पिछले कुछ वर्षों में ठोस चर्चा को बढ़ावा देने के बजाय विधायी प्रक्रिया में बाधा डालने वाले निकाय के रूप में देखा जाने लगा है (सेन, 2015)। यह धारणा विशेष रूप से तब प्रचलित होती है जब लोकसभा में सत्तारूढ़ दल के पास राज्यसभा में बहुमत नहीं होता है। विपक्षी दलों द्वारा लोकसभा द्वारा अधिनियमित महत्वपूर्ण कानून को स्थगित करने या बाधित करने के लिए ऊपरी सदन में अपने नंबरों का लगातार उपयोग करने से विधायी गतिरोध उत्पन्न हुआ है (रामकुमार और सिंह, 2021)। माल और सेवा कर (जीएसटी) विधेयक जैसे मामलों में, जिसे विपक्षी दलों के राज्यसभा पर नियंत्रण के कारण वर्षों तक स्थगित रखा गया था, यह अवरोधक भूमिका विशेष रूप से ध्यान

देने योग्य थी। समाधान के उपायों को अस्वीकार करने या भारी संशोधन करने की ऊपरी सदन की क्षमता ने दोनों सदनों के बीच संघर्ष पैदा किया है, जिसमें राज्यसभा को कभी-कभी लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित लोकसभा की इच्छा को कमजोर करने वाले सदन के रूप में माना जाता है।

गठबंधन काल में विधि निर्माण में बढ़ता महत्व

विधायन की जांच और विनियमन में राज्यसभा की भूमिका राजनीतिक विभाजन की अवधि अर्थात गठबंधन के दौरान तेजी से महत्वपूर्ण हो गई है, इस आलोचना के बावजूद कि यह कानून बनाने में देरी करती है। जब लोकसभा बड़े बहुमत या लोकलुभावन दबाव के परिणामस्वरूप कानूनों को तेजी से मंजूरी देती है, तो राज्य सभा अक्सर आवश्यक संतुलन प्रदान करती है, विधेयकों की अधिक गहन जांच के लिए एक मंच प्रदान करती है। एक खंडित राजनीतिक माहौल में, जहां गठबंधन प्रशासन प्रचलित हैं, राज्य सभा यह सुनिश्चित करने में भी आवश्यक है कि विधायी प्रक्रिया में विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व किया जाए। भारत की राजनीतिक प्रणाली के अधिक बहुध्रुवीय होने के कारण, विधान को प्रभावित करने की राज्य सभा की क्षमता बढ़ी है, खासकर तब जब किसी एक पार्टी के पास दोनों सदनों में बहुमत नहीं होता है।

विशेषज्ञता और मनोनीत सदस्यों का कमजोर होना

राज्यसभा की स्थापना अनुभवी और उच्च प्रतिष्ठित लोगों को एक साथ लाने के लिए की गई थी, जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जो चुनावी राजनीति में सक्रिय रूप से शामिल नहीं हो सकते हैं (पात्रा, 2024)। भारत के राष्ट्रपति संविधान के तहत बारह सदस्यों को मनोनीत कर सकते हैं, जो सामाजिक सेवाओं, विज्ञान, साहित्य और कला सहित विषयों का प्रतिनिधित्व करते हैं (थॉमस और बाग, 2024)। यह अनुमान लगाया गया था कि ये प्रतिभागी अधिक बौद्धिक चर्चाओं के लिए अपना ज्ञान और समर्थन प्रदान करेंगे। लेकिन पिछले कई दशकों में इन नामांकनों का चरित्र बदल गया है। अधिक से अधिक राजनीतिक नेता जो सत्तारूढ़ दलों के महत्वपूर्ण सहयोगी हैं या जो चुनाव हार गए हैं, उन्हें राज्यसभा में मनोनीत किया गया है। इस बदलाव ने कानून पर गैर-पक्षपाती दृष्टिकोण प्रदान करने की उच्च सदन की क्षमता को कमजोर कर दिया है और गैर-राजनीतिक विशेषज्ञों के निकाय के रूप में इसके कार्य को कम कर दिया है।

प्रासंगिकता पर चर्चा और सुधार के लिए आह्वान

राज्यसभा की बदलती भूमिका के परिणामस्वरूप समकालीन भारतीय लोकतंत्र में राज्यसभा की प्रयोज्यता पर लगातार चर्चा हो रही है। कुछ विरोधियों के अनुसार, विपक्षी दलों द्वारा सत्तारूढ़ पार्टी के विधायी एजेंडे को अवरुद्ध करने के लिए ऊपरी सदन को राजनीतिक साधन के रूप में उपयोग करने से संसदीय प्रणाली की प्रभावशीलता कम हो गई है (सिंह, 2015)। ये विरोधी बदलाव चाहते हैं, जैसे कि राज्यसभा के अधिकार को सीमित करना या वित्तीय कानून में इसके कार्य की पुनः जांच करना। दूसरी ओर, राज्यसभा के समर्थकों का कहना है कि यह अभी भी भारत के लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण सदन है, विशेष रूप से लोकसभा की बहुमत वाली प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार, राज्यसभा यह सुनिश्चित करती है कि विभिन्न दृष्टिकोणों - जैसे कि विपक्षी दलों और छोटे राज्यों के - को ध्यान में रखा जाए और कानून जल्दबाजी में न बनाए जाएं। कुछ सुधारक सदस्यों के निर्वाचित या मनोनीत

होने के तरीके में संशोधन करने का सुझाव देते हैं ताकि ऊपरी सदन को विशेषज्ञ चर्चा और राज्य प्रतिनिधित्व के लिए एक मंच के रूप में अपनी मूल भूमिका में वापस लाया जा सके।

उपसंहार

राज्यसभा भारत की संसदीय प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है। इसके कार्य, अधिकार क्षेत्र और संरचना सभी विधायी प्रक्रिया के सुचारू संचालन, कई दृष्टिकोणों के प्रतिनिधित्व और राज्य के हितों में योगदान करते हैं। नए कानून बनाने, संघवाद और समावेशिता को बनाए रखने तथा लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बढ़ावा देने के लिए राज्यसभा आवश्यक है। गहन चर्चा और बहस के लिए एक मंच के रूप में कार्य करके तथा सभी सामाजिक समूहों के अपने विचार व्यक्त करने के अधिकारों पर निगरानी रखने के द्वारा, राज्यसभा देश के लोकतांत्रिक ढांचे को बढ़ाती है। एक विचार-विमर्श करने वाले निकाय के रूप में राज्यसभा का कार्य यह गारंटी देता है कि कानून की सावधानीपूर्वक जांच की जाती है, जिसके परिणामस्वरूप सुविचारित निर्णय लिए जाते हैं, भले ही वित्तीय मुद्दों और राज्यों के गठन या विघटन से संबंधित मुद्दों पर इसका एकमात्र अधिकार न हो। निस्संदेह, राज्यसभा का कार्य एक निष्क्रिय समीक्षा निकाय से बदलकर भारत में विधायी प्रक्रिया में एक सक्रिय भागीदार के रूप में बदल गया है। भले ही इसका प्रभाव राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग हो, फिर भी यह भारत के लोकतंत्र और संघीय व्यवस्था का एक आवश्यक घटक है। हालाँकि, यह सुनिश्चित करने के लिए संशोधनों की आवश्यकता है कि इसका मूल लक्ष्य वर्तमान राजनीतिक वास्तविकताओं के साथ पर्याप्त रूप से संतुलित हो। अपनी स्थापना के बाद से राज्यसभा का कार्य नाटकीय रूप से विकसित हुआ है। मूल रूप से सावधानीपूर्वक विधायी समीक्षा के लिए एक मंच के रूप में कार्य करने और राज्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए इरादा किया गया था, यह धीरे-धीरे राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और अवरोध के लिए एक स्थान में बदल गया है। इन कठिनाइयों के उपरांत भी, राज्यसभा भारतीय लोकतंत्र का एक अनिवार्य अंग है, जो अधिक विचारशील चर्चा, अल्पसंख्यक हितों की रक्षा और विधायी प्रक्रिया में संतुलन बनाए रखने के लिए एक स्थान प्रदान करती है। भारत के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और माहौल के साथ-साथ राज्यसभा का कार्य एवं भूमिका में बदलाव देखा जा सकता है, जिससे संस्था की अंतिम उपयोगिता और संस्थागत सुधारों की आवश्यकता के बारे में निरंतर बहस संसदीय लोकतंत्र के अंग के रूप में होता रहेगा।

संदर्भ सूची

1. ऑस्टिन, जी.(2021), भारतीय संविधान: एक राष्ट्र की आधारशिला, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृष्ट 231-39.
2. बसु,दुर्गा,दास.(2020), भारत के संविधान का परिचय. लेक्सिस नेक्सिस पब्लिकेशन, गुरुग्राम, पृष्ट- 231-56.
3. डोगरा, एन. के., और खान, एम. एच. (2021), राज्य सभा: दूसरे सदन के साथ भारत का अनुभव, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ऑल रिसर्च राइटिंग्स, 3(8), 46–49.
4. अरोड़ा, बी.और वर्नी, डी. वी.(1995), एक ही राज्य में कई पहचान: तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संघवाद.

5. कुमार, ए. (2017), भारतीय संसद क्यों गिरावट की स्थिति में है? भारतीय संसद और लोकतांत्रिक परिवर्तन में, रूटलेज इंडिया, पृष्ठ 61-82
6. पात्रा, के. (2024), संसदीय समितियाँ: विधान की ज्ञानात्मक सीमा को पूरा करना, इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 70(1), 82–95.
7. डॉ, नारायण, योगेन्द्र. (2003), रोल एंड रेलेवन्स ऑफ़ राज्यसभा इन इंडियन पोलिटी. राज्यसभा सचिवालय नई दिल्ली.
8. राज, एस.आर. (2015). क्या भारत में गठबंधन शासन का युग समाप्त हो गया है. जर्नल ऑफ गवर्नेंस एंड पब्लिक पॉलिसी, 5(2), 61.
9. रामकुमार, एम, और सिंह, ए. (2021). रास्ता नहीं अपनाया गया: विपक्ष के अधिकारों को मजबूत करने में भारत की विफलता. सीएएलजे, 6, 55.
10. रुबिनॉफ, ए.जी. (2013). भारत की संसद का पतन. एशिया में संसदों में. रूटलेज इंडिया. पृष्ठ 13–33.
11. सेन, आर.(2015). सदन के मामले: भाजपा, मोदी और संसद. दक्षिण एशिया: जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, 38(4), 776–790.
12. गांगुली, सुमित. & श्रीधरन, ईस्वरन, (सं),(2024) द ऑक्सफ़ोर्ड हैंडबुक ऑफ़ इंडियन पॉलिटिक्स, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ट 31-46.
13. सिंह, एम. पी.(2015). भारतीय संसद का पतन. इंडिया रिव्यू, 14(3), 352–376.
14. श्रीनिवास, एम. आर. (2022). राज्य सभा की भूमिका और महत्व. कृषि विकास नीति पर विशेष अंक अगस्त 2022, 74.
15. थॉमस, वी, और बाघ, एस. के. (2024). भारतीय विधायी प्रक्रियाओं में राज्य सभा के मनोनीत सदस्यों की भूमिका. जर्नल ऑफ एशियन एंड अफ्रीकन स्टडीज.
16. जोन्स, मॉरीस, पार्लियामेंट, पृष्ट 90
17. पामर, द इंडियन पोलिटिकल सिस्टम, पृष्ट 118.
18. SECOND CHAMBER IN INDIAN PARLIAMENT : ROLE AND STATUS OF RAJYA SABHA LARRDIS RAJYA SABHA SECRETARIAT, NEW DELHI, AUGUST 2009 Rajya Sabha Secretariat, page no 4, Secretary-General, Rajya Sabha and Printed by General Manager,Government of India Press, Minto Road, New Delhi-110002
19. Role and Relevance of Rajya Sabha in Indian Polity Proceedings of the Seminar organised on the occasion of the 200th Session of Rajya Sabha on 14 December 2003 in Parliament House Annexe, New Delhi, Editor Dr. Yogendra Narain, Secretary-General Rajya Sabha RAJYA SABHA SECRETARIAT NEW DELHI, F. No. RS. 12/2/2004-R&L @ 2004 BYRAJYA SABHA SECRETARIAT, NEW DELHI

11

संविधान, सामाजिक समानता, और मानसिक विऔपनिवेशीकरण: डॉ. बी. आर. अंबेडकर के विचार

अभिनव
शोधार्थी, अफ़्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
स्मिता
शोधार्थी, अफ़्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. भीमराव अंबेडकर एक प्रखर बुद्धिजीवी और भारतीय संविधान के निर्माता थे जिन्होंने न्याय, समानता और बंधुत्व के लिए एक परिवर्तनकारी ढांचे की कल्पना की थी। जाति आधारित व्यवस्था और औपनिवेशिक अधीनता की उनकी तीखी आलोचना ने समतावादी सिद्धांतों पर भारतीय समाज के पुनर्निर्माण, पुनर्विकास और उपनिवेशवाद को समाप्त कर भारतीय अनुभवों को समाज एवं संविधान में निगमित करने की आधारशिला रखी। यूरोप और अमेरिका में प्रशिक्षित विद्वान के रूप में अपने अनुभवों से, भारत को लौटकर, और भारतीय अनुभवों और उपनिवेशवाद विरोधी विचारों से गहराई से जुड़कर, अंबेडकर ने जड़ जमाए हुए व्यवस्थागत असमानताओं को खत्म करने के रास्ते और एक ऐसे भारत को दूरदर्शित किया जो की 21वीं सदी में विश्व के अनेक विकसित और अविकसित देशों के साथ परस्पर कदमताल करने को और औपनिवेशिकता और दासता के जुए को उतार फेंकने के लिए आतुर था। यह लेख उनके ज्ञानात्मक हस्तक्षेपों, उनके द्वारा विकसित किए गए संवैधानिक ढांचे और उन चुनौतियों पर गहराई से चर्चा करता है जो भारतीय आदर्शों की प्राप्ति और तर्कसंगतता में बाधा डालती रहती हैं।

सामाजिक समानता के संदर्भों में मानसिक विऔपनिवेशीकरण

डॉ. भीमराव अंबेडकर का भारतीय संविधान के निर्माण में योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, लेकिन इसे भारत पर यूरोपीय और मध्य पूर्वी औपनिवेशिक प्रभावों के संदर्भ में भी विश्लेषित किया जाना चाहिए। अंबेडकर ने न्याय, समानता और सामाजिक सुधार के ढांचे के माध्यम से प्रणालीगत असमानताओं को संबोधित करने का प्रयास किया। जाति व्यवस्था के प्रति उनकी आलोचना उनके भारत के दृष्टिकोण के केंद्र में थी, और संविधान में यह जाति-आधारित भेदभाव को समाप्त करने और सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार सुनिश्चित करने वाले प्रावधानों के माध्यम से परिलक्षित भी होती है। हालांकि, संविधान और जाति तथा उपनिवेशवाद के बीच के संबंध को पूरी तरह समझने के लिए, अंबेडकर के विचारों को विऔपनिवेशीकरण के दृष्टिकोण से पुनः विश्लेषित करना अनिवार्य है, जिसमें उनके समय की सामाजिक-राजनीतिक वास्तविकताओं को आकार देने वाले यूरोपीय और मध्य पूर्वी औपनिवेशिक ढाँचों को यथास्थिति, यथापरिस्थिति और तत्कालीन रूप में स्वीकार किया जाए।

भारतीय संविधान, जो सामाजिक न्याय के प्रति अंबेडकर की प्रतिबद्धता को दर्शाता है, एक ऐसे संदर्भ में तैयार किया गया था जो यूरोपीय औपनिवेशिक ज्ञान प्रणालियों से भी प्रभावित था। औपनिवेशिक शासन से विरासत में मिले कानूनी और संस्थागत ढाँचों ने संविधान की संरचना और भाषा (फेनोमेनोलॉजी और ग्राममटोलोजी) को आकार दिया, जिससे इसके ताने-बाने में कुछ यूरोकेंद्री विचारधाराएँ अंतर्निहित हो गईं। साथ ही, संविधान को मध्य पूर्वी औपनिवेशिकता के अवशेषों से भी जूझना पड़ा, विशेषकर उन क्षेत्रों में जो सदियों तक इस्लामी शासन के अधीन रहे थे (दीपक, 2021)। पाकिस्तान के निर्माण पर अपने विचारों में, अंबेडकर ने मध्य पूर्वी औपनिवेशिकता के सांस्कृतिक और क्षेत्रीय प्रभावों को जिस प्रकार समझा, वह इस बात को रेखांकित करता है कि संविधान के ढाँचे में इन दोहरी विरासतों को संबोधित करना क्यों आवश्यक है (अंबेडकर, 1945)।

अंबेडकर द्वारा आलोचित जाति व्यवस्था को इन औपनिवेशिक प्रभावों के संदर्भ में भी समझा जाना चाहिए। यह सच है कि भारत में "कास्ट" शब्द की उत्पत्ति तथा उसे भारत की असमानताओं से जोड़ने में पुर्तगालियों का हाथ था, परन्तु अंबेडकर ने 1916 के अपने लेख में "कास्ट" की अवधारणा को भारतीय असमानताओं के परिप्रेक्ष्य में भारतीय अनुभवों के साथ सुव्यवस्थित रूप से परिभाषित कर दिया (अंबेडकर, 1916/2022) । अतः कास्ट और जाति का भारत में व्यवस्थित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक असमानताओं के साथ परिभाषीकरण क्रमिक विकास के रूप में हुआ है, और इसे अब समाप्त करना संभव नहीं है। यूरोपीय औपनिवेशिक नृविज्ञान (एथनोग्राफी) ने जाति को एक कठोर पदानुक्रम के रूप में स्थापित कर दिया, जिससे भारत के संदर्भ-विशिष्ट और लचीले सामाजिक गतिशीलता को एक जटिल, स्थिर और दमनकारी संरचना में बदल दिया गया।

मानसिक औपनिवेशीकरण, मुख्य रूप से ज्ञानमीमांसीय अन्याय के साथ हाशिए पर पड़ी ज्ञान प्रणालियों का व्यवस्थित बहिष्कार और यहां तक की सम्पूर्ण उन्मूलन, जाति और औपनिवेशिक संरचनाओं की अंबेडकर की आलोचना को गहराई से आकार देता है। भारत में, ऐतिहासिक रूप से दलितों को शिक्षा और बौद्धिक भागीदारी तक पहुँच से व्यवस्थित रूप से वंचित रखा गया, और एक प्रकार के ज्ञान का ही ऐतिहासिक रूप से प्रादुर्भाव, वैधीकरण और सरंक्षण हुआ (भाटिया और राम, 2023)। यह ठीक उसी प्रकार से हुआ जैसे कि औपनिवेशीकरण ने विभिन्न ज्ञान प्रणालियों को विश्व के हर कोने जैसे कि अमेरिका, अफ्रीका तथा भारत में भी बहिष्कृत और संपूर्ण रूप से समाप्त करने का प्रयास किया तथा यूरोपीय ज्ञान प्रणाली को एकमात्र वैध ज्ञान प्रणाली के रूप में प्रचारित किया। समवर्ती रूप से उपनिवेशवाद ने यूरोप केंद्रित व्यवस्थाएँ तथा शिक्षा तंत्र विकसित किए जो स्वदेशी ज्ञानमीमांसा को आदिम और अप्रासंगिक के रूप में खारिज कर देते थे (भाटिया, 2018)।

अंबेडकर ने तर्क दिया कि जाति और औपनिवेशिक पदानुक्रम हाशिए पर पड़ी आवाज़ों को दबाने के लिए मिलकर काम करते हैं, जिससे ज्ञानमीमांसीय हिंसा को बढ़ावा मिलता है। इस दोहरे उत्पीड़न ने सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक ज्ञान-उत्पादन प्रक्रियाओं से न सिर्फ दलितों, बल्कि एक बड़ी जनसंख्या को सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक रूप से मुख्य धारा से विस्थापित कर उनके बहिष्कार को संस्थागत बना दिया (अंबेडकर, 1937/2016)। भारतीय संविधान, अस्पृश्यता के उन्मूलन (अनुच्छेद 17) और सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के प्रावधानों के माध्यम से, जाति की औपनिवेशिक और साथ ही साथ भारतीय भेदभाव की धारणाओं का

दृढ़ता से मुकाबला करता है। फिर भी, समकालीन भारत में भेदभाव की निरंतरता इन कानूनी हस्तक्षेपों की सीमाओं को उजागर करती है और सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के साथ एक गहन मानसिक विऔपनिवेशीकरण की आवश्यकता को रेखांकित करती है, जो कि ना सिर्फ यूरोपीय नकारात्मक प्रभावों का उन्मूलन करे, बल्कि भारत को एकता और अखंडता के सूत्र में भी बांध सके।

भारतीय संविधान विऔपनिवेशिक आकांक्षाओं और अवशिष्ट औपनिवेशिक ढाँचों के बीच जटिल और मिश्रित संवाद का प्रतिनिधित्व करता है। अंबेडकर की मसौदा प्रक्रिया एक विऔपनिवेशिक लोकाचार पर आधारित थी, जिसका लक्ष्य उन ढाँचों को खत्म करना था जिन्होंने 200 वर्ष के उपनिवेशवाद को बनाया और बनाए रखा। अंबेडकर का तर्क है कि औपनिवेशिक और जातिगत उत्पीड़न ने सांस्कृतिक विरासत, पहचान और आत्मनिर्णय की क्षमता को खत्म कर दिया है (मूर्ति, 2023)। यह विचार उपनिवेशित और जाति व्यवस्था के हितधारकों के दिमाग में इतनी गहराई से अंकित है कि वह अक्सर सोचते है कि एक अलग सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना वाली नई बाहरी प्रजाति अथवा विचार की आवश्यकता है जो कट्टरपंथी नई सामाजिक मान्यताओं के निर्माण को बदलने और सुविधाजनक बनाने के लिए है।

इस तरह के मानसिक उपनिवेशवाद को खत्म करने के लिए, अंबेडकर का प्रस्ताव है कि "विरोध करने और सवाल करने की क्षमता" मौलिक रूप से स्वयं में विकसित की जाए, जो जाति को खत्म करने के अंबेडकर के समाधान का आधार भी है (अंबेडकर, 1937/2016)। यह बौद्धिक क्षमता और आत्म-चिंतन की इच्छा है जो मौजूदा पदानुक्रमित सत्ता संरचनाओं को तोड़ती है और लोकतांत्रिक सभ्यताओं में मानव होने के अर्थ को नवीनीकृत करती है। यह विरोध करने और सवाल करने की क्षमता भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों जैसे कि अनुच्छेद 19 तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में अंतर्निहित है। भारतीय संविधान मात्र विरोध और सवाल करने की क्षमता तक सीमित न होकर, संविधान को छोड़कर, धर्म, साहित्य, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, आपसी संबंध आदि में "व्याख्या करने का अधिकार" को भी अंतर्निहित करता है। यह उपनिवेशवाद के सिद्धांतों के विपरीत है, क्योंकि औपनिवेशिक ज्ञान प्रणालियाँ व्याख्या करने के अधिकार को यूरोप केंद्रित ही मानती है। उनके अनुसार यूरोप और अतिरिक्त विश्व में शिक्षक और छात्र का संबंध है अर्थात यूरोप शिक्षक हैं और संपूर्ण विश्व मात्र छात्र है (वुड, 2020)।

अंबेडकर द्वारा जाति की आलोचना, इसकी (जाति की) ज्ञानमीमांसीय हिंसा पर आधारित थी, जिसमें तथाकथित उच्चवर्णीय पदानुक्रमों द्वारा दलितों की आवाज़ और ज्ञान का व्यवस्थित दमन और बहिष्कार किया गया। उन्होंने तर्क दिया कि ज्ञान-मीमांसा न्याय और समतावादी सिद्धांतों पर भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के लिए उच्चवर्णीय वर्गों का एकछत्र वर्चस्व खत्म करना आवश्यक है। अंबेडकर की विद्वता ने उन तंत्रों की जांच की जिनके माध्यम से जाति और औपनिवेशिक व्यवस्थाएं वैकल्पिक ज्ञानमीमांसाओं को दबाती हैं। उन्होंने इसे एक अमानवीय शक्ति के रूप में चित्रित किया, और हाशिए पर पड़े समुदायों को मुक्त करने के लिए इसके पूर्ण उन्मूलन का तर्क दिया (भाटिया और राम, 2023)। इसके अतिरिक्त, अंबेडकर ने स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को मिटाने और यूरोसेंट्रिक ढांचे को लागू करने के लिए औपनिवेशिक ज्ञानमीमांसाओं की आलोचना की। वेटिंग फॉर ए वीज़ा में उनके विशद विवरण बताते हैं कि कैसे

जाति-आधारित भेदभाव सामाजिक संरचनाओं में गहराई से समाया हुआ था, जो औपनिवेशिक और जातिवादी दोनों प्रणालियों को खत्म करने के उनके आह्वान को पुष्ट करता है (अंबेडकर, 2005)।

संविधान मानसिक उपनिवेशवाद के उन्मूलन के लिए एक साधन के रूप में

अंबेडकर ने भारतीय संविधान को उपनिवेशवाद के उन्मूलन और सामाजिक परिवर्तके लिए एक क्रांतिकारी साधन के रूप में परिलक्षित किया। न्याय, समानता, और स्वतंत्रता को अपने मूल में समाहित करके, संविधान ने जातिगत पदानुक्रम और औपनिवेशिक विरासत को स्पष्ट चुनौती देने का प्रयास किया। शिक्षा और रोजगार में आरक्षण जैसी सकारात्मक कार्रवाई की नीतियाँ, प्रणालीगत असमानताओं को दूर करने और ज्ञानात्मक न्याय को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण थीं (भाटिया और राम, 2023)। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और धर्मनिरपेक्षता अंबेडकर के संवैधानिक ढांचे के केंद्र में थे, जिसका उद्देश्य जाति और धर्म में निहित सामाजिक विभाजन को खत्म करना था। उन्होंने संविधान को एक गतिशील दस्तावेज़ के रूप में देखा जो भाईचारे और साझा-लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने मे सक्षम था (अंबेडकर, 2020ए)।

अंबेडकर तथा संपूर्ण संविधान सभा के परिवर्तनकारी प्रयासों के बावजूद, भारत के शासन और सामाजिक ढांचे में औपनिवेशिक निरंतरता बनी हुई है। न्यायपालिका, नौकरशाही और शिक्षा प्रणाली औपनिवेशिक ढाँचों को कही ना कही अभी भी प्रतिबिंबित करना जारी रखती है जो सामाजिक भेदभाव, बहिष्कार और असमानता को मजबूत करती है (भाटिया और राम, 2023)। अंबेडकर का बौद्ध धर्म में परिवर्तन प्रतीकात्मक रूप से एक गैर-औपनिवेशिक कार्य था। उन्होंने भारतीय सामाजिक परिस्थितियों में रहकर ही जाति उत्पीड़न की अस्वीकृति और मुक्ति के साधनों के रूप में स्वदेशी समाधानों का दावा प्रस्तुत किया। यह कार्य जड़ जमाए हुए औपनिवेशिक विरासतों से मुक्त होने के व्यापक संघर्ष तथा भारतीय समस्याओं के भारतीय समाधानों के विकल्पों को रेखांकित करता है (अंबेडकर, 1956)। अंबेडकर का बौद्ध धर्म में परिवर्तन प्रतीकवादी रूप से ये भी प्रदर्शित करता है कि भारत को अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं के लिए बाहर दृष्टिपात करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे भारत में ही विभिन्न ज्ञान प्रणालियाँ उपस्थित हैं, जिन्हें बेहतर विकल्पों के रूप में आत्मसात किया जा सकता है। इन प्रणालियों पर तथाकथित उच्चवर्गीय और उच्चवर्णीय प्रभावों को रोकना भी उतना ही आवश्यक है, और भारतीय संविधान का दर्शन'' इन सारे आदर्शों को व्यवस्थित रूप से संरक्षित करता है।

धर्म का सिद्धांत, जैसा कि प्राचीन भारतीय विचारधारा में व्यक्त किया गया है, मानसिक उपनिवेशीकरण के संदर्भ में भारतीय संविधान की दार्शनिक और नैतिक नींव को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डॉ. अंबेडकर द्वारा संविधान निर्माण के दौरान किए गए प्रयास, उनकी कुछ भारतीय परंपराओं की आलोचना के बावजूद, इस व्यापक और सार्वभौमिक धर्म के सिद्धांत के साथ मेल खाते हैं, जो किसी एकल धर्म से परे जाकर न्याय, समानता और मानव गरिमा को बढ़ावा देता है। यह दृष्टिकोण मानसिक उपनिवेशीकरण के संदर्भ में महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दर्शाता है कि भारतीय संविधान में धर्म और कानून का संबंध प्राचीन भारतीय धारा से जुड़ा हुआ है, जो शासन को नैतिक सिद्धांतों पर आधारित करने का विचार प्रस्तुत करता है, जो व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करते हैं। इस

प्रकार, संविधान पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता का अनुकरण नहीं करता, बल्कि यह एक आधुनिक रूप में धर्म के सार्वभौमिक सिद्धांतों का प्रतिबिंब है। यह संश्लेषण उपनिवेशी मानसिकता को चुनौती देता है और भारत की सभ्यतागत मानसिकता को पुनर्निर्मित करने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है, विशेष रूप से जब हम मानसिक उपनिवेशीकरण और सांस्कृतिक पुनःस्थापना के संदर्भ में इसे समझते हैं (सुमन, 2024)।

संवैधानिक नैतिकता के बारे में अंबेडकर की धारणा ने संविधान में निहित न्याय, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों के पालन पर जोर दिया। उन्होंने चेतावनी दी कि इन मूल्यों के बिना लोकतंत्र "तत्वहीन रूप" में बदल जाएगा (अंबेडकर, 2020ए)। अंबेडकर के लिए संवैधानिक नैतिकता कानूनी अनुपालन से आगे बढ़कर एक "सांस्कृतिक परिवर्तन" को शामिल करती है जो हाशिए पर पड़े समुदायों की गरिमा और अधिकारों का न सिर्फ सम्मान करता है अपितु उसे संरक्षित भी करता है। उन्होंने तर्क दिया कि यह नैतिक ढांचा लोकतांत्रिक शासन को बनाए रखने और जाति और धार्मिक बहुसंख्यकवाद के पुनरुत्थान को रोकने के लिए महत्वपूर्ण था।

अंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक और ज्ञानात्मक मुक्ति की आधारशिला के रूप में पहचाना। यह घोषणा करते हुए कि "ज्ञान ही शक्ति है", उन्होंने जातिगत पदानुक्रम को खत्म करने में शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच की परिवर्तनकारी क्षमता पर जोर दिया (अंबेडकर, 2020)। उन्होंने अभिजात्यवाद और बहिष्कार को बनाए रखने के लिए औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की आलोचना की, साथ ही साथ ऐसे पाठ्यक्रम की वकालत की जो हाशिए पर पड़े समुदायों के इतिहास और योगदान को दर्शाता हो। उनकी दृष्टि में, शिक्षा एक विऔपनिवेशिक और समतावादी समाज बनाने के लिए अपरिहार्य थी (भाटिया, 2018)। भारतीय संविधान ने शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बना कर इस उद्देश्य को भी पूर्ण किया।

अंबेडकर की उपनिवेशवाद विरोधी दूरदृष्टि ने शासन और कानून में अधीनस्थ ज्ञानमीमांसा को एकीकृत करने पर जोर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि वास्तविक समावेशिता सुनिश्चित करने के लिए हाशिए पर पड़े समुदायों के जीवित अनुभवों को नीति और कानूनी ढाँचे में सम्मिलित किया जाना चाहिए। "सकारात्मक कार्रवाई" को संस्थागत बनाकर अंबेडकर ने शासन को लोकतांत्रिक बनाया और ऐतिहासिक रूप से बहिष्कृत समूहों को सशक्त बनाया। उनके प्रयास न्यायपूर्ण और समतापूर्ण समाज को आकार देने में "ज्ञानमीमांसीय बहुलता" के महत्वपूर्ण महत्व को रेखांकित करते हैं। अंबेडकर के विऔपनिवेशीकृत दृष्टिकोण को साकार करना चुनौतियों से भरा हुआ है। भारत में जाति-आधारित भेदभाव अभी भी जारी है, जो यदाकदा डिजिटल बहिष्कार और आर्थिक असमानताओं जैसे नए रूपों में प्रकट होता है (येंगडे, 2019)।

डॉ. अंबेडकर के संविधान में प्रदत्त दर्शनों एवं विशदों को राजनीति से परे जाकर राष्ट्र निर्माण के संदर्भ में विऔपनिवेशीकरण की दृष्टि से न के बराबर ही समझा गया है और ना ही इस पर अधिक शोध हुए हैं। अरुण शौरी (1997) ने अंबेडकर पर कुछ आरोप लगाए थे, जिनमे स्वतंत्रता आंदोलन का विरोध तथा बौद्ध धर्म को स्वीकार करना उनकी अवसरवादिता है आदि मुख्य हैं। रमेश पतंगे (2016) के अनुसार डॉ. अंबेडकर ने स्वतंत्रता आंदोलन में खुलकर भाग नहीं लिया यह बात सच है। परंतु भारत में जब अंग्रेजों का शासन था तब दो प्रकार की गुलामी थी,

पहली राजनैतिक जो अंग्रेजों से आई थी और दूसरी सामाजिक जो उच्चवर्णीय हिंदू और उनके धर्मशास्त्रों के कारण आई थी। कांग्रेस और अन्य दल संघर्षरत थे और अंग्रेजों का राज़ कोई नहीं चाहता था उसी तरह डॉ. अंबेडकर भी नहीं चाहते थे, परन्तु उनका प्रश्न स्वतंत्रता के पश्चात और दूरदृष्टिगामी था। अंग्रेजों से संघर्ष के बाद प्राप्त होने वाली राजनीतिक स्वतंत्रता में सामाजिक गुलामी को समाप्त करना उनकी प्राथमिकता थी।

डॉ. अम्बेडकर ने गुलामी की न सिर्फ राजनैतिक मीमांशा की अपितु सामाजिक मीमांशा भी प्रस्तुत की। वे लोकतंत्र के समर्थक थे, तथा "एक व्यक्ति, एक मूल्य" के लक्ष्य को जीवन के हर क्षेत्र राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक, में कृतिशील रूप में आचारित करना चाहते थे। जहाँ एक ओर कांग्रेस और अन्य दलों ने राजनैतिक गुलामी से मुक्ति दिलाने में महती भूमिका निभाई, वहीं दूसरी ओर डॉ. अंबेडकर ने मानसिक गुलामी (औपनिवेशिक और सामाजिक असमानता) से मुक्ति दिलाने के संदर्भ में भारतीय संविधान में वो सारे आयाम परिलक्षित किए जिनके कारण भारत एक राष्ट्र रूप में उभरा है। डॉ. अंबेडकर ने अपने 25 नवंबर 1949 के संविधान सभा के भाषण में कहा भी था कि

"मुझे वह दिन याद आते हैं जब राजनीतिक दृष्टिकोण से भारतीयों को 'भारत के लोग' कहने पर आपत्ति होती थी। वे 'भारतीय राष्ट्र' कहने को प्राथमिकता देते थे। मुझे लगता है कि जब हम यह मानते हैं कि हम एक राष्ट्र हैं, तो हम एक बड़ी भ्रांति को पाल रहे हैं। कैसे लोग, जो हजारों जातियों में विभाजित हैं, एक राष्ट्र हो सकते हैं? जितनी जल्दी हम यह समझ लें कि हम अभी तक सामाजिक और मानसिक दृष्टिकोण से एक राष्ट्र नहीं हैं, उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा। तभी हम यह समझ पाएंगे कि हम एक राष्ट्र बनने की आवश्यकता को महसूस करें और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के उपायों पर गंभीरता से विचार करें। इस लक्ष्य की प्राप्ति बहुत कठिन होने वाली है, यह अमेरिका की तुलना में कहीं अधिक कठिन है। अमेरिका के पास जाति की समस्या नहीं है। भारत में जातियाँ हैं। जातियाँ राष्ट्र-विरोधी हैं। सबसे पहले क्योंकि वे सामाजिक जीवन में विभाजन उत्पन्न करती हैं। वे राष्ट्र-विरोधी इसलिए भी हैं क्योंकि वे जाति और जाति के बीच द्वेष और शत्रुता उत्पन्न करती हैं। लेकिन हमें इन सभी कठिनाइयों को पार करना होगा यदि हम सच में एक राष्ट्र बनना चाहते हैं। क्योंकि भाईचारा तब ही एक तथ्य बन सकता है जब एक राष्ट्र हो। बिना भाईचारे के समानता और स्वतंत्रता केवल रंगीन पेंट की तरह होंगी (अंबेडकर, 1949)।"

डॉ. अंबेडकर ने उपनिवेशवाद के मूल "फूट डालो और राज़ करो की नीति" एवं वर्षों की पराधीनता के कारण सुशासन, स्वराज, स्वतंत्रता, लोकतंत्र, स्वशासन, तथा स्वाधीनता को भारतीय समाज द्वारा भूल जाने और मानसिक उपनिवेशीकरण की स्थिति को समझा। इस स्थिति से निपटने के लिए उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय एवं अवसरों की समानता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, श्रद्धा, उपासना की स्वतंत्रता, स्तर एवं अवसरों की समानता, राष्ट्र की एकता व एकात्मता का विश्वास दिलाने वाली बंधुता, एक ही न्याय प्रणाली, बुनियादी दीवानी एवं फौजदारी कानूनों में एकरूपता, महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियों के लिए समान अखिल भारतीय नागरिक सेवा, मेरा देश, मेरा लोकतंत्र, मेरा देशबंधु जैसी आत्मीयता वाला प्रशासन, संवैधानिक नैतिकता, तथा लोककल्याणकारी राज्य, आदि को दर्शनार्थ कर पूरी संविधान सभा के साथ मिलकर भारत को एक राष्ट्र होने के लिए एक जीवंत, दूरदृष्टिगामी, और भारतीय अनुभवों से युक्त विऔपनिवेशीकृत संविधान दिया। अंबेडकर का भारतीय संविधान के प्रति ये विऔपनिवेशीकृत दर्शन, उपनिवेशवाद और जातिवाद की मानसिकता के परे जाकर ही समझा जा सकता है। राष्ट्र

निर्माण का कार्य स्वयं में ही विऔपनिवेशीकृत अवधारणा है और ये सामान्य कार्य नहीं है। भारतीय संविधान स्पष्ट रूप से राष्ट्र निर्माण को प्रतिबिंबित करता है।

इस संदर्भ में, अंबेडकर द्वारा सुझाए गए विऔपनिवेशीकृत संविधान और उनके समतावादी दृष्टिकोण की आवश्यकता आज भी बरकरार है, क्योंकि भारतीय समाज में जातिवाद और औपनिवेशिक मानसिकता के प्रभाव अब भी मौजूद हैं, जो संविधान में निहित न्याय और समानता के सिद्धांतों के सही रूप में क्रियान्वयन में बाधा डालते हैं। इसके अतिरिक्त, बहुसंख्यक राजनीति का उदय, संविधान में निहित न्याय और समानता के सिद्धांतों को कमजोर करता है। अंबेडकर के विचारों को एकीकृत करने में शिक्षा प्रणाली की विफलता, जाति और औपनिवेशिक उत्पीड़न के बारे में व्यापक अज्ञानता को बनाए रखती है। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए अंबेडकर के गैर-औपनिवेशिक और समतावादी सिद्धांतों के प्रति नए सिरे से प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। अंबेडकर के विऔपनिवेशीकृत दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने के लिए, भारत को अपने शासन, शिक्षा और सामाजिक संरचनाओं में मानसिक विऔपनिवेशीकरण को प्राथमिकता देनी चाहिए।

इसके लिए स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम को नया स्वरूप देना, हाशिए पर पड़े समुदायों के इतिहास और ज्ञानमीमांसा को ज़रूरी रूप से शामिल करना भले ही वह उच्चवर्णीय व्यवस्था के अनुकूल ना हो, सकारात्मक कार्रवाई को मजबूत करना, प्रणालीगत असमानताओं को दूर करने के लिए नीतियों का विस्तार करना, संवैधानिक नैतिकता को बढ़ावा देना, न्याय और समानता में निहित सांस्कृतिक लोकाचार को बढ़ावा देना आदि शामिल हैं। अंबेडकर की विऔपनिवेशीकृत विरासत एक समावेशी, न्यायपूर्ण और मानसिक रूप से उपनिवेश-मुक्त भारत के निर्माण के लिए एक मजबूत ढांचा प्रदान करती है। उनके विचारों को समकालीन नीति-निर्माण और शिक्षा में केन्द्रित करना तथा उनके द्वारा देखे गए समतावादी समाज को साकार करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि उनके द्वारा प्रदत्त विऔपनिवेशीकृत विरासत को जरूर समझा जाए तथा संविधान संसोधनों में आगे भी सम्मिलित, व्याख्यान्वित और विवेचित किया जाये।

संदर्भ सूची

1. अंबेडकर, बी. आर. (1945)। *पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ इंडिया।* थैकर एंड कंपनी।
2. अंबेडकर, बी. आर. (1956)। *अप्रकाशित प्रस्तावना टू बुद्धा एंड धर्म।* https://franpritchett.com/00ambedkar/ambedkar_buddha/00_pref_unpub.html
3. अंबेडकर, बी. आर. (2016)। *एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, विद अ रिप्लाई टू महात्मा गांधी।* (शीर्षक नहीं)।
4. अंबेडकर, बी. आर. (2022)। *कास्ट्स इन इंडिया: देयर मैकेनिज़्म, जेनेसिस, एंड डेवलपमेंट।* डिजीकैट।
5. अंबेडकर, बी. (2020)। फिलॉसफी ऑफ हिंदुइज़्म। एच. नारके (संपादक), *डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेस*, खंड 3 (पृष्ठ 3-92)। डॉ. अंबेडकर फाउंडेशन, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार।

6. अंबेडकर, बी. (2020ए)। इन द प्लेनरी सेशन -5वीं बैठक। वी. मून (संपादक), *डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेस*, खंड 2 (पृष्ठ 503-509)। डॉ. अंबेडकर फाउंडेशन, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार (मूल भाषण 1930)।
7. अंबेडकर, बी. आर. (2005)। *वेटिंग फॉर अ वीज़ा*। कोलंबिया सेंटर फॉर न्यू मीडिया टेक्नोलॉजी एंड लर्निंग।
8. भाटिया, एस. (2018)। *डीकॉलोनाइज़िंग साइकोलॉजी: ग्लोबलाइज़ेशन, सोशल जस्टिस, एंड इंडियन यूथ आइडेंटिटीज*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. भाटिया, एस., और राम, ए. (2023)। आउटसाइडर एट होम: रीडिंग बाबासाहेब अंबेडकर ऐज़ ए रैडिकल, डीकॉलोनियल साइकोलॉजिस्ट। *जर्नल ऑफ पर्सनैलिटी*, 91(1), 14–29। https://doi.org/10.1111/jopy.12751
10. दीपक, जे. एस. (2021)। *इंडिया, दैट इज़ भारत: कॉलोनियलिटी, सिविलाइज़ेशन, कॉन्स्टीट्यूशन*। ब्लूम्सबरी पब्लिशिंग।
11. मूर्ति, एस. एस. (2023)। क्रिएशन ऑफ ए 'न्यू स्पीशीज़': ए डीकॉलोनियल रीडिंग ऑफ फ्रांट्ज़ फैनन एंड बी. आर. अंबेडकर। द *कोलंबिया जर्नल ऑफ एशिया*, 2(2)।
12. शौरी, ए. (1997/2012)। *वर्शिपिंग फॉल्स गॉड्स: अंबेडकर, एंड द फैक्ट्स व्हिच हैव बीन एरेज़्ड*। हार्परकोलिंस।
13. तेलतुम्बडे, ए. (2010)। ग्लोबलाइज़ेशन एंड कास्ट। *वॉयस ऑफ दलित*, 3(2), 101-138।
14. वुड, डी. ए. (2020)। *एपिस्टेमिक डीकॉलोनाइज़ेशन: ए क्रिटिकल इन्वेस्टिगेशन इनटू द एंटीकॉलोनियल पॉलिटिक्स ऑफ नॉलेज*। स्प्रिंगर नेचर।
15. येंगडे, एस. (2019)। *कास्ट मैटर्स*। पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड।
16. सुमन, के. (2024, अप्रैल 19-20)। इंडियन नॉलेज सिस्टम एंड कॉन्स्टीट्यूशन। *पेपर प्रस्तुत किया गया राष्ट्रीय सम्मेलन में भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) के समकालीन कानूनी शिक्षा में कार्यान्वयन पर*, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत।
17. *कोंस्टीटूएंट असेंबली डिबेट्स*। (1949, 25 नवम्बर)। https://indiankanoon.org/doc/792941/

12

भारतीय संविधान के तहत लोककल्याणकारी राज्य का विश्लेष्णात्मक अध्ययन

डॉ. उमराव सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय किच्छा, उधमसिंह नगर, उत्तराखंड

भारत विश्व का सबसे बडा लोकतान्त्रिक देश है। भारतीय लोकतंत्र को आत्मीय स्वरुप प्रदान किया है भारत के संविधान ने। भारतीय संविधान विश्व के सबसे विस्तृत संविधानों में से एक है, जिसे संविधान सभा ने देश की विविधता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया। इस संविधान का प्रमुख उद्देश्य एक ऐसा राज्य स्थापित करना है, जो समाज के सभी वर्गों, विशेष रूप से कमजोर और वंचित समूहों के लिए समानता, न्याय, और समृद्धि सुनिश्चित करे। इस उद्देश्य को भारतीय स्वरुप के परिप्रेक्ष्य में साकार करने के लिए संविधान ने 'लोक कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा को विकसित किया था। भारतीय संविधान एक ऐसा दस्तावेज़ है जो देश की विविधता, लोकतांत्रिक व्यवस्था और समावेशी विकास को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। संविधान में उद्देशिका,मूल अधिकार, नीति-निर्देशक सिद्धांत व अन्य भाग लोक कल्याणकारी राज्य के प्रमुख आधार हैं। संविधान का चौथा भाग 'राज्य के नीति तत्व'(अनुच्छेद 36-51) ही राज्य के लोक कल्याणकारी राज्य की रूपरेखा तैयार करता है। संविधान का यह भाग 'गांधीवादी विचारधारा' और 'समाजावादी' धारणा से अभिप्रेरित है।

वर्तमान विश्व में सरकार या शासन का कोई भी रूप हो और किसी भी राजनीतिक विचारधारा को अपनाता हो वह लोक कल्याणकारी कार्यों को शासकीय कार्यों में प्रमुख स्थान देता है। भारत की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भी संविधान को आधार बनाकर लोककल्याणकारी नीति को प्राम्भ से ही अपनाया गया है। अतः प्रस्तुत लेख में भारतीय संविधान में जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा, उसके तत्व, कार्यान्वयन, और उसकी चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है

शोध का उदेश्य् प्रस्तुत आलेख का मुख्य उदेश्य भारतीय संविधान और लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को समझना, लोक कल्याणकारी राज्य का स्वरुप प्रस्तुत करना, लोक नीतियों का क्रियान्वयन समझना व् वर्तमान भूमंडलीकरण के युग में लोककल्याणकारी प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करना है।

शोध प्रविधि, प्रस्तुत आलेख में मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषण किया गया है। भारतीय संविधान और लोक कल्याणकारी नीति का सारगर्भित उल्लेख किया गया है। इसके लिए वस्तुपरक व्यावहारिक विश्लेषण करते हुए संविधान को आधार बनाकर लोक कल्याणकारी राज्य की रुपरेखा प्रस्तुत की गयी है।

मुख्य बिन्दु, लोक कल्याणकारी, लोकतंत्र, सद्जीवान, अस्तित्व, पाश्चात्य दर्शन, पूंजीवाद, उदारवाद, प्रयोजन, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, वादयोग्य, क्रियान्वयन, भूमंडलीकरण।

लोक कल्याणकारी राज्य, वर्तमान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारण बहुत प्रचलित होने लगी है। भारत सहित दुनिया के सभी देशों में सरकारें लोकतंत्र की वास्तविक सिद्धि लोकहित में ही मानते है। लोकतंत्र की सफलता लोककल्याणकारी राज्य की सफलता का पर्याय बन चुका है। लोककल्याणकारी या लोकहितकारी राज्य का अभिप्राय ऐसे राज्य से है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में अवसर की समानता प्रदान की जाती है, उसकी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। इस व्यवस्था में किसी समुदाय या किसी वर्ग विशेष के हितों को ध्यान में न रखकर समाज के सभी अंगों के हितों को ध्यान में रखा जाता है। यद्यपि यह विचार कोई नवीन विचार नहीं है। इस विचार के दर्शन प्राचीन भारतीय ग्रन्थों (महाभारत, मनु- स्मृति, अर्थशास्त्र) में, ग्रीक विचारकों (प्लेटो, अरस्तू) के विचारों में होते हैं। एक ओर महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि, "राज्य को निरन्तर सत्य की रक्षा करनी चाहिए, व्यक्तियों के नैतिक जीवन का पथ-प्रदर्शन, शुद्धि तथा नियन्त्रण करना चाहिए तथा पृथ्वी को मनुष्य के लिए निवास योग्य एवं सुखदायिनी बनाना चाहिए"। दूसरी ओर पाश्चात्य राजनितिक दार्शनिक अरस्तू के विचार ध्यान देने योग्य हैं कि," राज्य सदजीवन के लिए अस्तित्व में आया तथा उसका अस्तित्व सद्जीवन के लिए है"। इसीलिए उन्होंने मनुष्य को एक राजनीतिक व सामाजिक प्राणी माना है। वास्तव में राज्य मूलत: लोकहितकारी है, यद्यपि उसका यह स्वरूप देशकाल के अनुसार बदलता रहा है। मध्य युग के पश्चात् जब राजतन्त्रों का उदय हुआ तो राजा अपने कार्यों का औचित्य लोक-कल्याण की दृष्टि से ही सिद्ध करते थे। राज्य का स्वरूप कैसा भी रहा, उसका उद्देश्य लोक-कल्याण बना रहना चाहिए।

लोक कल्याणकारी राज्य का सामान्य अर्थ है लोगों का सर्वत्र कल्याण करना और उनके जीवन के विकास मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कारना। कल्याणकारी राज्य एक ऐसी राज्य-व्यवस्था है, जिसमें सरकार समाज के कमजोर, वंचित और पिछड़े वर्गों के हितों को प्राथमिकता देती है। इसका उद्देश्य है: **सामाजिक समानता,** राज्य के तहत प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार करना, **आर्थिक न्याय,** समाज में सभी व्यक्तियों के बीच आर्थिक असमानता को समाप्त करना, **सामाजिक सुरक्षा**, सभी नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार का अधिकार प्रदान करना, **सामाजिक न्याय**, सभी नागरिकों के लिए न्याय सुनिश्चित करना विशेषकर वांचित वर्ग के लिए। अतः कल्याणकारी राज्य केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज के प्रत्येक वर्ग को विकास की मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास करता है। **एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोसल साईंस** के अनुसार " लोक कल्याणकारी राज्य से तात्पर्य एक ऐसे राज्य से है जो अपने सभी नागरिकों को न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करना अपना परम उत्तरदायित्व समझता है"। **केन्ट** के अनुसार" लोक कल्यान्कारी राज्य का अर्थ ऐसे राज्य से है जो अपने नागरिकों को अधिकतम सुविधाएँ प्रदान करे"।

लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा का उदय - लोककल्याणकारी राज्य की धारणा का उदय भारतीय दर्शन व भारतीय शासकों के कार्यों में तो देखने को मिलता ही है साथ में पाश्चात्य दर्शन और शासकों के लोकहितकारी कार्यों में भी स्पष्ट रूप देखने को मिलता है। भारत में सम्राट अशोक के लोकहितकारी कार्य हो या मध्य काल में सुल्तान फ़िरोज़ शाह तुगलक व मुग़ल शासक अकबर के जन कल्याणकारी कार्य हो सभी ने अपनी प्रजा को अधिकतम सुविधाएँ प्रदान करके उनके जीवन को सरल व सुलभ बनाया।

पाश्चात्य दर्शन के तहत लोक कल्याणकारी राज्य के उदय के लिए अनेक राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक कारक उत्तरदायी रहे है जिससे लोक कल्याणकारी राज्य का पर्दापण हुआ। इसके लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी थे-

1- **पूंजीवाद या व्यक्तिवाद का स्वरुप,** 17 वी शताब्दी के बाद जब औधोगीकरण तेजी से होने लगा तो इस व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने के लिए अनेक विचारधाराओं व मान्यताओं का भी विकास होने लगा। 17वी -18 वी शताब्दी में विकसित पूंजीवादी विचारधारा इसी का परिणाम है। पूंजीवाद के एक दर्शन के रूप में उदारवादी राजनीतिक विचारधारा का उदभव भी हुआ। पूंजीवाद में उत्पादन के सभी अवयवों पर अर्थात सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली पर पूंजीपतियों का ही प्रभाव था। पूंजीवाद के कारण समाज में एक वर्ग ऐसा था जिसको इसका लाभ नहीं मिल पा रहा था। यह वर्ग सर्वहारा वर्ग के रूप में पहचाना गया। अतः इस वर्ग के साथ दुसरे वर्ग ने भी अपने लिए मूल सुविधाओ की मांग की। यह वर्ग ही विभिन्न समाजों में सत्ता का केंद्र बन गया जिसको लाभ पहुचाना ही राजनीति का प्रमुख उदेश्य बन गया। इस वर्ग को लाभ देने के लिए लोक कल्याणकारी राज्य का उदभव हुआ।

2- **समाजवाद व मार्क्सवाद का स्वरूप,** विश्व में पूंजीवाद व औधोगीकरण के नकारात्मक प्रभाव के कारण तथा सर्वहारा वर्ग के हितों की पूर्ति के लिए एक आन्दोलन के रूप में समाजवाद का उदभव हुआ। समाजवाद के व्यवहारिक सिद्धांत के रूप में 19वी शताब्दी में मार्क्सवाद सामने आया। मार्क्सवाद ने पूंजीवाद के परिणामस्वरूप समाज में उत्पन्न असमानता और भेदभाव को वैज्ञानिक रूप से लोगों के समक्ष रखा। अतः राजनीतिक स्तर पर पूंजीवाद में सुधार करने के साथ ही राज्य के कार्य क्षेत्र को विस्तृत करते हुए लोक कल्याणकारी राज्य को बढ़ावा दिया जाने लगा।

3- **लोकतंत्र का विकास,** लोक कल्याणकारी राज्य का विकास मूलरूप से लोकतंत्र के विकास के साथ जुडा है। लोकतंत्र में ही जनता के हितों को प्राथमिकता दी जाती है। लोकतंत्र के मूल सिद्धांत है- अधिकार, स्वतंत्रता, समानता, न्याय व बंधुत्व आदि। लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना लोकतंत्र के बिना संभव भी नहीं है। विभिन्न लोकतान्त्रिक देशों में लोक कल्याणकारी संरचना मतदान व्यवहार का एक प्रमुख साधन बन गया है। राजनीतिक सत्ता का निर्धारण लोकनीतियों से ही प्रभावित होने लगा है। अतः लोकतंत्र व लोक कल्याणकारी एक दूसरे को प्रभावित करते है।

4- **स्वतंत्रता का स्वरूप ,** किसी भी समाज के प्राथमिक अधिकारों में स्वतंत्रता का अधिकार होता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता के सकारात्मक स्वरुप का निर्धारण लोकतंत्र में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना से ही संभव हो सका है। राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग से लेकर सामाजिक न्याय की मांग तक लोक कल्याण प्रमुख आधार रहा है। जैसे- जैसे स्वतंत्रता का स्वरुप विस्तृत होता गया वैसे ही लोक कल्याणकारी राज्य के कार्य क्षेत्र में भी विस्तार होता रहा। अतः वर्तमान में मानवीय स्वतंत्रता का विकास लोक कल्याणकारी राज्य के साथ प्रमुख रूप से जुडता जा रहा है।

अतः लोक कल्याणकारी राज्य का उदभव इतिहास की पृष्ठभूमि में अनेक परिस्थितिओं के परिणाम स्वरुप हुआ है। इसके पीछे सामाजिक, राजनीतक, आर्थिक व बौदिक कारक अधिक उत्तरदायी रहे है। ये सभी कारक लोक

कल्याणकारी राज्य के विकास के लिए एक विचारधारा का स्वरुप निर्धारित करते है। वास्तविक रूप से सामान्य हित में लोक कल्याणकारी राज्य की शुरुआत 1940 के दशक से ब्रिटेन से मानी जा सकती है।

लोक कल्याणकारी राज्य के मुख्य कार्य , कल्याणकारी राज्य का मुख्य कार्य नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कल्याण को सुनिश्चित करना है। यह राज्य की ऐसी व्यवस्था है जिसमें सरकार अपने नागरिकों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सक्रिय भूमिका निभाती है। इसका उद्देश्य समाज में समानता, न्याय, बंधुत्व और संतुलन को स्थापित करना है। एक कल्याणकारी राज्य का मुख्य कार्य गरीब और कमजोर वर्ग के लोगों को सहायता प्रदान करना है। जिसके लिए बेरोजगारी, भुखमरी, बीमारी, शिक्षा की कमी और सामाजिक असमानता जैसी समस्याओं से निपटने के लिए योजनाएं और नीतियां तैयार करता है। शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, सामाजिक सुरक्षा और रोजगार के अवसर प्रदान करना इसके प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। यह राज्य नागरिकों को मुफ्त या सस्ती शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, पेंशन, बेरोजगारी भत्ता और खाद्य सुरक्षा जैसे लाभ प्रदान करता है। इसके माध्यम से आर्थिक असमानता को कम करने और गरीबों को सशक्त बनाने का प्रयास किया जाता है। इसके अलावा, यह कानून व्यवस्था बनाए रखने, मानवाधिकारों की रक्षा करने और नागरिकों को समान अवसर प्रदान करने पर भी जोर देता है।

कल्याणकारी राज्य का दृष्टिकोण समग्र विकास और सामाजिक न्याय पर आधारित होता है। कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य केवल गरीबी उन्मूलन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज में प्रत्येक व्यक्ति को गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्रदान करना है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो समाज में संतुलन बनाए रखने और विकास को समग्र बनाने की दिशा में कार्य करती है।

भारतीय संविधान और कल्याणकारी राज्य , भारतीय संविधान विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा अपनी एक अलग पहचान रखता है। संविधान का मुख्य प्रयोजन मानवता का कल्याण व संरक्षण रहा है। इसके लिए भारतीय संविधान में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा मुख्य रूप से उद्देशिका , मौलिक अधिकार और नीति-निर्देशक तत्वों में निहित है।

1. **संविधान की उद्देशिका** , संविधान की उद्देशिका भारतीय संविधान का एक अभिन्न अंग है। यह सम्पूर्ण संविधान का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। उद्देशिका में संविधान का उद्देश्य समाजवादी राज्य, पथनिरपेक्षता, लोकतान्त्रिक गणराज्य की स्थापना के साथ ही तीन प्रकार के न्याय- सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक तथा "स्वतंत्रता", "समानता" और "बंधुत्व" जैसे शब्दों का उल्लेख किया गया है।

उद्देशिका मे समाजवादी शब्द (42वें संशोधन संशोधन , 1976 के तहत जोड़ा गया) यह स्पष्ट करता है कि भारतीय राज्य का उद्देश्य समाज के प्रत्येक वर्ग को समान आर्थिक और सामाजिक अवसर प्रदान करना है। यह पश्चिमी समाजवाद को यथावाद स्वीकार ना करते हुए भारतीय परिप्रेक्ष्य के लोक कल्याणकारी समाजवाद को स्थापित करता है । हाल ही में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक याचिका के सन्दर्भ में समाजवाद को परिभाषित करते हुए कहा कि भारत में समाजवाद का मतलब सिर्फ कल्याणकारी राज्य से है। पंथनिरपेक्षता शब्द(42वें संशोधन संशोधन , 1976 में ही जोड़ा गया) भारत में सर्वपंथ समभाव के आधार पर एक मानवता का सन्देश प्रस्तुत करता है। सभी पंथों को सामान महत्त्व देते हुए एकता व बंधुत्व का सन्देश देता है। इसके लिए संविधान मे कई ऐसे प्रावधान है जिनमे इन

पंथों के अनुयायियों को समान संरक्षण दिया गया है। " न्याय" का अर्थ है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और अधिकार मिलें। वर्तमान में सभी लोकतांत्रिक देशों में न्याय के जिस पक्ष पर सर्वाधिक जोर दिया जा रहा है वह सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय का सामान्य अर्थ यह है कि " समाज के सभी लोगों के बीच समानता का भाव हो, समाज में जो वर्ग अपने अधिकारों से वंचित हो उसको अधिकतम लाभ मिले"। संविधान में इसके लिए उद्देशिका में स्पष्ट रूप से अभिप्रेरित किया गया था। अतः उद्देशिका में एक दर्शन के रूप में लोक कल्याण हेतु सपूर्ण वैचारिक धारणा को प्रस्तुत किया गया है।

2. **मौलिक अधिकार** : किसी भी देश के संविधान की व्यावहारिकता का प्रमाण उस देश के नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकारों से मिलता है। भारत के संविधान में भी प्राम्भ से ही नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों की सुस्थायी व्यवस्था की गयी है। मौलिक अधिकार से समान्य तात्पर्य यह है कि " व्यक्ति के ऐसे अधिकार जो उस देश के नागरिकों को उनके सम्पूर्ण व्यक्तितव के विकास के लिए संविधान द्वारा एक गारंटी के रूप में प्रदान किये जाते है"। संविधान में उल्लेखित मौलिक अधिकार नागरिकों को उनकी स्वतंत्रता, समानता और गरिमा का संरक्षण प्रदान करते हैं। भारत के संविधान में भाग- तीन के तहत अनुच्छेद- 12-35 तक नागरिकों को विस्तृत रूप में ये अधिकार प्राप्त है। जो समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार के रूप में वर्णित है। जिसमे से प्रमुख अधिकार निम्नलिखित है-

- अनुच्छेद 14- विधि के समक्ष समानता और विधि का समान संरक्षण।
- अनुच्छेद 15- धर्म, जाति,वर्ग, लिंग या जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव पर रोक।
- अनुच्छेद 17- छुआछुत या अस्पृश्यता का उन्मूलन करना।
- अनुच्छेद 19- छः प्रकार के स्वतंत्रता के अधिकार।
- अनुच्छेद 21- जीवन का अधिकार।
- अनुच्छेद 23- शोषण के विरुद्ध अधिकार।
- अनुच्छेद 25- धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।
- अनुच्छेद 32- संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

अतः संविधान में उल्लेखित सभी अधिकार नागरिकों के गरिमामय जीवन व विकास के लिए व्यवस्थित किये गए है। इन अधिकारों के पूर्ण रूप से परिपालन के लिए ही सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के लोक नीतियों को लागू किया जाता है। ये लोक नीतियाँ नागरिकों के विकास व संरक्षण हेतु समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते है, जैसे- 86वें संविधान संशोधन 2002 के तहत संविधान में अनुच्छेद- 21(a) में "शिक्षा का अधिकार" को सम्मिलित किया गया। इसमें वर्णित है कि " 6-14 वर्ष तक के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य होगी"। तत्पश्चात वर्ष 2009 में सरकार ने 'निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम' के रूप में अधिनियमित किया। संविधान के इस भाग में नागरिकों के कल्याण हेतु सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विकास

के ऐसे आधारों का प्रावधान किया गया है जिससे सरकार लोक कल्याण हेतु नीतियों व कार्यक्रमों की घोषणा कर सके। साथ में सभी अधिकार वाद योग्य होने के कारण न्यायालय द्वारा भी लोक हित में आदेशित किये जाते रहे है जैसे- सूचना का अधिकार, प्रेस की स्वतंत्रता, जीवन का अधिकार व विभिन्न याचिकाओं के माध्यम से अन्य अधिकारों के अनुपालन का आदेश प्रमुख है।

2. **राज्य के नीति-निर्देशक तत्व**, भारत के संविधान में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रावधान स्पष्ट रूप से संविधान के भाग IV में वर्णित नीति-निर्देशक तत्व से है। संविधान के इस भाग में अनुच्छेद 36-51 तक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए एक विस्तृत खाका तैयार किया गया है। लोक कल्याणकारी राज्य के साथ-साथ संविधान का यह भाग मूल रूप से गांधीवादी, समाजवादी विचारधारा पर भी आधारित है। गांधीवादी व समाजवादी विचारधारा का अन्तिम उद्देश्य लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। यह भाग लोक प्रशासकों व सरकार के लिए महत्वपूर्ण स्रोत है।

नीति निर्देशक सिद्धांत के तहत यधपि सभी प्रावधान लोकनीति के निर्धारण के लिए उल्लेखित किये गए है। परन्तु कुछ प्रावधान मौलिक रूप में लोक कल्याण को बढ़ावा देते है। जो प्रमुख रूप से इस प्रकार है-

- ❖ अनुच्छेद- 38 राज्य को यह निर्देश देता है कि वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को सुनिश्चित करे।
- ❖ अनुच्छेद- 39 आजीविका के समान अवसर, पुरुषों और महिलाओं के बीच समान वेतन, और समाज के कमजोर वर्गों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का निर्देश।
- ❖ अनुच्छेद- 41 रोजगार, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता के अधिकार का प्रावधान करना।
- ❖ अनुच्छेद -43 श्रमिकों के लिए उपयुक्त जीवन स्तर और सामाजिक सुरक्षा का प्रावधान करना।
- ❖ अनुच्छेद -45 6 से 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान करना।
- ❖ अनुच्छेद- 47 राज्य को पोषण स्तर और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए प्रयास करने का निर्देश।
- ❖ अनुच्छेद- 48 कृषि और पशुपालन में सुधार और पर्यावरण संरक्षण करना।
- ❖ अनुच्छेद -51A प्रत्येक नागरिक के लिए 11 मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख।

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व संविधान के तहत राज्य के लिए एक कर्तव्य के रूप में निर्देशित हैं। यह सिद्धांत न्यायालय मैं वादयोग्य नहीं हैं अर्थात न्यायालय द्वारा पर्वर्तानीय नही हैं। ये सभी तत्व राज्य के लिए नागरिकों के हित में नीति निर्धारण हेतु कर्तव्य मात्र हैं। ये नागरिकों के लिए सकारात्मक रूप में हैं क्योंकि इस भाग के तहत राज्य के कार्यक्षेत्र को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया हैं। राज्य के नीति निर्देशक तत्व के आधार पर देश में सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना की गयी है। अतः संविधान के इस भाग को आधार बनाकर देश में कल्याणकारी राज्य की प्राप्ति हेतु अनेक प्रयास किये जाते रहे है। केंद्र सरकार ने संविधान के निर्देशों के अनुरूप विभिन्न योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रयास किया है। उनमें से कुछ प्रमुख लोकनीतियां निम्नलिखित हैं(सारणी)-

क्रं संख्या	विषय	नीतियाँ / कार्यक्रम	वर्ष	विवरण
01	आर्थिक और रोजगार	**महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, मनरेगा**	2006	भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के लिए न्यूनतम 100 दिनों की रोजगार गारंटी योजना।
		मेक इन इंडिया	2014	इंडिया को एक वैश्विक विनिर्माण का केंद्र बनाने और रोजगार सृजन तथा निवेश को बढ़ावा देने की योजना।
		प्रधानमंत्री मुद्रा योजना	2015	छोटे और मध्यम उद्यमों को कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करने की योजना, जिससे देश में स्वरोजगार को बढ़ावा मिले
		स्टार्टअप इंडिया	2016	नए उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के लिए कर में छूट, यह वित्तीय सहायता और सरल सरकारी प्रक्रियाओं की योजना।
02	शिक्षा	**सर्व शिक्षा अभियान**	2001	सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू की गई योजना।
		राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान	2009	माध्यमिक शिक्षा की पहुंच और गुणवत्ता में सुधार के लिए एकीकृत योजना।
		बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना	2015	बालिकाओं की शिक्षा और लैंगिक समानता को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से शुरू की गई योजना।
		राष्ट्रीय शिक्षा नीति	2020	शिक्षा प्रणाली में सुधार, बहु-विषयक शिक्षा, कौशल विकास और मातृभाषा में शिक्षा पर जोर देने वाली व्यापक नीति।
		प्रधानमंत्री ई-विद्या योजना	2020	डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एकीकृत डिजिटल प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन कक्षाओं की सुविधा वाली योजना।
		प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना	2003	देश के विभिन्न क्षेत्रों में मेडिकल शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं को सुधारने के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान की स्थापना।

03	**स्वास्थ्य**	**राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन**	2013	स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता सुधारने और सस्ती स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए। यह राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का विस्तार है
		मिशन इंद्रधनुष	2014	बच्चों और गर्भवती महिलाओं के लिए सार्वभौमिक टीकाकरण कवरेज सुनिश्चित करने के उद्देश्य से शुरू की गई योजना।
		आयुष्मान भारत योजना (प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना	2018	देश के गरीब और कमजोर वर्ग को हर साल ₹5 लाख तक का स्वास्थ्य बीमा कवर प्रदान करने वाली योजना।
04	**सामाजिक न्याय और सुरक्षा**	**वन अधिकार अधिनियम**	2006	आदिवासी और वनवासी समुदायों को उनके पारंपरिक वन भूमि पर अधिकार देने और उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के लिए।
		राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग	2007	बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा और उनके कल्याण के लिए एक संवैधानिक निकाय।
		दिव्यांग जन अधिकार अधिनियम	2016	विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा, उनके पुनर्वास और समान अवसर सुनिश्चित करने के लिए एक कानूनी ढांचा।
		प्रधानमंत्री श्रम योगी मानधन योजना	2019	असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए वृद्धावस्था पेंशन योजना, जिसमें न्यूनतम पेंशन सुरक्षा सुनिश्चित की गई।
05	**गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण विकास**	**प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना**	2000	ग्रामीण सड़कों का विकास और सभी गांवों को सड़क नेटवर्क से जोड़ने के लिए।
		राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल मिशन	2009	ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से।
		प्रधानमंत्री आवास योजना- ग्रामीण	2016	ग्रामीण गरीबों के लिए पक्के घर उपलब्ध कराने का लक्ष्य, जिसमें वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

सारणी:- केंद्र की प्रमुख लोकनीतियां व कार्यक्रम

भारतीय संविधान के तहत कल्याणकारी राज्य की प्रमुख चुनौतियां, यधपि देश में संविधान के विभिन्न प्रावधानों को आधार बनाकर केंद्र व राज्य सरकारों ने लोक कल्याण हेतु प्रत्येक क्षेत्र में अनेक लोक नीतियों व

कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया है, परन्तु संविधान के लागू होने से लेकर वर्तमान समय तक जो भी असंख्य नीतियाँ तैयार की उनके क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। ये चुनौतियाँ मुख्य रूप से अनेक प्रक्रति की हैं। लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना में जो चुनौतियाँ मौजूद है वे मुख्यतः- **एक,** असमानता का जारी रहना, भारतीय समाज में वर्तमान समय तक भी आर्थिक और सामाजिक असमानता मौजूद है गरीब और अमीर के बीच बढ़ती जा रही है। **दूसरी,** नीतियों का कमजोर कार्यान्वयन होना, योजनाओं और नीतियों का जमीनी स्तर पर सही तरीके से लागू न हो पाना। केवल मात्रात्मकता पर जोर दिया जाना। **तीसरा,** भ्रष्टाचार और नौकरशाही की जटिलता भी लोक नीतियों के क्रियान्वयन में एक प्रमुख बाधा है। **चौथा,** वित्तीय सन्दर्भ की बाधाएं, कल्याणकारी योजनाओं व कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त धन की कमी, गरीबी और बेरोजगारी के कारण संसाधनों का असमान वितरण। **पांचवा,** सामाजिक-राजनीतिक व पर्यावरणीय समस्याएं, जातिगत और धार्मिक संघर्ष अर्थात साम्प्रदायिक संघर्ष। राजनीतिक लाभ के लिए रेवड़ी संस्कृति को बढ़ावा। विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच असंतुलन का होना। जलवायु परिवर्तन के कारण किसानों और मजदूरों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना।

अतः वर्तमान में भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है वे मुख्यतः सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक स्तर की है। यह चुनौतियाँ मुख्य रूप से इसके क्रियान्वयन से संबंधित हैं। भूमंडलीकरण के युग में शासन व प्रशासन के लिए लोक कल्याणकारी राज्य को याथार्थ रूप में प्रतिस्पादित करना अधिक चुनौती वाला है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में कल्याणकारी राज्य की प्रासंगिकता, वर्तमान युग आर्थिक व संचार की प्रष्ठभूमि में भूमंडलीकरण का युग है। भूमंडलीकरण के कारण व लोकतंत्र के जटिल प्रक्रियात्मक स्वरुप के कारण तथा पूंजीवाद के बदलते स्वरुप के कारण लोक कल्याणकारी राज्य के समक्ष अनेक चुनौतियाँ होने के बाद भी लोक कल्याणकारी राज्य अधिक प्रासंगिक है अर्थात समकालीन वैश्विक परिस्थितियों में भी कल्याणकारी राज्य की उपयोगिता अधिक बढ़ गयी है। कल्याणकारी राज्य का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत और जटिल होता जा रहा है। इसकी प्रासंगिगता केवल राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे ही नहीं अंतराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भी अधिक प्रसांगिक है। अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में भारत ने सतत विकास लक्ष्यों को अपनाकर कल्याणकारी राज्य के वैश्विक दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया है।

भारतीय संविधान में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा, एक आदर्श समाज की स्थापना का मार्गदर्शन करती है। यह केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को विकास की मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास करता है। यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए न्याय, समानता और गरिमा सुनिश्चित करने का मार्गदर्शक सिद्धांत है। हालाँकि, इस लक्ष्य को प्राप्त करने में अनेक चुनौतियाँ हैं, फिर भी सरकार और समाज के संयुक्त प्रयासों से यह संभव हो सकता है। यह समय की मांग है कि नीतियों और योजनाओं को अधिक प्रभावशाली रूप से इसका क्रियान्वयन किया जाय। भारत में लोक कल्याणकारी राज्य जहाँ सकारात्मक रूप से नागरिकों के लिए विकास का आधार विकसित कर रहा है तो वही इसके कुछ नकारात्मक पहलू भी है जो कि भारत की राजनीति को प्रभावित कर रहा है। भारत की राजनीति व्यवस्था में लोक कल्याणकारी राज्य का स्वरुप सत्ता लाभ प्राप्ति के लिए राजनीति दलों द्वारा अलग स्वरुप में प्रस्तुत किया जा रहा है। राजनीतिक दलों द्वारा राजनीतिक लाभ के लिए लोक लुभावने नीतियों की घोषणा की जाती है। अपने चुनावी घोषणापत्र में जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए ऐसी

घोषणाएं की जाती है जो राज्य की संरचना के लिए अहितकारी होता है। इस प्रकार की नीतियों को 'रेवड़ी' की संज्ञा दी जाती है। लोक नीति का मुख्य प्रयोजन व्यक्ति को उसकी योग्यता के आधार पर सक्षम बनाना हो ना कि उसके प्रति निर्भर। अतः निष्कर्षतः लोकहित, मानव कल्याण के लिए व लोकतंत्र के सतत विकास हेतु लोक कल्याणकारी राज्य आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. आशीर्वादम, एडी, मिश्र, के (2016)। *राजनीति विज्ञान।* नई दिल्ली: एस। चन्द एंड कंपनी।
2. कश्यप, एस। (2021)। *हमारा संविधान*। नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
3. जैन, डी (2017)। *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था।* जयपुर: आर बी एस ए पब्लिशर्स।
4. नारंग, ए। एस (2013)। *भारतीय शासन एवं राजनीति।* नई दिल्ली: गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस।
5. फाडिया, बी। एल, फाडिया। के (2018)। *भारतीय शासन एवं राजनीति।* आगरा: साहित्य भवन।
6. फाडिया, बी। एल, फाडिया। के (2024)। *लोक प्रशासन प्रशासनिक सिद्धांत।* आगरा: साहित्य भवन।
7. बसु, डी। डी (2002)। *भारत का संविधान एक परिचय*। नई दिल्ली: वाधवा एंड कंपनी।
8. मेहता, पी। वी (2003)। *संवैधानिक लोकतंत्र और भारत।* नई दिल्ली: पेंगुइन इंडिया।
9. शर्मा, आर। के (2017)। *भारत में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा।* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी।
10. सईद, एस। एम (2011)। *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था।* लखनऊ: भारत बुक सेन्टर।

13

भारतीय संविधान की सामाजिक एवं नैतिक दर्शन के आलोक में प्रासंगिकता: एक विश्लेषण

डॉ. अखलाख अहमद

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, अनजबित सिंह महाविद्यालय, बिक्रमगंज(रोहतास) बिहार

भारतीय संविधान एक लम्बे विमर्श यथा दो वर्ष,ग्यारह महीने 18 दिनों के बाद अस्तित्व में आया |[1] संविधान सभा द्वारा लगभग सभी आवश्यक पहलूओं जो वर्तमान एवं भविष्य से सम्बंधित हैं पर विचार कर एक व्यवहारिक संविधान को मूर्त रूप देने का प्रयास किया गया | भारतीय संविधान की आलोचना जिन आधारों पर की गई, उनमें कुछ प्रमुख हैं कि यह दूसरे संविधानों की नक़ल मात्र है, यह उधार का थैला है, इसमें मौलिकता का अभाव है और यह वकीलों के लिए स्वर्ग है |[2] जिसके उत्तर में संविधान निर्माताओं ने अपना पक्ष स्पष्ट करते हुए कहा कि विश्व के अन्य संविधानों से अच्छी चीजों को ग्रहण करने में संकोच नहीं होना चाहिए | हम एक व्यवहारिक संविधान का निर्माण करने जा रहें है , जिसके अधिकांश प्रावधानों से आम जन का पूर्व परिचित होना संविधान की सफलता में सहायक सिद्ध होगा | ऐसा हुआ भी,अतः भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक ऐसे संविधान को प्रस्तुत किया जिसके व्यवहारिक पक्ष से जनता कमोबेश परिचित थी | यही कारण है कि आज हमारी लोकतान्त्रिक संस्थाएं विशेषकर संविधान पूरी तरह से अपने दायित्वों का निर्वहन कर लोकतंत्र की जड़े मजबूत की है | संविधान निर्मताओं ने आम जन के अधिकार एवं राज्य के कर्तव्यों पर विशेष रूप से बल दिया है | जिसका परिणाम यह हुआ है कि संविधान के भाग 3 में मौलिक अधिकार, राज्य की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा का कवच बनता है तथा भाग 4 में नीति निर्देशक तत्व राज्य को सामाजिक लोकतंत्र की दिशा में कार्य करने को अभिप्रेरित करते हैं | इन सब प्रयासों का प्रतिफल है कि भारत का संविधान एक संतुलित संविधान के रूप में वैश्विक पटल पर स्थापित है |

शोध विषय :

चयनित विषय का उद्देश्य संविधान के उन पहलूओं को प्रकाश में लाना है जिस पर अब तक समीक्षा उस रूप में नहीं हो पायी है, जिससे विषय की महत्ता समझा जा सके | निश्चय ही इनका योगदान सामाजिक एकीकरण स्थापित करने में महत्वपूर्ण है | परिणामतः संतुलित विकास के साथ लोकतंत्र की जड़े गहरी हुई हैं | संविधान के सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का कार्य नेपथ्य में रहकर राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सकारात्मक पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण रहा है |

संविधान निर्माताओं के दूरदर्शी विचार भारतीय संविधान में मूल्यों के रूप में प्रतिबिम्बित हैं | प्रस्तावना को किसी भी संविधान की आत्मा कहा जाता है | 42 वें संविधान संशोधन वर्ष1976 के द्वारा प्रस्तावना में समाजवाद एवं पंथनिरपेक्षता शब्द को जोड़ा गया |[3] समाजवाद शब्द का ऐतिहासिक सन्दर्भ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वर्ष 1955 के अवाड़ी अधिवेशन से मिलता है, जहाँ 'समाज के समाजवादी ढांचे' की चर्चा की गयी थी |[4] हमारा समाजवाद अपने

आप में अनूठा है या यों कहें कि भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप है | यह समानता की बात करते हुए पूंजीवाद के सह –अस्तित्व की वकालत करता है | इसे साम्यवाद या अन्य समाजवाद की प्रचलित धाराओं के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है | इस सन्दर्भ में यह भी सत्य है कि मानव की समानता एवं कृत्रिम विभेद के विरुद्ध है, जो कहीं न कहीं सामाजिक समरसता के उदेश्य से परिपूर्ण है | वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण मामले में सुनवाई करते हुए कहा है कि " भारतीय ढांचे में समाजवाद आर्थिक और सामाजिक न्याय के सिद्धांत को मूर्त रूप देता है, जिसमें राज्य यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी नागरिक आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण वंचित न रहे | 'समाजवाद' शब्द आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान के लक्ष्य को दर्शाता है | निजी उद्दमशीलता, व्यवसाय और व्यापार के अधिकार को प्रतिबंधित नहीं करता है ,जो अनुच्छेद 19(1) (जी) के तहत एक मौलिक अधिकार है |"[5]

पंथनिरपेक्षता का अर्थ इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार गैर- अध्यात्मिक, पंथ अथवा अध्यात्मिक मामलों से कोई सम्बन्ध न होना ---कोई वस्तु जो पंथ से भिन्न हो, उसके विरुद्ध अथवा उससे सम्बंधित न हो अथवा धार्मिक वस्तुओं से सम्बंधित न हो और आध्यात्मिक तथा धार्मिक वस्तुओं के विपरीत सांसारिक हो |[6] पंथनिरपेक्षता से आशय पंथ के मामले में राज्य की तटस्थ भूमिका का होना , सभी धर्मो को सामान महत्व देना, राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पंथ के प्रयोग का निषेध आदि के रूप में लगाया जाता है | पंथनिरपेक्षता का तकाजा यह है कि पंथ व्यक्ति के नितांत व्यक्तिगत विश्वास से सम्बंधित है | राज्य व्यक्ति को किसी पंथ को मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है | व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार किसी पंथ को धारित अथवा त्याग कर अपना आचरण सम्पादित कर सकता है | आशय यह है कि राज्य किसी पंथ को वैधानिक रूप से मान्यता नहीं देता है | संविधान निर्माताओं ने भारत की विविधिता की खूबसूरती के अनुरूप भाग तीन के मौलिक अधिकार में अनुच्छेद 25 -28 के प्रावधानों से व्यक्ति को धार्मिक मामलों में स्वतंत्रता प्रदान कर पंथनिरपेक्षता के विचार को पुष्पित एवं पल्लवित किया है | पंथनिरपेक्षता शब्द भारत के सन्दर्भ में धार्मिक सहिष्णुता के उद्देश्य से अभिप्रेरित है ,जिससे सामाजिक समरसता, एकीकरण एवं भ्रातृत्व की जड़ें मजबूत होती हैं | पंथनिरपेक्षता को संविधान के आधारभूत ढांचे के रूप में स्वीकार किया गया है |

ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय संविधान को सामाजिक क्रांति बताया है |[7]ऑस्टिन ने कहा है कि संविधान का अस्तित्व ही सामाजिक क्रांति का वक्तव्य था | भारतीय संविधान का लक्ष्य राजनीतिक एकता की प्राप्ति हेतु सामाजिक पृष्ठभूमि को इस प्रकार तैयार करना है जहाँ हिंसा, भेदभाव एवं जातीय विद्वेष ,भौगौलिक मतभिन्नता का पूर्णतः निषेध हो सके |

भारतीय संविधान भाग 3 के अनुच्छेद 14, 15, 16,17,18, 19, 21,23, 24,25, 26, 28,29, तथा 30 के द्वारा सामाजिक आधार को मूर्त रूप दिया गया है | अनुच्छेद 14 'विधि के समक्ष समता'[8] की वकालत करता है | इस अनुच्छेद के द्वारा भारत के राज्य क्षेत्र में निवास करने वाले सभी व्यक्तियों को विधि के समक्ष समता की प्रत्याभूति दी गयी है | इस अनुच्छेद के उपबंध राज्य को यह आदेश देते है कि भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा | स्पष्ट है यह अधिकार नागरिक एवं गैर-नागरिक दोनों के सामान प्रतिष्ठा व सामान अवसर को सुनिश्चित करता है | यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि अनुच्छेद 14 यह वर्जित नहीं करता है कि राज्य युक्तियुक्त वर्गीकरण न करे |

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15 पंथ , मूल वंश , जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर विभेद का निषेध करता है |[9] यह अधिकार भारत के नागरिकों को प्राप्त है | अनुच्छेद 15 (1) राज्य को किसी नागरिक के विरुद्ध पंथ , मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म-स्थान या इनमें से किसी भी आधार पर विभेद का निषेध करता है | अनुच्छेद 15 (2) कोई नागरिक केवल पंथ , मूल वंश , जाति, लिंग या जन्म-स्थान इनमें से किसी के आधार पर ---(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या (ख) पूर्णतः या भागतः राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानाघाटों, सड़कों और सार्वजानिक समागमों के स्थानों के उपयोग के सम्बन्ध में किसी भी निर्योग्यता,दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा | अनुच्छेद 15 (3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य की स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी |
भारतीय संविधान का अनुच्छेद 16 'लोक नियोजन के विषय में अवसर'[10] की समता का हिमायती है | अनुच्छेद 16 (1) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी | अनुच्छेद 16 (2)) कोई नागरिक केवल पंथ , मूल वंश , जाति, लिंग, उदभव,जन्म-स्थान, निवास या इनमे से किसी भी आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के सम्बन्ध में अपात्र नहीं होगा या इन आधारों पर विभेद का निषेध किया जाता है | भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 एवं 18 द्वारा क्रमशः 'अस्पृश्यता का अंत'[11] एवं 'उपाधियों की समाप्ति'[12] की घोषणा की जाती है |

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 का उद्देश्य विचार , अभिव्यक्ति, विश्वास, पंथ और उपासना की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना है |[13] मूल संविधान में नागरिकों को 7 स्वतंत्रताएँ इस अनुच्छेद द्वारा प्रद्दत थी , 44 वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार की श्रेणी से बाहर निकालने के बाद अब इनकी संख्या 6 रह गयी है | ये अधिकार भी युक्तियुक्त निर्बन्धन के अधीन हैं | इसी प्रकार अनुच्छेद 21 प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण का पक्षधर है अर्थात किसी व्यक्ति को प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा |[14] अनुच्छेद 23 और 24 शोषण के विरुद्ध अधिकार से सम्बंधित है | बलात् श्रम तथा 14 वर्ष से कम उम्रवाले बालकों के श्रम का निषेध किया गया है | अनुच्छेद 25 एवं 26 धार्मिक अधिकारों को संरक्षित करते हैं | वहीं अनुच्छेद 29 और 30 अल्पसंख्यकों के हितों के संरक्षण के साथ –साथ संस्कृति की रक्षा का हिमाभारतीय संविधान निर्माताओं का उद्देश्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित करना था | इसी उद्देश्य की प्राप्ति से अभिप्रेरित होकर राजीनीतिक एवं सामजिक अधिकार के क्रियान्वयन हेतु संविधान के भाग 3 एवं 4 में वृहत उपबंध किये गये | मौलिक अधिकार व्यक्तियों के अधिकारों की प्रत्याभूति देकर राज्य के अधिकार क्षेत्र को सीमित करते हुए, राजनीतिक लोकतंत्र को मूर्त रूप देने का हिमायती है | संविधान का अनुच्छेद 14 'क़ानून के समक्ष समता या कानून के समान संरक्षण' के द्वारा यह स्पष्ट किया गया की विधि से ऊपर कोई नहीं है | सभी एक तरह के कानून से शासित है | फ्रांस की भांति यहाँ साधारण लोगों एवं प्रशासनिक पदाधिकारियों के लिए अलग- अलग कानूनी व्यवस्था नहीं है | यहाँ ब्रिटिश शासन प्रणाली के अनुरूप " विधि के शासन" को आत्मसात किया गया है, जिसके तहत सभी व्यक्ति समान रूप से समान कानून से शासित हैं | हालाँकि इसे और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इस सन्दर्भ में अपवाद का प्रावधान किया गया है एवं युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाए गये हैं | भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15 सामाजिक समानता स्थापित करने की दिशा में मिल का पत्थर साबित हुआ है | स्वतंत्रता से पूर्व

सामजिक,लैंगिक, धार्मिक,जातीय विभेद हमारे लोकतंत्र के लिए बड़ी चुनौती बना हुआ था | लोकतंत्र की स्थापना ने सामंतवाद की मूल्यों को धाराशायी कर सामाजिक समानता का मार्ग प्रशस्त किया | संविधान के अस्तित्व में आने एवं लोकतंत्र के क्रियान्वयन का परिणाम यह हुआ की सत्ता प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले समाज के तथाकथित श्रेष्ठ वर्ग को निचला तबका जो अब तक विभेद का शिकार था, उनके पास जाना पड़ा | अतः राजनीतिक समानता ने सामाजिक असमानता की दिवार तोड़ दी | शुरू में इसे राजनीतिक दिखावापन कहा गया किन्तु जागरूकता एवं क्रमिक रूप से लोकतान्त्रिक मूल्यों के परिपक्व होने के परिणाम स्वरुप आज यह वास्तविकता में तब्दील होता हुआ प्रतीत हो रहा है | यह राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बड़ा कदम माना जा सकता है | भारतीय संविधान का अनुच्छेद 16 लोक नियोजन में विषय अवसर की समता की बात करते हुए सभी के लिए सरकारी नौकरी में सहभागी होने का मार्ग प्रशस्त करता है | भारत जैसे विकासशील देश में सरकारी नौकरी का अलग महत्व है | उन दिनों जब पूरा राष्ट्र गरीबी एवं बेरोजगारी से संघर्ष कर रहा था, सबके लिए सरकारी नौकरी का मार्ग और सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर आरक्षण का उल्लेख कर प्रगतिशीलता के विचार को बढ़ावा दिया गया है, ताकि समाज के मुख्यधारा से वंचित वर्ग को लाभ पहुँचाकर विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सकें | भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 'अश्पृश्यता का अंत' का प्रावधान तत्कालीन परिस्थिति में एक बड़े वर्ग को राहत प्रदान कर समाज से भेद-भाव के कोढ़ को समाप्त करने की दिशा में बड़ा पहल है | यह उस सामाजिक पद्धति के प्रति निर्देश है जिसमें कुछ दलित वर्गों को उनके जन्म के कारण ही हेय दृष्टि से देखा जाता है और तथाकथित उच्च वर्गों या जातियों के लोगों के समागम में उन्हें कुछ निर्योग्याताएँ होती हैं | इस प्रावधान के आलोक में कानून बना कर अश्पृश्यता के आधार पर भेदभाव को अपराध घोषित किया गया | भारतीय संविधान का अनुच्छेद 18 उपाधियों का अंत इस दृष्टि से करता है कि उपाधि किसी के नाम के साथ जुड़ी हुई संज्ञा होती है | इस अनुच्छेद का सन्दर्भ यह है कि ब्रिटिश शासन में सरकार साम्राज्यवादी उद्देश्यों के प्राप्ति लिए सार्वजनिक जीवन को भ्रष्ट करने के लिए उपाधियाँ प्रदान करती थी | भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19 एवं 21 स्वतंत्रता के अधिकार को स्थापित करता है | स्वतंत्रता मानव का जन्म सिद्ध अधिकार है | लोकतंत्र की आधारशिला है | इसके बिना नागरिक जीवन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया जा सकता | वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार ऐसे तात्विक अधिकार हैं जिनकी अनुपस्थिति में नागरिक जीवन सुख और आनंद की प्राप्ति नहीं कर सकता | भारत एक ऐसा विविधता वाला है राष्ट्र जहाँ कई संस्कृतियाँ एक साथ समन्वयात्मक रूप में रहती हैं | इस बहुसंस्कृतिकता की रक्षा के लिए एवं अल्पसख्यकों को अपनी अस्मिता को अक्षुण रखने हेतु संविधान ने अनुच्छेद 29 एवं 30 में विशेष प्रावधान किये गए है | इसके तहत संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का वर्णन किया गया है उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भाग तीन में वर्णित अधिकार एक तरफ समानता को स्थापित कर समाजिकरण की प्रक्रिया को सशक्त करता है वहीं विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रताएँ इस तथ्य का उद्योत्तक हैं कि राज्य सर्वोपरी नहीं है, उसकी भी सीमाएं है | ये अधिकार राजनीतिक एकीकरण का मार्ग सामाजिक एकीकरण से अभिप्रेरित होकर प्रशस्त करते हैं |

भारतीय संविधान का भाग 4 नैतिकता को प्रतिबिम्बित करता है | संविधान को नैतिक दर्शन या नीतिगत आदर्श की प्राप्ति इसी भाग से होती है | ये आदर्श न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होने के बावजूद राज्य के नीति निर्धारण में प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं | ये भविष्यलक्षी योजनाएं है जिनपर विचार करने का नैतिक दायित्व राज्य पर रहता है |

ये अंतरात्मा की आवाज है जिन्हें व्यवहारिक रूप देकर सामाजिक मूल्यों को सशक्त किया जा सकता है | भारतीय संविधान के निर्देशक तत्व उस ध्रुव तारे के सामान है जो सरकार रूपी नाव का मार्गदर्शन करते हैं|[15] इन उद्देश्यों के बारे में पूर्व न्यायाधीश एम. सी. छागला ने कहा है कि " इन तत्वों को भली प्रकार कार्यरूप दिया जाए तो हमारा देश धरती पर स्वर्ग बन जायेगा |'[16] ये कथन निर्देशक तत्वों की महता , इन की प्रासंगिकता और सबसे बढ़कर सपनों के भारत का चित्रण प्रस्तुत करता है |

भारतीय संविधान के भाग 4 में वर्णित निर्देशक तत्व जो राज्य के ऊपर नैतिक प्रतिबन्ध है एवं इनके क्रियान्वयन से सामाजिक एकता को मूर्त रूप देकर सशक्त राष्ट्र की स्थापना की जा सकती है | अनुच्छेद 38 में निर्देश है कि "राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा |"[17] इस सन्दर्भ में राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक,आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करें, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना एवं संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा | अनुच्छेद 39(क) सामान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता की वकालत करता है |"[18] अनुच्छेद 38 एवं 39 का उद्देश्य समाजवाद की स्थापना के मार्ग में राज्यों को मार्गदर्शित करना है | अनुच्छेद 40 को व्यावहारिक रूप दिया जा चुका है | इस अनुच्छेद को मूर्त रूप देने से आज लोकतंत्र की जड़े सशक्त हुई हैं | अनुच्छेद 41 कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने के अधिकार ,[19] यह निर्देश राज्यों को सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करते हैं | इस अनुच्छेद के अधीन राज्य पर यह कर्तव्य अधिरोपित किया गया है कि वह काम पाने के अधिकार के लिए प्रभावी उपबंध करेगा | अनुच्छेद 42 काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध,[20] का होना | यह अनुच्छेद नागरिकों को सामाजिक न्याय दिलाने की दिशा में अत्यंत प्रभावी माना जाता है | अनुच्छेद 43 कर्मकारों के निर्वाह मजदूरी आदि से सम्बंधित है | यह अनुच्छेद समाजवादी मूल्यों से अनुप्राणित है तथा सामाजिक सुरक्षा को स्थापित करने का हिमायती है एवं अनुच्छेद 44 नागरिकों के लिए एक सामान नागरिक संहिता,[21]से सम्बंधित है | संविधान सभा में एक सामान संहिता के विरुद्ध दों आपतियां उठाई गयी थी | इसमें एक अनुच्छेद 25 का उल्लंघन तो दूसरा अल्पसंख्यकों के प्रति अत्याचार बताया गया था | यहाँ उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 25(2) विशिष्ठ रूप से धार्मिक क्रियाकलापों के विनियमन को संरक्षण प्रदान करता है | अनुच्छेद 45 का क्रियान्वयन किया जा चुका है | अनुच्छेद 46 का सम्बन्ध और अन्य दुर्बल वर्ग के शिक्षा एवं अर्थ से है,[22] यह अनुच्छेद सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से SC/ST की संरक्षा करेगा | अनुच्छेद 47 लोक स्वास्थ्य का सुधार, इस अनुच्छेद के आलोक में सर्वोच्च न्यायालय ने बोम्बे प्रोहीवी एक्ट के अंतर्गत मदिरा के विक्रय, प्रयोग,उपयोग आदि पर निर्बन्धन युक्तियुक्त माना था | अनुच्छेद 48 कृषि एवं पशुपालन के सन्दर्भ में निर्देश है | निर्देश का दायरा अंतराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा जैसे संवेदनशील पहलू से भी सम्बन्ध रखता है , जिसका वर्णन संविधान के अनुच्छेद 51 में किया गया है |

सामाजिक सहिष्णुता की जड़ें गहरी हो, इस उद्देश्य से संविधान निर्माताओं ने सामाजिक समानता को मौलिक अधिकार में विस्तृत रूप से प्रावधानित किया है | यह भारत जैसे विविधता वाले राष्ट्र के लिए एकता के सूत्र में बांधने के लिए एवं विभिन्न वर्गों, जातियों, क्षेत्रों के लोगों का विश्वास अर्जित करने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है | संविधान निर्माताओं ने सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में संतुलन स्थापित कर, एक ऐसे राष्ट्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया है जहाँ लोकतंत्र स्थायी रूप से स्थापित हो सके | भाग 4 में वर्णित नीति –निर्देशक तत्व इसके प्रमाण हैं

| इस सन्दर्भ में डॉ. अम्बेदकर का कहना है कि " जब कभी शांति, सुव्यवस्था तथा सुशासन के लिए अधिकार प्रदान किये जाते हैं तब यह आवश्यक हो जाता है कि उन अधिकारों को संचालित करने के लिए अनुदेश भी दिए जाये |"[23] ये निर्देश मौलिक अधिकार के पूरक, कल्याणकारी राज्य की स्थापना, प्रगति के मापदंड, न्यायपालिका के लिए मार्गदर्शक , उपयुक्त नैतिक आदर्श एवं सभी राजनीतिक दलों के लिए उपयोगी हैं |

नागरिकों के ऊपर नैतिक बंधन का प्रावधान 42 वें संविधान संशोधन के द्वारा भाग 4 (क) में मौलिक कर्तव्य के रूप में की गयी है | आरम्भ में इनकी संख्या 10 थी किन्तु सन 2002 में अभिभावकों के लिए 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा का अवसर प्रदान करने का कर्तव्य जोड़ देने से वर्तमान में इनकी संख्या 11 हो गयी | वैसे तो ये कर्तव्य नैतिक प्रतिबन्ध हैं जिनके अनुपालन न करने पर विधिक करवाई का सीधा-सीधा प्रावधान नहीं है | किन्तु किसी विधि की संविधानिकता अवधारित करते हुए, न्यायालय यह पाता है कि इन कर्तव्यों में से किसी को प्रभावी करने के लिए है तो वह ऐसी विधि को अनुच्छेद, 14 या 19 के सम्बन्ध में युक्तियुक्त मानेगा और वह विधि असंविधानिक होने से बच जाएगी | भाग 4क के अनुच्छेद 51क के खंड (च) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "सामासिक संस्कृति"[24] की अपनी महता है | जिसका सन्दर्भ सामाजिक सहिष्णुता से गहरे रूप से जुड़ता है |

किसी भी राष्ट्र के संतुलित विकास हेतु लुसियन पाई के विकास मॉडल समता, क्षमता एवं विभिन्नता के अनुरूप लोकतान्त्रिक संस्थाओं की भूमिका अनिवार्य होती है | समता हेतु सामाजिकता अर्थात सामाजिक एवं धार्मिक सहिष्णुता की प्राप्ति होती है | सहिष्णुता से एकता एवं एकता से कार्यक्षमता तथा संस्थागत विकास में मदद मिलता है | इन सब की परिणति राजनीतिक एकीकरण एवं लोकतंत्र की स्थापना के रूप में होती है | भारतीय संविधान निर्माताओं ने जहाँ मौलिक अधिकारों की स्थापना कर राज्य के निरंकुश होने पर प्रतिबन्ध लगाया, वहीं सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की प्राप्ति हेतु भाग 4 में निर्देशक तत्वों को रखकर वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया | भाग 4(क) के नागरिकों के उपर नैतिक प्रतिबन्ध निश्चय ही संविधान के आदर्शो की पूर्णता प्रतिबिम्बित करता है | अतः यह कहना यथोचित होगा की भारतीय संविधान, सामाजिक एवं नैतिक का दर्शन का क्रियान्वयन उपलब्ध प्रावधानों द्वारा सुनिश्चित कर प्रासंगिकता की कसौटी पर खरा उतरता है |

संदर्भ सूची

1. सक्सेना, प्रोफेसर रेखा (2024 नवम्बर 18), सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में भारतीय संविधान की भूमिका , योजना, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली
2. अहमद, डॉ. अखलाख (2023 नवम्बर 26) , भारतीय संविधान : सहिष्णुता का आईना, मीडिया दर्शन, पृ.सं- 6
3. अहमद, डॉ. अखलाख (2022 नवम्बर 26) , भारतीय संविधान : समकालीन दस्तावेज, तरुणमित्र , पृ.सं-4
4. काश्यप,डॉ.सुभाष (2012) प्रथम संस्करण, राजनीतिक व्यवस्था, बिहार विधान परिषद् सचिवालय, पटना
5. जैन, पुखराज एवं फड़िया, बी .एल (2010) सत्रहवा संस्करण, भारतीय शासन एवं राजनीति,साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा
6. राय, गाँधी जी ,(2009) प्रथम संस्करण, भारतीय संविधान के मूल सिद्धांत, भारती भवन ,पटना

7. सईद, एस.एम.(2000) प्रथम संस्करण, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ
8. चतुर्वेदी, डॉ. मुरलीधर (2000) नवम् संस्करण,भारत का संविधान, इलाहबाद लॉ एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबद
9. .पायली, एम.वी.(1996), प्रथम हिंदी संस्करण, भारतीय संविधान : एक परिचय, दिल्ली –विकास पब्लिशिंग हाउस
10. बसु , डी.डी (1995) छठा संस्करण, भारत का संविधान –एक परिचय , प्रेन्टिस हाल ऑफ़ इंडिया , नई दिल्ली

14

भारतीय संविधान का समाजिक-आर्थिक दर्शन: एक समालोचना

डॉ उमा
सह-आचार्य,अर्थशास्त्र विभाग, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
आभाष कुमार सौरभ
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व स्मपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करती है, एक जीवित दस्तावेज है, जो समय के साथ उभरने वाले मसलों को अपने में समाहित कर लेता है। भारतीय संविधान के मूल प्रारूप को प्रेम बिहारी नारायण रायजादा ने प्रवाहमय (इटैलिक) शैली में हस्तलिखित किया था और इसके प्रत्येक पन्ने को शांतिनिकेतन के कलाकारों द्वारा सजाया गया था, जिनमें नंदलाल बोस और बिउहर राममनोहर सिन्हा शामिल थे। एक ऐसा संविधान जो हमारे देश की आधारशिला बनकर गरिममय हुआ,जो भारत के नागरिकों के न्याय, स्वतंत्रता, और समानता के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। जिसके बारे में ग्रानविले ऑस्टिन जैसे विचारक ने बताया कि यह संविधान भारतीय समाजिक क्रांति का माध्यम है। संविधान निर्मात्री सभा के सदस्यों ने यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार इस संविधान में समाज को एक नया आकर देने की शक्ति निहित है। भारत का संविधान आज जिस वर्तमान स्वरूप में है इसमें पाँच हज़ार साल के एतिहासिक यात्रा का प्रभाव तो है ही साथ ही इसके निर्माण के शुरू होने के वक्त से निर्माण पूरा होने तक के सफ़र का जो कालक्रम और देश की दशाएँ-दिशाए थी उसका भी एक स्पष्ट प्रभाव चिन्हित होता है। ध्यातव्य है संविधान का निर्माण ब्रिटिश उपनिवेशिक काल के दौरान शुरू हुआ जिस काल में ब्रिटिश संसद ने कई ऐसे अधिनियम बनाए और उसे इस देश के प्रशासन को अपने हित के अनुसार चलाने के लिए लागू किया, जिसमें से 1909 का परिषद अधिनियम, 1919 का भारत सरकार अधिनियम, और 1935 का भारत सरकार अधिनियम शामिल है। उपरोक्त तीनों अधिनियम के संदर्भ में यह कहना कदापि अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह तीनों अधिनियम ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय संवैधानिक विकास के प्रमुख मिल के पत्थर है और उसमें से कई अधिनियम हमारे वर्तमान संविधान में भी निहित है। उदाहरण के तौर पर 1935 का भारत सरकार अधिनियम उल्लेखनीय है क्योंकि हमारे वर्तमान संविधान का कुल 65 प्रतिशत भाग सिर्फ़ इसी अधिनियम से लिया गया है।

ब्रिटिश उपनिवेशिक काल के दौरान भारत और इसके लोगों के ऊपर जो अत्याचार हुआ जिसमें समाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक अत्याचार विशेष रूप से विचारणीय है। इन अत्याचारों से उत्पन्न हुई जो स्थिति थी उसका एक साफ़ चित्र संविधान निर्मात्री सभा के सदस्यों के आँखों के सामने था और इस चित्र का प्रभाव संविधान के दर्शन पर भी पड़ा। संविधान के समाजिक-आर्थिक दर्शन और उसके आधार को समझने के लिए पहले हमें उन पन्नों को

पलटना होगा जिसमें उन स्थितियों का वर्णन है जो संविधान निर्माता के लिए, संविधान निर्माण के दौरान दर्शन और आधार के रूप में मार्गदर्शक बना रहा।

भारतीय संविधान का इतिहास

दुनिया के इतिहास में द्वितीय विश्वयुद्ध एक अहम मोड़ है, इस युद्ध के बाद ही स्वतंत्रता की माँग भारत में परवान चढ़ने लगी, जिसकी वजह से ब्रिटिश सरकार को 1946 में कैबिनेट मिशन भेजना पड़ा, जिसके आधार पर संविधान सभा का गठन किया गया। इसमें 389 सदस्य प्रस्तावित थे, इनमें ब्रिटिश भारत से 296 और भारतीय रजवाड़ों से 93 सदस्य थे। इसकी पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई थी, जिसमें 207 सदस्यों ने भाग लिया था। कुछ दिन बाद एक बड़ी उपलब्धि हासिल हुई जब 13 दिसम्बर, 1946 को उदेश्य प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव में न्याय, स्वतंत्रता, समानता, और बंधुत्व पर बल देने वाले लक्ष्य निर्धारित किए गये। दो साल तक की एक लम्बी चर्चा के बाद 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा ने भारत के संविधान को अंगीकृत किया। और इसी समय से हर साल देश में 26 नवम्बर, को संविधान दिवस के रूप में मनाया जाता है। 26 जनवरी, 1950 को संविधान देश में विधिवत लागू किया गया, जिसे हर साल देश गणतंत्र दिवस के रूप में मनाता है।

भारत के संवैधानिक सफ़र पर चिंतन करते वक्त यह याद रखना आवश्यक है कि लोकतंत्र की सच्ची परीक्षा अपने नागरिकों की आँकाक्षाओ को बनाए रखना, उसे विकसित करना और प्रतिक्रिया देने की क्षमता में निहित है। जीवंत लोकतंत्र के लिए लोगों की सामाजिक-आर्थिक ज़रूरतें ज़रूरी हैं। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के अभाव में राजनीतिक लोकतंत्र लंबे समय तक जीवित नहीं रह पाएगा क्योंकि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए भौतिक आवश्यकताओं और अवसरों की उपलब्धता और पहुंच है।
अंग्रेजों के दमनकारी शासन ने न केवल नागरिकों को उनकी स्वायत्तता से वंचित कर दिया था, बल्कि उन्हें घोर गरीबी के अंधकार में भी धकेल दिया था। इसलिए भारतीय संविधान के निर्माता एक ऐसे राष्ट्र के निर्माण के लिए दृढ़ थे, जहाँ व्यक्ति को गरिमापूर्ण अस्तित्व के लिए आवश्यक सभी चीजें प्राप्त हो सकें। अतीत से मिले सबक ने उन्हें संविधान में मानवाधिकारों को शामिल करने के लिए प्रेरित किया। भारतीय संविधान के निर्माता स्वतंत्रता के बाद न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता बल्कि जाति-व्यवस्था की परंपराओं और अस्पृश्यता के अभिशाप से बंधे समुदाय के बड़े हिस्से को सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए उत्सुक थे। इस दृष्टिकोण में, हाशिये पर रहने वाले लोगों की टूटी हुई उम्मीदों को पूरा करने के लिए संविधान में सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को सम्मिलित किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को अगर भारत की जनता की सामाजिक-आर्थिक मुक्ति आंदोलन की आधारशिला कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति कदापि नहीं होगी। आज़ादी के लिए लम्बे समय तक चले आंदोलन में कई ऐसे पड़ाव आए जो एतिहासिक रूप से काफ़ी महत्वपूर्ण हैं। इसी कड़ी में कोंग्रेस की 1931 की कराची अधिवेशन काफ़ी अहम है। इस अधिवेशन में जो राष्ट्रवादी नेताओं की चिंता थी वह भविष्य में एक रौशनी की तरह प्रज्वलित हुई।कराची अधिवेशन

के प्रस्ताव में देश के लोगों को केंद्र में रखने पर जोर दिया गया था और साथ ही उन्हें सामाजिक-आर्थिक रूप से मजबुत करने की भी पहल की गयी थी।अधिवेशन के प्रस्ताव में साफ़ तौर से शामिल था कि भारत की जनता के शोषण को समाप्त करने के लिए, राजनीतिक स्वतंत्रता में भूखे लाखों लोगों के लिए वास्तविक आर्थिक स्वतंत्रता भी शामिल होनी चाहिए। इस प्रस्ताव में मौलिक अधिकार और आर्थिक कार्यक्रम के अंतर्गत कई कल्याणकारी योजनाए, नीतियाँ और एक आर्थिक कार्यक्रम को शामिल किया गया था। इन प्रस्तावों के कारण कराची अधिवेशन एक यादगार सत्र बन गया। इसमें व्यक्ति के निजी स्वतंत्रता के साथ-साथ मुफ़्त शिक्षा और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की गारंटी को भी शामिल किया गया था। इतना ही नहीं, इस अधिवेशन में राष्ट्रीय आर्थिक कार्यकर्मों से संबधित भी कई प्रस्ताव पारित किए गये थे जिनमें से अधिकांशत भविष्य में भारतीय संविधान के आर्थिक आधार और दर्शन के रूप में प्रतिफल्लित हुई।साथ ही इस अधिवेशन के प्रस्ताव में आम नागरिकों से जुड़े अन्य कई विषयों को शामिल किया गया था, जिसमें लगान और मालगुज़ारी में उचित कटौती, अलाभकर जोतों को लगान से मुक्ति, किसानों को क़र्ज़ से राहत और सुदख़ोरों पर नियंत्रण, मज़दूरों के लिए बेहतर सेवा शर्त, महिला मज़दूरों की सुरक्षा तथा काम के नियमित घंटे, मज़दूरों और किसानों को अपने यूनियन बनाने की स्वतंत्रता, प्रमुख उधोगों, परिवहन, और खदान, की सरकारी स्वामित्व एवं नियंत्रण में रखने का वायदा जैसे उपाय शामिल थी। यह प्रस्ताव इतना व्यापक था कि इस प्रस्ताव को कोंग्रेस का वास्तविक रूप से मूलभूत राजनीतिक और आर्थिक नीतियों का दस्तावेज कहा जाने लगा।(बंधोपाधायय,2006). इस प्रस्ताव का महत्व संविधान निर्मात्री सभा के सदस्यों ने भी समझा और इसमें से कई प्रस्तावों को भारत के संविधान में भी जगह दिया।

पिछले कुछ दशकों से राज्य की अवधारणा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन दुनियाभर में देखने को मिलता है। जिसमें कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को काफ़ी महत्व दिया जा रहा है और इसे व्यापक मान्यता भी मिल रही है। अब जनता का सामाजिक-आर्थिक उत्थान एक लक्ष्य बन गया है। लेकिन जब हम कराची प्रस्ताव का अध्य्यन करते हैं तो पाते हैं कि भारत में, स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान ही राष्ट्रवादी नेताओ ने लोगों के सामाजिक-आर्थिक विकास को अपने लक्ष्य के तौर पर रेखांकित कर लिया था। भारतीय संविधान में सामाजिक-आर्थिक अधिकारों का संवैधानिकरण बहुत स्वाभाविक था और यह भारतीय समाज के मूल्यों का परिणाम था या यूँ कहे कि यह भारतीय समाज की परंपरा में बहुत गहराई से अंकित था। वास्तव में, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के बिना भारतीय संविधान इस देश के लाखों लोगों की आकांक्षाओं और आशाओं के साथ विश्वासघात होता, और उन सपनों व उम्मीदों को नकारने जैसा होता जिन सपनों व उम्मीदों को साथ लिए देश स्वतंत्रता संघर्ष में बलिदान देने के लिए लाखों की संख्या में निकल गया था।

संविधान निर्माण के दौरान विभिन्न मुद्दों पर काफ़ी लंबी-लंबी बहस हुई थीं। उन बहसों के दौरान नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के बराबर सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को भी शामिल करने का विचार सामने आया। संविधान सभा के प्रारूप समिति के सदस्य डॉक्टर के एम मुंशी ने आरंभिक कार्यकारी प्रारूप प्रस्तुत किया। उस प्रारूप के अनुच्छेद VII और VIII में उन्होंने भोजन, जीविका मजदूरी, सभ्य जीवन स्तर सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कार्य की स्थिति और प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को सुरक्षित करने का प्रयास किया।(राउ, भाग-२, पृष्ठ 77)।इसी विषय पर आगे प्रोमोथा रंजन ठाकुर ने दलील दी कि किस प्रकार आर्थिक अधिकार संविधान के लिए आवश्यक

है।(संविधान सभा बहस, भाग ३, पृष्ट-383). इसी तरह की चिंता संविधान सभा के सदस्य बी दास ने भी ज़ाहिर की थी, दास ने कहा "मुझे लगता है कि सरकार का प्राथमिक कर्तव्य भूख को दूर करना और प्रत्येक नागरिक को सामाजिक न्याय प्रदान करना और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना होना चाहिए"। इन सब के अलावा और भी कई गणमान्य सदस्यों ने सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को केंद्र में रखने की दलीलें दीं, ताकि भविष्य में देश के हरेक नागरिकों के लिए संविधान अधिकार प्रदान कर सके। आगे इन बहसों से रास्ता भी निकला और संविधान निर्मात्री सभा ने संविधान के भाग चार में राज्य के नीति निदेशक तत्व को शामिल किया, जिसका मुख्य उदेशय आर्थिक और समाजिक लोकतंत्र की स्थापना करना है, जिसका प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 36 से 51 तक में उल्लेखित है। राज्य के नीति निदेशक तत्व के बारे में डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा कि "मूल अधिकारों के साथ यह निदेशक तत्व संविधान की आत्मा और दर्शन है"। हालाँकि संविधान सभा ने राज्य के नीति निदेशक तत्व की प्रकृति ग़ैर-न्यायोचित रखा, यानी कि इसके हनन पर इसे न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है, लेकिन क़ानून बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का नैतिक कर्तव्य है। न्याय, सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक आधार पर सामाजिक व्यवस्था के महत्व पर बोलते हुए डॉ अम्बेडकर ने कहा था कि "राज्य को निर्देशों के गैर-कार्यान्वयन के लिए कोई बचाव करने की अनुमति नहीं दी जाएगी"। आगे उन्होंने कहा कि "...इस संविधान को बनाने में मुख्यतः दो पहलू काफ़ी महत्वपूर्ण थे: पहला, राजनीतिक लोकतंत्र का स्वरूप निर्धारित करना; और दूसरा, यह निर्धारित करना कि भारत का आदर्श आर्थिक लोकतंत्र है। इसलिए यह निर्देश दिया गया कि सरकार आर्थिक लोकतंत्र लाने का प्रयास करेगी। प्रारूप संविधान में 'प्रयास' शब्द का प्रयोग महत्वपूर्ण था क्योंकि यह निर्माताओं की मंशा थी कि भले ही ऐसी परिस्थितियाँ हों जो सरकार को आर्थिक लोकतंत्र लाने से रोकती हों या जो सरकार के प्रभावी होने के रास्ते में आती हों, लेकिन इन निर्देशों को पूरा करने के लिए सरकार को हमेशा प्रयास करना चाहिए।"(संविधान सभा बहस, 7, पृष्ठ 384)। इन निर्देशों के अनुसार नीतियों का पालन करना राज्य के लिए अनिवार्य है। इस कड़ी में आगे न्यायालय ने मौलिक अधिकारों को शामिल करके एक नए युग की शुरुआत की। न्यायालय ने संविधान के भाग III जिसे "भारत का मैगनाकार्टा" की संज्ञा दी गयी है, इसमें जीवन के संदर्भ में 'गरिमा' घटक को जोड़कर इसका और विस्तार किया गया। जिससे यह न्यायिक उपकरण सामाजिक-आर्थिक अधिकारों के कई पहलुओं को उजागर करने में कारगर साबित हुआ, जो संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार का एक अंतर्निहित हिस्सा है। न्यायिक सक्रियता ने मानवाधिकारों की संरचना में सामाजिक-आर्थिक अधिकारों पर जोर दिया। मूल अधिकारों के संदर्भ में एक रोचक तथ्य यह भी है की इसके संबंध में जितना विशाल विवरण भारत के संविधान में है उतना दुनिया के किसी देश के संविधान में नही है। संक्षेप में देखे तो मूल अधिकारों का तात्पर्य राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्शों की उन्नति से है। इसे मूल अधिकार नाम इसलिए दिया गया है कि इसे संविधान द्वारा गारंटी और सुरक्षा प्रदान की गयी है, जो देश के क़ानून का मूल सिद्धांत है। मूल रूप से संविधान ने सात मूल अधिकार प्रदान किए थे लेकिन उनमें से एक अधिकार "सम्पति का अधिकार" को 44वें संविधान अधिनियम, जो कि सन 1978 में हुआ था उसके द्वारा इसे मूल अधिकारों की सूची से बाहर कर इसे संविधान के भाग बारह के अनुच्छेद 300-क के अंतर्गत क़ानूनी अधिकार की श्रेणी में रखा गया, इस लिहाज़ से अब कुल छह मूल अधिकार बचे हैं जिनमें से कुछ हमारे देश के लोगों के लिए समजिक और आर्थिक सुधार का आधार प्रदान करते है।

संविधान के मूल अधिकार के तहत अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 18 जिसके तहत "समता का अधिकार" निहित है।यह देश के लोगों के सामाजिक उत्थान के दृष्टिकोण से काफ़ी महत्वपूर्ण है, जिसमें अनुच्छेद 14 देश के हरेक नागरिकों को "विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण का अधिकार" प्रदान करता है तो वहीं अनुच्छेद 15 लोगों के साथ "किसी भी प्रकार के भेदभाव चाहे धर्म, मूल, वंश, लिंग के आधार पर हो या जन्म स्थान के आधार पर हो" उसका प्रतिषेध करता है। अनुच्छेद 16 देश के हरेक नागरिकों को "अवसर की समता" प्रदान करता है तो वहीं अनुच्छेद 17 "छुआछूत का अंत करने का प्रावधान" करती है जिससे लोगों के बीच समानता हो और समाज में समरस्ता क़ायम रहे। आर्थिक मामलों में अनुच्छेद 19 काफ़ी अहम है जो देश के लोगों को अपना "जीवन यापन करने के लिए किसी भी पेशे, व्यवसाय, व्यापार को अपनाने और चुनने का अधिकार" प्रदान करता है।

अंत में, संविधान की प्रस्तावना, मूलभूत अधिकार, और राज्य के लिए नीति-निर्देशक तत्व तीनों मिलकर यह पुष्टि करते हैं कि संविधान का मुख्य लक्ष्य एक ऐसा समतावादी समाज बनाना था, जिसमें हरेक नागरिकों की निजी आज़ादी सुरक्षित रहे, और साथ ही सबको आगे बढ़ने का और अपनी ज़िंदगी गरिमापूर्ण जीने के लिए अवसर प्राप्त हो।इसमें सबसे रोचक तथ्य यह है कि इसमें किसी एक तत्व की रक्षा किसी दूसरे की क़ीमत पर नहीं की गयी है।

भारतीय संविधान में समाजिक-आर्थिक दर्शन

भारतीय संविधान एक संघीय संविधान है और क़ानून के विशेषज्ञों के अनुसार, एकात्मक संविधान की तुलना में संघीय संविधान में संशोधन करना अधिक कठिन होता है, क्योंकि यह एक मुश्किल प्रक्रिया है जिसके लिए संघीय संसद को विशेष बहुमत की ज़रूरत होती है। हमारे भारत के संविधान निर्माता के मन में जो दूरदर्शी सोच थीं कि वक्त के साथ स्थितियाँ बदलेगी और भविष्य में अन्य कई ऐसी ज़रूरत होंगी जिसके लिए संशोधन की ज़रूरत पड़ेगी। इसलिए उन्होंने भारतीय संविधान को एक जीवंत दस्तावेज बनाया, और संशोधन की प्रक्रिया (अनुच्छेद- 368) का प्रावधान किया, जिसका वक्त-वक्त पर भारत की संसद ने देश हित में उपयोग किया। सबसे पहला संशोधन 1951 में किया गया था, और उसके बाद से अब तक भारत के संविधान में कुल 106 बार संशोधन हो चुके हैं। जिनमें से कई संशोधन सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओँ को नज़र में रखते हुए किया गया है।

- प्रथम संशोधन, 1951- जिसमें सामाजिक और आर्थिक तथा पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए विशेष उपबंध बनाने के लिए राज्यों को शक्ति देने का प्रावधान किया गया।
- चतुर्थ संशोधन, 1955- जिसके तहत किसी व्यापार को राष्ट्रीयकृत बनाने के लिए राज्यों को अधिकार दिया गया।
- 17वाँ संशोधन, 1964- इस संशोधन में भूमि से जुड़ी एक प्रावधान किया गया कि यदि भूमि का बाज़ार मूल्य मुआवज़ा के तौर पर नहीं दिया जाता है तो व्यक्तिगत हितों के लिए भू-अधिग्रहण पर प्रतिबंध लगाया गया।

- 42वा संशोधन, 1976- इस संशोधन को लघु संविधान भी कहा जाता है। इसके तहत तीन नए निदेशक तत्व जोड़े गये जिसमें समान न्याय और निशुल्क विधिक सहायता, उधोगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना, आदि सम्मिलित किया गया।
- 86वाँ संशोधन, 2002- इस संशोधन के तहत प्रारम्भिक शिक्षा को मूल अधिकार बनाया गया, और एक नए अनुच्छेद 21(क) को जोड़ा गया। इसमें यह प्रदत्त किया गया की राज्य 6 साल से 14 साल तक के बच्चों के लिए मुफ़्त प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा। वहीं अनुच्छेद 51क के तहत एक नया मूल कर्तव्य भी जोड़ा गया जिसके तहत हर भारतीय नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह अपने बच्चों को चाहे वह माता-पिता हो या अभिभावक हों उसे 6 साल से 14 साल तक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करवाएँगे।
- 89वाँ संशोधन, 2003- इस संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का दो भागों में विभाजन कर दिया गया। इसे दो अलग निकाय बनाया गया, जिसे राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग कहा गया।
- 93वाँ संशोधन, 2005- इस संशोधन अधिनियम के तहत राज्यों को यह शक्ति दिया गया कि वो सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए शैक्षिणिक संस्थानों में आरक्षण करने हेतु विशेष उपबंध बना सके।
- 101वाँ संशोधन, 2016- आर्थिक नीतियों से सम्बंधित इस संशोधन ने देश में वस्तु और सेवा कर शासन की शुरूवात का मार्ग प्रशस्त किया, जिसका लक्ष्य वस्तुओं और सेवाओं के लिए एक सामान्य राष्ट्रीय बाज़ार प्रदान करना है।
- 102वाँ संशोधन, 2018 इस संशोधन द्वारा सन 1993 में संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को सांवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, साथ ही राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि वह राज्य या संध क्षेत्र के सम्बंध में समाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को निदिष्ट करे।
- 103वाँ संशोधन, 2019- आर्थिक कल्याण से संबंधित यह संशोधन काफ़ी अहम है, यह संशोधन नागरिकों के किसी भी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए राज्यों को सशक्त बनाता है। राज्य को निजी शिक्षण संस्थानों सहित शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिए तथा नियुक्तियों में इन वर्गों के लिए 10 प्रतिशत सीटों के आरक्षण का प्रावधान करने की अनुमति देता है। यह 10 प्रतिशत का आरक्षण मौजूदा आरक्षण के अतिरिक्त होगा।
- 106वाँ संशोधन, 2023- यह संशोधन सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से काफ़ी अहम है। यह संशोधन महिलाओँ को सशक्त बनाने की दिशा में एक मज़बूत कदम है। इस संशोधन के तहत लोकसभा और राज्य विधानसभाओँ में महिलाओँ के लिए तैंतीस प्रतिशत आरक्षण का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

इन संशोधनों ने वाक़ई हमारे आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया है। साथ ही देश के लोगों के कल्याण के लिए संविधान निर्मात्री सभा का जो सपना था कि भारत एक कल्याणकारी राज्य बनेगा उस दिशा में देश दिनोदिन आगे बढ़ता जा रहा है। समय-समय पर बदलते हालात को अपनाने में हमारा संविधान पूरी तरह सफल होता प्रतीत हो रहा है। राजनीतिक लोकतंत्र के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की प्राप्ति के रास्ते काफ़ी आगे बढ़ता हुआ नज़र आता है जिसमें देश के हरेक नागरिकों की स्थिति और उनके उम्मीद की किरण को स्थान मिल रहा है।

भारतीय संविधान दुनिया का सबसे बड़ा हस्तलिखित संविधान है। कई पहलू इस संविधान को अनोखा बनाता है जिसमें इसका लचीलापन और दूर दृष्टिकोण पहलू काफ़ी अहम है। यह संविधान लोकतंत्र के लिए लिखा गया सबसे खूबसूरत दस्तावेज है, जिसमें देश के हरेक नागरिकों के लिए उनके कर्तव्य, अधिकार और आकाँक्षाओँ को स्थान दिया गया है। जिसमें सभी के लिए स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति, एक समान न्याय की व्यवस्था है। भारत के उपनिवेशिक काल के दौरान उपजे समस्या, नागरिकों की मरती हुई उम्मीद, टूटता हुआ हौशला, देश की वस्तु स्थिति और आंदोलन में एक बेहतर भारत की उम्मीद लिए लोगों द्वारा दिए हुए बलिदान, दूसरी तरफ़ भारत का गौरवमयी इतिहास और संस्कृति, विरासत जैसे तमाम कारकों को ध्यान में रखकर लिखा गया यह दस्तावेज अनोखा है। यह कहना कदापि अतिशोयक्ति नहीं होगी की संविधान ने जिस तरह से भारत के पाँच हज़ार साल के इतिहास से अपना आधार और दर्शन प्राप्त किया है, ठीक उसी तरह यह संविधान आने वाले कई हज़ार सालों तक दुनिया के सबसे खूबसूरत लोकतंत्र भारत और इसके नागरिकों की, इसके लोकतांत्रिक प्रणाली को न सिर्फ़ जीवंत रखेगी बल्कि दिनों दिन एक नए भारत का निर्माण करेगी, जिसमें इसके प्रस्तवना का पहला पंक्ति "हम भारत के लोग" को इसी तरह जोड़कर एक सशक्त और मज़बूत लोकतंत्र का पोषण करेगी।

संदर्भ सूची

1. ऑस्टिन, ग. (1972). द इंडियन कॉन्स्टिटूशन: कॉर्नर स्टोन ओफ़ ए नेशन. नई दिल्ली- आक्स्फ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
2. बक्शी, उ. (2005). पोस्टकलोनीयल लीगैलिटी इन हेन्री श्वॉर्ट्स, ब्लैकवेल प्रकाशन
3. कश्यप, सु. (२०२२). हमारा संविधान, नई दिल्ली – राजकमल प्रकाशन
4. बंधोपाध्याय, शे. (2004), फ्रोम पलासी टू पार्टिशन, नई दिल्ली – ऑरीएंट ब्लैकस्वान
5. राउ, स. (1968). द फ्रेमिंग ओफ़ इंडियन कॉन्स्टिटूशन, वॉल्यूम-2, पृष्ठ-77
6. कन्स्टिचूयंट असेम्ब्ली डिबेट्स, वॉल्यूम 3, पृष्ठ -383
7. भार्गव, र. (2008). आउट्लाइन ओफ़ पोलिटिकल थ्योरी ओफ़ द इंडीयन कॉन्स्टिटूशन इन पॉलिटिक्स एंड एथिक्स ओफ़ द इंडीयन कॉन्स्टिटूशन. नई दिल्ली- आक्स्फ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
8. कन्स्टिचूयंट असेम्ब्ली डिबेट्स, वॉल्यूम 7, पृष्ठ -384
9. खोसला, म. (2020). इंडियाज फ़ाउंडिंग मोमेंट: द कॉन्स्टिटूशन ऑफ़ अ मोस्ट सर्प्राइज़िंग डिमॉक्रेसी. केम्ब्रिज-हॉर्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
10. गुहा, र. (2007). इंडिया आफ़्टर गांधी : द हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्डस लार्जेस्ट डिमॉक्रेसी. हार्पर कॉलिंज़
11. सरकार, स. (2014). मॉडर्न इंडिया. नई दिल्ली- पियरसन प्रकाशन
12. मोडी, अ (2023). इंडिया इज ब्रोकन: अ पीपल बिट्रेड, इंडेपेंडेन्स टू टुडे India. जगर्नौट प्रकाशन
13. थिरवेंगदम, अ. (2018). द कॉन्स्टिटूशन ओफ़ इंडिया: अ कंटेक्स्चूअल एनालिसिस. हार्ट पब्लिशिंग

15

अस्पृश्यता की समस्या एवं भारतीय संविधान

डॉ० मो० इर्शाद अली

सहायक आचार्य सह विभागाध्यक्ष, बी०एन० कॉलेज, भागलपुर तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्याय, भागलपुर-812007

डॉ० भीमराव अम्बेडकर दलित वर्ग के शोषण से अत्यन्त आक्रेषित थे। भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत विद्वेष की भावना और पूर्वाग्रहों के कारण दलित वर्ग और अनुसूचित जातियों को पग-पग पर अपमान सहना पड़ता था। यदि कहीं ऊँची जाति वाले हिन्दुओं के तौर-तरीके अपना कर ऊँची जाति के सांस्कृतिक स्तर तक उठने का प्रयास करते भी तो ऊँची जाति वाले हर सम्भव प्रयास कर उनके प्रयासों के विरूद्ध निषेधाज्ञा जारी करवाने और प्रतिबन्ध लगवाने में सफल हो जाते।[1] इस प्रकार उनके लिए समानता और विकास के अवसर की बात तो आकाश के तारों के सदृश थी। सामान्य जीवन भी दुर्लभ था। ऐसे अनेक कटु अनुभवों की थाती स्वयं डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने अपने हृदय और मानस पटल में संग्रहित कर रखी थी। अब जबकि वह स्वयं अनेक कष्टों को झेलकर गरिमामयी स्थान को प्राप्त कर चुके थे वह चाहते थे कि वह अनुसूचित जातियों के विकास और उत्थान के लिए उत्प्रेरित करने का काम करें। वह चाहते थे कि उनकी शक्ति से परिचित करायें, उन्हें संगठित करें, उन्हें संगठन के महत्व को आत्मसात् करायें। उन्हें इस बात का अहसास करा दें कि वे दलित और निर्बल नहीं है। वे हर तरह से शक्तिशाली है और यदि वे संगठित होकर संघर्ष करें तो कल उनका है। इसी भावना ने उन्हें संगठन बनाने और अनुसूचित वर्ग को एक सूत्र में बांधने की प्रेरणा दी।

सैकड़ों वर्षों से निरन्तर शोषण का शिकार बनने के कारण अनुसूचित जातियाँ भौतिक और आर्थिक रूप से इतनी पतित हो चुकी थीं कि उन्हें अपना अस्तित्व हीं कलंक लगता था। उन्हें सभ्य बनाने का मानवतावादी कार्य किसी ने नहीं किया और न ही हिन्दू समाज की निचली जातियों को ऊँची जातियों के स्तर तक ऊपर उठने के कोई अवसर प्रदान किये गये।[2] ऐसे में, उनमें नवीन जीवन का संचार, उन्हें अपने अस्तित्व की पहचान कराना आसान नहीं था। लेकिन भीमराव अम्बेडकर ने उन्हें दलित और पतित के अभियोग से उबारने का निश्चय कर जुलाई, 1924 ई0 में बम्बई में एक संगठन ‘‘बहिष्कृत हितकारी सभा के नाम से प्रारम्भ किया।[3] अप्रैल, 1927 ई० में ‘‘बहिष्कृत भारतं नामक एक पाक्षिक पत्र भी निकालना आरम्भ किया।[4] इस सभा का उद्देश्य अछूतों को आर्थिक और भौतिक रूप से उन्नत करना था तथा पत्र के माध्यम से विचारों को जन सामान्य तक पहुँचा कर सुधार का वातावरण तैयार करना था।[5]

इसके लिए वह भी गांधी जी की तरह चाहते थे कि अस्पृश्यों को मन्दिरों में प्रवेश7 करने और सार्वजनिक कुओं से जल निकालने का अधिकार प्राप्त हो सके।[6] परन्तु वह इस आन्दोलन को गांधी जी से पृथक, बिना उनके और उनके अनुयायियों के सहयोग के, चलाना चाहते थे। उनका यह भी विचार था कि उनका समुदाय मात्र मन्दिरों में प्रवेश से सन्तुष्ट नहीं होगा।[7] उनकी प्राथमिकता नैतिक तथा सामाजिक उत्थान और शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने से है।[8] उनकी मांग थी कि बिना किसी प्रतिबन्ध के ‘हरिजनों‘को हिन्दू समाज में स्वीकार किया जाये।[9]

1930 ई० में अम्बेडकर ने राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश किया। अब अस्पृश्यों के उन्नयन के लिए वे और अधिक प्रयास करने में सक्षम हो गये। उन्होंने अनुसूचित जाति के लोगों के लिए मताधिकार और पृथक निर्वाचन क्षेत्र की मांग की। 'दलित वर्ग'केन्द्र और प्रान्तीय विधान मण्डलों में अपनी संख्यात्मक शक्ति के अनुसार पृथक निर्वाचन चाहता था। इतना ही नहीं ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यों में भी सेना, पुलिस और लोक सेवाओं में प्रवेश हेतु वैधानिक सुरक्षा दिये जाने की मांग की।[10]

17 नवम्बर, 1932 को लंदन में तृतीय गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह 24 दिसम्बर, 1932 ई0 तक चला।[11] डा० अम्बेडकर दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में सम्मेलन में भाग लेने के लिए गये। इस सम्मेलन में भी उन्होंने भारत में अनुसूचित जातियों की समस्याओं की चर्चा की और उनके लिए उन्नति के समान अवसर उपलब्ध कराये जाने की मांग करते हुए वयस्क मताधिकार एवं पृथक निर्वाचन क्षेत्र की अनिवार्यता पर बल दिया।

24 जनवरी, 1933 ई० की प्रातः डॉ० बी० आर० अम्बेडकर लंदन से 'गंगा नामक स्टीमशिप (जहाज) से बम्बई पहुँचे।[12] उन्होंने मद्रास परिषद और केन्द्रीय असेम्बली में मन्दिर प्रवेश बिल स्वीकार करने की वायसराय से मांग की और इसे हिन्दू समाज के हित में बताया।[13]

डॉ० अम्बेडकर सुधार की मन्द गति से अधीर हो रहे थे, जो गांधी जी ऊँची जाति वाले हिन्दुओं में कर्तव्य एवं सामाजिक न्याय की चेतना जागृत करके अस्पृश्यता जैसी बुराई को समाप्त करना चाहते थे। लेकिन डॉ० अम्बेडकर शीघ्र परिवर्तन चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपने समुदाय के सदस्यों को सलाह दी कि वे कोई भी धर्म अपना लें जो उन्हें समानता का स्तर व व्यवहार प्रदान करें। परन्तु इसका परिणाम बहुत सुखद न रहा।

अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन जितनी तत्परता से आगे बढ़ रहा था, उतनी ही तेजी से उसका पतन भी प्रारम्भ हो गया। भारत में अस्पृश्यता केवल एक धार्मिक मुद्दा नहीं थी, बल्कि, एक सामाजिक और आर्थिक तथ्य तथा मानसिकता की बात थी। केवल धर्म परिवर्तन कर लेना मात्र उपाय न था क्योंकि धर्म परिवर्तन के बाद भी अस्पृश्य हिन्दुओं के लिए अस्पृश्य बने रहे।[14] अनेक घटनाएं इसका प्रमाण है। यहाँ तक कि जो हिन्दू ईसाई बन गये थे, वे भी अस्पृश्य बने रहे। आश्चर्य की बात यह है कि कुछ वर्षों में हरिजनों के लिए डॉ० अम्बेडकर का आवाहन भी अस्तित्वहीन हो गया और अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन पुनः गांधी जी की 'दिल परिवर्तन तकनीक की ओर मुड़ गया।[15] यद्यपि 1936 में ''पूना पैक्ट द्वारा डॉ० अम्बेडकर और गांधी जी में इस सम्बन्ध में समझौता हो गया और सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में दलित वर्ग के लिए सीट सुरक्षित कर दी गई।

डॉ० अम्बेडकर को इससे भारी निराशा हुई। उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्वतंत्रता की मांग का विरोध किया और निम्न जातियों की आशाओं को सुरक्षित रखने के लिए वे भारत में ब्रिटिश राज जारी रखना चाहते थे। अप्रैल, 1942 ई० में उन्होंने अखिल भारतीय दलित जाति संघ की स्थापना की। बाद में उन्होंने घोषणा की कि दलित जातियाँ एक साथ हिन्दू धर्म का परित्याग कर दें। उन्होंने स्वयं अपने बहुत से अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म अपना लिया। आजादी प्राप्त होने के समय डॉ० अम्बेडकर कांग्रेस पार्टी द्वारा संविधान सभा के सदस्य नामित किये गये। उनका भारतीय संविधान के निर्माण और इसे लागू करने में विशेष योगदान रहा।[16] हिन्दू कोड बिल समुचित ढंग से पुनर्गठित किया गया।[17]

डॉ० अम्बेडकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कांग्रेस और गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया' में कांग्रेस और गांधी के विरूद्ध तीन अत्यन्त गम्भीर आरोपों का उल्लेख किया-

1. गांधी और कांग्रेस ने अन्तिम क्षण तक उनका पग-पग पर उनकी राजनीतिक सुरक्षा की मांग का विरोध किया। उनका विचार था कि गांधी जी न ही इच्छुक, न ईमानदार और न ही अस्पृश्यों के सच्चे मित्र ही हैं।[18]
2. गांधी का संविधान अस्पृश्यों के लिए निराशाजनक है क्योंकि यह सामान्यतः सनातनी धर्म की एक शाखा है, जो प्राचीन रूढ़िवादी हिन्दुत्व का ही एक रूप है।[19]
3. गांधी का अस्पृश्यता के विरूद्ध प्रचार निःसन्देह असफल रहा है।[20]

गांधी जी के आगे बढ़ते हुए अस्पृश्यता विरोधी अभियान ने अम्बेडकर के झूठ की पोल खोल दी। डॉ० अम्बेडकर ने गांधी की सच्चाई के विरूद्ध प्रश्न चिन्ह लगा दिया जो न केवल अवैधानिक थाय बल्कि अन्याय पूर्ण भी था। उनका विचार इतना अधिक सन्देह से परिपूर्ण है कि 'प्रत्येक हिन्दू ही अस्पृश्यों का एक दृढ़ विरोधी दिखाई पड़ता है।[21] अम्बेडकर की एक अन्य आलोचना ''गांधीवाद सनातनी धर्म का ही दूसरा रूप है। गांधीवादी सुधार के प्रति पर्याप्त समझदारी की कमी प्रदर्शित करता है।

गांधी की सफलता का रहस्य उनकी रूढ़िवादिता में है। गांधी जी ने अस्पृश्यता की नींव हिला दी क्योंकि उन्होंने हिन्दुत्व के प्रारम्भिक सिद्धान्तों को स्वीकार किया, जबकि उन्होंने कष्टकारक, अविकसित और अपरिपक्व गलत परम्पराओं को मानने से इन्कार कर दिया, जो उनके चारो ओर व्याप्त थी।

डॉ० अम्बेडकर का तीसरा आरोप कि गांधी जी का 'अस्पृश्यता विरोधी अभियान 'असफल हो गया गांधी और कांग्रेस की उपलब्धि को कमतर करने की सोची-समझी चाल थी और एक क्रान्तिकारी कार्य को पूरा करने में आने वाली कठिनाईयों को नजर अन्दाज करना था।[22] जबकि वास्तविकता इससे परे है। किसी भी व्यक्ति ने गांधी से अधिक अस्पृश्यों के लिए नहीं किया ओर न ही गांधी से ज्यादा अछूतों को प्यार किया।[23]

आजादी के बाद कांग्रेस ने अस्पृश्यों और पिछड़े वर्ग की समस्या, को गम्भीरता से लिया। संविधान में अस्पृश्यता के किसी भी रूप या प्रकार को स्वीकार नहीं किया गया। दलित व जनजातियों के लिए विशेष सुविधाएं मान्य हुई। उनके लिए संसद, विधान सभा और सार्वजनिक सेवा में स्थान आरक्षित किये गये।

छूआछूत या अस्पृश्यता से तात्पर्य है मनुष्य मनुष्य के मध्य भेदभाव या स्पर्श-भेद[24] जो कि अत्यन्त प्राचीनतम कुरीति है। गांधी जी के लिए अस्पृश्यता असहनीय थी। वे इसे महापाप मानते थे[25] और इसे भारतीय समाज से निकालने हेतु जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे। इसे दूर करने हेतु एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी संगठन भी बनाया।[26] इन सब प्रयत्नों के बाद भी छुआछूत का रोग पूर्णतया समाप्त नहीं हो सका। परन्तु यह बात स्पष्ट हो गई कि यदि भारत देश को विकसित देश बनाना है तो अन्य कुरीतियों की भांति ही छुआछूत को समाप्त करना आवश्यक है।

सन् 1945 में युद्ध समाप्त होने पर भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न पुनः उठाया गया और बहुत विचार विमर्श एवं वाद विवाद के पश्चात दिसम्बर, 1946 में एक संविधान सभा की स्थापना हो सकी[27] जिसने नवम्बर 1949 में अपना कार्य पूर्ण किया।[28] भारत में प्रभुत्व सम्पन्न प्रजातन्त्रीय गणराज्य स्थापित हुआ। इसके द्वारा द्वारा नागरिकों को न्याय सम्बन्धी, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, स्वाधीनता सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और अराधना की समानता सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हुये। प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्रीय एकता तथा भ्रातृत्व भावना का प्रसार

हुआ।[29] कालान्तर में, भारतीय संविधान में अनुच्छेद 17 को स्थान प्रदान किया गया। जिसने छुआहूत को अपराध घोषित किया।

बाद में सन् 1955 में अस्पृश्यता निरोधक अधिनियम, 1955 पारित किया गया। जिसके द्वारा अस्पृश्यता को अपराध की श्रृंखला में रखा गया और दण्ड का प्राविधान भी बना। परन्तु फिर भी अस्पृश्यता विद्यमान रही।

19 नवम्बर, सन् 1976 में संसद द्वारा फिर कानून का संशोधन संम्पन्न हुआ और नाम पड़ा 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (Protection of Civil Rights Acts1955) 15 सितम्बर, सन् 1977 को इस अधिनियम को लागू किया गया। इसमें अस्पृश्यता की समाप्ति हेतु प्रभावी दण्ड का प्राविधान हुआ।

अस्पृश्यता सम्बन्धी प्रचार और आचरण पर अंकुश हेतु नियम का प्रॉविधान इसमें शामिल किया गया जो इस प्रकार है।

यह अधिनियम छुआछूत के प्रचार और आचरण सम्बन्धी बातों के लिए दण्ड का प्राविधान करता है। नागरिक अधिकार का अशय ऐसे अधिकार से है जो संविधान के अनुच्छेद 17 (मूल अधिकार) के द्वारा छुआछूत समाप्त किये जाने के कारण किसी व्यक्ति को प्राप्त होता है[30] तथा यह अधिनियम सभी व्यक्तियों को सार्वजनिक स्थानों पर समान रूप से जाने का अधिकार प्रदान करता है एवं छुआछूत के आधार पर किसी व्यक्ति द्वारा किसी सार्वजनिक स्थान में जाने पर रोक लगाने पर दण्ड की भी व्यवस्था करता है।[31]

धर्म के आधार पर भेदभाव

यदि कोई व्यक्ति किसी सार्वजनिक पूजा के स्थान में जाने से रोकता है या किसी सार्वजनिक मंदिर में पूजा, प्रार्थना या धार्मिक सेवा करने से रोकता है या किसी धार्मिक तालाब, कुएं या नदी में स्नान करने से रोकता है तो वह व्यक्ति कम से कम एक माह व अधिक से अधिक 6 माह कारावास और कम से कम एक सौ रूपये और अधिक से अधिक 500 रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।

सामाजिक भेदभाव करने पर दण्ड

जो कोई व्यक्ति निम्नलिखित बातों पर छुआछूत के आधार पर भेदभाव करेगा तो वह कम से कम 1 माह व अधिक से अधिक 6 माह तक के कारावास व कम से कम 100 रूपये व अधिक से अधिक 500 रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।

1. किसी दुकान, सार्वजनिक जलपान-गृह या सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान पर प्रवेश करने पर।
2. किसी सार्वजनिक जलपान-गृह, होटल, धर्मशाला, सराय या मुसाफिर खाने में बर्तन एवं अन्य वस्तुओं का उपयोग करने पर।
3. कोई व्यवसाय या धन्धा करने पर।
4. किसी नदी, झरना, कुएँ, तालाब, हौज, पानी के नल या जल के अन्य स्थान का या किसी स्नान घाट, कब्रिस्तान या श्मशान, सड़क या सार्वजनिक स्थान जिसका उपयोग जनता के अन्य सदस्य करने के अधिकारी है, का उपयोग करने या उनमें प्रवेश करनेय
5. राज्य द्वारा स्थापित सार्वजनिक कार्य के लिए उपयोग में ली जाने वाली सम्पत्ति या स्थान में प्रवेश करने पर;
6. जन साधारण के फायदे के न्यास (दान) की गई संपत्ति का उपयोग करने

7. सार्वजनिक सवारी के साधनों का उपयोग करने परय
8. किसी रहने योग्य स्थान निवास हेतु उपयोग करने परय
9. किसी धर्मशाला, सराय या मुसाफिर खाने का जो जनसाधारण के लिए खुला हो का उपयोग करने पर;
10. किसी सामाजिक या धार्मिक प्रथा या रिवाज का पालन करनाय (जुलूस निकालना आदि) या
11. गहनों एवं सजावट के साधनों का उपयोग करने पर।

अस्पताल आदि में छुआछूत के आधार पर प्रवेश से इंकार करने के लिए दण्ड

जो कोई व्यक्ति छुआछूत के आधार पर किसी व्यक्ति को किसी अस्पताल या औषधालय, शिक्षा संस्थान या छात्रावास (जो जन साधारण के फायदे के लिए चलाये जाते है) में प्रवेश करने देने से इंकार करेगा या उपरोक्त संस्थाओं में से किसी में प्रवेश करने के बाद ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कोई भेदभावपूर्ण कार्य करेगा तो उसे कम से कम एक माह एवं अधिक से अधिक 6 माह के कारावास और कम से कम एक सौ रूपये और अधिक से अधिक 500 रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।

छुआछूत के आधार पर माल बेचने या सेवा करने से इन्कार करने के लिए दण्ड

जो कोई व्यक्ति छुआछूत के आधार पर किसी व्यक्ति को कोई माल बेचने या उसकी सेवा करने से इन्कार करेगा तो उसे कम से कम एक माह का कारावास एवं अधिक से अधिक 6 माह का कारावास एवं कम से कम एक सौ रूपये एवं अधिक से अधिक 500 रूपये जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।

कम्पनी, फर्म, संस्था या संस्थान द्वारा कानून का उल्लंघन अगर कोई कम्पनी, फर्म, संस्था या संस्थान इस कानून का उल्लंघन करती है तो इनके प्रमुख या इंचार्ज को अपराधी ठहराया जायेगा। सजा के रूप में सरकार द्वारा इनका लाइसेंस परमिट, अनुदान (ग्रांट) आदि को रद्द किया जा सकता है।

छुआछूत से उत्पन्न होने वाले अन्य अपराधों के लिए दण्ड**,** जो कोई

1. किसी को संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा छुआछूत का अन्त करने से प्राप्त होने वाले अधिकार से वंचित करता है।
2. किसी व्यक्ति को ऐसे अधिकार के प्रयोग में पीड़ा पहुँचाता है, नुकसान पहुँचाता है, परेशान करता है या बाधा पहुँचाता है जिससे वह व्यक्ति उस अधिकार का प्रयोग नहीं कर सके
3. किसी व्यक्ति या वर्ग या जनसाधारण को बोले गये या लिखे गये शब्दों द्वारा या संकेतों या इशारों के द्वारा छुआछूत का आचरण करने के लिए उकसाता है,
4. अनुसूचित जाति के सदस्य का छुआछूत के आधार पर अपमान करता है तो उसे कम से कम एक माह एवं अधिक से अधिक 6 माह का कारावास एवं कम से कम एक सौ रूपया एवं अधिक से अधिक पाँच सौ रूपये जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।

छुआछूत का दुष्प्रेरण

यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को छूआछूत करने के लिए उकसाता है तो उसे छूआछूत के अपराध के दंड से दंडित किया जायेगा।

अपराध की पुनरावृत्ति के लिए दण्ड

यदि कोई व्यक्ति पहले एक बार छुआछूत के (दुष्प्रेरण के दोष के) लिए दंडित होने के बाद दोबारा अपराध का दुष्प्रेरण करता है तो वह दण्डित किया जायेगा।

1. दूसरी बार अपराध के लिए कम से कम 6 माह एवं अधिक से अधिक 1 वर्ष तक का कारावास एवं कम से कम दो सौ रूपये एवं अधिक से अधिक पाँच सौ रूपये तक का जुर्माना।
2. तीसरी बार या अन्य बार अपराध के लिए कम से कम एक वर्ष और अधिक से अधिक दो वर्ष तक का कारावास एवं कम से कम पाँच सौ रूपये एवं अधिक से अधिक एक हजार रूपये का जुर्माना।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का अन्त किया गया। उसको और भी ज्यादा प्रभावी बनाने के लिए भारतीय सांसद ने अस्पृश्यता निरोधक कानून 1955 बनाया। सामाजिक एवं प्रभावी रूप से इसे सामप्त किया जा सके। इसलिए 19 नवम्बर 1976 को इस कानून में संशोधन किया गया। जिसका नाम 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम रखा गया है। 19 सितम्बर 1977 को इस कानून को लागू किया गया, जो सामाजिक और कानूनी रूप से अपनी प्रभावी भूमिका निभा रहा है।

इस कानून के अन्तर्गत किया गया हर अपराध मान्य जुर्म, माना जाता है अर्थात् इसके मुजरिम को पुलिस अफसर बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकता है। हर ऐसे जुर्म का फैसला जिसकी सजा तीन माह की कैद से अधिक नहीं है, प्रथम श्रेणी के न्यायायिक मजिस्ट्रेट द्वारा सरसरी तौर पर मुकदमा सुनकर किया जा सकता है। सरसरी तौर पर चलाये गये मुकदमों का तरीका सरल होता है। ताकि मुकदमें जल्दी से जल्दी तय किये जा सकें। अपराध के मुकदमों में मुजरिम को साधारणतया गुनाह साबित न होने तक अपराधी नहीं समझा जाता है तथा उसके खिलाफ अपराध साबित करने की जिम्मेदारी अपराध का आक्षेप लगाने वाले पर होती है, परन्तु छुआछूत के अपराध में इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्दोष या बेगुनाह साबित करने की जिम्मेदारी मुजरिम पर होती है।

संदर्भ सूची

1. बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खंड 1, पृ० 731.
2. डॉ० अम्बेडकर स्मृति ग्रंथ, सम्पादन डी०सी० डीन्कर, बोधिसत्य प्रकाशन, लखनऊ, 1994, पृ० 43.
3. वही, पृ० 431.
4. डॉ० अम्बेडकर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 271- (केन्द्रीय वित्तमंत्री मधु दण्डवते के विचार).
5. वही, पृ० 271.
6. यही, पृ० 44 मार्च, 1930 में अछूतों के मन्दिर प्रवेश अधिकार की प्राप्ति के लिए कालाराम मन्दिर, नासिक पर सत्याग्रह किया।
7. वही, पृ० 268.
8. वही, पृ० 268.
9. वही, पृ० 253.

10. डॉ० सी० गुप्ता भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा०लि० नई दिल्ली, 1977 पृ० 168, डॉ० गणेश प्रसाद बरनवाल, स्वतन्त्रता संग्राम से सत्ता हस्तांतरण, प्रथम संस्करण, 1999. (आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली) पृ० 266; शैलेन्द्र पान्थरी, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम, (मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, वाराणसी, 2002) पृ० 227.

11. दि बाम्बे क्रानिकल, दिनांक 24 जनवरी, 1933 ई०.

12. डा० अम्बेडकर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 267.

13. हरिजन, अहमदाबाद, 26 दिसम्बर, 1936 ई०.

14. पी०डी० कौशिक, कांग्रेस आइडियोलाजी एण्ड प्रोग्राम (1920-1985), गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985, पृ० 1561.

15. बी०एल० ग्रोवर, ए न्यू लुक ऑन माडर्न इण्डियन हिस्ट्री, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2002, पृ० 414.

16. वही, पृ० 414.

17. बी०आर० अम्बेडकर, व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव उन टु द अनटचेबुल, ठाकर एण्ड कम्पनी, बम्बई 1946 ई०, पृ० 703.

18. वही, पृ० 285-3061.

19. वही, पृ० 2721.

20. हरिजन, अहमदाबाद, नवम्बर 12, 1931.

21. सी० राजगोपालचारी, अम्बेडकर, हिन्द किताब, बम्बई, 1946, पृ० 151

22. ए०एफ० ब्राकवे, दि इण्डियन क्राइसिस, विक्अर गोलेवेज, लन्दन, 1930, पृ० 173, अस्पृश्यता अधिनियम, 1955.

23. गांधी जी, सर्वोदय, पृ० 31, मंगल प्रभात, 1945, पृ०, 31, 33, 34.

24. हरीभाऊ उपाध्याय, बापू कथा, पृ० 141.

25. वही, पृ०141.

26. डी०सी० गुप्ता, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ० 5681.

27. वही, 568.

28. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ० 568.

29. वही, पृ० 574.

30. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व संवैधानिक विकास, पृ० 575.

16

भारत में दिव्यांगजन का विकास एवं समावेशन: कानूनी एवं सवैधानिक प्रयासों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. त्रिलोकी सिंह
प्रवक्ता, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान जालौन, उत्तर प्रदेश
डॉ. रजनी रंजन सिंह
आचार्य, केंदीय शिक्षा संस्थान दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दिव्यांगता एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है | इसे आमतौर पर ऐसी शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता के रूप में देखा जाता है जो किसी व्यक्ति की गतिविधियों और इन्द्रियबोध को सीमित करती हैं या जिसके चलते कोई व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की तरह किसी कार्य को करने में अक्षम होता है | दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (आरपीडब्ल्यूडी एक्ट[1]) 2016 ने इसे विस्तार देते हुए उल्लेख किया है कि "लम्बे समय तक शारीरिक, मानसिक, बुद्धिहीन या समझ की कमी वाले व्यक्ति जिसे दूसरे लोगों के साथ बातचीत करने में समस्या आती हो, और इस कमी के कारण समाज में अन्य लोगों की तरह उनके मिलने-जुलने में परेशानी आती हो, ऐसे व्यक्तियों को दिव्यांग के रूप में परिभाषित किया गया है" | 21वीं सदी में मानवाधिकारों के प्रमुख साधन के रूप में पहचाने जाने वाले 'दिव्यांग व्यक्तियों के लिये संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन- यूएनसीआरपीडी, 2006[2]' में दिव्यांग व्यक्तियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया गया है, "जिनके पास दीर्घकालिक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या संवेदी दोष हैं जो कि अन्य व्यक्तियों के साथ समान आधार पर समाज में उनकी पूर्ण और प्रभावी भागीदारी में बाधा डालते हैं |" स्पष्ट है कि दिव्यांगजन, सामान्य व्यक्ति की भांति शारीरिक अथवा मानसिक कार्य करने में सहज नहीं होते हैं | अत: किसी भी कार्य को करने के लिए उन्हें अपने अन्दर विद्यमान अक्षमता के अनुरूप सहायता की आवश्यकता होती है | यही कारण है कि दिव्यांगजन को समाज में सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा निम्न दृष्टि से देखा जाता रहा है | परन्तु हाल के वर्षों में दिव्यांगजन के प्रति समाज का नजरिया तेजी से बदला है | यह माना जाने लगा है कि यदि दिव्यांगजन को समान अवसर तथा प्रभावी पुनर्वास की सुविधा मिले तो वे बेहतर गुणवत्तापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं |

आधुनिक युग में दिव्यांगजन के विकास और समावेशन की यात्रा को दिव्यांगता शब्द को सार्वजनिक महत्व के विषयों में स्थान दिए जाने की व्याख्या में देखते हैं | "भारत में दिव्यांगता से सम्बंधित प्रश्नों का प्रयोग 1872 से 1931 तक की जनगणनाओं में देखना को मिलता है | आगे के काल में 1941 से 1971 तक के बीच इसे हटा दिया गया था, किन्तु 1981 की जनगणना में पुन: दिव्यांगता शब्द का प्रयोग तीन प्रकार की दिव्यांगताओं (दृष्टिबाधित, पूर्ण रूप से चलने में अक्षम और श्रवंबाधित) से सम्बंधित आंकड़े एकत्रित किया गया | 1991 में एक बार पुन: इसे त्याग दिया गया | परन्तु 1996 में भारतीय संसद द्वारा दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण

भागीदारी) अधिनियम 1995 के अनुमोदित किये जाने के बाद एक बार पुन: 2001 की जनगणना में पांच प्रकार की दिव्यांगताओं से सम्बंधित आंकड़े इकट्ठे किये गए | यद्यपि दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 में सात प्रकार की दिव्यांगताओं (अन्धता, कम दृष्टि, कुष्ठरोग से मुक्त, श्रवण शक्ति का ह्रास, चलन निशक्तता, मानसिक मंदता और मानसिक रुग्णता) का समावेष किया गया था | 2011 की जनगणना में एक बार फिर से दिव्यांगता के प्रकारों की संख्या बढ़ाकर आठ कर दी गयी, जिनमें दृष्टिबाधित, श्रवणबाधित, मूक, चलने में असमर्थ, मानसिक मंदताग्रस्त, मानसिक बीमारी, कोई और दिव्यांगता और बहु-निशक्तताग्रस्त शामिल थे" (सौरभ, शशि. 2019)[3]| दिव्यांगजन को मानसिक रूप से सशक्त बनाने के उद्देश्य से 2015 में मन की बात कार्यक्रम[4] में माननीय प्रधानमंत्री भारत सरकार द्वारा दिव्यांग शब्द के संबोधन उपरांत केंद्र सरकार द्वारा विकलांग शब्द के स्थान पर दिव्यांग शब्द का प्रयोग किया जाना प्रारम्भ किया गया | साथ ही उनके हितों की रक्षा और सशक्तिकरण करने के उद्देश्य से 1995 के अधिनियम के स्थान पर दिव्यांग अधिकार अधिनियम[1] 2016 पारित किया गया और दिव्यांगता की श्रेणियों को विस्तार देते हुए पूर्व उल्लिखित 7 के स्थान पर कुल 21 श्रेणियों के अधीन आने वाले लोगों को दिव्यांग के रूप में सरकारी सहायता और संरक्षण प्रदान करने पर बल दिया गया |

प्रत्येक समाज किस तरह से दिव्यांगों के विकास और समावेश पर कार्य करता है, यह वहां की संस्थागत सुविधाओं, प्रशिक्षित लोगों, उपयुक्त प्रौद्योगिकी और सहायक यंत्रों एवं उपकरणों की उपलब्धता पर निर्भर करता है | भारत ने दिव्यांगजन के हितों को ध्यान में रखते हुए एक मजबूत कानूनी ढांचा खड़ा करने एवं कार्यक्रमों के आयोजन तथा योजनाओं के क्रियान्वयन के मामले में काफी प्रगति की है | भारतीय संविधान[5] का अनुच्छेद 45, जो भारत क्षेत्र में सभी बच्चों को छः वर्ष की आयु पूरी करने तक प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान करता था, ने दिव्यांग बच्चों सहित सभी बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है | इसे 2002 में हुए 86वें संविधान संशोधन के तहत अनुच्छेद 21 (क) के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार बना दिया गया है | अब, दिव्यांग बच्चों सहित सभी बच्चों के लिए शिक्षा न केवल उनका अधिकार है, बल्कि राज्य का यह कर्तव्य भी है कि वह ऐसी व्यवस्था प्रदान करे ताकि उक्त अधिकार का प्रयोग सभी बच्चों द्वारा बिना किसी भेदभाव के किया जा सके | इसके अंतर्गत दिव्यांग बच्चों के बीच विशेष रूप से शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उनकी आयु सीमा को सामान्य बच्चों के लिए मानक 6-14 वर्ष से बढ़ाकर 6-18 वर्ष स्वीकार किया गया है | 1996 में दिव्यांग बच्चों को दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम[6], 1995 के अंतर्गत दिव्यांग व्यक्तियों के लिए समान अवसरों और एकीकृत विद्यालयों या विशेष विद्यालयों में 18 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने हेतु संरक्षण प्रदान किया गया | 2007 में भारत ने दिव्यांगजन के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीआरपीडी[2], 2006) की पुष्टि की और उस पर हस्ताक्षर किए | जिसके बाद यहाँ यूएनसीआरपीडी के अनुपालन के लिए 2010 में अंतर्राष्ट्रीय कानून के साथ तालमेल बिठाने की प्रक्रिया में तेजी आयी और इस तरह दिव्यांगजन को सशक्त बनाने के लिए दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम[1] (आरपीडब्ल्यूडी एक्ट) 2016 को अधिनियमित किया गया जिसमें दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 की भांति 6-18 वर्ष की आयु के प्रत्येक दिव्यांगताग्रस्त बच्चे को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार की पुनरावृत्ति की गयी और स्पष्ट किया गया कि कि किसी भी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा |

दिव्यांगजन की समाज में स्वीकृति के लिए आवश्यक है कि उन्हें सामान्य जन की भांति समान अधिकारों के साथ-साथ उनके अधिकारों को संरक्षण भी प्रदान किया जाये | हालांकि आज दिव्यांग व्यक्ति को 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद, जिस प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र में वह रहता है, वहां गैर-दिव्यांग व्यक्ति की तरह वोट डालने का अधिकार भी प्राप्त है | केंद्र तक पहुँचने में कोई असुविधा न हो, इसके लिए उचित सहयता भी उपलब्ध करायी जाती है | दिव्यांगजन के लिए रोजगार के अवसरों को बढ़ाने हेतु विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम[1], 2016 ने आरक्षण कोटा को को 3% से बढ़ाकर 4% कर दिया है, जिसका परिणाम यह है कि सरकारी विभागों में नौकरियों में दिव्यांगजन के लिए 4% आरक्षण होगा | उनके साथ समाज में कोई भेदभाव न करे इसके लिए इस अधिनियम में दिव्यांगजन के विरुद्ध अपराध करने पर दंड के प्रावधान किये गए हैं | अब दिव्यांगजन को अपमानित करने, धमकी देने या पिटाई करने पर छ: माह से लेकर पांच साल तक की सजा का प्रावधान किया गया है तथा दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों को संभालने के लिए विशेष न्यायालयों के निर्माण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है | अधिनियम के अनुसार दिव्यांग व्यक्तियों को उनके किसी भी प्रकार के अधिकारों के उल्लंघन, शोषण या दुर्व्यवहार से बचाना और उनकी रक्षा करना भी उपयुक्त सरकार का कर्तव्य है | अत: इसमें दिव्यांगजन को क्रूरता और अमानवीय व्यवहार से बचाने और संरक्षित करने के स्पष्ट प्रावधान किये गए हैं | अधिनियम सरकार द्वारा दिव्यांगजन के लिए उचित आवास सुनिश्चित कराने हेतु आवश्यक कदम उठाये जाने पर भी बल देता है |

दिव्यांगजन की स्थिति

भारत में 'दिव्यांगता पर आंकड़ों का संग्रह'[7] 1872 में हुई पहली भारतीय जनगणना से माना जाता है | हालाँकि सरकारी रिपोर्ट और दस्तावेजों में 1931 तक इसे 'दुर्बलता' के रूप में दर्ज किया जाता रहा है | इन दुर्बलताओं में पागलपन, बहरा-गूंगापन, अंधापन और कुष्ठ रोग आदि को शामिल किया गया था | 1881 से 1931 के दौरान प्रति 1 लाख जनसंख्या पर दुर्बलता दर 228 से 369 के बीच (जनसंख्या का लगभग 0.23 - 0.37%) थी | प्रत्यक्ष रूप से दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या पर आंकड़े एकत्र करने का पहला प्रयास राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा आंकड़े सग्रह करने के अपने 15वें दौर में जुलाई, 1959 से जून, 1960 के दौरान किया गया | यद्यपि उन आंकड़ों में आवश्यक विवरण नहीं थे और न ही यह एक नियमित कार्यक्रम था |

संयुक्त राष्ट्र[8] के अनुमानों के अनुसार आज दुनिया में लगभग एक अरब लोग दिव्यांग हैं जो कुल आबादी का लगभग 15% हैं | इनमें से लगभग 80% लोग विकासशील देशों में निवास करते हैं | वर्ष 2011 की जनगणना[9] के अनुसार, भारत में 121 करोड़ आबादी में से दिव्यांगजन की कुल आबादी लगभग 2.68 करोड़ है, जो देश की कुल आबादी का 2.21% है | यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 2001-11 के दौरान दिव्यांग जनसँख्या में दशकीय प्रतिशत परिवर्तन 22.4% रही है, जबकि कुल जनसँख्या के लिए दशकीय प्रतिशत परिवर्तन 17.7% रहा | दिव्यांगजन की कुल जनसंख्या में पुरुष जनसंख्या 56% (1.5 करोड़) और महिला जनसंख्या 44% (1.18 करोड़) है | दिव्यांगजन की कुल जनसंख्या में से अधिकांश यानि कि 69% (1.86 करोड़) ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं जबकि मात्र 31% (0.81 करोड़) शहरी क्षेत्रों से हैं | इस दौरान दिव्यांगता की केवल आठ श्रेणियों को सूचीबद्ध किया गया था | प्राप्त आंकड़े दर्शाते हैं कि इन आठ श्रेणियों में वर्णित दिव्यांगताओं के क्रम में सबसे बड़ा प्रतिशत (20.3%) चलित दिव्यांगजन का है | इसके बाद श्रवण ह्रास दिव्यांग 18.9%, दृष्टि दिव्यांग 18.8%, बोलने की अक्षमता वाले 7.5%,

मानसिक मंदता से ग्रसित 5.6% और मानसिक रोग से पीड़ित 2.7% हैं | देश के कुल परिवारों में से 8.3% परिवार दिव्यांग व्यक्तियों से सम्बंधित हैं | जबकि कुल दिव्यांग परिवारों में से 71% परिवार ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं | दिव्यांग व्यक्तियों वाले कुल परिवारों में से लगभग 99.34% परिवार सामान्य परिवार हैं, 0.42% परिवार संस्थागत हैं और 0.24% बेघर परिवार हैं | कुल दिव्यांग जनसंख्या में से लगभग 55% (1.46 करोड़) दिव्यांगजन साक्षर हैं | पुरुष दिव्यांग जनसंख्या में से 62% साक्षर हैं और महिला दिव्यांग व्यक्तियों में 45% साक्षर हैं | ग्रामीण क्षेत्रों में 49% दिव्यांगजन साक्षर हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में दिव्यांगजन की साक्षरता का प्रतिशत 67% है | दिव्यांग जनसंख्या के 13% ने मैट्रिक/ माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की है लेकिन वे स्नातक नहीं हैं | 5% दिव्यांगजन स्नातक और उससे ऊपर की शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं | दिव्यांग साक्षरों में लगभग 8.5% स्नातक हैं | सभी प्रकार की दिव्यांगताओं से प्रभावित लोगों में पुरुषों की संख्या महिलाओं की तुलना में अधिक है | भारत में सामान्य जनसँख्या की तुलना में दिव्यांगजन में रोजगार की दर 60% कम है | इस आबादी के लगभग 40% लोग निरक्षर हैं |

दिव्यांगजन के विकास एवं समावेशन हेतु किये गए प्रयास

दिव्यांगता के प्रति आमजन में संवेदनशीलता बढ़ाने के उद्देश्य से विश्व स्वास्थ्य संगठन[10] ने 1992 में 3 दिसम्बर को 'अंतर्राष्ट्रीय दिव्यांग दिवस' की शुरुआत की, वहीं माननीय प्रधानमंत्री, भारत सरकार द्वारा विशेष आवश्यकता वाले लोगों को विक्लांग के स्थान पर "दिव्यांग[4]" शब्द से सम्बोधित करने हेतु आमजन को प्रेरित किया गया | दिव्यांगजन के प्रति आमजन के दृष्टिकोण में परिवर्तन कराने का यह प्रयास राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक धरातल पर दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों तथा उनके हितों को प्रोत्साहित करने की परिकल्पना करता है | भारत अभी भी दिव्यांग व्यक्तियों के लिये अवसंरचनात्मक, संस्थागत और व्यव्हार संबंधी बाधाओं को दूर करने में बहुत पीछे है | अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे प्रयासों के समानांतर भारत में भी जिन कानूनों और योजनाओं के माध्यम से दिव्यांगजन के लिये अवसरों की सुलभता और समानता सुनिश्चित कराने का प्रयास किया गया है, वे निम्नलिखित हैं |

I. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गये प्रयास

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकारों की सार्वजानिक घोषणा[11] (यूडीएचआर) को अपनाया | इसमें स्वीकार किया गया था कि "समाज के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है तथा वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के माध्यम से तथा प्रत्येक राज्य के संगठनों और संसाधनों के अनुसार, अपनी गरिमा और अपने व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास के लिए अपरिहार्य आर्थिक, सामाजिक और संस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक़दार है |" साथ ही यह घोषणा दिव्यांगजन को पर्याप्त जीवन स्तर के अधिकार की गारंटी भी देती है, जिसमें बेरोजगारी और दिव्यांगता जैसी कुछ आकस्मिकताओं की स्थिति में सुरक्षा का अधिकार भी शामिल है | 1970-80 के दशकों तक आते-आते संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दो नयी घोषणाओं, 1969 की सामाजिक प्रगति और विकास पर घोषणा[12] और 1971 में मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों पर घोषणा[13] की स्वीकृति दी | आगे चलकर उपरोक्त दोनों घोषणाएं विशेष रूप से दिव्यांग व्यक्तियों से सम्बंधित मानवाधिकार के सिद्धांत स्थापित करने वाले पहले अंतर्राष्ट्रीय साधन के रूप में सिद्ध हुयीं | उस समय इन्हें अपनाने का अर्थ दिव्यांगजन के अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय कार्यसूची में शामिल किया जाना था | इस प्रकार 1980 के दशक के

अंत तक तक आते-आते दिव्यांगजन के अधिकारों के सम्बन्ध में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार आधारित दृष्टिकोण विकसित हो गया | परिणामत: दिव्यांगजन के मानवाधिकारों ने संयुक्त राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया और 1976, में संयुक्त राष्ट्र ने 1981 को 'अंतर्राष्ट्रीय दिव्यांगजन वर्ष[14]' और 1983-92 को 'दिव्यांगजन के लिए अंतर्राष्ट्रीय दशक[12]' घोषित किया गया | संयुक्त राष्ट्र प्रायोजित इन घोषणाओं ने दिव्यांगजन से जुड़े हुए विषयों को सार्वजनिक महत्त्व के विषय बनाने का कार्य किया तथा वैश्विक दिव्यांग समुदाय के उद्भव को प्रोत्साहन देने में मदद की | इससे अंतर्राष्ट्रीय संवादों में एक नए विषय के रूप में योजनाओं और नीतियों में दिव्यांगजन को शामिल करने के महत्त्व और सामाजिक विकास पर जोर देने की वकालत की शुरुआत हुयी | अन्तर्राष्ट्रीय दशक की घोषणा के वर्ष 1982 में ही संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा दिव्यांगजन को समानता का अधिकार दिलाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के साधन के रूप में दिव्यांगजन के सम्बंध में 'विश्व कार्य योजना[15]' तैयार की गयी | जिसमें तीन प्रमुख केन्द्रीय उद्देश्यों, 'दिव्यांगता को रोकना, पुनर्वास और अवसरों की समानता को बढ़ाना', 'सामाजिक जीवन में दिव्यांगजन की पूर्ण भागीदारी को सुनिश्चित करना' और 'राष्ट्रीय विकास को प्राप्त करने की वैश्विक रणनीति' को शामिल किया गया था | इस प्रकार विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 1992 में 3 दिसम्बर को अंतर्राष्ट्रीय दिव्यांग दिवस[10] के रूप में मनाये जाने की शुरुआत हुयी, जिसका मुख्य उद्देश्य दिव्यांगजन के अधिकारों पर ध्यान केन्द्रित करना और उनसे सम्बंधित मुद्दों पर बेहतर समझ को बढ़ावा देना है | आगे वर्ष 1993 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा दिव्यांगजन को समानता के अवसरों पर संयुक्त राष्ट्र के मानक नियमों[16] के स्वीकार किये जाने के बाद विश्व कार्य योजना को अपनाया गया | 'एशियाई और प्रशांत क्षेत्र सम्बन्धी आर्थिक और सामाजिक आयोग' द्वारा नि:शक्त व्यक्तियों की एशियाई और प्रशांत क्षेत्र दशाब्दी 1993-2002 को आरम्भ करने के लिए 1 से 5 दिसम्बर, 1992 को पेइचिंग में बुलाये गए अधिवेशन में एशियाई और प्रशांत क्षेत्र में नि:शक्त व्यक्तियों की पूर्ण भागीदारी और समानता सम्बन्धी उद्घोषणा को अंगीकार किया गया[6] | 13 दिसम्बर 2006 संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा एक अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधि "दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मलेन- सीयूएनआरपीडी[2]" को अपनाया गया, जिसे अपनाये जाने के पीछे यह मान्यता थी कि दिव्यांगता के कारण व्यक्तियों के प्रति भेदभाव अस्वीकार्य है तथा दिव्यांगजन के मानवाधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने की आवश्यकता है | इस समझौते में प्रावधान किया गया है कि "दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों और सम्मान को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने के लिए एक व्यापक और अभिन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन, विकलांग व्यक्तियों के गहन सामाजिक नुकसान को दूर करने और विकासशील और विकसित दोनों देशों में समान अवसरों के साथ नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में उनकी भागीदारी को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान देगा" | भारत ने इस समझौते पर 2007 में हस्ताक्षर किये और सुनिश्चित किया कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों और दिव्यांगजन को समान अवसरों के साथ मजबूत बनाया जाना चाहिए | दिव्यांगजन के सम्बन्ध में विश्व कार्य योजना और यूएनसीआरपीडी के क्रियान्वयन के साथ-साथ दिव्यांगजन को लक्ष्य बनाते हुए सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य की आवश्यकता अनुभव करते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2008 में एक प्रस्ताव[17] पास किया जिसकी महत्ता को संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने भी अपनी रिपोर्ट 2009 में स्वीकार किया था |

II. भारत में किये गये प्रयास

आधुनिक भारत में 'दिव्यांगों की शिक्षा' हेतु लाया गया प्रथम विशेष विधायी अधिनियम 1944 की सार्जेंट रिपोर्ट[18] को माना जाता है, जिसमें कहा गया था कि यदि दिव्यांग विद्यार्थी विशेष विद्यालयों में प्रवेश दिए जाने के लिए उपयुक्त हों तो उन्हें केवल विशेष विद्यालयों में रखा जा सकता है | कोठारी आयोग[19] (1964-66) ने भी विशेष आवश्यकता वाले व्यक्तियों के लिए विशेष शिक्षा को शिक्षा नीति के एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकार किया है | भारत में समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए "दिव्यांग बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा (आईईडीसी) कार्यक्रम[20]" 1970 में क्रियान्वित किया गया था, जिसका उद्देश्य उन्हें शिक्षा के अवसर प्रदान करना, अपने समाज के सभी स्वरूपों में उनको एकीकृत करना और नियमित विद्यालयी शिक्षा में शामिल करना था | यद्यपि अभी तक आईईडीसी के सभी उद्देश्य पूर्णत: प्राप्त नहीं हो सके हैं, फिर भी इस कार्यक्रम के अंतर्गत दिव्यांगजन को समावेशी वातावरण उपलब्ध कराने हेतु निरंतर किये गए प्रयासों को नकारा नहीं जा सकता है | तत्पश्चात 1986 में आयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति[21] द्वारा समावेशी शिक्षा के सम्बन्ध में रखे गए प्रस्ताव समावेशी वातावरण निर्मित किये जाने हेतु एक रोड मैप तैयार करने वाले साबित हुये | इसके कुछ ही वर्षों बाद क्रियान्वयन कार्यक्रम[22] 1992 मे संस्तुति किया कि गैर-औपचारिक और वयस्क शिक्षा को पुनर्गठित किये जाने की आवश्यकता है और समावेशी कक्षाओं को समायोजित करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है | 1994 के जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी[23]) ने ऐसे दिव्यांग बच्चों, जिनका विद्यालयों में नामांकन नहीं था, सहित सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान किये जाने की मांग की | इस कार्यक्रम का उद्देश्य इन सभी बच्चों को भोजन और समान भागीदारी की गारंटी देना था | इस कार्यक्रम के अंतर्गत सामुदायिक गतिशीलता, शीघ्र पहचान, सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षण, संसाधन सहायता, शैक्षिक सहायक सामग्री एवं उपकरण और बुनियादी संरचना के कारण होने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए प्रोत्साहित किया गया और अनुदान दिये गए | एनसीईआरटी द्वारा 2000 में विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा[24] जारी किये जाने के बाद समावेशी शिक्षा ने गति पकड़ी तथा समावेशी विद्यालयों को भी अधिकार प्रदान किये गए | वर्ष 2000 में ही भारत सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए[25]) को उसकी जीरो रिजेक्शन पालिसी के साथ संस्तुत किया, जिसका मुख्य उद्देश्य उनकी आवश्यकताओं के आधार पर सभी दिव्यांग बच्चों को औपचारिक प्राथमिक विद्यालयों में दाखिल कराना था | आगे चलकर 2006 की राष्ट्रीय दिव्यांग नीति[26], 2009 का शिक्षा का अधिकार अधिनियम[27] और 2016 का दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम[28] आदि सभी दिव्यांगजन के शैक्षिक अधिकारों के विकास का आधार बने | दिव्यांगजन की शिक्षा और उनके पुनर्वास को सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से पूर्व में किये गए सभी विधायी कार्यक्रमों और उपबंधों को समग्रता में राष्ट्रीय शिक्षा नीति[29] 2020 में स्थान दिया गया है, जो दिव्यांगजनों को मुख्य धारा में जोड़ते हुए एक समावेशी समुदाय की स्थापना की संकल्पना प्रस्तुत करती है |

दिव्यांगजन के सशक्तिकरण, शिक्षा और पुनर्वास को केंद्र में रखते हुए भारत सरकार ने समय-समय पर अनेक प्रयास किये हैं | सरकार द्वारा किये गए इन प्रयासों में कतिपय निम्नलिखित हैं;

1. भारतीय संविधान अधिनियम 1950
2. दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग
3. भारतीय पुनर्वास परिषद (आरसीआई)

4. दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार, सुरक्षा तथा भागीदारी) अधिनियम (पीडब्लूडी एक्ट) 1995
5. स्वपरायणता, प्रमस्तिकीय पक्षाघात, मानसिक मंदता और बहु-दिव्यांगताग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास 1999
6. राष्ट्रीय दिव्यांगजन नीति 2006
7. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009
8. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

भारतीय संविधान अधिनियम[30], 1950

भारत के संविधान के भाग तीन में भारत के सभी नागरिकों को छ: मौलिक अधिकारों की गारंटी देने के पीछे व्यक्ति की समानता और गरिमा एक मौलिक धारणा है, जो दिव्यांगजन के अधिकारों की भी रक्षा करती है | संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत यहाँ भारत के सभी लोगों को विधि के समक्ष समानता का अधिकार दिया गया है, जबकि अनुच्छेद 17 स्पष्ट करता है कि किसी भी प्रकार की अस्पृश्यता से उत्पन्न व्यक्ति की किसी भी अक्षमता को लागू करना कानून के अनुसार दंडनीय अपराध होगा, जो संरक्षण देता है कि किसी भी दिव्यांगजन के साथ बुरा बर्ताव नहीं होना चाहिए | संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि अदालत के द्वारा ही किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जा सकता है | 2002 में 86वें संवैधानिक संशोधन द्वारा जोड़े गये अनुच्छेद 21 (क) [5] में कहा गया है कि 6-14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चे नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के हकदार हैं | इसके अंतर्गत दिव्यांगजन के लिए आयु सीमा 6-18 वर्ष रखी गयी है | संविधान के भाग चार में, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को शामिल किया गया है | नीति निर्देशक तत्व संविधान द्वारा राज्यों को दिए गए ऐसे निर्देश हैं, जिन्हें अपने संसाधनों की सीमा में प्रत्येक राज्य द्वारा पालन किया जाना है | भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने, शिक्षा पाने, बेकारी-बुढ़ापा-बीमारी-निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा | संविधान के अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि राज्य 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों (दिव्यांगजन सहित) के लिए प्रारंभिक बचपन की देखभाल और शिक्षा प्रदान करता है | अनुच्छेद 46 राज्य के लिए यह दायित्व निर्धारित करता है कि वह कमजोर वर्गों के लोगों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की विशेष देखभाल करेगा और सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा | भारतीय संविधान की द्वितीय अनुसूची में प्रविष्टि संख्या 09 के आधार पर दिव्यांगजन के लिए राहत राज्य की जिम्मेदारी है, जबकि सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में 'दिव्यांगजनों और बेरोज़गारों को राहत' का विषय निर्दिष्ट है | 'सामाजिक कल्याण जिसमें अस्थि दिव्यांगताग्रस्त और बौद्धिक रूप से अक्षम लोगों का कल्याण भी शामिल है' को भारतीय संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में अनुच्छेद 243-जी में रखा गया है | समाज के कमजोर वर्गों, जिसमें मानसिक रूप से बीमार और मानसिक रूप से मंद दिव्यांगजन शामिल हैं, के हितों की रक्षा को अनुच्छेद 243-डब्लू बारहवीं अनुसूची प्रविष्टि 9 में शामिल किया गया है |

दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग[31] 2014

वर्ष 1985-86 के दौरान, पहले से चले आ रहे भारत सरकार के 'कल्याण मंत्रालय' को दो अलग-अलग भागों (महिला और बाल विकास विभाग और कल्याण विभाग) में विभाजित किया गया | उसी समय, अनुसूचित जाति विकास प्रभाग, जनजातीय विकास प्रभाग और अल्पसंख्यक और पिछडा वर्ग कल्याण प्रभाग को गृह मंत्रालय से और साथ ही श्रम मंत्रालय से वक्फ प्रभाग को हटाकर तत्कालीन 'कल्याण मंत्रालय' बनाया गया | तत्पश्चात, मई 1998 में इस मंत्रालय का नाम बदलकर 'सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय' कर दिया गया | इसके अतिरिक्त अक्टूबर, 1999 में एक पृथक जनजातीय मंत्रालय की स्थापना करने हेतु जनजातीय विकास प्रभाग को इससे हटाया दिया गया | जनवरी, 2007 में वक्फ यूनिट के साथ-साथ अल्पसंख्यक प्रभाग को मंत्रालय से हटाया गया और इन्हें एक पृथक मंत्रालय के रूप में स्थापित किया गया तथा महिला और बाल विकास विभाग और महिला और बाल विकास मंत्रालय का गठन किया गया | चूकिं दिव्यांगता केंद्रीय स्तर पर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के कई उत्तरदायित्वों में से एक है और केवल एक ब्यूरो द्वारा इसकी देखभाल की जा रही थी | अत: परिणाम यह हुआ कि इस पर अद्यतन आवश्यकता अनुरूप ध्यान नही दिया जा सका | जिसका कारण था कि मंत्रालय का अधिकांश समय और शक्ति केवल अपनी योजनाओं का क्रियान्वयन करने, उनके व्यय और वास्तविक लक्ष्यों को पूरा करने और दिव्यांगजनों के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों जैसी समयबद्ध वार्षिक गतिविधियों को आयोजित करने पर चला जाता था | उपयुक्त पृष्टभूमि में, 11वीं पंचवषीय योजना में यह उल्लेख किया गया था कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के 'दिव्यांगता प्रभाग' को एक पृथक विभाग में बदलते हुए सशक्त किया जायेगा, ताकि यह अन्य सभी संबंधित मंत्रालयों/विभागों के साथ प्रभावी रूप से संपर्क स्थापित कर सके और दिव्यांगजनों के प्रति अपने उत्तरदायितवों को पूरा कर सके | 'केंद्रीय सरकार ने विचार किया कि "दिव्यांगता विषय की विशिष्ट प्रकृति को देखते हुए यूएनसीआरपीडी के आलोक में किए जाने वाले व्यापक कार्य और मौजूदा कार्यन्वयन ढांचे में कमी के कारण अब यह समय आ गया है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय में मौजूदा दिव्यांगता ब्यूरो को अपग्रेड किया जाये |" अत: दिव्यांगजनों के कल्याण और सशक्तिकरण पर लक्षित विभिन्न नीतिगत मामलों पर ध्यान केन्द्रित करने और सम्बंधित गतिविधियों पर सार्थक जोर देने के लिए सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय से प्रथक एक दिव्यांगता कार्य विभाग बनाया गया | जिसे केन्द्रीय कैबिनेट सचिवालय की 9 दिसम्बर 2014[32] की अधिसूचना के अनुसार अब दिव्यांगता कार्य विभाग से बदलकर 'दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग' कर दिया गया है |

अब यह विभाग दिव्यांगजन को केंद्र में रखकर सम्पूर्ण भारत के लिए नीतियां और कार्यक्रम तैयार करता है तथा उनका कार्यान्वयन, मानीटरिंग एवं समीक्षा करता है | विभाग सभी हितधारकों, सम्बंधित केन्द्रीय मंत्रालयों, राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकारों, गैर-सरकारी संगठन इत्यादि के बीच समन्वय से दिव्यांगजनों एवं दिव्यांगता से सम्बंधित मामलों के लिए एक नोडल एजेंसी के रूप में भी कार्य करता है | यद्यपि 'दिव्यांगता' सविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में आता है, परन्तु भारत सरकार विभिन्न प्रकार की दिव्यांगताओ से संबंधित 9 राष्ट्रीय संस्थानों और 25 समेकित क्षेत्रीय केन्द्रों (सीआरसी) की स्थापना और विनियमन के साथ दिव्यांगजन के शिक्षा एवं पुनर्वास के लिए सरकारी निकायों के समान सेवाएं देने वाले गैर-सरकारी निकायों (एनजीओ) को निधियां भी प्रदान करती है, साथ ही नेशनल हैडिंकैप्ड फाइनेंस एण्ड डेवेल्पमेंट कारपोरेशन (एनएचएफडीसी), जो दिव्यांगजनों को स्वरोजगार के लिए रियायती दरों पर ऋण भी प्रदान करता है, को चला रही है | इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार 'एशियाई और प्रशांत छेत्र

में दिव्यांगजनों की पूर्ण भागीदारी और समानता पर उद्घोषणा' जो कि दिसम्बर, 1992 में बीजिंग में अपनाई गयी थी और 'दिव्यांगजनों के अधिकारों पर सयुक्त राष्ट्र अधिवेशन (यूएनसीआरपीडी)', जो मई, 2008 में प्रभावी हुआ था, के लिए एक पछकार भी है |

भारतीय पुनर्वास परिषद[33]

भारतीय पुनर्वास परिषद (आरसीआई) की स्थापना हेतु सितम्बर, 1992 में भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया | जिसके परिणामस्वरुप 22 जून, 1993 को आरसीआई एक सांविधिक निकाय के रूप में अस्तित्व मे आयी | इसके अधिकार क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने के लिए संसद द्वारा वर्ष 2000 में अधिनियम में संशोधन किया गया और आरसीआई को दिव्यांगजन की शिक्षा एवं पुनर्वास से सम्बंधित नीतियों व कार्यक्रमों को विनियमित करने, पाठ्यक्रमों का मानकीकरण करने, एक केन्द्रीय पुनर्वास रजिस्टर बनाने और सभी योग्य पेशेवरों और विशेष शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले व्यवसायिकों और कार्मिकों को एक केन्द्रीय पुनर्वास पंजिका में पंजीकृत करने का कार्य सौपा गया | साथ ही अयोग्य व्यक्तियों को दिव्यांगता वाले व्यक्तियों की सेवाएं देने के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने का अधिकार प्रदान किया गया है | वर्तमान में भारत में 987 संस्थान (आरसीआई से मान्यता प्राप्त) और 9 केंद्र एवं राज्य मुक्त विश्वविद्यालय आरसीआई द्वारा अनुमोदित पाठ्यक्रमों को नियमित और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से संचालित करने के लिए अधिकृत हैं | इन पाठ्यक्रमों में डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक, एम.फिल. और डॉक्टरेट आदि शामिल हैं |

परिषद पुनर्वास विशेषज्ञों और कर्मचारियों के प्रशिक्षण को नियंत्रित करने एवं उनका पर्यवेक्षण करने के साथ-साथ, विशेष शिक्षा और पुनर्वास के क्षेत्र में अनुसंधान हेतु वित्त प्रदान करती है | इसके समस्त प्रावधान दिव्यांगजन की शिक्षा और पुनर्वास से सम्बंधित हैं | परिषद के प्रमुख उद्देश्यों में दिव्यांगजन के पुनर्वास के क्षेत्र में प्रशिक्षण नीतियों एवं कार्यक्रमों का विनियमन करना, उनसे सम्बंधित वृत्तिकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का मानकीकरण सुनिश्चित करना, सम्बंधित वृत्तिकों/कार्मिकों की विभिन्न श्रेणियों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण के न्यूनतम मानक निर्धारित करना एवं इन्हें देश भर के सभी प्रशिक्षण संस्थानों में समान रूप से विनियमित करना, दिव्यांगजनों के पुनर्वास के क्षेत्र में स्नातकोत्तर उपाधि/ स्नातक उपाधि/ स्नातकोत्तर डिप्लोमा/ डिप्लोमा/ प्रमाणपत्र पाठ्यक्रमों को सञ्चालित करने वाले संस्थानों/ संगठनों/ विश्वविद्यालयों को मान्यता प्रदान करना, विदेशी विश्वविद्यालयों/ संस्थानों द्वारा पारस्परिक आधार पर प्रदत्त उपाधि/ डिप्लोमा/ प्रमाणपत्र को मान्यता प्रदान करना, पुनर्वास और विशेष शिक्षा से सम्बन्धित अनुसन्धान को बढ़ावा देना, वृत्तिकों/ कार्मिकों के पञ्जीकरण हेतु केन्द्रीय पञ्जीकरण पञ्जिका रखना, भारत और विदेश स्थित संस्थानों से दिव्यांगजनों के पुनर्वास के क्षेत्र में शिक्षा और पुनर्वास विषयक सूचना नियमित आधार पर एकत्र करना, अशक्तता के क्षेत्र में कार्यरत संगठनों के साथ सहभागिता करते हुये पुनर्वास और विशेष शिक्षा के क्षेत्र में सतत शिक्षा को बढ़ावा देना, व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्रों, अशक्तता विषयक राष्ट्रीय संस्थानों एवं शीर्षस्थ संस्थाओं को जनशक्ति विकास केन्द्रों के रूप में मान्यता प्रदान करना, व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्रों में कार्यरत व्यावसायिक अनुदेशकों एवं अन्य कार्मिकों तथा सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय के तहत अशक्तता विषयक राष्ट्रीय संस्थानों एवं शीर्षस्थ संस्थाओं में कार्यरत कार्मिकों का पंजीकरण करना हैं |

दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार, सुरक्षा तथा भागीदारी) अधिनियम[6] 1995

भारत में एशियाई और प्रशांत क्षेत्र में नि:शक्त व्यक्तियों की पूर्ण भागीदारी और समानता सम्बन्धी उद्घोषणा को प्रभावी बनाने के लिए दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार, संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 को 1996 से प्रवर्तित किया गया है | यह अधिनियम दिव्यांगजन के लिए समान अवसरों की व्याख्या, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण सहभागिता सुनिश्चित कराने पर बल देता है | इसमें दिव्यांगता को रोकने, उनके अधिकारों का संरक्षण करने, चिकित्सकीय सुविधायें, शिक्षा, प्रशिक्षण, रोजगार और उनके पुनर्वास आदि उपलब्ध कराने का अधिकार सीधे केंद्र और राज्य सरकारों, स्थानीय निगमों और निकायों को दिया गया है | अधिनियम के मुख्य उद्देश्यों में दिव्यांगजन हेतु बाधामुक्त वातावरण निर्मित करना, उनके साथ किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार और शोषण की अवस्था में ऐसा करने वाले को उचित दंड दिया जाना और समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए विशेष प्रावधान बनाना आदि शामिल हैं, जिससे वे अपने को भी समाज का एक महत्त्वपूर्ण नागरिक स्थापित कर सकें | निर्दिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिनियम में दिव्यांगता का शीघ्र पता लगाने और रोकने, शिक्षा, रोजगार, गैर-भेदभाव, शोध और मानव संसाधन का विकास, सकारात्मक कार्रवाई और सामाजिक सुरक्षा आदि महत्त्वपूर्ण प्रावधान किये गए हैं |

स्वपरायणता, प्रमस्तिकीय पक्षाघात, मानसिक मंदता और बहु-दिव्यांगताग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास[34] 1999

राष्ट्रीय न्यास, सामाजिक न्याय एंव अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार का एक सांविधिक निकाय है, जिसकी स्थापना स्वपरायणता, प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात, मानसिक मंदता और बहु-दिव्यांगताग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण हेतु अधिनियम (1999 के अधिनियम 44) के तहत की गई है | इस अधिनियम को भारतीय संसद की सहमति 30 दिसंबर 1999 को प्राप्त हुयी | इस अधिनियम में चारो वर्गों के लिए कानूनी सुरक्षा तथा उनके स्वतन्त्र जीवन हेतु सहज वातावरण के निर्माण का प्रावधान किया गया है |

राष्ट्रीय न्यास की परिकल्पना का उद्देश्य दिव्यांगजन के लिए एक समावेशी समाज का निर्माण करना है, जिसमें वे व्यक्ति की गरिमा, समान अधिकार और अवसरों की समता के साथ अपना जीवन-यापन करते हुए सशक्त और सक्षम बन सकें | न्यास की परिकल्पना सभी देशवासियों के लिए एक बदलते भारत के स्वरुप को प्रदर्शित करती है तथा दिव्यांगजन के मानवाधिकारों अर्थात यूएनसीआरपीडी के दृष्टिकोण पर आधारित है | न्यास दिव्यांगजन और उनके परिवारों की क्षमता के विकास हेतु अवसर उपलब्ध कराने का कार्य करता है, ताकि उनके अधिकारों की पूर्ति हो सके तथा एक समावेशी समाज एवं सामर्थ्यवान वातावरण के सृजन को प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान किया जा सके | राष्ट्रीय न्यास का मौलिक उद्देश्य दिव्यांगता से ग्रसित व्यक्तियों को अन्य मंत्रालयों के सहयोग तथा व्यापक समर्थन प्रणाली के माध्यम से अवसर उपलब्ध कराने के लिए एक सक्षम वातावरण का सृजन करना है, जिससे वे समावेशी समाज के विकास में सहयोगी बन सकें | अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय न्यास उपरोक्त चारों प्रकार की दिव्यांगताओं से ग्रस्त दिव्यांगजन के लिए विभिन्न योजनायें संचालित कर रहा है, जिनमें प्रमुखत: चार प्रकार की दिव्यांगताओं से ग्रस्त 0 से 10 वर्ष के आयु समूह वाले बच्चों के लिए **बाल्य-कालिक हस्तक्षेप और विद्यालय तैयारी की योजना (दिशा),** 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के दिव्यांगजन में अंतरवैयक्तिक एवं रोजगारपरक कौशल की वृद्धि में विस्तार देने हेतु उसके विकास केंद्र पर रहने के दौरान देखभाल हेतु दिन में देखभाल योजना (विकास),

अनाथों अथवा लावारिसों, संकटग्रस्त परिवारों और बीपीएल तथा एलआईजी परिवारों से आनेवाले दिव्यांगजनों और ऐसे निराश्रितों के लिए राहतकारी देख-भाल योजना (समर्थ), **आजीवन आवास की सुविधा के साथ देखभाल की पर्याप्त एवं उत्तम सेवाओं से युक्त स्वीकार्य जीवन स्तर की सुविधाओं के साथ-साथ व्यावसायिक चिकित्सक की बुनियादी सुविधा आदि उपलब्ध कराने हेतु वयस्क दिव्यांगजनों के लिए सामूहिक गृह योजना (घरौंदा), दिव्यांगजन को किफायती कीमत पर स्वास्थ्य बीमा योजना (निरामय),** प्रशिक्षण प्रदान करने और सेवाप्रदाताओं की कुशल जन-शक्ति निर्मित करने के लिए **देखभालकर्ता प्रशिक्षण योजना (सहयोगी), दिव्यांगजन** को शैक्षिक पाठ्यक्रम जैसे स्नातक पाठ्यक्रम, व्यवसायिक पाठ्यक्रम और रोजगारपरक प्रशिक्षण प्राप्त करने को प्रोत्साहित करने हेतु **शैक्षणिक सहयोग योजना (ज्ञान प्रभा),** राष्ट्रीय न्यास अधिनियम के अंतर्गत समाहित दिव्यांगजन द्वारा निर्मित उत्पादों व सेवाओं की बिक्री के लिए व्यवहार्य एवं व्यापक माध्यमों के विकास को प्रोत्साहन देने हेतु **विपणन सहयोग योजना (प्रेरणा), दिव्यांगजन को सहायक सामग्री और सहायता उपकरणों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने हेतु योजना (संभव) और दिव्यांगजन के प्रति समुदाय को जागरूक करने, उनमें चेतना लाने तथा उन्हें समाज में एकीकृत करके समाज की मुख्य धारा में लाने हेतु जागरूकता एवं समुदाय से मेलजोल योजना (बढ़ते कदम) आदि प्रमुख हैं** | न्यास की स्थापना का उद्देश्य इसे दिव्यांगजन की शिक्षा एवं पुनर्वास के क्षेत्र में एक अग्रणी संस्थान के रूप में खड़ा करता है |

राष्ट्रीय दिव्यांग जन नीति[26] 2006

दिव्यांगजन के शारीरिक, शैक्षिक और आर्थिक पुनर्वास को ध्यान में रखते हुए, उनके अधिकारों की रक्षा करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा 10 फरवरी, 2006 को एक व्यापक नीति लागू की गयी, जिसके कार्यन्वयन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय को एक नोडल प्राधिकारी के रूप प्रदान की गयी | इस नीति में दिव्यांगजन को देश के महत्त्वपूर्ण मानव संसाधन के रूप में स्वीकार किया गया है | इसके गठन का उद्देश्य एक ऐसा वातावरण सृजित करना है जो दिव्यांगजन के लिए समान अबसर, उनके अधिकारों का संरक्षण और समाज में पूर्ण भागीदारी को सुनिश्चित कराने में सहायक हो | इसके साथ-साथ यह नीति महिलाओं और दिव्यांगजन के पुनर्वास, बाधामुक्त वातावरण, सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने और शोध को बढ़ावा देने पर भी बल देती है | इसमें दिव्यांगता को रोकने, पुनर्वास सेवाओं में सुधार करने, दिव्यांग प्रमाणपत्र निर्गत करने, गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) को बढ़ावा देने, खेलकूद, मनोरंजन और संस्कृतिक क्रियाकलापों में दिव्यांगजन हेतु अवसरों की उपलब्धता बढ़ाने और दिव्यांगजन से सम्बंधित विभिन्न अधिनियमों और कानूनों में सुधार करने आदि पर भी बल दिया गया है |

शिक्षा का अधिकार अधिनियम[27] 2009

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार, अनुच्छेद 21 (क) "राज्य 6-14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निर्धारित कानून के तहत नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा" को सुनिश्चित करने के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 लागू किया गया, जो आज शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के नाम से जाना जाता है | 1 अप्रैल, 2010 से यह अधिनियम पूरे भारत में प्रभावी है | अधिनियम के अनुसार केंद्र एवं राज्य दोनों सरकारों का यह दायित्व है कि प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो | अधिनियम में गारंटी दी गयी है कि देश

में 6-14 वर्ष आयु के बीच के सभी बच्चों को, चाहे वे जहाँ तथा जिन परिस्थितियों में रहते हों, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है | साथ ही यह विद्यालयों में किसी भी प्रकार की बाधा एवं तनाव से मुक्त वातावरण का निर्माण करने हेतु प्रयास करने का निर्देश देता है | शिक्षा का अधिकार अधिनियम प्रभावी होने के बाद से इसके प्रावधान के अनुसार कोई भी सरकारी विद्यालय 6-14 वर्ष आयु वर्ग के किसी भी बच्चे को नामांकित करने से मना नहीं कर सकता है, भले ही वह बच्चा कभी भी विद्यालय न गया हो या कक्षा 8 तक की पढ़ाई पूरी करने से पहले ही विद्यालय छोड़ चुका हो | ऐसा बच्चा जो कभी विद्यालय न गया हो या विद्यालय छोड़ चुका हो, वह विद्यालय द्वारा विशेष शिक्षा पाने का हक़दार है | ताकि वह पढ़ाई में शेष बच्चों से पीछे न रह जाये | ऐसे बच्चे को विद्यालय में कक्षा 8 की पढ़ाई पूरी करने तक नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है | चाहे उसकी आयु 14 वर्ष से अधिक हो जाये |

शिक्षा का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2012 द्वारा शिक्षा का अधिकार अधिनियम के दायरे में गंभीर दिव्यांगता से ग्रसित बच्चों के लिए घर आधारित शिक्षा की सिफारिश की गयी | अधिनियम के मौजूदा प्रावधानों के अनुसार आठवीं कक्षा तक किसी भी विद्यार्थी को रोका नहीं जा सकता है | शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2019 (संशोधन अधिनियम) में विद्यालयों में नो-डिटेंसन पालिसी को ख़त्म कर दिया गया है | अब यह निर्णय राज्यों पर छोड़ दिया गया है कि नो-डिटेंसन नीति जारी रखी जाये या नहीं | शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के तत्व, जो विशेष रूप से दिव्यांगजन की शिक्षा और पुनर्वास को संबोधित करते हैं, ने पूरे दस्तावेज़ के विश्लेषण के लिए आधार के रूप में कार्य किया है | इस अधिनियम के अनुसार यदि कोई बच्चा दिव्यांग है और वह विद्यालय में पढ़ता है, तो उस बच्चे के लिए आयु 14 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष कर दी जाएगी |

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम[28], 2016

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016, दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 को प्रतिस्थापित करता है | यह अधिनियम दिसंबर 2016 में पारित हुआ एवं वर्ष 2017 से सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया | दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 की धारा 40 के अनुसार केंद्र सरकार मुख्य आयुक्त के परामर्श से दिव्यांग व्यक्तियों के लिये नियम बनाती है, जिसमें उचित प्रौद्योगिकीयों एवं प्रणालियों तथा शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में जनता को प्रदान की जाने वाली अन्य सुविधाओं और सेवाओं सहित भौतिक पर्यावरण, परिवहन, सूचना एवं संचार हेतु पहुँच के लिये मानक निर्धारित किये जाते हैं | यह अधिनियम दिव्यांगता से संबंधित नियमों को 'दिव्यांग व्यक्तियों के लिये संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन' (यूएनसीआरपीडी) के अनुरूप बनाता है | इस अधिनियम के अंतर्गत किये गये महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित हैं,

- इस अधिनियम में दिव्यांगता को एक विकसित और गतिशील अवधारणा के आधार पर परिभाषित किया गया है और दिव्यांगता के मौजूदा प्रकारों को 7 से बढ़ाकर 21 कर दिया गया है | साथ ही इसमें केंद्र सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह दिव्यांगता के प्रकारों को और अधिक बढ़ा सकती है |
- इसमें बेंचमार्क दिव्यांगता से पीड़ित 6-18 वर्ष तक के बच्चों के लिये नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है | अधिनियम ऐसे बच्चों को या तो पड़ोस के विद्यालयों या अपनी पसंद के विशेष विद्यालयों में दाखिला

लेने के अधिकार को मान्यता देता है | यहाँ बेंचमार्क दिव्यांगता से अभिप्राय उन लोगों से है जो कम-से-कम 40% दिव्यांगता से प्रभावित हैं |

- अधिनियम में दिव्यांग व्यक्तियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिये एक अलग राष्ट्रीय तथा राज्य कोष बनाये जाने की बात भी कही गयी है |
- दिव्यांग व्यक्तियों के लिये सरकारी नौकरियों में आरक्षण को 3% से बढ़ाकर 4% तथा उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण को 3% से बढ़ाकर 5% कर दिया गया है |

रास्ट्रीय शिक्षा नीति[29] 2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, को शैक्षिक सुधारों में एक नए युग के रूप में प्रस्तुत किया गया है | यह दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 से आच्छादित है | यही कारण है कि इसमें दिव्यांग बच्चों के लिये क्रास-दिव्यांगता प्रशिक्षण संसाधन केंद्र, आवास, सहायक उपकरण, उपयुक्त प्रौद्यागिकी आधारित उपकरण, शिक्षकों का पूर्ण समर्थन एवं प्रारंभिक से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित रूप से विद्यालयी शिक्षा प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना आदि प्रक्रियाओं को सक्षम बनाया जाना शामिल किया गया है | इस नीति को दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के बारे में सोचने के दो अलग-अलग पहलुओं की समग्रता में देखा जा सकता है, जिसमें प्रथम, दिव्यांगता को एक व्यक्तिगत समस्या के रूप में स्वीकार कर 'पुनर्वास' या 'शमन' के द्वारा हल किया जाना चाहिए और द्वितीय, इसके आवरण में एक ऐसी शैक्षिक प्रणाली बनाने के विचार पर बल दिया गया है, जो दिव्यांग बच्चों और गैर-दिव्यांग बच्चों हेतु एक बाधामुक्त समावेशी कक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करवाने में सक्षम हो तथा उस कक्षा तक पहुँचने में दिव्यांग विद्यार्थियों को किसी भी बाधा का सामना न करना पड़े | वहां के पाठ्यक्रम, पढ़ाने की विधियाँ एवं मूल्यांकन दिव्यांग और गैर-दिव्यांग दोनों ही प्रकार के बच्चों को अपने में शामिल करने को तैयार रहें |

29 जुलाई 2020 को केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित इस नयी शिक्षा नीति (एनईपी 2020) में दिव्यांगजन और सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के बच्चों को ध्यान में रखते हुए "दिव्यांगजन की शिक्षा के लिए बाधामुक्त वातावरण" नाम से नवीनतम प्रावधान किया गया है, जिसे लागू करने में मुख्य रूप से दो प्रमुख बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा | इसमें प्रथम 'दिव्यांगजन को कैसे पढ़ाया जाना है' विषय पर संकाय सदस्यों को ज्ञान प्रदान करना और उनके द्वारा यह जानना कि कैसे पढ़ाना है ? और द्वितीय आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के अनुसार दिव्यांगजन को बाधामुक्त वातावरण में शिक्षा प्रदान करना शामिल हैं | नीति उपरोक्त लक्षित उद्देश्य की पुर्ति को सहज बनाने हेतु उपयुक्त तकनीकी आधारित सहायक उपकरण और भाषा उपयुक्त शिक्षण अधिगम सामग्री उपलब्ध कराये जाने हेतु उत्तरदायी संस्थाओं को निर्दिष्ट भी करती है | भारतीय सांकेतिक भाषा (इंडियन साइन लैंग्वेज) सिखाने और भारतीय सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हुए अन्य विषयों को सिखाने के लिए एनआईओएस द्वारा उच्च गुणवत्ता वाले माड्यूल विकसित किये जायेंगे | इसके अनुसार संदर्भित दिव्यांगजन (बेंचमार्क दिव्यांगता से ग्रसित) को पढ़ाई-लिखाई हेतु नियमित अथवा विशेष अवसरों के चयन की सुविधायें उपलब्ध होंगी | साथ ही गंभीर और बहु-दिव्यांगता से ग्रसित दिव्यांग विद्यार्थियों की विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने और उनको पुनर्वास उपलब्ध कराने के उद्देश्य से विशेष शिक्षकों और प्रशिक्षकों से युक्त संसाधन केन्द्रों को विकसित किया जायेगा |

विद्यालय और उनके परिसर में दिव्यांग विद्यार्थियों को सीख्नने और उनकी अन्य आवश्यकताओं के अनुरूप संसाधन उपलब्ध कराये जायेंगे और दिव्यांग विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित विशेष शिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी |

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के निम्नलिखित प्रावधान[35] दिव्यांग विद्यार्थियों को शिक्षा के उपयुक्त अवसर उपलब्ध कराये जाने की ओर झुके हुए हैं,

- एनईपी 2020, आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के उद्देश्यों के साथ व्यापक रूप से संरेखित है | इसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए विद्यालयों के प्रकार के संबंध में बहुत सी अस्पष्टताओं को दूर किया गया है |
- दिव्यांग बच्चों की शिक्षा प्राप्त करने हेतु विद्यालय के विकल्प के प्रति अस्पष्टता को हल करते हुए विकल्प के रूप में 'पड़ोस के विद्यालय', 'विशेष विद्यालय' और 'घर-आधारित शिक्षा' का प्रावधान किया गया है | यह प्रावधान शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, आरटीई (संशोधन) अधिनियम 2012 और आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के विरोधाभाषी प्रावधानों के कारण उत्पन्न हुयी समस्या का समाधान करता है |
- यदि कोई बच्चा घर-आधारित शिक्षा का विकल्प चुनता है, तो प्रदान की गई शिक्षा का आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के मानदंडों के आधार पर ऑडिट किया जाएगा |
- दिव्यांग बच्चों को कैसे पढ़ाया जाए? विषय के लिए उपयुक्त शिक्षण कौशलों को सभी शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में शामिल किया जायेगा |
- दिव्यांग बच्चों के लिए संसाधन केंद्रों और शिक्षकों सहित पर्याप्त आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए 5-10 किमी के दायरे में आने वाले विद्यालयों को एक विद्यालय परिसर में समेकित किया जाएगा | एनईपी 2020 का यह प्रावधान विशेष शिक्षकों की कमी की समस्या को हल करने का प्रयास करता है |
- एनईपी 2020 दिव्यांग बच्चों को पढ़ाने के लिए अल्पकालिक विशेषज्ञता पाठ्यक्रम शुरू किए जाने पर भी बल देती है |
- राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र (परख) की स्थापना की जाएगी, जो सीखने की अक्षमता वाले बच्चों के लिए सुलभ मूल्यांकन दिशा-निर्देश सुनिश्चित करेगा | इसका उद्देश्य शिक्षा को अधिक समावेशी बनाना है |
- प्रशिक्षकों में समतापूर्ण और समावेशी दृष्टिकोण विकसित करने हेतु प्रशिक्षण आदि के द्वारा इस तरह तैयार किया जायेगा ताकि वे दिव्यांगजन की अक्षमताओं और सीखने में आने वाली बाधाओं को समझने एवं पहचानने में` सक्षम हो सकें |
- इस दस्तावेज के माध्यम से एनसीटीई और आरसीआई के बीच बेहतर सामंजस्य सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है, ताकि विशेष शिक्षकों को विषय-वस्तु और शैक्षणिक ज्ञान दोनों प्राप्त हो सकें |
- राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों के परामर्श से वर्तमान पाठ्यक्रमों में आवश्यक बदलाव करते हुए उन्हें अधिक परिवर्तनशील बनाया जायेगा |
- एनआईओएस, भारतीय सांकेतिक भाषा पढ़ाने तथा आईएसएल का उपयोग करते हुए अन्य बुनियादी विषयों को पढ़ाने के लिए, उच्च गुणवत्ता वाले मॉड्यूल विकसित करेगा |

- संसाधन केन्द्रों को गंभीर या बहु-दिव्यांगता वाले विद्यार्थियों के पुनर्वास और शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विशेष शिक्षकों एवं आवश्यक संसाधनों से युक्त बनाया जायेगा |
- एनईपी 2020 में विद्यालयों में गैर-भेदभाव, सुलभ बुनियादी संरचना, उचित सुविधाएं, व्यक्तिगत सहायता, शिक्षण में ब्रेल और भारतीय सांकेतिक भाषा का उपयोग और निगरानी आदि प्रावधान शामिल किए गए हैं |
- इसमें क्रॉस-दिव्यांगता प्रशिक्षण के साथ विशेष शिक्षकों की भर्ती के लिए भी प्रावधान किया गया है, जो शिक्षक-शिक्षा के अन्दर दिव्यांगता जागरूकता को शामिल करता है |
- दिव्यांग बच्चों को मुख्यधारा के विद्यार्थियों के साथ एकीकृत करने हेतु विद्यालयों और विद्यालय परिसरों को संसाधनों से सुसज्जित किया जाएगा |

विश्लेषणात्मक विवेचन

दिव्यांगजन के विकास और समावेशन की अवधारणा शिक्षा से जुड़ी हुयी है, क्योंकि शिक्षा ही एक मात्र ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति में विचार की शक्ति उत्पन्न करता है | विचार की शकित उसमें समझ विकसित करती है जिससे व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करने और कौशल या प्रशिक्षण प्राप्त करने की ओर उन्मुख होता है | इस प्रकार, ज्ञान की प्राप्ति हो या किसी कार्य विशेष को कर पाने की दक्षता, दोनों ही उसके जीविका उपार्जन हेतु रोजगार प्राप्त करने में सहयोगी बनते हैं | फिर चाहे दिव्यांगजन हों या सामान्य जन सभी को समाज में ससम्मान जीवनयापन करने हेतु रोजगार की मांग की प्रकृति के अनुरुप विशेष ज्ञान, योग्यता, कौशल या प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होता है और इनकी प्राप्ति केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है | शिक्षा का व्यक्ति के जीवकोपार्जन हेतु रोजगार प्राप्त करने के साथ अटूट सम्बन्ध है | अत: शिक्षा के साथ-साथ रोजगार में भी समान अवसर की धारणा को बनाये रखना आवश्यक है | यद्यपि भारत के संविधान का अनुच्छेद[5] 16 शारीरिक रूप से दिव्यांगजन के अधिकारों के संरक्षण पर बल देता है, जो प्रत्येक नागरिक को रोजगार या सार्वजनिक नियुक्त के मामले में समान अवसर प्रदान करता है | दिव्यांगजनों के लिए रोजगार भेदभाव इस अनुच्छेद के द्वारा निषिद्ध है | देश के सर्वोपरि कानून अर्थात संविधान द्वारा संरक्षण दिए जाने के उपरांत भी भारत मे दिव्यांगजन की शिक्षा और पुनर्वास की दिशा में अपेक्षित प्रगति नहीं हुयी है | जनगणना[9] 2011 के अनुसार, दिव्यांगजन की कुल जनसँख्या के सापेक्ष 45% अभी भी निरक्षर हैं तथा 64% बेरोजगार हैं | शेष 36% दिव्यांगजन जिनको रोजगार प्राप्त हैं, उनमें से 31% कृषि/खेतिहर मजदूर हैं जबकि 23% किसान हैं | 4% दिव्यांगजन घरेलू उद्यमों में काम करते हैं |

हालांकि, दिव्यांगजन की पहचान करना एक कठिन कार्य है | अत: इनकी शीघ्र पहचान सुनिश्चित करने हेतु आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 में दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 में उल्लिखित 7 प्रकार की दिव्यांगताओं को बढ़ाकर 21 कर दिया गया है | विद्यालयों के सन्दर्भ में आरटीई अधिनियम[27] 2009 और आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम[28] 2016 के प्रावधान स्पष्ट करते हैं कि सभी दिव्यांग बच्चों की पहचान शीघ्र की जानी चाहिए, ताकि दिव्यांगता के कारण उत्पन्न होने वाली उनकी विशेष आवश्यकताओं को उचित रूप से संबोधित किया जा सके और उन्हें उनकी आवश्यकतानुसार उचित सहयोग दिया जाना चाहिए, जिससे वे समाज में अपनी पूर्ण क्षमतानुसार कार्य कर सकें | यद्यपि देश भर के विद्यालयों की जमीनी वास्तविकता, ऐसे

पर्याप्त उदाहरण प्रस्तुत करती है, जो दर्शाते हैं कि विद्यालयी कर्मचारियों एवं सामान्य जन में जानकारी के अभाव के कारण विद्यालयों में दाखिला लेने के बाद भी दिव्यांगता वाले बच्चे पहचान से वंचित रह जाते हैं | यह मुख्यत: दिव्यांगता के उन प्रकारों के साथ होता है, जहाँ लक्षण या तो पूरी तरह से दिखाई नहीं देते हैं अथवा इस प्रकार के होते हैं कि अभिभावक एवं शिक्षक सरलता से इनकी पहचान नहीं कर पाते हैं | दिव्यांगता की स्थिति, जैसे कि शारीरिक चुनौतियां, एसिड अटैक या बौनापन की पहचान करना आसान है, लेकिन मानसिक बीमारी, विशिष्ट अधिगम अक्षमता, श्रवण दोष या स्वलीनता जैसी अक्षमताओं को उचित प्रशिक्षण के बिना पहचानना तुलनात्मक रूप से कठिन और जटिल है |

प्रशस्त[36], 2022 के अनुसार, "आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 में वर्गीकृत दिव्यांगताओं की स्थितियों की पहचान एवं आरंभिक जाँच में अपनाये गए तौर-तरीकों से सम्बंधित चुनौतियों के बारे में जानने एवं समझने के लिए परियोजना दल द्वारा वर्ष 2019 में किये गए सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़े दर्शाते हैं कि अभी भी 52.9% राज्यों को कुछ दिव्यांगताओं के लक्षणों अथवा विशेषताओं को समझने में कठिनाई हो रही है | जिन अक्षमताओं को समझने में चुनौतियों का सामना करना पड़ा उनमें मानसिक बीमारी, वाणी और भाषा अक्षमता, अधिगम अक्षमता, पार्किन्सन रोग, हिमोफीलिया और थैलेसीमिया आदि प्रमुख थीं | फ़िलहाल, जिन राज्यों में अक्षमता की स्थितियों को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं आ रही थी, वहां पर विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान प्रक्रिया में विशेष शिक्षकों अथवा चिकित्सा विशेषज्ञों (डॉक्टर) को शामिल किया गया था | लगभग 76.4% राज्यों ने विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान की प्रक्रिया में सामान्य शिक्षकों और विशेष शिक्षको को शामिल किया था |" ऐसी कठिनाईयों को दूर किया जा सके एवं सभी की पहचान करना सहज हो सके, को दृष्टिगत रखते हुए आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 में बेंचमार्क दिव्यांगता[28] को भी जोड़ा गया है और आवश्यकता अनुरूप दिव्यांगताओं के प्रकारों में वृद्धि की गयी है | यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दिव्यांगता की स्थितियों की शीघ्र और उचित पहचान से ही आवश्यक शैक्षिक हस्तक्षेप कार्यान्वयन का मार्ग सरल हो जाता है | जिससे दिव्यांग बच्चों के जीवन में सार्थक बदलाव लाया जा सकता है | यही कारण है कि दिव्यांगता की शीघ्र पहचान और हस्तक्षेप के वर्तमान मॉडल पर अभी भी कार्य किये जाने की आवश्यकता है |

प्राय: समावेशन की चर्चा होते ही आमजन अनुमान लगाने लगते हैं कि कहीं न कहीं दिव्यांगजन के विषय में बात हो रही होगी | सामान्यता समावेशी समाज या समावेशी शिक्षा को केवल दिव्यांगजन से जोड़कर ही देखा भी जाता है | जोकि ठीक नहीं है, क्योंकि समावेशन का हमारा उद्देश्य है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति विकास की मुख्यधारा से जुड़े, समाज के निर्माण में वह अपना महत्वपूर्ण सहयोग दे और अपनी क्रियात्मक भूमिका का निर्वहन करे | जब तक व्यक्ति कार्यशील नहीं होगा तब तक वह आत्मसम्मान का अधिकारी नहीं हो सकेगा और न ही एक गरिमापूर्ण जीवन जी सकेगा | समावेशन का अर्थ है समाज में व्याप्त जितनी भी विषमतायें हैं, व्यक्ति के जितने भी गुण हैं, उन सभी को यथोचित सम्मान देना एवं सभी को तारतम्यता के साथ एक सूत्र में पिरोना | समाज में हम दिव्यांगजन के सामानांतर बहुत से ऐसे लोगों को भी देखते हैं जो किन्हीं ऐसी परिस्थितियों के कारण हाशिये पर चले गए हैं, जिन्हें दिव्यांगता की श्रेणियों में शामिल नहीं किया गया है | अत: इन्हें दिव्यांगता से ग्रसित भी नहीं माना जाता है | ऐसे लोगों

को यदि समय पर उचित सहयोग या उपचार प्राप्त न हो तो उनकी भी समाज की मुख्यधारा से दूर हो जाने की सम्भावना रहती है | एक प्रगतिशील समाज के लिए विकास और समावेशन शाश्वत सत्य हैं | दोनों एक दुसरे के सातत्य में चलते हैं | अत: इसे निरंतर गति देने के लिए यह आवश्यक है कि समाज की मुख्यधारा से दूर होते जा रहे प्रत्येक व्यक्ति या वर्ग को सहअस्तित्व प्रदान किया जाये | अत: समाज में हाशिये पर खड़े व्यक्ति या वर्ग को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए उसकी शीघ्र पहचान आवश्यक है, जिससे उचित उपचार के बाद समुचित पुनर्वास सुनिश्चित किया जा सके |

यद्यपि भारत सरकार ने दिव्यांगजन के विकास और समावेशन की दिशा में सराहनीय प्रयास किये हैं, फिर भी अपेक्षित परिणाम अभी प्राप्त नहीं हो सके हैं | इसका एक कारण दिव्यांगजन के प्रति समाज का नकारात्मक द्रष्टिकोण भी है | अभी दिव्यांगजन के प्रति आमजन का दृष्टिकोण सहानुभूति का है, जबकि उन्हें समानभूति की आवश्यता है | अत: दृष्टिकोण के इस सामाजिक प्रतिमान के विपरीत मॉडल को स्वीकार किये जाने की आवश्यकता है | दिव्यांगता व्यक्ति के अन्दर की किसी एक या एक से अधिक अक्षमता की ओर संकेत करती है, परन्तु इसका ये तात्पर्य यह बिलकुल नहीं है कि वह अन्य संदर्भ की योग्यता नहीं रखता होगा या अन्य कौशलों का प्रशिक्षण नहीं प्राप्त कर सकता है | क्योंकि हमारे पास दिव्यांगजन के ऐसे अनेक उदहारण हैं जिन्होंने अपनी अक्षमता को ही अपनी ताकत सिद्ध किया है | प्राचीन भारतीय ऋषि अष्टावक्र से लेकर सूरदास जी और आधुनिक युग में अरुणिमा सिंहा, डॉ.सुरेश अडानी, मलाठी के. होल्ला आदि ने अपनी सामर्थ्य से ऐसे कार्य किये हैं जो एक सामान्य जन की सामर्थ्य की सीमा में नहीं बांधे जा सकते हैं | ऐसे ही कुछ नाम स्टीफन हकिंग्स, हेलेन केलर, फ्रेंकलिन डी. रूजवेल्ट, लुईस कैरोलन और लुईस ब्रेल जैसे उन अनेक दिव्यांगजन के हैं जो विदेशी धरती पर जन्मे हैं | अत: यह आवश्यक है कि दिव्यांगजनो के आर्थिक सहयोग हेतु चलायी जा रही योजनाओं के साथ-साथ ऐसे प्रसिद्ध दिव्यांगजन के बारे में भी जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये, जिन्होंने विशेष सफलताएँ अर्जित की हैं |

भारत सरकार दिव्यांगजन को शिक्षा और पुनर्वास के समान अवसर सुलभ कराने के लिए प्रतिबद्ध है, जो अपने द्वारा समय-समय पर बनाये गए विभिन्न अधिनियमों, नियमों, कानूनों और नीतियों के माध्यम से दिव्यांगजन के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करती है | इन अधिनियमों और नीतियों के स्वतंत्र रूप से विनियमन के लिए भारत सरकार का दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग एक नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करता है | पिछले कई दशकों में किये गए अनेक प्रयासों का परिणाम है कि आज समाज में दिव्यांगजन के अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है | आज सैकड़ों शिक्षण संस्थान आरसीआई द्वारा अनुमोदित डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक, एम.फिल. और डॉक्टरेट आदि पाठ्यक्रमों को संचालित कर रहे हैं | यद्यपि दिव्यांगजन के विकास और समावेशन की दिशा में निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं और सुधारात्मक परिणाम भी हमें प्राप्त हो रहे हैं फिर भी अभी हम अपेक्षित स्तर को प्राप्त नहीं कर सके हैं | एक ओर जहाँ आज भी दिव्यांगजन की लगभग 45% आबादी निरक्षर और 64% बेरोजगार हैं, वहीँ दिव्यांगजन की जनसँख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है | जनसांख्यिकीय आंकड़े इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि 2001-11 के दौरान कुल जनसँख्या के लिए दशकीय प्रतिशत परिवर्तन 17.7 था, वहीं दिव्यांग जनसँख्या में दशकीय प्रतिशत परिवर्तन 22.4 रहा है | बढ़ती आबादी नि:संदेह संसाधनों पर एक अतिरिक्त दबाव डालती है | एक विकासशील देश के सम्मुख अपने

सभी नागरिको एक गरिमापूर्ण जीवन के अवसर सुलभ कराना एक चुनौती होती है | विचारणीय है कि ऐसी परिस्थिति में यदि उसके सम्मुख एक बड़ी आबादी दिव्यांगजन की हो तो उनकी विशेष आवश्यकताओं के दृष्टिगत सहज जीवन के अवसर सुनिश्चित कराना कितना चुनौतीपूर्ण होगा ? आज देश अपनी इन सम-विषम परिस्थितियों में दिव्यांगजन के अधिकारों को सुनिश्चित कराने और विकास और समावेशन के लिए समावेशी वातावरण सृजित करने के उद्देश्य से अपने नवीनतम प्रयासों के रूप में 'दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016' तथा 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' को लेकर आगे बढ़ चुका है | आशा है कि उक्त नीतियों का सफल क्रियान्वयन अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में सहायक होगा |

संदर्भ सूची

1. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016. उद्धृत द्वारा https://cdnbbsr.s3waas. gov.in/s3e58aea67b01fa747687f038dfde066f6/uploads/2023/10/2023101610539589 42.pdf
2. यूनाइटेड नेशन्स कन्वेंशन ऑन द राइट्स विथ डिसेबिलिटीस (यूएनसीआरपीडी) 2006 उद्धृत द्वारा https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s3e58aea67b01fa747687f038dfde066f6/uploads/2023/09/202309271809121595.pdf
3. सौरभ, शशि. (2019). भारत में दिव्यांगजन का राजनितिक सशक्तिकरण: एक चुनौती. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस एंड गवर्नेंस. उद्धृत द्वारा https://www.journalofpoliticalscience.com/uploads/archives/1-2-6-426.pdf
4. वर्ल्ड डिसेबिलिटी डे: जब पीएम मोदी ने दिया नया नाम सब कहने लगे दिव्यांग, (2018, दिसम्बर). हिंदुस्तान. उद्धृत द्वारा https://www.livehindustan.com/national/story-pm-modi-gave-the-word-divyang-for-physically-challenged-people2295465 .html
5. भारत का संविधान. उद्धृत द्वारा https://surveyofindia.gov.in/documents/coi-hindi. pdf
6. नि:शक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995. उद्धृत द्वारा https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/4215/1/Person-with-Disabilitie s-Equal-Opportunities-Protection-of-Rights-and-Full-Participation -Act-1995.pdf
7. भारत में दिव्यांगता | कार्यालय मुख्य आयुक्त दिव्यांगजन. उद्धृत द्वारा https://www.Printfriendly.com/p/g/KeFJHD
8. वृद्धावस्था और विकलांगता. आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग, यूनाइटेड नेशन्स. उद्धृत द्वारा https://social.desa.un.org/issues/disability/disability-issues/age ing-and-disability
9. जनगणना, 2011. उद्धृत द्वारा http://www.ccdisabilities.nic.in/hi/resources/disability-india
10. सिंह, विशाखा (2023). विश्व विकलांग दिवस 2023: 1981 में राखी गयी थी इस दिन की नीव. उद्धृत द्वारा https://leverageedu.com/blog/hi/trending-vishva-viklang-divas/

11. मानव अधिकारों का सार्वजानिक घोषणापत्र. उद्धृत द्वारा https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights
12. ब्राउन, स्काट (). विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा. उद्धृत द्वारा https://www.britannica.com/topic/United-Nations-Declaration-on-the-Rights-of-Disabled-Pers ons
13. डिक्लेरसन ऑन द राइट्स ऑफ़ मेंटली रिटार्डिड पर्सन्स. उद्धृत द्वारा https://www.Ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/declaration-rights-mentally-retarded-pers ons
14. द इंटरनेशनल इयर ऑफ़ डिसेबल्ड पर्सन्स 1981. उद्धृत द्वारा https://www.un.org/development/desa/disabilities/the-international-year-of-disabled-persons-**1981.**html
15. विकलांग व्यक्तियों के सम्बन्ध में विश्व कार्य योजना. उद्धृत द्वारा https://www.un.Org/development/desa/disabilities/resources/world-programme-of-action-concerning-disabled -persons.html
16. विकलांग व्यक्तियों के लिए अवसरों की समानता पर मानक नियम. उद्धृत द्वारा https://www.ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/standard-rules-equali zation-opportunities-persons-disabilities
17. कांफ्रेंस ऑन स्टेट्स पार्टीज टू द कन्वेंशन ओन द राइट्स ऑफ़ पर्सन्स विद डिसअबिलीटीज (सीओएसपी). उद्धृत द्वारा https://social.desa.un.org/issues/disability/cosp
18. सार्जेंट प्लान ऑन एजुकेशन. उद्धृत द्वारा https://www.insightsonindia.com/modern-indian-history/social-policies/education-policies/sergeant-plan-of-education/
19. शिक्षा आयोग (1964-1966)–कोठारी आयोग. उद्धृत द्वारा https://www.Questionpurs.com/2024/05/kothari-commission.html
20. पोजीशन पेपर: नेशनल फोकस ग्रुप ऑन एजुकेशन ऑफ चिल्ड्रेन विद स्पेशल नीड्स. एनसीईआरटी. उद्धृत द्वारा https://www.ncert.nic.in/pdf/focus-group/special_ed _final1.pdf
21. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986. उद्धृत द्वारा https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/ document-reports/NPE1986_H.pdf
22. क्रियान्वयन योजना 1992. उद्धृत द्वारा https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/POA_1992.pdf
23. जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) 1994. उद्धृत द्वारा https://educationforallinindia.com/district -primary-education-programme-dpep-1994/
24. विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000. राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली
25. सर्व शिक्षा अभियान: ए प्रोग्राम फॉर यूनिवर्सल एलीमेंट्री एजुकेशन (2004). मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट, डिपार्टमेंट ऑफ एलीमेंट्री एजुकेशन & लिटरेसी.

26. लेखा, श्रुति. (2020). रिव्यू ऑफ़ नेशनल पॉलिसी फॉर पर्सन्स विथ डिसेबिलिटी 2006. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसेबिलिटी एजुकेशनल रिसर्च. उद्धृत द्वारा https://www.researchgate.Net / publication/350106479_REVIEW_OF_NATIONAL_POLICY_FOR_PERSONS_WITH_DISABILITY_2006
27. शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम 2009. उद्धृत द्वारा https://hindiarise.com/right-to-education-rte-act-2009-upsc-in-hindi/#
28. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016
29. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
30. भारतीय संविधान अधिनियम 1950. उद्धृत द्वारा https://www.bareactslive.com/ACA/ACT401.HTM
31. दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग. उद्धृत द्वारा https://depwd.gov.in/
32. दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग. उद्धृत द्वारा https://depwd.gov.in/brief-about-national-awards/
33. रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ़ इंडिया. उद्धृत द्वारा https://rehabcouncil.nic.in/
34. स्वपरायणता, प्रमस्तिकीय पक्षाघात, मानसिक मंदता और बहु-दिव्यांगताग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास 1999. उद्धृत द्वारा https://thenationaltrust.gov.in/content/innerpage/download.php
35. अर्जुन कपूर, हरिता नायर, & स्नेहा पिल्लई (). दिया फाउंडेशन. उद्धृत द्वारा https://www.diyafoundation-india.org/national-education-policy-2020/
36. प्रशस्त - विद्यालयों हेतु दिव्यांगताओं की आरम्भिक जाँच सूची (भाग-1 और भाग-2) (2022). विद्यालयी साक्षरता एवं शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. उद्धृत द्वारा https://ncert.nic.in/pdf/DSCS_booklet_Hi.pdf

17

अवसरों की समानता एवं समावेशन का मार्ग प्रशस्त करता दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम-2016

डॉ. राजेंद्र प्रसाद
सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. अखिलेश यादव
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत वर्ष -1947 के पश्चात संविधान अपनाने के बाद से ही भारत में दिव्यांगों के जीवन में महत्वपूर्ण बदलाव आया भारत का संविधान भेदभाव (अनुच्छेद-15) को प्रतिबंधित करता है दिव्यांग जैसे समुह के लिए रोज़गार (अनुच्छेद-16) के मामलों में अवसरों की समानता का प्रावधान करता है (लक्ष्मीकांत, एम., 2022, अल्का एण्ड अदर्स, 2022.) हालाँकि दिव्यांगों के जीवन में दो कानूनों दिव्यांग अधिनियम 1995 और इसको प्रतिस्थापित करने वाला दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम- 2016 शामिल है| इन कानूनों ने सकारात्मक कार्यवाही के माध्यम से दिव्यांगों को शैक्षिक अवसर एवं सामाजिक समानता को सुनिश्चित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया (डिसबिलिटी ऐक्ट, 2016) साथ ही कानून ने शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव, सार्वजनिक उपयोगिता एवं दिव्यांगों के लिए सेवाओं तक पहुँच में वृद्धि की है |

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम-2016 को राष्ट्रपति द्वारा 27 दिसम्बर 2016 को मंज़ूरी प्राप्त हुई और यह अधिनियम 15 जून 2017 को प्रभावी हो गया| अधिनियम का उद्देश्य यह है कि दिव्यांगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ कन्वेंशन एवं उनके जीवन से जुड़े मामलों को प्रभावी बनाना| अधिनियम में विकलंगों के शैक्षिक भागीदारी बढ़ाने एवं सामाजिक समावेशन से जुड़े प्रमुख प्रावधानों में सम्मलित हैं (रिचर्ड एण्ड अदर्स, 2020.) अधिकार एवं हक़, शिक्षा कौशल विकास एवं रोज़गार, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, पुनर्वास एवं मनोरंजन, उच्च समर्थन की आवश्यकता वाले दिव्यांगों के लिए विशेष प्रावधान, सरकारों के कर्तव्य एवं जिम्मेदारियां, दिव्यांगों से जुड़े संस्थानों का पंजीकरण एवं अनुदान, निर्दिष्ट दिव्यांगों का प्रमाणन, दिव्यांगों के लिए केंद्रीय एवं राज्य सलाहकार बोर्ड एवं जिला स्तर पर समितियों का गठन, दिव्यांगों से संबंधित मुख्य आयुक्त एवं राज्य आयुक्त की नियुक्ति, दिव्यांगों के लिए विशेष न्यायालय की स्थापना, दिव्यांगों के लिए राष्ट्रीय कोष के साथ-साथ राज्य निधि का प्रावधान करता है (सुरेश एण्ड अदर्स, 2019.) तथा अपराध एवं दंड में दिव्यांगों को विशेष प्रावधानों का वर्णन किया गया है कुल मिलाकर अधिनियम संयुक्त राष्ट्र संघ कन्वेंशन की छत्रछाया में अधिनियमित है और भारत में अधिकार-आधारित दिव्यांगों के अधिकारों में सुधार करने के उद्देश्य से प्रावधानों की एक विस्तृत रूपरेखा भी प्रस्तुत करता है| अधिनियम कई प्रकार के आर्थिक और सामाजिक अधिकारों पर भी बल देता है और दिव्यांगों के अंतर्निहित गरिमा एवं सम्मान को सुनिश्चित करने पर बल देता है

(दुफ़्फ़ी, आर. एम., & केली, बी. डी. 2017.)| अधिनियम दिव्यांगों के व्यक्तिगत स्वायत्तता का निर्धारण के लिए समाज में पूर्ण भागीदारी एवं समावेशन पर मुख्य ध्यान केंद्रित करता है, दिव्यांगता रूपी शारीरिक विभिन्नता का सम्मान करने एवं दिव्यांगों की समाज में स्वीकृत और समान अवसरों की समानता प्राप्त हो प्रावधान करता है, दिव्यांगों की क्षमताओं का विकास करने के लिए पहुँच आसान बनाने जैसे अधिकारों पर बल भी देता है (अभिलाश एवं अन्य, 2019.)| दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम 2017 के साथ संविलीन होकर मानसिक अक्षमताओं का आकलन करने और प्रमाणित करने पद्धतियों, मानसिक रूप से विकार व्यक्तियों के परिवारों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का आकलन एवं मानसिक रूप से विकार व्यक्तियों के तंत्रिका विकास संबंधी विकारों के बारे में विशेषतः चिन्ताओं पर अपनी दिलचस्पी रखता है (एक्स्ट्रऑर्डनेरी, 2017, जून 15)|

भारत में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम-2016 एक कानून है जो दिव्यांगों के अधिकारों की रक्षा करने में मदद करता है साथ ही यह सुनिश्चित करता है कि दिव्यांगों को समाज में सम्मिलित किया जा सके जिससे वे जीवन के विभिन्न हिस्सों जैसे स्कूल, कार्य स्थल और दोस्तों के साथ अपने आप को सशक्त महसूस कर सकें (चौहान, यू. एस. के., गिरीश, एम. एम., बंग, ए., चौधरी, ए. & जैन, एस., 2021.)। हालाँकि, कुछ बाधाएँ भी हैं जैसे कि आसानी से कार्यस्थलों एवं सार्वजनिक भवनों तक नहीं पहुँच पाना, स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ और लोगों द्वारा उनके साथ नकारात्मक व्यवहार किया जाना, जो अधिनियम के लिए एक मुश्किल कार्य बनाते हैं। अधिनियम यह सुनिश्चित करने के लिए कई अलग-अलग क्षेत्रों को सम्मलित करता है कि दिव्यांगों को समाज में शामिल किया जाए और उनका समर्थन किया जाए।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम-2016 का एक महत्वपूर्ण केंद्र बिन्दु यह सुनिश्चित करना है कि दिव्यांग बच्चे स्कूल जा सकें और अन्य बच्चों की तरह ही सीख सकें। हालाँकि भारत में इस मामले में मदद करने के लिए कुछ कानून पारित किए गए हैं, लेकिन सभी दिव्यांग बच्चे स्कूल नहीं जा पाते हैं (चौधरी एवं अन्य, 2017)। कुछ स्कूलों में उन्हें समर्थन प्रदान करने के लिए संसाधन उपलब्ध नहीं हैं, जैसे उचित इमारतें या प्रशिक्षित शिक्षक। हालाँकि स्कूलों को अधिक समावेशी बनाने में मदद करने के लिए दिशा-निर्देश हैं (पाठक एवं अन्य 2021.), फिर भी हमें यह सुनिश्चित करने के लिए और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है कि सभी दिव्यांग बच्चों को अच्छी शिक्षा प्राप्त हो सके।

शोध उद्देश्य- प्रस्तुत शोध के उद्देश्य निम्न है|

- € शैक्षिक एवं रोजगार के अवसरों के संदर्भ में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में किए गए प्रावधानों की पड़ताल करना|
- € दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में दिव्यांगजनों के समावेशन को बढ़ावा देने वाले प्रावधानों एवं उपायों की पड़ताल करना|

शोध प्रश्न-

1. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 दिव्यांगों को शैक्षिक अवसर प्रदान करने में किस प्रकार का उपवंध करता है?

2. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 दिव्यांगों को रोजगार अवसर प्रदान करने में किस प्रकार की कानूनी सहायता करता हैं?
3. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 दिव्यांगों के समावेशन में किस प्रकार भूमिका निर्वहन करता है?
4. अधिनियम दिव्यांगों के समावेशन में बाधक तत्वों के समाधान के क्या उपाय करता है?

शोध विधि-

शोध की गुणात्मक प्रकृति होने के कारण विश्लेषणात्मक शोध विधि का उपयोग किया गया है क्योंकि शोध में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 की जांच दिव्यांगों को अवसरों की समानता प्रदान करने एवं समावेशन को बढ़ावा देने वाले प्रावधानों के संदर्भ में की गई हैं साथ ही अधिनियम द्वारा अपनाए गए उन उपायों की भी जांच की गई है जो दिव्यांगों के सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक समावेशन में बाधक हैं|

परिणामों की प्राप्ति-

अवसरों की समानता के संदर्भ में प्रावधान करता अधिनियम

दिव्यांगजन अधिकार (आर. पी. डब्ल्यू. डी.) अधिनियम, 2016 का मुख्य उद्देश्य दिव्यांग बच्चों के लिए समान शैक्षिक अवसर सुनिश्चित करना है। शैक्षिक समावेशन के संदर्भ में अधिनियम में प्रावधान किया गया हैं कि- दिव्यांगों को पढ़ाने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान स्थापना कर दिव्यांग छात्रों को शिक्षण करने वाले शिक्षकों की कमी को दूर करना है। अधिनियम दिव्यांग छात्रों को पढ़ाने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने पर बल देता है, शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करके कक्षाओं में दिव्यांगों को समर्थन का बंदोबस्त करता है, साथ ही अधिनियम समावेशी कक्षा पद्धति की वकालत करता है। व्यापक और समावेशी शिक्षा की उपलब्धता इस अधिनियम का उद्देश्य है, समावेशी शिक्षा के माध्यम से दिव्यांगों के लिए शिक्षा को अधिक सुलभ बनाना है। दिव्यांगों को शैक्षिक सहायता प्रदान करने वाले शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों को प्रशिक्षित करके दिव्यांगों के लिए एक स्वागत योग्य और सहायक वातावरण निर्माण का प्रबंध करता है। शैक्षणिक संस्थानों की सहायता के लिए संसाधन केंद्र बनाना इस अधिनियम का उद्देश्य स्कूल को संसाधन केंद्र के रूप में नामित करके दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के लिए संसाधनों की कमी को समाप्त करना है। 18 वर्ष की आयु तक के दिव्यांगों के लिए विकास और दिव्यांगों के अनुकूल प्रथाओं, मुफ्त पुस्तकों, सीखने की सामग्री और सहायता संसाधनों को बढ़ावा देने और दिव्यांग बच्चों की शैक्षिक भागीदारी को अधिकतम करने के लिए पुस्तकों और सहायता संसाधनों की उपलब्धता के माध्यम से अधिनियम सहायक उपाय करता है। अधिनियम दिव्यांगों के लिए सुलभ सांस्कृतिक और कलात्मक कार्यक्रमों का निर्माण और अठारह वर्ष की आयु तक स्थानीय विशेष विद्यालयों में दिव्यांगों का निःशुल्क नामांकन करने पर बल देता है। उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए पांच साल की ऊपरी आयु सीमा में छूट प्रदान करने और विश्वविद्यालयों में दिव्यांगों के लिए अध्ययन केंद्र स्थापित किए जाने जैसे उपबंध करता हैं। इसके अलावा, उच्च शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रमों में 5% सीटें दिव्यांगों के लिए आरक्षित करने का प्रावधान करता हैं। अधिनियम दिव्यांगों को पेशेवर सहायता प्रदान करने का प्रावधान करता हैं, जिसमें सभी प्रकार के पेशेवर और गैर-पेशेवर प्रशिक्षण में भागीदारी शामिल है। दिव्यांगों के लिए विशेष रोजगार कार्यालयों का निर्माण, दिव्यांगों के लिए कौशल और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विकास और उद्योग मानकों के अनुसार

प्रशिक्षण की आपूर्ति की व्यवस्था किया जाना सुनिश्चित करता है (नंदा एवं अन्य, 2019.)। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक नौकरियों में ऐसी भूमिकाएँ प्रदान किया जाना जो दिव्यांगों के लिए सुलभ हों, और सार्वजनिक नौकरियों में दिव्यांगों को उपलब्ध कार्यबल का 4% का आरक्षण प्रदान किया जाना।

समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में दिव्यांगजन अधिकार (आर. पी. डब्ल्यू. डी.) अधिनियम, 2016 की धारा 16 के अनुसार सभी शैक्षणिक संस्थानों के लिए जो सरकारी धन या मान्यता प्राप्त करते हैं, दिव्यांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य सुनिश्चित करेगे। इसमें बिना किसी भेदभाव के दिव्यांग बच्चों को स्कूलों में प्रवेश देना, शिक्षा के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना और साथियों के साथ मनोरंजक गतिविधियों में भाग लेना, दिव्यांगों के लिए स्कूल सुविधाएँ और परिसर सुलभ बनाना, व्यक्तिगत आवश्यकताओं के आधार पर आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना, शैक्षणिक और सामाजिक विकास को अधिकतम करने के लिए व्यक्तिगत सहायता प्रदान करना, दृष्टिबाधित या श्रवण बाधित व्यक्तियों के लिए उपयुक्त भाषाओं और संचार माध्यमों में शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराना, विशिष्ट सीखने की अक्षमताओं के लिए प्रारंभिक पहचान और हस्तक्षेप, दिव्यांग छात्रों की शैक्षिक प्रगति और पूर्णता की निगरानी करने और दिव्यांगों और उनके पालकों के लिए परिवहन सहायता प्रदान करना शामिल है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि अनुच्छेद 31 में उल्लिखित है, अधिनियम 6 से 18 वर्ष की आयु के दिव्यांग बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की गारंटी देता है, साथ ही सरकारी और सहायता प्राप्त संस्थानों में 5% आरक्षण भी प्रदान करता है। इन प्रावधानों का अंतिम लक्ष्य दिव्यांगों को समाज में एकीकृत करना तथा शैक्षिक, खेल और मनोरंजक गतिविधियों में उनकी पूर्ण भागीदारी को सुनिश्चित करना है।

अधिनियम वर्णित करता है कि सरकार द्वारा समर्थित सभी स्कूलों को दिव्यांग बच्चों को अन्य बच्चों के समान अवसर प्रदान करने चाहिए। इसका तात्पर्य है कि दिव्यांगों को स्कूल में शामिल होने, दूसरों के साथ खेलने और सभी सुविधाओं का उपयोग करने का अवसर प्राप्त हो। स्कूलों को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि दिव्यांग बच्चों को सीखने और बढ़ने के लिए आवश्यक अतिरिक्त सहायता प्राप्त हो। अधिनियम यह भी वर्णित करता है कि दिव्यांग बच्चों को 18 वर्ष आयु तक मुफ़्त शिक्षा प्राप्त हो और स्कूलों में प्रवेश हेतु आरक्षण प्राप्त हो। यह उन्हें समाज का हिस्सा बनने और बाकी सभी के समान अवसर प्राप्त करने में मदद करने के लिए आवश्यक उपाय है।

अधिनियम में समावेशन को बढ़ावा देने वाले कदम-

अधिनियम सार्वजनिक क्षेत्रों, रोजगार और शिक्षा सहित विभिन्न क्षेत्रों में भेदभाव को गैरकानूनी घोषित करता है और समावेश को प्रोत्साहित करके समाज में शामिल होने में दिव्यांगों की मदत करता है साथ ही दिव्यांगों की सहायता करने के लिए उपबंध भी करता है। अधिनियम में कई प्रावधान शामिल हैं, जैसे कि वित्तीय सहायता और समर्थन करना, दिव्यांगों के इतिहास का सम्मान करने वाले संग्रहालय का निर्माण करना तथा रोजगार और शिक्षा में दिव्यांगों के लिए आरक्षण का प्रबंध किया जाना। अधिनियम दिव्यांगों के साथ हिंसक और अमानवीय व्यवहार को रोकने के लिए कार्यक्रम भी स्थापित करता है और यह उपबंध करता है कि वे अपने अधिकारों का उपयोग आसानी से कर सके, जिससे उन्हें नुकसान से बचाया जा सके। इसके अलावा, अधिनियम सामाजिक सहायता और संसाधनों के प्रबंध की पेशकश करके दिव्यांगों के जीवन की गुणवत्ता, आर्थिक स्वतंत्रता और विकास को बढ़ाने का प्रयास करता है।

दिव्यांगों को संसाधन सहायता एवं समर्थन प्रदान करने के लिए अधिनियम प्रावधान करता है कि दिव्यांगों को शैक्षिक समर्थन के लिए शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित हो एवं अनुकल्पी शिक्षण पद्धतियों का संवर्द्धन करके शिक्षण किया जाए, पेशन, वेरोजगारी भत्ता, बीमा की व्यवस्था सुनिश्चित किया जाए। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी तक पहुँच के लिए उपयुक्त तकनीकों का प्रबंध एवं विकास, सार्वजनिक भवनों को दिव्यांगों के अनुकूल बनाना, खेलकुद गतिविधियों और अवसंरचना सुविधाओं का पुनः डिजाइन किया जाना, दिव्यांगों के लिए देखरेख केन्द्रों को बाधा रहित पहुँच बनाना तथा दिव्यांगों को समर्थन के लिए स्वास्थ्य केन्द्रों के कर्मचारियों को भी प्रशिक्षित किया जाना सम्मिलित करता हैं।

भारत में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 (आर. पी. डब्ल्यू. डी. अधिनियम) में विभिन्न समावेशी प्रावधान हैं, जो समावेशन, सामाजिक समावेशन एवं आर्थिक समावेशन के साथ-साथ राजनैतिक समावेशन का भी मार्ग प्रशस्त करता है जिसमें कुछ समावेशन को बढ़ावा देने वाले प्रावधान निम्नलिखित है-

- अधिनियम की धारा-2 दिव्यांगता के संदर्भ में शारीरिक भिन्नता के आधार पर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और संवेदी अक्षमताओं सहित अक्षमता की एक व्यापक परिभाषा प्रस्तुत करती है। अधिनियम दिव्यांगता के 20 प्रकारों (21 वी प्रकार की दिव्यांगता के लिए अधिनियम सरकार को किसी अन्य प्रकार की दिव्यांगता का चयन करने का अधिकार प्रदान करता हैं) का वर्णन करता है यह व्यापक परिभाषा विविध अक्षमताओं की समावेशिता और मान्यता सुनिश्चित करती है।

- अधिनियम की धारा-3 भेदभाव का निषेध के माध्यम से जीवन के सभी पहलुओं में रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और सार्वजनिक सेवाओं को विनियमित करती है, सभी व्यक्तियों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करने पर बल देती है, और दिव्यांगों के भागीदारी के लिए एक कानूनी आधार प्रदान करती है।

- अधिनियम की धारा 16 अभिगम्यता को सुनिश्चित करने के लिए बल देती है कि सार्वजनिक स्थान, परिवहन और प्रौद्योगिकी दिव्यांगों के लिए उपयोग में आसान होनी चाहिए। अधिनियम यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि दिव्यांगों के लिए बाधाओं को दूर करके और सेवाओं को सुलभ बनाकर सार्वजनिक जीवन में दिव्यांगों की भागीदारी सुनिश्चित हो सकें।

- अधिनियम की धारा 16 शिक्षा एवं कौशल के संदर्भ में वर्णित करती है कि दिव्यांग बच्चों को 18 वर्ष की आयु तक निःशुल्क स्कूल जाने का अधिकार है। इसका यह भी अर्थ है कि दिव्यांग बच्चों को अन्य बच्चों के साथ नियमित स्कूल जाने में सक्षम बनाया जाए, और स्कूलों को उन्हें बेहतर तरीके से सीखने में मदद करने के लिए बदलाव करे। अधिनियम यह सुनिश्चित करने में भी मदद करता है कि दिव्यांग बच्चे अपने पड़ोस के स्कूलों में जा सकें या अपनी पसंद का कोई स्कूल का चयन कर सकें।

- अधिनियम की धारा 19 रोजगार के संदर्भ में कहती है कि दिव्यांगों को नए कौशल सीखने और नौकरी पाने का मौका प्राप्त होना चाहिए। इसमें यह भी कहा गया है कि सार्वजनिक और निजी दोनों कंपनियों में हर 100 में से 4

नौकरियाँ दिव्यांगों के लिए आरक्षित होनी चाहिए। अधिनियम यह भी कहता है कि कार्य में पदोन्नति पाने के मामले में दिव्यांगों के साथ अनुचित व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए।

- अधिनियम की धारा 24-25 सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य के संदर्भ में प्रावधान करती हैं कि दिव्यांगों को दिव्यांगता पेंशन, बीमा योजनाएं और अन्य लाभ जैसे सामाजिक सुरक्षा उपाय प्रदान किया जाए। यह भी सुनिश्चित किया गया है कि दिव्यांगों को पुनर्वास और मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं सहित चिकित्सा सेवाओं तक पहुंच प्राप्त हो। अधिनियम विभिन्न सामाजिक सुरक्षा उपायों के लिए वित्तीय लाभ प्रदान करता है। यह दिव्यांगों के लिए वित्तीय सुरक्षा और सहायता सुनिश्चित करता है।

- अधिनियम की धारा 14 एवं 29 में भागीदारी और सशक्तिकरण हेतु दिव्यांगों के राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में भाग लेने के अधिकार को मान्यता देता है, जिसमें मतदान करने और चुनाव लड़ने का अधिकार भी शामिल है। यह अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए दिव्यांगता आयोगों और समितियों की स्थापना का भी प्रावधान करता है।

- रोजगार और कौशल विकास के संदर्भ में अधिनियम की धारा 3 (3) अपेक्षा करती है कि कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रम दिव्यांगों को समान अवसर प्रदान करें। अधिनियम की धारा 21 अनिवार्य करता है कि संबंधित सरकार दिव्यांगों के लिए कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का समर्थन और प्रोत्साहन करेगी। अधिनियम की धारा 22 दिव्यांगों की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए कौशल विकास कार्यक्रमों और केंद्रों के निर्माण की अपेक्षा करता है। अधिनियम की धारा 23 अनिवार्य करती है कि संबंधित सरकार दिव्यांगों को वित्तीय सहायता प्रदान करे ताकि वे कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में नामांकन कर सकें। अधिनियम की धारा 24 यह प्रावधान करती है कि कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नामांकित दिव्यांगों को उचित आवास और सहायता प्राप्त हो।

- अधिनियम की धारा 24 वित्तीय सहायता और प्रोत्साहन हेतु उपबंध करती है कि सरकार को दिव्यांगों को वित्तीय सहायता और उपकरण प्रदान करने का अधिकार है। इसमें दिव्यांगों के रोजगार और स्व-रोजगार को प्रोत्साहित करने के लिए कर रियायतों, ऋणों और अन्य प्रोत्साहनों के प्रावधान भी शामिल हैं।

- अधिनियम की धारा 24 दिव्यांगों, विशेष रूप से ग्रामीण और अलग-थलग क्षेत्रों में रहने वाले लोगों द्वारा अनुभव की जाने वाली आर्थिक कठिनाइयों से निपटने के महत्व को स्वीकार करती है। इसमें सरकार से दिव्यांगों की आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ाने के उद्देश्य से रणनीतियों को लागू करने की अपेक्षा की जाती है, जैसे गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को लागू करना और ग्रामीण विकास प्रयासों को बढ़ावा देना।

- अधिनियम की धारा 19 दिव्यांगों के बीच उद्यमिता, स्व-रोजगार और छोटे व्यवसायों को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह दिव्यांगों को अपना व्यवसाय शुरू करने और प्रबंधन करने में सक्षम बनाने के लिए वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और अन्य सहायक उपाय का प्रावधान करती है।

- अधिनियम की धारा 17 दिव्यांगों के लिए पुनर्वास और आजीविका विकास के महत्व पर जोर देती है। सरकार को व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार सहायता सहित व्यापक पुनर्वास सेवाएं प्रदान करने का आदेश देता है, ताकि दिव्यांग व्यक्ति आर्थिक रूप से उत्पादक जीवन जी सकें।

- अधिनियम की धारा- 30 दिव्यांगों के सांस्कृतिक, मनोरंजक, अवकाश और खेल गतिविधियों में भाग लेने के अधिकार को मान्यता प्रदान करती है। यह सरकार को इन सामाजिक क्षेत्रों में दिव्यांगों की पहुंच और समावेश सुनिश्चित करने के लिए उपाय करने का आदेश देती है।

- अधिनियम की धारा 19 दिव्यांगों के लिए सामुदायिक भागीदारी और सामाजिक एकीकरण के मूल्य पर प्रकाश डालती है। यह सरकार से सहायता सेवाओं और व्यक्तिगत सहायता प्रदान करने जैसी कार्रवाई करने का आह्वान करता है, ताकि दिव्यांग समाज में पूरी तरह से और प्रभावी ढंग से भाग ले सकें। सामुदायिक जीवन और सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देने के लिए, दिव्यांगों को कौशल विकास, रोजगार और सामुदायिक कार्यक्रमों में भागीदारी के अवसर प्रदान करना महत्वपूर्ण है।

- अधिनियम की धारा 39 में वर्णित किया गया है, सरकार दिव्यांगों के अधिकारों और समावेशन के बारे में सार्वजनिक जागरूकता और शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार है। अधिनियम का उद्देश्य एक अधिक समावेशी समाज का निर्माण करना और दिव्यांगों के प्रति नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण का मुकाबला करना है। सरकार जागरूकता बढ़ाने और दिव्यांगता से जुड़े पूर्वाग्रहों को मिटाने के लिए अभियान चलाने की योजना बनाएगी। इसका लक्ष्य दिव्यांगों के बारे में सकारात्मक धारणा और समझ को बढ़ावा देना है, साथ ही जीवन के सभी क्षेत्रों में पहुंच और समावेशन को बढ़ाना है। दिव्यांग संगठनों और विशेषज्ञों के साथ सहयोगात्मक कार्यक्रम विकसित किए जाएंगे ताकि एक ऐसा समाज बनाया जा सके जो दिव्यांगों को समुदाय के समान सदस्यों के रूप में महत्व देता हो और उनका सम्मान करता हो, समावेशिता और स्वीकृति की संस्कृति को बढ़ावा देता हो।

- अधिनियम की धारा 12 एवं 14 दिव्यांगों के राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में भाग लेने के अधिकार को मान्यता प्रदान करती है, जिसमें मतदान करने और चुनाव लड़ने का अधिकार भी शामिल है। अधिनियम यह आदेश देता है कि राजनीतिक भागीदारी से संबंधित सार्वजनिक स्थानों और सेवाओं को दिव्यांगों के लिए सुलभ बनाया जाए। अधिनियम दिव्यांगों के लिए राजनीति में समान पहुंच को बढ़ावा देता है, जिसमें राजनीतिक भागीदारी, मतदान और सार्वजनिक पद के लिए खड़े होने के समान अवसर शामिल हैं। अधिनियम राजनीतिक गतिविधियों में दिव्यांगों के खिलाफ भेदभाव को प्रतिबंधित करता है, जिसमें उनकी दिव्यांगता के आधार पर भेदभाव भी शामिल है। अधिनियम के लिए आवश्यक है कि मतदान और सार्वजनिक पद के लिए खड़े होने सहित राजनीतिक गतिविधियों में दिव्यांगों की भागीदारी को सुविधाजनक बनाने के लिए उचित आवासन की सुविधा उपलब्ध किया जाए। अधिनियम यह आदेशित करता है कि चुनाव प्रक्रिया को दिव्यांगों के लिए समावेशी बनाया जाए, जिसमें सुलभ मतदान केंद्र, ब्रेल मतपत्र और ऑडियो मतदान की सुविधाएं शामिल हैं। अधिनियम राजनीति में दिव्यांगों के प्रतिनिधित्व को प्रोत्साहित करता है, जिसमें निर्णय लेने

की स्थिति भी शामिल है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनकी आवाज सुनी जाए और उनकी जरूरतों को पूरा किया जाए।

निष्कर्ष

आर. पी. डब्ल्यू. डी. अधिनियम, 2016 का उद्देश्य दिव्यांगों के लिए बुनियादी अधिकारों और सुविधाओं को उच्च स्तर तक बढ़ाकर उन्हें अधिक वित्तीय सहायता प्रदान करना है, जिससे वे बेहतर जीवन जीने में सक्षम हो सकें। अधिनियम में एक ऐसी प्रणाली के निर्माण का भी प्रावधान है जहां दिव्यांग बेहतर जीवन जी सकें, जिससे दिव्यांगता का बोझ कम हो सके और यह सुनिश्चित हो सके कि दिव्यांग आवश्यक शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा प्राप्त कर सकें। इस अधिनियम में एक ऐसी प्रणाली के निर्माण का भी प्रावधान है जहां दिव्यांग आवश्यक स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसके अलावा, आर. पी. डब्ल्यू. डी. अधिनियम दिव्यांगों के लिए राजनीतिक भागीदारी के महत्व को पहचानता है। यह निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में दिव्यांगों की सक्रिय भागीदारी को भी प्रोत्साहित करता है साथ ही विभिन्न राजनीतिक निकायों में दिव्यांगों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने पर बल देती है। अधिनियम न केवल दिव्यांगों को सशक्त बनाने पर बल देता है अपितु दिव्यांगों के दृष्टिकोण और अनुभवों को नीतिगत चर्चाओं में सबसे आगे लाने की चेष्टा भी करता है। राजनीतिक क्षेत्र में समावेश को बढ़ावा देकर अधिनियम लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करता है और एक ऐसे समाज को बढ़ावा देता है जो अपने सभी नागरिकों को समान महत्व प्रदान करता है।

अधिनियम दिव्यांगों द्वारा सामना किए जाने वाले सामाजिक पूर्वाग्रहों और भेदभाव के मुद्दे से भी निपटता है। यह रूढ़ियों को चुनौती देने और विविधता को अपनाने वाले अधिक समावेशी समाज का निर्माण करने के लिए जागरूकता बढ़ाने और जनता को संवेदित करने के महत्व पर प्रकाश डालता है। अधिनियम दिव्यांगों को जीवन के सभी पहलुओं में पूरी तरह से भाग लेने के लिए सहायक सेवाओं और सहायक उपकरण प्रदान करने की आवश्यकता पर भी जोर देता है। इन उपायों को शामिल करके अधिनियम एक ऐसे समाज को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाता है जो दिव्यांगों की अक्षमताओं की परवाह किए बिना हर व्यक्ति के अधिकारों और सम्मान को महत्व देता है और समर्थन करता है। इसके अतिरिक्त, अधिनियम दिव्यांगों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के महत्व को रेखांकित करता है, गुणवत्तापूर्ण देखभाल तक समान पहुँच सुनिश्चित करने के लिए सुलभ और किफ़ायती स्वास्थ्य सेवा विकल्पों की वकालत करता है। इस महत्वपूर्ण पहलू को संबोधित करके, अधिनियम का उद्देश्य दिव्यांगों के लिए समग्र कल्याण और जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाना है, अंततः एक अधिक समावेशी और निष्पक्ष समाज का मार्ग प्रशस्त करना है जो अपने सभी सदस्यों के अधिकारों और आवश्यकताओं को प्राथमिकता देता है। अधिनियम के अनुसार सरकार को ऐसी पहलों को लागू करना होगा जो दिव्यांगों के अधिकारों और एकीकरण के बारे में जनता को संवेदी और जागरूक करें। इसका उद्देश्य सामाजिक पूर्वाग्रह को कम करना और अधिक समावेशी और स्वागत करने वाला सामाजिक माहौल बनाना है। सरकार दिव्यांगता के बारे में गलत धारणाओं और पूर्वाग्रहों को दूर करने, दिव्यांगों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने और समाज के सभी पहलुओं में उनके समावेश और पहुंच की वकालत करने के लिए अभियान चलाने के लिए जिम्मेदार है। ताकि दिव्यांगों को समाज के समान सदस्य के रूप में स्वीकार करने और सम्मान की संस्कृति विकसित की जा सके।

अंत में, दिव्यांगजन अधिकार (आर. पी. डब्ल्यू. डी.) अधिनियम 2016 एक ऐतिहासिक कानून है जो दिव्यांगों के व्यापक सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक समावेश को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करता है। समावेशिता को बढ़ावा देने वाले विभिन्न प्रावधानों को लागू करके एक ऐसा समाज बनाना चाहता है जो विविधता को अपनाता है| साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को सक्रिय रूप से भाग लेने और समाज के अंदर सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के बहुआयामी आयामों में योगदान करने के लिए सशक्त बनाता है। सुलभ बुनियादी ढांचे, समावेशी शिक्षा का बंदोबस्त, रोजगार के अवसरों की उपलब्धता, राजनीतिक भागीदारी बढ़ाना, जागरूकता, सहायता सेवाओं की उपलब्धता, स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच और समावेशी शिक्षा पर जोर देने के माध्यम से अधिनियम बाधाओं को दूर करने और एक अधिक न्यायसंगत और समावेशी समाज निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाता है जो प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों और गरिमा को महत्व प्रदान करता है और उनके विविधता का सम्मान करता है, चाहे उनकी क्षमताएं कुछ भी क्यों न हों।

संदर्भ सूची

1. डिसबिलिटी ऐक्ट | ऑफिस ऑफ चीफ कमिशनर फॉर पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस. (2016). http://www.ccdisabilities.nic.in/actsguideline/disability-acts
2. दुफ़्फ़ी, आर. एम., & केली, बी. डी. (2017). कान्कॉर्डन्स ऑफ द इंडियन मेंटल हेल्थकेयर ऐक्ट 2017 विथ द वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेसन चेक्लिस्ट ऑन मेंटल हेल्थ लेजिस्लेशन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मेंटल हेल्थ सिस्टम्स, 11(1). https://doi.org/10.1186/s13033-017-0155-1
3. फावली, एस. (2018). द यूनाइटेड नेशन्स कन्वेन्शन ओं द राइट ऑफ पर्सन्स विथ दिसाबिलिटीस इन द केस लॉ ऑफ द यूरोपियन कोर्ट ऑफ ह्यूमन राइट एण्ड इन द काउन्सल ऑफ यूरोप डिसबिलिटी स्ट्रैटिजी 2017-2023: फ्रॉम ज़ीरो टू हीरो. ह्यूमन राइट्स लॉ रिव्यू, 18(3), 517-538. https://doi.org/10.1093/hrlr/ngy026
4. नंदा, बी. सी. (2019). डिसबिलिटी एण्ड एमपोवर्मेंट: ए रीडिंग थ्रू द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस ऐक्ट, 2016. माइन्ड एण्ड सोसाइटी, 8(01-02), 18-25. https://doi.org/10.56011/mind-mri-81-2-20193
5. नारायण, सी. & जॉन, टी. (2017). द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस ऐक्ट, 2016: ड्ज इट अड्रेस द नीड्स ऑफ द पर्सन्स विथ मेंटल इलनेस्स एण्ड देअर फॅमिलीस. इंडियन जर्नल ऑफ सिकाइअट्री, 59(1), 17. https://doi.org/10.4103/psychiatry.indianjpsychiatry_75_17
6. द पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस (ईक्वल ऑपोरचयूनिटी, प्रोटेक्सन ऑन राइट्स एण्ड फूल पार्टीसीपेशन) ऐक्ट, 1995. (1996). इन द गज़ेट ऑफ इंडिया.
7. द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसबिलिटी ऐक्ट, 2016. (2016). इन द गज़ेट ऑफ इंडिया एक्स्ट्राऑर्डिनरी: वॉल्यूम पार्ट (इशू न. 59, पृष्ठ 2-3).

https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s3e58aea67b01fa747687f038dfde066f6/uploads/2023/10/20231016105395894 2.pdf

8. अल्का, ए. एस., सिवा, एस. टी., विवेक, कृपाकर, ए., देशपांडे, थॉमस, के., जॉन. (2022). डिसबिलिटी सर्टिफिकेशन इन सिकाइअट्री. इंडियन जर्नल ऑफ सिकाइअट्री,
   a. doi: 10.4103/indianjpsychiatry.indianjpsychiatry_717_21
9. प्रभु, जे., थनपाल, एस., अनुपम, जी. (2021). सोसिओडेमोग्राफीक एण्ड क्लीनिकल प्रोफाइल ऑफ पसेन्ट रिसीविंग डिसबिलिटी सर्टिफिकेशन एज पर राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस ऐक्ट 2016 फॉर साइकीऐट्रिक, नुरलाजिकल एण्ड नुरलाजिकल डिसॉर्डर्स एट् टर्शीएरी केयर सेंटर. doi: 10.1007/S40737-020-00196-3
10. रिचर्ड, एम., डुफ़्फ़ी, ब्रेंडन, डी., केली. (2020). इंडिया राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस ऐक्ट, 2016. doi: 10.1007/978-981-15-5009-6_5
11. टोडॉर, सटोजनवस्की. (2022). द लेबर पार्टीसीपेशन ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस इन इंडिया: जर्नी फ्रॉम द ओल्ड तो द न्यू ऐक्ट (1995-2016). doi: 10.4337/9781800888302.00010
12. रिचर्ड, एम., डुफ़्फ़ी, ब्रेंडन, डी., केली. (2020). इनकॉर्पोरेकशन ऑफ द यूनाइटेड नेशन्स कन्वेन्शन ओं द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस इनटु इंडियन लॉ थ्रू द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस ऐक्ट, 2016 एण्ड मेंटल हेल्थकेयर ऐक्ट, 2017. doi: 10.1007/978-981-15-5009-6_8
13. अभिलाश, बी., करिश्मा, के., सिडनी, एम., चन्नवीरचारी, एन. के., सुरेश, बी., प्रतिमा, एम. (2019). द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस ऐक्ट, 2016 एण्ड मेंटल हेल्थकेयर इमप्लेकेशन. इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलाजिकल मेडिसन, doi: 10.4103/IJPSYM.IJPSYM_364_18
14. चौधरी, एल. एन., थॉमस, के. जे. (2017). द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस ऐक्ट, 2016: डज इट एड्रैस द नीड्स ऑफ द पर्सन्स विथ मेंटल इलनेस एण्ड देअर फॅमिलीस. इंडियन जर्नल ऑफ सिकाइअट्री, doi: 10.4103/PSYCHIATRY.INDIANJPSYCHIATRY_75_17
15. पाठक, ए. & बिसवाल, आर. (2021). केयरगिवर पर्स्पेक्टिव इन द आरपीडब्लूडी ऐक्ट (2016) ऑफ इंडिया. 56. https://doi.org/10.1016/J.AJP.2020.102544
16. चौहान, यू. एस. के., गिरीश, एम. एम., बंग, ए., चौधरी, ए. & जैन, एस. (2021). केयरगिवर पर्स्पेक्टिव ऑफ बैरियर्स टु इम्प्लिमेन्टेशन ऑफ द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस (आरपीडब्लूडी) ऐक्ट, 2016 इन इंडिया. https://doi.org/10.1080/17450128.2021.1910760
17. लक्ष्मीकांत, एम. (2022). भारत की राजव्यवस्था (6 वा संस्करण) [हिन्दी]. मैकग्राव हिल एजुकेशन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड.
18. कन्वेन्शन ऑन द राइट्स ऑफ पर्सन्स विथ डिसाबिलिटीस एण्ड ऑप्शनल प्रोटोकॉल (2006). इन यूनाइटेड नेशन्स. https://www.un.org/disabilities/documents/convention/convoptprot-e.pdf

19. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016. (2016). भारत का राजपत्र, भाग 2, खंड 3. https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s3e58aea67b01fa747687f038dfde066f6/uploads/2023/10/2023101610539589 42.pdf

18

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ: एक अवलोकन

चाँद बी
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, गोकुल दास हिंदू गर्ल्स डिग्री कॉलेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)
प्रो० (डॉ०) मीनाक्षी शर्मा
विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान विभाग, गोकुल दास हिंदू गर्ल्स डिग्री कॉलेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)

भारत में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को लंबे समय से व्यवस्थित भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और बुनियादी मानवाधिकारों से वंचित रखा गया है। ऐतिहासिक रूप से, ट्रांसजेंडर व्यक्ति, जिन्हें आमतौर पर हिजड़ा, किन्नर, अरावनी और जोगप्पा के रूप में जाना जाता है, भारतीय समाज में एक सम्मानजनक स्थान रखते थे। विशेष रूप से मुगल काल के दौरान, वे सलाहकार, रक्षक और शाही दरबारों में देखभालकर्ता के रूप में कार्यरत थे। हालांकि, औपनिवेशिक काल में उनकी स्थिति नाटकीय रूप से बदल गई, जब क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट, 1871 ने हिजड़ों को 'अपराधी जाति' के रूप में वर्गीकृत किया, जिससे उन्हें कानूनी मान्यता और सामाजिक सम्मान से वंचित कर दिया गया।

1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद भी, ट्रांसजेंडर समुदाय को कानूनी अस्पष्टता और सामाजिक हाशिए पर डालने की समस्या का सामना करना पड़ा। हाल ही तक, उन्हें कोई औपचारिक कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं थी, जिससे वे शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँचने से वंचित थे। गहरे सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण, कई ट्रांसजेंडर व्यक्ति भीख मांगने, यौन कार्य करने या समारोहों में नृत्य करने के लिए मजबूर थे, क्योंकि उन्हें पारंपरिक रोजगार के अवसरों से बाहर रखा जाता था। इसके अलावा, भारत की कानूनी प्रणाली ने लिंग पहचान को केवल पुरुष और महिला की द्विआधारी श्रेणियों तक सीमित रखा, जिससे पासपोर्ट, राशन कार्ड और मतदाता पहचान पत्र जैसे आधिकारिक दस्तावेजों में उनका शामिल होना मुश्किल हो गया।

भारत में ट्रांसजेंडर अधिकारों के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ (2014) के ऐतिहासिक निर्णय के साथ आया। इस निर्णय में, भारत के न्यायालय ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को 'तीसरा लिंग' के रूप में मान्यता दी और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 19 और 21 के तहत उनके मौलिक अधिकारों की पुष्टि की। इस निर्णय ने राज्य और केंद्र सरकारों को निर्देश दिया कि वे शैक्षणिक संस्थानों और नौकरियों में आरक्षण, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और भेदभाव से सुरक्षा सुनिश्चित करें। हालांकि, इस निर्णय की

प्रगतिशील प्रकृति के बावजूद, इसका कार्यान्वयन धीमा रहा, और संरचित कानूनी ढांचे की कमी ने प्रवर्तन को बाधित किया।

इन कमियों को दूर करने के लिए, ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 को भारत की संसद द्वारा लागू किया गया, ताकि ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी मान्यता और उनके अधिकारों की रक्षा की गारंटी दी जा सके। यह अधिनियम राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण निर्णय में की गई प्रतिबद्धताओं को पूरा करने की दिशा में एक कदम था, लेकिन इसका कार्यान्वयन एक विवादास्पद मुद्दा बना हुआ है, जिससे कानूनी विशेषज्ञों, कार्यकर्ताओं और नीति निर्माताओं के बीच लगातार बहस चल रही है।

अधिनियम के उद्देश्य और महत्व

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 को भारत में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों को मान्यता देने और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से पेश किया गया था। इस अधिनियम का उद्देश्य रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और सार्वजनिक सेवाओं में भेदभाव को रोकना, साथ ही कानूनी मान्यता और सरकारी कल्याणकारी योजनाओं तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करना था। कानून और न्याय मंत्रालय, 2019, ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) के अनुसार, इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. **ट्रांसजेंडर पहचान की मान्यता-** यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी मान्यता प्रदान करता है और उन्हें आधिकारिक दस्तावेजों में अपनी पहचान ट्रांसजेंडर के रूप में दर्ज कराने का अधिकार देता है।
2. **भेदभाव का निषेध-** यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के खिलाफ रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और आवास सहित विभिन्न क्षेत्रों में भेदभाव को गैरकानूनी घोषित करता है।
3. **निवास का अधिकार और पारिवारिक समर्थन-** यह अधिनियम आवास, संपत्ति के उत्तराधिकार और पारिवारिक मान्यता के मामलों में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को समान अधिकार प्रदान करने को अनिवार्य बनाता है।
4. **शिक्षा और रोजगार तक पहुँच-** यह अधिनियम स्कूलों, विश्वविद्यालयों और कार्यस्थलों में समावेशी नीतियों को बढ़ावा देता है, जिससे ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को शिक्षा और रोजगार के समान अवसर मिलें।
5. **स्वास्थ्य सेवाओं का अधिकार-** यह अधिनियम सार्वजनिक और निजी स्वास्थ्य संस्थानों को ट्रांसजेंडर अनुकूल सेवाएँ प्रदान करने के लिए बाध्य करता है, जिसमें लिंग-पहचान उपचार (जैसे जेंडर-अफर्मेटिव थेरेपी) और मानसिक स्वास्थ्य सहायता शामिल है।
6. **हिंसा और शोषण से सुरक्षा-** यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के खिलाफ शारीरिक, यौन, मौखिक और मानसिक शोषण को अपराध घोषित करता है और इसे दंडनीय बनाता है।

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 को एक ऐतिहासिक कानून माना जा रहा था, लेकिन इसे कई कमियों और कमजोर क्रियान्वयन तंत्र के कारण कानूनी विशेषज्ञों और कार्यकर्ताओं द्वारा व्यापक आलोचना मिली है।

भारतीय संदर्भ में अधिनियम का महत्व

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019, अपनी कमियों के बावजूद, भारत में ट्रांसजेंडर अधिकारों की कानूनी मान्यता की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। यह पहला राष्ट्रीय स्तर का कानून है जो औपचारिक रूप से ट्रांसजेंडर पहचान को स्वीकार करता है और कई क्षेत्रों में भेदभाव को गैरकानूनी घोषित करता है। हालाँकि इसके क्रियान्वयन में कई चुनौतियाँ हैं, फिर भी एक कानूनी ढाँचे की मौजूदगी भविष्य में सुधार और न्यायिक सक्रियता के लिए आधार प्रदान करती है।

यह अधिनियम भारत की अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार प्रतिबद्धताओं को भी दर्शाता है, जैसे कि सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा (UDHR) और सतत विकास लक्ष्य (SDGs), जो लैंगिक समानता और गैर-भेदभाव पर जोर देते हैं। निरंतर कानूनी और सामाजिक प्रयासों के माध्यम से, कार्यकर्ता और नीति निर्माता इस अधिनियम के प्रावधानों को मजबूत करने और ट्रांसजेंडर समुदाय की आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करने के लिए संशोधनों को आगे बढ़ाने की उम्मीद करते हैं।

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 ने निःसंदेह भारत में ट्रांसजेंडर अधिकारों को कानूनी मुख्यधारा में लाने का काम किया है, लेकिन इसके क्रियान्वयन की चुनौतियाँ अभी भी एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय बनी हुई हैं। मजबूत प्रवर्तन तंत्र की कमी, प्रशासनिक बाधाएँ, और आरक्षण एवं कानूनी सुरक्षा के अपर्याप्त प्रावधान, इसकी प्रभावशीलता को सीमित कर रहे हैं।

जैसे-जैसे भारत आगे बढ़ रहा है, नीतियों में संशोधन, सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाने, और समुदाय की अधिक भागीदारी की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, ताकि ट्रांसजेंडर व्यक्ति अपने अधिकारों का सम्मान और समानता के साथ उपयोग कर सकें।

इस शोध पत्र के आगामी भागों में, इस अधिनियम के क्रियान्वयन में प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण किया जाएगा, जिसमें प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक और कानूनी बाधाओं की समीक्षा की जाएगी, साथ ही इस अधिनियम को अधिक प्रभावी और समावेशी बनाने के लिए नीति सुधारों का सुझाव दिया जाएगा।

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 की प्रगतिशील मंशा के बावजूद, इसके क्रियान्वयन में कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जो भारत में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के सशक्तिकरण और सामाजिक समावेशन में बाधा डालती हैं। ये चुनौतियाँ मुख्य रूप से प्रशासनिक अक्षमताओं, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध, कानूनी अस्पष्टताओं, आर्थिक कठिनाइयों, स्वास्थ्य सेवाओं की अपर्याप्तता, और शिक्षा नीतियों में कमियों से उत्पन्न होती हैं। यह अनुभाग इन बाधाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है और विभिन्न शोध, सरकारी रिपोर्टों, और वास्तविक जीवन के मामलों के माध्यम से इन्हें उजागर करता है।

1. नौकरशाही और प्रशासनिक बाधाएँ

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 के क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधाओं में से एक नौकरशाही की अक्षमता और प्रशासनिक अड़चनें हैं। यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को 'पहचान प्रमाण-पत्र' प्राप्त करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के पास आवेदन करने की आवश्यकता को अनिवार्य बनाता है, जो उनकी लिंग पहचान को औपचारिक रूप से मान्यता प्रदान करता है। हालाँकि, यह प्रक्रिया अस्पष्ट, जटिल और अत्यधिक हस्तक्षेपकारी बनी हुई है।

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ (2014) के ऐतिहासिक निर्णय में स्व-निर्धारित लिंग पहचान के अधिकार को बिना चिकित्सा परीक्षण के मान्यता दी गई थी, लेकिन 2019 का अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी मान्यता के लिए सरकारी स्वीकृति लेने पर मजबूर करता है। यह अनावश्यक नौकरशाही बाधाएँ उत्पन्न करता है, जिससे ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को अपनी पहचान प्रमाणित करवाने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इसके अलावा, सरकारी प्रक्रियाओं की धीमी गति भी एक बड़ी समस्या है। कई ट्रांसजेंडर आवेदकों को अपनी पहचान प्रमाणपत्र प्राप्त करने में महीनों या वर्षों का समय लग जाता है। सरकारी अधिकारियों के लिए स्पष्ट दिशानिर्देशों की कमी के कारण, अलग-अलग राज्यों में इस अधिनियम के क्रियान्वयन में असंगति देखने को मिलती है।

इसके अतिरिक्त, पहचान प्रमाण पत्र प्राप्त करने की प्रक्रिया के दौरान कई ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को अपमानजनक टिप्पणियों और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, जिससे वे कानूनी मान्यता के लिए आवेदन करने से बचते हैं। नीति और क्रियान्वयन के बीच यह विसंगति एक बहिष्करणकारी ढाँचा बनाती है, जिससे हजारों ट्रांसजेंडर व्यक्ति कानूनी मान्यता और सरकारी कल्याणकारी योजनाओं तक पहुँच से वंचित हो जाते हैं।

2. सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध

कानूनी सुधारों में प्रगति हुई है, लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध अभी भी ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए एक गंभीर चुनौती बनी हुई है। कार्यस्थलों, स्कूलों, स्वास्थ्य सेवाओं और सार्वजनिक स्थानों में अब भी ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को भेदभाव, बहिष्कार और दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है।

रोजगार क्षेत्र में, कई नियोक्ता ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को काम पर रखने से हिचकते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि उनके ग्राहक या अन्य कर्मचारी ट्रांसजेंडर सहकर्मियों को स्वीकार नहीं करेंगे। सरकारी नौकरियों में आवेदन प्रक्रिया भी ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए अनुकूल नहीं है, जबकि राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण निर्णय (2014) ने सरकार को आरक्षण देने का निर्देश दिया था।

शिक्षा प्रणाली में, स्कूल और कॉलेज ट्रांसजेंडर छात्रों के लिए असुरक्षित स्थान बने हुए हैं। ट्रांसजेंडर छात्रों को अक्सर बुलींग, उत्पीड़न और संस्थागत समर्थन की कमी का सामना करना पड़ता है।

स्वास्थ्य सेवाओं में, ट्रांसजेंडर व्यक्ति स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं द्वारा भेदभाव का शिकार होते हैं। कई डॉक्टर और चिकित्सा कर्मचारी ट्रांसजेंडर स्वास्थ्य मुद्दों को संभालने के लिए प्रशिक्षित नहीं होते, जिससे ट्रांसजेंडर व्यक्ति सटीक चिकित्सा देखभाल से वंचित रह जाते हैं। लिंग पहचान से जुड़े सामाजिक कलंक के कारण कई ट्रांसजेंडर व्यक्ति स्वास्थ्य सेवाओं से बचते हैं, जिससे उनकी शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ बिगड़ती हैं।

इसके अलावा, भारतीय समाज में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को 'अप्राकृतिक' या 'अस्वीकार्य' मानने की गहरी जड़ें जमाए धारणाएँ उनकी सामाजिक स्वीकार्यता में बाधा उत्पन्न करती हैं। यह सांस्कृतिक बहिष्करण न केवल ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के सामाजिक समावेशन को प्रभावित करता है, बल्कि अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन को भी कमजोर करता है।

3. कानूनी और संस्थागत कमियाँ

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 के क्रियान्वयन में एक और बड़ी चुनौती इसकी कानूनी अस्पष्टता और संस्थागत खामियाँ हैं। इस अधिनियम का सबसे विवादास्पद प्रावधान 'स्व-पहचान' की अस्पष्ट परिभाषा है, जो राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण निर्णय (2014) के खिलाफ जाती है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले में यह कहा था कि ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को बिना किसी चिकित्सा प्रमाणपत्र के अपनी पहचान स्व-निर्धारित करने का अधिकार होना चाहिए। लेकिन 2019 का अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन करने की आवश्यकता को अनिवार्य बनाता है, जिससे कानूनी पहचान सरकारी अधिकारियों के हाथों में चली जाती है, न कि स्वयं व्यक्तियों के पास।

इसके अलावा, यह अधिनियम मजबूत प्रवर्तन तंत्र की कमी को भी दर्शाता है। जबकि यह अधिनियम भेदभाव रोकने की आवश्यकता को स्वीकार करता है, लेकिन यह रोजगार, शिक्षा, या सार्वजनिक सेवाओं में भेदभाव को अपराध घोषित नहीं करता।

अधिनियम में कोई निर्दिष्ट नियामक निकाय नहीं है, जो इसके प्रावधानों के कार्यान्वयन की निगरानी करे। इसके परिणामस्वरूप, इसका क्रियान्वयन असंगत रहता है और जवाबदेही की कमी बनी रहती है।

इसके अतिरिक्त, यह अधिनियम महत्वपूर्ण कानूनी मुद्दों जैसे कि विवाह, गोद लेना और संपत्ति के अधिकारों को संबोधित नहीं करता, जिससे ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की कानूनी सुरक्षा में महत्वपूर्ण कमियाँ रह जाती हैं। भेदभाव से संबंधित शिकायतों के समाधान के लिए कोई संस्थागत तंत्र नहीं होने के कारण, यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी संरक्षण प्रदान करने में विफल रहता है, जिससे वे हिंसा या सामाजिक बहिष्कार की स्थितियों में न्याय पाने के लिए किसी स्पष्ट कानूनी सहारा नहीं ले सकते।

4. रोजगार और आर्थिक बाधाएँ

भारत में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों का आर्थिक रूप से हाशिए पर रहना 2019 अधिनियम के क्रियान्वयन में सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। इस अधिनियम के प्रावधानों के बावजूद, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को अब भी नौकरी पाने और कार्यस्थलों में समावेश के मामले में भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

सरकारी नौकरियों में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए कोई विशेष आरक्षण नहीं है, और निजी क्षेत्र के नियोक्ता ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को नौकरी देने से हिचकते हैं। इसके पीछे सामाजिक पूर्वाग्रह और व्यावसायिक प्रतिष्ठा को नुकसान होने का डर एक प्रमुख कारण है।

इसके अलावा, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए न्यूनतम वित्तीय सहायता या उद्यमशीलता सहायता प्राप्त होती है।

अधिकांश बैंक और वित्तीय संस्थाएँ ट्रांसजेंडर-हितैषी नीतियाँ नहीं अपनाती हैं, जिससे उन्हें ऋण या निवेश प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में, ट्रांसजेंडर व्यक्ति शोषण, गरीबी और अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्रों पर निर्भर रहने के लिए मजबूर होते हैं, जैसे कि भीख माँगना या यौन कार्य।

5. स्वास्थ्य सेवाएँ और कल्याणकारी चुनौतियाँ

ट्रांसजेंडर अधिकारों के संदर्भ में लिंग-पहचान उपचार तक पहुँच एक अत्यधिक उपेक्षित क्षेत्र बना हुआ है।

भारत के अधिकांश सरकारी अस्पतालों में लिंग-पहचान उपचार उपलब्ध नहीं है, और निजी अस्पतालों की सेवाएँ अधिकांश ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए अत्यधिक महँगी होती हैं।

चिकित्सा पेशेवर ट्रांसजेंडर स्वास्थ्य से संबंधित उचित प्रशिक्षण प्राप्त नहीं करते, जिससे उन्हें गलत निदान, गलत उपचारया सेवाओं से सीधे इनकार का सामना करना पड़ता है।

इसके अलावा, कल्याणकारी योजनाओं तक पहुँच भी एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है। जबकि अधिनियम सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों तक समान पहुँच की गारंटी देता है, लेकिन सरकारी एजेंसियों में ट्रांसजेंडर-समावेशी नीतियों की कमी के कारण, उन्हें पेंशन, आवास, और वित्तीय सहायता जैसी योजनाओं से वंचित रहना पड़ता है।

6. शिक्षा और सामाजिक समावेशन से जुड़ी समस्याएँ

अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक समावेशी शिक्षा नीतियों को सुनिश्चित करना है।

अधिकांश स्कूल और विश्वविद्यालयों में ट्रांसजेंडर-हितैषी नीतियाँ नहीं हैं, जिससे ट्रांसजेंडर छात्रों को शैक्षिक संस्थानों में पनपने में कठिनाई होती है।

स्कूलों में उत्पीड़न और बदमाशी की घटनाएँ कई ट्रांसजेंडर बच्चों को पढ़ाई छोड़ने के लिए मजबूर कर देती हैं, जिससे उनका भविष्य सीमित हो जाता है।

शिक्षा क्षेत्र में ट्रांसजेंडर प्रतिनिधित्व की भारी कमी है, चाहे वह शिक्षकों की भर्ती हो या पाठ्यक्रम में ट्रांसजेंडर समावेशन।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच के अभाव में, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक बहिष्कार के दुष्चक्र का सामना करना पड़ता है।

1. कानूनी और कार्यान्वयन के अंतर को पाटना

कड़े प्रवर्तन तंत्र की आवश्यकता

अधिनियम को प्रभावी बनाने के लिए, सख्त प्रवर्तन तंत्र लागू करने की आवश्यकता है। वर्तमान में, यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के खिलाफ भेदभाव को रोकने के लिए कोई सख्त दंड प्रावधान लागू नहीं करता। सरकार को चाहिए कि ट्रांसजेंडर अधिकारों के उल्लंघन पर कठोर दंड लागू किए जाएँ।

- कानूनी विवादों के समाधान के लिए विशेष न्यायाधिकरण या फास्ट-ट्रैक कोर्ट की स्थापना की जाए।
- शिकायत निवारण तंत्र मजबूत किया जाए, जिससे भेदभाव के मामलों में न्याय मिलने की प्रक्रिया तेज हो।

सरकारी एजेंसियों की भूमिका

- सरकार की भूमिका केवल कानून बनाने तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि उसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सक्रिय रूप से काम करना चाहिए।
- राज्य सरकारों को ट्रांसजेंडर नीति कार्यान्वयन के लिए समर्पित विभाग बनाने चाहिए।
- स्थानीय स्तर पर ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए संपर्क अधिकारी नियुक्त किए जाएँ।
- ट्रांसजेंडर अधिकारों के क्रियान्वयन की निगरानी के लिए वार्षिक रिपोर्ट जारी की जाए।

2. जागरूकता और संवेदनशीलता में सुधार

सार्वजनिक जागरूकता अभियान

- ट्रांसजेंडर समुदाय के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदलने के लिए व्यापक जन-जागरूकता अभियान चलाने की आवश्यकता है।

- टीवी, रेडियो, और सोशल मीडिया पर ट्रांसजेंडर अधिकारों से जुड़े जागरूकता कार्यक्रमों का प्रचार किया जाए।
- स्कूलों और कॉलेजों में ट्रांसजेंडर समावेशन पर विशेष कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ।
- धार्मिक और सामाजिक नेताओं को ट्रांसजेंडर समावेशन के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकता

- सरकारी अधिकारियों, पुलिस, और स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं को ट्रांसजेंडर अधिकारों और संवेदनशील मुद्दों पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
- पुलिस और सरकारी कर्मचारियों के लिए संवेदनशीलता प्रशिक्षण अनिवार्य किया जाए।
- चिकित्सा पेशेवरों को ट्रांसजेंडर-हितैषी स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के लिए प्रशिक्षित किया जाए।
- कार्यस्थलों और शैक्षणिक संस्थानों में समावेशन बढ़ाने के लिए नियोक्ताओं और शिक्षकों को ट्रांसजेंडर विषयों पर जागरूक किया जाए।

3. आर्थिक और सामाजिक सुधार

ट्रांसजेंडर-विशेष रोजगार कोटा

- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए विशेष रोजगार अवसर सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।
- सरकारी नौकरियों में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए आरक्षण लागू किया जाए।
- निजी क्षेत्र को ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को नियोजित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- कार्यस्थलों पर ट्रांसजेंडर-अनुकूल नीतियाँ लागू की जाएँ।

वित्तीय सहायता और उद्यमशीलता कार्यक्रम

- बैंकों और वित्तीय संस्थानों को ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए विशेष ऋण योजनाएँ प्रदान करनी चाहिए।
- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए अनुदान दिए जाएँ।
- स्वरोजगार और स्टार्टअप्स को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किए जाएँ।

4. प्रमाणन प्रक्रिया में सुधार

स्व-पहचान की प्रक्रिया को सरल बनाना

- वर्तमान प्रणाली ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी रूप से पहचान प्राप्त करने के लिए जटिल प्रशासनिक प्रक्रियाओं से गुजरने के लिए मजबूर करती है।
- ट्रांसजेंडर पहचान प्रमाणपत्र के लिए अनावश्यक नौकरशाही प्रक्रियाओं को समाप्त किया जाए।
- स्व-पहचान को कानूनी मान्यता देने के लिए सरल और गैर-अपमानजनक प्रक्रियाएँ विकसित की जाएँ।

गोपनीयता और गरिमा सुनिश्चित करना

- पहचान प्रमाणपत्र जारी करने की प्रक्रिया को गोपनीय बनाया जाए।
- जिला अधिकारियों और संबंधित कर्मचारियों को ट्रांसजेंडर समुदाय के प्रति संवेदनशीलता सिखाने के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाए।

5. सामुदायिक भागीदारी को मजबूत करना

नीति निर्माण में ट्रांसजेंडर कार्यकर्ताओं की भागीदारी

- सरकारी नीतियों और विधायी प्रक्रियाओं में ट्रांसजेंडर समुदाय की भागीदारी बढ़ाई जाए।
- नीति निर्माण के दौरान ट्रांसजेंडर संगठनों और कार्यकर्ताओं को सक्रिय रूप से शामिल किया जाए।
- गैर-सरकारी संगठनों और सहायता नेटवर्क को मजबूत करना
- गैर-सरकारी संगठनों को ट्रांसजेंडर अधिकारों की रक्षा और सशक्तिकरण में शामिल किया जाए।
- स्थानीय सहायता समूहों और हेल्पलाइन सेवाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जाए।

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 को ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी पहचान, गैर-भेदभाव, और समान अवसर प्रदान करने के लिए एक ऐतिहासिक कानून के रूप में पेश किया गया था। इस अधिनियम का उद्देश्य ट्रांसजेंडर समुदाय द्वारा झेली गई ऐतिहासिक अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को समाप्त करना था, लेकिन इसका क्रियान्वयन गंभीर चुनौतियों से भरा रहा, जिससे यह अपने लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने में असफल रहा।

ट्रांसजेंडर पहचान प्रमाणपत्र प्राप्त करने की प्रक्रिया में प्रशासनिक बाधाएँ अब भी कानूनी मान्यता प्राप्त करने में प्रमुख बाधा बनी हुई हैं, जो राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण निर्णय (2014) द्वारा स्थापित 'स्व-पहचान' के सिद्धांत का उल्लंघन करती हैं। इसके अलावा, सख्त प्रवर्तन तंत्र और भेदभाव के लिए दंडात्मक प्रावधानों की कमी के कारण, यह अधिनियम रोजगार में बहिष्कार, शिक्षा में असमानता, और स्वास्थ्य सेवाओं में भेदभाव को रोकने में असफल रहा है। ट्रांसजेंडर व्यक्ति अब भी समाज में गहरी जमी हुई रूढ़ियों और सामाजिक बहिष्कार का सामना कर रहे हैं, जिससे उन्हें अपने कानूनी अधिकारों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने में कठिनाइयाँ होती हैं।

आर्थिक हाशिए पर रहना ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए एक गंभीर मुद्दा बना हुआ है, क्योंकि सरकारी और निजी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सीमित हैं। सरकारी स्तर पर रोजगार के लिए आरक्षण की कमी, अपर्याप्त वित्तीय सहायता,

और उद्यमशीलता के अवसरों तक सीमित पहुँच ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने से रोकती है। इसके परिणामस्वरूप, कई ट्रांसजेंडर व्यक्ति अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्रों पर निर्भर रहते हैं, जैसे कि भीख माँगना और यौन कार्य। इसी प्रकार, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच की कमी, लिंग-पहचान उपचार, मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ और प्रशिक्षित चिकित्सा पेशेवरों की अनुपलब्धता ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के स्वास्थ्य और कल्याण पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

शिक्षा क्षेत्र भी ट्रांसजेंडर छात्रों के लिए सुरक्षित और समावेशी वातावरण प्रदान करने में विफल रहा है। स्कूलों और कॉलेजों में ट्रांसजेंडर छात्रों को उत्पीड़न और भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिससे उच्च ड्रॉपआउट दर देखी जाती है। शिक्षा प्रणाली में समावेशी नीतियों और ट्रांसजेंडर प्रतिनिधित्व की कमी के कारण, यह समुदाय गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक बहिष्कार के दुष्चक्र में फँसा रहता है।

अधिनियम को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक नीतिगत संशोधन और सक्रिय उपाय

1. **मजबूत प्रवर्तन तंत्र-** रोजगार, शिक्षा और सार्वजनिक स्थानों में भेदभाव के लिए स्पष्ट दंड प्रावधान लागू किए जाएँ।
2. **प्रमाणन प्रक्रिया का सरलीकरण-** ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की स्व-पहचान का सम्मान सुनिश्चित किया जाए, जिससे वे बिना अनावश्यक नौकरशाही प्रक्रियाओं के कानूनी मान्यता प्राप्त कर सकें।
3. **आर्थिक सुधार-** सरकारी नौकरियों में ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए आरक्षण लागू किया जाए, वित्तीय सहायता और उद्यमशीलता कार्यक्रम उपलब्ध कराए जाएँ।
4. **स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार-** सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं में लिंग-पहचान उपचार को शामिल किया जाए और ट्रांसजेंडर-हितैषी चिकित्सा पेशेवरों को प्रशिक्षित किया जाए।
5. **समावेशी शिक्षा नीति-** स्कूलों और विश्वविद्यालयों में ट्रांसजेंडर छात्रों के लिए सुरक्षित शैक्षणिक वातावरण तैयार किया जाए, और पाठ्यक्रम में ट्रांसजेंडर समुदाय के मुद्दों को शामिल किया जाए।
6. **जागरूकता और संवेदनशीलता कार्यक्रम-** सरकारी अधिकारियों, पुलिस, स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं, शिक्षकों और आम जनता के लिए संवेदनशीलता प्रशिक्षण आयोजित किए जाएँ।
7. **ट्रांसजेंडर कार्यकर्ताओं, गैर-सरकारी संगठनों और सामुदायिक समूहों की भागीदारी-** नीति निर्माण और कार्यान्वयन में ट्रांसजेंडर समुदाय को सक्रिय रूप से शामिल किया जाए।

भारत में ट्रांसजेंडर अधिकारों का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि देश समानता को केवल कागज पर नहीं, बल्कि व्यवहार में भी सुनिश्चित करे। यदि सरकार, नागरिक समाज और निजी क्षेत्र मिलकर काम नहीं करते, तो ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 केवल एक प्रतीकात्मक कानून बनकर रह जाएगा, न कि एक परिवर्तनकारी नीति। यदि सरकार कानूनी कमियों को दूर करने, प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करने, और ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए संरचनात्मक सुधारों को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध होती है, तो भारत एक अधिक समावेशी समाज की ओर अग्रसर हो सकता है, जहाँ ट्रांसजेंडर व्यक्ति गरिमा, समानता और पूर्ण कानूनी सुरक्षा के साथ जी सकें।

संदर्भ सूची

1. नंदा, एस॰ 1999, नीदर मैन नॉर वुमन: द हिजड़ा ऑफ इंडिया, वाड्सवर्थ पब्लिशिंग, कैलिफोर्निया, पृ॰सं॰ 42
2. त्रिपाठी, एल॰ 2015, ए लाइफ इन ट्रांस एक्टिविज्म, ज़ुबान बुक्स, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 88
3. भारत सरकार, राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण निर्णय, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली, 2014
4. अधिनियम, 2019, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 1-20
5. शर्मा, आर॰ 2022, भारतीय कानूनी विमर्श में ट्रांसजेंडर समावेशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 202
6. मेनन, एन॰ 2020, अनरूली फिगर्स: क्वीयरनेस, सेक्स वर्क, और मान्यता की राजनीति, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 145
7. शर्मा, आर॰ 2021, ट्रांसजेंडर अधिकारों पर भारत में नीति परिप्रेक्ष्य, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 110
8. मुखर्जी, ए॰ 2021, दक्षिण एशिया में ट्रांस अधिकार और कानूनी ढाँचे, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 87
9. खन्ना, ए॰ 2020, क्वीयरिंग द लॉ: भारत में ट्रांसजेंडर अधिकार और कानूनी चुनौतियाँ, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई, पृ॰सं॰ 146
10. त्रिपाठी, एल॰ 2015, ए लाइफ इन ट्रांस एक्टिविज्म, ज़ुबान बुक्स, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 88
11. शर्मा, आर॰ 2022, भारतीय कानूनी विमर्श में ट्रांसजेंडर समावेशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 202
12. मुखर्जी, ए॰ 2021, दक्षिण एशिया में ट्रांस अधिकार और कानूनी ढाँचे, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 89
13. खन्ना, ए॰ 2020, क्वीयरिंग द लॉ: भारत में ट्रांसजेंडर अधिकार और कानूनी चुनौतियाँ, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई, पृ॰सं॰ 148
14. त्रिपाठी, एल॰ 2015, ए लाइफ इन ट्रांस एक्टिविज्म, ज़ुबान बुक्स, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 92
15. शर्मा, आर॰ 2021, भारतीय कानूनी विमर्श में ट्रांसजेंडर समावेशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ॰सं॰ 115

19

लैंगिक समानता व महिला आरक्षण अधिनियम प्रस्तुति

डॉ. तूलिका चक्रवर्ती

सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बंगबासी प्रात: महाविद्यालय, कोलकाता, पश्चिम बंगाल

संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण का विचार भारत में लंबे समय से विवादित रहा है, तथा विभिन्न कारणों से यह विचार राजनीतिक परिवेश में बार-बार उभरता रहता है।

महिलाओं के विशाल बहुमत के लिए, लिंग, वर्ग और जाति की बाधाएँ, पितृसत्ता के व्यापक प्रभाव से जटिल, उनकी समग्र राजनीतिक भागीदारी के लिए जटिल और परस्पर विरोधी चुनौतियाँ पेश करती हैं। महिलाओं के राजनीतिक आरक्षण और भागीदारी के किसी भी अध्ययन में इन कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

विश्व आर्थिक मंच द्वारा प्रकाशित 'ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2023' के अनुसार, "भारत, तुर्की और चीन जैसे देशों में 7% से भी कम महिला मंत्री हैं।" अधिक सकारात्मक पक्ष पर, रिपोर्ट इस तथ्य पर ध्यान देती है कि "भारत ने 25.3 प्रतिशत समानता दर्ज की है, जिसमें 15.1 प्रतिशत महिलाएँ सांसदों का प्रतिनिधित्व करती हैं - जो 2006 में पहली रिपोर्ट के बाद से देश के लिए सबसे अधिक है।" हालाँकि, यह अभी भी एक असंतोषजनक आँकड़ा है, खासकर तब जब महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी की बात आती है तो हमें अभी भी जाति, वर्ग और जनसांख्यिकीय अंतरों को ध्यान में रखना है, और इस मोर्चे पर बहुत काम किया जाना बाकी है। [xx]

2023 ईपीडब्ल्यू संपादकीय से एक और आंकड़े का हवाला देते हुए, लोकसभा में, "महिलाएं संसद सदस्यों (एमपी) का केवल 15% हिस्सा बनाती हैं। यह 1952 में पहली निर्वाचित लोकसभा से एक बड़ी वृद्धि है, जहां केवल 5% एमपी महिलाएं थीं, लेकिन फिर भी यह पर्याप्त प्रतिनिधित्व के आदर्श से बहुत दूर है। डेटा यह भी दर्शाता है कि 20 राज्य विधानसभाओं और केंद्र शासित प्रदेशों में 10% से भी कम विधायक महिलाएं हैं।" संपादकीय आगे बताता है कि इस तरह के डेटा केवल "एक तरफ सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की विरोधाभासी प्रक्रियाओं के सह-अस्तित्व और दूसरी तरफ महिलाओं के सामाजिक-राजनीतिक वंचितता" को प्रकट करते हैं। [xxi]

इसके अलावा, कुलीन महिला नेतृत्व की मौजूदगी और यहां तक कि लंबे समय तक बने रहना जरूरी नहीं है कि देश में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में पूर्ण सुधार हो या इसका संकेत मिले। ईपीडब्ल्यू को 2019 में लिखे पत्र में, प्रज्ञा रॉय ने कहा कि हमें महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण की आकांक्षा में अंतिम चरण के रूप में आरक्षण से सावधान रहना चाहिए। उनका तर्क है कि केवल विशेषाधिकार प्राप्त, उच्च जाति और शहरी-शिक्षित महिलाओं का एक उपसमूह ही अक्सर महिलाओं के लिए आरक्षित सीमित स्थानों तक पहुंच प्राप्त करता है। इसके अलावा, वह नोट करती हैं कि: "महिलाओं का सशक्तीकरण और उनके उत्पीड़न के अंतर्विरोधी रूप अक्सर सामान्य, प्रतीकात्मक राजनीतिक चर्चाओं में समा जाते हैं।"

विधेयक का संक्षिप्त इतिहास:

महिला आरक्षण विधेयक के अधिनियम बनने से पहले का इतिहास काफी लंबा और उथल-पुथल भरा रहा है। पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार, "संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक 1996, 1998, 1999 और 2008 में पेश किए गए थे। पहले तीन विधेयक अपनी-अपनी लोकसभा के भंग होने के साथ ही समाप्त हो गए। 2008 का विधेयक राज्यसभा में पेश किया गया और पारित हो गया, लेकिन 15वीं लोकसभा के भंग होने के साथ ही यह भी समाप्त हो गया। 1996 के विधेयक की संसद की संयुक्त समिति ने जांच की थी, जबकि 2008 के विधेयक की कार्मिक, लोक शिकायत, कानून और न्याय संबंधी स्थायी समिति ने जांच की थी।" पुनरुद्धार के कई प्रयासों के बावजूद, विधेयक को लगातार चुनौतियों का सामना करना पड़ा। महिलाओं के लिए 33% संसदीय सीटें आरक्षित करने के उद्देश्य से लाए गए इस विधेयक को अंतिम झटका 2014 में लगा, जब ओबीसी और एससी/एसटी श्रेणियों के लिए उप-आरक्षण के मुद्दे का समाधान न होने के कारण यह विधेयक निरस्त हो गया। [xxii]

"नारी शक्ति वंदन अधिनियम", 2023 विधेयक को लोकसभा और राज्यसभा दोनों में लगभग सर्वसम्मति से समर्थन मिला। इस विधेयक में लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और दिल्ली (निर्वाचित विधानसभा के साथ केंद्र शासित प्रदेश) में सभी सीटों में से एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने का प्रावधान है। हालांकि यह एक स्वागत योग्य कदम था, लेकिन, इसका वास्तविक कार्यान्वयन अनिश्चित भविष्य के लिए टाल दिया गया है, क्योंकि यह केवल एक दशक की जनगणना और सीटों के परिसीमन के पूरा होने के बाद ही होगा। इसमें आगे बताया गया है, "यह देखते हुए कि पिछले परिसीमन आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने में लगभग पाँच साल का समय लिया था, अधिकांश विशेषज्ञों का अनुमान है कि 2029 के लोकसभा चुनावों में भी महिलाओं के लिए कोटा लागू होने की संभावना नहीं है।" विधेयक के कार्यान्वयन को जनगणना और परिसीमन की दो दीर्घकालिक कवायदों के कार्यान्वयन से जोड़ना कई लोगों को समझ में नहीं आता है, और ऐसा लगता है कि सशक्तिकरण में अभी देरी हो रही है। [xxiii]

उदाहरण के लिए, अधिनियम के लगभग हर पहलू में निहित स्पष्ट राष्ट्रवादी स्वरों का उल्लेख नहीं करना; देश के राजनीतिक संदर्भ को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इसी तरह, इस्तेमाल की गई शब्दावली स्पष्ट रूप से बताती है कि इरादा "नारीशक्ति" को सामने लाना है, ऐसा करने की कार्ययोजना काफी अस्पष्ट है। इस अधिनियम के कार्यान्वयन के लक्ष्यों में से एक 2047 तक "विकसित भारत" को साकार करना है, हालांकि, भारत के भविष्य की कल्पना करने के लिए इस्तेमाल किए गए विशिष्ट शब्दों को और अधिक विश्लेषण की आवश्यकता है, खासकर ऐसे शब्दों के राजनीतिक अर्थों के संदर्भ में। इसके अलावा, इस अधिनियम को इस बहुत ही विशिष्ट समयरेखा में इतनी जल्दी क्यों पेश किया गया, जबकि इसे वर्षों से अलग रखा गया था? इसका उत्तर अभी भी देखा जाना बाकी है। [xxiv]

विधेयक की मुख्य विशेषताएं

महिलाओं के लिए आरक्षण विधेयक में लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभा में महिलाओं के लिए लगभग एक तिहाई सीटें आरक्षित की गई हैं। यह लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों पर भी लागू होगा।

आरक्षण की शुरुआत इस विधेयक के लागू होने के बाद की गई जनगणना के प्रकाशित होने के बाद आरक्षण

प्रभावी होगा। जनगणना के आधार पर महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए परिसीमन किया जाएगा। आरक्षण 15 साल की अवधि के लिए प्रदान किया जाएगा। हालाँकि, यह संसद द्वारा बनाए गए कानून द्वारा निर्धारित तिथि तक जारी रहेगा। [xxv]

सीटों का चक्रानुक्रम महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों का चक्रानुक्रम प्रत्येक परिसीमन के बाद होगा, जैसा कि संसद द्वारा बनाए गए कानून द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

संसद में महिलाओं की भागीदारी

सादिया हुसैन ने 2022 के विशेष लेख, 'संसद में महिलाओं का प्रदर्शन लोकसभा में महिला सदस्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का एक मात्रात्मक अध्ययन (1999-2019)' में महिलाओं को राजनीतिक जीवन से व्यवस्थित रूप से बाहर रखने के उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व और बदले में उनके राजनीतिक प्रदर्शन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया है। इस मामले पर मौजूद सीमित साहित्य को ध्यान में रखते हुए, हुसैन ने "सदन में बहस, विचार-विमर्श और सवालों में महिलाओं की भागीदारी" पर विचार-विमर्श किया। [xxvi]

सादिया हुसैन इस सरलीकृत धारणा का तीखा विरोध करती हैं कि जब महिलाएं भाग लेती भी हैं, तो उनकी भागीदारी अक्सर महिला एवं बाल विकास, खाद्य प्रसंस्करण, स्वास्थ्य और स्वच्छता जैसे "नरम मुद्दों" तक ही सीमित बताई जाती है। बल्कि, वास्तव में, एक विशाल डेटा भंडार (जिसमें पुरुष और महिला सांसदों द्वारा लगभग 4,00,000 प्रतिक्रियाएं शामिल हैं) का विश्लेषण करने के बाद वह दिखाती हैं कि "महिलाएं उन मुद्दों पर बोलने की अधिक संभावना रखती हैं जो सभी के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं, जिसमें गृह, विदेश मामले, रेलवे और बुनियादी ढांचे के बुनियादी मुद्दे शामिल हैं।" इस तरह, महिलाएं वास्तव में "उन मुद्दों पर बोलने की अधिक संभावना रखती हैं जो सभी के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं, जिसमें गृह, विदेश मामले, रेलवे और बुनियादी ढांचे के बुनियादी मुद्दे शामिल हैं।"

इसी तरह, 2012 में प्रकाशित लेख 'होल्डिंग अप हाफ द स्काई: रिजर्वेशन फॉर विमेन इन इंडिया' में रुडोल्फ सी. हेरेडिया ने महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के बारे में हमारी समझ को धुंधला करने वाली आम गलतफहमियों को तोड़ा है – "जब महिलाएं राष्ट्रीय नेतृत्व की भूमिका हासिल करती हैं तो अक्सर ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उन्हें अपने पिता या पति से यह जिम्मेदारी विरासत में मिली होती है, न कि वे अपने आप में एक व्यक्ति के रूप में होती हैं और फिर उन्हें एक कुलमाता, संयुक्त परिवार का हिस्सा, पितृसत्ता के लिए चुनौती के बजाय उसकी पूरक के रूप में पेश किया जाता है।" [xxvii]

'समानता बनाम सशक्तिकरण: भारतीय विधानमंडल में महिलाएँ', 2023 में सौम्या भौमिक कोटा से एक कदम आगे जाने और देश में महिलाओं की एजेंसी को आकार देने वाली जटिलताओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करने का मामला बनाती हैं। उनका तर्क है कि इसके लिए नीचे से ऊपर की ओर दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी, न कि केवल ऊपर से नीचे की ओर आरक्षण देने की। "भारत जैसे देश में जहाँ काफी बड़ी विषम जनसंख्या है, वहाँ विधायी शक्ति का प्रसार अल्पसंख्यक समूहों जैसे महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए अपर्याप्त होगा।" उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि "महिलाओं के लिए आरक्षण के विचार को लागू करने से वर्णनात्मक प्रतिनिधित्व आएगा, लेकिन इसका वास्तविक प्रतिनिधित्व में परिवर्तन लोगों के दृष्टिकोण में बदलाव पर निर्भर करेगा।" इसे पुष्ट करने के लिए, हाल ही में एक लेख में की गई टिप्पणी में विस्तार से बताया गया है कि कैसे

धार्मिक अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करने वाली भारतीय महिलाओं का लोकसभा में प्रतिनिधित्व कम है: "1951 से अब तक लगभग 7,500 सांसदों में से बमुश्किल 20 मुस्लिम महिलाएं लोकसभा में पहुंच पाई हैं। इसके अलावा, मई 2019 तक गठित 17 लोकसभाओं में से पांच बार संसद के निचले सदन में एक भी मुस्लिम महिला सदस्य नहीं थी।" [xxviii]

भारत में महिला आरक्षण की पृष्ठभूमि

राजनीति में महिलाओं के लिये आरक्षण का मुद्दा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के समय सामने आया। वर्ष **1931 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री को** लिखे पत्र में तीन महिला निकायों, नेताओं- बेगम शाह नवाज़ और सरोजिनी नायडू द्वारा नए संविधान में महिलाओं की स्थिति पर संयुक्त रूप से जारी आधिकारिक ज्ञापन प्रस्तुत किये गए थे।

महिलाओं के लिये राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना में वर्ष 1988 में सिफारिश की गई थी कि महिलाओं को पंचायत से लेकर संसद के स्तर तक आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिये।

इन सिफारिशों ने संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के ऐतिहासिक अधिनियमन का मार्ग प्रशस्त किया, जो सभी राज्य सरकारों को क्रमशः पंचायती राज संस्थानों एवं इसके प्रत्येक स्तर पर अध्यक्ष पदों तथा शहरी स्थानीय निकायों में महिलाओं हेतु एक-तिहाई सीटें आरक्षित करने का आदेश देती हैं। [xxix], [xxx] इन सीटों में एक-तिहाई सीटें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिये आरक्षित हैं। [xxxi], [xxxii]

महिला आरक्षण विधेयक पर चर्चा वर्ष 1996 से ही की जाती रही है। चूँकि तत्कालीन सरकार के पास बहुमत नहीं था, इसलिये विधेयक को मंज़ूरी नहीं मिल सकी।

महिलाओं के लिये सीटें आरक्षित करने हेतु किये गए प्रयास

- **1996:** पहला महिला आरक्षण विधेयक संसद में पेश किया गया।
- **1998-2003:** सरकार ने 4 अवसरों पर विधेयक पेश किया लेकिन पारित कराने में असफल रही।
- **2009:** विभिन्न विरोधों के बीच सरकार ने विधेयक पेश किया।
- **2010:** केंद्रीय मंत्रिमंडल और राज्यसभा द्वारा पारित।
- **2014:** विधेयक को लोकसभा में पेश किये जाने की उम्मीद थी।

- **राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति (National Policy for the Empowerment of Women), 2001** में कहा गया कि उच्च विधायी निकायों में भी आरक्षण पर विचार किया जाएगा।
- मई 2013 में **महिला एवं बाल विकास मंत्रालय** ने महिलाओं की स्थिति पर विचार करने के लिये एक समिति का गठन किया, जिसने स्थानीय निकायों, राज्य विधानसभाओं, संसद, मंत्रिमंडलीय स्तर और सरकार के सभी निर्णयकारी निकायों में महिलाओं के लिये कम से कम 50% सीटों का आरक्षण सुनिश्चित करने की अनुशंसा की।
- **वर्ष 2015 में 'भारत में महिलाओं की स्थिति पर रिपोर्ट' (Report on the Status of Women in India) में दर्ज** किया गया कि राज्य विधानसभाओं और संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व निराशाजनक बना हुआ है। इसने भी **स्थानीय निकायों, राज्य विधानसभाओं, संसद, मंत्रिमंडलीय**

स्तर और सरकार के सभी निर्णयकारी निकायों में महिलाओं के लिये कम-से-कम 50% सीटें आरक्षित करने की सिफारिश की।

17 वीं लोकसभा के कुल सदस्यों में से 15% महिलाएँ हैं जबकि राज्य विधानसभाओं में महिलाएँ औसतन कुल सदस्यों का 9% हैं। 2015 में, भारत में महिलाओं की स्थिति पर रिपोर्ट में कहा गया था कि राज्य विधानसभाओं और संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व निराशाजनक बना हुआ है। [xxxiii] इसने नोट किया कि राजनीतिक दलों में निर्णय लेने वाले पदों पर महिलाओं की उपस्थिति नगण्य है। इसने स्थानीय निकायों, राज्य विधानसभाओं, संसद, मंत्रिस्तरीय स्तरों और सरकार के सभी निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं के लिए कम से कम 50% सीटें आरक्षित करने की सिफारिश की। महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए राष्ट्रीय नीति (2001) में कहा गया था कि उच्च विधायी निकायों में आरक्षण पर विचार किया जाएगा। [xxxiv]

संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक 1996, 1998, 1999 और 2008 में पेश किए गए हैं। [xxxv] पहले तीन विधेयक अपने-अपने लोकसभा भंग होने के साथ ही समाप्त हो गए। 2008 का विधेयक राज्यसभा में पेश किया गया और पारित हुआ लेकिन 15 वीं लोकसभा के भंग होने के साथ ही यह भी समाप्त हो गया। 1996 के विधेयक की संसद की संयुक्त समिति ने जांच की थी, जबकि 2008 के विधेयक की कार्मिक, लोक शिकायत, कानून और न्याय संबंधी स्थायी समिति ने जांच की थी। दोनों समितियां महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के प्रस्ताव से सहमत थीं। समितियों द्वारा दी गई कुछ सिफारिशों में शामिल हैं: (i) अन्य पिछड़े वर्गों की महिलाओं के लिए उचित समय पर आरक्षण पर विचार करना, (ii) 15 वर्ष की अवधि के लिए आरक्षण प्रदान करना और उसके बाद इसकी समीक्षा करना, और (iii) राज्यसभा और राज्य विधान परिषदों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के तौर-तरीके तैयार करना। [xxxvi]

संविधान (एक सौ अट्ठाईसवां संशोधन) विधेयक, 2023 19 सितंबर, 2023 को लोकसभा में पेश किया गया। विधेयक में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में कुल सीटों में से एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने का प्रावधान है।

विचारणीय मुद्दे

विधानसभाओं में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण के मुद्दे की जांच तीन दृष्टिकोणों से की जा सकती है: (i) क्या महिलाओं के लिए आरक्षण की नीति उनके सशक्तीकरण के लिए एक प्रभावी साधन के रूप में काम कर सकती है, (ii) क्या विधानसभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के वैकल्पिक तरीके संभव हैं, और (iii) क्या विधेयक में आरक्षण के लिए प्रस्तावित तरीके में कोई समस्या है। इस खंड में विश्लेषण काफी हद तक 2008 के विधेयक पर प्रकाशित हमारे पहले के संक्षिप्त विवरण पर आधारित है। [xxxvii]

आरक्षण का मुख्य उद्देश्य

यदि किसी समूह का राजनीतिक व्यवस्था में आनुपातिक प्रतिनिधित्व नहीं है तो नीति-निर्माण को प्रभावित करने की उसकी क्षमता सीमित होती है। महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन में यह प्रावधान है कि राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को समाप्त किया जाना चाहिए। हालांकि भारत कन्वेंशन का एक हस्ताक्षरकर्ता है, निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के मामले में भेदभाव

जारी रहा है। महिला सांसदों की संख्या पहली लोकसभा में 3 % से बढ़कर 17 वीं लोकसभा में 15 % हो गई है; लेकिन यह संख्या अभी भी काफी कम है। पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रभाव के बारे में 2003 के एक अध्ययन से पता चला है कि आरक्षण नीति के तहत चुनी गई महिलाएं महिलाओं की चिंताओं से निकटता से जुड़े सार्वजनिक वस्तुओं में अधिक निवेश करती हैं । कार्मिक, लोक शिकायत, कानून और न्याय संबंधी स्थायी समिति (2009) ने कहा था अंतर-संसदीय संघ (2022) ने उल्लेख किया है कि विधायी कोटा महिलाओं के प्रतिनिधित्व में निर्णायक कारक रहा है। [xxxviii]

आरक्षण नीति के विरोधियों का तर्क है कि महिलाओं के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र न केवल उनके दृष्टिकोण को सीमित करेगा बल्कि असमान स्थिति को बनाए रखेगा क्योंकि उन्हें योग्यता के आधार पर प्रतिस्पर्धा नहीं करने वाला माना जाएगा। उदाहरण के लिए, संविधान सभा में, रेणुका रे ने महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के खिलाफ तर्क दिया: "जब महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण होता है, तो सामान्य सीटों के लिए उनके विचार का सवाल, चाहे वे कितनी भी सक्षम क्यों न हों, आमतौर पर नहीं उठता है। हमें लगता है कि अगर केवल योग्यता पर विचार किया जाए तो महिलाओं को अधिक मौके मिलेंगे।" 5 विरोधियों का यह भी तर्क है कि आरक्षण से महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण नहीं होगा क्योंकि चुनावी सुधारों के बड़े मुद्दे जैसे राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के उपाय, राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र और काले धन के प्रभाव को संबोधित नहीं किया गया है। [xxxix]

तालिका 1: महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर देशों का डेटा (सितंबर 2023 तक)

देश	निर्वाचित महिलाओं का %	संसद में कोटा	राजनीतिक दलों में कोटा
स्वीडन	46%	नहीं	हाँ
नॉर्वे	46%	नहीं	हाँ
दक्षिण अफ्रीका	45%	नहीं	हाँ
ऑस्ट्रेलिया	38%	नहीं	हाँ
फ्रांस	38%	नहीं	हाँ
जर्मनी	35%	नहीं	हाँ
यूके हाउस ऑफ कॉमन्स	35%	नहीं	हाँ
कनाडा	31%	नहीं	हाँ
अमेरिकी प्रतिनिधि सभा	29%	नहीं	नहीं
अमेरिकी सीनेट	25%	नहीं	नहीं
बांग्लादेश	21%	हाँ	नहीं
ब्राज़िल	18%	नहीं	हाँ
जापान	10%	नहीं	नहीं

स्रोत: अंतर-संसदीय संघ; पीआरएस। [xl]

महिला आरक्षण अधिनियम, 2023

प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश में एक तिहाई लोकसभा सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी, एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी, सीटों का क्रम संसद/विधानसभा के प्रत्येक आम चुनाव के बाद आरक्षित सीटों का चक्रण किया जाएगा प्रत्येक परिसीमन के बाद आरक्षित सीटों को घुमाया जाएगा।

इस विधेयक के लागू होने के बाद आयोजित जनगणना के प्रकाशन के बाद यह आरक्षण प्रभावी होगा। जनगणना के आधार पर महिलाओं के लिये सीटें आरक्षित करने हेतु परिसीमन किया जाएगा। आरक्षण 15 वर्ष की अवधि के लिये प्रदान किया जाएगा।

वर्तमान में 17वीं लोकसभा (2019-2024) के कुल सदस्यों में से लगभग 15% महिलाएँ हैं, जबकि राज्य विधानसभाओं में कुल सदस्यों में औसतन 9% महिलाएँ हैं। [xli]

महिला आरक्षण अधिनियम की प्रासंगिकता

आवश्यकता: लोकसभा में 82 महिला सांसद (कुल 15.2%) और राज्यसभा में 31 महिलाएँ (कुल 13%) हैं। जबकि पहली लोकसभा (5%) के बाद से यह संख्या काफी बढ़ी है लेकिन कई देशों की तुलना में अभी भी काफी कम है।

हाल के संयुक्त राष्ट्र महिला आँकड़ों के अनुसार, रवांडा (61%), क्यूबा (53%), निकारागुआ (52%) संसद में महिला प्रतिनिधित्व वाले शीर्ष तीन देश हैं। महिला प्रतिनिधित्व के मामले में बांग्लादेश (21%) और पाकिस्तान (20%) भी भारत से आगे हैं।

लैंगिक समानता: राजनीति में महिलाओं का उपयुक्त प्रतिनिधित्व लैंगिक समानता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा। ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट, **2022** के अनुसार, भारत राजनीतिक सशक्तीकरण के मामले में 146 देशों की सूची में 48वें स्थान पर था।

इस रैंक के बावजूद उसका स्कोर 0.267 के अत्यंत निम्न स्तर पर था। इस श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ रैंकिंग वाले कुछ देशों का स्कोर इससे बहुत बेहतर है। उदाहरण के लिये, आइसलैंड 0.874 के स्कोर के साथ पहले स्थान पर रहा, जबकि बांग्लादेश 0.546 के स्कोर के साथ 9वें स्थान पर था।

ऐतिहासिक रूप से कम प्रतिनिधित्व: लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या पहली लोकसभा में 5% से बढ़कर 17वीं लोकसभा में 15% हो गई; लेकिन यह संख्या अभी भी बहुत कम है।

पंचायतों में महिलाओं के लिये आरक्षण के प्रभाव के बारे में वर्ष 2003 के एक अध्ययन से पता चला कि आरक्षण नीति के तहत निर्वाचित महिलाओं ने स्त्रियों से संबद्ध सार्वजनिक हित या **'पब्लिक गुड्स'** में अधिक निवेश किया। कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी स्थायी समिति (2009) ने पाया कि स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिये सीटों के आरक्षण ने उन्हें सार्थक योगदान देने में सक्षम बनाया।

महिलाओं का स्व-प्रतिनिधित्व और स्व-निर्णय का अधिकार: यदि किसी समूह को राजनीतिक व्यवस्था में आनुपातिक रूप से प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होता है तो नीति-निर्माण को प्रभावित करने की उसकी क्षमता सीमित हो जाती है। **महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन पर कन्वेंशन (Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women)** निर्दिष्ट करता है कि राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के साथ हो रहे भेदभाव को समाप्त किया जाना चाहिये।

विभिन्न सर्वेक्षणों से पता चलता है कि पंचायती राज की महिला प्रतिनिधियों ने गाँवों में समाज के विकास एवं समग्र कल्याण की दिशा में सराहनीय कार्य किया है और उनमें से कई निश्चित रूप से वृहत स्तर पर कार्य करने की इच्छा रखती हैं, लेकिन प्रचलित राजनीतिक संरचना में उन्हें विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

विविध परिप्रेक्ष्य: एक अधिक विविधतापूर्ण विधानमंडल, जिसमें महिलाएँ उल्लेखनीय संख्या में शामिल हों, निर्णय लेने की प्रक्रिया में व्यापक दृष्टिकोण का प्रवेश करा सकता है। यह विविधता बेहतर नीति निर्माण और शासन की ओर ले जा सकती है।

महिला सशक्तीकरण: राजनीति में महिला आरक्षण विभिन्न स्तरों पर महिलाओं को सशक्त बनाता है। यह न केवल अधिकाधिक महिलाओं को राजनीति में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करता है बल्कि महिलाओं को अन्य क्षेत्रों में भी नेतृत्व की भूमिका निभाने के लिये प्रेरित करता है।

महिला संबंधी मुद्दों को बढ़ावा: राजनीति में सक्रिय महिलाएँ प्रायः उन मुद्दों को प्राथमिकता देती हैं और उनकी वकालत करती हैं जो महिलाओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, जैसे लिंग-आधारित हिंसा, महिलाओं का स्वास्थ्य, शिक्षा एवं आर्थिक सशक्तीकरण उनकी उपस्थिति से नीतिगत विमर्शों में इन मुद्दों को प्राथमिकता प्राप्त हो सकती है।

'रोल मॉडल': राजनीति में सक्रिय महिला नेत्रियाँ बालिकाओं के लिये 'रोल मॉडल' के रूप में कार्य कर सकती हैं, जिससे उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व की भूमिका की आकांक्षा रखने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है। राजनीति में प्रतिनिधित्व रूढ़िवादिता को समाप्त कर सकता है और भावी पीढ़ियों को प्रेरित कर सकता है।

वर्ष 1966 से 1977 तक भारत की पहली एवं एकमात्र महिला प्रधानमंत्री के रूप में कार्यरत रहीं इंदिरा गांधी और भारत की दूसरी महिला विदेश मंत्री (इंदिरा गांधी के बाद) रहीं सुषमा स्वराज ने देश की बालिकाओं के लिये ऐसे ही 'रोल मॉडल' प्रस्तुत किये। [xlii]

भारत में महिलाओं के लिए आरक्षण की विधायी शुरूआत एक उत्साहजनक शुरुआत लगती है, लेकिन भारत जैसे जटिल, विषम और बहुस्तरीय देश के लिए, इसके साथ ही समाज के सभी स्तरों पर अपने राजनीतिक विकल्पों का प्रयोग करने, अपनी एजेंसी का उपयोग करने और देश की मुख्य निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भाग लेने की उनकी बेहतर क्षमता भी होनी चाहिए। बेशक, समान भागीदारी का यह कारण केवल महिलाओं की जीत नहीं होगी। जैसा कि रुडोल्फ सी हेरेडिया ने मार्मिक रूप से लिखा है, "महिलाओं की मुक्ति केवल महिलाओं के लिए नहीं है, इसका वादा पूरे समाज को, पुरुषों को उनकी पितृसत्ता से और हम सभी को हमारी पदानुक्रम से मुक्त करना है, जो हमें अधिक समतावादी समाज, अधिक प्रतिनिधि लोकतंत्र और अधिक समावेशी नागरिकता के करीब लाता है।"

संदर्भ सूची

1. अनुच्छेद 243डी (3), भारत का संविधान. लेख https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s380537a945c7aaa788ccfcdf1b99b5d8f/uploads/2023/05/2023050195.pdf से लिया गया और 25.11.2024 को एक्सेस किया गया।

2. अनुच्छेद 243टी (3), भारत का संविधान. लेख https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s380537a945c7aaa788ccfcdf1b99b5d8f/uploads/2023/05/2023050195.pdf से लिया गया और 25.11.2024 को एक्सेस किया गया।
3. अनुच्छेद 330, भारत का संविधान. लेख https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s380537a945c7aaa788ccfcdf1b99b5d8f/uploads/2023/05/2023050195.pdf से लिया गया और 25.11.2024 को एक्सेस किया गया।
4. अनुच्छेद 332, भारत का संविधान. लेख https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s380537a945c7aaa788ccfcdf1b99b5d8f/uploads/2023/05/2023050195.pdf से लिया गया और 25.11.2024 को एक्सेस किया गया।
5. कुमार, आलोक प्रसन्न. 2023. "डिलिमिटेशन एन्ड रिजर्वेशन". इकोनॉमिक एन्ड पॉलिटिकल वीकली. खंड 57, अंक संख्या 42. लेख https://www.epw.in/journal/2023/42/law-and-society/delimitation-and-reservation.html से लिया गया और 25.11.2024 को एक्सेस किया गया।
6. कार्यकारी सारांश, भारत में महिलाओं की स्थिति की रिपोर्ट, महिला और बाल विकास मंत्रालय. लेख https://wcd.nic.in/sites/default/files/Executive%20Summary_HLC_0.pdf. से लिया गया और 26.11.2024 को एक्सेस किया गया।
7. 'ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2023'. लेख Global Gender Gap Report 2023 | World Economic Forum से लिया गया और 25.11.2024 को एक्सेस किया गया।
8. नारायण, ज. यादव, य. किश्वर, म., & मानुषी. "विधानमंडलों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाना: महिलाओं के प्रतिनिधित्व के लिए सरकारी विधेयक का एक विकल्प". *फाउंडेशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स*, (116). लेख
9. https://ekcenter.fdrindia.org/sites/default/files/AdvocacyPapers/Enhancing%20Women%27s%20Repretation%20in%20Legislatures%20-%20to%20update.pdf से लिया गया और 28.11.2024 को एक्सेस किया गया।
10. नारी शक्ति वंदन अधिनियम, 2023". लेख नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023: Nari Shakti Vandan Adhiniyam और नारी सशक्तिकरण से लिया गया और 30.11.2024 को एक्सेस किया गया।
11. भौमिक, सौम्या. 2023. "समानता बनाम सशक्तिकरण: भारतीय विधानमंडल में महिलाएँ". इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. खंड 58, अंक संख्या 19. लेख https://www.epw.in/journal/2023/19/special-articles/equality-versus-empowerment.html से लिया गया और 01.12.2024 को एक्सेस किया गया।

12. महिला सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति (2001), महिला और बाल विकास मंत्रालय. लेख https://wcd.nic.in/womendevelopment/national-policy-women-empowerment से लिया गया और 26.11.2024 को एक्सेस किया गया।
13. विधायी निकायों में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण: परिप्रेक्ष्य, राज्य सभा सचिवालय, जुलाई 2008. लेख http://164.100.213.102/RSCMSNew/UploadedFiles/ElectronicPublications/reserv_women_pers2008.pdf. से लिया गया और 27.11.2024 को एक्सेस किया गया।
14. विधायी संक्षिप्त, संविधान (एक सौ आठवां संशोधन) विधेयक, 2008, पीआरएस विधायी अनुसंधान, 23 सितंबर, 2008. लेख https://prsindia.org/files/bills_acts/bills_parliament/2008/bill184_20080923184_Legislative_Brief____Womens_reservation_Bill_final.pdf से लिया गया और 01.12.2024 को एक्सेस किया गया। शुक्रवार, 18 जुलाई 1947, संविधान सभा की बहस (कार्यवाही) – खंड 4, 19 सितंबर, 2023. लेख https://loksabha.nic.in/writereaddata/cadebatefiles/vol4.html से लिया गया और 27.11.2024 को एक्सेस किया गया।
15. सिंह, तिया. 2023. "महिला आरक्षण अधिनियम 2023: एक प्रतीकात्मक इशारा या सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम?" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (एंगेज)। लेख /engage/article/womens-reservation-act-2023-symbolic-gesture-or-0 से लिया गया और 30.11.2024 को एक्सेस किया गया।
16. संविधान (एक सौ अट्ठाईसवां संशोधन) विधेयक, 2023; पीआरएस. लेख महिला आरक्षण बिल, 2023 [संविधान (एक सौ अट्ठाईसवां संशोधन) बिल, 2023] से लिया गया और 29.11.2024 को एक्सेस किया गया।
17. संविधान (एक सौ आठवां संशोधन) विधेयक, 2008; संविधान (एक सौ अट्ठाईसवां संशोधन) विधेयक, 2023; पीआरएस। लेख https://prsindia-org.translate.goog/billtrack/womens-reservation-bill-the-constitution-108th-amendment-bill-2008-45?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc से लिया गया और 29.11.2024 को एक्सेस किया गया।
18. संविधान (एक सौ आठवां संशोधन) विधेयक, 2008; संविधान (एक सौ अट्ठाईसवां संशोधन) विधेयक, 2023; पीआरएस। लेख https://prsindia-org.translate.goog/billtrack/womens-reservation-bill-the-constitution-108th-amendment bill-2008-45?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc एवंसे लिया गया और 29.11.2024 को एक्सेस किया गया।

19. हुसैन, सादिया. 2022. "लोकसभा में महिला सदस्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का मात्रात्मक अध्ययन (1999-2019)". इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली. खंड 57, अंक संख्या 31. लेख https://www.epw.in/journal/2022/31/special-articles/performance-women-parliament.html से लिया गया और 30.11.2024 को एक्सेस किया गया।
20. हेरेडिया, रुडोल्फ. 2012. "होल्डिंग अप हाफ द स्काई: रिजर्वेशन फॉर विमेन इन इंडिया". इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. खंड 47, अंक संख्या 09. लेख https://www.epw.in/journal/2012/09/special-articles/holding-half-sky.html से लिया गया और 01.12.2024 को एक्सेस किया गया।
21. 2022 में संसद में महिलाएँ, अंतर-संसदीय संघ. लेख चार संसद में महिलाएँ: समानतापूर्ण प्रतिनिधित्व की दिशा में 'धीमी प्रगति' | यूएन समाचार से लिया गया और 30.11.2024 को एक्सेस किया गया।
22. 2023 तक संसद में महिलाएँ, अंतर-संसदीय संघ. लेख Women MPs: Some progress but prominent figures quitting | Inter-Parliamentary Union से लिया गया और 30.11.2024 को एक्सेस किया गया।
23. 36 वीं रिपोर्ट: संविधान (एक सौ आठवां संशोधन) विधेयक, 2008, कार्मिक, लोक शिकायत, कानून और न्याय संबंध स्थायी समिति, दिसंबर 2009. लेख https://prsindia.org/files/bills_acts/bills_parliament/2008/scr_Women_Reservation_Bill_2009.pdf से लिया गया और 01.12.2024 को एक्सेस किया गया।

20

भारतीय संविधान में जनजातीय अधिकार, सांस्कृतिक धरोहर, संसद एवं सरकार द्वारा नयी पहल - एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ मनीष कर्मवार
सहायक आचार्य, अफ्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
अनुष्का श्रीवास्तव
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत में जनजातीय आबादी को देश की सबसे पुरानी आबादी और भारतीय सभ्यता का अभिन्न अंग माना जाता है। वैदिक काल से लेकर ब्रिटिश काल तक भारत का इतिहास जनजातीय लोगों से काफी प्रभावित रहा है। वैदिक काल में जाति व्यवस्था की शुरुआत से पहले लोग अलग-अलग जनजातियों और खेमों में रहते थे। उदाहरण के लिए, वानर जनजाति, मुंडा, खासी, गारो, अंगामी, भूटिया, चेंचू, कोडाबा आदि। प्राचीन और मध्यकालीन काल में देखा गया कि जनजातीय आबादी अन्य आबादी के साथ घुलने-मिलने लगी थी।प्राचीन काल में पंचजन - अनु, द्रुह्यु, तुर्वु, पुरुवस और यदु आर्य जनजातियाँ थीं, जो प्रारंभिक वैदिक काल (1500-1000 ईसा पूर्व) में भारत में बसीं। धर्मशास्त्रों में दस्यु और असामाजिक कहे गए समूहों का उल्लेख मिलता है, जो कथित अभिजात्य सभ्यता की सीमाओं से बाहर स्थित जनजातियों की ओर संकेत करता है (मुखर्जी,2019)। उदाहरण के लिए, संथाल, हो आदि जनजातीय लोगों द्वारा छोटानागपुर के जनजातीय क्षेत्रों में ब्रिटिश प्रवेश के प्रभावी प्रतिरोध के लिए गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया। ब्रिटिश शासन के तहत 1833 के अधिनियम द्वारा, छोटानागपुर के कुछ हिस्सों को गैर-विनियमित क्षेत्र घोषित किया गया था और बाहरी लोगों को भूमि अधिग्रहण करने की अनुमति नहीं थी। उन्हें आपराधिक जनजातियों के रूप में अधिसूचित करने के लिए आपराधिक जनजाति अधिनियम 1871 पारित किया गया था। भारत में जनजातीय आबादी विविधता के इंद्रधनुष की तरह है। प्रत्येक जनजाति का अपना चरित्र और प्रकृति है, जिसके परिणामस्वरूप उनके साथ व्यावहारिक दृष्टिकोण एवं सामंजस्य बिठाने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, मध्य भारत या पश्चिमी भारत में स्वदेशी लोगों का जीवन और परिस्थितियां पूर्वोत्तर भारत और अंडमान में निवास करने वाली जनजातियों की स्थितियों के विपरीत हैं। भारत में, कुछ सबसे अधिक मान्यताप्राप्त जनजातियों में भील, संथाल, मुंडा, खासी, गारो, अंगामी, भूटिया, चेंचू, कोडाबा और महान अंडमानी जनजातियाँ शामिल हैं। इन जनजातियों में भील जनजाति(37.7%) भारत में सबसे बड़ी है (जनगणना 2011)।

जनजाति समाज में ऐसे व्यक्ति शामिल होते हैं जिनके धर्म, इतिहास, भाषा या संस्कृति में समानताएं होती हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजातियाँ भारत की आबादी का लगभग 8.6% हिस्सा हैं। भारत में अनुसूचित जनजातियों के कई सदस्य अपने निर्वाह के लिए सीधे जंगलों पर निर्भर हैं। वर्षों के संघर्ष, भेदभाव और

पीड़ा के बाद भारत सरकार ने 2006 में अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम (वन अधिकार अधिनियम) के माध्यम से वन-निवासी के प्राथमिक अधिकारों को संहिताबद्ध किया। जनजाति अद्वितीय होती है और अक्सर उसकी अपनी प्रथाएँ होती हैं, जिनमें से कई अन्य जनजातियों से भिन्न होती हैं। भारत में 705 जातीय समूह आधिकारिक तौर पर अनुसूचित के रूप में मान्यताप्राप्त हैं। भारत में 18 राज्यों में दस करोड़ से ज़्यादा आदिवासी हैं, जबकि कुछ राज्यों में आदिवासी समूह बहुसंख्यक हैं (जैसे कि उत्तर-पूर्वी राज्य)। आदिवासी समूह अन्य राज्यों में छोटे क्षेत्रों में मौजूद हैं, जिन्हें अनुसूचित क्षेत्र और आदिवासी क्षेत्र कहा जाता है। भारत में आदिवासी आबादी से व्यावहारिक समन्वय से संबंधित महत्वपूर्ण जाँच और संतुलन मानदंड हैं, जिन्हें केंद्रीय और राज्य के कानून के माध्यम से लागू किया जाता है। भारत का संविधान आदिवासी हितों, विशेष रूप से उनकी स्वायत्तता और उनकी भूमि पर अधिकारों की रक्षा करता है (भारतीय संविधान की अनुसूची 5 और 6)। यह स्वदेशी समूहों को शोषण से बचाने और उनकी भूमि पर उनके अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए दिशा-निर्देशों के साथ एक व्यापक योजना प्रदान करता है। भारत में अधिकांश स्वदेशी समूहों को सामूहिक रूप से अनुसूचित जनजाति [(अनुच्छेद 342 (1 और 2), भारतीय संविधान)] के रूप में संदर्भित किया जाता है और उन्हें भारतीय संविधान के तहत आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया है। (भाग X, भारतीय संविधान)।

जनजातीय संस्कृति और सांस्कृतिक संरक्षण

भारत की विशिष्ट विरासत का प्रतिनिधित्व करने और उसे संरक्षित करने में जनजातीय समुदाय की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारत में आदिवासी समुदायों ने अपनी उत्कृष्ट कला और शिल्प के माध्यम से देश की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध किया है। साथ ही उन्होंने अपनी पारंपरिक प्रथाओं के माध्यम से पर्यावरण के संवर्धन, सुरक्षा और संरक्षण में अग्रणी भूमिका निभाई है। अपने पारंपरिक ज्ञान के विशाल भंडार के साथ आदिवासी सतत विकास के अगुआ रहे हैं। गायन और नृत्य, संगीत, कलाबाजी, जादू, सांप को लुभाने जैसी लोक कलाओं पर जीने वाली जनजातियाँ हमारी विविध भारतीय कला और संस्कृति की विरासत को समृद्ध करती हैं। उदाहरणस्वरूप राजस्थान के कालबेलिया, जिन्हें संपेरा के नाम से जाना जाता है, मुख्य रूप से सांप को लुभाने, नृत्य, गायन और जादू से अपनी आजीविका चलाते हैं। कर्नाटक में, एफ्रो-भारतीय सिद्दी जनजाति की महिलाएँ पैचवर्क रजाई बनाने की अपनी कलात्मक समझ में निष्णात हैं। सिद्दी पैचवर्क रजाई या कावंडियाँ इस बात का एक सुंदर उदाहरण हैं कि कैसे हर स्तर पर नवाचार होता है और वे नई तकनीक को अपनाते हुए परंपरा की दृश्य भाषा को जीवित रख रहे हैं। यह उनका पीढ़ीगत ज्ञान और उनके शिल्प का निरंतर अभ्यास है। भारत या अन्य जगहों पर समुदायों के उत्थान पर चर्चा करते समय रजाई बनाना एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में उभरता है। यह न केवल उनकी सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करता है, बल्कि आधुनिक समय में आजीविका का एक मूल्यवान साधन भी प्रदान करता है। यह पारंपरिक कौशल एक स्थायी व्यवसाय के रूप में विकसित हुआ है, जिससे महिलाएँ आय अर्जित करते हुए अपनी विरासत को संरक्षित करने में सक्षम हुई हैं। सिद्दियों को गुजरात में 1956 में एक क्षेत्र में और पूरे राज्य में 1976 में अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता दी गई थी। गोवा, दमन और दीव में उन्हें 1967 में यह दर्जा मिला। उत्तर कन्नड़ के सिद्दियों को 2003 तक अनुसूचित जनजाति में शामिल नहीं किया गया। एसटी दर्जा मिलने के बाद, सिद्धियों को कुछ आर्थिक लाभ और अन्य योजनाओं का लाभ मिला है, जो उनकी मदद कर रही हैं।आदिवासी त्योहार सदियों से चले आ रहे हैं और इनका धार्मिक महत्व है, जो

भारत की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करते हैं। उदाहरण के लिए, ओडिशा में करमा त्योहार जिसमें कुंवारी महिलाएँ करम वृक्ष की शाखाएँ लगाती हैं। इसी तरह झारखंड में सरहुल त्योहार साल वृक्ष की पूजा करके गाँव की सुरक्षा सुनिश्चित करने का त्योहार है। माना जाता है कि यहां देवी सरना का निवास है। भारतीय जड़ी-बूटियाँ और पारंपरिक आयुर्वेद औषधीय प्रणाली उस ज्ञान पर निर्भर करती है, जिसे पीढ़ियों से साझा और प्रचाारित किया गया है। आदिवासी ऐसे ज्ञान का एक महत्वपूर्ण भंडार हैं। गरासिया जनजातियों को सिरोही जिले (राजस्थान) में नृजातीय-औषधीय पौधों के बारे में व्यापक ज्ञान है। उनकी रक्षा के लिए, उन्होंने लोक देवताओं के लिए पवित्र उपवन कहे जाने वाले वन के टुकड़े विकसित किए हैं।

भारत में जनजातियों के समक्ष चुनौतियाँ

जनजातीय समुदायों को अपने विकास पथ पर कई प्रमुख बाधाओं का सामना करना पड़ता है । सबसे पहले औपनिवेशिक शासन के दौरान और उसके बाद स्वतंत्र भारत में जनजातीय समुदायों का हाशिए पर रहने, उपेक्षा और उत्पीड़न का लंबा इतिहास रहा है। आदिवासियों की पारंपरिक संस्थाएँ और कानून आधुनिक संस्थाओं के साथ टकराव में आ गए हैं; अनुसूचित क्षेत्रों में गैर-आदिवासियों की आमद और घटती जनजातीय आबादी ने जनजातीय पहचान को कमज़ोर कर दिया है(ज़ाक्सा,2016)। उदाहरण के लिए, बो भाषा विलुप्त हो गई है। बच्चों का काम में जल्दी शामिल होना, गरीबी, शैक्षणिक संस्थानों की कमी और जनजातीय क्षेत्रों में शैक्षणिक संस्थानों के बारे में प्रशासनिक कार्यान्वयनों में ढिलाई ने निरक्षरता और जल्दी पढ़ाई छोड़ने की उच्च घटनाओं में योगदान दिया है। कुछ स्वास्थ्य चिंताओं में अस्वच्छ और आदिम प्रथाएँ, पौष्टिक आहार की कमी, खराब स्वास्थ्य सेवा, बुनियादी ढाँचा और शिशुओं और बच्चों का अपर्याप्त टीकाकरण और प्रतिरक्षण शामिल हैं, जिससे पुराने संक्रमण, कुपोषण और जलजनित बीमारियाँ होती हैं। स्वदेशी समुदायों (पितृसत्तात्मक जनजातियों) में महिलाओं को प्रजनन स्वास्थ्य, शिक्षा, राजनीतिक शक्ति तक पहुंच, सामाजिक स्थिति आदि जैसे समान अधिकार और अवसर नहीं मिलते हैं। विधानसभा या संसद जैसे निर्णय लेने वाले निकायों और सामुदायिक नेतृत्व की भूमिकाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम है। उदाहरण के लिए, 2022 में राजनीतिक प्रतिनिधित्व में, आदिवासी राज्य अरुणाचल प्रदेश में 60 अनिवार्य सदस्यों की वर्तमान विधानसभा में केवल चार महिला विधायक हैं और 1987 में राज्य का दर्जा प्राप्त करने के बाद से यहां कभी भी महिला सांसद नहीं रही है। आदिवासी पहले शिकार, संग्रह और कृषि जैसे प्राथमिक व्यवसायों का पालन करते थे। जनजातीय समुदायों को सशक्त बनाना जनजातीय समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने की रक्षा की आवश्यकता को समझते हुए और राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका को रेखांकित करते हुए, भारत के संविधान निर्माताओं ने जनजातीय संस्कृति की सुरक्षा और अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए विशेष प्रावधान किए। इनमें उनकी भाषा, लिपि और अन्य सांस्कृतिक तत्वों का संरक्षण, उनके शैक्षिक हितों को सुनिश्चित करना, आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना और राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए कदम उठाना शामिल है। उपरोक्त संवैधानिक सुरक्षा उपायों के अलावा अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के एकीकृत सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अधिक केंद्रित दृष्टिकोण प्रदान करने के उद्देश्य से 1999 में जनजातीय मामलों के मंत्रालय नामक एक अलग मंत्रालय की स्थापना की गई थी। मंत्रालय के कार्यक्रमों और योजनाओं का उद्देश्य अन्य केंद्रीय मंत्रालयों, राज्य सरकारों और स्वैच्छिक संगठनों को समर्थन और

पूरक बनाना और वित्तीय सहायता के माध्यम से एसटी की स्थिति को ध्यान में रखते हुए संस्थानों और कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण अंतराल को भरना है।

जनजातीय समुदायों के हित में संवैधानिक प्रावधानों की महत्वपूर्ण भूमिका

भारत में वर्तमान में जनजातीय समुदायों के हित में कई संवैधानिक प्रावधान हैं और वर्तमान सरकार (केंद्र और राज्य सरकारें) उनके लिए ढेर सारी कल्याणकारी योजनाएं लागू कर रही हैं। आदिवासियों की विशिष्ट विशेषताओं और महत्व को समझने के बाद, यह निहित है कि उनके शासन के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण की आवश्यकता है। नेहरू का जनजातीय पंचशील स्वतंत्रता के बाद स्वदेशी समुदायों के लिए नीतियां और प्रावधान तैयार करने का अनूठा मार्गदर्शक सिद्धांत था। सरकार ने आदिवासियों को समाज की मुख्यधारा में लाने के साथ-साथ उनकी विशिष्ट संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करने के लिए कई कदम/दृष्टिकोण अपनाए हैं। 'राष्ट्रीय जनजातीय नीति' जिसे राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति नीति के रूप में भी जाना जाता है, एसटी को उनकी विशिष्ट संस्कृति से छेड़छाड़ किए बिना उनके सर्वांगीण विकास के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण के माध्यम से समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास करती है। आरक्षण नीति कहती है कि अखिल भारतीय स्तर पर खुली प्रतियोगिता द्वारा नागरिक पदों और सिविल सेवाओं में सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति के मामले में अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के सदस्यों के लिए क्रमशः 15 प्रतिशत और 7.5 प्रतिशत का आरक्षण होगा। अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों को शिक्षा के अवसर प्रदान करके समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए सरकार ने आईआईटी और आईआईएम जैसे प्रमुख संस्थानों में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों को (क्रमशः 15 और 7.5 प्रतिशत) आरक्षण भी प्रदान किया है। नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 को अस्पृश्यता के प्रचार और अभ्यास के लिए दंड निर्धारित करने, उससे उत्पन्न किसी भी विकलांगता को लागू करने और उससे संबंधित मामलों के लिए अधिनियमित किया गया था। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के खिलाफ अत्याचार के अपराधों को रोकता है। साथ ही, यह ऐसे अपराधों की सुनवाई और ऐसे अपराधों के पीड़ितों के राहत और पुनर्वास और उनसे जुड़े या उसके प्रासंगिक मामलों के लिए विशेष न्यायालयों का प्रावधान करता है। पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम (पेसा), 1996 को पंचायतों से संबंधित संविधान के भाग IX के प्रावधानों को अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तारित करने के लिए दिलीप सिंह भूरिया समिति की सिफारिशों पर अधिनियमित किया गया था। यह अनुसूचित क्षेत्रों के निवासियों, आदिवासी समुदायों के स्वशासन की प्रणालियों के माध्यम से खुद को नियंत्रित करने और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके पारंपरिक अधिकारों को स्वीकार करने के अधिकार को मान्यता देता है।

छठी अनुसूची में अनुच्छेद 244 (2) के तहत, असम, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा राज्यों पर लागू होती है, जिन्हें आदिवासी क्षेत्र घोषित किया गया है और ऐसे क्षेत्रों के लिए स्वायत्त जिला परिषदों का प्रावधान है (लीगल सर्विस इंडिया,2024)। स्वायत्त जिला परिषदों को अपनी संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करने के लिए भूमि, जंगल, पानी, कृषि, स्वास्थ्य, स्वच्छता, विरासत, विवाह और तलाक, सामाजिक रीति-रिवाजों आदि के बारे में राज्य के अंदर विधायी, न्यायिक और प्रशासनिक स्वायत्तता प्राप्त है। एसटी और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की

मान्यता) अधिनियम,2006 को वन में रहने वाले एसटी और अन्य पारंपरिक वनवासियों को वन भूमि में वन अधिकारों और कब्जे को मान्यता देने और निहित करने के लिए अधिनियमित किया गया था।

आदिवासियों के उत्थान के लिए हाल की सरकारी योजनाआ में खासकर न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से लघु वनोपज के विपणन के लिए तंत्र मूल्य श्रृंखला का विकास एक महत्वपूर्ण पहल है। प्रधानमंत्री वन धन विकास योजना को वन धन विकास केंद्र की स्थापना करके एमएफपी का मूल्यवर्धन, ब्रांडिंग और व्यावसायीकरण करके आदिवासियों की आय में सुधार करने के लिए लागू किया गया है जो आदिवासी उद्यमिता को बढ़ावा देगा और सुविधा प्रदान करेगा। गोइंग ऑनलाइन ऐज लीडर्स कार्यक्रम का उद्देश्य संरक्षक और प्रशिक्षु की अवधारणा के माध्यम से पांच वर्षों में 5000 आदिवासी युवाओं और महिलाओं का डिजिटल सशक्तिकरण करना है। एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय दूरदराज के क्षेत्रों में एसटी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने और उच्च शिक्षा और रोजगार के अवसरों का लाभ उठाने के लिए एक बड़ी पहल है। जनजातीय उप-योजना के लिए प्रशासनिक विशेष केंद्रीय सहायता (एससीए से टीएसएस) मानव संसाधन विकास के माध्यम से एसटी और अन्य सामाजिक समूहों के बीच की खाई को भरने के लिए एक केंद्र प्रायोजित योजना है। हर साल 9 अगस्त को आदिवासी लोगों की भूमिका और उनके समुदायों को संरक्षित करने की आवश्यकता के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए विश्व के आदिवासी लोगों के सांस्कृतिक अंतर्राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाता है। राष्ट्रीय जनजातीय महोत्सव लोक नृत्यों के अनूठे रूपों, चित्रकला में पारंपरिक कौशल की प्रदर्शनी, औषधीय प्रथाओं आदि के माध्यम से आदिवासी लोगों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की झलक दिखाने का यह एक कदम है।

समसामयिक प्रयास:

तत्कालीन मुख्यमंत्री नवीन पटनायक की अध्यक्षता में ओडिशा मंत्रिमंडल ने जून, 2023 में संविधान की आठवीं अनुसूची में आदिवासी भाषा साओरा को शामिल करने के प्रस्ताव की सिफारिश की थी।अक्टूबर 2024 में भारत सरकार द्वारा की गई सबसे हालिया पहलों में धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान का शुभारंभ है (जनजातीय मामलों का मंत्रालय, भारत सरकार ,2024)। 2 अक्टूबर 2024 को, प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने झारखंड के हजारीबाग में धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान का शुभारंभ किया। 79,150 करोड़ से अधिक के परिव्यय के साथ, इस महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का उद्देश्य लगभग 63,000 आदिवासी गाँवों में सामाजिक बुनियादी ढाँचे, स्वास्थ्य, शिक्षा और आजीविका विकास में महत्वपूर्ण अंतराल को दूर करना है। अभियान 30 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों (यूटी) में फैले 549 जिलों और 2,740 ब्लॉकों में 5 करोड़ से अधिक आदिवासी लोगों को लाभान्वित करता है। इसने भारत सरकार के 17 मंत्रालयों और विभागों में 25 हस्तक्षेपों को एकीकृत किया। धरती आबा कार्यक्रम के साथ-साथ, प्रधान मंत्री ने प्रधान मंत्री जनजातीय आदिवासी न्याय महा अभियान (पीएम-जनमन) के तहत परियोजनाओं की आधारशिला भी रखी। सरकार ने 75,800 से अधिक विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों के घरों के विद्युतीकरण की भी घोषणा की और 275 मोबाइल चिकित्सा इकाइयों और 500 आंगनवाड़ी केंद्रों का संचालन शुरू किया। जनजातीय सशक्तिकरण के लिए कुछ अन्य प्रमुख सरकारी योजनाओं में प्री-मैट्रिक और पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति योजनाएं, एसटी छात्रों के लिए राष्ट्रीय प्रवासी छात्रवृत्ति, पीवीटीजी विकास कार्यक्रम, अनुसूचित जनजातियों के लिए विकास कार्य योजना (डीएपीएसटी), राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त और विकास निगम, आदि महोत्सव और

सांस्कृतिक उत्सव और एसटी छात्रों के लिए राष्ट्रीय फैलोशिप शामिल हैं। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन ने सिकल सेल रोग सहित हीमोग्लोबिनोपैथी की रोकथाम और नियंत्रण के लिए राज्यों को एक व्यापक दिशानिर्देश विकसित और वितरित किया है। मध्य, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में आदिवासी आबादी में प्रचलित आनुवंशिक रक्त विकार के गंभीर प्रभाव को पहचानते हुए, सरकार ने इसके लगभग पूर्ण उन्मूलन की दिशा में प्रयास तेज कर दिए हैं। इस उद्देश्य से, 1 जुलाई, 2023 को मध्य प्रदेश में प्रधानमंत्री द्वारा सिकल सेल एनीमिया उन्मूलन मिशन का शुभारंभ किया गया।

संविधान के अनुच्छेद 275(1) के तहत राज्यों को निधि जारी की जाती है ताकि वे आदिवासी कल्याण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राज्य द्वारा शुरू की जाने वाली विकास की ऐसी योजनाओं की लागत को पूरा कर सकें। प्रधानमंत्री वनबंधु विकास योजना के तहत एसटी युवाओं द्वारा उद्यमिता/स्टार्ट-अप परियोजनाओं को बढ़ावा देने के लिए एक उद्यम पूंजी कोष की स्थापना की गई है। लघु वनोपज के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य सुनिश्चित किया जाता है और आदिवासी उत्पादों के लिए विपणन सहायता प्रधानमंत्री जन जातीय विकास मिशन के माध्यम से प्रदान की जाती है। इसके अलावा, शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका में परियोजनाओं के लिए अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए काम करने वाले स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। आवासीय स्कूली शिक्षा सुविधाओं के माध्यम से दूरदराज के क्षेत्रों में एसटी छात्रों (कक्षा VI-XII) को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय स्थापित किए गए हैं। वर्तमान में, 392 एकलव्य मॉडल में एक लाख से अधिक छात्र नामांकित हैं। अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को प्री-मैट्रिक और पोस्ट-मैट्रिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा और विदेश में अध्ययन के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए अनेक फेलोशिप और छात्रवृत्ति कार्यक्रम भी शुरू किए गए हैं (जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार,2024)।

भारत में 10 आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी संग्रहालय उन राज्यों में स्वीकृत किए गए हैं जहां अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष करते वाले आदिवासी रहते थ। 01 नवंबर, 2022 को प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में मानगढ़ धाम को विकसित करने के लिए एक रोडमैप तैयार करने का आह्वान किया। इन सभी पहलों ने, सरकार द्वारा उठाए गए अन्य कदमों के साथ, आदिवासी समुदायों को उनकी संस्कृतियों, विरासतों और जीवन के तरीकों का सम्मान करते हुए मुख्यधारा में लाने का मार्ग प्रशस्त किया है।

निष्कर्ष

भारत के आदिवासी समुदायों के विकास की दिशा ऐतिहासिक हाशिए पर रहने, सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों और संस्थागत अपर्याप्तताओं के जटिल अंतर्संबंध को उजागर करती है। औपनिवेशिक नीतियों से लेकर, जिन्होंने उनके पारंपरिक जीवन के तरीके को बाधित किया, स्वतंत्र भारत में जारी व्यवस्थागत अंतराल तक, आदिवासियों को समान विकास और अवसरों तक पहुँचने में कई बाधाओं का सामना करना पड़ा है। सामाजिक-सांस्कृतिक क्षरण, स्वास्थ्य और शिक्षा असमानताएँ, लैंगिक असमानताएँ, भूमि अलगाव और गरीबी ने आधुनिक समय में भी उनके हाशिए पर रहने को बनाए रखा है। इन चुनौतियों के बावजूद आदिवासी अधिकारों की मान्यता और राष्ट्र निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका ने भारत सरकार को संवैधानिक सुरक्षा उपायों और लक्षित कल्याण योजनाओं को लागू करने के लिए प्रेरित किया है। जनजातीय मामलों के मंत्रालय की स्थापना, प्रधानमंत्री वनबंधु विकास योजना, एकलव्य मॉडल

आवासीय विद्यालय और उद्यमिता और शिक्षा के लिए समर्थन जैसी पहल आदिवासी समुदायों को सशक्त बनाने की प्रतिबद्धता को दर्शाती हैं। हालाँकि, नीति और व्यवहार के बीच मौजूदा अंतर को पाटने के लिए एक समग्र, समुदाय-केंद्रित दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो सतत विकास सुनिश्चित करते हुए उनके सांस्कृतिक लोकाचार का सम्मान करता हो। स्थायी चुनौतियों का सही मायने में समाधान करने के लिए सभी हितधारकों- सरकारी एजेंसियों, नागरिक समाज और आदिवासी समुदायों को शामिल करते हुए एक ठोस प्रयास किया जाना चाहिए। आदिवासियों को सशक्त बनाना केवल उनकी ज़रूरतों को संबोधित करने का मामला नहीं है, बल्कि भारत की विविधता और स्थिरता में उनके योगदान को मान्यता देना भी है। समावेशिता और लचीलेपन को बढ़ावा देकर, भारत यह सुनिश्चित कर सकता है कि उसकी आदिवासी आबादी अब हाशिये पर न रहे, बल्कि देश की विकास यात्रा में सक्रिय भागीदार बने। निष्कर्ष रूप में, भारत की आदिवासी आबादी देश की समृद्ध और विविध विरासत को दर्शाती है। स्वतंत्रता के बाद, भारत ने आदिवासी हितों की सुरक्षा में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जिसमें अनुसूची 5 और 6 जैसे संवैधानिक प्रावधान आदिवासी स्वायत्तता और भूमि अधिकारों की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण ढाँचे के रूप में काम करते हैं। विधायी और प्रशासनिक पहलों के साथ मिलकर ये उपाय अपने स्वदेशी समुदायों की गरिमा और आत्मनिर्णय को बनाए रखने के लिए देश की प्रतिबद्धता को उजागर करते हैं।

संदर्भ सूची

1. " लीगल सर्विस इंडिया। (n.d.) । अनुसूचित जनजातियों के अधिकार। 26 नवंबर, 2024 को https://www.legalserviceindia.com/legal/article-32-the-rights-of-scheduled-tribes.html से प्राप्त किया गया।
2. " प्रेस सूचना ब्यूरो। (2014, 30 जुलाई) । अनुसूचित जनजातियों का कल्याण। 26 नवंबर, 2024 को https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=108222 से प्राप्त किया गया।
3. " जनजातीय मामलों का मंत्रालय, भारत सरकार। (2024) । वार्षिक रिपोर्ट 2023-24। 26 नवंबर, 2024 को https://tribal.nic.in/KnowledgeHub.aspx से प्राप्त किया गया।
4. " जनजातीय मामलों का मंत्रालय, भारत सरकार। (2011) । जनगणना 2011 की रिपोर्ट में भारत में अनुसूचित जनजातियों का खुलासा हुआ। 26 नवंबर, 2024 को https://tribal.nic.in/downloads/statistics/3-STinindiaascensus2011.pdf से प्राप्त किया गया।
5. " जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार। (2024, सितंबर) । प्रधानमंत्री जनजातीय उन्नत ग्राम अभियान (मंथन शिविर)। 26 नवंबर, 2024 को https://adiprasaran.tribal.gov.in/pm-janman/photoAlbumjjgd1.aspx से प्राप्त किया गया।
6. " जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार। (n.d.) । एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (EMRS)। 26 नवंबर, 2024 को https://tribal.nic.in/EMRS.aspx से प्राप्त किया गया।
7. " प्रेस सूचना ब्यूरो। (n.d.) । जनजातीय विकास योजनाओं की विशेषताएं। 26 नवंबर, 2024 को https://pib.gov.in/FeaturesDeatils.aspx?NoteId=151692&reg=3&lang=1 से प्राप्त किया गया

8. " ग्रॉफ, सी. (2017). बहुभाषी भारत में भाषा और भाषा-शिक्षा नियोजन: अल्पसंख्यक भाषा परिप्रेक्ष्य। भाषा नीति, 16(1), 1-24. https://doi.org/10.1007/s10993-015-9397-4.

9. मुखर्जी, टी. (2019) । प्राचीन भारत में जनजातियाँ। *इंटरनेशनल बाइलिंगुअल जर्नल ऑफ कल्चर, एंथ्रोपोलॉजी एंड लिंग्विस्टिक्स* (IBJCAL), eISSN: 2582-4716

10. " रंजन, ए. (2003). भारत में जनजातीय स्थिति। सामाजिक वैज्ञानिक, 31(11/12), 63-76. https://www.jstor.org/stable/3518292.

11. " ज़ाक्सा, वी. (2016). जनजातियाँ और भारतीय राष्ट्रीय पहचान: बहिष्कार और हाशिए पर होने का स्थान। ब्राउन जर्नल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, 23(1), 223-237. " कन्नाबिरन, के. (2016). संवैधानिक भूगोल और दंड से मुक्ति के मानचित्रण: समकालीन भारत में मानवाधिकार और आदिवासी/जनजाति. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 51(44/45), 92-100.

21

थारू जनजाति की ऐतिहासिकता से सम्बन्धित विविध मतों का विवेचनात्मक अध्ययन

दीपाली गुप्ता

शोधार्थी, बी.एड./एम.एड. विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

प्रोफेसर प्रवीण कुमार तिवारी

आचार्य, शिक्षा विभाग (केंद्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत में आदिकाल से ही आरण्यक व्यवस्था के अन्तर्गत विविध जनजातियाँ निवास करती आयीं हैं। उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और बिहार भारत के ऐसे राज्य हैं, जहाँ बहुत सी जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें थारू, बुक्सा, राजी, जौनसारी, भोटिया, खासा और अन्य जनजातियाँ शामिल हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 में 700 से अधिक जनजातियाँ सूचीबद्ध हैं जिसमें एक थारू जनजाति है, जिनकी जनजाति के रूप में घोषणा 1967 में की गई थी। यह थारू जनजाति, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के साथ-साथ नेपाल के हिमालयी तराई-भाभर क्षेत्रों के वनाच्छादित ग्रामीण अंचलों में बहुतायत रूप से पाई जाती है। ये मूल रूप से कृषक हैं। इन्हें जनजाति के रूप में जिन मानदंडों के आधार पर घोषित किया गया है, वे आधार हैं- आदिम लक्षणों के संकेत, विशिष्ट संस्कृति, भौगोलिक एकाकीपन, समुदाय के साथ स्वछंद संपर्क में संकोच, तथा पिछड़ापन। उत्तर प्रदेश में 1 लाख, 5 हज़ार थारू जनजाति के लोग हैं, जो इस प्रदेश की अनुसूचित जनजाति जनसँख्या की 9.3% है। प्रारम्भ से ही थरुहट क्षेत्र में जंगली जानवरों से लेकर मलेरिया जैसी जानलेवा बीमारी का डर हमेशा बना रहता था। मलेरिया जैसी घातक बीमारी के कारण ही इस क्षेत्र को मलेरिया जोन घोषित किया गया था। थारू समुदाय के अलावा अन्य बाहरी व्यक्तियों का इस तराई क्षेत्र में अस्तित्व बचाए रहना अत्यंत कठिन था। इसलिए बाहरी लोग इस क्षेत्र में आने से घबराते थे। ब्रिटिश काल में अंग्रेज अफसर भी मलेरिया के प्रकोप से बचने के लिए इस क्षेत्र में जाने से घबराते थे। इसी कारण से गैजेटियर आफ हिमालयन जिला (1882) में इस तराई, नम, दलदली भूमि को एटकिंसन ने मृत्यु भूमि की संज्ञा दी थी। परन्तु थारू जनजाति में मच्छरों के प्रकोप से बचने के लिए मजबूत प्रतिरक्षा प्रणाली पायी जाती है, जिस कारण यह ऐसे क्षेत्र में अपना अस्तित्व बचाए रखने में सक्षम होते हैं। इनकी इसी विशेषता के कारण इन्हें 'मलेरिया प्रूफ' मानव कहा जाता है। यद्यपि वर्तमान सरकार ने उस क्षेत्र को मलेरिया उन्मूलन क्षेत्र घोषित कर दिया है परंतु वहां के निवासी मलेरिया जैसी चुनौतियों का आज भी सामना करते आ रहे हैं।

थारू जनजाति की उत्पत्ति और इतिहास को लेकर विभिन्न मत हैं। थारू प्राचीन काल से ही भारत के निवासी हैं। इस बात के संकेत सरस्वती-सिन्धु काल और वैदिक काल से मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। कुछ विद्वान इनका संबंध महाराणा प्रताप के वंश से जोड़ते हैं और यह बताते हैं कि राजस्थान के थार से पलायन कर थारु उस समय तराई में आ बसे जब मुगलों ने राजस्थान के राजपूताना राज्यों पर आक्रमण कर दिया था। कुछ विद्वान थारूओं को मंगोलियन मूल का तथा

कुछ अन्य विद्वान गौतम बुद्ध से संबंधित शाक्य वंश का मानते हैं। कुछ मानव-विज्ञानियों ने थारूओं को ऐतिहासिक किरातों के वंश का माना है। थारुओं से पूछने पर वे स्वयं को महाराणा प्रताप का वंशज बताते हैं और अपना मूल निवास क्षेत्र थारभूमि बताते हैं। थारू शब्द कैसे पड़ा इसको लेकर विद्वानों में मतभिन्नता है। अतः इसकी उत्पत्ति संबंधी विविध मतों की विवेचना आवश्यक है।

'थारू' शब्द की उत्पति के सम्बन्ध में विविध मत:

थारू जनजाति को 'थारू' नाम कैसे मिला?, थारू शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई? क्या थारू प्राचीन काल से ही तराई निवासी हैं? अथवा कहीं से प्रव्रजित होकर आये हैं? उनका इतिहास क्या हैं? आदि प्रश्नों के प्रति उत्सुकता स्वाभाविक है। इन सभी प्रश्नों के उत्तर जानने की प्रक्रिया में जो विविध मत मिले हैं वे निम्नवत हैं:

1. 'सेन्सस ऑफ़ द नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविजंस रिपोर्ट' (1865) में थारू शब्द की उत्पत्ति तरहुआ से बताया गया है।इसका अर्थ 'गीला' होता है, जो उस क्षेत्र की दलदली प्रकृति का बोधक है, जहाँ यह जनजाति विशेष रूप से रहती है।

2. 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल जर्नल (1847) में उल्लिखित है कि 'थारू' शब्द हिन्दी के 'अथवारु' से निकला है, जिसका तात्पर्य 'आठवें दिन का दास' है। ऐसे व्यक्ति जो अपने स्वामी को सप्ताह के बाद आठवें दिन का श्रम देने के लिए बाध्य होते थे।

3. 'गजेटियर ऑफ द प्रोविन्स ऑफ अवध' (1877) में लिखा है कि थारू आज भी इस धारणा को मानते हैं कि चितौड़ से अलाउद्दीन खिलजी द्वारा उन्हें भगा दिया गया था। उस समय क्षत्रियों के लिए अपना नाम बदलना आम बात थी ताकि अलाउद्दीन खिलज़ी जिसने उनके पूरे समाज को नष्ट करने की योजना बनाई थी, उससे बचा जा सके। वह कैसे भागे इस बारे में थारू आगे बताते हैं कि वह जान बचाने के लिए आश्रय की तलाश में तबतक भागे जब तक वह खैरीगढ़ के जंगलों में नहीं पहुच गए, जहाँ उन्होंने पहली बार विश्राम किया। 'ताहरे' अर्थात कथित उड़ान के बाद वे जंगल में रुके इसलिए उनका नाम थारू पड़ा।

4. नोल्स (1889) की पुस्तक 'गोस्पेल इन गोंडा: बीइंग ए नैरेटिव ऑफ़ इवेंट्स इन कनेक्शन विथ द ट्रांस घाघरा कंट्री' में थारू शब्द पहाड़ी लोगों द्वारा संबोधित की जाने वाली क्रिया 'पैडलर' से आया है, जिसका अर्थ हैं पथिक या पैदल चलने वाला। यह जनजाति समूह पैदल चलने के बहुत आदि थे इनकी इसी विशेषता के कारण थारू कहा गया।

5. क्रूक (1896) ने अपनी पुस्तक 'द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ़ नार्थ वेस्टर्न प्रोविनेंस एंड अवध' में उद्धृत किया हैं थार का अर्थ है 'शराब'। थारू या 'शराब पीने वाला' यह नाम उन्हें मैदानी इलाकों के एक क्षत्रिय राजा ने उनके बहुत शराब पीने की आदत के कारण दिया था।

6. नेसफील्ड (1885) 'डिस्क्रिप्शन ऑफ द मैनर्स, इंडस्ट्रीज, रिलिजन ऑफ़ थारू एंड बुक्सा ट्राइब ऑफ़ अपर इंडिया' में लिखते हैं कि थार शब्द की उत्पत्ति 'थद्र' से हुई है, जो स्थानीय वर्ग की बोल-चाल की भाषा में व किताब की भाषा में जंगल को दर्शाता हैं और इस प्रकार थारू का अर्थ होगा 'जंगल का आदमी'।

7. क्रूक (1896) की पुस्तक 'द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ़ द नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सस एंड अवध: 1848-1923 : वॉल्यूम 4'' में वर्णित है कि थारू स्वयं कहते हैं कि वह राजपूत हैं, जो हस्तिनापुर में हुई बड़ी लड़ाई के बाद भाग कर गए थे और उनके नाम का अर्थ थरथराना अर्थात 'क़्वेकर' या 'काँपना' है जो कालांतर में थारू शब्द में परिवर्तित हो गया।

8.'उत्तर प्रदेश जिला गजेटियर नैनीताल' (1992) में थारू शब्द की कई सारी व्युत्पत्ति दी गयी हैं जैसे कि थार (शराब), ताहरे (वे आये हैं), तरुआ (गीला), थारस (पैदल चलने वाला), थल (संस्कृत भाषा के अपभ्रंश से), थरथराना (काँपना), अथयारू (आठ दिन का दास) और तराई (तराई के निवासी होने के नाते) जैसे शब्दों से हुआ है।

9. कार्लाइल (1879) की 'रिपोर्ट ऑफ़ टूर्स इन द सेंट्रल दोआब एण्ड गोरखपुर इन 1874-75 एण्ड 1875-76' में वर्णित है कि थारू परम्पराएँ बताती है कि वे चित्तौड़ से आये थे तथा जयमल, पत्ताह के वंशज थे। आगे थारू कहते हैं कि उन्हें उनके घर से 1560 ई. के आस-पास निकाल दिया गया था और वे वर्तमान क्षेत्र में आकर बस गए। वे दावा करते हैं कि वे मूलत: राजपूत हैं और मांस-मदिरा खाने-पीने के कारण उनके पूर्वजों ने अपनी जाति खो दी।

10. मजुमदार (1944) ने अपनी किताब 'द फॉरच्युन ऑफ़ प्रिमिटिव ट्राइब्स' में यह बताया है कि थारू लोगों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले जादू-टोने मूलतः उन्हें अर्थववेद में तत्संबंधी पाये जाने वाले सूत्रों और मंत्रों के ज्ञान से प्राप्त हुआ है, जिसके कारण थारू लोग 'अथारू' (अथर्व) के नाम से लोकप्रिय हुए, जो बाद में वर्तमान शब्द 'थारू' बन गया।

11. मैथ्यू की पुस्तक 'हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्ट' में उद्धृत है कि यह सच है कि थारू कहेंगें कि हम तराई में रहने आये और यहाँ रहने के कारण थारू बन गये।

13. 'सेन्सस ऑफ़ द नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविन्स' तथा'रिपोर्ट ऑफ़ टूर्स इन द सेंट्रल दोआब एण्ड गोरखपुर इन 1874-75 एण्ड 1875-76' में थारू को थारो (Tharoo) और 'रिपोर्ट ऑफ़ टूर्स इन द सेंट्रल दोआब एण्ड गोरखपुर इन 1874-75 एण्ड 1875-76' में थारु (Tharu) शब्द से भी संबोधित किया गया है।

थारू जनजाति के मूल स्थान के सम्बन्ध में विविध मत तथा प्रमुख सन्दर्भ व लोककथाएँ:

[I] प्रथम मत- थारु जनजाति प्रारम्भ से ही एक वनवासी जनजाति है:

नेसफील्ड (1885) कहते हैं कि थारू जनजाति जीवन के विविध पक्षों व जीवकोपार्जन के लिए जंगलों पर आश्रित हैं। ऐसा एक परम्परागत वनवासी जनजाति ही कर सकती है।

विलियम क्रूक (1896) के अनुसार थारू हिमालय की तलहटी तक की भूमि में शुरू से निवास करते आये हैं, उन्होंने ही इस भूमि को आबाद कर गुलजार बनाया है। इसलिए थारू गंगा-यमुना से लेकर हिमालय की गोद तक की भूमि में सभ्यता के अग्रणी है।

विलियम क्रूक (1896) की पुस्तक 'द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ़ द नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सस एंड अवध: 1848-1923 : वॉल्यूम 4' में थारुओं के विषय में डॉ. बुकानन द्वारा दिया गया एक प्राचीन विवरण उद्धृत है, जो निम्नवत है:

"ऐसा प्रतीत होता है कि गोरखाओं को मगध से जल्द ही थारू नामक लोगों द्वारा निष्काषित कर दिया गया था, जिनके बारे में कहा जाता हैं कि वह पहाड़ियों से उतरे थे और कम से कम घाघरा के उत्तर के हर हिस्से में फ़ैल गये थे। इन लोगों के बहुत सारे स्मारक दिखाए गए हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक मेहनती व शक्तिशाली जाति के थे, क्योंकि ईटों से बनी उनकी बड़ी इमारतों की संख्या बहुत अधिक है। थारू, वास्तव में सूर्य के वास्तविक वंशज होने का दावा करते हैं, और उन्होंने गोरखाओं को उनके हड़पे हुए इलाकों से निकाल दिया। … उनके चेहरे चीनी या तातार मूल

जैसे दिखते हैं, हालाँकि यह स्वीकार करना होगा की ये संकेत कुछ नरम पड़ गए हैं और पुरुषों के चेहरे विशेष रूप से हिन्दुओं के चेहरों से उतने भिन्न नहीं हैं, जितने शुद्ध चीनी लोगों के होते हैं। फिर भी, पुरुषों में भी अंतर देखा जा सकता है और महिलाओं और बच्चों में यह बहुत स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (क्रूक, 1896, पृ. 381-382)

क्रूक (1896) आगे लिखते हैं-

"पूर्वी अवध में एक लोककथा है कि कन्नौज के बौद्ध मतावलम्बी राजवंश के पतन के बाद, थारू पहाड़ियों से उतरे और अयोध्या पर कब्ज़ा कर लिया। उन्होंने बौद्धों को बेदखल कर दिया। बद्रीनाथ के आस-पास की पहाड़ियों में स्थित श्रीनगर के राजा श्री चन्द्र को बुलाया गया। जिन्होनें थारू को पीछे धकेल दिया, और उत्तर की ओर बढ़ते हुए चन्द्रावतीपुर की स्थापना की, जो पूर्व में श्रावस्ती नाम से जाना जाता था जिसे अब 'सहेत-महेत गाँव' के रूप में जाना जाता है। कन्नौज के बाद के राजवंश के विवरण में, लासेन ने एक शिलालेख का वर्णन किया हैं जिसमें दर्ज हैं कि श्री चन्द्र देव महान, जो 1072 ई. में सिंहासन पर विराजमान हुए, राठौर राजाओं में से पहले थे, जो अयोध्या और कोशल या श्रावस्ती के पवित्र स्थानों के रक्षक थे।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (क्रूक, 1896, पृ. 382)

फ्लोडेन की 'सेन्सस ऑफ़ द नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविजंस रिपोर्ट' (1865) में उद्धृत है कि-

"थारू और बुक्स्सा दोनों कमोबेश प्रवासी हैं। ये केवल तब तक खेती करते रहते हैं जबतक की भूमि की उर्वरकता समाप्त ना हो जाये; फिर ये नये मैदानों की ओर चले जाते हैं; दोनों खेतों में पानी देने के प्रति लापरवाह हैं, जिसे वह अपने खेतों में भर देते हैं। वे दलदल बना रहे हैं, उसके प्रति पूरी तरह लापरवाह हैं। वास्तव में अधिकांश सबसे खराब दलदलों की उत्पत्ति का श्रेय इन लोगों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले असभ्य सिंचाई साधनों को दिया जा सकता है। (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (फ्लोडेन, 1865, पृष्ठ 61, 66)

क्रूक (1896) आगे उद्धृत करते हैं कि 'एक जनजाति थारू जिसका केन्द्र हिमालय की तराई में है और गोरखपुर संभाग तथा उत्तरी अवध में इसकी बस्तियां हैं।' कहने का अर्थ है कि थारू हिमालय की तलहटी तक की भूमि में शुरू से निवास करते थे और इस भूमि को आबाद कर गुलजार बनाया था। इसलिए थारू गंगा-यमुना से लेकर हिमालय की गोद तक की भूमि के वासी रहे हैं।

मेयर और डेवेल (1997) ने अपने शोधकार्य 'ट्रांस बाउंड्री इंडीजीनियस नेशनलिटी' के संदर्भ में थारू जनजाति का एक जाति के रूप में अध्ययन न करके बल्कि समुदाय के रूप में अध्ययन किया और निष्कर्ष स्वरुप यह पाया कि यह समुदाय प्रारंभ से ही कबीले में रहते थे। वन, जंगलों पर थारू शब्द की जड़ों की निर्भरता है तथा जीविकोपार्जन के लिए भी वनों और पेड़-पौधों से अंतःसंबंधित है। वे यह भी बताते हैं कि इस कबीलाई समुदाय का प्रारंभ लगभग 2000 वर्षों का है।

नेविल ने 'नैनीताल: ए गज़ेटियर वॉल्यूम XXXIV ऑफ़ द डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियरस ऑफ़ द यूनाइटेड प्रोविन्सस ऑफ़ आगरा एंड अवध' (1904) में थारूओं की उत्पत्ति के बारे में लिखा है, कि

"थारू एक हिन्दू जनजाति है जिसकी 10,000 से अधिक जनसंख्या है। पिछली जनगणना में उनकी संख्या 16,085 थी और वे लगभग पूरी तरह से तराई परगना तक ही सीमित थे। ये थारू बहुत ही दिलचस्प लोग हैं और इनका विस्तृत

उल्लेख किया जाना चाहिए, क्योंकि वे प्रान्त के किसी भी अन्य ज़िले की तुलना में नैनीताल में कहीं अधिक संख्या में हैं। यह गढ़वाल के निचले इलाकों और हिमालय की तराई में गोरखपुर जिले तक पूर्व में भी पाये जाते हैं। इस ज़िले में वे कोसी से पूर्व की ओर पाए जाते हैं और मुख्य रूप से किलपुरी और नानकमत्ता के परगना में पाये जाते है। वे एक जनजाति प्रतीत होते हैं जो महिलाओं के पक्ष में शाही वंश का दावा करते हैं। कहानी यह हैं कि एक बार की बात हैं, सुदूर अतीत में जब इन भागों के राजा एक आक्रमणकारी की सेना से हार गए थे तो शाही महल की महिलाएँ दुश्मन के हाथों में पड़ने की बजाय, महल के साइरस (घोड़ों की देखभाल करने वाले) और चमार (मोची) के साथ जंगलों में भाग गयी, इन्हीं से थारू और भोक्सा दो स्वदेशी जातियाँ उत्पन्न हुई, पहला चमारों से दूसरा साइरस से।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (नेविल, 1904, पृ. 107-108)

दूबे (1977) की पुस्तक 'ट्राइबल हेरिटेज ऑफ़ इंडिया' में नेविल (1904, पृ. 107) की यही कहानी उद्धृत है जो नेविल की उपर्युक्त बात को पुष्टि प्रदान करती है।

आगे नेविल (1904) लिखते हैं कि

"इस परम्परा में सच्चाई का जो भी तत्व हो, दो तथ्य उल्लेखनीय हैं: पहला, यह कि केवल भुक्सा ही हिन्दुओं का पवित्र धागा पहनते हैं, और दोनों जातियों में ही घर की महिलायें पुरुषों की तुलना में कही अधिक ऊँचा स्थान रखती हैं। वास्तव में एक थारू पत्नी सदैव सामाजिक रूप से अपने पति को अपने से निम्न समझती है। यह संभव हैं कि यह प्रथा बहुपतित्व का अवशेष हो; लेकिन यह मात्र एक सुझाव है, क्योंकि इसे साबित करने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं है। थारू मूलत: जंगलों के लोग हैं; जंगलों और नदियों से अलग होने पर वे कभी खुश नहीं होते हैं। वे एक अच्छे शिकारी और मछली पकड़ने वाले सरल, खुशमिजाज़ लोग जो जंगल की भावना के साथ गहराई से ओत-प्रोत हैं, जो उनके लिए उनका घर है। वे भी जंगलों में रहने वाली अन्य जातियों की तरह अत्यधिक अन्धविश्वासी हैं।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (नेविल, 1904, पृ. 107-108)

[II] द्वितीय मत- थारु जनजाति का संबंध शाक्य वंश से है:

धामी (2019) ने इस सन्दर्भ में प्रमुख भारतीय व नेपाली अध्ययनों में मिले कुछ तथ्यों को प्रस्तुत किया है, जो निम्नवत हैं:

1. सुप्रसिद्ध नेपाली इतिहासकार बाबूराम आचार्य ने अपने आलेख 'थारूहरु को मूल घर कहां' में थारूओं की उत्पत्ति नेपाल से बताते हुए इन्हें नेपाल का मूल निवासी बताया है।

2. शर्मा (2018) अपनी पुस्तक 'होमो समाज एक अध्ययन' में इन्हें शाक्य वंशी मानते हैं।

3. डॉक्टर केशव मान थारूओं का मूल शाक्य वंश से होने का दावा करते हैं।

4. पुरातत्व विभाग का मुखपत्र 'प्राचीन नेपाल पत्रिका संख्या 30-39' में वर्णित है कि 500 वर्ष पहले राणा थारु कैलाली कंचनपुर में निवास नहीं करते थे और ना ही दंगोरा थारू करते थे। यह दोनों जातियाँ शमशेर राणा की कालावधि में कैलाली, कंचनपुर में आकर बसी थीं।

5. एफ. ई. पार्गिटर (1922) ने अपनी पुस्तक 'एंशियेंट हिस्टोरिकल ट्रेडीशन ऑफ़ इंडिया' में लिखा है कि थारू बुद्ध की परम्परा के धरोहर हैं।

6. संकुचि ने अपने ब्लॉग 'द रियल स्टोरी ऑफ थारूज' में रामानंद प्रसाद सिंह (एक्स अटॉर्नी जनरल ऑफ़ नेपाल) जिन्होंने पटना में 17 मई 1988 को एक प्रेस कांफ्रेंस में थारू की मूल उत्पति के बारे में जो साक्ष्य प्रस्तुत किया है, को उद्धृत किया है कि ये मूलत: नेपाल निवासी हैं और इनकी उत्पति का मूल स्थल नेपाल का कपिलवस्तु जिला है। मूलत: ये उत्तर प्रदेश, नेपाल और बिहार के तराई वनाच्छादित क्षेत्रों में बसे हुए हैं। ये शाक्यों के वंशज हैं।

थारू जनजाति के साथ कई रोचक किन्तु अस्पष्ट परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं। इनकी उत्पति संबंधी निश्चित मत स्पष्ट नहीं है। ऐसी ही एक रोचक कथा है जिसे कार्लाइल (1879) की 'रिपोर्ट ऑफ़ टूर्स इन द सेंट्रल दोआब एंड गोरखपुर इन 1874-75 एंड 1875-76' में निम्नवत वर्णित किया गया है-

'थारू' दावा करते हैं कि वे भुईला के संस्थापक थे, जिसे मैंने कपिलवस्तु के रूप में पहचाना है। इन थारुओं के बारे में यह भी लोकप्रियता से कहा जाता है कि वे बस्ती और गोंडा दोनों जिलों में कई अन्य प्राचीन स्थलों के संस्थापक थे। थारू स्वयं कहते हैं कि भुईला उनकी प्राचीन राजधानी थी। वास्तव में थारू, वे प्राचीन लोग हैं जिन्हें इस हिस्से के लगभग सभी प्राचीन स्थलों की स्थापना का श्रेय स्थानीय लोगों द्वारा दिया जाता है। जैसा कि मैंने कहा है कि पहाड़ी थारू खासों या खासियाओं और मगरो के निकट पडोसी हैं, और मेरे पास यह मानने का कारण है कि थारू उसी जाति के हैं, या उसी वंश से उत्पन्न हुए हैं, जिससे खासा और मगर हैं। लेकिन अगर थारू भुईला के संथापक थे, और अगर भुईला कपिलवस्तु का वास्तविक स्थल है, तो इसका अर्थ हैं कि थारू शाक्यों के वंशज होंगे। निश्चित रूप से इन सभी चौकानें वाले तथ्यों के पीछे कुछ ना कुछ लेकिन महत्वपूर्ण सत्य अवश्य छिपा होगा और कोई भी व्यक्ति ऐसे तथ्यों द्वारा उस पर थोपे गए निष्कर्षों से नहीं बच सकता। थारू एक जनजाति प्रतीत होती हैं जिसके साथ कुछ रोचक लेकिन अस्पष्ट परम्परायें जुड़ी हुई हैं, और जिनकी वास्तविक उत्पति और इतिहास अभी तक किसी भी निश्चितता के साथ स्पष्ट रूप से नहीं जाना जा सका है; हालाँकि थारू को अब आमतौर पर एक प्रकार की पहाड़ी जनजाति के रूप में देखा जाता है, फिर भी यह बहुत निश्चित है, उनकी अपनी परम्पराओं से, साथ ही देश के इस हिस्से के मूल निवासियों के बीच उनके बारे में अभी भी प्रचलित कुछ परम्पराओं से, कि थारू कभी बस्ती ज़िले कभी गोंडा जिले दोनों में मैदानी इलाकों के काफी हिस्से के स्वामी थे, जो मूल रूप से प्राचीन काल में 'कौसल' कहे जाने वाले क्षेत्र का हिस्सा थे। फिर भी जहाँ तक मुझे पता है, थारू नाम वाले किसी व्यक्ति के बारे में कोई जानकारी किसी भी बौद्ध इतिहास से प्राप्त नहीं होती है। अगर, थारू वास्तव में उस राज्य की सीमा के भीतर एक प्राचीन लोग थे जिनकी राजधानी कपिलवस्तु थी, तो या तो इतिहास उनके बारे में बेवजह चुप है, या फिर जो लोग अब 'थारू' के नाम से जाने जाते हैं, वे प्राचीन काल में किसी और बिलकुल अलग नाम से जाने जाते होंगे। शायद, जैसा कि मुझे संदेह है और जैसा कि मैंने पहले ही सुझाया है, थारू संभवत: उसी जाति की एक शाखा रहे होंगे जैसा कि 'खास' या 'खस्या', और 'मग', 'मैगस' या 'मगर', जो अब भी नेपाल की पश्चिमी सीमा पर एक पहाड़ी जनजाति हैं।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (कार्लाइल, वॉल्यूम XII, 1879, पृ. 133-34)

[III] तृतीय मत- थारु जनजाति का संबंध मंगोल प्रजाति से है:

धामी (2019) ने इस सन्दर्भ में कुछ तथ्यों को प्रस्तुत किया है, जो निम्नवत हैं:

1. प्रोफेसर डोर बहादुर बिष्ट (1987) ने अपनी पुस्तक 'पीपुल ऑफ़ नेपाल' में थारुओं को आकृति के आधार पर मंगोल माना है।
2. थारू की उत्पत्ति के संबंध में लेखक तारानाथ लामा अपनी किताब 'हिस्ट्री आफ बुद्धिस्ट' में बताते हैं कि थारू मंगोलियाई मूल के हैं। इस पुस्तक का अनुवाद लामा चिम्पा और अलका चटोपाध्याय ने किया है।
3. डॉक्टर मजूमदार ने सीरोलॉजी के आधार पर शोध कार्यों का साक्ष्य देते हुए थारूओं की पहचान मंगोल प्रजाति से की है जो मध्य एशिया के मूल निवासी थे।
4. रिजले (1892) ने अपनी पुस्तक 'ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स इन बंगाल' में मिश्रित प्रजाति समूह के सदस्य के रूप में थारू जनजाति की पहचान की है और शारीरिक विशेषताओं के आधार पर इनकी पहचान मंगोलॉयड से की है।
5. श्रीवास्तव (1958) ने अपनी पुस्तक 'द थारुज ए स्टडी इन कल्चर डायनामिक्स' में नैनीताल में निवास करने वाले थारुओं को राजपूत से संबंधित माना है तथा अन्य क्षेत्रों में निवास करने वाले थारू समूह को मंगोल प्रजाति का माना है।

[IV] चतुर्थ मत- थारु जनजाति का संबंध किरात वंश से है:
1. प्रपन्नाचार्य (2000) अपनी पुस्तक 'प्राचीन किरात इतिहास' में इन्हें किरात वंश का मानते हैं।
2. 'संस्कृति के चार अध्याय' में रामधारी सिंह दिनकर (1962) लिखते हैं कि उत्तर भारत और बिहार में विशेषत: तिरहुत में जो गौर वर्ण के लोग हैं उनका सम्बन्ध भी किरात रक्त से रहा होगा। इस प्रकार इन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से थारू समूह का संबंध किरात वंश से जोड़ा है।

इसके अतिरिक्त बैरागी काइला, डॉक्टर स्वामी प्रपन्नाचार्य व कुछ अन्य विद्वानों ने थारू जिनका निवास स्थान पूर्वी हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों में था, को किरातवंशीय बताया है। किंतु इस तर्क की सत्यता पर विश्वास करना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि थारू लोगों का निवास स्थान भारत और नेपाल के बीच तराई समतल और वनों के अंदर पाया जाता है ना कि पर्वतों की कंदराओं में। दूसरा यह कि किरात बर्बर कुशल योद्धा के रूप में देखे जाते हैं किंतु थारू समुदाय कुशल आखेटक व सीधे-साधे, भोले-भाले कृषक की भूमिका में नजर आते हैं। उनकी शारीरिक बनावटों को देखते हुए इनका संबंध किरात से करना उचित प्रतीत नहीं होता। इसलिए कह सकते हैं कि थारू प्राचीन समय से जंगल में रहने वाली जनजाति है, जो भारत के बड़े तराई वाले मैदानी भूभाग पर निवास करती आयी है।

[V] पंचम मत- थारु जनजाति का संबंध द्रविड़ से है:
1. नेसफील्ड (1885) इन्हें मूलतः द्रविड़ वंश का मानते हैं।
2. क्रूक (1896) थारू के बारे में एक अन्य किंवदन्ती उद्धृत करते हैं जो उनके संरक्षक संत या संस्थापक के इर्दगिर्द घूमती है-
"खेरी के थारू लोगों के बीच प्रचलित किवदंती के अनुसार, यह देवता संस्थापक प्रसिद्ध जनजातीय राजा, राजा बेन या वेन या वेना का पुत्र था, जिसका नाम आज भी उत्तरी भारत और बिहार के कई सबसे पुराने शहरों में प्रचलित है, जो

पुराने समय में चक्रवर्ती या सार्वभौमिक सम्राट का पद और उपाधि धारण करता था। मनु स्मृति में उन्हें (राजा वेन), पहले राजा के रूप में कलंकित किया गया है जिसने एक व्यक्ति को अपने मृतक भाई की पत्नी से विवाह करने की अनुमति दी थी। मनु के अनुसार वह बेलगाम वासनाओं के प्रभाव से मर गया। विष्णु पुराण के अनुसार, संतों के एक गिरोह ने धारदार घास की पत्तियों से पीट-पीट कर मार डाला, जिनमें से सभी को जादुई शब्दों से पवित्र किया गया था। बेनबन अभी भी विन्ध्य पर्वतमाला पर कई द्रविण जनजातियों की उपाधि है। कहा जाता हैं कि रक्ष या रिखेश्वर को उसके पिता के दरबार से निष्कासित कर दिया गया था और उसे अपने पुरुष अनुयायियों के समूह के साथ उत्तर में नया घर तलाशने का आदेश दिया गया था, जहाँ से उन्हें कभी वापस नहीं लौटना था। अपने भ्रमण पर निकलते समय, वे रास्ते में किसी महिला को चुरा लेते थे या उसे पकड़ लेते थे,और इस तरह थारू जनजाति की स्थापना हुई। जब तक वे उप-हिमालयी जंगल में नहीं पहुच गए, जहाँ वह अभी भी रहते हैं, तब तक उन्होंने आराम करने और बसने का फैसला नहीं किया। माना जाता हैं कि रक्ष की आत्मा अभी भी अपने क़बीले के लोगों के बीच मंडराती है, ठीक वैसे ही जैसे प्राचीन दिनों में उसने उन्हें सुरक्षित रूप से विस्तृत जंगल के बाहर निकाला था। इसलिए आज के समय में उसे दूर की यात्रा पर जाने वाले लोगों का संरक्षक और मार्गदर्शक कहा जाता है। कोई भी थारू अपने गाँव से ऐसे उद्देश्य के लिए पहले उसे उपहारों से प्रसन्न किये बिना और उसके वापस लौटने पर मांस, दूध और शराब की शानदार दावत का वादा किये बिना कभी नहीं निकलता। उसकी उपस्थिति मिट्टी के एक टीले से दर्शायी जाती है, जिसके बीच में एक पत्थर लगा होता हैं, और वह इस पत्थर पर एक जीवित कैपोन के खून को देखकर प्रसन्न होता है। इस देवता की एक खासियत यह है कि वह बहरा है, जो इसकी प्राचीनता का प्रतीक है। इसलिए व्रत और प्रार्थनाओं के दौरान उसे आवाज के एक जोरदार लहजे में संबोधित किया जाता है, गुरुवा की उपाधि, जो आमतौर पर उसके नाम के आगे लगाई जाती है, इसका अर्थ है कि पृथ्वी पर अपने निवास के दौरान वह एक जादूगर या औषधि पुरुष के रूप में प्रसिद्ध था, और इस माध्यम से उसने अपने क़बीले का शासन या नेतृत्व प्राप्त किया था।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (क्रूक, 1896, पृ. 384)

[VI] षष्ठ मत- थारु जनजाति का संबंध थार क्षेत्र से तथा राजपूत वंशों से है:

क्रूक (1896) ने मिस्टर नोल्स को उद्धृत करते हुए लिखा है कि-

"वे दक्षिण या दक्षिण देश से आये अप्रवासी थे। बिजनौर में वे चित्तौड़ को अपना मूल स्थान बताते हैं और जयमल और पत्ता का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं कि 1567 ई. में अकबर द्वारा चित्तौड़ की तीसरी घेरबंदी में उन्हें बाहर निकाल दिया गया था; वे मूल रूप से राजपूत थे, जिन्होंने शराब का सेवन करने और मुर्गियाँ पालने के कारण अपनी जाति खो दी थी। वे कभी भी गोरखा या पहाड़ी मूल का दावा नहीं करते। उनके साथ अन्य जनजातियाँ भी हैं जिन्हें आमतौर पर थारू कहा जाता हैं, लेकिन वह काफी अलग हैं, जैसे की गहरवार जो राजपूत होने का दावा करते हैं। वे कभी भी थारू के साथ विवाह नहीं करते या उनके साथ भोजन नहीं करते, शराब से परहेज़ करते हैं और कभी भी मुर्गियाँ नहीं खाते। फिर से, डंगरा के रूप में, थारू द्वारा अन्य लोगों को निचली जाति के रूप में देखा जाता है।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (क्रूक, 1896, पृ. 382)

क्रूक (1896) चितौड़ की कहानी के बारे में मि. नेसफील्ड को उद्धृत करते हुए कहते हैं-

"कुछ थारू इस परम्परा के बारे में कुछ नहीं जानते हैं, और जो जानते हैं वह आपको यह बताने में सक्षम नहीं हैं कि यह अलाउद्दीन खिलज़ी (1303 ई.) द्वारा लूटा गया था, या बहादुर शाह (1533 ई.) द्वारा या अकबर (1567 ई.) द्वारा लूटा गया था। यह कहानी पहले नज़र में ही बेतुकी हैं; इनमें से किसी भी घटना के सम्बन्ध में थारू का जरा भी संकेत मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा नहीं दिया गया है। राजपूताना से आने का दावा कुछ कबीलों ने सिर्फ अपने अपने और अपने पड़ोसियों के सम्मान में खुद को ऊपर उठाने के लिए गढ़ा था। उत्तरी भारत में शायद ही कोई शिकारी जनजाति या जाति होगी जिसने ऐसा दावा ना किया हो।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (क्रूक, 1896, पृ. 383)

थारू जनजाति के भारतीय मूल के होने के सम्बन्ध में प्रमुख तर्क:

क्रूक (1896) ने 'द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ़ द नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सस एंड अवध' (1848-1923) के उपशीर्षक 'एथिकल एफिनिटीस ऑफ़ द थारू' में डॉ. ओल्डम का मत प्रस्तुत किया है, जिनका मानना है कि थारू भारतीय हैं और निश्चित रूप से तातार हाई लैंड की जातियों से बहुत अलग हैं। यह बात पूरी तरह से तय है कि इस जनजाति में बहुत अधिक मिश्रण हुआ है। आगे मिस्टर नेसफील्ड के हवाले से क्रूक लिखते हैं:-

"पिछली दो या तीन शताब्दियों में थारू पुरुषों व नेपाली महिलाओं के बीच हुए अंतर्जातीय विवाहों के कारण थारू जनजाति की शारीरिक बनावट कुछ मामलों में थोड़ी मंगोलियन जैसी हो गयी है, जो मुख्य रूप से तिरछी आँखें और उभरी गालों की हड्डियाँ से पता चलती है। अन्य मामलों में उनकी शारीरिक विशेषताएँ पूरी तरह से भारतीय प्रकार की है। उनके लम्बे, लहराते बाल हैं, उनका रंग गहरा है, और चेहरे और शरीर पर उतने ही बाल हैं जितने भारत में अन्य मूल निवासियों में होते हैं। कद, बनावट, चाल में वे स्पष्ट रूप से भारतीय हैं न कि मंगोलियन; न ही उनके पास ऐसी कोई परम्परा है जो उनके मूल को नेपाल से जोड़ती हो।" (अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (क्रूक, 1896, पृ. 384)

क्रूक (1896) की उपरोक्त पुस्तक में एक और चर्चा इस प्रकार मिलती है कि मिस्टर रिसले के एक संवाददाता ने उनकी (थारूओं की) छोटी दाढ़ी की कम लम्बाई पर टिप्पणी की, लेकिन यह विशिष्टता नेपालियों के साथ क्रासिंग के कारण हो सकती है।

इसी क्रम में क्रूक (1896) की पुस्तक में मिस्टर नोल्स का दिया हुआ एक कथन इस प्रकार उद्धृत है कि

"कुछ महिलाएँ बहुत गोरी हैं, चेहरे और शरीर दोनों में अच्छी दिखती हैं; हालाँकि वे आमतौर पर मंगोलियन शैली की विशेषताओं को अपनाती हैं। वो खुद को असली साबित करती हैं, इनकी बेटियाँ अपने तामझाम के कारण मशहूर हैं। उन्हें भारी चाँदी के बाजूबंद, कंगन, पायल, नाक की नथ और मोतियों और कई रंग-बिरंगे सीपियों के हार से खुद को सजाना पसंद है। वे अपने लम्बे काले बालों को गांठों में नहीं बांधती हैं, बल्कि पीछे की ओर एक लम्बे सींग की तरह लपेटती हैं। पानी का अधिक बार छिड़काव करने से उनकी चमकीली पीली त्वचा अधिक गोरी और स्वस्थ दिखती है। चावल की बुवाई के मौसम में लगातार भीगने से उनके पैर के अंगूठे और उंगलियोंके नाखून ख़राब हो जाते हैं।"(अंग्रेजी मूल का हिन्दी रूपांतरण) (क्रूक, 1896, पृ. 385)

क्रूक (1896) द्वारा वर्णित उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि थारू मूलत: भारतीय जनजाति हैं, जिन्होंने नेपाली और अन्य पहाड़ी जातियों के साथ गठबंधन करके कुछ हद तक मंगोलियन शारीरिक बनावट हासिल कर ली है।

उपलब्ध साक्ष्यों की पड़ताल करने पर ऐसा लगता है कि थारुओं की उत्पति के सन्दर्भ में अधिकतर मान्यताएँ थारुओं को एक जंगली हिन्दू जनजाति बताती हैं, जो हज़ारों वर्षों से तराई क्षेत्र में निवास करती आ रही है साथ ही इन्होंने नेपाली और अन्य पहाड़ी जनजातियों के साथ गठबंधन करके कुछ हद तक मंगोलियन शारीरिक बनावट हासिल कर ली है। थारू जनजाति की उत्पत्ति और इतिहास को लेकर विभिन्न मत है। थारू प्राचीन काल से ही भारत के निवासी हैं, इस बात के प्रमाण प्रारंभिक काल से मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं, फिर भी कुछ स्थानीय लोग इनकी ऐतिहासिक उत्पत्ति महाराणा प्रताप के वंशज होने से जोड़ते हैं और यह भी बताते हैं कि जब मुगलों ने राजस्थान के राजपूताना राज्यों पर आक्रमण कर दिया तो ये राजस्थान के थार से पलायन कर तराई में आ बसे। कुछ विद्वान थारूओं को मंगोलियन मूल का तथा कुछ अन्य विद्वान शाक्यों के वंशज मानते हैं। कुछ मानवविज्ञानियों ने थारूओं को ऐतिहासिक किरातों के वंश का माना है। कुछ, थारुओं को द्रविड़ों के वंशज मानते हैं। थारुओं से पूछने पर वे स्वयं को महाराणा प्रताप का वंशज बताते हैं और अपना मूल निवास क्षेत्र थारभूमि बताते हैं। इतने सारे मत होने के कारण इस जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में विभ्रम बना हुआ है। परंतु इस बात के भी अनेकों संदर्भ मिलते हैं कि थारू जनजाति का इतिहास हजारों वर्षों पुराना है। वैदिक काल और स्मृति काल में भी इनके संदर्भ मिलते हैं। यह प्राचीन समय से ही तराई निवासी हैं कहीं से भी विस्थापित होकर नहीं आए हैं। हाँ, इतना अवश्य हो सकता है कि कुछ आबादी थार रेगिस्तान से तराई में आ बसी हो जिसका कारण प्राकृतिक आपदाएँ या युद्ध हो सकता है। जल, जमीन, जंगल, पहाड़, व परम्पराओं के संरक्षण, संवर्धन व सुरक्षा करने वाले थारू हमेशा से ही सनातनी रहे हैं। अतः निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारत के तराई क्षेत्र के बड़े भूभाग पर थारू जनजाति प्राचीन समय से निवास करती आ रही है यह कहीं से विस्थापित होकर नहीं आए हैं बल्कि यही के मूल निवासी हैं। भारत में बहुत सारी अलिखित परम्परायें देखने को मिलती हैं जहाँ किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन होता है वह समाज में इज्जत पाने के लिए अपना संबंध पूर्व के उच्च इतिहास-पुरुषों से जोड़ लेता है ऐसा कुछ थारुओं के साथ भी हुआ होगा ताकि उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बनी रहे और वे स्वयं में हीनभावना से ग्रसित ना हों।

संदर्भ सूची

1. Asiatic Society of Bengal. (1847). Journal of the Asiatic Society of Bengal. Calcutta: Printed at the Baptist Mission Press [etc.], 450

2. Bahadur, D. B. (1987). People of Nepal, Kathmandu. Ratna Pustak Bhandar.

3. Carlleyle, A.C.L. (1879). Report of Tours in the Central Doab and Gorakhpur in 1874-75 And 1875-76. Calcutta, Office of the superintendent of government printing, XII, 136.

4. Chimpa, L., & Chattopadhyaya, A. (1970). Taranath's history of Buddhism in India. Motilal Banarsidas Publishers Private Limited, Delhi.

5. Crooke., W. (1896). The Tribes and Castes of North- western Provinces and Oudh (In four Volumes): Vol 4. Calcutta: Office of the Superintendent of Government Printing, Pp 381.

6. Dinkar, R. S. (1962). Sanskriti Ke Char Adhya. Patna-Udayachal Publications.

7. Dube, S. C. (1977). Tribal Heritage of India: Ethnicity, Identity and Interaction, Vikas Publishing House PVT LTD, New Delhi, 1, 37.

8. Flowden, W. C. (1865). Census of the north-western provenance report: Appendix B. At the Government Press, Allahabad, 1, Appendix 'B', 61.

9. Government of Uttar Pradesh. (1877). Gazetteer of the Province of Oudh, Allahabad, North-Western Provinces and Oudh Government Press, 2(H to M), 126.

10. Knowles, S. (1889). The Gospel in Gonda: Being a Narrative of Events in Connection with the trans ghaghara country. Methodist Pub. House, 213.

11. Majumdar, D. N. (1944). The Fortunes of Primitive Tribes. The Universal Publishers Limited, 67.

12. Mayar, K., & Duel, P. (1993). The Tharu barka naach: a rural folk art version of the Mahabharat as told by the Dangura Tharu of Jalaura, Dang Vally, Nepal 1998. Lalitpur, Nepal: Himal Books; Los Angeles, CA: Deuel Purpose.

13. Nesfield, J. C. (1885). Description Of the Manners, Industries and Religion oh the Tharu and Bhogsa Tribes of Upper India; Calcutta: Calcutta Revenue Office

14. Nevil, H.R. (1904). Nani Tal: a Gazetteer volume XXXIV of the District Gazetteers of the United Provinces of Agra and Oudh. Printed at the Government Branch Press, Lucknow, 107.

15. Pargiter, F. E. (1922). Ancient Indian Historical Tradition. Oxford University, London.

16. Pati, R.N. and Lalitendu J. (1991). Tribal Demography in India. New Delhi: Ashish Publishing House, 115.

17. Prapannacharya, S. (2000). Prachin Kirat Itihas. Panchthar, Kitareswar Prakashan.

18. Risley, H.H. (1892). Tribes and castes of Bengal, Berlin National Library, Pp 312-321, Vol 2.

19. Sankuchy. (2009, July 7). Voice Of Tharus: The real story of Tharus. https://tharuculture.blogspot.com/2009/07/real-story-of-tharus.html?m=1

20. Sharma, J. L. (2018). Homro Samaj EK Adhyayan. Manjari publication.

21. Sherring, M. A. (1872). Hindu Tribes and Castes, 1, 379.

22. Uttar Pradesh (India) (1992). Uttar Pradesh District Gazetteers: Nainital Gazetteer of India Volume 41 of Uttar Pradesh District Gazetteers, Uttar Pradesh (India), Government of Uttar Pradesh, 83.

23. पुरातत्व विभाग को मुखपत्र. (30-39). ऐनसियनट नेपाल. जर्नल ऑफ़ दडिपार्टमेंट ऑफ़ आर्कियोलोजी. प्रकाशक श्री ५ को सरकार, संस्कृति, पर्यटन तथा नागरिक उड्डयन मंत्रालय पुरातत्व विभाग, काठमांडू, नेपाल, 66.

24. बाबूराम, आ. थारुहरू को मूल घर कहाँ. नेपाली संस्कृति पत्रिका, वर्ष -2, अंक-2.

25. रेग्मी, आर.के. आर. (कार्तिक 2028). पूर्वी नेपालमा धिमाल. संख्या 17, 19-51.

26. श्रीवास्तव, एस. के. (1958). द थारुस ए स्टडी इन कल्चर डायनामिक्स. आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस

22

संविधान में निहित विकास एवं पर्यावरणीय मूल्य: एक अवलोकन

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा
सहायक आचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, उत्तराखंड
डॉ. मनस्वी सेमवाल
असिस्टेंट प्र, राजनीति विज्ञान, ग्राफिक एरा यूनिवर्सिटी, देहरादून

संविधान किसी समाज को एक निश्चित दिशा और आकार देता है। साथ ही, संविधान, समाज के साथ अंतर्क्रिया करते हुए समाज के मूल्य, विश्वास एवं आदर्शों से प्रभावित होता है। भारतीय संदर्भ में, संविधान स्वयं विकास का परिणाम रहा है। संविधान सभा द्वारा संविधान को भारतीय मूल्यों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप बनाया गया। औपनिवेशिक राज के अधीन रहते हुए भारतीय समाज पिछड़ेपन से ग्रस्त हुआ। इसके विपरीत, उपनिवेशवादी स्वामी राज्य निरंतर विकासमान रहे। संविधान निर्माण करते हुए राष्ट्र के विकास का प्रश्न उपस्थित था। शिक्षा, स्वास्थ्य की उपलब्धता एवं भीषण गरीबी को दूर करना लक्ष्य था। संविधान चूंकि एक जीवंत दस्तावेज है, इसलिए यह समयानुकूल परिवर्तन की मांग करता है। संशोधनों के माध्यम से संविधान नवीन विकास अपेक्षाओं को पूरा करता है। विकास का सीधा अर्थ वर्तमान दशा से आगे बढ़कर बेहतर जीवन एवं परिस्थितियों को प्राप्त करना है। वृद्धि, प्रगति और परिवर्तन विकास की अनिवार्य शर्तें हैं। विकास, एक अमरीकी धारणा है, जो राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन द्वारा प्रतिपादित की गई। इसका तात्कालिक अर्थ युद्धकाल के बाद योरोपीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निमाण और औद्योगिक रूप से पिछडे तृतीय विश्व को सहायता से प्रदान करने से था।1

आज विकास राष्ट्रीय और स्थानीय राजनीतिक विमर्श की महत्वपूर्ण धारणा बन गई है। सरकार के कार्यों की जांच का मापदण्ड विकास ही है और यह आर्थिक वृद्धि से मापा जा सकता है। आर्थिक मापदण्ड की कुछ सीमाएं हैं लेकिन यह विकास को जांचने की सरल एवं प्रभावी तकनीक है। संविधान के लागू होते समय नीति निर्माताओं के समक्ष दो विकल्प थे- पहला, अमरीकी प्रतिमान और दूसरा सोवियत प्रतिमान। बहुत सावधानी से मध्यम मार्ग अपनाते हुए मिश्रित प्रतिमान स्वीकार किया गया।2 संविधान पर्यावरण संरक्षण की भावना को भी समाहित करता है। वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय विमर्श से राष्ट्रीय राजनीति भी प्रभावित हुई है।

विकास की अवधारणा

विकास निरंतर प्रगति की ओर संकेत करता है और इसे वृद्धि का समानार्थी माना जाता है। परिवर्तन; विकास की प्राथमिक शर्त है। विकास की बौद्धिक चर्चा पुनर्जागरण और प्रबोधन के युग में प्रारंभ हुई। इससे पूर्व अरस्तु द्वारा प्रदत्त चक्रीय सिद्धांत को मान्यता मिली हुई थी। चक्रीय सिद्धांत मानता था कि प्रगति का पथ गोलाकार और घुमावदार है जो पुनः अपने प्रारंभ स्थल तक जाती है लेकिन उत्तरोत्तर वृद्धि का विचार हीगल के दर्शन में स्पष्टता से देखा जा

सकता है। हेगल ने प्रगति के मार्ग को टेड़ा मेड़ा लेकिन आगे की ओर अग्रसर माना। विकास रेखीय होता है; हीगल ने इस बात को प्रमाणित किया। मार्क्स द्वारा हीगल के इस विचार को अपनाया गया।3

वर्तमान में यह स्वीकार कर लिया गया है कि प्रगति एक निश्चित दिशा में होती है। यद्यपि प्रगति पथ पर कुछ उतार चढ़ाव होते है। विकास का संबंध चूंकि परिवर्तन से है अतः, विकास में सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिवर्तन की अपेक्षा रखी जाती है। इसके साथ, विकास में परिवर्तन का एक सांस्कृतिक पक्ष भी है। सामाजिक परिवर्तन में विकास सिद्धांत अपेक्षा करता है कि जीवन की गुणवत्ता में सुधार होना चाहिए। आयु प्रत्याशा सामाजिक विकास की प्राथमिक शर्त है। यदि किसी समुदाय में जीवन जीने की उचित सुविधाएं उपलब्ध है तो जीवन गुणवत्तापूर्ण होता है। समाज में मृत्यु दर का न्यून होना, पोषण की उपलब्धता और शिक्षा सामाजिक विकास के सूचक है। समानता और स्वतंत्रता विकास के मापदंड है। इनके बिना विकास का विचार अधूरा है। राजनीतिक विकास में लोकतंत्र, समानता और तार्किकता भी आवश्यक है। राजनीति का लौकिकीकरण राजनीतिक तौर पर विकास का अनिवार्य लक्षण है। आश्चर्य की बात नहीं है कि विश्व के प्रधान लोकतंत्र धर्मनिरपेक्षता का अनुसरण करते हैं।

विकास का आर्थिक पक्ष सबसे अधिक सरलता से समझा जा सकता है।अर्थशास्त्रियों द्वारा वृद्धि की चर्चा की जाती है। आर्थिक वृद्धि का आम जन-जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। आर्थिक वृद्धि समाज में प्रसन्नता बढ़ाती है यह मान्य विश्वास है। आर्थिक विकास की सबसे प्रभावी बात यह है कि यह मापन योग्य है। वृद्धि गणना योग्य होती है इस कारण से भी आर्थिक विकास को पूर्णतया विकास मान लिया जाता है। सबसे पहले विकास को सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) से मापा गया अर्थात जो राष्ट्र अधिक से अधिक उत्पादन करता है; समृद्ध होता है। लेकिन वितरण के प्रश्न को सुलझाने के लिए प्रति व्यक्ति आय को मापदंड बनाया गया है। जीडीपी इस बात की पुष्टि नहीं कर सकता था कि समृद्धि का बंटवारा किस प्रकार का है और बड़े आकार और बड़ी जनसंख्या के राष्ट्र के जीडीपी का अधिक होना स्वाभाविक था।

20वीं के उत्तरार्ध में मानव विकास सूचकांक को विकास का मापदंड माना जाना प्रारंभ हुआ। मानव विकास सूचकांक व्यापक मापदंड है। यह सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक सभी पक्षों को स्वयं में समाहित करता है। प्रायः देखा गया है कि उच्च जीडीपी वाले राष्ट्र में भी सभी वर्गों में मानव विकास का स्तर समान नहीं होता। कुछ व्यक्ति समृद्धि से अछूते रह जाते हैं। मानव विकास के संकेतक प्रयास करते हैं कि किसी राष्ट्र में रहने वाले मानवीय समाज प्रगति की ओर अग्रसर होने चाहिए। वर्तमान में मानव विकास की प्रतिवर्ष वरीयता सूची निकाली जाती है। यह विकास का एक ऐसा संकेतक है जो पूर्व के मापदंडों से अधिक समावेशी है। इस कारण मानव विकास के लिए आवश्यक दशाओं पर कार्य करने के लिए राष्ट्रीय सरकार बाध्य होती है। एकपक्षीय विकास को बहुआयामी बनाने में विकास के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक पक्ष सभी को सम्मिलित करना अनिवार्य है।

मानव विकास का प्रभावी विचार भी, सर्वमान्य और दोष रहित हो यह संभव नहीं है। कुछ राष्ट्रों द्वारा मानव विकास सूचकांक के मापदंड को अधूरा माना गया है। इसमें सऊदी अरब और भूटान जैसे देश हैं। बौद्धिक चर्चाओं की सूचकांकों की सीमाओं को स्वीकार किया जाता है। विकास का एक सांस्कृतिक आयाम भी है। विकास के प्रति (विशेषतः आर्थिक) अपेक्षा और आकांक्षाएं सभी समुदायों में समान नहीं हो सकती।

आर्थिक गतिविधि के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे विश्वास मूल्य और कार्यकलाप होते हैं, जो कम महत्वपूर्ण नहीं है। संस्कृति की रक्षा और संवर्धन कुछ ऐसे ही विषय हैं। भूटान ने आधिकारिक रूप में विकास मापदंड ' राष्ट्रीय सकल प्रसन्नता' घोषित किया है। भूटान का मानना है कि मानव विकास के मापदंड भौतिक संसाधनों की उपलब्धता और पर्याप्तता से जुड़े हुए हैं। किसी भी विकास योजना का लक्ष्य प्रसन्नता होना चाहिए लेकिन मानव विकास का वैश्विक मापदंड प्रतिस्पर्धा और तनाव को बढ़ा रहा है। आध्यात्मिक उन्नति भौतिक आवश्यकताओं से ऊंची है और प्रसन्नता की गारंटी कर सकती है।4

विकास अवधारणा का ऐतिहासिक विकास

विकास की अवधारणा बौद्धिक विमर्श में नयी है। 17-18 सदी में परिवर्तन, प्रगति, वृद्धि को विकास का पर्याय माना गया। विकास शब्द, फोटोग्राफी और बायोलॉजी में प्रमुखता रखता है। समाज विज्ञान में विकास का प्रवेश 19वीं 20वीं शताब्दी में हुआ है। विकास को अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक वृद्धि से जोड़ने के परिणास्वरूप विकास शब्द प्रचलित हुआ। राजनीतिक विमर्श में विकास शब्द को स्थापित करने का श्रेय अमेरिकी राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन को जाता है। अपने राष्ट्रपतीय अभिभाषण 1949 में ट्रूमैन ने विकास की पर्याप्त चर्चा की। विकास को ट्रूमैन ने यूरोपीय समाजों के युद्ध पश्चात पुनर्निर्माण और तृतीय विश्व के देशों की समृद्धि से सम्बद्ध किया। बहुत समझदारी से अमेरिका ने इस विकास कार्यक्रम में यूएन को भी सम्मिलित कर लिया।

तृतीय विश्व के देशों ने बाडुंग सम्मेलन में विकास की परिभाषा को स्वीकार किया जो विकासशील राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों में समरूपी बनाना चाहते थे। विकसित राष्ट्र पश्चिमी औपनिवेशिक राष्ट्र थे जो तकनीकी और औद्योगिक प्रगति में उन्नत थे। इनमें आवश्यकताओं की पूर्ति के पर्याप्त साधन थे और सामान्य जीवन में रहन-सहन का स्तर उच्च था। चूंकि ध्यातव्य है कि अमेरिका युद्ध काल में संघर्ष क्षेत्रों से दूर था और पूर्व में विश्व राजनीति से विलग था अतः , पुनः निर्माण की समस्या अमेरिका में नहीं थी। अमेरिका के अधि-उत्पादन प्रतिमान को विकास का मापदण्ड मान लिया गया । अमेरिका में माना गया कि विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों में स्वतः वितरित हो जाएगा।5

अमेरिकी विकास प्रतिमान के अतिरिक्त सोवियत संघ का समाजवादी विकास प्रतिमान भी था। यह औद्योगिक विकास को योजनागत मानते हुए समान वितरण पर बल देता था। ऐसे में तृतीय विश्व के समक्ष दो विकास प्रतिमान के विकल्प थे। दोनों ही विकास प्रतिमान दोषों से मुक्त नहीं थे। पहले तो दोनों पर्यावरण संरक्षण में विचार शून्य थे। भारत में गांधीवादी दर्शन इस दृष्टि से अनोखा था।6 गांधी ने कहा था कि दुनिया मानव के लालच के लिए छोटी है। अब यह विश्वास किया जाने लगा है कि विकास अंतहीन नहीं हो सकता। पृथ्वी पर संसाधनों और उत्तम जीवन की अपेक्षाओं के सापेक्ष इसकी कुछ सीमाएं हैं।

पर्यावरण की अवधारणा

पर्यावरण का सामान्य अर्थ अपने आसपास के वातावरण से लगाया जाता है। बौद्धिक संदर्भ में पर्यावरण एक गहन विचार है। यह न केवल पर्यावरणीय ह्रास को रोकने का संकेत करता है वरन, पर्यावरण का विचार अतिउपभोग का विरोधी है। पर्यावरण को भौतिक पर्यावरण से जोड़ा जाता है लेकिन इसका गहन अर्थ समाज की आवश्यकता एवं पूर्ति के संतुलन को धारित करता है। प्राचीन समय में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता देखी गई है। इसमें प्रकृति का आदर और उपयोग के सीमांकन की संस्कृति से संतुलन कायम रखा गया। भारतीय परंपरा में पीपल वृक्ष के धार्मिक

महत्व और ऋग्वेद के ऋचाओं में वृक्ष को 10 पुत्रों के समान बताने में यह भावना निहित है। यूरोप में 15 से 16 वीं सदी में औद्योगिक विकास ने उत्पादन को बढ़ावा दिया। कम समय में अधिक उत्पादन ने बाजार की मांग से पश्चिम औपनिवेशिक राज्यों में संमृद्धि आई लेकिन पर्यावरण का भारी विनाश हुआ। उपयोग की अनावश्यक प्रवृत्ति ने संसाधनों पर दबाव डाला।

मानव स्वास्थ्य पर औद्योगिक प्रदूषण की समस्या ने पर्यावरण की चिंता को रेखांकित किया। ब्रिटेन का लंदन शहर जिसे औद्योगिक क्रांति का स्थल कहा जाता है, ये बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में धुंध की समस्या पैदा हुई। स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव ने पर्यावरण पर पुनर्विचार करने पर बाध्य किया। इसके पूर्व लंदनवासी आसमान पर धुंध को अपने उन्नति और प्रभाव का सूचक मानते थे। यूरोपीय समाज में बढ़ते असंतोष ने तत्कालीन दशा पर चर्चा करने के लिए (क्लब ऑफ रोम) रिपोर्ट प्रकाशित की। इसे रोम रिपोर्ट से नाम से जाना जाता है। रोम रिपोर्ट में शून्य वृद्धि दर की बात कही गई है। इसका सीधा अर्थ था कि आर्थिक वृद्धि पर पर्यावरण को महत्व दिया जाना चाहिए। स्टॉकहोम रिपोर्ट 1973 में पर्यावरणीय चिंताओं को स्पष्ट रूप से समझा गया और भावी पीढियों को इस से अवगत कराने के लिए पाठ्यक्रम का भाग बनाने का विचार किया। 1988 में ब्रुटलैण्ड कमीशन ने 'अवर कॉमन फ्यूजर' नाम से रिपोर्ट प्रकाशित की। इसमें कहा गया कि हमने अपने वर्तमान को विरासत में नहीं पाया है बल्कि इसे अपने बच्चों से उधार लिया है। इसके निहितार्थ था कि हमारे उपभोग की जीवन शैली हमारी अगली पीढ़ी की सामान्य आवश्यकताओं को भी सीमित करने को बाध्य कर सकती है।

पर्यावरणीय विमर्श में रियो सम्मेलन पर्यावरण ह्रास की साझी चिंताओं को प्रकट करता है। इसे पृथ्वी सम्मेलन कहा गया। क्योटो प्रोटोकॉल पर्यावरण की चिंताओं को समाधान करने का कार्यात्मक प्रयास था।7 वर्तमान में भी पर्यावरण सम्मेलन होते रहे हैं। पर्यावरण चिंतन में आज केवल प्रकृति का संरक्षण ही सम्मिलित नहीं है वरन, अति उपभोग पर नियंत्रण सामुदायिकता और लोकतंत्र की व्यवस्था भी सम्मिलित है। प्रायः पर्यावरण को सीमित अर्थों में पेड-पौधों के संरक्षण से जोड़ा जाता है। लेकिन "पर्यावरणवाद" एक ऐसी जीवन शैली कि मांग करता है कि जहां आर्थिक विकास पर सामाजिक सद्भाव को भी महत्व दिया जाता है।

संविधान में विकास संबंधी मूल्य

संविधान जनता की अपेक्षा और आकांक्षाओं का प्रतिबिंब है। भारतीय संविधान पर यह अक्षरतः लागू होती है। प्रस्तावना मे बहुत सावधानी और विवेक से "हम भारत के लोग" पदावली से प्रारंभ किया गया है। "हम लोग" का तात्पर्य है कि भारतीय कैसा राज्य स्थापित करना चाहते हैं। स्पष्ट रूप से यह गणराज्य के लक्ष्यों की ओर भी संकेत करता है। निश्चित लक्ष्य होने के कारण यह कहना उचित है कि संविधान विकास की ओर प्रेरित है और विकास को धारित भी करता है।

संविधान का विचार किसी निश्चित लक्ष्य और विशद योजना का संकेत करता है। यह शासन की प्रक्रिया भी बताता है। फिर भी, संविधान कानूनों का कानून, सर्वोच्च कानून और संरचना एवं शासन के कार्य निर्धारित करने में महत्वपूर्ण है। संविधान परिवर्तन का औजार है। यह सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन करने के लिए तैयार किया गया दस्तावेज है। राष्ट्रीय एकीकरण, लौकिकता और आधुनिकीकरण के मूल्य संविधान में स्पष्ट दिखते हैं। संविधान इस

बात को सुनिश्चित करता है कि आने वाला भविष्य वर्तमान से बेहतर होगा। इस हेतु राज्य को संविधान में निदेश दिए गए हैं। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय औपनिवेशिक शासन से पूर्णरुप से मुक्त हो कर विकास पथ की ओर अग्रसर हो रहा था। संवैधानिक मूल्य भारत राष्ट्र को बेहतर करने की गारंटी करते हैं, और इसमें भारतीयता और आधुनिक मूल्यों का शानदार सम्मिश्रण है। संविधान में व्यक्ति और समाज के विकास को निश्चित करने के लिए मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धांतों की व्यवस्था की गई है। प्रस्तावना; राष्ट्र के विकास का रोड मैप प्रस्तुत करती है। लोकतंत्र और लौकिकीकरण, राजनीतिक विकास की ओर संकेत करते हैं। प्रगति एवं वृद्धि भारतीय संविधान का सार है। स्थिर राजनीतिक प्रणाली और उत्तरदायी सरकार के लिए संसदीय प्रणाली का चयन विकास की आकांक्षाओं का ही परिणाम था। भारतीय राष्ट्र विकासवान होकर समृद्धि को प्राप्त हो इसलिए राष्ट्रीय एकीकरण किया गया, किंतु विविधता में एकता के आधारभूत सिद्धांत को पर्याप्त स्थान मिला।8

संविधान एक विकासात्मक दस्तावेज है। इसकी पुष्टि भारतीय संविधान की उद्देशिका से होती है। इसे प्रस्तावना भी कहा जाता है। प्रस्तावना संविधान के मूल्य व्यवस्था एवं आदर्शों का प्रतिबिंब है। विकास निश्चित दिशा और लक्ष्य की ओर संकेत करता है। प्रस्तावना भी भारत गणराज्य के लक्ष्यों की ओर सीधा संकेत करती है। हम भारत के लोग शब्दावली लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता को निर्धारक मानती है। राजनीतिक विकास में लोकतंत्र जरूरी शर्त हैं। प्रस्तावना गणराज्य के नागरिकों को बेहतर जीवन की परिस्थिति का संक्षिप्त ब्यौरा देती है। प्रस्तावना भारतीय नागरिकों की विकास की अपेक्षा और आकांक्षा का दर्पण है।9 विदित है कि औपनिवेशिक काल में वृद्धिदर शून्य या नकारात्मक रहती थी। इसके प्रभाव भी स्पष्ट थे। बहुसंख्य जनता अशिक्षित और स्वास्थ्य सुविधाओं से दूर थे। भोजन की सामान्य आवश्यकता भी नहीं उपलब्ध थी। स्वीकार किया जा चुका है कि औपनिवेशक अर्थतंत्र ने भारतीय समाज को भीषण गरीबी में धकेल दिया था।10 पुनः भारतीय समृद्धि को प्राप्त करने के लिए विकास धारणा को स्वीकार कर अमल में लाना एकमात्र विकल्प था।

भारतीय नीति निर्धारकों के समक्ष विकास के दो मार्ग उपलब्ध थे। पहला, विकास का अमेरिकी मॉडल जो पूंजीवाद एवं व्यक्ति आधारित था। दूसरा, सोवियत मॉडल जो समाजवाद एवं समाज का महत्व देता था। व्यष्टि और समष्टि की सैद्धान्तिक बहस प्राचीन काल से अस्तित्व में है। नीति निर्धारकों ने बड़ी चतुराई से मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को स्वीकार किया। इसमें निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को महत्व दिया गया। संविधान में मौलिक अधिकार व्यक्ति के विकास की गारण्टी करते हैं वही निदेशक सिद्धांत समाज की प्रगति की और विकास की बाध्यता को दिखाता है। बाडुंग (इंडोनेशिया) मे विकासशील देशों के सम्मेलन में यह स्पष्ट किया गया कि कोई भी नवोदित राष्ट्र अपने विकास मार्ग को चुनने के लिए स्वतंत्र है। समाजवाद के प्रभाव में योजनागत विकास के अंतर्गत पंचवर्षीय योजना लागू की गई। ऐसी योजनाएं सोवियत संघ को कुछ दशकों में कृषि अर्थव्यवस्था से औद्योगिक समाज में परिवर्तन कर चुकी थी। समाजवाद संपत्ति के समान बंटवारे की ओर संकेत करता है। इस बारे में जे0एल0 नेहरू ने कहा कि हमारा समाजवाद गरीबी का नहीं समृद्धि का समान बटवारा चाहता है। इसके निहितार्थ थे कि पहले एक राष्ट्र एक रूप में हमें समृद्धि अर्जित करने चाहिए और तब वितरण के प्रश्न को उठाना चाहिए। लेकिन कुछ समस्याएं तत्काल समाधान का मांग कर रही थी और इन्हें अनदेखा करना करोड़ों लोगों की बेहतरी की इच्छा को अस्वीकार करना होता। यह समस्या थी भूमि पुनर्वितरण। सन् 1951 में पहला संवैधानिक संशोधन भूमि सुधार से

संबंधित था। यह औपनिवेशिक काल की जमीदारी प्रथा के उन्मूलन का प्रयास था। भूमि (संपत्ति) का अनावश्यक केन्द्रण कुछ लोगों तक सीमित होना सामाजिक असंतोष को जन्म देता था। यह निर्विवाद है कि एक विकासवान समाज में असंतोष न्यूनतम होना चाहिए। संविधान संशोधन के माध्यम से कई परिवर्तनकारी कदम उठाए गए। इनमें सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयास किया गया। 73 वें एवं 74 वें संविधान संशोधन से तृणमूल लोकतंत्र की स्थापना और 86 वें संशोधन से अनु0 21 क में शिक्षा के अधिकार को मौलिक बनाना कुछ उदाहरण है।11 "भारत में आज भी बड़ी आबादी ग्रामीण है। गांव में बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन सामान्य है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं है। ग्रामीण विकास की ओर ध्यान देने से "इंडिया बनाम भारत" की वैचारिक बहस को विराम मिलेगा। इस हेतु पर्याप्त प्रयास भी हुए हैं।12 महात्मा गांधी रोजगार गारंटी अधिनियम से कुछ समय में करोड़ों लोग गरीबी रेखा से ऊपर उठ गए। वर्तमान में सामुदायिकता को बढ़ावा देने के लिये स्वयं सहायता समूह कार्य कर रहे हैं। इन्हें सरकार का निर्देशन और संरक्षण प्राप्त है।13

संविधान में पर्यावरणीय मूल्य

पर्यावरण का विषय 20वीं शताब्दी के आठवें दशक में बौद्धिक विमर्श बना। यह सुखद आश्चर्य है कि संविधान निर्माता कुछ सीमा तक पर्यावरण के लिए सचेत थे। भारतीय परंपरा अतिउपभोग की विरोधी रही है। इस कारण से पर्यावरणीय मूल्य संविधान में भी प्रतिबिंबित होते हैं। सहिष्णुता और उदारता का गुण भारत में हजारों वर्षों में सामाजिक संक्रिया और महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान केंद्रित करने का परिणाम है। महावीर एवं बुद्ध के देश में उपभोगवादी दर्शन अस्वीकार्य है। गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलन में स्वराज के अंतर्गत उपभोग को सीमित कर आत्मनिर्भरता की बात की। स्वयं इन आदर्शों को जीवन में उतारने का प्रयास भी किया। भारतीय समाज मूल्य पर्यावरण संवर्धन को बढ़ावा देते हैं। यह आश्चर्य की बात मानी जानी चाहिए कि पशुओं के प्रति आचरण को भी सविधान में स्थान मिला है (अनु0 48)।14 यहां मानव अहं से आगे पारिस्थितिकी की चिन्ता का संकेत माना जाना चाहिए। निदेशक सिद्धांत में पर्यावरण की चिंता जताई गई। इसमें आर्थिक पक्ष भी सम्मिलित है। अनुच्छेद 38 आर्थिक संसाधनों के अनुचित संकेंद्रण पर रोक लगाने का निदेश करता है और सामूहिक हित को स्थापित करने का लक्ष्य किया गया है। पर्यावरण चिंतन में समुदाय के हितों को सबसे ऊपर रखा जाता है और निदेशक सिद्धांत में यह भावना निहित है। स्टॉकहोम सम्मेलन और ब्रुटलैण्ड़ कमीशन की रिपोर्ट के बाद विश्व में पर्यावरण की चिंता को रेखांकित किया। 42 वें संविधान संशोधन से मौलिक कर्तव्य में पर्यावरण संवर्धन एवं संरक्षण की नागरिको से अपेक्षा की गई है और सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा को समझने की आशा की गई है। सामाजिक पर्यावरण का उचित होना उतना ही आवश्यक है जितना कि भौतिक पर्यावरण का इस बात को संविधान के मौलिक कर्तव्य में स्थान मिला है। न्यायिक निर्णयों में पर्यावरण की चिंताएं साफ झलकती है। अनु0 21 के संदर्भ में न्यायालय ने स्वच्छ हवा और पानी को जीवन का अधिकार माना है।15 न्यायालय द्वारा ऐसी परियोजनाओं पर रोक लगाई गई है जो पर्यावरण के प्रतिकूल हो। संविधान में पर्यावरण संवर्धन की भावना के अनुकूल राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण की स्थापना की गई है और यह सख्ती से प्रदूषणकारी कृत्यों पर रोक लगाती है। पर्यावरण चिंता को दूर करने के सकारात्मक कदम भी भारतीय गणराज्य उठाता

रहा है। इसमें अक्षय ऊर्जा स्रोतों का अधिकाधिक प्रयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। सौर ऊर्जा और जल विद्युत को कोयले आधारित ऊर्जा संयंत्रों पर महत्व देना पर्यावरण संवर्धन का प्रयास है।

विकास और पर्यावरण वर्तमान में महत्त्व के विमर्श हैं। विकास की धारणा, राजनीति में केन्द्रीय है। राजनीतिक दलों के घोषणापत्रों और चुनावी वादों में विकास की चर्चा रहती है। सरकारों की क्रियाशीलता का मापदण्ड भी विकास कार्य हैं। संविधान में विकास की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को संविधान की प्रस्तावना,मौलिक अधिकारों और निदेशक सिद्धान्त में देखा जा सकता है। संविधान में 'विकास' शब्द का प्रयोग स्पष्टता से नहीं किया गया है लेकिन सुंदर समाज और अच्छे भविष्य की गारण्टी का प्रयास किया गया है। पर्यावरण को लेकर जागरूकता का स्तर बढ़ता जा रहा है। विभिन्न संशोधनों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन हेतु प्रयास किए गए हैं।

संदर्भ सूची

1. रिस्ट गि.(2023)हिस्ट्री ऑफ डेवलपमेंट,एकेडमिक फाउंडेशन,दिल्ली,78
2. कोठारी र.(2017).भारत में राजनीति,ओरिएंट ब्लैक्स्वान.दिल्ली.241
3. पिएटोरेस जा.(2010).डेवलपमेंट थ्योरी, सेज.दिल्ली.78
4. पैटरसन था.(1997)चेंज एंड डेवलपमेंट इन ट्वेंथिएथ सेंचुरी.ऑक्सफोर्ड. न्यूयार्क.1कृ12
5. रिस्ट गि.143
6. चक्रवर्ती वि.माडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट. सेज.दिल्ली.2014.
7. रिस्ट गि.179
1. रिस्ट गि.(2023)हिस्ट्री ऑफ डेवलपमेंट,एकेडमिक फाउंडेशन,दिल्ली,78
2. कोठारी र.(2017).भारत में राजनीति,ओरिएंट ब्लैक्स्वान.दिल्ली.241
3. पिएटोरेस जा.(2010).डेवलपमेंट थ्योरी, सेज.दिल्ली.78
4. पैटरसन था.(1997)चेंज एंड डेवलपमेंट इन ट्वेंथिएथ सेंचुरी.ऑक्सफोर्ड. न्यूयार्क.1कृ12
5. रिस्ट गि.143
6. चक्रवर्ती वि.माडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट. सेज.दिल्ली.2014.
7. रिस्ट गि.179-190
8. कोठारी र.297-320
9. बसु डी.(2015). इंट्रोडक्शन टू कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया.लेक्सिस नेक्सिस.गुड़गांव.20-30
10. राय हि.(2013).औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था(भारतीय राजनीतिक प्रणाली).हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय. दिल्ली विश्वविद्यालय.15-55
11. कश्यप सु(2021)हमारा संविधान.राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.भारत.268-306
12. चौबे के(2013)संविधान सभा और उसकी भविष्य दृष्टि (भारतीय राजनीतिक प्रणाली)हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय.58-90

13. शर्मा ब्रि.(2015).इंट्रोडक्शन टू कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया. पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.दिल्ली.295-296

14. भारत का संविधान(2023)सेंट्रल लॉ एजेंसी.प्रयागराज

15. बख्शी पी. द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया.यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कंपनी.62 190

23

मानवाधिकार और भारतीय संविधान

डॉ. विपिन कुमार गुप्ता
पोस्ट डॉक्टरल फेलो, काशी हिंदू विश्वविद्यालय (B.H.U.), वाराणसी
डॉ. स्वाति सुचारिता नंदा
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, डीएवी पीजी कॉलेज, वाराणसी

सर्वे भवन्तु सुखिनेः, सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मां कश्चिन्द्र दुःख भाग्भवेत् ॥

मार्कण्डेय पुराण में यह कहा गया है कि मैं सभी प्राणियों के लिए शुभकामना व्यक्त करता हूँ, सभी भय से मुक्त हो, सभी भाईचारे, ममता, स्नेह और आनन्द से परिपूर्ण हो, चाहे वे अपने हो या पराए हो। जब से सभ्यता का आरंभ हुआ तब से मनुष्य को सबसे सभ्य और बुद्धिमान प्राणी माना गया है। मानव जाति की सभ्यता के विकास ने एक ऐसे परिवेश को जन्म दिया जहाँ बिना किसी अपवाद के सभी लोगों को सुरक्षा एवं उन्हें ससम्मान जीने का अवसर प्राप्त है। मानवाधिकार के अवधारणा के अन्तर्गत यह सुनिश्चित किया गया है कि सभी मनुष्यों के पास एक ऐसा जीवन हो जहाँ उन्हें समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता,शिक्षा का अधिकार, काम का अधिकार आदि मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त होंगे। भारत एक विशाल बहु-धार्मिक, बहु-जातीय, बहु-भाषिक और बहु-सांस्कृतिक राज्य है। इसका संविधान अद्वितीय है। संविधान में सात प्रकार के मौलिक अधिकार वर्णित हैं। यह मानवाधिकारों के विचार को विभिन्न स्रोतों से ग्रहण किया गया है जैसे कि मैग्ना कार्टा (1215), अधिकारों का घोषणा पत्र, फ्रांसीसी क्रांति में मानवाधिकारों की घोषणा, प्राकृतिक अधिकार एवं सार्वभौमिक मानवाधिकारों की घोषणा। यह पत्र भारतीय संविधान में विभिन्न प्रावधानों को देखेगा और यह बताएगा कि कैसे भारत मानवाधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित कर रहा है।

मानवाधिकार की अवधारणा

"सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा 1948" मानवाधिकारों को मानव व्यक्ति की अंतर्निहित गरिमा से उत्पन्न अधिकार के रूप में परिभाषित करती है। इसके अनुच्छेद 1 के अनुसार, सभी मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुए हैं और सम्मान और अधिकारों में समान हैं। वे तर्क और विवेक से संपन्न हैं और उन्हें एक दूसरे के प्रति भाईचारे की भावना के साथ कार्य करना चाहिए। इस प्रकार, मानवाधिकार वे अधिकार हैं जिनके सभी लोग मानव होने के आधार पर हकदार हैं, और किसी भी राज्य द्वारा प्रदान नहीं किए जाते हैं। इनमें जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता, गुलामी और यातना से मुक्ति,

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और काम और शिक्षा का अधिकार शामिल है। चूँकि सभी मनुष्य राजनीतिक क्षेत्रों में रहते हैं जिन्हें राज्य कहा जाता है, मानवाधिकारों को राज्य के परिप्रेक्ष्य से देखा और संकल्पित किया जाना चाहिए। जब मानवाधिकारों को राज्य के एक लिखित संविधान द्वारा सुनिश्चित किया जाता है, तो इन्हें "मूलभूत अधिकार" कहा जाता है, क्योंकि एक लिखित संविधान राज्य का मौलिक कानून होता है।

डी.डी. बसु की परिभाषा मानवाधिकारों के सार को स्पष्ट करती है। वह कहते हैं, "मानवाधिकार वे न्यूनतम अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को राज्य या अन्य सार्वजनिक प्राधिकरण के खिलाफ, केवल अपने 'मानव परिवार' का सदस्य होने के कारण मिलते हैं, बिना किसी अन्य विचार के मानवाधिकारों का आधार व्यक्ति के प्रति सम्मान के सिद्धांत पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति एक नैतिक और तर्कसंगत प्राणी है, जिसे गरिमा के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। इन्हें मानवाधिकार कहा जाता है क्योंकि ये सार्वभौमिक होते हैं। महात्मा गांधी ने कहा था, "मैं पूरी दुनिया के संदर्भ में सोचना नहीं चाहता मेरी देशभक्ति में मानवता के भले का भी समावेश है। इसलिए, भारत की सेवा में मेरी सेवा मानवता की सेवा है"।

भारत मे मानवाधिकार का विकास:

भारत में मानवाधिकार की उत्पत्ति प्राचीन काल से ही देखने को मिलती हैं | वैदिक काल से ही मनुष्य सम्मान के साथ जीने के लिए कई स्वतंत्रता की आवश्यकता महसूस होने लगी थी | इन्ही आवश्यकताओं को बाद में मानवाधिकार का नाम दिया जाने लगा | मध्यकालीन युग में भारतीय समाज में मानवाधिकार को उतनी गति प्राप्त नहीं किया गया जितना आधुनिक काल में गति मिला है |

ब्रिटिश शासन के अधीन भारत में लोगों को लगातार अनेक प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ा तथा इस काल में लोगों में मानवाधिकार के प्रति व्यापक समझ विकसित हुआ | अंग्रेजियत शासन दंडात्मक कार्रवाई के हज़ारों लोगों ने अपने स्वाधीनता स्वतंत्रता एवं मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना शुरू कर दिया | इस काल में महात्मा गांधी स्वतंत्रता आंदोलन का ही नेतृत्व नही किया बल्कि शोषण के विरुद्ध आवाज़ भी बुलंद किया | अस्पृश्यता सहित कई सामाजिक बुराइयों का ख़त्म करने का प्रयास किया |वर्ष 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनाने का उद्देश्य लोगों की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों को संरक्षित करना था| अपनी स्थापना के दस वर्ष बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारतीय संविधान विधेयक प्रस्तुत किया जिसके माध्यम से ही बुनियादी मानवाधिकार को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया | बाद के काल में एनी बेसेंट के द्वारा कॉमन वेल्थ ऑफ़ इंडियन बिल, 1925 का ड्राफ्ट तैयार किया गया यह मानवाधिकार के विकास में एक बढ़ते क़दम की तरह था | संविधान में लचीलापन शामिल करने के कारणों को पंडित जवाहरलाल नेहरू, स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, द्वारा सबसे अच्छे तरीके से समझाया गया था। संविधान सभा की एक बहस में उन्होंने कहा था कि संविधान में एक निश्चित स्तर का लचीलापन होना चाहिए क्योंकि यदि इसे कठोर और स्थायी बना दिया गया, तो यह देश और उसके लोगों की प्रगति को रोक देगा। इसलिए, भारतीय संविधान में संशोधनों के माध्यम से समय-समय पर बदलाव किए गए हैं, जिन्हें समानतामूलक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के

आधार पर एक कल्याणकारी राज्य स्थापित करने और समाज के कमजोर वर्गों के हितों और अधिकार की रक्षा के लिए आवश्यक माना गया | यहां तक कि भारतीय न्यायपालिका ने भी अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार सम्मेलनों के अनुरूप अधिकारों की व्याख्या में सक्रिय भूमिका निभाई है। निश्चित रूप से, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने मौजूदा अधिकारों की सामग्री और अर्थ का व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया है, जो संविधान निर्माताओं द्वारा प्रस्तावित से कहीं अधिकहै।

भारतीय संविधान मे मानवाधिकार प्रावधान :

भारतीय संविधान भारतीय संविधान सभा द्वारा तैयार किया गया था, जो पहली बार 9 दिसंबर 1946 को एकत्र हुई थी। इस संविधान ने मानवाधिकारों को प्राथमिक महत्व दिया। प्रस्तावना ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, श्रद्धा और पूजा की स्वतंत्रता, स्थिति और अवसर की समानता पर बल दिया; और उनमें सभी के बीच बंधुत्व को बढ़ावा देने का उद्देश्य रखा, जिससे प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित हो सके। प्रस्तावना में यह घोषित किया गया है कि भारत एक संप्रभु, सामाजिकवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और गणराज्य है। हम प्रस्तावना में कुछ महत्वपूर्ण मानवाधिकारों को देख सकते हैं।

न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक;
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, विश्वास और पूजा की स्वतंत्रता;
स्थिति और अवसर की समानता;
और उन सभी के बीच प्रचार करना व्यक्ति और एकता की गरिमा सुनिश्चित करने वाली बंधुता और राष्ट्र की अखंडता….

यहां तक कि संविधान के भाग III और भाग IV पर एक सरसरी नज़र डालने से भी मौलिक अधिकार और राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत शामिल हैं, यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त होगा कि मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के तहत अधिकांश अधिकारों को सम्मिलित किया गया है। भारतीय संविधान, 1950 के भाग III में मौलिक अधिकारों को अन्य मौजूदा लिखित संविधानों की तुलना में अधिक विस्तृत तरीके से सूचीबद्ध किया गया है, और यह अधिकारों की एक विस्तृत श्रेणी को समावेश करता है। संविधान मौलिक अधिकारों को छह समूहों में वर्गीकृत करता है: (a) समानता का अधिकार; (b) कुछ स्वतंत्रताओं का अधिकार; (c) शोषण के खिलाफ अधिकार; (d) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार; (e) सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार; (f) संपत्ति का अधिकार; (g) संवैधानिक उपचार का अधिकार।

मौलिक अधिकारों को दो श्रेणियों में और विभाजित किया जा सकता है: (i) वे मौलिक अधिकार जो केवल भारत के नागरिकों को दिए गए हैं; और (ii) वे मौलिक अधिकार जो भारत की धरती पर किसी भी व्यक्ति को दिए गए हैं।

संविधान के तहत, केवल भारतीय नागरिकों को दिए गए अधिकारों में शामिल हैं: (a) धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव से सुरक्षा (धारा 15);
(b) सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता (धारा 16); (c) भाषण, सभा, संघ, आंदोलन, निवास और पेशे की स्वतंत्रता (धारा 19(1));
(d) अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (धारा 30)।

अन्य अधिकार किसी भी व्यक्ति को भारतीय भूमि पर, उनके नागरिकता की परवाह किए बिना दिए जाते हैं, जिनमें शामिल हैं:
(a) कानून के समक्ष समानता और कानूनों की समान सुरक्षा (धारा 14)
(b) पूर्ववर्ती कानूनों, दोगुनी सजा और आत्म-प्रेरणा के खिलाफ सुरक्षा (धारा 20)
(c) बिना कानूनी प्राधिकरण के कार्रवाई के खिलाफ जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा (धारा 21)
(d) शोषण के खिलाफ अधिकार (धारा 23)
(e) धर्म की स्वतंत्रता (धारा 25)
(f) किसी विशेष धर्म के प्रचार के लिए करों के भुगतान में स्वतंत्रता (धारा 27)
(g) राज्य शैक्षिक संस्थानों में धार्मिक शिक्षा या पूजा में उपस्थिति के लिए स्वतंत्रता (धारा 28)।

कुछ मौलिक अधिकार राज्य पर स्पष्ट प्रतिबंध लगाते हैं जो किसी व्यक्ति को विशेष अधिकारों से वंचित करने वाली कार्यवाही को स्पष्ट रूप से निषेधित करते हैं, जैसे कि धारा 14, जो कहती है कि "राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के सामने समानता से माना नहीं करेगा."राज्य के खिलाफ इसी प्रकार के प्रतिबंध धारा 15(1),16(2), 18(1), 20, 22(1), 28(1) में भी निहित हैं।

कुछ मौलिक अधिकार जिनमें धारा 21 भी शामिल है जो कहती है कि "कोई भी व्यक्ति अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा, सिवाय उस प्रक्रिया के अनुसार जो कानून द्वारा स्थापित की गई हो " कार्यकारी के खिलाफ होते हैं लेकिन ये विधायिका पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाते। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले यह निर्णय दिया था कि एक सक्षम विधायिका व्यक्तिगत स्वतंत्रता के वंचन के लिए कोई भी प्रक्रिया निर्धारित करने का अधिकार रखती है और न्यायालय इस प्रकार के कानून में हस्तक्षेप नहीं कर सकते, यह तर्क देते हुए कि यह अन्यायपूर्ण, अव्यवस्थित या असंगत है। धारा 21 का उद्देश्य विधायिका पर कोई सीमा लगाना नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि कार्यकारी किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को केवल वैध कानून के प्राधिकरण के तहत ही छीन सकता है। हालांकि बाद के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि वह उन कानूनों के खिलाफ कार्यवाही किए बिना नहीं बैठ सकता जो धारा 19(1) या धारा 14 के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत मनमाने और अव्यवस्थित थे। और अंततः ऐतिहासिक मामले *मनेका गांधी बनाम भारत संघ* में, सर्वोच्च न्यायालय के सात सदस्याए गठन ने यह फैसला दिया कि उस कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया जो किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करती है, उसे न्यायसंगत, उचित और संगत होना चाहिए। अतः कोई भी कानून जिसमें किसी व्यक्ति की "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" को वंचित करने

की निर्धारित प्रक्रिया हो, उसे धारा 14 (समानता की धारा) और धारा 19 (स्वतंत्रता की धारा) की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए।

हाल ही में, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की नौ सदस्यीय संविधान गठन ने सर्वसमिति से यह निर्णय दिया कि "गोपनीयता का अधिकार" संविधान के धारा 21 के तहत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से उत्पन्न एक मौलिक अधिकार है, साथ ही संविधान में व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा करने वाले अन्य मौलिक अधिकारों से भी।

सर्वोच्च न्यायालय ने अक्सर पर यह कहा है कि धारा 21 में उल्लेखित जीवन का अधिकार केवल अस्तित्व या जीवित रहने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है। इस प्रकार एक उदार व्याख्या अपनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 21 में कई महत्वपूर्ण अधिकारों को पढ़ा, जिनमें आजीविका का अधिकार, सभ्य पर्यावरण का अधिकार, भोजन, जल, शिक्षा, चिकित्सा देखभाल और आश्रय का अधिकार, न्यायपूर्ण और शीघ्र मुकदमा सुनवाई का अधिकार, सूचना का अधिकार आदि शामिल हैं।

भारतीय संविधान की धारा 14 यह प्रावधान करती है कि "राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के सामने समानता या भारत के क्षेत्र में कानूनों की समान सुरक्षा से वंचित नहीं करेगा।" धारा 14 हर व्यक्ति को जिसमें गैर-नागरिक और ट्रांसजेंडर भी शामिल हैं, कानून के समक्ष समानता और कानून की समान सुरक्षा का अधिकार प्रदान करती है। धारा 14-16 मिलकर समानता के सिद्धांत को स्वीकार करती हैं, साथ ही भेदभाव की अनुपस्थिति को भी। जबकि समानता का सिद्धांत सामान्य रूप से धारा 14 में उल्लिखित है, धारा 15 और 16 उस समानता के विशेष पहलुओं को संबोधित करती हैं। धारा 15 केवल नागरिकों के लिए उपलब्ध है और राज्य के पास किसी भी मामले में नागरिकों के साथ धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव करने से रोकती है। धारा 16 भी केवल नागरिकों के लिए है, लेकिन यह सार्वजनिक भेदभाव के एक पहलू यानी राज्य के तहत रोजगार से संबंधित है।

भारतीय संविधान की धारा 19 भारतीय नागरिकों को छः मौलिक अधिकारों की विश्वसनीयता देती है, जिन्हें वे विशिष्ट सीमाओं के अधीन पूरे भारत में लागू कर सकते हैं, क्योंकि ये संविधान द्वारा प्रदान किए गए सकारात्मक अधिकार हैं, जो संविधान की प्रस्तावना (विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था एवं पूजा की स्वतंत्रता) में उल्लिखित स्वतंत्रता के आदर्श को बढ़ावा देने के लिए निर्धारित किए गए हैं। ये अधिकार हैं: (1) अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता, (2) सभा करने का अधिकार, (3) संघ बनाने का अधिकार, (4) आंदोलन का अधिकार, (5) निवास और बसावट का अधिकार, और (6) पेशा, व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार। ये वे बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रताएँ हैं जो नागरिक की स्थिति में निहित प्राकृतिक अधिकार के रूप में पहचानी जाती हैं और एक लोकतांत्रिक राज्य के लिए आवश्यक शर्तें हैं, जो कानून के शासन पर आधारित होता है।

धारा 19 के हाल के व्याख्याओं में, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ अतिरिक्त अधिक विशिष्ट अधिकारों को भी शामिल किया है, जो इन प्रावधानों के तहत आते हैं। इन अधिकारों में राष्ट्रीय ध्वज फहराने का अधिकार भी शामिल है, क्योंकि इसे अभिव्यक्ति के प्रतीक के रूप में माना जाता है, जो धारा 19 के दायरे में आता है। एक मतदाता की

भाषण या अभिव्यक्ति चुनाव के दौरान वोट डालने को भी शामिल करती है, अर्थात एक मतदाता अपनी अभिव्यक्ति या भाषण को वोट डालकर व्यक्त करता है। सूचना का अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का एक अभिन्न हिस्सा है, विशेष रूप से एक मतदाता का यह अधिकार कि वह चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार की योग्यताओं और अनुभव के बारे में जान सके। भाषण का अधिकार मौन के अधिकार को भी निहित करता है। इसका अर्थ है कि किसी को न सुनने की स्वतंत्रता है और उसे सुनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

धारा 20 कुछ विशिष्ट मामलों में अपराधों के लिए सजा से सुरक्षा प्रदान करती है, जिसमें यह निषिद्ध करती है: (a) पूर्ववर्ती अपराध कानून, जिसे सामान्यत: *ex post facto* कानून कहा जाता है; (b) दो बार सजा देना (double jeopardy); और (c) आत्म-प्रेरणा से गवाही देने के लिए विवश करना। धारा 22 एक व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है, कुछ अधिकार प्रदान करती है, जो लगभग वही हैं जिन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका में *Miranda Rights* के नाम से जाना जाता है। भारतीय संविधान में इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की स्वतंत्रता पर पुलिस द्वारा किए गए हस्तक्षेप की न्यायिक निगरानी करना है।

भारत, संविधान के अनुसार, एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है, अर्थात यह सभी धर्मों के प्रति तटस्थता और निष्पक्षता का दृष्टिकोण अपनाता है। सभी धर्मों के प्रति निष्पक्षता का यह दृष्टिकोण संविधान के अनुच्छेद 25-28 द्वारा सुनिश्चित किया गया है। अनुच्छेद 25 के तहत, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अंतरात्मा की स्वतंत्रता और अपने धर्म को मानने, उसका पालन करने और उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है, जो सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के हित में राज्य द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के अधीन है।

अनुच्छेद 26 हर धार्मिक संप्रदाय को धार्मिक और परोपकारी उद्देश्यों के लिए संस्थानों की स्थापना और रखरखाव तथा धर्म से संबंधित अपने मामलों का प्रबंधन करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। अनुच्छेद 27 किसी विशेष धर्म के रखरखाव या प्रचार के लिए धन जुटाने हेतु कर लगाने को प्रतिबंधित करता है। अनुच्छेद 28 के अनुसार, राज्य के धन से पूरी तरह से चलने वाले किसी भी शैक्षणिक संस्थान में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है, जो इस बात का संकेत देता है कि राज्य किसी धर्म या विश्वास का प्रचार नहीं कर सकता है। यह स्थिति भारत के धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की स्थिति को सभी धर्मों के प्रति सद्भाव और धार्मिक निष्पक्षता के बीच संतुलन प्रदान करती है।

न्यायपालिका की भूमिका:

सरकार के तीन अंगों में से, भारत में न्यायपालिका मानवाधिकारों की रक्षा में एक अग्रणी भूमिका निभा रही है। यह भूमिका मुख्यतः संविधान में निहित मानवाधिकार प्रावधानों की नवीन व्याख्या और अनुप्रयोग के माध्यम से निभाई जाती है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने *अजय हसिया बनाम खालिद मुजीब* मामले में यह घोषित किया कि उसे मौलिक अधिकारों के दायरे और अर्थ को बढ़ाने और मानवाधिकार न्यायशास्त्र को आगे ले जाने की विशेष जिम्मेदारी है। जैसा

कि पहले ही उल्लेख किया गया है, भारत के सर्वोच्च न्यायालय और राज्य उच्च न्यायालयों के पास संविधान के तहत मौलिक अधिकारों को लागू करने की शक्तियां हैं, और उन्होंने इन शक्तियों की उदारतापूर्वक व्याख्या की है।

भारत में मानवाधिकारों के दायरे को कई ऐतिहासिक मामलों में न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से व्यापक रूप से विकसित किया गया है, जिनमें अदालत ने सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा (UDHR) को ध्यान में रखते हुए अपने निर्णय दिए। इनमें प्रमुख मामले निम्नलिखित हैं:

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1974): यह मामला भारतीय संविधान की "मूल संरचना सिद्धांत" को परिभाषित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण था। 'गोलकनाथ' मामले में संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन से रोकने को लेकर न्यायपालिका और तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के बीच गंभीर टकराव हुआ। मौलिक अधिकार, जो व्यक्तिगत मानवाधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ उपाय मांगने का आधार हैं, इस मामले का केंद्र बिंदु थे। अदालत ने UDHR और भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों की तुलना करते हुए व्याख्या की कि संविधान के अनुच्छेद 13(2) के तहत मौलिक अधिकारों को बदला नहीं जा सकता। "मूल संरचना सिद्धांत" के अनुसार, संसद या संविधान संशोधन के माध्यम से मौलिक अधिकारों की बुनियादी विशेषताओं को समाप्त नहीं किया जा सकता।

किशन पटनायक बनाम उड़ीसा राज्य (1985): इस मामले में, याचिकाकर्ता ने सुप्रीम कोर्ट से अनुरोध किया कि वह कालाहांडी के लोगों की भोजन की कमी और भुखमरी की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए राज्य सरकार को तत्काल कदम उठाने का निर्देश दे। स्थिति पर ध्यान देते हुए, अदालत ने भुखमरी की समस्या के समाधान के लिए व्यापक स्तर पर उपाय करने के निर्देश दिए, जैसे राज्य में सिंचाई परियोजनाओं को लागू करना ताकि क्षेत्र में सूखे को कम किया जा सके, धान की उचित बिक्री मूल्य सुनिश्चित करने के उपाय और एक अधिकारी की नियुक्ति की जा सके। इस मामले के साथ-साथ भोजन की कमी से संबंधित कई अन्य बाद के मामलों के परिणामस्वरूप भारत में भोजन के अधिकार को एक बुनियादी मानव अधिकार माना गया, जिसकी गारंटी राज्य द्वारा दी जानी चाहिए।

रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष बनाम चंद्रिमा दास (2000): यह मामला भारतीय रेलवे के एक कर्मचारी द्वारा कार्यस्थल पर एक विदेशी महिला के साथ किए गए बलात्कार से संबंधित था। अदालत ने मौलिक अधिकारों और मानवाधिकार न्यायशास्त्र के उल्लंघन के आधार पर पीड़िता को मुआवजा दिया। अदालत ने राज्य के स्तर पर मानवाधिकारों की रक्षा की और UDHR को अपने निर्णय में शामिल किया।

पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2014: सुप्रीम कोर्ट ने पीपुल्स यूनियन सिविल लिबर्टीज बनाम महाराष्ट्र राज्य (2014) में पुलिस मुठभेड़ों की वास्तविकता पर चिंताओं को संबोधित किया, विशेष रूप से 1995 से 1997 तक मुंबई में 99 घटनाओं के संबंध में जहां 135 कथित अपराधी मारे गए थे। इस मामले में न्यायालय ने पुलिस मुठभेड़ों के दौरान हुई मौतों से जुड़े मामलों में पारदर्शिता, जवाबदेही और निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने के लिए 16 व्यापक दिशानिर्देश प्रदान किए। न्यायालय ने फैसला सुनाया कि इन दिशानिर्देशों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत कानून के रूप में माना जाना चाहिए।

इन मामलों ने भारतीय न्यायपालिका में मानवाधिकार न्यायशास्त्र की नींव को मजबूत किया और संविधान में मौलिक अधिकारों को व्याख्यायित करने में UDHR की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

यह भारत में मानवाधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से 28 सितंबर, 1993 को लागू एक अधिनियम है। यह अधिनियम मानव अधिकारों को जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा के अधिकारों के रूप में परिभाषित करता है जिनकी गारंटी भारत के संविधान या अंतरराष्ट्रीय उपकरणों जैसे मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूडीएचआर), नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अनुबंध (आईसीसीपीआर) द्वारा दी गई है। और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध (ICESCR)। यह अधिनियम एक राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राज्य मानवाधिकार आयोग की स्थापना करता है। आयोग के पास शिकायतों की जांच करने, पूछताछ करने और जांच से प्रभावित होने वाले लोगों की सुनवाई करने की शक्ति है। यह मानवाधिकार उल्लंघन के मामलों में त्वरित सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए मानवाधिकार न्यायालयों की भी स्थापना करता है।

आधिकारिक भारतीय संविधानिक मानवाधिकार गारंटी की आलोचनाएँ

भारत के संविधान में उल्लिखित कई संवैधानिक गारंटी के बावजूद उनकी कार्यान्वयन, व्याख्या और विकास को लेकर कई आलोचनाएँ हैं। कई विद्वानों ने भारतीय संविधान को एक मृगतृष्णा के रूप में देखा है और इसके वादे को निरर्थक माना है। कुछ टिप्पणीकारों का कहना है कि भले ही भारतीय सर्वोच्च न्यायालय सामाजिक अधिकारों पर निर्णय करता है, फिर भी वह आमतौर पर किसी प्रणालीगत सामाजिक अधिकारों को लागू नहीं करता।

वैश्विक वयस्क मताधिकार और भारतीय संविधान में अधिकारों की घोषणा होने के बावजूद भारतीय कानूनी ढांचा उपनिवेशी कानूनों और संस्थाओं में बसा हुआ है जो केंद्रीकृत नियंत्रण के लिए बनाए गए थे। आपातकालीन शक्तियों के विवादास्पद प्रावधान को छोड़कर, जो केंद्रीय सरकार को आपातकाल की स्थिति घोषित करने और मौलिक अधिकारों को निलंबित करने की अनुमति देता है। भारतीय संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकारों को भी भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, अच्छे विदेशी संबंधों, सार्वजनिक आदेश, सार्वजनिक स्वास्थ्य, और शालीनता तथा नैतिकता बनाए रखने के नाम पर संविधानिक रूप से प्रतिबंधित किया जा सकता है।

वास्तव में कानून द्वारा प्रदान की गई मुक्ति की दृष्टि और कानून द्वारा उत्पन्न हिंसा के वास्तविकता के बीच एक अंतर अभी भी मौजूद है। वास्तव में संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने अपनी अंतिम भाषण में यह उल्लेख किया था कि संविधान के प्रारंभ के साथ भारत ने एक ऐसी जिंदगी में प्रवेश किया, जिसमें राजनीतिक जीवन में समानता को स्वीकार किया गया, लेकिन सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं के कारण अन्य क्षेत्रों में समानता को नकारा गया। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार के साथ मानव की जिन मूलभूत अधिकार स्तर को मानव होने के नाते प्राप्त होना चाहिए, भारतीय संविधान के माध्यम से इन मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास किया गए हैं। भारतीय शासन प्रणाली के तहत इन मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ा है।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार के साथ मानव की जिन मूलभूत अधिकार स्तर को मानव होने के नाते प्राप्त होना चाहिए,भारतीय संविधान के माध्यम से इन मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास किया गए हैं। भारतीय शासन प्रणाली के तहत इन मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ा है। भारत में विभिन्न समयों और स्थानों पर अन्याय और अमानवीयता के कई घटनाएँ घट चुकी हैं, जैसे साम्प्रदायिक दंगे, हत्या, मानव तस्करी, बलात्कार, एसिड अटैक, दहेज हत्या, नस्लीय भेदभाव, अछूतता, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में असहिष्णुता। गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता और शिक्षा की कमी मानवाधिकारों के प्रमुख दुश्मन हैं। भारतीय सरकार ने मानवाधिकारों और मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई कदम उठाए हैं जैसे कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग, अल्पसंख्यक आयोग आदि।

भारतीय न्यायपालिका मानवाधिकारों की रक्षक बन गई है। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। भारत एक कल्याणकारी राज्य है। सरकार ने नागरिकों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई कार्यक्रम और योजनाएं शुरू की हैं। इनमें महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGS), खाद्य सुरक्षा अधिनियम, इंदिरा आवास योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, और सुकन्या समृद्धि योजना जैसी योजनाएं शामिल हैं।कुछ ऐसे अधिकार हैं जिन्हें भारतीय नागरिक व्यापक रूप से मौलिक अधिकारों की व्याख्या के कारण प्राप्त करते हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने इन मौलिक अधिकारों को 'प्राकृतिक अधिकार' या 'मानवाधिकार' के रूप में पहचाना है। संविधानिक उपायों का अधिकार मूल रूप से उन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार है (अनुच्छेद 32)। सर्वोच्च न्यायालय को इस संबंध में व्यापक संविधानिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। राज्य उच्च न्यायालयों को भी समान शक्तियाँ प्राप्त हैं (अनुच्छेद 226)। मीडिया मानवाधिकारों के उल्लंघन पर ध्यान केंद्रित करने और उन्हें संरक्षित करने के उपायों को उजागर करने के लिए एक पवित्र कर्त्तव्य निभाता है। भारत में न्यायपालिका मानवाधिकारों की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भारत जिस तरह से विकसित होता जा रहा है, सरकार एवं लोगो मे मानवाधिकार के प्रति जागरूकता बढ़ती जा रही है । मानवाधिकार के प्रति सरकार और न्यायपालिका के बढ़ते प्रयास भारतीय संविधान के प्रति विश्वास को और भी बढ़ा रहे है साथ ही भारतीय लोकतंत्र को मजबूती दे रहे है ।

संदर्भ सूची

1. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, यहां उपलब्ध https://www.un.org/sites/un2.un.org/files/2021/03/udhr.pdf (अंतिम बार 24 अक्टूबर, 2024 को देखा गया)
2. वैदिक युग और मानवाधिकारों का उदय, यहां उपलब्ध http://ijrar.com/upload issue/jjrar issue 333.pdf (अंतिम बार 27 अक्टूबर, 2021 को देखा गया)।

3. भारत में अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए गांधीजी के कदम, यहां उपलब्ध https://www.mkgandhi.org/biography/campaign.htm (अंतिम बार 1 नवंबर, 2021 को देखा गया)।
4. बसु, डी.डी., (1994) संविधान-कानून में मानव अधिकार, यूनिवर्सल बुक्स, दिल्ली |
5. सिंह. एम. इभोहल, (2009) संविधान, संवैधानिक व्याख्याएं और मानवाधिकार, 1ª संस्करण, खंड। मैं, लेक्सिसनेक्सिस बटरवर्थ्स वाधवा नागपुर|
6. बसु. दुर्गा दास, (2014) भारत के संविधान पर टिप्पणी (9वां संस्करण, खंड I, लेक्सिसनेक्सिस|
7. भारत का संविधान [1 मई, 2024 तक], 2024, विधायी विभाग, राजभाषा विंग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार।
8. पिल्लई, के.एन. चन्द्रशेखरन, (2006) "भारत में आपराधिक जांच - मानवाधिकार परिप्रेक्ष्य", 48(3) जर्नल ऑफ़ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट।
9. किशन पटनायक बनाम उड़ीसा राज्य, यहां उपलब्ध https://www.the-laws.com/Encyclopedia/Browse/Case?caseId=009891900000&title=kishen-pattnaik-Indian-peoples-front-vs-state-of-orissa (अंतिम बार 20 अक्टूबर, 2024 को देखा गया)
10. केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु बनाम केरल राज्य और अन्य. यहां उपलब्ध, 973, https:// Indiankanoon.org/doc/257876/ (अंतिम बार 20 अक्टूबर, 2024 को देखा गया)
11. पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2014 यहां उपलब्ध https:// Indiankanoon.org/doc/25812914/ (अंतिम बार 20 अक्टूबर, 2024 को देखा गया)
12. चेयरमैन, रेलवे बोर्ड एवं अन्य बनाम श्रीमती चंद्रिमा दास एवं अन्य,2000 यहां उपलब्ध https:// Indiankanoon.org/doc/113663/ पर (अंतिम बार 20 अक्टूबर, 2024 को देखा गया)
13. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993, यहां उपलब्ध https://www.mha.gov.in/sites/default/files/Protection%20of%20HR%20Act1993_0.pdf (अंतिम बार 24 अक्टूबर, 2024 को देखा गया)

24

भारत में नागरिकता नीति के विमर्श का बदलता प्रतिमान: उभरते रुझान

डॉ. मो० मुबारक अली

स्वतंत्र शोधकर्ता, रहमान हाउस, ई-243/बी5, शाहीन बाग, अबुल फजल एन्क्लेव, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली – 110025

डॉ. नावेद जमाल

आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

ज्ञानमीमांसा के अनुसार, 'नागरिक' शब्द लैटिन शब्द 'सिविक' से लिया गया है जिसका अर्थ है 'शहर से संबंधित' और यह ग्रीक शब्द 'पोलिस' से भी संबंधित है। प्राचीन ग्रीक और रोमन गणतंत्र काल में नागरिकता मुख्य रूप से सार्वजनिक और राजनीतिक मामलों में व्यक्तियों की भागीदारी से संबंधित थी। नागरिकता की अवधारणा और अर्थ की व्याख्या अलग-अलग शासन और शासनकाल में अलग-अलग तरीके से की गई है। अरस्तू ने प्राचीन ग्रीक और रोमन राज्य प्रणालियों में नागरिकता को "शासक वर्ग का विशेषाधिकार" माना। नागरिकता की आधुनिक अवधारणा फ्रांसीसी क्रांति (1789) और उसके परिणामस्वरूप मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा से ली गई है। रूसो ने अपने "सोशल कॉन्ट्रैक्ट" (1762) में लिखा है कि एक नागरिक एक स्वतंत्र और स्वायत्त व्यक्ति है। रूसो के अनुसार, वह उन सभी निर्णयों में भाग लेने का हकदार है जो सभी नागरिकों पर बाध्यकारी हैं। जॉन लॉक (1632-1704) ने प्राकृतिक अधिकारों के विचार को नागरिकता का आधार माना। लॉक ने तर्क दिया कि 'जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति का अधिकार' प्राकृतिक अधिकारों का मुख्य आधार है। टी.एच. मार्शल ने अपने "सिटिज़न्शिप एण्ड सोशल क्लास" (1950) में कहा कि नागरिकता का अर्थ है समुदाय की पूर्ण सदस्यता, जिसकी टी.एच. मार्शल ने वकालत की। इसमें कहा गया है कि नागरिकता का विचार समाज के वर्ग विभाजन के विचार के विपरीत है। इस प्रकार, नागरिक वह व्यक्ति है जो राज्य के प्रति निष्ठा रखता है और बदले में राज्य उसको सुरक्षा प्रदान करता है।

नागरिकता नीति का दार्शनिक आधार

संप्रभु राष्ट्र-राज्यों के उद्भव ने नागरिकता के अर्थ, प्रकृति और दायरे का क्रमिक विकास किया। नागरिकता को अब राज्य द्वारा समान और निष्पक्ष व्यवहार का अधिकार, सिद्धांत और मानदंड माना जाता है। यह मूल रूप से एक व्यक्ति और राज्य के बीच का संबंध है जिसमें एक व्यक्ति राज्य से कुछ अधिकार प्राप्त करता है। नागरिकता अधिकार व्यक्तियों के ऐसे विशेषाधिकार हैं जिनके माध्यम से वे खुद को राज्य के साथ समान और पूर्ण सदस्य के रूप जोड़ते हैं। दूसरे शब्दों में, कहा जाए तो एक व्यक्ति नागरिक बनते समय समग्रता का हिस्सा बन जाता है, यानी राजनीतिक समुदाय। इसलिए, आधुनिक राष्ट्र-राज्यों में नागरिकता के विचार को व्यक्ति के व्यापक राजनीतिक समुदाय के साथ एकीकरण के रूप में समझा जा सकता है जिसके माध्यम से वह जुड़ने की कोशिश करता है। यह तर्क दिया जा सकता

है कि समानता और एकीकरण नागरिकता के संवैधानिक पहलू हैं जो मुख्य रूप से शासन की गैर-भेदभावपूर्ण और जवाबदेह प्रणाली के लिए अभिप्रेत हैं।

आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्य में, नागरिकता एक कानूनी अधिकार है जो किसी व्यक्ति को राजनीतिक समुदाय यानी राज्य के भीतर पूर्ण और समान सदस्यता प्रदान करता है। नागरिकता राज्य के सदस्य के अधिकारों और कर्तव्यों को भी परिभाषित करती है जैसे कि वोट देने का अधिकार, चुने जाने का अधिकार, बेहतर रोजगार के अवसर पाने का अधिकार, शिक्षा के अवसर, आवागमन की स्वतंत्रता आदि। यह किसी अन्य समूह या व्यक्ति या अधिकारियों से होने वाले शोषण, वंचना और भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा भी प्रदान करता है। इस प्रकार नागरिकता की अवधारणा ने राज्य की प्रमुख नीतियों को प्रभावित करने में एक प्रमुख भूमिका हासिल कर ली है। अधिकांश लोकतांत्रिक राज्य नागरिकता की अवधारणा और मानदंडों के इर्द-गिर्द घूमने वाली नीतियों को तैयार करने के बारे में अधिक चिंतित हैं। लगभग सभी देशों में नागरिकता के संबंध में अपने कानून और नियम हैं। नागरिकता को व्यक्ति का अपने देश के साथ कानूनी संबंध माना जाता है, जहां वह रहता है और उसके प्रति निष्ठा रखता है। यह मूल रूप से राज्यों द्वारा निर्दिष्ट कुछ मानदंडों की पूर्ति से जुड़ा हुआ है। 1945 के बाद और 1989 में बर्लिन की दीवार के ढहने के बाद कई राज्यों में नागरिकता कानूनों में कई बदलाव हुए हैं। राज्यों के विभाजन और एकीकरण के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सीमाओं में बदलाव आया है। आर्थिक विकास, अंतर्राष्ट्रीय प्रवास और सीमा पार से आने वाले लोगों ने नागरिकता की समस्या के साथ-साथ नागरिकता के नुकसान की समस्या भी पैदा की है। इसलिए, नागरिकता का मुद्दा अब विभिन्न राज्यों में नीति निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण एजेंडा में से एक बन गया है। किसी राज्य का नागरिकता कानून संबंधित राज्य की नागरिकता की शर्तों को निर्धारित करने वाले नियम और विनियम प्रदान करता है और इसे कानून के संचालन द्वारा उन व्यक्तियों को दिया जाता है जिनका राज्य के साथ वास्तविक संबंध माना जाता है। जो व्यक्ति दावा करते हैं कि उनका किसी देश से वास्तविक संबंध है, यानी जन्म, विवाह, निवास आदि के आधार पर, वह इसे पंजीकरण, घोषणा या प्राकृतिककरण (naturalisation) द्वारा प्राप्त किया जा सकते है। नागरिकता कानून में नागरिकता छीनने का भी प्रावधान है। यह स्वचालित (automatic), स्वैच्छिक त्याग (voluntary renunciation) या वापसी (withdrawal) द्वारा हो सकता है।

आधुनिक दुनिया में नागरिकता को परिभाषित करने और निर्धारित करने में संस्थागत प्रथाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ऑर्निट शानी का तर्क है: "समावेशन या नागरिकता व्यवस्था का स्वरूप संस्थागत प्रथाओं और उनकी आधारभूत वैचारिक अवधारणाओं द्वारा आकार लेता है, जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक संसाधनों, विशेषाधिकारों और कर्तव्यों के आवंटन के प्रतिमान को परिभाषित करते हैं"। एक ही राजनीति में, कई नागरिकता विमर्श सह-अस्तित्व में होते हैं जो सदस्यता दावों की विभिन्न अवधारणाओं के अनुरूप होते हैं। यह आम तौर पर एक या एक से अधिक विमर्शों के साथ सह-अस्तित्व में भी हो सकता है जो प्रमुख नागरिकता व्यवस्था का निर्माण करते हैं। बहु-नागरिकता विमर्श समाज के विभिन्न स्तरों से जातीयता, लिंग, जाति, आस्था, धर्म आदि के आधार पर उभरता है। लेकिन दुनिया भर में प्रमुख विमर्श बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के द्विआधारी पर है। इस प्रमुख विमर्श के भीतर, ये कई विमर्श संसाधनों और राजनीति के अपने हिस्से का दावा करते हुए सह-अस्तित्व में हैं।

शानी के अनुसार, नागरिकता पर चर्चा पारंपरिक रूप से नागरिक/उदारवादी और जातीय-राष्ट्रीय सिद्धांतों के बीच विवाद पर केंद्रित थी, जिसके आधार पर नागरिकता की कल्पना की गई और उसे प्रदान किया गया। इस अवधारणा का विस्तार करते हुए, शफीर और पेलेड ने तीन गुना रूपरेखा विकसित की, यानी उदारवादी, गणतंत्रवादी और जातीय-राष्ट्रीय नागरिकता प्रवचनों के बीच अंतर करना।

नागरिकता की उदार अवधारणा में व्यक्ति को अधिकारों के एक पैकेज का वाहक माना जाता है, जिसका उद्देश्य उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना है। नागरिकता की उदार अवधारणा को सबसे समावेशी और सार्वभौमिक माना जाता है। दूसरी ओर, नागरिकता की गणतंत्रात्मक अवधारणा, व्यक्तिगत नागरिक और उसकी पसंद से पहले एक सामान्य भलाई की धारणा की वकालत करती है। नागरिकों द्वारा सामान्य भलाई में किए गए योगदान के अनुसार अधिकार प्रदान किए जाते हैं। अन्य अवधारणाओं के विपरीत नागरिकता की जातीय राष्ट्रवादी धारणा एक वंश समूह द्वारा सदस्यता को आधार बनाती है। इस अवधारणा के अनुसार, राष्ट्र रक्त संबंधों पर आधारित होता है।

उपर्युक्त तीन-स्तरीय बहु नागरिकता ढांचे का विश्लेषण करते समय, 'नागरिकता' को राज्य के दृष्टिकोण से परिभाषित किया जा सकता है। इस संबंध में, ओर्निट शानी तर्क देती हैं:

> राज्य के निर्माण में नागरिकता एक लक्ष्य बन जाती है, और प्रतिमानात्मक प्रश्न यह बन जाता है कि राज्य किस हद तक व्यक्तियों, साझा लाभ की खोज में कुछ सामूहिक समूहों या रक्त से बंधे समुदाय (community tied by blood) के जीवन की रक्षा करता है"। भारतीय संदर्भ में, वह नागरिकता की एक और महत्वपूर्ण अवधारणा को अलग करती है। वह तर्क देती है: "राज्य के राजनीतिक संगठन के भीतर सदस्यता के दावों के लिए एक संस्था के रूप में, नागरिकता का अर्थ समाज में राज्य की सदस्यता की धारणा या व्यक्तियों और समूहों की सुरक्षा के लिए राज्य के साथ न्यूनतम बातचीत की इच्छा भी हो सकती है। भारत में गैर-राज्यवादी नागरिक की यह धारणा मौजूद है। इसका एक वैचारिक और संस्थागत आधार है जिसका सबसे प्रमुख अनुमान मोहनदास करमचंद गांधी से लगाया जा सकता है"।

भारत में नागरिकता के संवैधानिक प्रावधान

भारतीय नागरिकता के निर्धारण की शुरुआत 1947 में उपमहाद्वीप के दो संप्रभु देशों (बाद में तीन) में विभाजन से देखी जा सकती है। तात्कालिक चिंता विभाजित क्षेत्र के दोनों ओर रहने वाले लाखों हिंदू और मुस्लिम शरणार्थियों को नागरिकता प्रदान करना था। 26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू किया गया, जिसने भारत के लोगों की स्थिति में एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया। वे अब ब्रिटिश नागरिक नहीं थे, बल्कि भारत गणराज्य के नागरिक थे। संविधान ने उन्हें अधिनियमित किया , अपनाया और दर्जा दिया, जिसे सामूहिक रूप से 'भारत के लोग' माना गया । यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भारतीय संविधान में 'नागरिक' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। संविधान का भाग II (अनुच्छेद 5 से 11), नागरिकता से संबंधित है। 26 नवंबर, 1949 को, यानी जिस तारीख को संविधान सभा ने संविधान को अपनाया था, इस सवाल का जवाब देता है, 'भारत का नागरिक कौन है?' हालाँकि संविधान 26 जनवरी, 1950 को ही लागू हुआ, लेकिन नागरिकता से संबंधित प्रावधान यानी अनुच्छेद 5 से 9 लागू होने की तारीख से पहले ही लागू हो गए। इसलिए यह तर्क दिया जा सकता है कि भारतीय नागरिक और गैर-नागरिक (विदेशी) के बीच का अंतर इस तिथि से प्रभावी हुआ। यद्यपि एक नागरिक को कुछ अधिकार और कर्तव्य प्राप्त होते हैं

जो उसे एक गैर-नागरिक से अलग करते हैं, जबकि गैर-नागरिक को भी 'व्यक्तित्व' के कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं जो इस तथ्य के बावजूद उसके पास होते हैं कि वह नागरिक नहीं है।

भारत के संविधान के भाग II के अनुच्छेद 5 से 11 के अंतर्गत नागरिकता से संबंधित व्यक्तियों की निम्नलिखित श्रेणियों को वर्गीकृत किया गया है, जो 26 जनवरी, 1950 को संविधान के अधिनियमन की तिथि से भारत के नागरिक बन गए:

1. भारत में जन्मा और यहां का निवासी;
2. भारत का निवासी, भारत के क्षेत्र में पैदा नहीं हुआ लेकिन उसके माता-पिता में से कोई एक भारतीय क्षेत्र में पैदा हुआ था;
3. भारत का निवासी, भारत के क्षेत्र में पैदा नहीं हुआ लेकिन पांच साल से अधिक समय से भारत में सामान्य रूप से निवासी है;
4. भारत का कोई भी निवासी जो 1 मार्च 1947 के बाद पहले पाकिस्तान चला गया था और बाद में पुनर्वास परमिट पर वापस आ गया;
5. पाकिस्तान का कोई भी निवासी जो 19 जुलाई 1948 से पहले भारत आया था या जो बाद में आए लेकिन छह महीने से अधिक समय तक रहे और पंजीकृत हो गए;
6. कोई भी व्यक्ति जिसके माता-पिता और दादा-दादी भारत में पैदा हुए थे लेकिन भारत से बाहर रह रहे थे।

संक्षेप में, अनुपमा रॉय के अनुसार संवैधानिक प्रावधानों को दो व्यापक श्रेणियों के लोगों के लिए नागरिकता की शर्तों को निर्धारित करने के रूप में देखा जा सकता है:

1. कोई भी व्यक्ति जो स्वतंत्रता के समय भारत में निवास करता हुआ पाया गया और स्वचालित रूप से भारतीय नागरिक बन गया और
2. कोई भी व्यक्ति जो उपरोक्त श्रेणी के विपरीत, अलग-अलग आवागमन के पैटर्न वाले सीमाओं के पार चला गया: (ए) विभाजन के बाद लेकिन 19 जुलाई, 1948 से पहले पाकिस्तान से भारत में प्रवास किया: (बी) 19 जुलाई, 1948 के बाद, लेकिन संविधान के लागू होने से पहले पाकिस्तान से भारत में प्रवास किया और संबंधित प्राधिकारी के समक्ष खुद को भारतीय नागरिक के रूप में पंजीकृत किया; और (सी) 1 मार्च, 1947 के बाद पाकिस्तान चला गया, और सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए पुनर्वास या स्थायी वापसी के परमिट के तहत भारत वापस आ गया।

भारत का संविधान दोहरी नागरिकता या दोहरी राष्ट्रीयता को अधिकृत नहीं करता है। हालाँकि, यह नाबालिगों के लिए अनुमति देता है यदि दूसरी राष्ट्रीयता अनैच्छिक रूप से प्राप्त की गई हो। भारतीय अधिकारियों ने इसका अर्थ यह लगाया कि कोई व्यक्ति किसी अन्य देश का पासपोर्ट रखते हुए भारतीय पासपोर्ट नहीं रख सकता, यहाँ तक कि किसी अन्य देश द्वारा अपना नागरिक होने का दावा करने वाले बच्चे के लिए भी, जिसे इस देश के कानूनों के अनुसार विदेश यात्रा के लिए संबंधित पासपोर्ट का उपयोग करने की आवश्यकता हो सकती है (जैसे कि भारतीय माता-पिता से संयुक्त राज्य में पैदा हुआ बच्चा)। भारतीय न्यायपालिका ने इस मामले में कार्यपालिका को व्यापक विवेक दिया है। 2005 में, नागरिकता अधिनियम, 1955 में संशोधन किया गया और विदेशी नागरिकता (overseas citizens) की एक

श्रेणी शुरू की गई। ऐसे विदेशी नागरिकों को दोहरी नागरिकता पर रोक लगाने वाले नियम से छूट दी गई है यानी वे वोट नहीं दे सकते, चुनाव नहीं लड़ सकते, सेना में शामिल नहीं हो सकते या सरकारी पद नहीं ले सकते। इसके अलावा, पाकिस्तान या बांग्लादेश की नागरिकता प्राप्त करने वाले व्यक्ति विदेशी नागरिकता के लिए पात्र नहीं हैं।

नागरिकता अधिनियम

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 11 के तहत संसद को नागरिकता के अधिग्रहण और समाप्ति के विषय पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 11 के प्रावधान के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद ने 1955 में नागरिकता अधिनियम बनाया। इस अधिनियम में विस्तृत प्रावधान किए गए और भारतीय नागरिकता प्राप्त करने के लिए पाँच संभावित शर्तें निर्दिष्ट की गईं, जैसे जन्म, वंश, पंजीकरण, प्राकृतिककरण और क्षेत्र का समावेश। हालाँकि, छठे प्रकार की नागरिकता (विशेष रूप से असम राज्य पर लागू) को 1986 में संशोधित करके अधिनियम में शामिल किया गया था, जिसमें 1985 में असम समझौते के बाद धारा 6A डाली गई थी। इस अधिनियम में वर्षों से कई संशोधन हुए हैं। इस अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण संशोधन 1987, 2003 और 2019 के संशोधन हैं। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि भारतीय पहले मतदाता बने और फिर नागरिक बने क्यू कि संविधान के लागू होने के लगभग 5 वर्ष बाद नागरिकता कानून 1955 मे आया और इस बीच 1952 मे पहला आम चुनाव हो चुका था।

किसी व्यक्ति को भारत में क्षेत्र के समावेश के माध्यम से भी नागरिकता प्रदान की जा सकती है, जो नागरिकता आदेशों के माध्यम से विशिष्ट 'शामिल' क्षेत्रों में व्यक्ति की सदस्यता से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, गोवा, दमन और दीव को गोवा, दमन और दीव नागरिकता आदेश, 1962 के आधार पर, दादर और नगर हवेली को दादर और नगर हवेली (नागरिकता) आदेश, 1962 के आधार पर, पांडिचेरी को नागरिकता (पांडिचेरी) आदेश, 1962 के आधार पर, और सिक्किम को सिक्किम (नागरिकता) आदेश 1975 के आधार पर।

1985 में असम समझौते के बाद, 1986 में नागरिकता अधिनियम में संशोधन के माध्यम से 'भिन्न लेकिन समान' या 'विभेदित नागरिकता' के सिद्धांत को कानूनी रूप से मान्यता दी गई। 1986 में नागरिकता अधिनियम 1955 में संशोधन किया गया और धारा 6A को शामिल किया गया, जिसने अनुपमा रॉय के अनुसार, 'जन्म, वंश, पंजीकरण, प्राकृतिककरण और विदेशी क्षेत्र को भारत में शामिल करने के साथ-साथ नागरिकता की छठी श्रेणी के लिए रास्ता बनाया। धारा 6A ने 'असम समझौते द्वारा कवर किए गए व्यक्तियों की नागरिकता' के लिए विशेष प्रावधान किए और विशेष रूप से असम पर लागू हुए। इसने निर्धारित किया कि:

क) भारतीय मूल के व्यक्ति जो 1 जनवरी 1966 से पहले 'निर्दिष्ट क्षेत्र से असम में चले गए, जिनमें वे व्यक्ति भी शामिल हैं जिनके नाम 1967 के आम चुनावों के लिए इस्तेमाल की गई मतदाता सूची में थे, और जो अपने प्रवेश की तारीख से असम में सामान्य रूप से निवासी थे, 'उन्हें 1 जनवरी से भारत का नागरिक माना जाएगा।'

ख) भारतीय मूल के व्यक्ति जो 1 जनवरी 1966 को या उसके बाद, लेकिन 24 मार्च 1971 की मध्यरात्रि से पहले बांग्लादेश से असम आए थे, राज्य में प्रवेश के बाद असम में सामान्य रूप से निवासी थे, और उन्हें विदेशी (विदेशी (न्यायाधिकरण) आदेश 1964 के तहत गठित न्यायाधिकरण द्वारा) पाया गया था, वे खुद को भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत कर सकते हैं। 1 जनवरी, 1966 से पहले असम में प्रवेश करने वालों

के विपरीत, इन प्रवेशकों के पास भारतीय पासपोर्ट सहित भारतीय नागरिक के समान 'अधिकार और दायित्व' होंगे, सिवाय 'मतदान का अधिकार' के, जो उस व्यक्ति की पहचान विदेशी के रूप में होने की तिथि से दस वर्ष की अवधि के लिए होगा। ऐसे व्यक्तियों का नाम किसी भी विधानसभा या संसदीय निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची से ऐसी पहचान की तिथि से हटा दिया जाएगा और दस वर्ष की समाप्ति से पहले किसी भी मतदाता सूची में शामिल होने के योग्य नहीं होगा।

c) 25 मार्च, 1971 को या उसके बाद असम में आने वाले किसी भी व्यक्ति को अवैध प्रवासी माना जाएगा और इसलिए उसे निर्वासित किया जाएगा।

इसलिए यह तर्क दिया जा सकता है कि 1987 में नागरिकता अधिनियम में उपर्युक्त संशोधनों ने असम और शेष भारत में नागरिकता प्राप्त करने के लिए अलग-अलग कट-ऑफ तिथियां वर्गीकृत कीं। असम में यह 25 मार्च 1971 है, जबकि शेष भारत में यह 19 जुलाई 1948 है (अनुच्छेद 6)। 1987 में एक और महत्वपूर्ण संशोधन यह था कि इसने धारा 3(1) में एक और खंड (बी) जोड़ा, जिसमें लिखा है कि 1 जुलाई 1987 को या उसके बाद भारतीय क्षेत्र में पैदा हुआ व्यक्ति भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो। इसलिए, किसी के जन्म के अलावा, भारत का नागरिक होने के लिए माता-पिता में से किसी एक का भारत का नागरिक होने का मानदंड आवश्यक बना दिया गया। यह 1955 के नागरिकता अधिनियम से विचलन था जिसके तहत जिसका भी जन्म भारत मे होगा उसे भारतीय नागरिक माना जाएगा।

2003 में, नागरिकता अधिनियम की धारा 3 में और संशोधन किया गया और उप-धारा 1 में खंड (सी) डाला गया, जिसमें कहा गया है कि भारतीय क्षेत्र में जन्म लेने वाले व्यक्ति को इस शर्त पर भारत का नागरिक माना जाएगा कि या तो उसके माता-पिता दोनों भारत के नागरिक हों, या माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो और दूसरा जन्म के समय अवैध प्रवासी न हो। इन संशोधनों के साथ, "जस सोली' का सिद्धांत धीरे-धीरे "जस सैंगुइनिस" के सख्त सिद्धांत में बदल गया। 2003 में एक और महत्वपूर्ण संशोधन धारा 7 (ए) के तहत ओवरसीज सिटीजन ऑफ इंडिया कार्ड की शुरुआत भी थी।

2019 में, नागरिकता अधिनियम मे नागरिकता प्राप्त करने के मानदंडों में एक और संशोधन पारित किया गया । यह संशोधन महत्वपूर्ण था क्योंकि 1955 के बाद पहली बार नागरिकता प्रदान करने में धार्मिक मानदंड पेश किए गए हैं। धारा 2(1)(बी) में संशोधन करके यह पढ़ा गया कि "बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफगानिस्तान से हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई" से संबंधित व्यक्तियों को 'अवैध प्रवासी' नहीं माना जाएगा यदि वे 31 दिसंबर, 2019 को या उससे पहले भारत में प्रवेश करते हैं। यहां यह तर्क दिया जा सकता है कि अधिनियम में नागरिकों की सातवीं श्रेणी को जोड़ा गया है यानी 'बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफगानिस्तान से संबंधित अल्पसंख्यक'। इसके अलावा, मूल अधिनियम की तीसरी अनुसूची में भी संशोधन किया गया है और उक्त श्रेणी के लिए प्राकृतिककरण की अवधि यानी निवास की न्यूनतम अवधि को "ग्यारह वर्ष से कम नहीं" से घटाकर "पांच वर्ष से कम नहीं" करने के लिए खंड (डी) डाला गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कानूनों के संदर्भ में नागरिकता की पहेली को आम तौर पर मानवता को राज्यों, राष्ट्र-राज्यों और संघीय राजनीतिक प्रणालियों में विभाजित करने के उदार-धर्मनिरपेक्ष ढांचे के माध्यम से संबोधित किया जाता है।

अधिकांश पूर्व उपनिवेशों ने अपने नागरिकता कानूनों को निर्धारित करने के लिए 'जस सैंगुइनिस' या 'जस सोली' या दोनों के संयोजन को उधार लिया है। भारत में नागरिकता का विमर्श धीरे-धीरे 'जस सोली' से 'जस सैंगुइनिस' के सिद्धांत में बदल गया है। नागरिकता नीति के विमर्श में नवीनतम प्रवेश 21वीं सदी में 'अवैध प्रवासियों' का मुद्दा है। भारत के संविधान की घोषणा के समय अवैध प्रवासी कोई मुद्दा नहीं था। नागरिकता कानून में हाल ही में किए गए संशोधन ने अवैध प्रवासियों को और वर्गीकृत कर दिया और अवैध प्रवासियों की एक नई श्रेणी शुरू की, जिसमें पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के अल्पसंख्यक शामिल हैं, जो उक्त देशों में धार्मिक उत्पीड़न के खिलाफ भारत में शरण चाहते हैं।

संदर्भ सूची

1. Arshi Khan, "Conceptual Determinism of Citizenship Laws: Reflections on Western Epistemological Paradigm," Indian Journal of Politics, Vol. 48, No. 1–2 (2014), pp. 21–45
2. Ornit Shani, "Gandhi, Citizenship and the Resilience of Indian Nationhood," Citizenship Studies, (2011), p. 149. Accessed on Nov 7, 2016, https://doi.org/10.1080/13621025.2011.600066.
3. Durga Das Basu, Introduction to the Constitution of India (Nagpur: Lexis Nexis Butterworths Wadhwa, 2012).
4. Anupama Roy, Mapping Citizenship in India (New Delhi: Oxford University Press), pp. 36-37.
5. The Citizenship Act, 1955.
6. Territories included in Bangladesh immediately before the commencement of the Citizenship (Amendment) Act, 1986.

25

एक राष्ट्र, एक कानून: भारत में समान नागरिक संहिता की व्यावहारिकता का मूल्यांकन

सविता

सहायक आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, श्रीमती ए.ए.ए. सरकार. पी.जी. कॉलेज, कालका (पंचकूला)

डॉ. चंदन सिंह

सहायक आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, राजकीय महाविद्यालय उकलाना

भारत एक ऐसा देश है जिसे उसकी विविधता के लिए जाना जाता है। यहां पर अनेक धर्म,संस्कृतियां, भाषाएं और परंपराएं सह-अस्तित्व में है। यह बहुलवाद देश की कानूनी प्रणाली को आकार देता है। जहां पर विवाह, उत्तराधिकार, गोद और तलाक़ लेने जैसे व्यक्तिगत मामलों को धार्मिक समुदायों के अलग-अलग कानूनों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यह प्रणाली संस्कृत सहायता का सम्मान करती है परंतु अक्सर लैंगिक न्याय और समानता के क्षेत्र में विसंगतियों और असमानताओं को जन्म देती है (अहमद, 2017)। इस स्थिति को पहचानते हुए, भारतीय संविधान के निर्माताओं ने व्यक्तिगत कानून को एक सामान्य ढांचे के अंतर्गत एकीकृत करने के लिए समान नागरिक संहिता की परिकल्पना की, जो सामान्य और धर्मनिरपेक्षता सुनिश्चित करे (सिंह, 2014)। हालांकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद-44 में इस राज्य के नीति निर्देशन सिद्धांत के स्वरूप में शामिल करने के बावजूद, समान नागरिक संहिता आज तक लागू नहीं हो पाया है। यह विविधता और एकरूपता के बीच संतुलित स्थापित करने की जटिलताओं को दर्शाता है (चंद्रशेखर, 2018)।

सन् 1950 से ही समान नागरिक संहिता को लागू करना एक बहस का विषय बना हुआ है। अनुच्छेद-44 जो एक राज्य का दिशा नीति निर्देशन सिद्धांत है, राज्य को संपूर्ण भारत में नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का दायित्व देता है। लेकिन भारतीय संविधान के लागू होने के 50 वर्ष उपरांत भी यह वास्तविकता नहीं बन सका (शाह, 2016)।

इस दायित्व को पूरा करने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किए गए, जिस वजह से सर्वोच्च न्यायालय को सरकार को अनुच्छेद-44 के तहत अपनी जिम्मेदारी निभाने की याद दिलानी पड़ी। विभिन्न समुदायों के व्यक्तिगत कानून में मौजूद विरोधाभासों पर न्यायालय ने चिंता व्यक्त की है और सभी भारतीय नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करने की आवश्यकता पर जोर दिया है (वरुण, 2020)।

हाल ही में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक निर्णय में कहा कि समान नागरिक संहिता आवश्यक है और इसे अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए इस संदर्भ में भारत में समान नागरिक संहिता की अवधारणा को समझने की आवश्यकता है भारतीय संविधान का अनुच्छेद-44 संविधान के अध्याय IV का हिस्सा है जो राज्य के दिशा नीति निर्देशन सिद्धांतों से संबंधित है। यह सिद्धांत अदालत में न्यायोचित नहीं है लेकिन राज्य की शासन प्रणाली के लिए मौलिक है। (सिंह, 2014)।

आधुनिक भारत में समान नागरिक संहिता पर बहस ने फिर से महत्व प्राप्त किया है। इसके समर्थक इसे राष्ट्रीय एकता के लिए अनिवार्य मानते हैं, जबकि आलोचक इसे सांस्कृतिक पहचान को कमजोर करने वाला मानते हैं (चंद्रशेखर, 2018) । यह तनाव समान नागरिक संहिता का विश्लेषण केवल एक कानूनी सुधार के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक घटना के रूप में करने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

समान नागरिक संहिता का तात्पर्य उन समान कानूनों से है, जो धर्म, जाति या लिंग की परवाह किए बिना सभी नागरिकों पर लागू होंगे, और जो विवाह, तलाक, गोद लेना, उत्तराधिकार और संपत्ति हस्तांतरण जैसे व्यक्तिगत मामलों को नियंत्रित करेंगे (अहमद, 2017)। इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक परंपराओं में निहित खंडित व्यक्तिगत कानूनों की प्रणाली को एकीकृत करना है, जिससे समानता और धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा दिया जा सके (शाह, 2016)। एक सामान्य कानूनी मानक स्थापित करके, समान नागरिक संहिता लैंगिक न्याय को प्रोत्साहित करना, संविधान के समानता के सिद्धांत को मजबूत करना और भारत की कानूनी प्रणाली की एकरूपता को बढ़ाना चाहता है (कुमार, 2021)। हालांकि, इसे लागू करना आसान नहीं है क्योंकि यह गहराई से निहित धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाओं से जुड़ा हुआ है (वरुण, 2020)।

समान नागरिक संहिता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:

भारत में समान नागरिक संहिता (यूसीसी) पर बहस केवल एक समकालीन मुद्दा नहीं है, बल्कि यह देश के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास में गहरे रूप से निहित है। यूसीसी पर बहस की जटिलताओं को समझने के लिए, इसके ऐतिहासिक संदर्भ की जांच करना आवश्यक है, जिसमें उपनिवेशी धरोहर, सामाजिक सुधार आंदोलनों का उदय, और स्वतंत्र भारत की संविधानिक आकांक्षाएं शामिल हैं।

प्राचीन और मध्यकालीन भारत:

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में व्यक्तिगत कानून, जो विवाह, उत्तराधिकार और पारिवारिक संबंधों जैसे पहलुओं को नियंत्रित करते थे, प्रथागत परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं में गहराई से निहित थे। ये कानून एक समान नहीं थे, बल्कि उपमहाद्वीप के विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों के अनुसार विकसित हुए थे। हिंदू समुदाय के लिए, व्यक्तिगत कानून मुख्य रूप से धर्मशास्त्र ग्रंथों पर आधारित थे, जिनमें *मनुस्मृति* सबसे प्रमुख स्रोतों में से एक थी। *मनुस्मृति* न केवल सामाजिक नियमों को निर्धारित करती थी, बल्कि व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के लिए विस्तृत नियम भी प्रदान करती थी। यह प्राचीन हिंदू समाज की पितृसत्तात्मक और पदानुक्रमित संरचना को भी दर्शाती है (लिंगत, 1973)।

इसी प्रकार मुस्लिम व्यक्तिगत कानून इस्लामिक धर्मग्रंथों जैसे *क़ुरान* और *हदीस* से लिए गए थे, जो पैगंबर मुहम्मद के उपदेशों और कार्यों का संग्रह है। इन स्रोतों ने विवाह (*निकाह*), तलाक (*तलाक*), और उत्तराधिकार जैसे क्षेत्रों के लिए एक व्यापक कानूनी ढांचा प्रदान किया। व्यावहारिक रूप से, इन कानूनों की व्याख्या इस्लामी न्यायशास्त्र के विभिन्न स्कूलों के माध्यम से की गई थी (एंडरसन, 1960)।

अन्य समुदाय, जैसे जैन, बौद्ध और सिख, अपने स्वयं के प्रथागत कानूनों का पालन करते थे, जो धार्मिक सिद्धांतों और स्थानीय परंपराओं का मिश्रण थे। आदिवासी समुदायों ने भी मौखिक रूप से प्रेषित रीति-रिवाजों और प्रथाओं पर निर्भर किया, जो उनके सामाजिक ढांचे और विश्वास प्रणालियों के साथ गहराई से जुड़े हुए थे। इन विविध

कानूनी ढांचों का सह-अस्तित्व प्राचीन और मध्यकालीन भारत के बहुलतावादी समाज को दर्शाता है। हालांकि, इससे व्यक्तिगत कानूनों के अनुप्रयोग में क्षेत्रीय और सामुदायिक विविधताएं भी उत्पन्न हुईं, जिससे वे स्वाभाविक रूप से जटिल और स्थानीयकृत हो गए (डेरेट, 1968)।

स्वतंत्रता आंदोलन:

समाज सुधारकों जैसे राजा राम मोहन राय और ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने कानूनों के संहिताकरण (कोडिफिकेशन) और बाल विवाह और सती जैसी भेदभावपूर्ण प्रथाओं के उन्मूलन की वकालत की (चटर्जी, 2021)। भारत में व्यक्तिगत कानूनों से संबंधित कानूनी प्रणाली की नींव औपनिवेशिक काल के दौरान रखी गई थी (एग्नेस, 2016)। ब्रिटिश शासन के तहत, शासन की एक दोहरी प्रणाली उभरी: आपराधिक और दीवानी कानूनों को संहिताबद्ध कर समान रूप से लागू किया गया, लेकिन व्यक्तिगत कानूनों को धार्मिक और सांस्कृतिक स्वायत्तता का सम्मान करने के लिए अपरिवर्तित छोड़ दिया गया।

ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता के संघर्ष ने व्यापक कानूनी सुधारों के लिए प्रेरणा प्रदान की, जिसमें समान नागरिक संहिता (यूनिफॉर्म सिविल कोड) की मांग भी शामिल थी। भारतीय संविधान के निर्माण के दौरान, समान नागरिक संहिता (यूसीसी) का मुद्दा संविधान सभा द्वारा व्यापक रूप से बहस का विषय बना। जबकि कुछ सदस्यों ने इसे मौलिक अधिकार के रूप में शामिल करने की वकालत की, अंततः इसे देश के विविध धार्मिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद-44 के तहत राज्य के दिशा नीति निर्देशन सिद्धांत के रूप में शामिल किया गया। यह निर्णय देश की विविध धार्मिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रतिबिंबित करता है (मज़ुवंचेरी, 2021)।

स्वतंत्रता के बाद का भारत:

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने एक धर्मनिरपेक्ष और समानतावादी समाज की परिकल्पना की, जिसका प्रतिबिंब नीति-निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of State Policy) में अनुच्छेद 44 के समावेश में देखा जा सकता है। अनुच्छेद 44 में उल्लेख है: "राज्य भारत के समस्त क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा।" (बासु, 2018)। संविधान निर्माताओं का मानना था कि समान नागरिक संहिता (यूसीसी) सभी नागरिकों के लिए, उनके धर्म या समुदाय की परवाह किए बिना, समान कानूनी मानदंड प्रदान करके समानता और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करेगी।

डॉ. भीमराव अंबेडकर, जो संविधान के प्रमुख निर्माताओं में से एक थे, ने इस विचार का समर्थन किया। उन्होंने इसे लैंगिक न्याय (gender justice) प्राप्त करने और सामाजिक असमानताओं को मिटाने के लिए आवश्यक बताया। हालांकि, उस समय की सामाजिक और धार्मिक संवेदनशीलताओं के कारण यूसीसी को लागू करना स्थगित कर दिया गया (मज़ुवंचेरी, 2021)। संविधान निर्माताओं ने इसे भविष्य की सरकारों की विवेकशीलता पर छोड़ दिया, जो व्यक्तिगत अधिकारों और सामुदायिक पहचान के बीच संतुलन बनाने की उनकी सतर्क दृष्टिकोण को दर्शाता है (सिंह, 2014) ।

भारत में व्यक्तिगत कानूनों के विकास का इतिहास कई महत्वपूर्ण चरणों से होकर गुजरा है, जिनमें से एक 1950 के दशक में हिंदू कोड बिलों के माध्यम से किए गए सुधार थे। इन विधेयकों का उद्देश्य हिंदू व्यक्तिगत कानूनों में विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और गोद लेने जैसे क्षेत्रों में लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना था।

महिलाओं को संपत्ति के अधिकार प्रदान करके और लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करते हुए, इन सुधारों ने हिंदू कानूनों को आधुनिक बनाने की कोशिश की। हालांकि, अन्य समुदायों, जैसे मुसलमानों और ईसाइयों के व्यक्तिगत कानून, बड़े पैमाने पर अपरिवर्तित रहे, जिससे इन प्रणालियों में महिलाओं के साथ असमानताएं बनी रहीं (एग्नेस, 2016)।

एक और महत्वपूर्ण विकास *विशेष विवाह अधिनियम, 1954* का अधिनयन था, जिसने अंतर्धार्मिक और अंतरजातीय विवाहों के लिए एक धर्मनिरपेक्ष कानूनी ढांचा प्रदान किया। इस अधिनियम ने व्यक्तियों को उनके संबंधित व्यक्तिगत कानूनों से बाहर विवाह करने और इसे पंजीकृत करने की अनुमति दी (बासु, 2018)। समान नागरिक संहिता (यूसीसी) पर बहस को 1985 में *शाह बानो मामला* ने और गति दी। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला को धर्मनिरपेक्ष कानून के तहत भरण-पोषण का अधिकार है। यह निर्णय लैंगिक न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना गया, लेकिन इसे कुछ रूढ़िवादी मुस्लिम समूहों द्वारा धार्मिक कानूनों में हस्तक्षेप के रूप में देखा गया। इस विवाद के परिणामस्वरूप *मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986* लागू किया गया, जिसने सुप्रीम कोर्ट के फैसले को प्रभावी रूप से पलट दिया। इसने लैंगिक न्याय और धार्मिक स्वायत्तता के बीच तनाव को उजागर किया (मज़ुवंचेरी, 2021)।

सुप्रीम कोर्ट ने तत्काल तीन तलाक (*तलाक-ए-बिद्दत*) को 2017 में असंवैधानिक और शून्य घोषित कर दिया। यह निर्णय व्यक्तिगत कानूनों में सुधार की आवश्यकता को रेखांकित करता है ताकि न्याय और समानता सुनिश्चित की जा सके (चटर्जी, 2021)। *जोसे पाउलो कौटिन्हो बनाम मारिया लुइज़ा वेलेंटाइना परेरा* (2019) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने गोवा के यूसीसी कानून को उजागर किया गया, जहां समान नागरिक संहिता सभी निवासियों पर लागू होती है, चाहे उनका धर्म कुछ भी हो, जबकि कुछ सीमित अधिकारों की रक्षा की जाती है। सुप्रीम कोर्ट ने गोवा को एक "उज्ज्वल उदाहरण" बताया और पूरे भारत में यूसीसी लागू करने का आग्रह किया, यह दर्शाते हुए कि कानूनी एकरूपता राष्ट्रीय एकता और समानता को बढ़ावा देने के लिए कितनी महत्वपूर्ण है (मज़ुवंचेरी, 2021)।

उत्तराखंड की समान नागरिक संहिता (2024):

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता (यूसीसी) का कार्यान्वयन राज्य की राजनीतिक चर्चाओं में एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है। यह 2022 के उत्तराखंड विधानसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) द्वारा किए गए प्रमुख वादों में से एक था । चुनावों में जीत के बाद, उत्तराखंड सरकार ने इस वादे को पूरा करने की दिशा में बड़ा कदम उठाते हुए 2022 में एक पांच-सदस्यीय विशेषज्ञ समिति का गठन किया। इस समिति की अध्यक्षता पूर्व सुप्रीम कोर्ट न्यायाधीश जस्टिस रंजना प्रकाश देसाई ने की, और इसे राज्य में यूसीसी की व्यवहार्यता का अध्ययन करने और एक व्यापक कानून का मसौदा तैयार करने का कार्य सौंपा गया था (द हिंदू, 2023)।

उत्तराखंड विधानसभा ने *उत्तराखंड समान नागरिक संहिता विधेयक* 2024 में पारित किया, जिसका उद्देश्य विवाह, तलाक, संपत्ति उत्तराधिकार और गोद लेने से संबंधित विभिन्न कानूनों को एकीकृत और एकरूप बनाना है। इस विधेयक के प्रावधान सभी नागरिकों के लिए एक समान कानूनी ढांचे के निर्माण पर जोर देते हैं, चाहे उनका धर्म या समुदाय कुछ भी हो। हालांकि, इस विधेयक में विवादास्पद प्रावधान भी शामिल हैं, जिनमें लिव-इन रिलेशनशिप का अनिवार्य पंजीकरण शामिल है। प्रस्तावित ढांचे के तहत, पंजीकरण के लिए निर्धारित शर्तों का पालन न करने पर

लिव-इन संबंधों को अपराध घोषित किया जा सकता है, जिससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राज्य की भूमिका को लेकर बहस छिड़ गई है (इंडियन एक्सप्रेस, 2024)। जहां विधेयक के समर्थक इसे कानूनी समानता और राष्ट्रीय एकता की दिशा में एक प्रगतिशील कदम मानते हैं, वहीं इसके प्रावधानों ने आलोचना भी झेली है। आलोचकों का तर्क है कि यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजी विकल्पों में हस्तक्षेप करता है (स्क्रॉल, 2024)।

यूसीसी (समान नागरिक संहिता) का ऐतिहासिक संदर्भ भारत के सामाजिक-वैधानिक विकास और संविधानिक आकांक्षाओं में इसके गहरे संबंधों को दर्शाता है। उपनिवेशी शासन के दौरान व्यक्तिगत कानूनों की अनदेखी असमानताओं से लेकर शाह बानो और सरला मुद्गल मामलों जैसे महत्वपूर्ण क्षणों तक, यूसीसी की बहस कानूनी समानता और सांस्कृतिक बहुलवाद के बीच के तनावों को उजागर करती है। इस ऐतिहासिक यात्रा को समझना समकालीन भारत में यूसीसी को लागू करने की संभावनाओं का आकलन करने के लिए आवश्यक है।

संवैधानिक और कानूनी दृष्टिकोण:

समान नागरिक संहिता पर संवैधानिक और कानूनी दृष्टिकोण समानता, धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक स्वतंत्रता के बीच जटिल संतुलन को उजागर करता है। अनुच्छेद-44 एक शक्तिशाली इरादे की अभिव्यक्ति है, लेकिन इसका गैर-प्रवर्तनीय स्वभाव इसके कार्यान्वयन में सहमति और संवेदनशीलता की आवश्यकता को रेखांकित करता है। न्यायिक निर्णयों ने लगातार समान नागरिक संहिता के महत्व पर जोर दिया है, फिर भी मौलिक अधिकारों और सामुदायिक स्वायत्तता के बीच तनाव अब तक अनसुलझा है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-44:

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-44 समान नागरिक संहिता का आधार बनता है। यह सभी नागरिकों पर धर्म की परवाह किए बिना व्यक्तिगत कानूनों का एक समान सेट लागू करने के लिए राज्य की जिम्मेदारी पर जोर देता है। हालांकि राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं, वे शासन के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कार्य करते हैं और एक प्रगतिशील और समानतावादी समाज की संवैधानिक दृष्टि को दर्शाते हैं। अनुच्छेद-44 का उद्देश्य धर्म-विशिष्ट व्यक्तिगत कानूनों से उत्पन्न असमानताओं को धीरे-धीरे समाप्त करना था, ताकि समानता सुनिश्चित की जा सके और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिल सके।

इसके बावजूद, इसका गैर-प्रवर्तनीय स्वभाव इसके कार्यान्वयन को राजनीतिक इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है, जिससे यह केवल एक आदर्श लक्ष्य बनकर रह गया है। संविधान सभा की बहस के दौरान, डॉ. भीमराव अंबेडकर ने धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय को मजबूत करने के लिए की वकालत की। हालांकि, उस समय की सामाजिक-धार्मिक संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए, संविधान निर्माताओं ने इसे लागू करने का निर्णय भविष्य की सहमति और स्वीकृति पर छोड़ दिया (मज़ुवहंचेरी, 2021)।

मौलिक अधिकारों और समान नागरिक संहिता के बीच तनाव:

समान नागरिक संहिता पर बहस अक्सर दो मौलिक संवैधानिक सिद्धांतों के बीच विरोधाभास के रूप में देखी जाती है:

1. **समानता का अधिकार (अनुच्छेद-14):** यह कानून के समक्ष समानता सुनिश्चित करता है और धर्म, जाति या लिंग के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है। यह समान नागरिक संहिता के समर्थन में तर्क देता है क्योंकि

समान व्यक्तिगत कानून धर्म-आधारित कानूनों में निहित भेदभावपूर्ण प्रथाओं, विशेष रूप से महिलाओं के खिलाफ, को समाप्त कर सकते हैं।

2. **धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद-25):** अनुच्छेद-25 प्रत्येक व्यक्ति को अंतरात्मा की स्वतंत्रता और धर्म को स्वतंत्र रूप से मानने, उसका आचरण करने और उसका प्रचार करने का अधिकार देता है। हालांकि, यह अधिकार सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य और अन्य मौलिक अधिकारों के अधीन है (बक्शी, 2023)। समुदाय अक्सर समान नागरिक संहिता को अपनी धार्मिक स्वायत्तता और सांस्कृतिक पहचान पर अतिक्रमण के रूप में देखते हैं, खासकर जब व्यक्तिगत कानून धार्मिक सिद्धांतों से प्रेरित होते हैं।

यह तनाव भारत में धर्मनिरपेक्षता और बहुलवाद को संतुलित करने की चुनौती को दर्शाता है। जहां धर्मनिरपेक्षता धर्म और राज्य के अलगाव की वकालत करती है, वहीं भारत का मॉडल अपने कानूनी ढांचे में धार्मिक विविधता को मान्यता और समायोजन देता है। समान नागरिक संहिता पर बहस इन संवैधानिक आदर्शों को सामंजस्यपूर्ण बनाने के संघर्ष का प्रतीक है।

समान नागरिक संहिता पर न्यायिक निर्णय:

न्यायपालिका ने समान नागरिक संहिता के कार्यान्वयन के लिए बार-बार जोर दिया है और इसकी आवश्यकता को समानता और न्याय सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण बताया है। प्रमुख फैसले निम्नलिखित हैं:

1. **शाह बानो मामला (1985):** इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि मुस्लिम महिलाओं को तलाक के बाद भी भारतीय धर्मनिरपेक्ष कानून के तहत गुजारा भत्ता पाने का अधिकार है। इस फैसले ने समान नागरिक संहिता पर राष्ट्रीय बहस छेड़ दी।

2. **सारला मुद्गल बनाम भारत संघ (1995):** इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर जोर दिया, यह तर्क देते हुए कि विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों के तहत महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने के लिए एक समान कानून आवश्यक है।

3. **तीन तलाक मामला (2017):** सुप्रीम कोर्ट ने तत्काल तीन तलाक (तलाक-ए-बिद्दत) को असंवैधानिक और अमान्य घोषित किया। इसने व्यक्तिगत कानूनों में लैंगिक न्याय सुनिश्चित करने की आवश्यकता को रेखांकित किया।

इन निर्णयों ने न्यायपालिका के समान नागरिक संहिता के प्रति निरंतर समर्थन को उजागर किया है, लेकिन यह भी दर्शाया है कि व्यक्तिगत अधिकारों और सामुदायिक स्वायत्तता के बीच संतुलन बनाना कितना जटिल है।

1. समान नागरिक संहिता वाले देश:

भारत का धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण पश्चिमी मॉडलों से अलग है। जहां संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस जैसे पश्चिमी लोकतंत्र धर्म और राज्य के कठोर पृथक्करण का पालन करते हैं, वहीं भारत 'सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता' का मॉडल अपनाता है, जो राज्य को धार्मिक प्रथाओं के साथ संलग्न होने और उन्हें समायोजित करने की अनुमति देता है।

कई देशों ने सफलतापूर्वक समान नागरिक संहिता लागू की है, जो उनके लाभों और चुनौतियों के बारे में जानकारी प्रदान करती है:

1. तुर्की:

मुस्तफा कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में तुर्की ने 1926 में एक धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता अपनाई, जिसने इस्लामी शरिया को स्विस सिविल कोड पर आधारित कानूनों से बदल दिया। इस सुधार ने व्यक्तिगत कानूनों को एकीकृत किया, जिससे लैंगिक समानता और धर्मनिरपेक्ष शासन सुनिश्चित हुआ। प्रारंभ में इस बदलाव का विरोध हुआ, लेकिन यह तुर्की के आधुनिकीकरण प्रयासों का एक प्रमुख आधार बन गया।

2. फ्रांस:

फ्रांस का *laïcité* (कठोर धर्मनिरपेक्षता) का सिद्धांत सभी नागरिकों के लिए एक समान कानूनी ढांचा लागू करता है, जो धर्म और कानून को पूरी तरह से अलग करता है। व्यक्तिगत कानून अनुपस्थित हैं, और पारिवारिक मामलों को 1804 की सिविल कोड के तहत नियंत्रित किया जाता है। इस दृष्टिकोण ने सार्वजनिक और कानूनी संस्थानों पर धार्मिक प्रभाव को कम करने में मदद की है।

3. ट्यूनीशिया:

ट्यूनीशिया ने 1956 में बहुविवाह को समाप्त किया और एक प्रगतिशील व्यक्तिगत स्थिति संहिता लागू की, जिससे पारिवारिक मामलों में लैंगिक समानता सुनिश्चित हुई। इन सुधारों का रूढ़िवादी समूहों से विरोध हुआ, लेकिन इन्हें मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और सार्वजनिक शिक्षा अभियानों के माध्यम से लागू किया गया।

4. संयुक्त राज्य अमेरिका:

अमेरिका धर्म-आधारित व्यक्तिगत कानूनों को मान्यता नहीं देता। विवाह, तलाक, और उत्तराधिकार जैसे सभी मामलों को राज्य या संघीय कानूनों के तहत समान रूप से नियंत्रित किया जाता है। व्यक्तिगत धार्मिक प्रथाओं को निजी तौर पर मानने की स्वतंत्रता है, लेकिन कानूनी विवादों में सिविल कानून को प्राथमिकता दी जाती है।

5. इंगलैंड:

इंगलैंड में विभिन्न धार्मिक समुदायों वाली विविध जनसंख्या है, लेकिन वहां समान नागरिक संहिता नहीं है। यह पारिवारिक मामलों के लिए *शरिया परिषदों* जैसे धार्मिक मध्यस्थता निकायों को संचालित करने की अनुमति देता है, जो कानूनी प्रणाली के समानांतर काम करते हैं। हालांकि, यह दृष्टिकोण समानांतर कानूनी प्रणालियों के उभरने और व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने से संबंधित चिंताओं को उठाता है।

2. अंतरराष्ट्रीय अनुभवों से भारत को सीखने योग्य बातें:

1. *चरणबद्ध कार्यान्वयन:* तुर्की और ट्यूनीशिया ने दिखाया कि सुधारों को सार्वजनिक शिक्षा के साथ चरणबद्ध तरीके से लागू करना विरोध को दूर करने में मदद कर सकता है।
2. *नागरिक कानून की प्रधानता:* अमेरिका और फ्रांस की तरह, भारत सार्वजनिक मामलों में धर्मनिरपेक्ष कानूनों की प्रधानता पर जोर दे सकता है, जबकि धार्मिक प्रथाओं को निजी क्षेत्र में रहने की अनुमति दे सकता है।

3. *लैंगिक समानता पर ध्यान:* ट्यूनीशिया के सुधार यह रेखांकित करते हैं कि समान नागरिक संहिता को महिलाओं के सशक्तिकरण के उपकरण के रूप में पेश करना व्यापक स्वीकृति को बढ़ावा दे सकता है।

4. इंगलैंड *का दृष्टिकोण:* यह दिखाता है कि कैसे देश विविध धार्मिक प्रथाओं को समायोजित कर सकते हैं, जबकि एक धर्मनिरपेक्ष कानूनी ढांचा बनाए रखते हैं। हालांकि, यह दृष्टिकोण समानांतर कानूनी प्रणालियों के जोखिम को उजागर करता है और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर जोर देता है कि व्यक्तिगत अधिकार संरक्षित रहें।

3. समान नागरिक संहिता के समर्थन में तर्क:

भारत में समान नागरिक संहिता को अक्सर एक प्रगतिशील सुधार के रूप में देखा जाता है, जो समानता, न्याय और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। समान नागरिक संहिता लागू करने के संभावित लाभ निम्नलिखित हैं:

लैंगिक न्याय और समानता:

व्यक्तिगत कानून अक्सर धार्मिक परंपराओं में निहित पितृसत्तात्मक मानदंडों को प्रतिबिंबित करते हुए लैंगिक असमानताओं को बनाए रखते हैं। उदाहरण के लिए:

- **हिंदू व्यक्तिगत कानून:** *हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम* (2005 संशोधन) ने बेटियों को समान उत्तराधिकार अधिकार दिए, लेकिन सामाजिक दबाव और पितृसत्तात्मक रीति-रिवाजों के कारण व्यवहार में असमानताएं बनी रहती हैं।

- **मुस्लिम व्यक्तिगत कानून:** *शरिया* के तहत बहुविवाह और असमान उत्तराधिकार अधिकार जैसी प्रथाएं महिलाओं के लिए हानिकारक हैं। उदाहरण के लिए, एक बेटी को अपने पुरुष समकक्ष के आधे हिस्से की ही संपत्ति का अधिकार मिलता है।

- **ईसाई व्यक्तिगत कानून:** सुधारों से पहले, ईसाई तलाक कानून महिलाओं के लिए तलाक लेने की प्रक्रिया को पुरुषों की तुलना में अधिक कठिन बनाते थे।

ये असमानताएं लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए सुधार की तात्कालिक आवश्यकता को दर्शाती हैं। समान नागरिक संहिता न्याय, निष्पक्षता और समानता के समान सिद्धांत स्थापित करके इन असमानताओं को दूर करने की क्षमता प्रदान करती है (पांडे और अंतवाल, 2021)।

संवैधानिक नैतिकता सुनिश्चित करना:

धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों में निहित लैंगिक भेदभाव को समाप्त करके, समान नागरिक संहिता संविधान के अनुच्छेद- 14 के तहत भारत की प्रतिबद्धता को आगे बढ़ा सकती है। यह भारतीय संविधान के निर्माताओं की दृष्टि को प्राप्त करने में मदद करेगा।

राष्ट्रीय एकता:

समान नागरिक संहिता के समर्थक इसे एक संवैधानिक आवश्यकता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने का साधन मानते हैं। राजनीतिक दल और समूह जो राष्ट्रवादी एजेंडे का समर्थन करते हैं, समान नागरिक संहिता को एकता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। समान नागरिक संहिता एक ऐसा कानूनी ढांचा प्रदान करके राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देता है जो सभी नागरिकों पर लागू होता है और धार्मिक और सांस्कृतिक मतभेदों से परे है।

धर्मनिरपेक्षता को मजबूत करना:

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि धर्म कानूनी अधिकारों या दायित्वों को निर्धारित नहीं कर सकता। समान नागरिक संहिता यह सुनिश्चित करके भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को मजबूत करता है कि व्यक्तिगत मामलों को नियंत्रित करने वाले कानून धार्मिक सिद्धांतों से प्रभावित नहीं होते हैं। श्री के.एम. मुंशी ने सुझाव दिया था कि हमें अपने व्यक्तिगत कानूनों को एकीकृत करना होगा ताकि पूरे देश के लिए एक एकीकृत और धर्मनिरपेक्ष जीवन शैली प्राप्त हो सके (शर्मा, 2021)।

कानूनी प्रणाली को सरल और सुव्यवस्थित बनाना:

वर्तमान में विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों की प्रणाली कानूनी जटिलता और भ्रम पैदा करती है। समान नागरिक संहिता इन कानूनों को एकीकृत संहिता से बदलकर कानूनी ढांचे को सरल बनाता है, जिससे नागरिकों और न्यायपालिका के लिए इसे समझना आसान हो जाता है। व्यक्तिगत कानूनों की विरोधाभासी व्याख्याओं से उत्पन्न मुकदमों को समान कानूनों के माध्यम से कम किया जा सकता है, जिससे न्यायपालिका पर भार कम होता है।

संवैधानिक आदेशों को पूरा करना:

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-44 स्पष्ट रूप से कहता है कि राज्य सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा। समान नागरिक संहिता को लागू करना संविधान के निर्माताओं की उस दृष्टि के अनुरूप है, जिन्होंने कानूनी समानता के माध्यम से समानता और न्याय को बढ़ावा देने का प्रयास किया था।

व्यक्तिगत अधिकारों को सामुदायिक पहचान से ऊपर रखना:

समान नागरिक संहिता विशेष रूप से महिलाओं और हाशिए पर रहने वाले समूहों के अधिकारों को सामुदायिक मानदंडों से ऊपर प्राथमिकता देता है। यह नागरिकों को धर्मनिरपेक्ष कानूनी ढांचे के आधार पर व्यक्तिगत निर्णय लेने की अनुमति देता है (जैसे विवाह, तलाक, उत्तराधिकार), बजाय इसके कि वे प्रतिबंधात्मक धार्मिक प्रथाओं से बाधित हों।

अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप:

कई धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र जैसे अमेरिका, फ्रांस और तुर्की व्यक्तिगत मामलों को नियंत्रित करने वाले एकीकृत नागरिक कानूनों का पालन करते हैं, जो सभी नागरिकों के लिए समानता और न्याय सुनिश्चित करते हैं। भारत, जो *महिला भेदभाव उन्मूलन सम्मेलन* का हस्ताक्षरकर्ता है, इस संधि के अनिवार्य प्रावधानों का पालन करने के लिए बाध्य है (रतन, 2004)।

सामाजिक सुधार को बढ़ावा देना:

समान नागरिक संहिता एक प्रगतिशील सुधार है, जो भारत के एक आधुनिक, समानतावादी समाज में परिवर्तन के साथ मेल खाता है। यह पुरानी प्रथाओं को संबोधित करता है और उन कानूनी सुधारों को बढ़ावा देता है

जो समकालीन मूल्यों को दर्शाते हैं। 1950 के दशक में हिंदू व्यक्तिगत कानूनों में सुधार ने दिखाया कि कानूनी परिवर्तन सामाजिक न्याय को बढ़ावा दे सकते हैं, बिना सांस्कृतिक परंपराओं को समाप्त किए।

समान नागरिक संहिता समानता, न्याय और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह न केवल कानूनी असमानताओं को संबोधित करता है बल्कि धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक सुधार को भी मजबूत करता है। जबकि समान नागरिक संहिता को लागू करने की चुनौतियां महत्वपूर्ण हैं, दीर्घकालिक लाभ, जैसे लैंगिक न्याय, सामाजिक समरसता और कानूनी समानता, इसे भारत के प्रगतिशील सुधारों में से एक के रूप में आवश्यक बनाते हैं।

4. भारत में समान नागरिक संहिता लागू करने में चुनौतियां:

भारत में समान नागरिक संहिता लागू करना एक जटिल और विवादास्पद मुद्दा है, जो देश के अनोखे सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य से जुड़ा हुआ है। समान नागरिक संहिता लागू करने में प्रमुख चुनौतियां निम्नलिखित हैं:

व्यक्तिगत कानूनों में धर्म और परंपराओं की भूमिका:

भारत के व्यक्तिगत कानून धार्मिक सिद्धांतों और सांस्कृतिक परंपराओं में गहराई से निहित हैं। प्रत्येक समुदाय के अपने व्यक्तिगत कानून होते हैं, जो विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और गोद लेने जैसे मामलों को नियंत्रित करते हैं। उदाहरण के लिए:

- हिंदू व्यक्तिगत कानून धर्मशास्त्रों से प्रभावित हैं।
- मुस्लिम व्यक्तिगत कानून *कुरान* और *शरिया* से लिए गए हैं।

कई समुदायों के लिए, व्यक्तिगत कानून स्वायत्तता और सांस्कृतिक संरक्षण का प्रतीक होते हैं। ऐसे में इन कानूनों को समान नागरिक संहिता से बदलने का कोई भी प्रयास उनके लिए अस्तित्व के खतरे जैसा प्रतीत होता है। व्यक्तिगत कानूनों और धर्म के बीच मजबूत संबंध एक समान ढांचा पेश करने के प्रयासों को जटिल बनाते हैं, क्योंकि यह अल्पसंख्यक परंपराओं पर थोपने के रूप में देखा जा सकता है।

अल्पसंख्यक अधिकार और धार्मिक स्वतंत्रता:

अल्पसंख्यक समूह, विशेष रूप से मुसलमान और ईसाई, समान नागरिक संहिता को संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत गारंटीकृत अपनी धार्मिक स्वतंत्रता के संभावित क्षरण के रूप में देखते हैं। उन्हें डर है कि एक समान संहिता में बहुसंख्यक समुदाय के मूल्यों का दबदबा हो सकता है, जिससे उनकी विशिष्ट परंपराएं कमजोर हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, समान नागरिक संहिता पर होने वाली बहस अक्सर राजनीतिक आख्यानों से जुड़ जाती है, जिससे सांस्कृतिक हाशिए पर जाने की आशंकाएं बढ़ जाती हैं।

सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधता में चुनौती:

भारत की व्यापक सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधता इसे और अधिक जटिल बना देती है। न केवल धार्मिक समुदायों के बीच बल्कि उनके भीतर भी प्रथाएं भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए: *हिंदू उत्तराधिकार कानून* गोवा,

तमिलनाडु और जम्मू-कश्मीर जैसे राज्यों में अलग-अलग हैं। *जनजातीय समुदायों* की अपनी परंपराएं हैं, जो संहिताबद्ध व्यक्तिगत कानूनों के अनुरूप नहीं हो सकतीं।

एक एकीकृत संहिता थोपना इन जटिलताओं को सरल बनाने का जोखिम उठाता है, जिससे विभिन्न समूहों को अलग-थलग किया जा सकता है। विविधता का सम्मान करते हुए और एकरूपता को बढ़ावा देते हुए समान नागरिक संहिता तैयार करना एक सूक्ष्म और समावेशी दृष्टिकोण की आवश्यकता रखता है।

संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता:

समान नागरिक संहिता को लागू करने के लिए भारत को अपने संविधान के विभिन्न प्रावधानों में संशोधन करना पड़ सकता है। इसके लिए पर्याप्त राजनीतिक सहमति और प्रयास की आवश्यकता होगी, जो प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है। **अनुच्छेद-244 (1)** और पांचवीं अनुसूची के तहत, भारतीय संविधान जनजातीय समुदायों के प्रथागत अधिकारों की रक्षा करता है। इसी प्रकार, **अनुच्छेद-244 (2)** और छठी अनुसूची पूर्वोत्तर राज्यों के लिए समान संरक्षण प्रदान करती है। **अनुच्छेद-371** के माध्यम से विभिन्न पूर्वोत्तर राज्यों को विशेष दर्जा दिया गया है, जिसके अंतर्गत प्रथागत कानूनों और स्वायत्त जनजातीय परिषदों को विशेष संरक्षण दिया गया है। ये परिषदें जनजाति की परंपराओं के अनुसार दीवानी और आपराधिक कानूनों का प्रशासन करने के लिए सक्षम हैं (खान, अफाक और खान, 2021)।

राजनीतिक विभाजन:

समान नागरिक संहिता का मुद्दा अक्सर राजनीतिक रंग ले लेता है, जिसमें विभिन्न राजनीतिक दल अलग-अलग रुख अपनाते हैं। भारतीय जनता पार्टी जैसे दल समान नागरिक संहिता का जोरदार समर्थन करते हैं और इसे एकीकृत राष्ट्र की उनकी दृष्टि से जोड़ते हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और क्षेत्रीय दल जैसे अन्य दल, इसे लागू करने से पहले आम सहमति बनाने की वकालत करते हैं। समान नागरिक संहिता का राजनीतिकरण अक्सर इसके उद्देश्य, यानी समानता को बढ़ावा देने, से ध्यान हटा देता है और इसे एक ध्रुवीकरण वाला चुनावी मुद्दा बना देता है।

जागरूकता की कमी:

ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेष रूप से कई नागरिकों को मौजूदा कानूनों के तहत अपने कानूनी अधिकारों के बारे में जानकारी नहीं है। इस जागरूकता की कमी सुधारों की स्वीकृति को बाधित कर सकती है।

भारत में समान नागरिक संहिता लागू करने में ये चुनौतियां देश की विविधता और बहुलवादी लोकाचार में गहराई से निहित हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए एक संवेदनशील, समावेशी और चरणबद्ध दृष्टिकोण आवश्यक है। समान नागरिक संहिता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समुदायों के बीच विश्वास और सहमति का निर्माण करना अनिवार्य है।

5. भारत में समान नागरिक संहिता के क्रमिक कार्यान्वयन के संभावित मॉडल:

1. सामान्य सिद्धांतों का संहिताकरण:

सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत सिद्धांतों का संहिताकरण शुरू करें, जैसे उत्तराधिकार में लैंगिक समानता, बहुविवाह पर प्रतिबंध और घरेलू हिंसा से सुरक्षा। इन सिद्धांतों को सभी समुदायों पर लागू करें, बिना धार्मिक परंपराओं को पूरी तरह से समाप्त किए।

2. **वैकल्पिक समान नागरिक संहिता:**

एक वैकल्पिक समान नागरिक संहिता प्रदान करें, जिसे नागरिक अपनाने का विकल्प चुन सकें। यह स्वैच्छिक रूप से इसे स्वीकारने की अनुमति देता है और समय के साथ इसकी स्वीकार्यता को बढ़ावा देता है। इसके अलावा, किसी समुदाय के भीतर से शुरू किया गया सुधार उस समुदाय द्वारा बाहरी रूप से लाए गए सुधार की तुलना में बेहतर और तेज़ी से स्वीकार किए जाने की संभावना रखता है (अफाक और दारी, 2021)।

3. **क्षेत्र-विशिष्ट सुधार:**

विवाह या उत्तराधिकार जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में सुधार लागू करें, इससे पहले कि एक व्यापक संहिता पेश की जाए। यह चरणबद्ध दृष्टिकोण विरोध को कम करता है और एकरूपता के लाभों को प्रदर्शित करता है।

4. **हितधारकों की भागीदारी:**

समान नागरिक संहिता का मसौदा तैयार करने के लिए धार्मिक नेताओं, सामुदायिक प्रतिनिधियों और नागरिक समाज को शामिल करें। यह भारतीय समाज में एकरूपता और सांस्कृतिक बहुलवाद के बीच संतुलन बनाने में मदद करेगा।

5. **समान नागरिक संहिता पर सार्वजनिक जागरूकता अभियान:**

नागरिकों को समान नागरिक संहिता के लाभों, विशेष रूप से लैंगिक न्याय और समानता को बढ़ावा देने में, शिक्षित करें। एक समिति का गठन करें जिसमें कानूनी विशेषज्ञ, धार्मिक नेता और सामुदायिक प्रतिनिधि शामिल हों, जो एक संतुलित समान नागरिक संहिता का मसौदा तैयार करें।

6. **न्यायिक निगरानी:**

जब तक समान नागरिक संहिता पूरी तरह लागू न हो जाए, व्यक्तिगत कानूनों में भेदभावपूर्ण प्रथाओं को संबोधित करने के लिए न्यायिक हस्तक्षेप को मजबूत करें।

7. **गोवा: समान नागरिक संहिता सुधार के लिए एक मॉडल:**

गोवा एकमात्र भारतीय राज्य है जहां एक सामान्य नागरिक संहिता लागू है, जो पुर्तगाली शासन के दौरान स्थापित की गई थी। गोवा परिवार कानून सभी समुदायों पर समान रूप से लागू होता है, जो इसे राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने के लिए एक संभावित मॉडल बनाता है। हालांकि, गोवा का सीमित दायरा और विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ इसे पूरे देश में सार्वभौमिक रूप से लागू करना मुश्किल बनाता है।

8. **चरणबद्ध दृष्टिकोण:**

सुधारों को धीरे-धीरे लागू करें, जिससे समुदायों को इन परिवर्तनों के अनुकूल होने का समय मिल सके। 21वें विधि आयोग (2016–2018) ने निष्कर्ष निकाला कि एक व्यापक समान संहिता लागू करने के बजाय,

मौजूदा व्यक्तिगत कानूनों का क्रमिक संहिताकरण, जिसमें लैंगिक न्याय और समानता सुनिश्चित हो, अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण होगा।

समान नागरिक संहिता समानता, लैंगिक न्याय और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। राज्य के दिशा नीति निर्देशन सिद्धांत के अनुच्छेद-44 के तहत इसका संवैधानिक जनादेश एक प्रगतिशील दृष्टि को दर्शाता है, लेकिन भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता में निहित व्यावहारिक चुनौतियों ने इसके कार्यान्वयन में बाधा डाली है। न्यायालय के फैसले और अंतरराष्ट्रीय अनुभव यह दिखाते हैं कि समान नागरिक संहिता धर्मनिरपेक्षता और न्याय को बढ़ावा देने की क्षमता रखता है, लेकिन यह भी स्पष्ट करता है कि इसके लिए एक संवेदनशील और समावेशी दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

'एक राष्ट्र, एक कानून' वांछनीय और प्राप्त करने योग्य दोनों है, लेकिन इसकी सफलता समानता और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों को सांस्कृतिक बहुलवाद की वास्तविकताओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने पर निर्भर करती है। समान नागरिक संहिता का एकमुश्त थोपना अल्पसंख्यक समुदायों को अलग-थलग कर सकता है, जबकि एक चरणबद्ध और आम सहमति-आधारित दृष्टिकोण विश्वास और स्वीकार्यता का निर्माण कर सकता है।

एक क्रमिक और समावेशी दृष्टिकोण अपनाकर, भारत समान नागरिक संहिता लागू करने की जटिलताओं को हल कर सकता है, साथ ही अपने विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचे का सम्मान भी कर सकता है। यह संतुलित रणनीति सुनिश्चित करती है कि 'एक राष्ट्र, एक कानून' वास्तविकता बने, जो सभी नागरिकों के लिए समानता और न्याय को बढ़ावा दे।

संदर्भ सूची

1. अफाक, ए., और डारी, एस.एस. (2021)। "द मुस्लिम वीमेन (प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स ऑन मैरिज) एक्ट, 2019: एन इंसब्स्टेंशियल एडिशन टू द रिल्म ऑफ लॉ"। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मॉडर्न एग्रीकल्चर*, वॉल्यूम 10, अंक 2, पृष्ठ 296।
2. अहमद, शफीक. (2017). *भारतीय संविधान और व्यक्तिगत कानूनों की भूमिका*. नई दिल्ली: प्रकाशन हाउस।
3. सिंह, अनीता. (2014). *समान नागरिक संहिता: संवैधानिक और सामाजिक आयाम*. लखनऊ: विधि अध्ययन केंद्र।
4. एग्नेस, एफ. (2016)। "पर्सनल लॉज़"। द *ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन* (पृष्ठ 903-920)।
5. अहमद, एस. (2021)। "यूनिफॉर्म सिविल कोड: प्रॉब्लम एंड परस्पेक्ट्स "। https://core.ac.uk/download/pdf/144516425.pdf
6. चटर्जी, बी. (2021)। "फ्रॉम हिन्दू कोड बिल तू यूनिफार्म सिविल कोड : ए एफिनशेड जर्नी"।

7. धिंगरा, एस. (2018)। "टाइम नॉट राइप फॉर यूनिफार्म सिविलकोड सेस लॉ कमीशन चेयरमैन बी. चौहान"। https://theprint.in/india/governance/time-not-ripe-for-uniform-civil-code-says-law-commission-chairman-b-s-chauhan/109562
8. लॉ कमीशन ऑफ इंडिया। (2018)। "कंसल्टेशन पेपर ऑन रिफार्म ऑफ़ फॅमिली लॉ"। https://archive.pib.gov.in/documents/rlink/2018/aug/p201883101.pdf
9. चंद्रशेखर, किरण. (2018). *धर्मनिरपेक्षता और भारतीय विधि व्यवस्था*. पुणे: भारत बुक्स।
10. शाह, मीना. (2016). *समान नागरिक संहिता की प्रासंगिकता और चुनौतियां*. मुंबई: विधि प्रकाशन।
11. मझुवंचेरी, एस। (2021)। "मल्टीकल्चरलिस्म एंड स्पिरिट ऑफ़ एकोमोडेशन: ए रेलूक द डिबेट्स"। खान, एस., अफाक, ए., और खान, एच, *यूनिफॉर्म सिविल कोड - यूनिफार्म सिविल कोड -ए नेवर एंडिंग डाइलेमा इन इंडिया* (पृष्ठ 13-31)।
12. *एंडरसन, एन. (1960). लॉ रिफॉर्म इन द मुस्लिम वर्ल्ड. लंदन: एथलोन प्रेस।*
13. *डेरेट, जे. डी. एम. (1968). रिलिजन, लॉ एंड द स्टेट इन इंडिया. लंदन: फैबर एंड फैबर।*
14. *लिंगत, आर. (1973). द क्लासिकल लॉ ऑफ इंडिया. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।*
15. *मेंस्की, डब्ल्यू। (2008)। "द यूनिफार्म सिविल कोड डिबेट इन इंडियन लॉ : न्यू डेवलपमेंट्स एंड चेंजिंग एजेंडा"। जर्मन लॉ जर्नल, वॉल्यूम 9(3), पृष्ठ 211।*
16. रत्तन, जे. (2004)। "यूनिफार्म सिविल कोड इन इंडिया : ए बॉन्डिंग ऑब्लिगेशन अंडर इंटरनेशनल एंड डोमेस्टिक लॉ" । *जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टिट्यूट,* वॉल्यूम 46(4), पृष्ठ 577।
17. कुमार, रोहित. (2021). *समान नागरिक संहिता पर न्यायालय की भूमिका*. इलाहाबाद: न्याय बोध।
18. वरुण, संजय. (2020). *भारतीय विविधता और कानूनी सुधार*. जयपुर: सुदर्शन प्रेस।
19. शंभवी। (2017)। "यूनिफॉर्म सिविल कोड: द नेसेसिटी एंड द अब्सर्डिटी"। *आईएलआई लॉ रिव्यू,* वॉल्यूम I, पृष्ठ 12।
20. सिंह, एम. पी. (2014)। "ऑन यूनिफॉर्म सिविल कोड, लीगल प्लुरलिज़्म एंड द कंस्टीटूशन ऑफ़ इंडिया"। *जर्नल ऑफ इंडियन लॉ एंड सोसाइटी,* मानसून संस्करण, वॉल्यूम V.

26

भारत में समान नागरिक संहिता पर बहस: पंथनिरपेक्षता और बहुलवाद के बीच संतुलन

डॉ अभय कुमार
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी
शालिनी प्रसाद
सहायक आचार, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
रत्नेश कुमार यादव
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारत एक ऐसा देश है जो अपनी विविधता के लिए विश्वभर में जाना जाता है। यहां विभिन्न पंथ, जाति, भाषा, और संस्कृतियां एक साथ मिलकर एकता का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। लेकिन इसी विविधता के चलते कई बार कानूनी, सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दे भी उभरते हैं। समान नागरिक संहिता का मुद्दा उनमें से एक है, जो संविधान, पंथनिरपेक्षता और बहुलवाद के मूल सिद्धांतों को लेकर गंभीर बहस का कारण बनता है।

समान नागरिक संहिता का अर्थ है ऐसा एक समान कानून जो सभी नागरिक समूहों पर समान रूप से लागू हो। यह कानून विवाह, तलाक, गोद लेना, संपत्ति का अधिकार, और उत्तराधिकार जैसे व्यक्तिगत मामलों को नियंत्रित करेगा। भारत में विभिन्न धर्मों के लिए अलग-अलग व्यक्तिगत कानून हैं। ये कानून विवाह, तलाक, गोद लेने, संपत्ति के अधिकार, और उत्तराधिकार जैसे मामलों को नियंत्रित करते हैं। हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी और अन्य धार्मिक समुदायों के अपने-अपने व्यक्तिगत कानून हैं, जो उनकी धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं पर आधारित हैं। इन कानूनों में न केवल एक-दूसरे से बल्कि कई बार समान पंथ के भीतर भी भिन्नता होती है। समान नागरिक संहिता इन भिन्नताओं को समाप्त करके एक ऐसा कानून लागू करने की बात करता है, जो पंथ, जाति, या लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव किए बिना सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हो। इसका मुख्य उद्देश्य समानता और न्याय की भावना को स्थापित करना है। हालाँकि, यह विषय संवेदनशील है क्योंकि यह पंथ और परंपराओं के गहरे सवालों से जुड़ा है। कई धार्मिक और सांस्कृतिक समूह इसे अपनी स्वतंत्रता और पहचान पर खतरे के रूप में देखते हैं।

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

निवेदिता मेनन के लेख "ए यूनिफार्म सिविल कोड इन इंडिया: द स्टेट ऑफ़ द डिबेट इन 2014" में समान नागरिक संहिता पर भारतीय बहस के राजनीतिक और सामाजिक आयामों को उजागर किया गया है। मेनन ने बताया कि संविधान के अनुच्छेद 14-24 व्यक्ति की समानता और स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं, जबकि अनुच्छेद 25-30 धार्मिक स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा प्रदान करते हैं। यह विरोधाभास समान नागरिक संहिता की बहस को जटिल बनाता है। लेख में यह भी रेखांकित किया गया है कि कैसे हिंदू व्यक्तिगत कानूनों को सुधारने के बजाय सिर्फ संहिताबद्ध किया गया था, जबकि अन्य समुदायों को अक्सर पिछड़ा हुआ दिखाया जाता है।

पीटर रोनाल्ड डिसूजा के लेख " पॉलिटिक्स ऑफ़ द यूनिफार्म सिविल कोड इन इंडिया " में समान नागरिक संहिता को भारतीय राजनीति के गहरे सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ में देखा गया है। लेख इस बात पर जोर देता है कि समान नागरिक संहिता का मुद्दा सिर्फ कानून का मामला नहीं है, बल्कि यह पंथनिरपेक्षता, अल्पसंख्यक अधिकारों, और सामाजिक न्याय के बीच संतुलन स्थापित करने की चुनौती है। डिसूजा बहस को भारत की विविधता और पहचान की राजनीति से जोड़ते हैं, जहां समान नागरिक संहिता को एक बहुसांस्कृतिक समाज में लागू करना जटिल लेकिन आवश्यक है।

अखिलेंद्र प्रताप सिंह के लेख "यूटिलिटी ऑफ़ यूनिफार्म सिविल कोड" में समान नागरिक संहिता को भारतीय समाज में एक आवश्यक सुधार के रूप में देखा गया है। लेखक तर्क देते हैं कि यूसीसी से सभी नागरिकों के लिए एक समान कानूनी ढांचा तैयार होगा, जो लैंगिक न्याय और सामाजिक एकता को बढ़ावा देगा। हालांकि, इस सुधार के सामने पंथ, परंपरा, और विविधता से जुड़े कई सामाजिक-राजनीतिक चुनौतियां भी हैं। लेख में ऐतिहासिक मामलों और संविधान के अनुच्छेद 44 के महत्व को भी रेखांकित किया गया है।

लीला सेठ ने अपने लेख " ए यूनिफार्म सिविल कोड: टुवर्ड्स जेंडर जस्टिस " में समान नागरिक संहिता (यूसीसी) पर भारतीय बहस के राजनीतिक और सामाजिक आयामों को उजागर किया गया है। मेनन ने बताया कि संविधान के अनुच्छेद 14-24 व्यक्ति की समानता और स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं, जबकि अनुच्छेद 25-30 धार्मिक स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा प्रदान करते हैं। यह विरोधाभास यूसीसी की बहस को जटिल बनाता है। लेख में यह भी रेखांकित किया गया है कि कैसे हिंदू व्यक्तिगत कानूनों को सुधारने के बजाय सिर्फ संहिताबद्ध किया गया था, जबकि अन्य समुदायों को अक्सर पिछड़ा हुआ दिखाया जाता है। उनका मानना है कि यूसीसी को न केवल कानूनी बल्कि सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से भी सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

शब्बीर अहमद और शबीर अहमद के लेख "यूनिफार्म सिविल कोड (आर्टिकल 44 ऑफ़ द कंस्टीटूशन): ए डेड लेटर" में समान नागरिक संहिता की भारत में स्थिति पर चर्चा की गई है। लेख इस बात पर जोर देता है कि अनुच्छेद 44, जो राज्य को नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता अपनाने का निर्देश देता है, केवल एक नीति-निर्देशक सिद्धांत है और इसे कानूनी रूप से लागू नहीं किया जा सकता।

अहमद और अहमद लेख समान नागरिक संहिता को लागू करने में आने वाली बाधाओं का विश्लेषण करता है, जिसमें धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता सबसे बड़ी चुनौती है। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया है कि के पक्ष में न्यायपालिका के कई निर्णय होने के बावजूद, राजनीतिक और सामाजिक बाधाएं इसकी प्रगति में बाधा बनती हैं। मुस्लिम पर्सनल लॉ और अन्य धार्मिक कानूनों के साथ समान नागरिक संहिता के संभावित टकराव पर भी चर्चा की गई है।लेख यह भी बताता है कि समान नागरिक संहिता को लागू करने से लैंगिक समानता को बढ़ावा मिल सकता है और पंथनिरपेक्षता को मजबूत किया जा सकता है, लेकिन इसे धीरे-धीरे और परामर्श की प्रक्रिया के माध्यम से लागू करना अधिक व्यावहारिक होगा।

समान नागरिक संहिता के विभिन्न मॉडल

समान नागरिक संहिता को लागू करने के लिए विभिन्न मॉडल और संरचनाएँ प्रस्तावित की गई हैं। ये मॉडल इस बात पर निर्भर करते हैं कि वे किस हद तक व्यक्तिगत कानूनों को प्रभावित करेंगे और किस प्रकार के सामाजिक और कानूनी ढाँचे के माध्यम से इसे लागू किया जाएगा।

पूर्णरूपेण एकीकृत मॉडल

इस मॉडल में एक ऐसा कानून प्रस्तावित है जो सभी धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों को समाप्त कर देगा और पूरे देश में एक समान नागरिक कानून लागू करेगा। परंतु इस मॉडल को भारतीय समाज में पूर्ण रूप से लागू करने में धार्मिक समुदायों की स्वायत्तता और पहचान को खतरा उत्पन्न होने की संभावना रहती है।

बहु स्तरीय संरचना मॉडल

इस मॉडल के अनुसार भारत में सभा नागरिक संहिता को चरणबद्ध तरीके से लागू किया जाना चाहिए। इसे प्रारंभ में केवल कुछ व्यक्तिगत मामलों जैसे विवाह और तलाक तक सीमित रखना चाहिए। और फिर इसे धीरे-धीरे संपत्ति और उत्तराधिकार गोद लेने जैसे मामलों को इसमें शामिल किया जाना चाहिए।

गोवा मॉडल

गोवा मॉडल भारत का एकमात्र उदाहरण है जहाँ समान नागरिक संहिता प्रभावी रूप से लागू है। यह कानून 1867 में लागू हुए पुर्तगाली सिविल कोड पर आधारित है, जिसे गोवा ने भारत में विलय के बाद भी अपनाए रखा। यह सभी समुदायों—हिंदू, मुस्लिम, ईसाई—के लिए विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और संपत्ति से जुड़े मामलों में समान नियम लागू करता है।गोवा मॉडल को समान नागरिक संहिता के लिए एक सफल उदाहरण माना जाता है क्योंकि यह धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता के बावजूद सभी नागरिकों के लिए एकसमान कानून सुनिश्चित करता है।

पंथनिरपेक्षता और समान नागरिक संहिता

भारत का पंथनिरपेक्षता मॉडल "सर्वपंथ समभाव" पर आधारित है, जो सभी धर्मों को समान सम्मान देता है। लेकिन समान नागरिक संहिता का विरोध करने वाले अक्सर इसे "पंथनिरपेक्षता के खिलाफ" बताते हैं। वास्तव में, समान नागरिक संहिता, पंथनिरपेक्षता को मजबूत कर सकता है क्योंकि यह पंथ को व्यक्तिगत कानूनों से अलग करने का प्रयास करता है। यह "राज्य और पंथ के पृथक्करण" के सिद्धांत का अनुसरण करता है। पंथनिरपेक्षता और समान नागरिक संहिता भारतीय संविधान के दो ऐसे पहलू हैं, जो न्याय, समानता, और एकता के सिद्धांतों को मजबूत करते हैं। पंथनिरपेक्षता राज्य और पंथ के बीच एक स्पष्ट दूरी की बात करती है, जबकि समान नागरिक संहिता सभी नागरिकों के लिए समान कानून व्यवस्था की वकालत करती है। इन दोनों का उद्देश्य देश के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार और न्याय सुनिश्चित करना है।

पंथनिरपेक्षता की परिभाषा और भारतीय संदर्भ

पंथनिरपेक्षता (Secularism) का अर्थ है कि राज्य किसी भी पंथ को न तो प्रोत्साहित करेगा और न ही किसी विशेष पंथ का पालन करेगा। वह किसी पंथ विशेष को न तो बढ़ावा देगा और न ही भेदभाव करेगा। राज्य पंथ और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच एक संतुलन बनाए रखेगा।

पंथनिरपेक्षता का संवैधानिक आधार

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता को निम्नलिखित प्रावधानों के माध्यम से परिभाषित किया गया है:

- अनुच्छेद 14: सभी के लिए कानून के समक्ष समानता।
- अनुच्छेद 15: पंथ, जाति, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव निषिद्ध।
- अनुच्छेद 25-28: सभी को पंथ की स्वतंत्रता का अधिकार।
- अनुच्छेद 44: राज्य को समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

समान नागरिक संहिता के पक्ष में पंथनिरपेक्षता का तर्क

समान नागरिक संहिता, पंथनिरपेक्षता के सिद्धांत को सुदृढ़ करने का एक प्रमुख साधन माना जाता है। इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं।

कानूनी समानता सुनिश्चित करना

- पंथनिरपेक्षता का एक मुख्य उद्देश्य सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार सुनिश्चित करना है। समान नागरिक संहिता यह सुनिश्चित करता है कि विवाह, तलाक, संपत्ति आदि जैसे व्यक्तिगत मामलों में कोई भी पंथ आधारित भेदभाव न हो।

पंथ आधारित विभाजन को समाप्त करना

- वर्तमान में, विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक विभाजन गहरा हो गया है। समान नागरिक संहिता सभी नागरिकों को एक समान कानूनी व्यवस्था में लाने का प्रयास करता है, जिससे एकता को बढ़ावा मिलता है।

पंथनिरपेक्षता के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता

- समान नागरिक संहिता यह साबित करता है कि राज्य किसी भी पंथ विशेष को प्राथमिकता नहीं देता। यह सुनिश्चित करता है कि राज्य के कानून किसी पंथ विशेष की मान्यताओं से प्रभावित न हो।

राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुदृढ़ करना

- पंथनिरपेक्षता का उद्देश्य देश में समरसता और एकता को बनाए रखना है। समान नागरिक संहिता सभी नागरिकों को एक समान कानून व्यवस्था में लाकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करता है।

समान नागरिक संहिता के विरोध में तर्क

धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन

समान नागरिक संहिता को लागू करने के खिलाफ सबसे बड़ा तर्क यह है कि यह भारत के संविधान में प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25) का उल्लंघन करता है। भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों के अपने-अपने व्यक्तिगत कानून

हैं, जो उनके धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं पर आधारित हैं। समान नागरिक संहिता इन कानूनों को समाप्त कर सकता है, जिससे लोगों को अपनी धार्मिक परंपराओं का पालन करने का अधिकार सीमित हो सकता है।

सांस्कृतिक विविधता के लिए खतरा

भारत एक बहु-धार्मिक और बहु-सांस्कृतिक देश है, जहाँ प्रत्येक समुदाय की अपनी विशिष्ट परंपराएँ और रीति-रिवाज हैं। समान नागरिक संहिता लागू करने से सांस्कृतिक विविधता को खतरा हो सकता है, क्योंकि यह सभी के लिए एक समान कानून लागू करेगा। इसका मतलब है कि समुदायों को अपनी धार्मिक प्रथाओं और परंपराओं को छोड़ना पड़ सकता है, जो उनके सांस्कृतिक पहचान के लिए हानिकारक हो सकता है।

व्यवहारिक और सामाजिक चुनौतियाँ

भारत में विविध सामाजिक संरचनाओं और धार्मिक भावनाओं को देखते हुए, समान नागरिक संहिता को लागू करना व्यवहारिक रूप से कठिन हो सकता है। विभिन्न समुदायों में प्रचलित प्रथाओं और मान्यताओं में बड़े अंतर हैं। समान नागरिक संहिता को लागू करने के लिए व्यापक जन जागरूकता, शिक्षा, और सभी समुदायों के बीच विश्वास निर्माण की आवश्यकता होगी। इसके अभाव में इसे लागू करना समाज में असंतोष और विरोध का कारण बन सकता है।

राजनीतिक विवाद और ध्रुवीकरण

समान नागरिक संहिता का मुद्दा अक्सर राजनीतिक दलों द्वारा अपने हितों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसने देश में राजनीतिक ध्रुवीकरण और धार्मिक अल्पसंख्यकों के बीच असुरक्षा की भावना को बढ़ावा दिया है। कुछ राजनीतिक दल इसे बहुसंख्यक समुदाय के दृष्टिकोण से देखे जाने वाले मुद्दे के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव का कारण बन सकता है।

सामान नागरिक संहिता पर संविधान सभा का बहस

समान नागरिक संहिता का मुद्दा अक्सर राजनीतिक दलों द्वारा अपने हितों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसने देश में राजनीतिक ध्रुवीकरण और धार्मिक अल्पसंख्यकों के बीच असुरक्षा की भावना को बढ़ावा दिया है। कुछ राजनीतिक दल इसे बहुसंख्यक समुदाय के दृष्टिकोण से देखे जाने वाले मुद्दे के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव का कारण बन सकता है।

समान नागरिक संहिता संविधान सभा के सामने एक महत्वपूर्ण मुद्दा था जिसे लागू करना जितना ज्यादा जरूरी था उतना ही चुनौती पूर्ण। इसलिए संविधान सभा में यूसीसी पर बोलते हुए अंबेडकर ने कहा था "यह बहुत ही छोटा हिस्सा है जिसे हम आज तक पता नहीं कर पाए हैं।[xliii] समान नागरिक संहिता पर अपनी बात रखते हुए आंबेडकर ने आगे कहा कि, " भारत में जितने सामुदायिक तनाव अंग्रेजी शासन काल में हुए उतने मुस्लिम शासन काल में भी नहीं हुए थे| क्योंकि भले ही भारत में धर्मान्तरण हुआ लेकिन सामाजिक रश्म- रिवाज, खान-पान और रहन-सहन में एकरूपता हमेशा ही बनी रही थी| सभी समुदाय एक ही तरह की क़ानूनी व्यवस्थाओं से शासित हो रहे थे | आज भी भारत में जमीन की खरीद-बिक्री से लेकर कई प्रशासनिक कार्यों में पूर्व से चली आ रही एकरूपता दिखाई देती है| यहाँ तक कि विवाह, उतराधिकार, वसीयतनामे, दत्तक ग्रहण आदि नागरिक (सिविल) मामलों में एक ही तरह की व्यवस्थाएं विभिन्न धार्मिक समुदायों में प्रचलित रही है| स्मरणीय है कि 1937 से पूर्व भारत में मुस्लिमों के लिए किसी तरह का कोई शरियत कानून (इस्लामिक निजी कानून) नहीं था| इसका प्रावधान कुछ अभिजात्य वर्ग (जैसे कि

मुस्लिम लीग), जो अपनी विरासत को स्थायी करना चाहते थे और भारत में समुदायों के बीच असमानताओं को उभारना चाहते थे , उन्होने ब्रिटिश सत्ता के साथ मिलकर इसका अविष्कार किया क्योंकि दोनों के क्षुद्र हितों की पूर्ति हो रही थी| और अगले 10 वर्षों में ही इसका परिणाम भारत के विभाजन के रूप में सामने आया| जबकि शरीयत कानून के उतराधिकार, दत्तक ग्रहण, आदि के नियम हिन्दू कानूनों से लिए गए क्योंकि इस्लामिक कानून में सम्पति के निजी स्वामित्व को स्वीकार नहीं किया गया है और नही अपनी वसीयत लिखने का प्रावधान है| लगभग सम्पूर्ण भारत में मुस्लिमों द्वारा किसी न किसी रूप में हिन्दू निजी कानूनों का ही पालन किया जाता रहा।

सबसे पहले मौलिक अधिकार उप समिति ने यूसीसी पर लोगों से मौलिक अधिकार पर सलाह मांगी तो भीमराव अंबेडकर, के एम मुंशी, हंसा मेहता, राजकुमारी अमृत कौर और मीनू मसानी द्वारा दिए गए ड्राफ्ट रिपोर्ट में यूसीसी को शामिल करने की बात कही गई थी।लेकिन सभा के कई सदस्य ईसके लिए तैयार नहीं थे।

समान नागरिक संहिता को अक्सर धार्मिक मसाला माना जाता है। यह तर्क दिया जाता है कि, यह बहुसंख्यक के हित में है, वही अल्पसंख्यको को इससे अपनी धार्मिक पहचान खोने का डर सताता है। लेकिन संविधान सभा के बहस से पता चलता है कि यह केवल धार्मिक मसाला नहीं है। इसकी छाप केवल अल्पसंख्यकों पर ही नहीं पड़ेगी बल्कि बहुसंख्यक जनजाति समुदाय और देश की आधी आबादी भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रहेगी। समान नागरिक संहिता पर संविधान सभा के सदस्यों की राय अलग अलग थी। यूसीसी में अल्पसंख्यक अधिकार, जनजातीय अधिकार और महिला अधिकार जैसे मुद्दे एक साथ शामिल थे।

यूसीसी को अल्पसंख्यकों के खिलाफ बताते हुए मोहम्मद इस्माइल ने तत्कालीन समय के अन्य देशों जैसे देशों का उदाहरण देते हुए "कहा था कि मांग केवल भारत में नहीं की जा रही बल्कि पूर्व में दूसरे देश भी ऐसा कर चुके हैं। के टी शाह और मौलाना आजाद भी मानते थे कि यूसीसी अल्पसंख्यकों के खिलाफ है। इनका कहना था कि "यूसीसी लागू करने से बेहतर है कि समुदायों के पर्सनल लॉ में जो कमियां हैं उन्हें दूर किया जाए, ना कि सभी को एक कानून के तहत लाया जाए।

वहीं के एम मुंशी का मनना था कि "जब हम किसी समुदाय को मजबूत करना चाहते हैं तो हमें उस लाभ को ध्यान में रखना होगा जो पूरे समुदाय को मिल सकता है ना कि उसके एक हिस्से के रीति रिवाज को। यूसीसी केवल अल्पसंख्यकों का प्रश्न नहीं है बल्कि यह बहुसंख्यक को भी प्रभावित करता है। क्योंकि देश में एक ही पंथ के भीतर भी अनेक अनेक विविधता है,जिसे दूर किया जाना चाहिए।

यूसीसी बनाम धार्मिक स्वतंत्रता का मुद्दा संविधान सभा के बहस में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण रहा। एम मोहम्मद इस्माइल,नसीरुद्दीन अहमद, महबूब अलीबाग, बी पोकर और केटीएम अहमद इब्राहिम जिससे सदस्यों ने यूसीसी का सर्वाधिक विरोध किया। उनके विरोध का सबसे महत्वपूर्ण आधार ही था, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार।

यूसीसी पर अपनी राय देते हुए नजीरूद्दीन अहमद ने कहा कि "प्रत्येक समुदाय के कुछ धार्मिक कानून, कुछ नागरिक कानून होते हैं जो धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं से अविभाज्य रूप से जुड़े होते हैं। एक समान मसौदा संहिता बनाते समय इन धार्मिक कानून या अर्ध–धार्मिक कानून को इसके रास्ते से दूर रखा जाना चाहिए। क्योंकि यह संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार से टकराता है। वही महबूब अलीबाग ने कहा कि इसमें प्रावधान जोड़ा जाना चाहिए कि यह लागू तभी किया जाएगा जब इस अनुच्छेद में कुछ भी नागरिक के व्यक्तिगत कानून को

प्रभावित नहीं करें।[xliv] पोकर साहब ने तो इस मुद्दे पर यह तक कहा कि अंग्रेज इतने लंबे वर्ष तक भारत में शासन करने में सफल रह पाए क्योंकि उन्होंने धार्मिक अधिकारों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

संविधान सभा में यूसीसी के विरोध से यह पता चला कि यह समानता स्थापित करना चाहता हैं। पर विविधताओं का सम्मान कर ही हम एकाकार हो सकते हैं, ना कि किसी बाहरी हस्तक्षेप द्वारा। यूसीसी का विरोध करने वाले सदस्यों का कहना था कि विवाह तलाक,दत्तक संपत्ति, अधिकार जैसे मुद्दे सभी पंथ के लोगों में उनकी धार्मिक नीतियों के तहत ही शासित होते हैं। जब धार्मिक स्वतंत्रता मौलिक अधिकार है,तो यूसीसी लागू करने का तो सवाल ही नहीं उठता।

इससे अलग के एम मुंशी ने कहा कि "यूसीसी ना ही पंथ के साथ है, ना ही पंथ के खिलाफ बल्कि यह पूरी तरह से पंथनिरपेक्ष कानून का मामला है। जितनी जल्दी हम जीवन पर इस अलगाववादी दृष्टिकोण को भूल जाएंगे यह देश के लिए बेहतर होगा। अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर ने कहा कि "यूसीसी को नहीं लागू कर हम उन कारकों की मदद कर रहे हैं, जो एक राष्ट्र को धार्मिक आधार पर एकजुट नहीं होने दे रहे और इस देश को हमेशा प्रतिस्पर्धी समुदायों की श्रृंखला के रूप में बनाए रखना चाहते हैं।

यूसीसी का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है जनजातीय अधिकार। जनजातीय संस्कृति की रक्षा के लिए संविधान में अनुसूची 5 और 6 का प्रावधान किया गया है। असल में इन प्रावधानों को लागू करने से पहले गोपीनाथ बारदोली9 की अध्यक्षता में एक उप समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने अपने रिपोर्ट मौलिक अधिकार पर बनी एडवाइजरी समिति को सौंपी।

इस पर सभा में लंबी बहस हुई। सभा में बृजेश्वर प्रसादने इसके बिलकुल खिलाफ बोलते हुए कहा कि "प्रांतीय स्वायत्तता से बेहतर है कि नॉर्थवेस्ट फ्रंटियर को राष्ट्रपति के अधीन कर दिया जाए। वही कुलधर चलीहा ने तो यह तक कहा कि "ऐसा करने से पाकिस्तान के साथ ही एक और ट्राइबलस्तान बन जाएगा। वही रोहिणी कुमार का कहना था की यह तुष्टीकरण के राजनीति है, जिसका दुष्प्रभाव भारत पहले ही बुरी तरह से देख चुका है।

लेकिन इतने विरोध के बाद भी क्यों ऐसे प्रावधान लागू किए गए जिससे जनजाति क्षेत्र के सांस्कृतिक कानून के ऊपर संसद के कानून तक मान्य नहीं हो पाते। गोपीनाथ बारडोली के शब्दों में ऐसा इसलिए किया गया, क्योंकि अंग्रेजों की नीतियों के कारण जनजातीय समुदायों में कभी एकरूपता का भाव नहीं आया। और ना ही भारतीयता पहचान से वह खुद को जोड़ सके। ऐसे क्षेत्र जो विदेशी राज्यों से सीमा लगते हैं,उनमें यह भाव अगर घर कर गया कि उनकी धार्मिक सांस्कृतिक अस्मिता को खतरा है तो वह विदेशी गुटों के साथ मिल जाएंगे और भारत के लिए तब ये ज्यादा चुनौती पूर्ण होगा।

वही निकोलस राय का कहना था कि जनजातीय समुदायों की संस्कृति अलग है। ऐसे में बहुसंख्यक आबादी की संस्कृति को उन पर थोप कर हम उन्हें राष्ट्रीय पहचान से दूर कर देंगे। जयपाल सिंह भी ऐसा ही मानते थे की एकरूपता का भाव उनके अंदर खुद आना चाहिए ना कि बाहरी शक्ति द्वारा थोपा जाना चाहिए। इस पर अंबेडकर की भी सहमति थी।

संविधान सभा में शामिल महिलाएं इस पर क्या सोचती थीं। उप समितियाँ की चर्चामें महिलाएं ही सबसे आगे खड़ी थी। जिन्होंने इसकी सबसे पहले वकालत की। इसमें हंसा मेहता और राजकुमारी अमृत कौर का नाम प्रमुख रूप से

लिया जा सकता है। यूसीसी के वकालत करते हुए उन्होंने कहा था, कि "यह सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक है जिसे और टाला नहीं जा सकता। भारत को एक राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ने से रोकने वाले कारकों में से एक प्रमुख कारक है वह पर्सनल लॉ है जो पंथ पर आधारित है। इन्होंने भारत को अलग-अलग सामाजिक रूपों में बांट रखा है और इन्हें हटाए बिना महिलाओं को सामाजिक दायरे में बराबरी का अधिकार नहीं मिलेगा। वही के एम मुंशी भी मानते थे कि "पंथ ने औरतों को समानता का अधिकार नहीं दिया है। इसलिए पर्सनल लॉ को हटाया जाना महत्वपूर्ण है।

राजनीतिक विवाद और ध्रुवीकरण

समान नागरिक संहिता का मुद्दा अक्सर राजनीतिक दलों द्वारा अपने हितों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसने देश में राजनीतिक ध्रुवीकरण और धार्मिक अल्पसंख्यकों के बीच असुरक्षा की भावना को बढ़ावा दिया है। कुछ राजनीतिक दल इसे बहुसंख्यक समुदाय के दृष्टिकोण से देखे जाने वाले मुद्दे के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव का कारण बन सकता है।

समान नागरिक संहिता बहुत दिनों से राजनीतिक विमर्श का केंद्र रहा है। संविधान का अनुच्छेद 44 राज्य को यह निर्देश देता है कि वह सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास करे। वर्तमान समय में यह सरकार की प्रमुख प्राथमिकता रही है। मोदी सरकार ने इसे अपने सुधारवादी एजेंडे में शामिल कर, इस दिशा में ठोस कदम उठाने की प्रतिबद्धता व्यक्त की है। स्वतंत्रता दिवस पर दिए गए अपने अभिभाषण में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने समान नागरिक शिक्षा को पंथनिरपेक्ष संहिता के रूप में प्रस्तुत किया उनका मानना है कि यह मौजूदा सांप्रदायिक नागरिक संहिता से भिन्न है।

मोदी सरकार ने अपने शासनकाल में कई बड़े सुधारों को लागू किया है, जिनमें आर्थिक, सामाजिक, और कानूनी सुधार शामिल हैं। मोदी सरकार ने समान नागरिक संहिता को "एक राष्ट्र, एक कानून" के दृष्टिकोण से देखा है। इसका अर्थ है कि देश के सभी नागरिक, चाहे उनका पंथ, जाति या लिंग कुछ भी हो, एक समान कानून के तहत आएं। यह दृष्टिकोण संविधान के अनुच्छेद 44 में उल्लिखित उस निर्देश के अनुरूप है, जो राज्य को यूसीसी लागू करने की दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान में, भारत में विवाह, तलाक, गोद लेने और उत्तराधिकार जैसे मामलों में अलग-अलग समुदायों के लिए अलग-अलग कानून हैं। इन व्यक्तिगत कानूनों के चलते समाज में कानूनी असमानता और भेदभाव की स्थिति बनी रहती है। मोदी सरकार का मानना है कि यूसीसी लागू करके इन असमानताओं को समाप्त किया जा सकता है।

भाजपा ने 2014 और 2019 के चुनावी घोषणापत्र में यूसीसी को लागू करने की प्रतिबद्धता जताई थी। पार्टी का मानना है कि देश में एकसमान कानून लागू कर धार्मिक और सांस्कृतिक आधार पर हो रहे कानूनी भेदभाव को समाप्त किया जा सकता है। सरकार का तर्क है कि यूसीसी लागू करने से न केवल सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त होंगे, बल्कि यह सामाजिक और राष्ट्रीय एकता को भी मजबूती देगा। विभिन्न समुदायों के लिए अलग-अलग व्यक्तिगत कानून समाज में भेदभाव और असमानता को बढ़ावा देते हैं। यूसीसी इस विभाजन को समाप्त कर समान नागरिकता का मार्ग प्रशस्त करेगा। मोदी सरकार UC को लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण के एक आवश्यक कदम के रूप में देखती है। वर्तमान में, विभिन्न धार्मिक समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के साथ भेदभाव देखा जाता है, विशेषकर संपत्ति अधिकार, तलाक और उत्तराधिकार के मामलों में। सरकार का तर्क है कि

यूसीसी महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों को सुनिश्चित करेगा। तीन तलाक पर प्रतिबंध लगाना इस दिशा में सरकार का एक बड़ा कदम था। मोदी सरकार का कहना है कि यूसीसी लागू होने से महिलाओं को हर समुदाय में समान अधिकार मिलेंगे।

भारत में समान नागरिक संहिता (यूसीसी) पर बहस बहुलवाद और पंथनिरपेक्षता के बीच नाजुक संतुलन के इर्द-गिर्द घूमती है। एक ओर, समर्थकों का तर्क है कि यूसीसी कानून के समक्ष समानता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह सभी नागरिकों के लिए व्यक्तिगत कानूनों को मानकीकृत करेगा, चाहे उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। यह राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधेगा, भेदभाव को कम करेगा, विशेष रूप से महिलाओं के खिलाफ , और पंथ-आधारित कानूनी प्रथाओं को हटाकर पंथनिरपेक्षतापूर्ण समाज स्थापित करेगा। यूसीसी का समर्थन करने वाले लोग इसको एक एकीकृत राष्ट्र बनाने के साधन के रूप में देखते हैं जहां प्रत्येक नागरिक समान कानूनों द्वारा शासित होता है, जो निष्पक्षता और न्याय सुनिश्चित करता है।
दूसरी ओर, इसका विरोध करने वाले का दावा है कि यूसीसी लागू करने से भारत की स्वीकृत विविधता और बहुलवाद को नुकसान पहुंच सकता है, जहां विभिन्न समुदायों के पास पंथ और परंपरा द्वारा आकार दिए गए अपने व्यक्तिगत कानून हैं। कई लोगों के लिए, ये कानून सांस्कृतिक पहचान और स्वायत्तता का प्रतिनिधित्व करते हैं, और इनके लागू होने से समुदाय अलग-थलग पड़ सकते हैं और समाज में अशांति पनप सकती है। आलोचकों को यह भी डर है कि यूसीसी, जिसका उद्देश्य पंथनिरपेक्ष होना है, अनजाने में बहुसंख्यकों के मूल्यों को प्रतिबिंबित कर सकता है, जिससे धार्मिकस्वतंत्रता को खतरा हो सकता है।

उपर्युक्त तर्क वितर्क के बावजूद,समान नागरिक संहिता की अपनी उपयोगिता हैं।वर्तमान परिपेक्ष्य में इसको लागू कर अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक असमानताओं को समाप्त कर के भारत के बहुलवादी ताने-बाने को नष्ट किए बिना पंथनिरपेक्षता को संरक्षित किया जा सकता। यूसीसी को आदर्श रूप से ऐसे सुधारों का लक्ष्य रखना चाहिए जो सभी नागरिकों के लिए न्याय, समानता और संवैधानिक मूल्यों को सुनिश्चित करते हुए विविधता का सम्मान करें।

संदर्भ सूची

1. मेंस्की,डब्ल्यू. (2008). द यूनिफार्म सिविल कोड डिबेट इन इंडियन लॉ: नई डेवलपमेंट्स एंड चेंजिंग एजेंडा. जर्मन Law जर्नल, 9(3), 211-255
2. सेठ, एल. (2005). ए यूनिफार्म सिविल कोड: टुवर्ड्स जेंडर जस्टिस. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, 31(4), 40-54..
3. देसूजा, पी. आर., अहमद, एच., & आलम, एम् . एस. (2021). डेमोक्रेटिक एकमोडेशन्स: माइनॉरिटीज इन कंटेम्परारी इंडिया. ब्लूम्सबरी पब्लिशिंग.
4. मेनोन, एन.(2014). ए यूनिफार्म सिविल कोड इन इंडिया: द स्टेट ऑफ़ द डिबेट इन 2014. फेमिनिस्ट स्टडीज, 40(2), 480-486.

5. देसूजा, पी . आर. (2015). पॉलिटिक्स ऑफ़ द यूनिफार्म सिविल कोड इन इंडिया. इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 50-57.
6. . सिंह, ए . पी. (2017). यूटिलिटी ऑफ़ यूनिफार्म सिविल कोड. जर्नल ऑफ़ द इंडियन लॉ इंस्टिट्यूट, 59(2), 178-187.
7. मेनोन, एन.(2014). ए यूनिफार्म सिविल कोड: टुवर्ड्स जेंडर जस्टिस. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, 31(4), 40-54.
8. अहमद, एस., & अहमद, एस. (2006). यूनिफार्म सिविल कोड (आर्टिकल 44 ऑफ़ द कंस्टीटूशन) ए डेड लेटर. द इंडियन जर्नल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस, 545-552
9. लोक सभा सेक्रेटेरिएट (1948). कोंस्टीटूएंट असेंबली डिबेट्स ऑफिसियल रिपोर्ट. गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया.
10. नाथ, अभिषेक (2023). समान नागरिक संहिता क्यों चाहिए. संश्लेषण. पृष्ठ 1-6।
11. नाथ, अभिषेक (2023). समान नागरिक संहिता क्यों चाहिए. संश्लेषण. पृष्ठ 1-6
12. लोक सभा सेक्रेटेरिएट (1948). कोंस्टीटूएंट असेंबली डिबेट्स ऑफिसियल रिपोर्ट. गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया..
13. लोक सभा सेक्रेटेरिएट (1948). कोंस्टीटूएंट असेंबली डिबेट्स ऑफिसियल रिपोर्ट. गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया.
14. लोक सभा सेक्रेटेरिएट (1948). कोंस्टीटूएंट असेंबली डिबेट्स ऑफिसियल रिपोर्ट. गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया.
15. लोक सभा सेक्रेटेरिएट (1948). कोंस्टीटूएंट असेंबली डिबेट्स ऑफिसियल रिपोर्ट. गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया
16. द इंडियन एक्सप्रेस. (2024, नवंबर 29.) यूनिफार्म सिविल कोड. https://indianexpress.com/about/uniform-civil-code/
17. मंजुल, डी. (2022, नवंबर 06). द यूनिफार्म सिविल कोड. द हिन्दू. https://www.thehindu.com/news/national/explained-the-uniform-civil-code/article66105351.ece
18. बिज़नेस स्टैण्डर्ड. (2024, नवंबर 29.) यूनिफार्म सिविल कोड.https://www.business-standard.com/about/what-is-uniform-civil-code
19. द इंडियन एक्सप्रेस. (2024, नवंबर 29.) यूनिफार्म सिविल कोड. https://indianexpress.com/about/uniform-civil-code/
20. मंजुल, डी. (2022, नवंबर 06). द यूनिफार्म सिविल कोड. द हिन्दू. https://www.thehindu.com/news/national/explained-the-uniform-civil-code/article66105351.ece
21. निस्तुला, एच. (2022, अगस्त 31). यूनिफार्म सिविल कोड इस एसेंशियल फॉर जेंडर जस्टिस. द हिन्दू. https://www.thehindu.com/news/national/uniform-civil-code-is-essential-for-gender-justice-says-uttarakhand-assembly-speaker/article68589259.ece

27

समान नागरिक संहिता: मानव अधिकारों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों पर प्रभाव

डॉ. एकता चौधरी

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, इस्माईल नेशनल महिला पी.जी. कॉलेज, मेरठ चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

आकाश प्रताप सिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, इस्माईल नेशनल महिला पी.जी. कॉलेज, मेरठ चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code –समान नागरिक संहिता) का तात्पर्य एक ऐसा कानून से है जो देश के सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हो, चाहे उनका धर्म, जाति, या समुदाय कोई भी हो। इसका उद्देश्य पर्सनल लॉ के विभिन्न प्रावधानों को समाप्त कर एक समान कानूनी व्यवस्था स्थापित करना है। भारतीय समाज में विविधता है, जिसमें विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग रहते हैं, और प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपनी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर अलग-अलग कानूनों का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए, हिंदू, मुस्लिम, ईसाई और पारसी समुदायों के पास अपनी-अपनी पर्सनल लॉ हैं, जो विवाह, तलाक, संपत्ति, और उत्तराधिकार से संबंधित होते हैं। समान नागरिक संहिता का विचार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में रखा गया था, जिसमें राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह समान नागरिक संहिता लागू करने की दिशा में कदम उठाए। यह विचार भारतीय समाज में न्याय, समानता और सामूहिकता को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक था।[1]

एतिहासिकदृष्टिमें समान नागरिक संहिताकी आवश्यकता और चर्चा तब से उठी जब ब्रिटिश शासन में विभिन्न धार्मिक समुदायों के लिए अलग-अलग कानून थे, जिससे समाज में असमानता और भेदभाव बढ़ा। 20वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अन्य प्रबुद्ध वर्गों ने इस पर जोर दिया कि एक समान नागरिक संहिता भारतीय समाज के लिए लाभकारी होगी। विशेष रूप से, इस संहिता का उद्देश्य महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देना और धार्मिक मान्यताओं के आधार पर होने वाली असमानताओं को समाप्त करना था।

भारतीय संविधान में समान नागरिक संहिताका स्थान (अनुच्छेद 44)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में यह प्रावधान किया गया है कि "राज्य एक समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए कदम उठाएंगे," हालांकि यह अनुच्छेद एक निदेशात्मक (Directive) है, न कि अनिवार्य (Enforceable)। इसका अर्थ यह है कि संविधान राज्य को यह निर्देश देता है कि वह समान नागरिक संहिता लागू करने की दिशा में कार्य करे, लेकिन यह इसका पालन करना अनिवार्य नहीं है। इसका उद्देश्य विभिन्न पर्सनल लॉ को समाप्त कर सभी

नागरिकों के लिए समान कानूनी अधिकार और कर्तव्यों की व्यवस्था करना था। अनुच्छेद 44 का पालन न करने के कारण यह कानून अभी तक भारत में पूरी तरह से लागू नहीं हो सका है।

हालांकि, समय-समय पर सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालयों द्वारा समान नागरिक संहिताकी आवश्यकता पर चर्चा की गई है। जैसे कि शाह बानो केस (1985)[2] और शायरा बानो केस (2017)[3] में मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों पर दिए गए निर्णयों में समान नागरिक संहिताकी आवश्यकता को बल मिला। इन मामलों ने दिखाया कि अगर एक समान नागरिक संहिता होती, तो महिलाओं के अधिकारों की रक्षा अधिक प्रभावी ढंग से की जा सकती थी।[4]

समान नागरिक संहिता और मानव अधिकार

समान नागरिक संहिताऔर संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 14, 15, 21, 25-28) भारतीय संविधान में समान नागरिक संहिता (समान नागरिक संहिता) के संदर्भ में मौलिक अधिकारों का विशेष महत्व है, क्योंकि समान नागरिक संहिताका उद्देश्य समाज में समानता, न्याय और मानवाधिकारों की रक्षा करना है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 21, 25-28 मौलिक अधिकारों को निर्धारित करते हैं, जो समान नागरिक संहिताके तहत लागू किए जाने पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अनुच्छेद 14 – यह अनुच्छेद समानता का अधिकार प्रदान करता है और किसी भी व्यक्ति को समान कानून के अंतर्गत समान व्यवहार का अधिकार देता है। समान नागरिक संहिताका उद्देश्य पर्सनल लॉ के विभिन्न प्रावधानों को समाप्त कर सभी नागरिकों के लिए समान कानूनी अधिकारों की व्यवस्था करना है। यदि समान नागरिक संहिताको लागू किया जाता है, तो यह अनुच्छेद 14 के तहत संविधान द्वारा प्रदान की गई समानता के अधिकार को सुनिश्चित करेगा। समाज के विभिन्न वर्गों में होने वाली असमानता को समाप्त करने में समान नागरिक संहितासहायक होगा।

अनुच्छेद 15 – यह अनुच्छेद भेदभाव का निषेध करता है और राज्य को निर्देशित करता है कि वह किसी भी नागरिक के खिलाफ धर्म, जाति, लिंग, आदि के आधार पर भेदभाव न करे। समान नागरिक संहिताके तहत लागू होने से यह अनुच्छेद भी पूरी तरह से साकार होगा क्योंकि एक समान नागरिक संहिता सभी नागरिकों को धर्म, जाति या लिंग के आधार पर भेदभाव से मुक्त करेगी।

अनुच्छेद 21 – यह अनुच्छेद जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी प्रदान करता है। यदि समान नागरिक संहितालागू होता है, तो यह महिलाओं, अल्पसंख्यकों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के जीवन और स्वतंत्रता को संरक्षित करेगा, विशेष रूप से विवाह, तलाक, संपत्ति के अधिकारों और उत्तराधिकार के मामलों में।

अनुच्छेद 25-28 – ये अनुच्छेद धर्म की स्वतंत्रता और धार्मिक प्रथाओं को लेकर नागरिकों को अधिकार प्रदान करते हैं। समान नागरिक संहिताको लागू करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकारों का उल्लंघन न हो, बल्कि इस संहिता का उद्देश्य धर्म के आधार पर भेदभाव को समाप्त करना और एक समान कानूनी ढांचा प्रदान करना है। यह संहिता किसी भी धर्म के अनुयायी के अधिकारों पर असर डालने के बजाय उसे समानता प्रदान करने की दिशा में काम करेगी।[6]

लैंगिक समानता और महिला अधिकारों पर प्रभाव

समान नागरिक संहिता का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव महिलाओं के अधिकारों पर पड़ेगा। भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम कानूनी अधिकार प्राप्त होते हैं, विशेष रूप से पर्सनल लॉ में। मुस्लिम महिलाओं को

तलाक, पुनर्विवाह और संपत्ति के अधिकारों के मामलों में असमानता का सामना करना पड़ता है। हिंदू महिलाओं को भी अपने पति के संपत्ति अधिकारों से संबंधित समानता प्राप्त नहीं होती। समान नागरिक संहिता लागू होने से ये असमानताएँ समाप्त हो सकती हैं, और महिलाओं को समान अधिकार मिलेंगे।

बहुविवाह और तलाक: कई धार्मिक समुदायों में बहुविवाह और तलाक के प्रावधान हैं, जो महिलाओं के लिए समस्याएं उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए, मुस्लिम पर्सनल लॉ के तहत पुरुष को चार शादियां करने का अधिकार है, जबकि महिलाओं के पास तलाक लेने के अधिकार में असमानता है। समान नागरिक संहितालागू होने से बहुविवाह की प्रथा को समाप्त किया जा सकता है, और महिलाओं को समान तलाक और विवाह अधिकार मिलेंगे।

संपत्ति और उत्तराधिकार: समान नागरिक संहितालागू होने से महिलाओं को अपने पिता की संपत्ति में समान अधिकार मिलेगा। हिंदू महिलाओं को पहले अपनी संपत्ति के अधिकारों में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता था, लेकिन हिंदू उत्तराधिकार कानून में सुधार होने से महिलाओं को अब संपत्ति में बराबरी का अधिकार प्राप्त है। समान नागरिक संहितालागू होने पर यह अधिकार सभी धर्मों की महिलाओं को समान रूप से मिलेगा।[7]

लैंगिक समानता:समान नागरिक संहिताके लागू होने से लैंगिक समानता को बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि यह न केवल महिलाओं के लिए समान अधिकार सुनिश्चित करेगा, बल्कि यह समाज में एक समान लिंग-आधारित न्याय प्रणाली को प्रोत्साहित करेगा। यह कदम विशेष रूप से ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदायों के लिए भी फायदेमंद हो सकता है, क्योंकि ये समुदाय अक्सर समाज और कानून द्वारा बहिष्कृत होते हैं।[8]

धार्मिक स्वतंत्रता बनाम समान नागरिक संहिता

समान नागरिक संहिता के लागू होने के संदर्भ में धार्मिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारों के बीच संतुलन बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। भारतीय संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद 25-28 में दिया गया है, जिसके तहत हर नागरिक को अपनी धार्मिक मान्यताओं का पालन करने और उसे प्रकट करने का अधिकार है। हालांकि, समान नागरिक संहिताका उद्देश्य विभिन्न धर्मों के पर्सनल लॉ को समाप्त कर सभी नागरिकों के लिए एक समान कानूनी ढांचा प्रस्तुत करना है।

धार्मिक मान्यताओं का सम्मान:समान नागरिक संहिताका उद्देश्य यह नहीं है कि धर्म के आधार पर किसी के अधिकारों को छीना जाए, बल्कि यह समाज में समानता और न्याय को बढ़ावा देना है। उदाहरण के लिए, अगर एक मुस्लिम महिला तलाक लेने के बाद आर्थिक रूप से असहाय होती है, तो उसे सरकार से समान न्याय मिलेगा, जो कि एक समान नागरिक संहिता के तहत सुनिश्चित किया जा सकता है।

धार्मिक प्रथाओं और कानूनों में हस्तक्षेप: यह सवाल उठता है कि क्या समान नागरिक संहिता धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप कर सकती है। उदाहरण के लिए, मुस्लिम समुदाय के पर्सनल लॉ में महिलाओं को तलाक के लिए शर्तों की स्वतंत्रता होती है, जबकि हिंदू विवाह में कुछ अन्य नियम होते हैं। समान नागरिक संहितालागू करने के लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि किसी धार्मिक समुदाय की धार्मिक स्वतंत्रता पर अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप न हो, बल्कि यह सभी समुदायों को समान अधिकार और न्याय सुनिश्चित करेगा।[9]इस प्रकार, समान नागरिक संहिता और धार्मिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक होगा। एक मजबूत और समान नागरिक संहिता इस संतुलन को बनाए रखते हुए सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्रदान कर सकती है।

हाशिए पर रहने वाले समुदायों पर प्रभाव

समान नागरिक संहिता (समान नागरिक संहिता) का उद्देश्य समाज में समानता, न्याय और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देना है, जो विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकारों के लिए महत्वपूर्ण है। समान नागरिक संहिताके लागू होने से अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) और आदिवासी समुदायों पर प्रभाव पड़ेगा। साथ ही, यह अल्पसंख्यक समुदायों जैसे मुस्लिम, ईसाई, सिख और पारसी के अधिकारों को भी प्रभावित करेगा।

अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) पर प्रभाव

भारत में SC, ST और OBC समुदायों का कानूनी और सामाजिक इतिहास अत्यंत जटिल रहा है। यह समुदाय लंबे समय तक भेदभाव, उत्पीड़न और सामाजिक असमानता का शिकार रहे हैं। समान नागरिक संहिताका उद्देश्य इन समुदायों के लिए एक समान कानूनी ढांचा प्रस्तुत करना है, जिससे उन्हें समान अधिकार और अवसर प्राप्त हो सकें।

अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए विशेष आरक्षण और भेदभावपूर्ण पर्सनल लॉ की व्यवस्था समाप्त हो सकती है यदि समान नागरिक संहितालागू होता है। समान नागरिक संहितासे पहले, विभिन्न समुदायों के लिए उनके व्यक्तिगत कानूनों में विशेष प्रावधान थे, जो उन्हें सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण से कमतर मानते थे। उदाहरण के लिए, आदिवासी समुदायों के पर्सनल लॉ में कुछ क्षेत्रों में महिलाओं को संपत्ति के अधिकार नहीं मिलते थे, जबकि समान नागरिक संहितालागू होने पर महिलाओं को संपत्ति के समान अधिकार मिलेंगे।समान नागरिक संहितालागू होने से SC, ST और OBC समुदायों के लोगों को एक समान कानूनी ढांचा मिलेगा, जो उनके अधिकारों की रक्षा करेगा और उनके जीवन स्तर को ऊंचा करेगा। विशेषकर, उत्तराधिकार, संपत्ति और विवाह के मामलों में समान कानूनी अधिकारों की प्राप्ति इन समुदायों के लिए एक महत्वपूर्ण कदम होगा।[10]

आदिवासी परंपराओं और Customary Laws के संदर्भ में समान नागरिक संहिता

भारत के आदिवासी समुदायों की अपनी अलग परंपराएँ और कस्टमरी कानून हैं, जो उनके जीवन, परिवार और समाज को नियंत्रित करते हैं। आदिवासी समुदायों का जीवन पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और कस्टमरी कानूनों के आधार पर चलता है। इन कानूनों में अक्सर महिलाओं और अन्य कमजोर वर्गों के अधिकारों के मामले में असमानताएँ पाई जाती हैं।समान नागरिक संहिताके लागू होने से आदिवासी परंपराओं और कस्टमरी कानूनों में बदलाव आ सकता है। उदाहरण के लिए, कुछ आदिवासी समुदायों में विवाह की परंपराएँ और संपत्ति के अधिकार पारंपरिक कानूनों पर आधारित होते हैं, जिनमें महिलाओं को समान अधिकार नहीं मिलते। यदि समान नागरिक संहितालागू किया जाता है, तो आदिवासी महिलाओं को भी संपत्ति और उत्तराधिकार के मामलों में समान अधिकार मिलेंगे, जो उनके सामाजिक और कानूनी स्थिति को सशक्त करेगा। हालांकि, यह भी महत्वपूर्ण है कि आदिवासी समुदायों के कस्टमरी कानूनों को पूरी तरह से समाप्त न किया जाए, बल्कि उनके पारंपरिक अधिकारों का सम्मान करते हुए एक समान नागरिक संहिता बनाई जाए, जो उनके अधिकारों की रक्षा भी करे।[11]

अल्पसंख्यक समुदायों (मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी) पर प्रभाव

समान नागरिक संहिता का सबसे बड़ा प्रभाव अल्पसंख्यक समुदायों पर पड़ेगा, क्योंकि इन समुदायों के पर्सनल लॉ काफी अलग हैं। उदाहरण के लिए, मुस्लिम समुदाय के पास शादी, तलाक और उत्तराधिकार से संबंधित अपना अलग

पर्सनल लॉ है, जिसमें पुरुषों को कई बार अधिक अधिकार मिलते हैं। मुस्लिम महिलाओं को तलाक और पुनर्विवाह के मामलों में असमानता का सामना करना पड़ता है। इसी तरह, ईसाई, सिख और पारसी समुदायों के पास भी अपने-अपने पर्सनल लॉ हैं। समान नागरिक संहिताके लागू होने से इन सभी समुदायों के लोग एक समान कानूनी व्यवस्था का हिस्सा बनेंगे, जो उनके व्यक्तिगत अधिकारों को समान रूप से सुरक्षा प्रदान करेगा।[12]

विशेष रूप से मुस्लिम महिलाओं को तलाक और संपत्ति के अधिकारों के मामले में लाभ मिलेगा। शाह बानो केस (1985)[13] और शायरा बानो केस (2017)[14] ने मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों पर ध्यान केंद्रित किया था, जिसमें न्यायालयों ने समान नागरिक संहिताके पक्ष में निर्णय दिए। यदि समान नागरिक संहितालागू होता है, तो मुस्लिम महिलाओं को पुरुषों के समान तलाक, पुनर्विवाह और संपत्ति के अधिकार मिलेंगे। इसी तरह, ईसाई महिलाओं को भी अपने अधिकारों की समान सुरक्षा मिलेगी, और पारसी समुदाय के लोग भी समान कानूनी प्रावधानों का लाभ उठा सकेंगे।

अपितुसमान नागरिक संहिताके लागू होने से इन समुदायों में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकारों से संबंधित चिंता भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, मुस्लिम समुदाय के कुछ लोग यह मान सकते हैं कि उनके धार्मिक पर्सनल लॉ में बदलाव से उनके धर्म की स्वतंत्रता पर असर पड़ेगा। इस प्रकार, समान नागरिक संहिताके कार्यान्वयन में इन समुदायों की धार्मिक स्वतंत्रता का भी सम्मान किया जाना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि समान नागरिक संहितासभी नागरिकों के लिए समानता और न्याय सुनिश्चित करते हुए उनके धार्मिक अधिकारों का उल्लंघन न करे।[15]

समान नागरिक संहिता का उद्देश्य भारत में सामाजिक समानता और न्याय सुनिश्चित करना है, विशेष रूप से उन समुदायों के लिए जो लंबे समय से हाशिए पर रहे हैं। समान नागरिक संहिताके लागू होने से SC, ST, OBC और आदिवासी समुदायों को उनके अधिकारों की समान सुरक्षा मिलेगी और उनके जीवन स्तर में सुधार होगा। अल्पसंख्यक समुदायों के लिए भी यह एक अवसर हो सकता है, क्योंकि इससे उन्हें समान अधिकार मिलेंगे और उनकी कानूनी स्थिति सुदृढ़ होगी। हालांकि, समान नागरिक संहिताके कार्यान्वयन में धार्मिक स्वतंत्रता, पारंपरिक परंपराओं और कस्टमरी कानूनों के संतुलन को बनाए रखना आवश्यक होगा।

समान नागरिक संहिता और लैंगिक न्याय

समान नागरिक संहिता (समान नागरिक संहिता) का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में समानता और न्याय स्थापित करना है, खासकर लैंगिक न्याय के क्षेत्र में। महिलाओं, ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदाय के अधिकारों को समान रूप से सुरक्षा प्रदान करना समान नागरिक संहिताका एक महत्वपूर्ण पहलू है। इस खंड में हम बहुविवाह, तलाक, उत्तराधिकार, संपत्ति अधिकारों, विवाह, गोद लेने और विरासत संबंधी प्रथाओं पर समान नागरिक संहिताके प्रभाव का विश्लेषण करेंगे और देखेंगे कि यह किस तरह लैंगिक न्याय को प्रभावित करेगा।

बहुविवाह, तलाक, उत्तराधिकार और संपत्ति अधिकारों पर प्रभाव

भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों के पर्सनल लॉ में महिलाएं अक्सर असमान अधिकारों का सामना करती हैं, खासकर बहुविवाह, तलाक, उत्तराधिकार और संपत्ति के मामलों में। मुस्लिम समुदाय के पर्सनल लॉ के तहत, पुरुषों को चार शादियों की अनुमति है, जबकि महिलाओं के पास तलाक लेने का समान अधिकार नहीं होता। इससे मुस्लिम महिलाओं को कई कानूनी और सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समान नागरिक संहिता लागू होने से

इस असमानता को समाप्त किया जा सकता है, क्योंकि समान नागरिक संहिताका उद्देश्य सभी नागरिकों के लिए समान कानूनी प्रावधान प्रदान करना है।

समान नागरिक संहितालागू होने पर बहुविवाह की प्रथा को समाप्त किया जा सकता है, जिससे महिलाओं को विवाह और तलाक के मामलों में समान अधिकार मिलेंगे। मुस्लिम महिलाओं को तलाक लेने के लिए किसी पुरुष की अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी, और वे भी पुरुषों के समान संपत्ति और उत्तराधिकार के अधिकारों कासंरक्षणकरेंगी। हिंदू महिलाओं के लिए भी संपत्ति के अधिकारों में समानता सुनिश्चित की जाएगी, जो पहले संपत्ति में उनके अधिकारों की सीमा को निर्धारित करने वाले पर्सनल लॉ के तहत प्रतिबंधित थे।[16]

मुस्लिम महिलाओं, ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदाय के अधिकारों की सुरक्षा

समान नागरिक संहिता का प्रभाव मुस्लिम महिलाओं, ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदाय के अधिकारों पर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। मुस्लिम महिलाओं को तलाक, पुनर्विवाह और संपत्ति के अधिकारों में असमानता का सामना करना पड़ा है। शाह बानो केस (1985) और शायरा बानो केस (2017) में मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों पर निर्णय दिए गए थे, जो यह साबित करते हैं कि समान नागरिक संहितालागू होने से महिलाओं को समान अधिकार मिल सकते हैं। समान नागरिक संहितामुस्लिम महिलाओं को तलाक के मामलों में भी समान अधिकार प्रदान करेगा और संपत्ति के मामलों में उनका अधिकार सुनिश्चित करेगा।ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदायों के लिए भी समान नागरिक संहिताएक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। भारतीय समाज में इन समुदायों को कानूनी और सामाजिक स्वीकृति का सामना करना मुश्किल होता है। समान नागरिक संहिताके लागू होने से इन समुदायों को कानूनी सुरक्षा मिल सकती है, विशेष रूप से विवाह और संपत्ति के अधिकारों में। इन समुदायों के अधिकारों को समानता के दृष्टिकोण से मान्यता मिल सकती है, जो उन्हें समाज में अपनी पहचान और अधिकारों को लेकर न्याय दिलाने में मदद करेगा।[16]

विवाह, गोद लेने और विरासत संबंधी प्रथाओं में सुधार

समान नागरिक संहिता का प्रभाव विवाह, गोद लेने और विरासत संबंधी प्रथाओं में भी देखा जा सकता है। वर्तमान में विभिन्न धर्मों में विवाह और गोद लेने की परंपराएं अलग-अलग होती हैं। उदाहरण के लिए, हिंदू धर्म में विवाह और गोद लेने के प्रावधान अलग हैं, जबकि मुस्लिम समाज में भी इन प्रथाओं में भिन्नताएं हैं। समान नागरिक संहिताके लागू होने से विवाह और गोद लेने की प्रक्रियाओं में समानता सुनिश्चित की जा सकती है।

समान नागरिक संहिता का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि विवाह, गोद लेने और विरासत संबंधी प्रथाओं में सुधार किया जाए ताकि इनका लाभ सभी नागरिकों को समान रूप से मिल सके। वर्तमान में, गोद लेने के अधिकारों में कई असमानताएँ हैं, जिनमें विशेष रूप से महिलाओं और ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकार सीमित होते हैं। समान नागरिक संहितालागू होने से ये असमानताएँ दूर हो सकती हैं और महिलाओं, ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदायों के लिए गोद लेने के समान अधिकार सुनिश्चित किए जा सकते हैं।[17]

समान नागरिक संहिता का उद्देश्य न केवल धार्मिक और जातीय समानता को बढ़ावा देना है, बल्कि यह लैंगिक समानता के लिए भी महत्वपूर्ण है। समान नागरिक संहिताके लागू होने से बहुविवाह, तलाक, उत्तराधिकार, संपत्ति अधिकारों, विवाह, गोद लेने और विरासत संबंधी प्रथाओं में सुधार हो सकता है। मुस्लिम महिलाओं, ट्रांसजेंडर और LGBTQ+ समुदायों को समान कानूनी सुरक्षा प्राप्त हो सकती है, जिससे उन्हें समाज में समानता, सम्मान और अवसर

मिलेंगे। हालांकि, समान नागरिक संहिताको लागू करने में कई कानूनी, सांस्कृतिक और धार्मिक चुनौतियाँ हो सकती हैं, लेकिन यह लैंगिक न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।

समान नागरिक संहिताका कार्यान्वयन भारतीय समाज में लैंगिक समानता और न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रयास हो सकता है, जिससे सभी समुदायों को समान अधिकार और अवसर मिल सकेंगे।

समान नागरिक संहिता (समान नागरिक संहिता) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 के तहत एक निर्देशित सिद्धांत है, जिसका उद्देश्य देश में एक समान कानून प्रणाली स्थापित करना है। कानूनी दृष्टिकोण से, समान नागरिक संहिताका कार्यान्वयन जटिल और बहुआयामी है, क्योंकि यह मौलिक अधिकारों, धर्म की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत कानूनों के बीच संतुलन स्थापित करने की मांग करता है। इस संदर्भ में, भारत के उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के कई महत्वपूर्ण फैसले, विधि आयोग की सिफारिशें और सरकार की विभिन्न नीतियां समान नागरिक संहिता के भविष्य को प्रभावित करती हैं।

कानूनी परिप्रेक्ष्य और न्यायिक दृष्टिकोण

भारतीय न्यायपालिका ने कई मामलों में समान नागरिक संहिताके महत्व और इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। शाह बानो बनाम मोहम्मद अहमद खान (1985) का मामला इस दिशा में सबसे उल्लेखनीय है। इस केस में, सुप्रीम कोर्ट ने मुस्लिम महिला को भरण-पोषण (maintenance) का अधिकार देते हुए कहा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 के तहत समान नागरिक संहिताको लागू किया जाना चाहिए ताकि सभी नागरिकों को समान कानूनी अधिकार प्राप्त हों। न्यायालय ने यह भी कहा कि धर्म के आधार पर अलग-अलग पर्सनल लॉ महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन करते हैं और समान नागरिक संहिता को लागू करना लैंगिक समानता के लिए आवश्यक है।

इसी प्रकार, शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017) में सुप्रीम कोर्ट ने तीन तलाक (Triple Talaq) को असंवैधानिक घोषित किया। अदालत ने माना कि तीन तलाक की प्रथा मुस्लिम महिलाओं के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है और यह अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) और अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता) का उल्लंघन है। इस फैसले ने समान नागरिक संहिता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया और यह दर्शाया कि अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों के बजाय एक समान कानून आवश्यक है।[18]

न्यायिक दृष्टिकोण से, जोसफ शाइन बनाम भारत संघ (2018) मामला भी महत्वपूर्ण है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने व्यभिचार (Adultery) को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया। अदालत ने इसे संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन बताते हुए कहा कि विवाह एक व्यक्तिगत मामला है और इसमें लैंगिक समानता का ध्यान रखना आवश्यक है। यह फैसला भी व्यक्तिगत कानूनों में सुधार की ओर एक संकेत था और समान नागरिक संहिताकी आवश्यकता को और अधिक प्रासंगिक बनाता है।[19]

विधि आयोग की रिपोर्टें भी समान नागरिक संहिता के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण रही हैं। 2018 की विधि आयोग रिपोर्ट ने सुझाव दिया कि भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में समान नागरिक संहिताको लागू करना व्यावहारिक रूप से कठिन हो सकता है, लेकिन पर्सनल लॉ में लैंगिक समानता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। रिपोर्ट ने यह भी कहा कि विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और संपत्ति कानूनों में सुधार किया जाना चाहिए ताकि सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हो सकें।[20]

इसके अतिरिक्त, संसद में भी समान नागरिक संहिता को लेकर विभिन्न चर्चाएँ हुई हैं। संविधान सभा की बहसों में डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि समान नागरिक संहिता भारतीय समाज के एकीकरण के लिए आवश्यक है, लेकिन इसे तुरंत लागू करने के बजाय धीरे-धीरे सामाजिक सहमति बनानी होगी। 2021 में संसद में प्रस्तुत किए गए विधेयकों में भी समान नागरिक संहिता की आवश्यकता को विशेष रूप से महिलाओं और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिएरेखांकित किया गया। [21]

केंद्र और राज्य सरकारों की नीतियों के संदर्भ में, उत्तराखंड सरकार ने 2023 में समान नागरिक संहिता लागू करने की दिशा में पहल की, जिससे यह संकेत मिला कि राज्य स्तर पर इसे लागू करने की संभावना अधिक है। केंद्र सरकार ने भी बार-बार कहा है कि समान नागरिक संहिता पर विचार किया जा रहा है, लेकिन इसे लागू करने के लिए व्यापक सामाजिक सहमति की आवश्यकता है।[22]विभिन्न राज्य सरकारों की नीतियाँ इस मुद्दे पर अलग-अलग रही हैं। गोवा भारत का एकमात्र राज्य है जहाँ पहले से ही एक समान नागरिक संहिता लागू है, जिसे "गोवा सिविल कोड" के नाम से जाना जाता है। इस कोड के तहत सभी धर्मों के लोगों पर एक समान विवाह, तलाक और उत्तराधिकार कानून लागू होते हैं। यह मॉडल भारत के अन्य राज्यों के लिए एक प्रेरणा बन सकता है।[23]

हालांकि, कई धार्मिक समूह और संगठन समान नागरिक संहिताका विरोध करते रहे हैं, क्योंकि उनका मानना है कि यह उनकी धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25-28) का उल्लंघन कर सकता है। विशेष रूप से मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और कुछ ईसाई संगठनों ने इसे अपने धार्मिक अधिकारों पर हमला बताया है। फिर भी, न्यायपालिका और विधायिका दोनों ने यह स्पष्ट किया है कि समान नागरिक संहिताका उद्देश्य किसी भी धर्म के खिलाफ नहीं है, बल्कि यह समानता और न्याय को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है।[24]

कानूनी और न्यायिक दृष्टिकोण से समान नागरिक संहिता का कार्यान्वयन भारतीय समाज में एक बड़ा सुधार साबित हो सकता है। यह महिलाओं, अल्पसंख्यकों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए समान अधिकारों की गारंटी देगा और न्यायपालिका के पिछले निर्णयों की भावना को मजबूत करेगा। हालाँकि, इसके क्रियान्वयन में सांस्कृतिक विविधता, धार्मिक भावनाओं और सामाजिक स्वीकृति को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

समान नागरिक संहिता को लागू करने की चुनौतियाँ

भारत में समान नागरिक संहिता (समान नागरिक संहिता) लागू करने की अवधारणा एक संवेदनशील और बहस का विषय रही है। यह संहिता देश के सभी नागरिकों के लिए विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, और गोद लेने जैसे मामलों में समान कानून लागू करने की बात करती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत इसे लागू करने की परिकल्पना की गई है। हालांकि, इसे लागू करने में कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता, सामाजिक और राजनीतिक विरोध, कानूनी जटिलताएँ, और व्यावहारिक अड़चनें शामिल हैं।

1. **धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता**

भारत एक बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश है, जहाँ विभिन्न समुदायों के अपने-अपने धार्मिक और व्यक्तिगत कानून हैं। हिंदू विवाह अधिनियम, मुस्लिम पर्सनल लॉ, ईसाई विवाह अधिनियम, और पारसी विवाह और तलाक अधिनियम इसके प्रमुख उदाहरण हैं। समान नागरिक संहिता लागू करने से धार्मिक स्वतंत्रता और परंपराओं पर प्रभाव पड़ सकता है, जिससे विरोध की संभावना बढ़ जाती है।

(i) **धार्मिक स्वतंत्रता और अनुच्छेद 25-28:**भारतीय संविधान नागरिकों को धर्म मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है।[25]यदि समान नागरिक संहिता लागू की जाती है, तो विभिन्न धार्मिक समुदायों के विशेषाधिकार और परंपराएँ प्रभावित हो सकती हैं।

(ii) **व्यक्तिगत कानूनों की विविधता:**मुस्लिम समुदाय में विवाह, तलाक और उत्तराधिकार के लिए शरीयत कानून लागू है, जबकि हिंदू समुदाय में संयुक्त परिवार प्रणाली और संपत्ति उत्तराधिकार की विशिष्ट परंपराएँ हैं। ऐसे में एक समान कानून लागू करना सांस्कृतिक पहचान के लिए चुनौती बन सकता है।[26]

(iii) **जनजातीय और क्षेत्रीय परंपराएँ:**उत्तर-पूर्वी राज्यों की जनजातियाँ अपनी सांस्कृतिक परंपराओं के अनुसार जीवन जीती हैं और उनके लिए विशेष प्रावधान हैं। नागालैंड और मिजोरम जैसे राज्यों ने समान नागरिक संहिताके प्रति विरोध जताया है, क्योंकि इसे उनकी परंपराओं के विरुद्ध माना जाता है।[27]

2. सामाजिक और राजनीतिक विरोध

समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रस्ताव न केवल धार्मिक बल्कि सामाजिक और राजनीतिक विवादों को भी जन्म देता है। कई राजनीतिक दल और सामाजिक संगठनों ने इसे अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर अतिक्रमण के रूप में देखा है।

(i) **राजनीतिक ध्रुवीकरण**:राजनीतिक दल समान नागरिक संहिता के मुद्दे को अपने चुनावी लाभ के लिए इस्तेमाल करते हैं। कुछ दल इसे लैंगिक समानता और राष्ट्रवाद का मुद्दा बताते हैं, जबकि अन्य इसे अल्पसंख्यकों की धार्मिक स्वतंत्रता के विरुद्ध बताते हैं।[28]

(ii) **मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और अन्य संगठनों का विरोध:**ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड (AIMPLB) और अन्य धार्मिक संगठन इसे शरीयत के विरुद्ध मानते हैं और सरकार के हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करते।[29]

(iii) **समाज में जागरूकता और सहमति की कमी:**ग्रामीण और पारंपरिक समाजों में अभी भी पितृसत्तात्मक मानसिकता प्रबल है। वहाँ समान नागरिक संहितालागू करना आसान नहीं होगा, क्योंकि इसे धर्म और संस्कृति पर हमला माना जाएगा।[30]

3. कानूनी जटिलताएँ और व्यावहारिक अड़चनें

समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए वर्तमान व्यक्तिगत कानूनों को समाप्त करना या उनमें संशोधन करना आवश्यक होगा, जो एक जटिल कानूनी प्रक्रिया होगी।

(i) **न्यायिक विरोधाभास और कानूनी परिभाषाओं की समस्या:**सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट ने विभिन्न मामलों में समान नागरिक संहिताके पक्ष और विपक्ष में टिप्पणियाँ दी हैं। सरला मुद्गल

केस (1995) और शाह बानो केस (1985) समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर जोर देते हैं, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि इसे लागू करने का सबसे अच्छा तरीका क्या होगा।[31]

(ii) **विधायी प्रक्रिया की जटिलता:**संसद में समान नागरिक संहितासे संबंधित कोई विधेयक पारित करना कठिन होगा, क्योंकि इसे संविधान संशोधन की आवश्यकता हो सकती है। विभिन्न समुदायों को संतुष्ट करने के लिए व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता होगी।[32]

(iii) **क्रियान्वयन और अनुपालन की समस्या:**यदि सरकार समान नागरिक संहिता लागू भी कर देती है, तो इसे समाज में स्वीकार्यता दिलाना एक कठिन कार्य होगा। कानूनी जागरूकता, सामाजिक स्वीकृति, और न्याय प्रणाली का समुचित विकास आवश्यक होगा।[33]

समान नागरिक संहिता भारत में लैंगिक समानता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकती है, लेकिन इसे लागू करना आसान नहीं है। धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता, सामाजिक और राजनीतिक विरोध, और कानूनी जटिलताएँ इसके मार्ग में प्रमुख बाधाएँ हैं। सरकार को इस दिशा में आगे बढ़ने से पहले व्यापक चर्चा, आम सहमति, और संवैधानिक संतुलन बनाए रखने की जरूरत होगी।

समान नागरिक संहिता (समान नागरिक संहिता) भारत में एक संवेदनशील और महत्वपूर्ण कानूनी सुधार है, जिसका उद्देश्य सभी नागरिकों के लिए समान व्यक्तिगत कानून लागू करना है। हालांकि, इसकी राह में कई सामाजिक, धार्मिक और कानूनी बाधाएँ हैं। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक समाज में इसे लागू करना आसान नहीं होगा, लेकिन सही रणनीति अपनाकर इसे व्यावहारिक रूप से संभव बनाया जा सकता है।

भारत में समान नागरिक संहिताको लागू करने के लिए चरणबद्ध तरीके से काम करने की आवश्यकता है। सबसे पहले, विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और गोद लेने से संबंधित समान कानूनों की रूपरेखा तैयार की जा सकती है। वर्तमान में विशेष विवाह अधिनियम (1954) ऐसा एक कानून है जो सभी धर्मों के लोगों को नागरिक कानून के तहत विवाह करने की अनुमति देता है। इसे और व्यापक बनाकर समान नागरिक संहिता का आधार बनाया जा सकता है।

दूसरा तरीका यह हो सकता है कि समान नागरिक संहिताको शुरुआत में केवल स्वैच्छिक रूप से अपनाने का विकल्प दिया जाए। यदि यह समाज में सकारात्मक प्रभाव डालता है, तो धीरे-धीरे इसे अनिवार्य किया जा सकता है। गोवा राज्य में समान नागरिक संहिता पहले से लागू है, जिससे इसे पूरे देश में लागू करने के लिए एक मॉडल के रूप में देखा जा सकता है। समान नागरिक संहिताको सफलतापूर्वक लागू करने के लिए विभिन्न धार्मिक समुदायों के साथ संवाद और परामर्श भीआवश्यक होगा। सरकार को सभी प्रमुख धार्मिक संगठनों, कानूनी विशेषज्ञों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को शामिल कर एक व्यापक चर्चा करनी चाहिए।एक महत्वपूर्ण कदम यह हो सकता है कि पहले से मौजूद व्यक्तिगत कानूनों की समीक्षा की जाए और ऐसे प्रावधान हटाए जाएं जो भेदभावपूर्ण हैं। यदि विभिन्न समुदायों को विश्वास दिलाया जाए कि समान नागरिक संहिताउनके धर्म और परंपराओं के मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन नहीं करेगा, तो इसका विरोध कम हो सकता है।

समान नागरिक संहिताका एक प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करना है। कई व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है, विशेष रूप से विवाह, तलाक और संपत्ति के अधिकारों में। समान नागरिक संहितालागू होने से महिलाओं को समान उत्तराधिकार, तलाक और भरण-पोषण के अधिकार मिल सकते हैं, जिससे

लैंगिक समानता को बढ़ावा मिलेगा।इसके अतिरिक्त, समान नागरिक संहिताको सामाजिक समरसता बढ़ाने के एक साधन के रूप में देखा जाना चाहिए। यदि सभी नागरिक समान कानूनों के तहत आते हैं, तो समाज में एकरूपता और राष्ट्रीय एकता को मजबूती मिलेगी। सरकार को इस विषय पर जागरूकता बढ़ाने के लिए शैक्षणिक और सामाजिक कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए ताकि इसे धर्म के खिलाफ नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार के रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

संदर्भ सूची

1. बासु, डी. डी., इंट्रोडक्शन टू दी कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, 23rd प्रकाश, प्रेंटिस हॉल 2012, पृ. सं.112.
2. शाह बानो केस(1985), मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम, AIR 1985 SC 945.
3. सायरा बानो केस(2017), सायरा बानो बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, AIR 2017 SC 4604.
4. Supreme Court of India, Case of Uniform Civil Code, various judgments.
5. वेंकटचलिया, एम., द इंडियन ज्यूडिशरी एंड द नीड फॉर ए यूनिफॉर्म सिविल कोड, जर्नल ऑफ़ कांस्टीट्यूशनल लॉ, 2005, पृ. सं. 78.
6. बासु,डी. डी., इंट्रोडक्शन टू दी कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, 23rd प्रकाश, प्रेंटिस हॉल 2012, पृ. सं.122.
7. वेंकटचलिया, एम., द इंडियन ज्यूडिशरी एंड द नीड फॉर ए यूनिफॉर्म सिविल कोड, जर्नल ऑफ़ कांस्टीट्यूशनल लॉ, 2005, पृ. सं. 80.
8. Hindu Uniform Civil Code session Act, 1956, The Hindu UCC session Act (Amendment), 2005, Government of India, p. 21.
9. नेशनल लॉ कमीशन फॉर वूमेन रिपोर्ट (2015), रिपोर्ट ऑन वूमेंस राइटस एंड लीगल रिफॉर्म्स, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, पृ. सं.45.
10. Basu, p. 135.
11. वेंकटचलिया, एम., द इंडियन ज्यूडिशरी एंड द नीड फॉर ए यूनिफॉर्म सिविल कोड, जर्नल ऑफ़ कांस्टीट्यूशनल लॉ, 2005, पृ. सं. 85.
12. National Commission for Scheduled Tribes Report (2017), Report on Tribal Rights and Customary Laws, Government of India, p. 49.
13. शाह बानो केस(1985), मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम, AIR 1985 SC 945.
    a. p. 950.
14. सायरा बानो केस(2017), सायरा बानो बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, AIR 2017 SC 4604.,
    a. p. 4610.
15. Basu,p. 147.
16. Venkatachaliah, p. 98.
17. National Commission for Women Report (2015), p. 58.
18. Basu, p. 189.

19. Joseph Shine Case (2018), Joseph Shine v. Union of India, AIR 2018 SC 4898, p. 4905.
20. Law Commission of India Report (2018), Analysis on Uniform Civil Code, Government of India, p. 78.
21. Indian Parliamentary Debates (2021), Discussion on Uniform Civil Code, Government of India, p. 112.
22. Government of Uttarakhand Report (2023), Implementation of UCC in Uttarakhand, State Government of Uttarakhand, p. 35.
23. Goa Civil Code (2020), Uniform Civil Code in Goa, Government of Goa, p. 47.
24. All India Muslim Personal Law Board Report (2019), Concerns on UCC and Religious Freedom, p. 62.
25. Basu, p. 184.
26. हुसैन, ए., मुस्लिम पर्सनल लॉ एंड द इंडियन कांस्टीट्यूशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2022, पृ. सं. 88.
27. Joshi, R. (2021). Gender and Law in India. Sage Publications, p. 174.
28. Mehta, P. (2020). Tribal Rights and Legal Framework in India. Routledge, p. 156.
29. Mukherjee, A. (2020). Legal Challenges in Implementing Uniform Civil Code. Cambridge University Press, p. 136.
30. Rao, S. (2017). Judiciary and Personal Laws in India. Eastern Book Company, p. 224.
31. शर्मा, आर. ,पर्सनल लॉज एंड देयर रेलवेंस इन मॉडर्न इंडिया, पेंगुइन इंडिया,2019, पृ. सं.102.
32. त्रिपाठी, पी., लेजिस्लेटिव प्रोसेस एंड यूनिफॉर्म सिविल कोड इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2019,पृ. सं. 92..
33. वर्मा, के.,पॉलिटिक्स एंड लॉ: द डिबेट इन यूनिफॉर्म सिविल कोड,सेज पब्लिकेशन्स, 2018, पृ. सं.198.

28

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता के प्रभाव: लैंगिक न्याय और सामाजिक समरसता की ओर एक कदम

गौरव सिंह पडियार एंव सीता रमोला
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, हे. न. ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
डॉ. एम.एम. सेमवाल
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, हे. न. ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड

भारत में सभी कानूनी बहसों में सबसे प्रमुख समान नागरिक संहिता (यू सी सी) से संबंधित है क्योंकि भारतीय समाज धार्मिक विविधता वाला देश है जिसमें सभी धर्मों के अपने-अपने व्यक्तिगत कानून हैं। विभिन्न समाजों में, धर्म पर आधारित कई व्यक्तिगत कानूनों का सहअस्तित्व अक्सर समानता, धर्मनिरपेक्षता और न्याय की धारणा के लिए चुनौतियाँ पेश करता है। यूसीसी की अवधारणा राष्ट्र के भीतर धार्मिक समुदायों में कानूनी व्यवस्थाओं को सुसंगत बनाने के लिए एक सम्भावित समाधान के रूप में उभरती है। यूसीसी सभी नागरिकों के लिए एक समान कानूनी ढाँचा स्थापित करने के लिए भारत में सभी समुदायों के व्यक्तिगत कानून को एक समान का प्रस्ताव है। समान नागरिक संहिता के लागू होने पर यह कानून उन मौजूदा व्यक्तिगत कानूनों की जगह लेगा जो धार्मिक सम्बद्धता के आधार पर भिन्न होते है। भारतीय संविधान के भाग 4 राज्य के नीति निर्देशक सिद्धातों के अंतर्गत अनुच्छेद 44 में यूसीसी का उल्लेख किया गया है, इसमें कहा गया है कि सरकार भारत के पूरे राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता को स्थापित करने का प्रयास करेगी।[xlv] अनुच्छेद 37 में यह भी कहा गया है कि निर्देशक सिद्धांत सरकारी नीतियों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत है और अदालतों द्वारा लागू करने योग्य नहीं है। संविधान सभा ने इसी कारण से यूसीसी को मौलिक अधिकारों के बजाय राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत के रूप में शामिल किया।[xlvi] यूसीसी के लागू होने से यह भारत के सभी नागरिकों को, उनकी जाति, समुदाय और विश्वास के बावजूद विवाह, तलाक, विरासत, गोद लेने, रखरखाव और उतराधिकार के मामलों को नियंत्रित करने वाले सामान्य कानून होंगे। समान नागरिक संहिता से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णयों में शाह बानो केस (1985) ने मुस्लिम महिलाओं के गुजारा भत्ते के अधिकार को सुनिश्चित करते हुए यूसीसी की आवश्यकता पर जोर दिया।[xlvii] सरला मुद्गल केस (1995) में धर्म परिवर्तन कर दूसरी शादी की वैधता पर सवाल उठाते हुए समान कानून लागू करने की वकालत की गई।[xlviii] जॉन वल्लामत्तोम केस (2003) में भी कोर्ट ने अनुच्छेद 44 के अंतर्गत यूसीसी लागू करने की जरूरत पर बल दिया।[xlix] सायरा बानो केस (2017) में सुप्रीम कोर्ट ने तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित किया, जो महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम था।[1] भारत के उच्चतम न्यायालय सहित उच्च न्यायालयों की न्यायिक घोषणाओं और निर्देशों ने समान नागरिक संहिता पर कानून निमार्ण के पक्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है क्योकि न्यायिक हस्तक्षेप और फैसले विधायी कार्रवाई और नीतिगत सुधारों के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते है। न्यायालयों ने अक्सर सभी

नागरिकों के लिए समानता और न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर जोर दिया है, चाहे उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। साथ ही 22 वें विधि आयोग ने समान नागरिक संहिता पर आम जनता से विचार विमर्श की प्रक्रिया शुरू कर दी है। इससे पूर्व 21वें विधि आयोग ने भी समान कानून की बात की थी और परिवार विधियों के जरिये इसका रास्ता बताया था।[li]

मान नागरिक संहिता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

भारत में यूसीसी की उत्पत्ति औपनिवेशिक काल से ही मानी जाती है। प्रारंभ में, ब्रिटिश नीति धार्मिक मामलों में अहस्तक्षेप की थी, इसलिए विभिन्न भारतीय समाज में अपने-अपने धर्म आधारित कानूनी प्रथाओं का पालन होता था। 1834 में, लॉर्ड मैकाले की अध्यक्षता में पहले कानून आयोग ने एक दंड संहिता का मसौदा तैयार किया, जिसमें व्यक्तिगत कानूनों को अछूता रखा गया और इन्हे धार्मिक सिद्धांतों के अधीन रखने की बात की गई[lii] 1840 की लेक्स लोकी रिपोर्ट ने भारतीय कानून को संहिताबद्ध करने में एकरूपता की आवश्यकता को रेखांकित किया लेकिन हिंदुओं और मुसलमानों के व्यक्तिगत कानूनों को बाहर करने की सिफारिश की ।[liii] 1858 की रानी की उद्घोषणा में भारतीयों के सामाजिक और धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया गया ।[liv] 1941 में, ब्रिटिश सरकार ने बीएन राव समिति का गठन किया। समिति ने सुझाव दिया कि हिंदू कानून को संहिताबद्ध करने की जरूरत है । इसी क्रम में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 पारित किया गया। इस अधिनियम ने विवाह, विरासत और उत्तराधिकार पर हिंदू व्यक्तिगत नियमों में संशोधन करने की मांग की जो एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मिसाल है। शुरुआती विरोध और भय के बावजूद इस कानून ने प्रगतिशील सुधार की वकालत की, जैसे कि बहुविवाह जैसी भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त करना, संपत्ति और तलाक की कार्यवाही में महिलाओं के लिए समान अधिकारों की स्थापना आदि। समान नागरिक संहिता को व्यवहार में लाने की चुनौतियों के बारे में अतिरिक्त अंतर्दृष्टि भारत के अंदर और बाहर दोनों जगह अन्य अधिकार क्षेत्रों के साथ तुलना करके देखी की जा सकती है। यूरोपीय देशों और अमेरिका के पास एक धर्मनिरपेक्ष कानून है । इजरायल, जापान ,फ्रांस और रूस में यूसीसी या कुछ मामलों के लिए समान दीवानी या आपराधिक कानून है । इस्लामिक देशों में शरिया पर आधारित एक समान कानून है जो सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होता है फिर चाहे उनका धर्म कुछ भी हो। इसके अलावा, भारतीय राज्य गोवा में समान नागरिक संहिता, जो 1869 के पुर्तगाली व्यवस्था से ली गई है, एक एकीकृत कानूनी प्रणाली का एक उदाहरण है जो सभी व्यक्तियों पर लागू होती है। गोवा में यू. सी. सी. का कानून विवाह, विरासत और पारिवारिक समस्याओं को सम्मिलित करने वाले अपने कानूनों के माध्यम से सभी निवासियों के लिए समानता और न्याय की गारंटी देने में एक एकीकृत नागरिक संहिता की व्यावहारिकता और प्रभावशीलता पर प्रकाश डालता है ।[lv] इसी क्रम में उत्तराखंड समान नागरिक संहिता लागू करने वाला स्वतंत्र भारत का पहला राज्य बन गया है ।

समान नागरिक संहिता और संविधान सभा की बहस:

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ एक समान सामाजिक संहिता (जिसे अब यूसीसी के नाम से जाना जाता है) की मांग बढ़ी । नतीजतन, 1930 के दशक के मध्य में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में इसके लिए आवाज उठाई । यही से यूसीसी के विचार की कल्पना संविधान सभा द्वारा की गई थी। भारत की संविधान सभा ने भारतीय संविधान के निर्माण के दौरान यूसीसी पर व्यापक रूप से बहस की थी । इन चर्चाओं के दौरान शुरू में अनुच्छेद 35 (भारत के

संविधान में अनुच्छेद 44) के मसौदे के रूप में संदर्भित किया गया था। महबूब अली बेग साहब बहादुर, नजीरुद्दीन अहमद, हुसैन इमाम जैसे सदस्यों द्वारा अनुच्छेद 35 के मसौदे में विभिन्न संशोधन प्रस्तावित किए गए थे।[lvi]

महबूब अली बेग साहब बहादुर ने अनुच्छेद 35 में एक प्रावधान जोड़ने का प्रस्ताव रखा, जिसमें कहा गया था कि किसी भी समुदाय को अपने व्यक्तिगत कानून को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि व्यक्तिगत कानून का पालन करना एक मौलिक अधिकार है। उन्होंने अपने तर्क का समर्थन करने के लिए यूगोस्लाविया और स्लोवेनिया के उदाहरणों का हवाला दिया। नजीरुद्दीन अहमद ने कहा कि यह मसौदा संविधान के अनुच्छेद 19 के साथ संघर्ष करेगा, जो धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी देता है। हुसैन इमाम ने इस अवसर पर कोई औपचारिक संशोधन नहीं रखा था बल्कि उन्होनें केवल अपना वक्तव्य और सुझाव दिए थे। पहले उन्होंने कहा कि भारत व उसकी जनसंख्या में विभिन्नता के कारण यह असंभव है। फिर अंत में कहा कि इस हेतु समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब सारा भारत शिक्षित हो जाये, लोग प्रगतिशील हो जाए तथा आर्थिक अवस्था ठीक हो जाए, तो एक समान कानून बना सकते हैं। इन संशोधनों का विरोध करते हुए, के. एम. मुंशी ने तर्क दिया कि अनुच्छेद 35 संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 19 का उल्लंघन नहीं करता है। उन्होंने उन्नत मुस्लिम देशों के उदाहरणों का हवाला देते हुए इस विचार पर आपत्ति जताई कि यह प्रावधान अल्पसंख्यकों के लिए अत्याचारी है, जो प्रत्येक अल्पसंख्यक के व्यक्तिगत कानून को मान्यता नहीं देते हैं। मुंशी ने धर्म को व्यक्तिगत कानून से अलग करने की आवश्यकता पर जोर दिया और तर्क दिया कि यूसीसी के बिना लैंगिक समानता असंभव है।[lvii]

डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तावित संशोधनों से अपनी असहमति व्यक्त की। उन्होंने व्यक्तिगत कानूनों में हस्तक्षेप का समर्थन किया और इस धारणा को खारिज कर दिया कि मुस्लिम कानून समय के साथ अपरिवर्तनीय रहे हैं। डॉ अम्बेडकर ने विभिन्न प्रांतों में मुसलमानों के उदाहरणों का उल्लेख किया, जो बड़े पैमाने पर हिंदू कानून द्वारा शासित थे। डॉ अंबेडकर ने संविधान का मसौदा तैयार करते समय कहा था, कि यूसीसी वांछनीय है, लेकिन इसे तब तक स्वैच्छिक रहना चाहिए, जब तक कि राष्ट्र इसे स्वीकार करने के लिए सामाजिक रूप से तैयार ना हो जाए। इसके बाद, अनुच्छेद 35 के मसौदे पर लाए गये तीनों संशोधनों को संविधान सभा ने अस्वीकार कर दिया और अनुच्छेद 35 के मसौदे को बिना परिवर्तन के स्वीकार किया गया। इसे ही बाद में भारत के संविधान में अनुच्छेद 44 के रूप में पुनः स्थान दिया गया।[lviii]

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता:

भारत के अन्य राज्यों की तरह उत्तराखंड में भी समान नागरिक संहिता (यूसीसी) का कार्यान्वयन सामाजिक न्याय, समानता और कानूनी एकरूपता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रेरित है। उत्तराखंड में धार्मिक संबंधों के आधार पर विरासत, विवाह और पारिवारिक मामलों पर व्यक्तिगत कानूनों में मतभेद हैं, जो असमानता और भेदभाव का कारण रहा है, खासकर महिलाओं के संदर्भ में। समान नागरिक संहिता सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों और अवसरों की गारंटी देगी, चाहे उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो, वर्तमान व्यक्तिगत कानूनों में निहित भेदभावपूर्ण प्रथाओं को दूर करके यह एक तरफा तलाक और असमान विरासत अधिकारों जैसे पुरातन रीति-रिवाजों को दूर करके लिंग निष्पक्षता के मूल्यों को संरक्षित करता है जो कुछ समाजों में आम हैं। एक समान नागरिक संहिता समानता और धर्मनिरपेक्षता के अनुरूप भी है जो भारतीय संविधान के लिए मौलिक हैं। धार्मिक विभाजन में एकजुटता और आम

नागरिकता की भावना को प्रोत्साहित करके, यह राष्ट्रीय सामंजस्य को बढ़ावा देता है। समान नागरिक संहिता सामाजिक सामंजस्य की सुविधा प्रदान करती है, न्याय तक पहुंच में सुधार करती है और सभी नागरिकों पर लागू होने वाले एकीकृत कानूनी ढाँचे की पेशकश करके कानूनी प्रणाली को सुव्यवस्थित करती है। इस प्रकार, उत्तराखंड में यूसीसी का कार्यान्वयन कानूनी, सामाजिक और संवैधानिक अनिवार्यताओं के अभिसरण द्वारा निर्देशित है, जिसका उद्देश्य राज्य के कानूनी ढांचे के भीतर न्याय, समानता और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों को आगे बढ़ाना है।

समान नागरिक संहिता से पहले उत्तराखंड में पारंपरिक कानूनी ढांचा:

समान नागरिक संहिता लागू होने से पहले उत्तराखंड में हिंदू, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, मुस्लिम, ईसाई और यहूदी धार्मिक पहचान के आधार पर अपने स्वयं के व्यक्तिगत कानूनों द्वारा शासित होते थे। इनमें शामिल है भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925[lix], विशेष विवाह अधिनियम 1954[lx], हिंदू विवाह अधिनियम 1955[lxi], पारसी विवाह और तलाक अधिनियम 1936[lxii], भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम 1872[lxiii], भारतीय तलाक अधिनियम 1869[lxiv], बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1929[lxv], विदेशी विवाह अधिनियम 1969[lxvi], काज़ी अधिनियम 1880[lxvii], आनंद विवाह अधिनियम 1909 ।[lxviii]

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता का अधिनियमन:

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता से जुड़े घटनाक्रम 2022 में शुरू हुए, जब राज्य विधानसभा चुनावों के दौरान मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी ने इस दिशा में औपचारिक घोषणा की। उत्तराखण्ड सरकार ने 2022 में यूसीसी का मसौदा तैयार करने के लिए उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश रंजना प्रकाश देसाई की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। सेवानिवृत्त न्यायाधीश प्रमोद कोहली, सामाजिक कार्यकर्ता मनु गौड़, उत्तराखंड के पूर्व मुख्य सचिव शत्रुघ्न सिंह और दून विश्वविद्यालय की कुलपति सुरेखा डंगवाल की समिति ने 740 पृष्ठों का एक मसौदा रिपोर्ट तैयार किया, जिसे चार खंडों में विभाजित किया गया।[lxix] 2023 में समिति ने राज्य में व्यापक जन सुनवाई और परामर्श सत्र आयोजित किए, जिसमें जनता और विभिन्न संगठनों से सुझाव और आपत्तियाँ मांगी गईं। अक्टूबर 2023 तक, समिति ने मसौदे को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया शुरू की। 2024 में यह मसौदा सरकार को सौंपा गया एवं 7 फरवरी, 2024 को भारत के उत्तराखंड राज्य की विधानसभा ने यूसीसी विधेयक पारित किया।[lxx] 13 मार्च 2024 को राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने विधेयक को मंजूरी दे दी।[lxxi] इसके पश्चात उत्तराखण्ड स्वतंत्र भारत में ऐसा कानून पारित करने वाला पहला राज्य बन गया है जो सभी नागरिकों के लिए विवाह, तलाक, संपत्ति की विरासत और लिव इन रिलेशनशिप पर समान नियम प्रदान करती है। उत्तराखंड समान नागरिक संहिता अधिनियम 2024 के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं:

- **विवाह और तलाक:** समान नागरिक संहिता (यूसीसी) अधिनियम 2024 विभिन्न समुदायों में समानता और एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए विवाह और तलाक कानूनों में व्यापक सुधार प्रस्तुत करता है। यह अधिनियम अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर राज्य के सभी निवासियों पर लागू विवाह और तलाक के लिए एकीकृत ढांचा प्रस्तुत करता है। प्रमुख प्रावधानों में विवाह और तलाक का अनिवार्य पंजीकरण शामिल है, जिसका पालन न करने पर 25 हजार रुपये का जुर्माना है। अधिनियम में पुरुषों के लिए विवाह की कानूनी आयु 21 वर्ष और महिलाओं के लिए 18 वर्ष निर्धारित की गई है, द्विविवाह और बहुविवाह पर प्रतिबंध है, और न्यायेतर तलाक के तरीकों को अपराध माना गया है।[lxxii]

- **लिव-इन-रिलेशनशिप:** उत्तराखंड समान नागरिक संहिता (यूसीसी) अधिनियम 2024 में लिव-इन रिलेशनशिप के लिए विशेष प्रावधान शामिल हैं। धारा 318 के अनुसार इसमें अनिवार्य किया गया है कि ऐसे संबंधों को जिला रजिस्ट्रार के पास औपचारिक रूप से रिलेशनशिप शुरू होने के एक महीने के भीतर पंजीकरण कराना अनिवार्य है। इसका पालन न करने पर छह महीने तक की कैद और ₹25,000 के जुर्माने सहित दंड हो सकता है। ऐसे जोड़ों को अविवाहित, 21 वर्ष से अधिक आयु का और जबरदस्ती या धोखाधड़ी से मुक्त होने जैसे मानदंडों को पूरा करना चाहिए। धारा 382 के अनुसार इन संबंधों से पैदा हुए बच्चों को वैध माना जाता है और परित्यक्त महिलाएं भरण-पोषण की हकदार हैं। इसके अतिरिक्त, ऐसे संबंधों को औपचारिक रूप से समाप्त करने के लिए प्रक्रियाओं की रूपरेखा तैयार की गई है, जिससे सभी पक्षों के लिए कानूनी स्पष्टता और सुरक्षा सुनिश्चित होती है।[lxxiii]
- **उत्तराधिकार और विरासत:** उत्तराखंड समान नागरिक संहिता (यूसीसी) अधिनियम 2024 में सभी बच्चों के लिए समान संपत्ति अधिकार सुनिश्चित किए गए है, चाहे वे वैध, नाजायज, गोद लिए गए हों या सरोगेसी या सहायक प्रजनन तकनीक के माध्यम से पैदा हुए हों। यह हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के तहत पैतृक संपत्ति को नियंत्रित करने वाली सहदायिक प्रणाली को समाप्त करता है। बिना वसीयत के उत्तराधिकार के मामलों में (जहां कोई पंजीकृत वसीयत मौजूद नहीं है),यह कानून पति-पत्नी, बच्चों और माता-पिता के बीच संपत्ति के न्यायसंगत वितरण की गारंटी देता है, तथा मौजूदा व्यक्तिगत कानूनों में मौजूद असमान प्रथाओं को प्रतिस्थापित करता है।[lxxiv]
- **छूट:** उत्तराखंड में लगभग 3 प्रतिशत आबादी आदिवासी समुदायों से की है, जिन्हें धारा 2 के तहत निर्दिष्ट कोड के प्रावधानों से छूट दी गई है। इसमें यह कहा गया है कि यह कोड भारत के संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड 25 और अनुच्छेद 342 द्वारा परिभाषित अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों पर लागू नहीं होता है। इसके अलावा, ऐसे व्यक्ति या समूह जिनके प्रथागत अधिकार संविधान के भाग 21 के तहत संरक्षित हैं, उन्हें भी इस कोड के दायरे से बाहर रखा गया है। उत्तराखंड में हिंदू अविभाजित परिवार (यू एच एफ) प्रणाली प्रचलित है क्योंकि यह केंद्रीय कानून द्वारा शासित है, जिस पर राज्य का कोई अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त, समुदाय को छूट दी गई है, क्योंकि मौजूदा कानूनी ढांचे के तहत समलैंगिक भागीदारों को वर्तमान में लिव-इन रिलेशनशिप में प्रवेश करने की अनुमति नहीं है।[lxxv]

समान नागरिक संहिता के बाद उतराखंड में महिलाओं के अधिकार:

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता (यूसीसी) के क्रियान्वयन से समानता को बढ़ावा देने और सभी समुदाय की महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं, जो निम्नलिखित हैं:

- **कानूनी मान्यता-** यूसीसी के महत्त्वपूर्ण प्रभावों में से एक लिव-इन संबंधों की कानूनी मान्यता है, जबकि लिव-इन रिश्तों को पहले पारंपरिक व्यक्तिगत कानूनों के तहत वर्जित माना जाता था। यूसीसी ऐसे रिश्तों की वैधता को स्वीकार करता है और महिलाओं सहित इसमें शामिल व्यक्तियों को कुछ कानूनी सुरक्षा प्रदान करता है।

- **विवाह और तलाक-** यूसीसी बहुविवाह जैसी प्रथाओं पर रोक लगाकर और एक समान विवाह योग्य आयु महिलाओं के लिए 18 वर्ष और पुरुषों के लिए 21 वर्ष निर्धारित करके विवाह कानूनों को मानकीकृत करता है। यह कानूनी वैधता सुनिश्चित करने के लिए विभागों के अनिवार्य पंजीकरण पर भी जोर देता है। तलाक कानूनों को एकीकृत कर यह पुरुषों एवं महिलाओं के लिए समान आधार और अधिकार प्रदान करते हुए हलाला जैसे भेदभावपूर्ण प्रथा को समाप्त करता है।[lxxvi]
- **बाल अभिरक्षा और समर्थन-** ऐसे मामलों में जहां बच्चे लिव-इन संबंधों से पैदा होते हैं, यूसीसी बाल हिरासत, सहायता और रखरखाव के प्रावधान प्रदान करता है। विवाह के भीतर पैदा हुए बच्चों के लिए प्रावधानों के समान, लिव-इन रिश्तों में भागीदारों के पास अपने बच्चों के प्रति कानूनी दायित्व होंगे हैं, जिसमें वित्तीय सहायता, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और माता-पिता की जिम्मेदारियां शामिल हैं, यह सुनिश्चित करता है।
- **सामाजिक स्वीकृति और कलंक-** यूसीसी द्वारा प्रदान की गई कानूनी मान्यता के बावजूद उत्तराखंड में लिव-इन रिलेशनशिप में रहने वाली महिलाओं को अभी भी प्रचलित सांस्कृतिक मानदंडों और दृष्टिकोणों के कारण सामाजिक कलंक और भेदभाव का सामना करना पड़ सकता है। नैतिकता और पारिवारिक मूल्यों की पारंपरिक धारणाएं लिव-इन रिश्तों की वैधता पर आक्षेप लगा सकती हैं, जिससे सामाजिक बहिष्कार bahishkarया शामिल व्यक्तियों के हाशिए पर पहुंच सकते हैं। हालांकि, साझेदारी के वैध रूपों के रूप में लिव-इन संबंधों की यूसीसी की मान्यता सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने और अंतरंग संबंधों के विभिन्न रूपों के प्रति स्वीकृति और सहिष्णुता को बढ़ावा देने में योगदान कर सकती है।
- **विवाह और तलाक के अधिकार-** उत्तराखंड में यूसीसी ने महिलाओं के लिए समान अधिकार और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए विवाह और तलाक कानूनों में सुधार किया है। पहले, विभिन्न धार्मिक समुदायों की महिलाओं को विवाह और तलाक के संबंध में अलग-अलग कानूनी प्रावधानों के अधीन किया गया था, जिससे अधिकारों और हकों में असमानता पैदा हुई। समान कानूनों के कार्यान्वयन के साथ, महिलाओं को अब उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि के बावजूद विवाह और विवाह के विच्छेद के मामलों में अधिक स्वायत्तता और कानूनी सहारा देता है जैसा कि हिंदुओं के बीच हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 मुसलमानों के लिए शरीयत अधिनियम, 1937 है[lxxvii] और ईसाइयों के लिए यह भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872 है ।[lxxviii]
- **संपत्ति अधिकार-** भारत में महिलाओं के लिये संपत्ति का अधिकार एक लंबे समय से मुद्दा रहा है, जो अक्सर पितृसत्तात्मक रीति-रिवाजों और भेदभावपूर्ण कानूनों द्वारा शासित होता है। उत्तराखंड में यूसीसी ने महिलाओं के संपत्ति पर अधिकारों को मजबूत करने के लिए सुधारों की शुरुआत की है जिससे विरासत या अधिग्रहित संपत्ति तक समान पहुंच सुनिश्चित हो सके। विरासत को रोकने और महिलाओं के स्वतंत्र रूप से संपत्ति के स्वामित्व, प्रबंधन और विरासत के अधिकार को सुनिश्चित करने के प्रावधान किए गए हैं, जिससे आर्थिक सशक्तिकरण और वित्तीय सुरक्षा को बढ़ावा मिलता है।

- **उत्तराधिकार अधिकार-** उत्तराधिकार अधिकारों में असमानताओं को दूर करने के लिये यूसीसी के तहत उत्तराधिकार कानूनों में सुधार किया गया है, विशेष रूप से पैतृक संपत्ति पर बेटियों के अधिकारों से संबंधित। परंपरागत रूप से, बेटियों को पैतृक संपत्ति विरासत से बाहर रखा जाता था, जिसमें पुरुष उत्तराधिकारियों को वरीयता दी जाती थी। यूसीसी बेटियों के लिए समान विरासत अधिकारों को अनिवार्य करता है जिससे उत्तराधिकार के मामलों में लैंगिक न्याय को बढ़ावा मिलता है।
- **घरेलू हिंसा और महिला संरक्षण-** उत्तराखंड में यूसीसी में घरेलू हिंसा से निपटने और वैवाहिक और पारिवार के भीतर महिलाओं को दुर्व्यवहार से बचाने के लिए कड़े प्रावधान शामिल हैं। घरेलू हिंसा का सामना करने वाली महिलाओं की सुरक्षा और कल्याण सुनिश्चित करने के लिए संरक्षण आदेश, निरोधक आदेश और आश्रय प्रावधानों जैसे कानूनी तंत्र को मजबूत किया गया है साथ हीं ऐसे अपराधों को रोकने के लिए अपराधियों पर दंड का प्रावधान किया गया है।
- **अन्य प्रभाव-** उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता के कार्यान्वयन ने न केवल व्यक्तिगत कानूनों की जटिलताओं और विरोधाभासों को दूर करके, कानूनी प्रणाली को सरल और युक्तिसंगत बनाया है , बल्कि व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव और उत्पीड़न को दूर करके लैंगिक न्याय और समानता सुनिश्चित की है। यूसीसी विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों में व्याप्त पुरानी और प्रतिगामी प्रथाओं जैसे- बहुविवाह, बाल विवाह, तीन तलाक़ और अन्य मानव अधिकारों के खिलाफ प्रथाओं को समाप्त करेगा जो भारत के संविधान में निहित हैं। यूसीसी धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देगी। विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों से उत्पन्न होने वाले धार्मिक और सांप्रदायिक मतभेद भी इससे कम होंगे। यह भी सभी के लिये गरिमा, बंधुता और समानता के संवैधानिक मूल्यों को पूरा करेगा। इस प्रकार, यूसीसी के अधिनियमन से राष्ट्र निर्माण की दिशा में उनकी पूरी क्षमता का उपयोग करने में मदद मिलेगी।[lxxix]

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता के समक्ष चुनौतियां:

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता (यूसीसी) को लागू करने के प्रयास में कई चुनौतियो का सामना किया जा रहा है। इन चुनौतियो का सामाजिक, राजनीतिक और कानूनी स्तर का आकलन किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं:

- **सांस्कृतिक विविधता और धार्मिक विविधता-** उत्तराखंड में कई धार्मिक और सांस्कृतिक समुदाय रहते हैं। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई और जनजातीय समुदाय के अलग-अलग रीति-रिवाज और परंपराएं हैं। यूसीसी लागू करने से इन स्थानों पर व्यक्तिगत छात्रावासों और मठों में बाधा हो सकती है। धार्मिक अनुयायियों और संप्रदायों में यह चिंता है कि यूसीसी उनकी आस्था और धार्मिक स्वतंत्रता को प्रभावित कर सकता है। युवाओं और क्षेत्रीय समुदायों के अपने विशेष रीति-रिवाज हैं ,इनका संरक्षण संवैधानिक रूप से आवश्यक है।[lxxx]
- **एक राजनीतिक विचारधारा-** यूसीसी को अक्सर राजनीतिक मुद्दे के रूप में देखा जाता है। इसे अल्पसंख्यकों के खिलाफ भेदभाव के रूप में पेश कर सकती है सामाजिक ध्रुवीकरण और वोट बैंक की राजनीति के कारण इसे कानून का समर्थन प्राप्त होता है ।

- **कानूनी चुनौती-** कुछ आलोचकों का तर्क है कि यह विधेयक कुछ संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन कर सकता है, विशेषकर धार्मिक स्वतंत्रता और समानता से संबंधित अधिकारों का। संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। यूसीसी लागू होने से यह धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन हो सकता है।[lxxxi] उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न मामलों में यूसीसी की आवश्यकता को स्वीकार किया है, लेकिन इसे लागू करने की प्रक्रिया में जटिल कानूनी बाधाएं हो सकती हैं। इन चिंताओं से भविष्य में कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।
- **गैर-समावेशी-** जनजातीय समुदायों को यूसीसी से छूट देने से समावेशिता और कानून के तहत समान व्यवहार को लेकर सवाल उठते हैं जबकि कुछ का तर्क है कि आदिवासी समुदायों को अपनी पारंपरिक प्रथाओं को बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए अन्य लोग एक ही समुदाय के भीतर विभिन्न समूहों पर अलग-अलग कानूनी मानकों को लागू करने की निष्पक्षता पर सवाल उठाते हैं।
- **समलैंगिकों के अधिकारों-** यूसीसी से समलैंगिक संबंधों को बाहर करने से समलैंगिकों के अधिकारों और कानून के तहत समानता को लेकर चिंताएँ उठना स्वभाविक हैं। लिव-इन रिलेशनशिप को विशेष रूप से एक पुरुष और एक महिला के बीच संबंध के रूप में परिभाषित करके, यूसीसी समलैंगिक व्यक्तियों और उनके संबंधों के प्रति भेदभाव को दर्शाता है।

उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता का किर्यान्वयन लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता को लागू करना लोकतांत्रिक मूल्यों ,संवैधानिक सिद्धांतों और मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप कानूनी प्रणालियों में सुधार की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। यह समाज की उभरती जरूरतों और आकांक्षाओं के लिए कानूनी ढांचे को अपनाने, समावेशिता को बढ़ावा देने, एवं व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता की सुरक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में एक प्रगतिशील कदम का प्रतीक है। समान नागरिक संहिता सभी लोगों के लिए लैंगिक समानता और समान स्थिति की गारंटी देता है, चाहे उनका मूल समुदाय या धर्म कुछ भी हो। समान नागरिक संहिता परस्पर विरोधी विचारधाराओं वाले कानूनों के प्रति असमान निष्ठा को हटाकर राष्ट्रीय एकता के मामले में मदद करेगा। समान नागरिक संहिता को लागू कर उत्तराखंड राज्य ने परंपरा और प्रगति के बीच संतुलन को बनाकर संविधान में निहित सिद्धांतों को लागू करके एक अधिक न्यायपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण समाज का मार्ग प्रशस्त किया है। समान नागरिक संहिता के लक्ष्यों और प्रावधानों की समझ और स्वीकृति को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा और जागरूकता पर भी जोर दिया जाना चाहिए। उत्तराखंड में समान नागरिक संहिता के लागू होने से देश में समान नागरिक संहिता के लंबे समय से चले आ रहे मांग की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया है।

हमारी संविधान सभा की परिकल्पना के अनुसार भारत में समान नागरिक संहिता को लाना और लागू करना क्या संभव है, यह प्रश्न उत्तराखंड में इसके लागू होने के बाद महत्वपूर्ण हो गया है। उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश दीपक गुप्ता ने समान नागरिक संहिता पर अपने विचारों में कहा है कि वे यूसीसी के पक्ष में हैं, लेकिन इसे लागू करने से पहले गहराई से विचार करना आवश्यक है। उन्होंने जोर दिया कि इस संहिता को बनाते समय सभी समुदायों की

परंपराओं और सांस्कृतिक विविधता का सम्मान किया जाना चाहिए। जस्टिस गुप्ता ने यह भी कहा कि यूसीसी का उद्देश्य लैंगिक समानता और न्याय सुनिश्चित करना होना चाहिए, न कि किसी विशेष समूह पर विचार थोपना। उन्होंने इसे संवैधानिक आदर्शों के अनुरूप और समावेशी बनाने पर बल दिया है।

जवाहर लाल नेहरू ने हिन्दू सिविल संहिता पेश करते समय कहा था कि यूसीसी का समय अभी नहीं आया है, इसके लिए समाज के अंदर से आवाज उठनी चाहिए जो कि अब सत्य प्रतीत हो रहा है। इसलिए, भारत में समान नागरिक संहिता को लागू करना समय की मांग है। राष्ट्रीय स्तर पर समान नागरिक संहिता तैयार करते समय एक तर्कसंगत और समावेशी दृष्टिकोण का पालन किया जाना चाहिए। इसमें अन्य देशों के व्यक्तिगत कानून की श्रेष्ट विशेषताओं को एकत्र और क्रियान्वित किया जाना चाहिए, लेकिन यह व्यापक परामर्श पर आधारित होना चाहिए। उत्तराखंड का अनुभव कमियों को सुधारने में मदद कर सकता है तथा अन्य राज्यों से भी उम्मीद की जाती है कि वे भी इसका पालन करें और भारत को अधिक पंथनिरपेक्ष, एकीकृत और गैर-भेदभावपूर्ण बनाएं, कम से कम जब इसे संवैधानिक और मानवाधिकार के दृष्टिकोण से देखा जाये।

संदर्भ सूची

1. Constitution Of India. (2023, July 4). *Article 44: Uniform Civil Code for The Citizens - Constitution Of India*. Https://Www.Constitutionofindia.Net/Articles/Article-44-Uniform-Civil-Code-For-The-Citizens/
2. Mishra, H., Mishra, H., & Hindi, L. L. (2024, May 30). *Live Law Hindi*. Live Law Hindi. Https://Hindi.Livelaw.In/Know-The-Law/Directive-Principles-Of-State-Policy-In-Indian-Constitution-259251
3. Supreme Court of India. 1985. Mohd. Ahmed Khan Vs Shah Bano Begum and Ors. April 23. [Https://Indiankanoon.Org/Doc/823221/].
4. *A Legal Analysis Of Sarla Mudgal V. Union Of India: A Landmark Case In Indian Family Law*. (N.D.). Https://Www.Legalserviceindia.Com/Legal/Article-13294-A-Legal-Analysis-Of-Sarla-Mudgal-V-Union-Of-India-A-Landmark-Case-In-Indian-Family-Law.Html
5. Kumar, V. (2003). Uniform Civil Code Revisited: A Juridical Analysis Of" John Vallamattom". *Journal Of The Indian Law Institute*, *45*(3/4), 315-33
6. Srivastava, A. (2024, November 28). Shayara Bano V. Union Of India (2017):A Case That Redefined Personal Laws In India » Lawful Legal. *Lawful Legal*. Https://Lawfullegal.In/Shayara-Bano-V-Union-Of-India-2017a-Case-That-Redefined-Personal-Laws-In-India/
7. Law Commission Of India. (2023). *Public Notice* Regarding Uniform Civil Code Https://Cdnbbsr.S3waas.Gov.In/S3ca0daec69b5adc880fb464895726dbdf/Uploads/2023/06/2023061446.Pdf

8. Priyam, R. (2020). Civil, Criminal and Personal Laws During British Times. *Issue 6 Int'l Jl Mgmt. & Human.*, *3*, 1095.
9. Mustafa, F., & Ahmad, N. (2023). Indian Polity and Personal Law Challenges Of The Proposed Uniform Civil Code. *Manchester Journal of Transnational Islamic Law & Practice*, *19*(4). P.27.
10. Adcock, C. (2013). The Colonial Politics Of Religious Toleration. In *Oxford University Press E-books* (Pp. 23–38). Https://Doi.Org/10.1093/Acprof:Oso/9780199995431.003.0002
11. Legal Service India. (N.D.). *Uniform Civil Code In Goa*. Https://Www.Legalservicesindia.Com/Article/2157/Uniform-Civil-Code-In-Goa.Html
12. Parameswaran, L., & Ravichandran, P. (2020). *Debates In the Constituent Assembly And Thereafter On Uniform Civil Code* (First). India Policy Foundation. Https://Www.Ipf.Org.In/Encyc/2020/11/13/2_02_30_42_Debates-In-The-Constituent-Assembly-And-Thereafter-On-Uniform-Civil-Code-Papers_1.Pdf
13. Constituent Assembly Debates (Proceedings), Vol. VII, Tuesday Nov. 23, 1948.

29

भारतीय संविधान, संघवाद और राज्यों की परिवर्तनीय प्रकृति

डॉ. स्मिता अग्रवाल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
अभय कुमार शुक्ल
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

समकालीन समय में भारत लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की शुरुआत का साक्षी रहा है, जिसके परिणामस्वरूप इसकी राजनीति और अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन हुआ है। आशुतोष कुमार के अनुसार इन प्रक्रियाओं में, सबसे महत्वपूर्ण 'पहचान की राजनीति' रही है। जिसके माध्यम से राजनीति में भारतीय राज्यों ने राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। वहीं सुधा पाई के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत ही संविधान ने संघीय ढांचे की स्थापना की, लेकिन संविधान सभा में क्षेत्रीय ताकतों की अनुपस्थिति, एक लिखित संविधान और एक दलीय प्रभुत्व वाली व्यवस्था के कारण स्वतंत्रता बाद के कई दशकों तक राज्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई। किन्तु समय के साथ 'स्वायत्तता' को लेकर 'पहचान समूहों' की मुखरता और परस्पर विरोधी दावों के आस-पास संघर्ष दिखाई पड़ते हैं और उनके बीच संघर्ष अक्सर क्षेत्र, धर्म, भाषा (यहाँ तक कि बोली), जाति और समुदाय के आधार पर हुए। इन संघर्षों ने चुनावी प्रतिनिधित्व के बदले हुए तरीके में अपनी अभिव्यक्ति/आवाज पाई है जिसने स्थानीय/क्षेत्रीय आकांक्षाओं की ओर ध्यान इंगित किया है और इसके साथ ही वर्तमान समय में राजनीतिक रूप से निष्क्रिय समूहों और क्षेत्रों को एक मुखर आवाज़ मिल रही हैं। भारतीय संविधान के रचनाकारों ने संविधान में राष्ट्र के आदर्शों और संस्थाओं के कार्यसिद्धी हेतु कुछ प्रक्रियायें भी संस्थापित की थी। इन आदर्शों में राष्ट्रीय एकता तथा एक लोकतान्त्रिक और समतापूर्ण समाज का आदर्श शामिल था। नए समाज के निर्माण के लिए एक सामाजिक-आर्थिक क्रांति के अलावा एक ऐसी लोकतांत्रिक भावना की जरूरत थी जो संवैधानिक व लोकतांत्रिक संस्थाओं के उपयोग में विश्वास रखती हो। ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार "भारतीय संविधान में "एकता, सामाजिक क्रांति तथा लोकतंत्र" एक ही अखण्ड अन्विति के तीन सूत्र हैं। इनमें कोई भी उद्देश्य अलग-अलग ढंग से हासिल नहीं किया जा सकता क्योंकि ये समस्त उद्देश्य एक दूसरे पर निर्भर करते हैं इन्हें संयुक्त रूप से ही हासिल किया जा सकता हैं। सभा के सदस्य इस बात से अवश्य परिचित थे कि संविधान सिर्फ अपने बल पर नए भारत का निर्माण नहीं कर सकता, लेकिन उन्होंने वह मार्ग अवश्य आलोकित किया जिस पर चलकर यह कार्य पूरा किया जा सकता था।" इसीलिए राष्ट्रीय एकता और अखंडता का उद्देश्य पूरा करने के लिए उन्होंने संविधान में एक अत्यंत केंद्रीकृत संघवाद की व्यवस्था की क्योंकि 1946 से 1950 के दौरान संविधान के रचनाकारों और सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता यह थी कि राष्ट्रीय विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भारत को कैसे एकजुट रखा जाये।

भारतीय संघवाद: एक सान्दर्भिक अध्ययन -

भारतीय संविधान की राजनीतिक संरचना इतनी विचित्र है कि उसकी संक्षेप में व्याख्या नहीं की जा सकती, उसे अभिहित करने के लिए 'अर्ध-संघीय' या 'वैधानिक विकेन्द्रीकरण' जैसे शब्द दिलचस्प तो लगते हैं परन्तु उनसे कुछ खास उद्घाटित नहीं होता। ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार सभा के सदस्यों ने स्वयं भी 'संघवाद' के किसी सिद्धान्त या मताग्रह से बँध कर चलना स्वीकार नहीं किया। सदस्यों को लगता था कि भारत में जिस तरह की अनूठी समस्याएँ मौजूद थीं वैसी समस्याओं से 'संघों के इतिहास का' कोई अनुभव नहीं था । आधुनिक भारत के निर्माताओं का स्पष्ट मानना था कि इन समस्याओं को सिद्धान्त के सहारे हल नहीं किया जा सकता था क्योंकि संघवाद की कोई 'निश्चित अवधारणा' नहीं थी और न उसका कोई एक 'स्थिर अर्थ' था। इसलिए सभा के सदस्यों ने अमेरिका, कनाडा, स्विट्जरलैण्ड तथा ऑस्ट्रेलिया जैसे संघीय देशों के अनुभव का लाभ उठाते हुए संघवाद के सूत्रों को यहाँ-वहाँ से ग्रहण करने की एक ऐसी नीति अपनाई जो इस आकलन पर टिकी थी कि उनके लिए क्या चीज उपयुक्त, अनुकूल और राष्ट्र के मानस की दृष्टि से सर्वाधिक उचित होगी। अतः संविधान निर्माताओं ने संघीय व्यवस्था को दो कारणों से अपनाया; देश का वृहद आकार एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता।

वैसे संविधान में कहीं भी 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके स्थान पर संविधान का अनुच्छेद 1 भारत को 'राज्यों के संघ' के रूप में परिभाषित करता है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, 'राज्यों के संघ' से दो बातें उभरकर सामने आती हैं- (i) अमेरिकी संघ के विपरीत, भारतीय संघ राज्यों के बीच सहमति का प्रतिफल नहीं है तथा (ii) राज्यों को यह अधिकार नहीं है कि वे स्वयं को संघ से पृथक् कर सकें। फेडरशेन संघ है क्योंकि वह अविभाज्य है। पॉल एप्पलबी कहते हैं-"यह पूरी तरह संघीय है।" मोरिस जॉन्स इसे "सहमति वाला संघ' कहते हैं। वहीं आइवर जेनिंग्स कहते हैं कि "यह मजबूत केंद्र वाला संघ है।" के सी व्हीहर के अनुसार "भारत मुख्यतः एकात्मक राज्य है जिसमें संघीय विशेषताएं नाममात्र की हैं। भारत का संविधान संघीय कम है और एकात्मक अधिक है।" एलेक्जेण्ड्रोविच के अनुसार, "भारत एक सच्चा संघ है तथापि अन्य संघों की भांति इसकी अपनी कुछ निराली विशेषताएं हैं, भारत को अर्द्ध-संघात्मक कहना मिथ्या है"। नारमन डी. पामर के अनुसार, "भारतीय गणतन्त्र एक संघ है तथा उसकी अपनी विशेषताएं हैं जिन्होंने संघीय स्वरूप को अपने ढंग से ढाला है"। डॉ. सुभाष काश्यप का विचार है कि "संविधान दोहरे शासनतन्त्र की स्थापना करता है। सरकारों की दो श्रेणियां हैं-संघ की सरकार और अवयवी राज्यों की सरकारे संविधान ने संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का वितरण किया है....संघवाद के इन बहिरंग लक्षणों के बावजूद भारतीय संविधान का प्रधान स्वर एकात्मकता का है।" ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार संविधान सभा को भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संघवाद का एक नवीन संस्करण तैयार करने का श्रेय दिया जा सकता हैं"। राजेन्द्र प्रसाद कहते हैं कि "व्यक्तिगत रूप से मैं इस बात को कोई महत्व नहीं देता कि इसे आप 'संघीय संविधान' या 'एकात्मक संविधान' अथवा अन्य नाम से पुकारते हैं । अगर संविधान हमारे उद्देश्यों को पूरा करता रहे तो 'नाम' से कोई फर्क़ नहीं पड़ने वाला है ।"

ग्रेनविल ऑस्टिन ने सर्वप्रथम उस सांदर्भिक स्थिति का विश्लेषण किया हैं कि सभा के पीछे ऐसी कौन सी ऐसी शक्तियाँ काम कर रही थी, जिसके प्रभावस्वरूप सभा ने एक केन्द्रवादी दिशा में 'सहकारी संघवाद' का रूख किया उनके अनुसार भारत के विशाल क्षेत्रफल और उसकी जनसंख्या के वैविध्य तथा विविधता को देखते हुए; यहाँ एकीकृत

शासन प्रणाली कारगर नहीं हो सकती हैं इसलिए यहाँ केन्द्रीय सत्ता इतनी मजबूत होनी चाहिए कि वह अपनी प्रशासनिक संरचना को विखंडित होने से रोक सके। भारत दूसरे दशक से लेकर विभाजन के समय तक 'सांप्रदायिक समस्या' से जूझता रहा; ऐसे समय में जिम्मेदार नेतृत्व विभाजनकारी शक्तियों को कोई अवसर नहीं देना चाहते थे, जैसा कि अंबेडकर कहते भी हैं कि "प्रस्तावित संविधान एकल नागरिकता पर आधारित एक दोहरा राजनीतिक तंत्र हैं, पूरे भारत की नागरिकता सिर्फ एक है....इसमें राज्य की नागरिकता जैसी कोई चीज नहीं हैं"। 'रियासतों की समस्या' भी कुछ ऐसी ही थी, वहाँ कुछ एक-दो रियासतों में ही आधुनिक सरकार या प्रशासन जैसी कोई कारगर व्यवस्था काम कर रही थी। के.एम. पणिक्कर का मानना था कि ऐसे हालात में संघीय बनाम प्रान्तीय शक्तियों की बात करना एक 'मृत मुद्दा' था। संविधान का बुनियादी सिद्धान्त 'एकात्मक' होना चाहिए।

भाषाई प्रान्तों का मुद्दा और संविधान -

बी.एन. राव ने लिखा था कि "भारत के नये संविधान की रचना करते समय भाषाई प्रान्तों तथा इसी प्रकार की अन्य माँगो को पूरा करना सबसे जटिल समस्या सिद्ध होगी।" ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार राव की यह बात इस अर्थ में पूरी तरह सही थी कि संविधान सभा को अपने तीन वर्ष के कार्यकाल में इस तरह की माँगो से लगातार जूझना पड़ा था। लेकिन सभा ने जबर्दस्त दबावों के बावजूद इस प्रश्न का कोई हल निकालने का प्रयास नहीं किया। सभा के ऊपर प्रान्तों के भाषाई और सांस्कृतिक पुनर्गठन का भी दबाव था। पुनर्गठन की यह माँग संविधान के कथ्य को सिर्फ एक ही अर्थ में प्रभावित करती थी और वह यह था कि इससे संविधान में तीसरे अनुच्छेद को शामिल करने का रास्ता निश्चित हो जाता था। भारतीय संविधान के तीसरे अनुच्छेद के अनुसार "संसद दो राज्यों को आपस में मिला कर या किसी राज्य के भूभाग को पृथक करके नये राज्य का निर्माण कर सकती है; किसी भी राज्य का क्षेत्र बढ़ा या घटा सकती है तथा उसकी सीमाओं और नाम में परिवर्तन कर सकती है। संसद में इस आशय का विधेयक राष्ट्रपति की अनुशंसा-सम्बन्धित राज्य/राज्यों की विधायिका/विधायिकाओं का मत जानने के बाद ही प्रस्तुत किया जा सकता है।" इस तरह देखें तो संसद संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया का सहारा लिए बगैर ही भारत का मानचित्र बदल सकती है।

ग्रेनविल ऑस्टिन बताते हैं कि अनुच्छेद 3 को लेकर संविधान सभा में हुई बहस से यह प्रतीत होता है कि मसौदा समिति के सदस्य तथा कांग्रेस का नेतृत्व एक ओर भाषाई राज्यों की समस्या का हल संघीय ढाँचे में ढूँढ़ रहे थे और दूसरी ओर अल्पसंख्यकों के हितों को सुरक्षित रखने के उपाय भी खोज रहे थे हालाँकि शीर्ष नेतृत्व इस भाषाई पुनर्वितरण के विरोध में था। अगर अम्बेडकर की बात मानें तो मसौदा समिति ने बी एन राव का संस्करण इसलिए स्वीकार किया ताकि प्रान्तीय विधायिकाओं में विरोधी मत के कारण अल्पसंख्यकों की आवाज अनसुनी न कर दी जाये। भाषाई प्रान्तों के निर्माण के सम्बन्ध में नेहरू और पटेल का रुख पहले से ही सख्त था। सन् 1948 में नागपुर के एक कार्यक्रम में जनता को सम्बोधित करते हुए पटेल ने कहा था कि भाषाई पृथकतावाद, राष्ट्रीय अखण्डता और एकता के लिए ख़तरा पैदा करता है। नेहरू का कहना था कि सभा को इस समस्या का हल एक ऐसे समय में ढूँढ़ने का प्रयास नहीं करना चाहिए 'जब लोगों की भावनाएँ उफान पर हों' बल्कि उसे 'इसके लिए सही समय का इन्तजार करना चाहिए'। लेकिन इस बात का कोई ठोस सबूत नहीं मिलता कि इस कारण वे एक मज़बूत केन्द्र का समर्थन करने लगे थे। संविधान सभा में भाषाई प्रान्तों के समर्थकों की संख्या अच्छी-खासी थी लेकिन वे स्वयं को पृथकतावादी या 'विखण्डनवादी प्रवृत्तियों' का वाहक नहीं समझते थे। उनके अनुसार वे 'देश में एक रचनात्मक एकता' चाहते थे और

उनके मन में 'पूरे भारत का कल्याण ही सर्वोपरि' था। वही राजेन्द्र प्रसाद का कहना था कि 'हमें किसी क्षेत्र, समूह या समुदाय विशेष के बजाय एक भारतीय की तरह सोचना और काम करना चाहिए' जनवरी 1950 में जब संविधान का विधिवत् लोकार्पण हुआ तो सभा भाषाई प्रान्तों का मुद्दा संविधान से बाहर निकाल कर इस बोझ से मुक्त हो गयी। गेनविल ऑस्टिन भी बताते हैं हालाँकि इस बात का आकलन करना लगभग असम्भव है कि भाषाई प्रान्तों के प्रश्न का संविधान पर क्या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था। हालाँकि इस बात के ज्यादा उदाहरण तो नहीं मिलते परन्तु यह क़यास लगाया जा सकता है कि केन्द्र में एक ज्यादा शक्तिशाली सरकार की बात को पृथकतावादी शक्तियों के डर से बल मिला था। अगर हम तीसरे अनुच्छेद के बहस को छोड़ दे, तो संविधान की रचना पर भाषाई प्रान्तों के मुद्दे का एक अस्पष्ट ही प्रभाव पड़ा था, संविधान सभा में यह मुद्दा अक्सर उठता रहता था जो कांग्रेस की पिछले तीन दशकों से चली आ रही नीति का परिणाम ही था। आख़िर सभा के सदस्य एक ऐसे संविधान की रचना क्यों करना चाहते थे जो देश को खुद उन्हीं से सुरक्षित रख सके? क्या वास्तव में संविधान, भाषाई प्रान्तों के निर्माण से उभरे दुष्प्रभावों से देश की एकता को अक्षुण्ण रख सकता था? यह आशा सन्देहास्पद जान पड़ती थी। हालाँकि भाषावाद की बढ़ती प्रवृत्ति देश की एकता के लिए अब भी ख़तरा बन सकती है परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भाषाई राज्यों के निर्माण तथा भाषाई-उपराष्ट्रवाद के उभार से राज्यों और संघ के संवैधानिक सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं आया है। नई दिल्ली के साथ तमिल भाषी मद्रास तथा तेलुगु भाषी आन्ध्र के संवैधानिक सम्बन्ध 1953 से पहले के अविभाजित मद्रास जैसे ही हैं। के. एम. पणिक्कर लिखते हैं कि उप राष्ट्रीयता की यह भावना 'केन्द्र के अतिक्रमण के विरुद्ध काम कर सकती है' लेकिन यह आशंका सच नहीं हुई। 'एक सीमा तक मद्रास राज्य का अपवाद छोड़ कर, क्षेत्रीयता की भावना केन्द्र के विरुद्ध संगठित न होकर अन्य क्षेत्रों से होड़ के रूप में ज्यादा प्रकट हुई हैं, केंद्र के संरक्षण और आकांक्षी सभी बनाना चाहते हैं।

भाषावर प्रान्त पुनर्गठन तथा 'एक राज्य, एक भाषा' के विचार पर डॉ भीमराव अम्बेडकर की दृष्टि

भाषा के आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन के सवाल से न केवल दलीय पूर्वाग्रहों और दलीय हितों से उत्पन्न अनेक प्रकार के वाद-विवाद उभर कर सामने आए हैं वरन् भाषावार प्रांतों के गठन की उपयोगिता के बारे में भी मतभेद दिखाई देता है। डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि "भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन की मांग का प्रयोजन क्या हैं ? इनके अनुसार जो लोग इसका समर्थन करते हैं उनकी मान्यताओं का सार यह है कि "प्रांतों की भाषाएं और संस्कृतियां अलग-अलग होती है इसलिए उन्हें इस बात की खुली छूट होनी चाहिए कि वे अपनी-अपनी भाषाओं और संस्कृतियों का विकास कर सकें।" अर्थात प्रत्येक प्रांत में अपनी विशिष्ट राष्ट्रीयता के सभी तत्व विद्यमान होते हैं और उन प्रांतों को इस बात की पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए, जिससे वे अपने-अपने राष्ट्रत्व का पूर्णतः विकास कर सकें। यदि भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्गठन होगा तो क्या कठिनाइयाँ होगी ? डॉ अम्बेडकर दो कठिनाइयों का जिक्र करते हैं 1) भाषावार प्रांतों के निर्माण के परिणामस्वरूप उतने ही राष्ट्र बन जाएंगे जितने ऐसे वर्ग होंगे, केंद्रीय कार्यपालिका ऐसा समागम मात्र हो जाएगा, जिसमें अनेक अलग-अलग राष्ट्र, संस्कृति एवं अपने अलग हित होंगे। उनमें राजनीतिक अवमानना, अर्थात् बहुमत के निर्णय की अवज्ञा करने की प्रवृत्ति जैसी भावनाएं भी उभर सकती हैं। 2) भाषावार प्रांतों का निर्माण केंद्र सरकार और प्रांतीय सरकारों के बीच आवश्यक प्रशासनिक संबंधों के निर्वाह के लिए घातक सिद्ध होगा। यदि हर प्रांत अपनी-अपनी भाषा को राजभाषा बना ले तो केंद्र सरकार को उनसे उतनी ही भाषाओं में पत्र-व्यवहार करना

पड़ेगा, जितनी भाषावार प्रांतों की संख्या होगी। भाषावार प्रांतों के गठन से सरकारी कामकाज में किस तरह का भयानक गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा।

यदि भाषा के आधार पर प्रांत के पुनर्गठन में कठिनाई प्रतीत होती हैं तो इस मुद्दे का संभावित हल क्या होगा ? डॉ अम्बेडकर के अनुसार भाषावार प्रांतों के पुनर्गठन के सिद्धांत को स्वीकार कर लेने के बाद भी ऐसी व्यवस्था करनी होगी, ताकि भारत की एकता खंडित न होने पाए। इसलिए इस समस्या के समाधान हेतु मेरा सुझाव है कि "भाषा के आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन की मांग को स्वीकार कर लेने पर भी ऐसी संवैधानिक व्यवस्था हो कि केंद्र सरकार की जो राजभाषा हो, वहीं भाषा सभी प्रांतों की भी राजभाषा मानी जाए केवल इसी आधार पर मैं भाषावार प्रांतों की मांग को मानने के लिए तत्पर हूं"। डॉ आंबेडकर आगे कहते हैं कि मैं इस तथ्य को जानता और मानता हूं कि मेरा यह सुझाव भाषावार प्रांतों की प्रचलित अवधारणा के प्रतिकूल जाता है। आज की मान्य अवधारणा यह है कि प्रांतीय भाषा ही उस प्रांत की राजभाषा होगी। मैं भाषावार प्रांतों के निर्माण के खिलाफ नहीं हूं। किन्तु मुझे इस बात से कड़ी आपत्ति है कि केंद्र की राजभाषा से भिन्न होने के बावजूद भी प्रांतीय भाषा को वहां की राजभाषा बनाया जाए। मेरे विचार से, भाषावार प्रांत का उस प्रांत की भाषा से कोई लेना-देना नहीं है। भाषावार प्रांतों की योजना में वहां की भाषा की भूमिका अनिवार्यतः महत्वपूर्ण है किन्तु यह भूमिका प्रांत के निर्माण तक ही सीमित रखी जा सकती है। डॉ अम्बेडकर कहते हैं कि "मेरे मतानुसार भाषावार प्रांत से तात्पर्य एक ऐसे प्रांत से है, जिसकी जनता अपनी सामाजिक संरचना में समरूपी हो। ऐसा होने पर उसकी लोकतंत्रात्मक सरकार को जिन सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति करनी चाहिए, उनके लिए वह अधिक उपयुक्त होगी"।

'एक राज्य, एक भाषा' लगभग हरेक राज्य का एक सार्वभौम लक्षण होता है। 'एक राज्य, एक भाषा' क्यों आवश्यक हैं इसके पक्ष में तथा भाषाई राज्य की समस्या और समाधान क्या हो सकते हैं इसके संदर्भ में डॉ अम्बेडकर अपने निम्न मत रखते हुए कहते हैं कि यदि राज्य में रहने वाले लोगों में भ्रातृत्व-भावना का अभाव हो तो लोकतंत्र बिना संघर्ष के चल ही नहीं सकता। नेतृत्व के लिए दो दलों में लड़ाई- झगड़े और प्रशासन में भेदभाव का व्यवहार, ये दो तत्व किसी भी मिश्रित भाषावार (द्विभाषी) में सदा बने रहते हैं और उनका लोकतंत्र के साथ निर्वाह नहीं हो सकता। तमिल, आंध्रवासियों से और आंध्रवासी तमिलों से क्यों घृणा करते हैं? हैदराबाद के आंध्रवासी महाराष्ट्रियों से और महाराष्ट्रीय आंध्रवासियों से क्यों घृणा करते हैं? इसका सीधा उत्तर है। ऐसा नहीं है कि उन दोनों में कोई स्वाभाविक वैर-भाव है। घृणा का कारण यह है कि उन्हें एक-दूसरे के साथ-साथ रख दिया गया है और वे सरकार जैसी भागीदारी के आम चक्र में भाग लेने के लिए बाध्य कर दिए गए हैं। इसके अलावा इस प्रश्न का कोई और उत्तर नहीं है। जब तक यह जोर-जबरदस्ती आमने-सामने रहने वाली स्थिति बनी रहेगी, इन दोनों में शांति स्थापित नहीं होगी। डॉ आंबेडकर कहते हैं कि एक ही भाषा बोलने वाले लोगों को कितने राज्यों में बांटा जाए, यह इन बातों पर निर्भर होगा (1) कारगर प्रशासन की अपेक्षाएं, (2) विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताएं (3) विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की भावनाएं, और (4) बहुमत तथा अल्पमत के लोगों का अनुपात। ज्यों-ज्यों राज्य का क्षेत्रफल बढ़ता है, अल्पसंख्यकों का बहुसंख्यकों के साथ अनुपात घटता जाता है और अल्पसंख्यकों की स्थिति नाजुक हो जाती है तथा बहुसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करने के अवसर कई गुना बढ़ जाते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि राज्यों का आकार छोटा हो। बहुसंख्यकों के अत्याचार को रोकने के लिए अल्पसंख्यकों को संरक्षण दिया जाना चाहिए। ऐसा करने के लिए संविधान में संशोधन

किया जाना चाहिए और बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्र (दो या तीन) पर आधारित पद्धति के लिए, जिसमें संचित मतदान की व्यवस्था हो, प्रावधान किए जाने चाहिए। अतः डॉ अम्बेडकर लोकतंत्र को बनाएं रखने तथा उसका मार्ग प्रशस्त करने के लिए तथा जातीय तथा सांस्कृतिक तनाव को दूर करने के लक्ष्य से भाषावर राज्यों का समर्थन करते हैं।

राज्य की परिवर्तनीय प्रकृति : सहयोग और प्रतिस्पर्धी संघवाद की ओर

सजल ना कहती हैं कि समय के साथ, राज्य निर्माण की प्रक्रिया में परिवर्तन आया और राज्य निर्माण के प्रतिमान बदल गए। भाषाई आधार पर राज्य निर्माण के साथ ही सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम करने की आवश्यकता पर भी बल दिया जाने लगा। अब नए राज्यों के निर्माण से राजनीति में भी महत्वपूर्ण बदलाव आए। क्षेत्रीय दलों और आंदोलनों ने नए राज्यों की मांग को उठाया और इसमें सफलता भी पाई। इस प्रक्रिया में सांस्कृतिक पहचान और क्षेत्रीय स्वायत्तता को भी बल मिला। नए राज्यों के गठन के बाद प्रशासनिक ढांचे का निर्माण, संसाधनों का न्यायसंगत वितरण और आर्थिक विकास की दिशा में नई योजनाओं की आवश्यकता पड़ी। वही आशुतोष कुमार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से नए राज्यों की मांग के कारणों और प्रभावों का विश्लेषण करते है उन्होंने नए राज्यों का निर्माण में क्षेत्रीय विकास, सांस्कृतिक पहचान की सुरक्षा और राजनीतिक स्वायत्तता जैसे महत्वपूर्ण कारकों की पहचान की हैं।

टी विजयेंद्र अपने लेख 'द लोजिक ऑफ़ स्माल स्टेट' में बताते हैं कि छोटे राज्यों का निर्माण राजनीतिक रूप से अधिक लाभकारी हो सकता है क्योंकि इससे प्रशासनिक दक्षता बढ़ती है। छोटे राज्यों में सरकार लोगों के करीब होती है, जिससे स्थानीय समस्याओं को तेजी से और अधिक प्रभावी ढंग से सुलझाया जा सकता है। इसके अलावा, छोटे राज्यों में स्थानीय नेताओं का प्रतिनिधित्व बढ़ता है और उनकी आवाज़ अधिक सुनाई देती है। हालांकि, छोटे राज्यों के गठन के साथ वित्तीय संसाधनों की कमी, प्रशासनिक कुशलता की आवश्यकता, और सीमावर्ती विवाद जैसी कई चुनौतियाँ भी आती हैं। विजयेंद्र के अनुसार, छोटे राज्यों का गठन भारतीय संघीय ढांचे को अधिक लचीला और प्रभावी बना सकता है। सजल नाग कहती हैं कि भारतीय संघीय प्रणाली में छोटे राज्यों का गठन से उनकी राजनीतिक स्वायत्तता सुनिश्चित की जा सकती है। छोटे राज्यों का गठन कई बार जातीय अल्पसंख्यकों को अधिक राजनीतिक स्वायत्तता और सुरक्षा प्रदान करता है। केंद्र-राज्य संबंधों के इर्द-गिर्द चल रहे विमर्श में, समकालीन विद्वानों ने भारत की नीति व्यवस्था के भीतर मूलभूत बदलावों को रेखांकित करने का प्रयास किया है। रोबर्ट जेनकिंस का कहना है कि संघीयकरण की इस प्रक्रिया ने राज्य स्तर पर विरोध को स्थानांतरित करके भारत की सुधार प्रक्रिया की राजनैतिक स्थिरता में योगदान दिया है। लॉरेंस सैज का मानना है कि 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण नीतियों की शुरुआत के बाद संघीय संबंधों में अंतर-सरकारी सहयोग से लेकर राज्यों के बीच अंतर-क्षेत्राधिकार सम्बन्धों तक में तेजी से बदलाव हुआ। इसी समकालीन बहस में लुइस टिलिन ने 2000 में छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड जैसे नए राज्यों के निर्माण पर विस्तार से चर्चा की है तथा नए राज्यों के निर्माण के पीछे के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारकों की जांच की है साथ ही आर्थिक विकास और संसाधनों के प्रबंधन के दृष्टिकोण से नए राज्यों के निर्माण के प्रभावों का विश्लेषण करते हुए नये राज्यों पर आर्थिक विकास की गति, क्षेत्रीय संतुलन और संसाधनों की न्यायसंगत वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों को भी बताया है। हाल ही में, भील जनजाति ने एक स्वतंत्र आदिवासी राज्य यानी भील प्रदेश की मांग की, जिसमें राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र के कुछ हिस्से शामिल हों। देखा

जाये तो छोटे राज्य शासन और सेवा वितरण में नवाचारों के साथ अधिक आसानी से प्रयोग कर सकते हैं, जिन्हें सफल पाए जाने पर सभी राज्यों में दोहराया जा सकता है। उदाहरण के लिए, सिक्किम में जैविक खेती की सफलता के बाद, केरल सरकार ने राज्य को जैविक खेती केंद्र में बदलने के लिए एक जैविक खेती मिशन (2023 में) बनाया है। वही उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश और गोवा जैसे छोटे राज्य उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि जैसे बड़े राज्यों की तुलना में अधिक व्यापार करते हैं। इसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असमानताएं कम हो सकती हैं उत्तराखंड में बहुआयामी गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या 2015-16 और 2019-21 के बीच 17.67% से घटकर 9.67% हो गई है।

अब यह एक ऐसा समय हैं जहाँ भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण की मांग पूर्णत: शिथिल हो गयी और अब समय के साथ अपने विकास की भागीदारी में सहयोग करने के लिए 'विकास के आधार पर' मांग होने लगी जो वैश्वीकरण का ही एक परिणाम हैं, जहाँ राज्यों को प्रत्यक्ष भागीदारी कर अपने विकास को सुनिश्चित करना हैं। अब समय हैं एक ऐसे संघवाद की ओर बढ़ना जहाँ राज्यों के विकास के समान तथा नये अवसर उपलब्ध हों। 15 अगस्त 2022 को प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने अपने संबोधन में भी कहा हैं कि "अब देश में ऐसे 'सहकारी प्रतिस्पर्धी संघवाद' की जरूरत है जहां राज्य एक दूसरे के साथ विकास को लेकर प्रतिस्पर्धा करें।" उन्होंने कहा कि "राज्य अगर कंधे से कंधा मिलाकर चलेंगे तो सपनों को साकार किया जा सकेगा।" प्रधानमंत्री ने संघवाद का हवाला देते हुए कहा, "कार्यक्रम भिन्न हो सकते हैं, कार्यशैली भिन्न हो सकती है, लेकिन देश के सपने अलग नहीं हो सकते.... विकास की नयी ऊंचाइयाँ हासिल करने के लिए राज्यों और सरकार की विभिन्न इकाइयों के बीच प्रतिस्पर्धा की जरूरत है।" यह वही मौका था जब भारत आजादी के 75 वर्ष पूर्ण किये थे, अब उसे विकसित भारत के लिए में 25 वर्षों की रूपरेखा तय करनी थी। लंबे समय तक केंद्र और राज्यों के बीच बड़े भाई जैसा संबंध देखा गया था तथा 'सभी के लिए एक ही सांचे' का इस्तेमाल वर्षों तक किया गया। विभिन्न राज्यों की विविधता और उनकी स्थानीय जरूरतों को ध्यान में नहीं रखा गया। वही नरेंद्र मोदी ने राज्यों को और अधिक मजबूती और शक्ति देने के लिए 1 जनवरी 2015 को नीति आयोग का गठन किया नीति आयोग का गठन सहकारी संघवाद के महत्वपूर्ण लक्ष्य को साकार करने और भारत में सुशासन को सक्षम बनाने के लिए है। जिसने एक महत्वपूर्ण विकासमूलक कदम के तहत केंद्र से राज्यों की ओर एकतरफा प्रवाह की नीति को बदल दिया और इसकी जगह राज्यों के साथ एक वास्तवित और सतत भागीदारी ने ले ली। नीति आयोग सरकार के लिए रणनीतिक नीतिगत विजन मुहैया कराने के साथ ही आकस्मिक मुद्दों के समाधान के लिए तेजी से काम कर रहा हैं। ये सतत रूप से राज्यों के साथ संरचनात्मक समर्थन और कार्यप्रणाली के साथ सहयोगात्मक संघवाद को बढ़ावा भी दे रहा। ये मानता है कि मजबूत राज्य ही मजबूत राष्ट्र का निर्माण करते हैं। ये गांव स्तर पर विश्वसनीय योजनाएं बनाने की प्रणाली को विकसित करने का काम कर रहा है। अब नीति आयोग अपने सूचकांक दृष्टिकोण जैसे स्कूल शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक, सतत विकास लक्ष्य सूचकांक, राज्य स्वास्थ्य सूचकांक, भारत नवाचार सूचकांक, समग्र जल प्रबंधन सूचकांक जैसे क्षेत्र-विशिष्ट सूचकांक पेश कर रहा हैं जिससे राज्यों के बीच रचनात्मक प्रतिस्पर्धा का एक नया युग शुरू हुआ हैं। इसके अतिरिक्त नीति आयोग नियमित रूप से आकांक्षी जिलों के प्रदर्शन पर रैंकिंग को प्रकाशित करता है, जो 2018 में देश भर के सबसे अविकसित 112 जिलों को तेजी से और प्रभावी रूप से पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से एक कार्यक्रम शुरू किया गया था जो सहयोग और स्वस्थ प्रतिस्पर्धी संघवाद को सुनिश्चत कर रहा है।

भारतीय संविधान एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसमें सार्वभौम सिद्धांतों और मानवतावादी भावनायें हैं, संविधान में विन्यस्त यह आदर्शवाद मुख्यतः स्वतंत्रता-संघर्ष के सामाजिक रूझान से उपजा भारत के लोगों की शोचनीय स्थिति से उत्पन्न चेतना का परिणाम हैं। संविधान अपनी आधिकारिक शुरुआत से लेकर आज तक अपने मजबूत संकल्पों को लेकर चला है इसने सभा की संकल्पना और विश्वास को सही सिद्ध किया है। यह ठीक है कि इस बीच लोकतन्त्र पूरी तरह अक्षुण्ण नहीं रहा और लोकतन्त्र की यह बाजी आख़िरी साबित नहीं हुई क्योंकि सामाजिक क्रान्ति लगभग अपनी धीमी गति से चलती रही, भारत के संविधान के सम्बन्ध में पर्सीवल स्पीयर का यह निर्णय सही सिद्ध हुआ है कि संविधान 'कुल मिला कर अत्यन्त सफल है। 'एक राज्य, एक भाषा' लगभग हरेक राज्य का एक सार्वभौम लक्षण होता है। भारत में भाषा ने एक क्षेत्रवाद के माध्यम से अपनी आवाज को रखा जिसके फलस्वरूप अनेक भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण हुआ सुधा पाई भी बताती हैं कि आज राज्यों को बहुत अधिक स्वायत्तता प्राप्त है। क्षेत्रीय दलों के उदय के साथ वे अब केंद्रीय शासन में भागीदार बन गए हैं और उदारीकरण के बाद उन्हें अधिक वित्तीय स्वतंत्रता प्राप्त हुई है। राज्य दलीय व्यवस्थाओं की स्थापित रूपरेखा को बदलकर नई सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान और समूहों ने अपनी पहचान बनाई है, जिससे प्रत्येक राष्ट्रीय चुनाव में नए राजनीतिक गठबंधन बनते हैं और राज्य भाषा क्षेत्रवाद को छोड़कर विकास और राज्य के हितों की तरफ बढकर केंद्र के साथ बात-चीत करते हैं। कोविड ने भी केंद्र और राज्यों को सबक दिया है कि राष्ट्रीय आपात स्थितियों से निपटने के लिए अकेले व्यक्तिगत प्रयास अपर्याप्त हैं। यह भारतीय संघवाद के भीतर सहकारी भावना को सुदृढ़ और पुनर्जीवित करने की निरंतर आवश्यकता को बताता है। साथ ही, प्रतिस्पर्धी और सहयोगात्मक संघवाद की भावना को बढ़ावा देने के लिए राज्यों को नवाचार करने और आवश्यक लचीलापन बनाने के लिए प्रेरित करना होगा है जो प्रतिस्पर्धा और सहयोग के बीच सामंजस्य बनाकर भारत को 2047 तक एक विकसित भारत बनाने की दिशा में उसकी आगे बढ़ने की क्षमता में एक अभूतपूर्व अभिवृद्धि करेगा।

संदर्भ सूची

1. कुमार,के. (2011) *रिथिन्किंग स्टेट पोलिटिक्स इन इंडिया रीजन्स विदिन रिजन्स* नई दिल्ली: रूटलेज पृ 1-5
2. पाई,एस. (2013) *हैण्डबुक पॉलिटिक्स ऑफ़ इन्डियन स्टेट* नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृ-10
3. ऑस्टिन, ग्रे. (2017) *भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन पृ 3-4
4. वही
5. संविधान सभा वाद- विवाद पाँचवाँ खंड 1,पृ 38; एन जी आयंगर
6. संविधान सभा वाद- विवाद ग्यारहवां खण्ड 11, पृ 950 टी टी कृष्णामचारी
7. संविधान सभा वाद- विवाद ग्यारहवां खण्ड 5,पृ 654 एल के मैत्र
8. संविधान सभा वाद- विवाद ग्यारहवां खण्ड 7 पृ 43

9. एप्पलबी, पी. (1953) *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया : रिपोर्ट ऑफ़ सर्वे,* नई दिल्ली: केबिनेट सेक्रेटेरिएट ऑर्गेनाइजेशन एंड मेथड डिवीजन भारत सरकार पृ 51
10. जोन्स,मो. (1960) द *गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया*, लंदन : हचिंसन यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी , पृ – 149
11. जेनिंग्स, आइ.(1953). *सम करैस्टेटिस्टिक ऑफ द इंडियन कांस्टीट्यूशन*, कलकत्ता: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ-1
12. व्हीयर, के. सी. (1964) फेडरडल *गवर्नमेंट,* न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृ 6
13. एलेक्ड्रन्विच सी.यच.(1954) इज इंडिया फेडरेशन? द *इंटरनेशनल कम्पेरेटिव लॉ* क्वार्टरली 3(3), 393–403. http://www.jstor.org/stable/755482
14. पाल्मर, एन. (1961). द *इन्डियन पोलिटिकल सिस्टम* हौन्तन मिफ्लिन पृ 94
15. कश्यप.सु. (2022) *भारत का संविधान:संक्षिप्त परिचय* नई दिल्ली- राजकमल प्रकाशन पृ 76-77
16. ऑस्टिन, ग्रे. (2017) *भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला* नई दिल्ली- वाणी प्रकाशन पृ 6-12
17. वही पृ 280-287
18. ग्रेनविल ऑस्टिन द्वारा उधृत संविधान सभा वाद- विवाद पाँचवाँ खंड 7,पृ 34
19. ग्रेनविल ऑस्टिन द्वारा उधृत राव, कॉन्स्टिट्यूशन प्रेसिडेंट्स, फर्स्ट सीरीज पृ 17
20. ऑस्टिन, ग्रे. (2017) *भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला* नई दिल्ली- वाणी प्रकाशन पृ 348
21. विवरण के लिए भारतीय संविधान का अनुच्छेद 3 देखें
22. देखें संविधान सभा वाद- विवाद खंड 7 पृ 439
23. द हिंदुस्तान टाइम्स, 5 नंबवर,1948
24. संविधान सभा वाद- विवाद छठा खंड,4, 320-21
25. ऑस्टिन, ग्रे. (2017) *भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला* नई दिल्ली- वाणी प्रकाशन पृ 351
26. कलकता की मारवाड़ी ऐसोसिएशन के बी पी पोद्दार के नाम प्रसाद का पत्र,8 अप्रैल 1948; प्रसाद पेपर्स, फाइल 1-पी/48
27. ऑस्टिन, ग्रे. (2017) *भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला* नई दिल्ली- वाणी प्रकाशन पृ 352
28. पनिक्कर,के.एम. (2019) फाउंडेशन ऑफ़ न्यू इण्डिया, नई दिल्ली-आकार प्रकाशन पृ 242
29. बाबा साहेव डॉ भीमराव अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्मय भाग 1 पृ 115-116
30. वही
31. बाबा साहेव डॉ भीमराव अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्मय भाग 1 पृ 118-120
32. वही
33. वही
34. वही
35. बाबा साहेव डॉ भीमराव अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्मय भाग 1 पृ. 164

36. बाबा साहेब डॉ भीमराव अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्मय भाग 1 पृ. 166
37. नाग, स. (2011). लिंग्विस्टिक प्रोविंस टू होमलैंड्स शिफ्टिंग पैराडाइम स्टेट मेकिंग इन पोस्ट कॉलोनियल इंडिया
38. आशा सारंगी और सुधा पाई (संपादक), *इंटरोगेटिंग रीऑर्गनाइजेशन ऑफ स्टेट्स: कल्चर, आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया* नई दिल्ली- रूटलेज पृ 120-140
39. कुमार, ए. (2010). एक्सप्लोरिंग द डिमांड फॉर न्यू स्टेट, *इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली*, 45(33), 15–18.
40. विजयेंद्र, टी. (2013). द लोजिक ऑफ़ स्माल स्टेट. *फ्रंटियर वीकली*, Vol. 46, No. 11,
41. नाग, स. (2013). स्मॉल स्टेट इन लार्ज डेमोक्रेसी एथेनिक मिनोरटी इन ए मिजोटेरियन इंडियन पालिटी. सुधा पाई (संपादक), *हैंडबुक ऑफ पॉलिटिक्स इन इंडियन स्टेट्स: रीजन, पार्टीज, एंड इकोनॉमिक रिफॉर्म्स*, नई दिल्ली- ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृ 150-165
42. रोबर्ट जेनकिंस (1995) थ्योराइजिंग पॉलिटिक्स ऑफ़ इकोनॉमिक एडजस्टमेंट लेसन फ्रॉम थे इंडियन केस द *जनरल ऑफ़ कॉमनवेल्थ एंड कंपैरेटिव पॉलिटिक्स* , Vol. 33, No. 1, pp. 1–24
43. लॉरेंस सै. (2002) *फेडरेलिज्म विदाउट ए सेंटर द इंपैक्ट ऑफ़ पोलिटिकल एंड इकोनामिक रिफॉर्म ऑन इंडियाज फेडरल सिस्टम* न्यू दिल्ली- सेज
44. टिलिन, लु.(2013) *रेमैपिंग इंडिया न्यू स्टेट एंड दियर पोलिटिकल ओरिजिन* नई दिल्ली-ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
45. फरवरी 2016 स्मालर स्टेट ट्रेड मोर द *हिन्दू* पुनर्प्राप्ति 25 नवम्बर 2024 https://www.thehindu.com/business/Smaller-States-trade-more/article17124479.ece तथा देखे आर्थिक समीक्षा सर्वेक्षण 2016-17
46. विस्तार से देखे बहुआयामी गरीबी सूचकांक 2023, नीति आयोग https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1940126
47. देखें प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी का भाषण 15 अगस्त 2022 https://pib.gov.in/amritmahotsav/allspeeches.aspx
48. वही
49. देखें नीति आयोग https://www.niti.gov.in/cooperative-federalism
50. विस्तार से देखे नीति आयोग सूचकांक https://www.niti.gov.in/social-sector-indices
51. पाई, सु. (2013) *हैण्डबुक पॉलिटिक्स ऑफ़ इन्डियन स्टेट* नई दिल्ली- ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

30

भारतीय संघवाद के मुद्दे एवं चुनौतियाँ: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मो. रेयाज अहमद
सहायक आचार्य, लोक प्रशासन संस्थान, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सामान्यतः, 'संघवाद' शब्द का अर्थ समकालीन आधुनिक राष्ट्र-राज्य व्यवस्था में सरकार के दो या अधिक स्तरों के बीच सत्ता वितरण की एक संवैधानिक व्यवस्था से होता है। यह लिखित संविधान से भी संबंधित है और साथ ही सरकार की शक्ति और कार्यों को सटीक रूप से निर्दिष्ट करता है। भारतीय संविधान ने संघीय व्यवस्था को अपनाया है जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर केंद्रीय सरकार और राज्य स्तर पर क्षेत्रीय सरकारें मौजूद हैं। यह शासन की एक ऐसी व्यवस्था भी है जिसके अंतर्गत दोहरी राजनीति की संरचना अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में सुचारू रूप से काम करती है। संघीय व्यवस्था में सरकारों के बीच सत्ता की स्वायत्तता और सहयोग की स्वतंत्रता भी होती है। किसी भी सरकार की संघीय इकाइयाँ विभिन्न अंगों के साथ एकता और सहयोग बनाती हैं और स्वतंत्र रूप से लोगों और उसके सार्वजनिक क्षेत्र को संगठित करने में अधिक महत्व देती हैं। अर्थव्यवस्था की दृष्टि से, किसी भी सामान्य बाजार से लाभ को मान्यता देना और राजनीतिक भाषा में, व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा और संवर्धन और लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रस्तुत करना संघवाद के उद्देश्यों के लिए कुछ अद्वितीय अभ्यास हैं। भारत के 'संविधान' में इस तरह संवैधानिक व्यवस्था का संरचनात्मक और कार्यात्मक आयाम दुनिया की अन्य प्रमुख संघीय राज्य सरकारों से प्राप्त हो कर संस्थागत रूप से स्थापित किया गया है। संघवाद का यह संवैधानिक विकास मुख्य रूप से दो मान्यताओं पर आधारित है। *पहली* धारणा संघीय सरकार की भूमिका को परिभाषित करती है जबकि *दूसरी* धारणा संविधान के सहायक संघीय तंत्रों के साथ संबंध को रेखांकित करती है। पहले मामले में, यह संघीय नियोजन की अवधारणा का वर्णन करने का प्रयास करता है। इसी तरह, इसके बाद, यह बताता है कि संविधान में संघीय आयाम कैसे शामिल है जो सीधे ऐसे संविधान से प्राप्त होता है। संक्षेप में, संविधान सभा के सदस्यों ने न तो पूरी तरह से संघवाद के पश्चिमी प्रारूप का पालन किया और न ही वास्तव में संघवाद का अपना स्वयं का रूप अपनाया। लेकिन, भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संघ का एक अनूठा ब्रांड विकसित किया है। दूसरी ओर, संघवाद एक राजनीतिक प्रणाली है जिसमें राष्ट्रीय सरकार और क्षेत्रीय राज्य अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में सरकार की शक्ति को परस्पर साझा करते हैं और संवैधानिक रूप से उनके बीच वितरित होते हैं। संघवाद के मुख्य उद्देश्य न केवल एक ऐसे तंत्र को बनाए रखना है जिसमें केंद्र और राज्य सरकारों का संरचनात्मक संगठन संघीय व्यवस्था में राजनीतिक स्वतंत्रता और आर्थिक निर्भरता प्राप्त करने के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग और समन्वय करता है। यह राजनीतिक स्तर पर संघीय इकाइयों की स्वतंत्रता और राज्यों द्वारा आर्थिक निर्भरता का भी विश्लेषण करता है। संक्षेप में, संघीय संरचना के अधिवक्ताओं में से एक, ग्रैनविले ऑस्टिन ने देखा कि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने एक मजबूत केंद्रीय सरकार बनाई है जबकि राज्य को सीमित

स्वायत्तता दि है। इस तरह के एक परिप्रेक्ष्य को केसी व्हेयर ने परिभाषित किया है; एक अंग्रेजी लेखक ने अपनी अंतर्दृष्टि दी कि भारतीय संविधान "अर्ध-संघीय" है। वास्तव में, कोई भी पूरी तरह से एकात्मक और संघीय नियमों पर आधारित नहीं है। लेकिन, यह एकात्मक और संघीय दोनों विशेषताओं का एक साथ मिश्रण है। बल्कि, इसे 'अर्ध-संघीय' राज्य माना जाना चाहिए। इसे और अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो उन्होंने यह भी उद्धृत किया कि, "*भारतीय संघ एक संघीय राज्य है, जिसमें सहायक संघीय विशेषताएं हैं, न कि एक संघीय राज्य जिसमें सहायक संघीय विशेषताएं* हैं"। **"भारत, अर्थात् भारत राज्यों का संघ होगा" अनुच्छेद 1** के तहत स्पष्ट किया गया है। यह तथ्य है कि संघवाद शब्द का उल्लेख भारतीय संविधान की प्रस्तावना या किसी भी भाग में कभी नहीं किया गया था। 'राज्यों का संघ' शब्द दो अलग-अलग विचारों का वर्णन करता है। सबसे पहले, कि, भारतीय संघ इकाइयों द्वारा अनुरूपता का परिणाम नहीं है। दूसरे, कि, घटक इकाइयों को इससे अलग होने की स्वतंत्रता नहीं है। यह कथन एकात्मक सरकार या केंद्रीकृत प्राधिकरण के बजाय संघीय राजनीति को अपनाने का संकेत देता है, जहाँ सत्ता एक ही हाथ में जमा होगी न कि उनके बीच सत्ता का साझा बंटवारा होगा। यानी सामान्य स्थिति में सरकार के संघीय स्वरूप को प्राथमिकता देना लेकिन किसी भी असामान्य परिस्थितियों में एकात्मक संरचना बनना। कठिन समय के अलावा, सामान्य परिस्थिति में भी एकात्मक स्वायत्तता का सामना किया जा सकता है। ये मुख्य रूप से संघीय संसद की उच्चतम ता, संशोधन कार्यवाही की सीमित कठोरता, एकल कानून और न्यायिक प्रणाली के लागू होने और तत्पश्चात संघ और राज्यों दोनों में समान अखिल भारतीय सेवाओं के साथ न्यायपालिका के एक समान स्वरूप को अपनाने के विरोध में उत्पन्न हुए हैं।

1. **भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ:**

भारतीय संघवाद को प्रभावी बनाने के लिए भारत के संविधान ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य विशेषताओं को निर्धारित किया है। ऐसी विशेषताओं को इस प्रकार शामिल किया गया है- सबसे पहले, संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का संवैधानिक सीमांकन भारतीय संविधान की पहली संघीय विशेषता है। संविधान में उल्लेख किया गया है कि भारतीय संविधान की *सातवीं अनुसूची* में तीन सूचियाँ सूचीबद्ध हैं- संघ, राज्य और समवर्ती सूची। संघ सूची में संघ सरकार को विशेष शक्ति प्राप्त है, जबकि राज्य सूची में, राज्य सरकार को विशेष शक्ति प्राप्त है समवर्ती सूची में, संघ और राज्य सरकार दोनों को संबंधित सूची पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। संघीय व्यवस्था में दोनों सरकारें संवैधानिक प्रावधान के साथ काम करती हैं। इसके साथ ही, संघीय और राज्य राजनीति के बीच सह-अस्तित्व है, जिसमें दोनों सरकारें संविधान से अपनी शक्ति प्राप्त करती हैं और अपने-अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर अपने कार्य करती हैं। दूसरे, अमेरिका में न्यायपालिका की उच्चतम ता और ब्रिटेन में संसदीय उच्चतम ता के विपरीत, भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संवैधानिक उच्चतम ता के सिद्धांतों को अपनाया है। संविधान की उच्चतम ता की रक्षा करना न्यायालयों की जिम्मेदारी है। भारत में, संविधान को आम तौर पर देश के उच्चतम कानून के रूप में स्वीकार किया जाता है। तीसरे, भारत का एक लिखित और कठोर संविधान है जो भारतीय संविधान की एक और संघीय विशेषता है। संविधान में 394 अनुच्छेद और 12 अनुसूचित हैं। जैसा कि व्हेयर (1958) ने भारतीय संघवाद के संदर्भ में बताया है कि "यदि सरकार को संघीय होना है तो उच्चतम संविधान आवश्यक है, यदि संघीय सरकार को अच्छी तरह से काम करना है तो लिखित संविधान आवश्यक है"। जहां तक भारतीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया का

सवाल है, यह आंशिक रूप से कठोर और आंशिक रूप से लचीला है। चौथे, भारत में, उच्चतम न्यायपालिका उच्चतम न्यायालय को इस अर्थ में बहुत अधिक अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हैं कि संविधान द्वारा किए गए शक्तियों के वितरण की रक्षा न्यायपालिका द्वारा की जानी चाहिए। भारतीय संविधान ने न्यायिक शक्ति को वितरित नहीं किया। यह एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायिक संरचना प्रदान करता है यानी उच्चतम भारतीय संघवाद 'सिद्धांतों को इकट्ठा करने' के सिद्धांत पर आधारित है। यह संघ और राज्य सरकारों के बीच संबंधों को दर्शाता है जबकि वे संघीय भावना के साथ अपने कार्यों का निष्पादन करते हैं। यह एक एकल संस्था नहीं है बल्कि केंद्र और राज्यों के बीच स्वशासन और साझा शासित सिद्धांतों का संयोजन है। उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय क्रमशः एक पदानुक्रमित क्रम में हैं। न्यायपालिका संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करती है। यह संघ और संघीय इकाइयों के बीच किसी भी विवाद की स्थिती में मध्यस्थ के रूप में काम करती है। अंत में, द्विसदनीय विधायिका का अस्तित्व भारतीय संविधान की एक और संघीय विशेषता है। संघ और राज्य विधानमंडल में दो सदन हैं। संघ स्तर पर, लोकसभा निचला सदन और राज्यसभा उच्च सदन और राज्य स्तर पर विधान परिषद उच्च सदन और विधान सभा, निचला सदन क्रमशः दो सदन हैं। उपर्युक्त संवैधानिक विशेषताओं ने स्पष्ट रूप से दर्शाया कि भारत का संविधान एक ओर केंद्रीय विधायिका और दूसरी ओर राज्य विधायिकाओं के बीच शक्ति के ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज विभाजन का संयोजन प्रदान करता है। यह मूल प्रावधान भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में उल्लिखित है। इसने विधायी क्षेत्रों में सरकार की शक्ति का सीमांकन करने के लिए तीन सूचियों (संघ, राज्य और समवर्ती) को सूचीबद्ध किया। संविधान के प्रावधान के अनुसार, भारतीय संविधान के निर्माता विश्लेषण के स्तर का पता लगाने की कोशिश करते हैं कि किस हद तक केंद्र और राज्य सरकारें एक संयुक्त रुप में काम कर सकती हैं। यह तीन विधायी सूचियाँ संघीय प्रणाली को और अधिक गतिशील और व्यवस्थित बनाने के लिए जब भी आवश्यक हो, केंद्र और राज्य दोनों को अपने मद पर कानून बनाने के महत्व पर प्रकाश डालती हैं।

1. भारतीय संघवाद के लिए मुद्दे और चुनौतियाँ:

भारत में कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जिनके कारण केंद्र और राज्यों के बीच और कई मौकों पर संघर्ष और तनाव पैदा हुए हैं एंव ऐसा लगता है कि भारतीय संघवाद को केंद्र सरकार की बदलती नीतियों और संस्थाओं के संदर्भ में अपने वास्तविक कामकाज में विभिन्न समकालीन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा हैI भारत में संघीय समस्याओं के कुछ पहलू निम्नलिखित हैं:

1. संघीय इकाइयों के बीच क्षेत्रीय संवेदनशीलता का बढ़ता उभार भारत की संघीय और राष्ट्रीय भावना के लिए खतरा पैदा करता है। इसमें राजनीतिक विचारधारा की भूमिका भी शामिल है जो मुख्य रूप से विशेष क्षेत्र और उप-राष्ट्रीय इकाई के आदर्श हितों पर ध्यान केंद्रित करती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यह उस क्षेत्र का एक अच्छा पैमाना है, लेकिन भारतीय संघवाद की प्रकृति के लिए यह एक परेशान करने वाला कारक बना हुआ है।

2. भारत की संघीय सरकार में केंद्र और राज्यों के बीच सत्ता का बंटवारा हमेशा असमान आधार पर निहित होता है। इस प्रकार, संघ सरकार राज्य की तुलना में उच्चतम ता की शक्ति का आनंद लेगी। भले ही इकाइयों को उनके संबंध में सीमित प्रभाव क्षेत्र का प्रयोग किया जाता हो। उदाहरण के लिए, उनके बीच संघर्ष के मामले में, केंद्र का शासन हमेशा प्रबल होता है क्योंकि इकाइयाँ उससे निम्न निर्धारित होती हैं। इसलिए, राज्य ने अपनी स्वायत्तता की शक्ति खो दी है

और निम्नता स्थापित करने के लिए समान बंटवारे की शक्ति की मांग करना चाहता है। इसके लिए संघीय असंतुलन भारतीय संघवाद की संघीय-विरोधी प्रकृति को बढ़ाता है।

3. राज्य हमेशा केंद्र-उन्मुख होते हैं। वित्तीय मामलों में राज्य भी केंद्र पर निर्भर होते हैं। वास्तव में, संविधान में राज्य की किसी विशिष्ट वित्तीय स्वायत्तता का उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिए, संस्थागत ढांचे और दिन-प्रतिदिन के कारोबार को संचालित करने के संबंध में, राज्यों ने संघ पर व्यापक रूप से भरोसा किया है। इसके साथ ही करों और राजस्व से संबंधित मामले में राज्य केंद्र की पूर्व सहमति और मंजूरी के बिना कार्य नहीं कर सकते। इस तरह भारत में संघीय संकट पैदा हो सकता है।

4. वर्तमान में भारत संघ में 28 राज्य और 9 केंद्र शासित प्रदेश शामिल हैं। हालांकि, राज्यों की आम शिकायतें अपनी क्षेत्रीय मांगों को पूरा करने की हैं। लेकिन, जनसंख्या और राज्य के क्षेत्र के आधार पर असमान प्रतिनिधित्व के कारण केंद्र में अंतर-राज्यीय असमानता या राज्य विरोधी असमानताएं हो सकती हैं। इसके अलावा, राज्यों के प्रति केंद्र का रवैया कभी-कभी नकारात्मक होता है क्योंकि राज्यों से दलीय-राजनीति का प्रतिनिधित्व होता है। इसलिए प्रत्येक राज्य को केंद्र के सामने राज्यों का प्रतिनिधित्व करते समय विशेषाधिकार प्राप्त और वंचित दोनों का सामना करना पड़ता है।

5. संयुक्त राज्य अमेरिका में अविनाशी संघ या अविनाशी राज्य के विपरीत, अविनाशी संघ या अविनाशी राज्य भारतीय संघवाद का मुख्य आधार है। भारत में राज्य की प्रकृति में स्थायित्व नहीं है। देश की आवश्यकता के अनुसार राज्य को विभाजित करना संघ की उच्चतम शक्ति है। संघ सरकार का यह चरित्र एक ऐसा कारक है जिसके कारण भारतीय संघवाद को अपने वास्तविक कामकाज में समस्या का सामना करना पड़ता है।

2. भारतीय संघवाद के लिए समकालीन मुद्दे और चुनौतियाँ

उपर्युक्त चुनौतियों के बावजूद भारतीय संघवाद के समक्ष कुछ समकालीन मुद्दे और चुनौतियाँ हैं:-

एनआरसी-सीएए के कार्यान्वयन का मुद्दा:भारत में नागरिकता (संशोधन) अधिनियम (सीएए) और राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) के इर्द-गिर्द सबसे हालिया राजनीतिक घटनाक्रमों ने भारतीय संघवाद की कुछ सबसे उल्लेखनीय खामियों को उजागर किया है। एनआरसी-सीएए के कार्यान्वयन का मुद्दा भारतीय संघवाद की वास्तविक प्रकृति के संबंध में संघीय दुविधाओं में से एक है। भारतीय संघवाद को सबसे महत्वपूर्ण बनाने के लिए इसे "प्रतिस्पर्धी-सह-सहकारी संघवाद" के साथ काम करना होगा जो संघवाद का प्रमुख आधार है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि भारत 21वीं सदी में इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाता है क्योंकि केंद्र सरकार के साथ राज्यों की बदलती प्रकृति है। हाल ही में, भारत के चार राज्यों- केरल, पंजाब, राजस्थान और पश्चिम बंगाल में एनआरसी-सीएए के कार्यान्वयन के मुद्दे पर संघ और राज्य के बीच राजनीतिक तनाव है। ये राज्य संघ और राज्य दोनों की ओर से भारतीय संघवाद को सहकारी की तुलना में अधिक प्रतिस्पर्धी बनाते हैं। राज्यों ने नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए), 2019 के विरोध में प्रस्ताव पारित किए हैं और सीधे केंद्र से इसे वापस लेने के लिए कहा है। उसके बाद, उन्होंने एनआरसी-सीएए के कार्यान्वयन के मुद्दे के संबंध में अपना विशेष दृष्टिकोण व्यक्त करने की कोशिश की है। रॉड्रिक्स (2020) के अनुसार शुरुआत में, केरल राज्य सीएए के कार्यान्वयन के मुद्दे पर विचार करता है जिसने न केवल भारतीय राज्यों के बीच बल्कि पूरे देश में समानता, स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का उल्लंघन किया है। केरल राज्य का तर्क है कि

अगर एनआरसी-सीएए इस राज्य में लागू होता है तो यह भारत के संघीय मानदंडों और सिद्धांतों के खिलाफ होगा जो भारतीय संघवाद के लिए एक बड़ी चुनौती हो सकती है। हालाँकि, यह स्वीकार किया जा सकता है कि केरल राज्य नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2019 की संवैधानिक वैधता जानने के लिए देश भर के नागरिकों को उच्चतम न्यायालय में सामना करने के लिए बाध्य करने वाला पहला भारतीय राज्य बन गया है।

नए राज्यों की बढ़ती मांग हाल के दिनों में भारत की संघीय प्रणाली पर बातचीत बहस से भरी हुई है। जब राज्यों की मांग काफी हद तक बढ़ जाती है, तो साझा शासन और स्वशासन के बीच संघर्ष पैदा होता है। भारतीय संघवाद के विद्वानों का तर्क है कि नए और छोटे राज्यों के लिए दावे का देश में संघीय संस्थानों और उनके वर्चस्व पर प्रभाव पड़ता है। श्रीनिवास के अनुसार समकालीन भारतीय राजनीति में छोटे और नए राज्यों की मांग एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय रहा है। शासन प्रणाली में अलग राज्य की मांग एक उभरता हुआ मुद्दा रहा है जो विभिन्न क्षेत्रों, राजनीतिक समूहों और सांस्कृतिक पहचानों से उभरा है। क्षेत्रीय भावनाओं के आधार पर नए राज्यों का विकास हमेशा से भारतीय संघ के लिए एक संवेदनशील मुद्दा रहा है। नए राज्य की मांग प्रशासन के क्षेत्र में भेदभाव या उपेक्षा और क्रमिक राज्य सरकारों द्वारा विकास में असमानताओं को देखने के कारण उभरती है।

भारत जैसे देश में अंतर-क्षेत्रीय असंतुलन और राज्य की विविध मांगें अलग राज्य की मांग को जन्म देने का मुख्य केंद्र बिंदु हैं। राज्य की नई मांगों की समझ पूरी तरह से केंद्र में सत्तारूढ़ दल और राज्य स्तर पर क्षेत्रीय संगठन के राजनीतिक विचारों पर निर्भर करती है। यदि हम अनेक नए राज्य की मांगों का उदाहरण लें तो हमारे लिए भारत में नए राज्य के गठन के कारणों को जानना बहुत आसान हो जाएगा। श्रीनिवास (2016) के अनुसार, 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम की शुरुआत से ही अलग राज्य की नई मांग सामने आई। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के लिए अलग राज्य की मांग मुख्य रूप से क्षेत्र के अविकसित होने के मुद्दे पर शुरू हुई है। इसी तरह पश्चिम बंगाल के गोरखालैंड क्षेत्र (दार्जिलिंग जिले के तीन उपखंड अर्थात् दार्जिलिंग, कुर्सेओंग और कलिम्पोंग) के लिए राज्य का दर्जा देने की मांग मुख्य रूप से क्षेत्र की विशिष्ट पहाड़ी संस्कृति के मामले पर आगे बढ़ी है। क्षेत्र की विशिष्ट आदिवासी संस्कृति का मुद्दा असम राज्य में बोडोलैंड क्षेत्र के लिए अलग राज्य की मांग का मुख्य कारण है। ओडिशा राज्य के पश्चिमी भाग से चल रही एक और मांग कोशल राज्य है। पश्चिमी ओडिशा में 10 जिले हैं जो कोशाली या संबलपुरी भाषा के आधार पर अलग राज्य की मांग कर रहे हैं। इस मांग को पूरा करने के लिए लगभग 42 संगठनों ने वर्ष 2007 में गठित कोशल क्रांति दल (केकेडी) नामक एक राजनीतिक दल की मदद से आंदोलन और विरोध आंदोलन शुरू किया है। इस प्रकार, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि ये आक्रामक क्षेत्रवाद के उदाहरण हैं जो भारत के संघीय ढांचे के लिए खतरा हैं। राज्यों की ये नई मांगें न केवल क्षेत्रवाद का कारक हैं बल्कि भारत की राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया के लिए भी खतरा हैं। वास्तव में, क्षेत्रीय असंतुलन और कई क्षेत्रों के अविकसित होने के मुद्दे ही क्षेत्रीय भावना को उभारने का कारण हैं। यह देश की एकता और अखंडता के लिए अच्छा संकेतक नहीं है।

3. कोविड-19 और संघीय ढांचे पर इसका प्रभाव:

कोविड-19 महामारी के दौरान भारतीय संघवाद का एकात्मक स्वरूप सामने आया और केंद्र एवं राज्यों की शक्तियों पर चर्चा के नये दौर की शुरुआत हुई। भारतीय संविधान ने 'भारत राज्यों का संघ' का वर्णन किया है, इस अर्थ में कि यह एक संघ नहीं है और न ही राज्यों का संघ है; यह सामान्य स्थिति में संघीय होने की प्रतिक्रिया करता है

लेकिन किसी असामान्य स्थिति के आने पर एकात्मक हो जाता है। इस व्यवस्था के अनुसार संविधान की स्थापना के बाद से ही केंद्र की एकात्मक प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अब तक कोविड-19 महामारी के दौरान संघवाद की आलोचना इस आधार पर की जा सकती थी कि वह अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी शक्ति का उपयोग करे। इसका मुख्य कारण यह है कि लोगों और उनके जीवन के लिए व्यवहार्य व्यवस्था बनाने के लिए राष्ट्रीय सरकार को राज्य से परामर्श करने की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, पलायन, बेरोजगारी, सभी राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता केंद्र-राज्य और अंतर-राज्यीय धारणा के साथ कटु रूप से टकरा सकती है। इस प्रभाव के कारण, सहकारी संघवाद असहयोगी संघवाद या संघ-विरोधी संघवाद में बदल रहा है, जहाँ तक संघ और राज्य हित का सवाल है। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा इसके पश्चात् पलायन के मुद्दों को व्यापक रूप से रेखांकित किया गया है। इसके अलावा, ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए स्वास्थ्य नीतियों को भी बुरी तरह प्रभावित किया गया है। राज्य सरकारों ने यह भी तर्क दिया कि हालांकि स्वास्थ्य राज्य का विषय है, लेकिन आम लोगों के हित के लिए राज्यों और संघ की मदद समान रूप से ली जानी चाहिए। केंद्र-राज्य दोनों का समग्र इरादा प्रवासी श्रमिकों के जीवन और आजीविका की रक्षा करना है। इसलिए, ऐसी स्थिति से निपटने के लिए, केंद्र और राज्यों दोनों को वित्तीय स्वायत्तता की आवश्यकता थी। लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि राज्य सरकारों के पास ऐसा करने के लिए वित्तीय स्वायत्तता या ताकत नहीं है। ऐसी स्थिति में, केंद्र सरकार राज्य पर अधिक प्रभावी शक्ति का उपयोग करती है और संघीय इकाइयों को अपने स्वयं के आर्थिक और संस्थागत मुद्दे को अपनाने के लिए मजबूर करती है। राजस्व और कर संग्रह प्रणाली को बंद करने और देश भर में विभिन्न स्रोतों से सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि को व्यापक रूप से काट देने के कारण, केंद्र और राज्य ने अपनी राजकोषीय स्वायत्तता को बुरी तरह से खो दिया है। इसलिए, वित्तीय क्षरण लगातार बढ़ता गया। केंद्र सरकार का एक और अधिक चुनौतीपूर्ण निर्णय संसद सदस्यों के स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (एमपीएलएडीएस) निधि को स्थगित करना और उन्हें भारत के समेकित कोष में स्थानांतरित करना है। केंद्र सरकार के इस फैसले से दो साल के लिए निधि निलंबित हो जाती है। सरकार का फंड काटने का मुख्य उद्देश्य देश में कोविड-19 की चुनौतियों और प्रतिकूल प्रभाव के प्रबंधन में सरकारी प्रयासों को मजबूत करना है।

नदी के पानी का बंटवारा संघीय भावना को बनाए रखने के लिए एक आवश्यक चिंता का विषय है, लेकिन विभिन्न हितधारकों, राजनीतिक दलों और उद्योगों और उनकी उप-इकाइयों को पानी के निजीकरण की भागीदारी के कारण यह पाया गया है कि नदी जल विवाद भारत की संघीय समझ में ज्वलंत मुद्दों में से एक हैं। नदी जल संघर्ष कृष्णा-गोदावरी के नदी बेसिन में राज्य के आर्थिक विकास के उद्देश्य से तटवर्ती राज्यों के संबंधित क्षेत्रों में जल के आवंटन को लेकर होता है। विवादों में महाराष्ट्र और कर्नाटक ऊपरी हैं जबकि आंध्र प्रदेश निचला तटवर्ती राज्य है। यह एक तथ्य है कि स्वतंत्रता के बाद, भारतीय गणराज्य ने देश के आर्थिक विकास की महत्वाकांक्षा के साथ पंचवर्षीय योजना को अपनाया। उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कृष्णा-गोदावरी नदी में पानी की आपूर्ति के उपयोग पर चर्चा करने और परियोजनाओं के लाभों को मापने के लिए जुलाई 1951 के महीने में एक अंतर-राज्य सम्मेलन आयोजित किया गया था। लेकिन जब भारत में भाषाई आधार पर राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 अस्तित्व में आया, तो तटवर्ती राज्यों द्वारा नई जल परियोजनाएं शुरू की गईं। परिणामस्वरूप, तटवर्ती राज्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न हो गया। कृष्णा-गोदावरी नदी जल बंटवारे में उठाया गया मुख्य मुद्दा 1951 के समझौते पर निचले और ऊपरी तटवर्ती राज्यों के बीच असहमति

है। पहले का समझौता संघीय शासन के पक्ष में था। लेकिन, राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के पारित होने के बाद, जब तटवर्ती राज्यों ने अपनी अलग जल परियोजनाओं को सक्रिय करने की कोशिश की तो यह भारत के संघीय सिद्धांतों का उल्लंघन करता हैI

भारत की संघीय व्यवस्था के सामने एक और महत्वपूर्ण चुनौती हाल ही में महानदी नदी के जल बंटवारे के मामले में ओडिशा और छत्तीसगढ़ के बीच जल संघर्ष का मुद्दा है। फिर भी, दोनों राज्य महानदी नदी पर अपने प्रभाव की सीमा का आनंद लेते थे क्योंकि वे ऊपरी (छत्तीसगढ़) और निचले (ओडिशा) तटवर्ती राज्यों के रूप में स्थित थे। ओडिशा सरकार के बयान के जवाब में छत्तीसगढ़ सरकार ने स्पष्ट किया कि महानदी जलरेखा में बांध और बैराज निर्माण के रूप में राज्य सरकार द्वारा शुरू की गई परियोजनाएं केवल राज्य के सिंचाई उद्देश्यों के लिए हैं जिससे निचले तटवर्ती राज्य (ओडिशा) की चिंता में बाधा न आए। उसके बाद महानदी नदी विवाद एक तरफ भाजपा और बीजद के बीच राजनीतिक लड़ाई और दूसरी तरफ संघर्षपूर्ण जल राजनीति में बदल गया। यह एक तथ्य है कि नदी बेसिन के क्षेत्र में तेजी से औद्योगिकीकरण और उद्योगों और इसकी उप-इकाइयों के लिए पानी का मोड़ ओडिशा में पानी की कमी का मुख्य कारण है। महानदी नदी जल विवाद न केवल दो राज्यों के राजनीतिक दलों के बीच का विवाद है, बल्कि कृषि और उद्योग के बीच एक अंतर-क्षेत्रीय जल संघर्ष भी है जो भारतीय संघवाद के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में उभराI यह संभव है अगर छत्तीसगढ़ और भारत सरकार दोनों इस मुद्दे की सही जानकारी मास मीडिया के सामने या न्यायाधिकरण स्तर पर साझा करें। इसके अलावा, इस मामले में, ओडिशा सरकार ने आरोप लगाया कि भारत सरकार बांधों और बैराज परियोजनाओं को जारी रखने के लिए छत्तीसगढ़ सरकार का पक्ष ले रही है और ऐसे सभी विकासों की प्रगति को तत्काल रोकना चाहती है और महानदी नदी मुद्दे पर उनके प्रभाव का आकलन करने का अनुरोध किया हैI फिर से, ओडिशा सरकार ने तर्क दिया कि ऊपरी तटवर्ती राज्य द्वारा शुरू की गई परियोजनाएँ राज्य के सिंचाई उद्देश्यों के लिए नहीं हैं, बल्कि पानी की एक बड़ी मात्रा पहले ही औद्योगिक क्षेत्र और इसकी उप-इकाइयों में बदल दी गई है, जो जल संघवाद के प्रमुख सिद्धांतों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आती है। यह अंतर-राज्यीय नदी जल बंटवारे के प्रावधान के संरक्षण, न्यायसंगत वितरण और सतत उपयोग का भी पक्षधर नहीं है।

4. सुझावात्मक एवं निष्कर्षात्मक टिप्पणियाँ

भारतीय संघवाद स्थिर नहीं है बल्कि एक गतिशील है जो अपने व्यवहार के अनुसार स्थिति और जरूरतों के साथ बदलता रहता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि भारतीय संघवाद अंतर-सरकारी व्यवस्था पर आधारित हो, समान स्तर पर सत्ता साझा करे और सरकारी मशीनरी की प्रत्येक इकाई के साथ सहयोग सुनिश्चित करे। हालांकि, हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि संघवाद कभी-कभी संघर्षपूर्ण होता है और अपनी कार्य प्रक्रिया के माध्यम से विरोधाभासी प्रेरणा रखता है। नवीनतम चिंता को यहां तभी पहचाना जा सकता है जब संघवाद अपनी समकालीन चुनौतियों में सीएए के विवादास्पद मुद्दे का विरोध आसपास के क्षेत्रों के लोगों और बाद में गैर-भाजपा-राज्यों के राजनीतिक नेताओं द्वारा किया जाता है। यह केवल इस तथ्य के कारण है कि सीएए ने संविधान विरोधी चरित्र पर भरोसा किया है। वास्तव में ऐसा कुछ नहीं हो रहा है, लेकिन संभवतः केंद्र-राज्य संबंध को विवादित बना रहा है। भारतीय संघवाद का एक और उल्लेखनीय मुद्दा नए राज्यों की मांग को बढ़ाना है। विकास के दृष्टिकोण से छोटे राज्य स्वायत्त बने रहने के लिए अपनी दक्षता का पूरा उपयोग कर रहे हैं और हर बार केंद्रीय वित्तीय निधियों पर निर्भर

हुए बिना स्वतंत्रता दिखा रहे हैं। दूसरी ओर, भारतीय संघीय प्रणाली की बड़ी इकाइयों को केंद्रीय वित्तीय संसाधनों की मदद के बिना प्रत्येक कार्य को पूरा करने के लिए उतनी शक्ति नहीं मिलती है। अंतर्राज्यीय नदी जल विवादों के क्षेत्र में, इस बात पर विचार किया जा सकता है कि अंतर्राज्यीय नदी जल विवादों में शामिल राज्यों को अंतर्राज्यीय सहयोग स्थापित करने की आवश्यकता है तथा न्यायाधिकरण स्तर पर इस मुद्दे पर लड़ने या जल मुद्दे का राजनीतिकरण करने के बजाय बातचीत के लिए खुला दरवाजा रखना चाहिए। भारतीय संघीय व्यवस्था में राज्यों के बीच अंतर-राज्यीय जल विवादों को गैर-राजनीतिक बनाने की जरूरत है और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के व्यवहार की संघीय भावना का सम्मान करना चाहिए। भारत में अंतर-राज्यीय नदी विवाद को हल करने के लिए भारत सरकार को अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद (संशोधन) विधेयक अधिनियम, 2017 को अधिक प्राथमिकता देनी चाहिए जिसमें एकल न्यायाधिकरण के गठन, विवादों का समयबद्ध तरीके से समाधान, विवादों का आधिकारिक डेटा संग्रह का संवैधानिक प्रावधान है। अंतरराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 की खामियों को दूर करने के लिए 2017 के अधिनियम के इस प्रावधान को ठीक से लागू किया जाना चाहिए।

केंद्र-राज्य के बीच अधिकांश समय होने वाला संघर्ष इसके तीव्र प्रबंधन की ओर ले जाता है। इसलिए, इस कारण से बहु-सदस्यीय निकाय के रूप में परिषद की नियुक्ति की जानी चाहिए। यह परिषद मुख्य रूप से अपने सामान्य विषयों से संबंधित जांच करने के लिए स्थापित की जाती है। यह विवादों के परिणाम के लिए कुछ आवश्यक शर्तें भी रखती है। इसलिए, 'संघीय भावना' का प्रवाह इस परिषद का मुख्य कार्य बन रहा है। फिर से यह संवैधानिक मार्गदर्शन को बनाए रखने की कोशिश करता है जो आम सहमति को अतिव्याप्त होने से रोकता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद अब प्रभावी नहीं है और अंतरराज्यीय परिषद केंद्रीय गृह मंत्रालय का हिस्सा बन जाने के कारण एक स्वतंत्र संस्था नहीं है। जब केंद्र सरकार जीएसटी से राजस्व के नुकसान के लिए मुआवजा देने के समझौते को रद्द कर देती है तो राज्यों के पास कोई उपाय नहीं होता। राष्ट्रीय विकास परिषद को विकासात्मक योजना और कार्यक्रमों के साथ देश के विकास के लिए काम करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. Kashyap Subhash C. (2010*) Indian Constitution: Conflicts and Controversies*, New Delhi: Vitasta Publishing Pvt. Ltd.
2. Bagchi, Amaresh. (2000) "Rethinking Federalism: An Overview of Current Debates with some Reflections in Indian context", *Economy and Political Weekly*, p. 3025
3. Austin, Granville. (1972) The Indian Constitution Cornerstone of a Nation, Bombay: *Oxford University Press.*
4. Singh, Ajaya Kumar. (2015) Exploring Union Model of Indian Federalism", *Yojana,* February.
5. Wheare KC. (1949) Federal Government, London: *Oxford University Press*, p.28.
6. Constituent Assembly Debates (CAD) Proceedings, 9th to 23rd December, 1946, 1.
7. Kashyap Subhash C. (2010) Indian Constitution: Conflicts and Controversies, New Delhi: *Vitasta Publishing Pvt. Ltd.*
8. Rodrigues, Alerian. (2020) State Assembly Resolutions against the CAA, *Economic and Political Weekly*.55:5.

9. Sreenivas T (2018) "The Demand for New States in Indian Federalism - A Case Study Telangana State", *International Journal of Science and Research (IJSR)*, 2018;7(4).
10. (*ibid:* 836)
11. Agrahari, Kalpana S. (2014) "Politics of Small States in India: A case study of Telangana", *Social Research Foundation*, December, p-130.
12. Rodrigues, Alerian. (2020) State Assembly Resolutions against the CAA, *Economic and Political Weekly*. Pp.55:5.
13. Ibid
14. Chhokar, Jagdeep S. (2020) *MPLADS, its suspension, and why it must go*. The Hindu, Retrieved from https://www.thehindu.com/opinion/lead/mplads-itssuspension-and-why-it-must-go/article31504548.ece
15. Acharya, Paresh Kumar. (2000) *Problems of inter-state water Dispute: A Legal study under Indian Perspectives,* PhD Thesis, West Bengal: The University of Burdwan, .
16. Ratha, Keshab Chandra. (2019) "Revisiting the Mahanadi water dispute Discourse: A Reflection of Diverse Perspectives*", Maharshi Dayananda University Research Journal ARTS*.Pp.103-113
17. Firstpost. (2016) "Mahanadi water dispute between Odisha and Chhattisgarh: Here's all you need to know about the row", Retrieved from https://www.firstpost.com/india/mahanadi-waterdispute-between-odisha-and-chhattisgarh-heres-all-youneed-to-know-about-the-row-2958188.html.
18. Ratha, Keshab Chandra. (2020) "Mahanadi in Peril: A Victim of Governmental Policies and Climate Change", *BJPA, New Series.* Vol;XVII(1).
19. *Ibid:*100

31

असममित संघीय प्रावधान और संजातीय स्वायतता

डॉ. संजय शर्मा
सह-आचार्य, राजनीति एवं अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विभाग, पांडिचेरी विश्वविद्यालय
दीपक धपोला
शोधार्थी, राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विभाग, पांडिचेरी विश्वविद्यालय

संघवाद राज्य और राष्ट्र निर्माण का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है।संघवाद शब्द की उत्पत्ति लैटिन मूल "फोएडस (foedus)" से हुई है जिसका अर्थ है "संविदा"। स्वभाव से संघवाद हमेशा संविदात्मक होता है। संविदात्मक होने का अर्थ है, सहमति से शासन। इसलिए, डेनियल जे. एलाजार ने संघवाद के सार को 'स्व-शासन और साझा शासन', तथा एक साथ रहने हेतु एक 'भव्य प्रारूप' के रूप में प्रस्तुत किया है (एलाजार, 1987, पृष्ठ 7)। संघीय विषमता संजातीय और क्षेत्रीय पहचान से संबंधित विभिन्न चिंताओं को भी संबोधित करती है। पारंपरिक संघवाद मुख्य रूप से शक्तियों के भौगोलिक आवंटन पर केंद्रित था, जिसमें संजातीय पहचान की संतुष्टि को बहुत स्तर तक उपेक्षित किया गया था परंतु संघवाद और संजातीय पहचान के बीच मजबूत संबंध द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक विकास के रूप में उभरा है (भट्टाचार्य, 2023, पृष्ठ 21)। संप्रभुता का विभाजन या साझाकरण, और राज्य-समाज संबंधों का संस्थागतकरण संघवाद के दो मूलभूत सिद्धांत हैं। संघवाद विपरीतताओं में सामंजस्य स्थापित करता है। इसमें दो भिन्न लेकिन स्वशासित समाज या समुदाय समान राजनीतिक स्थान साझा करते हैं, एक आर्थिक संघ और एक सामाजिक समुदाय बनाते हैं। वास्तव में, संघवाद किसी देश के शासन के लिए एक जटिल सरकारी तंत्र का गठन करता है। इसे कई स्वायत्त, विशिष्ट, अलग और असमान राजनीतिक संस्थाओं या प्रशासनिक इकाइयों को एक राजनीतिक संघ में बांधने के लिए विकसित किया गया है। यह अनेकता के साथ एकता, विकेंद्रीकरण के साथ केंद्रीकरण और स्थानीयता के साथ राष्ट्रवाद का सामंजस्य स्थापित करना चाहता है (**बसु, 2008, पृष्ठ 5-6**)। सुरक्षा में वृद्धि, स्वायत्तता सहित साझा शासन और एकीकरण की इच्छा संघ के गठन की मुख्य प्रेरक शक्तियाँ हैं। संघवाद के विभिन्न प्रारूपों को समझने के लिए विभिन्न सिद्धांत है जैसे की शांति का सिद्धांत, संघवाद का कानूनी सिद्धांत, संघवाद का समाजशास्त्रीय सिद्धांत, संघवाद का भौगोलिक सिद्धांत तथा संघवाद का राजनीतिक सिद्धांत। वर्तमान शोध पत्र में भारतीय संविधान के असममित संघवाद के प्रावधानों के माध्यम से संजातीय स्वायत्तता का विश्लेषण किया गया है जिसके लिए संघवाद के सामाजिक सिद्धांत को समझना आवश्यक है। समाजशास्त्रीय संघवाद के सिद्धांत के माध्यम से असममित संघवाद की आवश्यकता व इसके उद्देश्यों को भली प्रकार से समझा जा सकता है।

विलियम एस. लिविंगस्टन ने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से संघवाद पर विस्तार से प्रकाश डाला है। लिविंगस्टन का योगदान समाज में संघवाद और संघीय व्याख्या को स्थापित करने में निहित है। लिविंगस्टन के अनुसार संघवाद समाज को संघीकृत करने की एक प्रक्रिया है जहां सामाजिक संघ के समग्र ढांचे के भीतर 'स्वतंत्रता' को अधिकतम किया

जाता है। उनका कहना है कि "संघवाद की आवश्यक प्रकृति की खोज कानूनी और संवैधानिक शब्दावली की छाया में नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक ताकतों में की जानी चाहिए, जिन्होंने संघवाद के बाहरी रूपों को आवश्यक बना दिया है।" संघीय शासन किसी समाज की संघीय गुणवत्ता का पता लगाने, स्पष्ट करने और उसकी रक्षा करने का एक साधन है। किसी भी समाज में सामाजिक मतभेदों और सांस्कृतिक विविधताओं को क्षेत्रीय रूप से संगठित और प्रतिनिधित्व करने की आवश्यकता है। इसी कारण संघीय व्यवस्थाएँ संविधानों का नहीं बल्कि समाजों का प्रतिबिंब हैं। लिविंगस्टन का कहना है कि सामाजिक विविधताएं कई प्रकार की हो सकती हैं जैसे कि धर्म, नस्ल, आर्थिक हित, संजातियता व भाषा इत्यादि (लिविंगस्टन, 1956, पृष्ठ 1-10)। संघीय शासन व्यवस्था स्वायतता के साथ एक साझे शासन की मांगों के कारण उत्पन्न होता है। हालांकि ऐसी मांगें एकता की विपरीत प्रवृत्तियों के साथ होती हैं। इसलिए संघवाद इन मांगों व विपरीत प्रवृत्तियों के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है। इन विपरीत मांगों को स्वायतता के प्रावधानों के साथ न केवल संविधान में बल्कि समाज की मांग से स्वीकृत उपकरणों की पूरी व्यवस्था में समायोजित किया जाता है। इस प्रकार असममित संघवाद सामाजिक विभिन्नताओं की स्वायत्तता को सुनिश्चित करते हुए एकीकृत शासन प्रदान करने का कार्य करता है।

भारत में संजातीय स्वायत्तता की आवश्यकता व माँगें

भारतीय संविधान, शासन की संघीय संरचना प्रदान करता है, लेकिन यह संरचना एक असममित संघवाद है। एक असममित संघीय संरचना में, कुछ राज्यों या क्षेत्रों को विधायी शक्ति के माध्यम से अलग-अलग स्तर की शक्ति और स्वायत्तता प्रदान की जाती है। यह अलग-अलग सांस्कृतिक, भाषाई या संजातीय पहचान वाले क्षेत्रों की स्थानीय व पारंपरिक जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रदान किया जाता है। यह संघवाद की विशिष्टता है कि यह सभी सांस्कृतिक और क्षेत्रीय पहचानों को एक ही 'मेल्टिंग पॉट' में नहीं डालता है जहाँ ये समूह अपनी पहचान खो जाते हैं। लेकिन यह सभी पहचानों को एक साथ 'स्व-शासन और साझा शासन' तथा सह-अस्तित्व में समायोजित करता है। औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता के पश्चात, अधिक स्वायत्तता के लिए भाषाई, जनजातीय और क्षेत्रीय आधार पर विभिन्न समुदायों से माँगें उठने लगीं और भारत ने, एक संघीय राष्ट्र होने के नाते, इन मांगों को समायोजित किया करने का प्रयास किया और संविधान में उनके लिए विशेष प्रावधान प्रदान किए। हालाँकि संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा, पूर्वोत्तर राज्यों में कई जनजातियों को कुछ सीमा तक स्वायत्तता मिली है, फिर भी कई संजातीय समूह हैं जो भारत में राज्य का दर्जा मांग रहे हैं। भारत 1956 में 14 राज्यों और छह केंद्र शासित प्रदेशों से बढ़कर वर्तमान में 28 राज्यों और आठ केंद्र शासित प्रदेशों पर पहुंच गया है। सक्सेना (2012) का तर्क है कि कुछ संवैधानिक विषमताओं से राष्ट्र को लाभ हुआ है, तथा उन्होंने उन दावों का खंडन किया है कि इनसे अलगाववाद को बढ़ावा मिल सकता है। भारत की संघीय असममितता जातीय विविधता को समायोजित करने के लिए एक प्रभावी साधन साबित हुई है, जो अन्यथा प्रबंधनीय नहीं थी (भट्टाचार्य, 2023, पृष्ठ 163)। भारत में, संजातीय संघवाद के माध्यम से संजातीय स्वायत्तता राष्ट्रीय एकता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकती है। यह संजातीय समूहों को अपनी अनूठी सांस्कृतिक पहचान, भाषा और परंपरा को संरक्षित करने में मदद करेगी। इससे यह भी सुनिश्चित किया जा सकेगा कि इन संजातीय समूहों की राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी हो, जिससे उनकी उपेक्षा होने की भावना कम होगी। उनके अनुरूप आर्थिक और विकासात्मक आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित करने वाली एक स्वायत्त प्रणाली संजातीय तनाव और संघर्ष को कम करने में मदद

करेगी। परंतु संघ को यह सुनिश्चित करना होगा कि ये स्वायत्त प्रणालियाँ अलगाव, विखंडन, राजनीतिक अस्थिरता, नौकरशाही जटिलता और संसाधन असमानताओं की आवाज़ न बनें। संजातीय समूहों के लिए स्वायत्तता या राज्य का दर्जा तब अपरिहार्य हो सकता है जब यह भविष्य में राजनीतिक स्वीकार्यता की 'ओवरटन विंडो' के भीतर धीरे-धीरे आगे बढेगा। गोरखालैंड और लद्दाख संजातीय समूह के उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं इन दोनों क्षेत्रों के निवासियों के पास एक स्वायत्त संस्थागत ढांचा है; हालांकि, औपचारिक राज्य का दर्जा और छठी अनुसूची के प्रावधानों के तहत इन स्वायत्त जिला परिषदों को शामिल करने की मांग जारी है।

भारतीय संघीय शासन में संजातीय स्वायतता हेतु विभिन्न मांगों का उदय हुआ है जो की अपने अलग अलग चरणों में है। उदाहरणतः पश्चिम बंगाल में गोरखाओं द्वारा एक अलग राज्य की मांग व भीलों द्वारा राजस्थान में एक स्वायत शासन की मांग। पश्चिम बंगाल में गोरखाओं को 2011 में गोरखालैंड प्रादेशिक प्रशासन (जीटीए) अधिनियम के माध्यम से स्वायत्तता की एक हद तक अनुमति दी गई थी। हालाँकि, एक अलग राज्य की मांग इसके बाद भी जारी रही। 2017 में पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा स्कूलों में बंगाली को अनिवार्य विषय घोषित करने के बाद यह भावना और भी तीव्र हो गई, जिसका गोरखा समुदाय से काफी विरोध हुआ। एक सर्वदलीय बैठक के बाद राज्य के दर्जे की मांग ने गति पकड़ी, जिसमें विभिन्न पहाड़ी राजनीतिक गुट और भाजपा के प्रतिनिधि शामिल थे, जिसके परिणामस्वरूप एक अलग गोरखालैंड राज्य की स्थापना की वकालत करने वाला एक सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित हुआ (चौधरी, 2017)।

भारतीय संविधान में असममित संघीय प्रावधान

भारत में संघवाद की स्थापना किसी समझोंते के आधार पर नहीं हुई अपितु इसे संविधान निर्माताओं द्वारा एक संघ के रूप में स्थापित किया गया, भीम राव अंबेडकर के शब्दों में "यद्यपि भारत को एक संघ बनना था, यह संघ किसी संघ में शामिल होने के लिए राज्यों द्वारा किए गए समझौते का परिणाम नहीं था और यह संघ किसी समझौते का परिणाम नहीं होने के कारण किसी भी राज्य को इससे अलग होने का अधिकार नहीं है। यह एक संघ (union) है, क्योंकि यह अविनाशी है। यद्यपि देश और लोगों को प्रशासन की सुविधा के लिए अलग-अलग राज्यों में विभाजित किया जा सकता है, देश एक एकीकृत संपूर्ण है, इसके लोग एक ही लोग हैं, जो एक ही स्रोत से प्राप्त एक साम्राज्य के तहत रहते हैं (संविधान सभा, पृष्ठ. 32)।" भारतीय संविधान 'संघवाद के संघ मॉडल' का प्रावधान करता है जो सत्ता साझेदारी व्यवस्था के केंद्र-परिधि और गैर-केंद्रीकृत मैट्रिक्स मॉडल को विशिष्ट रूप से जोड़ता है। राष्ट्र और राज्य निर्माण का एक गतिशील दस्तावेज़ होने के नाते, यह संघवाद और क्षेत्रवाद, स्वायत्तता और एकीकरण, समरूपता और विषमता, केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण जैसी विपरीत प्रवृत्तियों का गंभीर रूप से मिश्रण या बातचीत करता है। भारतीय संघीय व्यवस्था में, दोहरे संघवाद, सहकारी-सहयोगात्मक संघवाद, और अन्योन्याश्रित और जैविक संघवाद की विशेषताओं के लक्षण मिलते हैं। इसलिए शक्ति का वितरण व्याख्या के किसी विशिष्ट तरीके का पालन नहीं करता है; यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि हम भारतीय संघवाद की प्रत्येक विशेषता को किस प्रकार महत्व देते हैं (सिंह, 2009, पृ.8)।

असममित संघवाद एक ऐसी प्रणाली को संदर्भित करता है जहां संघ के भीतर इकाइयों की राजनीतिक, प्रशासनिक और वित्तीय व्यवस्थाओं के बीच शक्ति और संबंध असमान होते हैं (राव और सिंह, 2004)। जिस तरह से कनाडा और स्पेन में असममित संघवाद के साथ समान विचार हैं, भारतीय संघवाद पर टिलिन (2007) असममित संघीय ढांचे

के मानक दार्शनिक पहलुओं पर संदेह जताती हैं। लेकिन फिर भी उनका मानना है कि भारत का संविधान जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर के आदिवासी क्षेत्रों समुदायों के लिए विशेष संवैधानिक प्रावधान देता है। कैथरीन एडेनी का मानना है कि संजातीय समूहों को विषम शक्तियां प्रदान करना संजातीय संघर्ष के प्रबंधन में कारगर हो सकता है। लेकिन संघीय स्तर पर प्रतिनिधित्व और संरक्षण के बिना शक्तियों का विषम हस्तांतरण पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि संघ बहुसंख्यकवादी हो सकता है, और शक्तियों का विषम हस्तांतरण इसकी भरपाई नहीं कर सकता (एडेनी, 2007)। भट्टाचार्य (2023, पृष्ठ 107), छठी अनुसूची में भारत के संघीय ढांचे को असममितता के भीतर असममितता का निर्माता कहते हैं क्योंकि यह असममित राज्यों के अंदर उप-राज्य जैसी असममितता प्रदान करता है। संविधान के भाग X में अनुच्छेद 244क 'असम में कुछ आदिवासी क्षेत्रों को शामिल करते हुए एक स्वायत्त राज्य के गठन और एक स्थानीय विधानमंडल या मंत्रिपरिषद के निर्माण' से संबंधित है। छठी अनुसूची में अनुच्छेद 244क और 275(1) शामिल हैं, और 275(1) कुछ राज्यों को संघ द्वारा दिए जाने वाले अनुदानों से संबंधित है। भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र पाँच विदेशी देशों की सीमा से लगा हुआ है और यह देश के सबसे सांस्कृतिक रूप से विविध क्षेत्रों में से एक है। 175 से अधिक भाषाएँ बोलने वाली 160 से अधिक अनुसूचित जनजातियाँ इस क्षेत्र को अपनी मातृभूमि मानती हैं (पाठक, 2016)। इन क्षेत्रों में रहने वाले स्वदेशी लोगों के बीच कला, संस्कृति, संस्थाओं और जीवनशैली की अनूठी परंपराएँ हैं। संविधान के भाग XXI में, जिसमें अनुच्छेद 370 से 371ठ तक शामिल हैं, कुछ राज्यों के लिए अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष प्रावधानों से संबंधित है। अनुच्छेद 370 के कुछ खंड, जो जम्मू और कश्मीर को विशेष अधिकार देते थे, अब लागू नहीं रह गए हैं। अनुच्छेद 371 महाराष्ट्र और गुजरात के विदर्भ, मराठवाड़ा, सौराष्ट्र और कच्छ क्षेत्रों के विकास के लिए एक अलग विकास बोर्ड और समान वित्त पोषण का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 371क नागालैंड के नागाओं की धार्मिक और सामाजिक प्रथाओं, प्रथागत कानूनों और भूमि स्वामित्व का सम्मान करता है। असम के लिए धारा 371ख , मणिपुर के लिए धारा 371ग, आंध्र प्रदेश या तेलंगाना के लिए धारा 371घ और च तथा सिक्किम के संबंध में धारा 371छ विशेष प्रावधान करती हैं (भारतीय संविधान, भाग XXI)।

पाँचवीं तथा छठी अनुसूची के प्रावधान

19 अगस्त 1949 को ड्राफ्ट अनुच्छेद 215B के रूप में अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन पर बहस हुई। एक सदस्य ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि संसद संवैधानिक संशोधन के माध्यम से इस विशेष प्रावधान को बदल सकती है, "जब तक संसद कानून द्वारा अन्यथा प्रावधान नहीं करती है" को जोड़ने का प्रस्ताव रखा (संविधान सभा, 1949)। यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया। संविधान के अनुच्छेद 244 को संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 और संविधान (उनचासवां संशोधन) अधिनियम द्वारा और संशोधित किया गया। संविधान के भाग X में अनुच्छेद 244 में अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के रूप में नामित कुछ क्षेत्रों के लिए प्रशासन की एक विशेष प्रणाली की परिकल्पना की गई है। अनुसूचित क्षेत्रों के साथ अलग व्यवहार किया जाता है क्योंकि उन क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े आदिवासी समुदाय विद्यमान हैं। इस पृष्ठभूमि में, पांचवीं अनुसूची असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम को छोड़कर किसी भी राज्य में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण से संबंधित है। ये चार राज्य छठी अनुसूची में शामिल हैं। पांचवीं अनुसूची राष्ट्रपति को किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने, उसकी सीमा रेखाओं को बढ़ाने, घटाने और बदलने की शक्ति देती है। साथ ही,

राज्यपाल को समय-समय पर ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। राज्यपाल यह भी तय करता है कि इन क्षेत्रों में कोई संघ या राज्य अधिनियम संशोधनों के साथ/बिना लागू होगा या नहीं। जिन सभी राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र हैं, उन्हें अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और उन्नति पर परामर्श देने के लिए एक जनजाति सलाहकार परिषद स्थापित करनी होती है।

संविधान की छठी अनुसूची चार पूर्वोत्तर राज्यों अर्थात् असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन से संबंधित है। प्रशासन के लिए विभिन्न विशेषताएँ हैं जैसे: राष्ट्रपति को किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने का अधिकार है। राज्य की कार्यकारी शक्ति अनुसूचित क्षेत्रों तक फैली हुई है। राज्यपाल के पास ऐसे क्षेत्रों के संबंध में एक विशेष उत्तरदायित्व है। दूसरी ओर केंद्र ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में राज्यों को निर्देश दे सकता है। अनुसूचित क्षेत्रों वाले प्रत्येक राज्य को अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और उन्नति पर परामर्श देने के लिए एक जनजाति सलाहकार परिषद स्थापित करनी होती है। राज्यपाल को यह निर्देश देने का अधिकार है कि संसद या राज्य विधानमंडल का कोई विशेष अधिनियम अनुसूचित क्षेत्र पर लागू नहीं होता है या निर्दिष्ट संशोधनों और अपवादों के साथ लागू होता है। संविधान में राष्ट्रपति को राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर रिपोर्ट करने के लिए एक आयोग नियुक्त करने की आवश्यकता होती है।

छठी अनुसूची व संजातीय स्वायत्तता की व्यवस्था का विश्लेषण

अनुच्छेद 244 में उल्लिखित छठी अनुसूची, किसी राज्य के भीतर स्वायत्त जिला परिषदों के रूप में जानी जाने वाली स्वशासी प्रशासनिक संस्थाओं की स्थापना की अनुमति देती है। अपने वर्तमान स्वरूप में अनुच्छेद 244क पर संविधान सभा के सत्रों के दौरान चर्चा या बहस नहीं हुई। इस विशेष अनुच्छेद को संविधान (बाईसवाँ संशोधन) अधिनियम के माध्यम से भारत के संविधान में शामिल किया गया था, जिसे 1969 में अधिनियमित किया गया था। यह संशोधन कुछ जनजातीय क्षेत्रों में विशिष्ट आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए प्रस्तुत किया गया था, जिससे देश की स्वतंत्रता के बाद से विकसित हो रही आवश्यकताओं को दर्शाया जा सके। इन राज्यों में जनजातियों की अपनी अनूठी संस्कृति, परंपरा और सभ्यता है। इसलिए, उन्हें स्वशासन के लिए काफी स्वायत्तता दी गई है (जैन, 1987)। इन राज्यों में आदिवासी क्षेत्रों को स्वायत्त जिलों के रूप में गठित किया गया है। राज्यपाल को सीमाओं को बदलने और उन्हें कई स्वायत्त क्षेत्रों में विभाजित करने का अधिकार है। परिषदें राज्यपाल की सहमति से कुछ निर्दिष्ट विषयों पर कानून बना सकती हैं। उनके पास जनजातियों के बीच आरोप और प्रकरणों की सुनवाई के लिए न्यायिक शक्तियाँ हैं। उन्हें भूमि राजस्व का आकलन करने और एकत्र करने और कर लगाने का भी अधिकार है। संसद और राज्य विधानमंडल के अधिनियम इन क्षेत्रों में राष्ट्रपति या राज्यपाल (कुछ मामलों में) के निर्देश पर लागू होते हैं। वर्तमान में कुल दस स्वायत्त जनजातीय क्षेत्र हैं, असम, मेघालय और मिजोरम में तीन-तीन और त्रिपुरा में एक। यहीं पर अन्य जातीय समूहों की मांगें सामने आती हैं। परंतु छठी अनुसूची का कार्य क्षेत्र केवल पूर्वोत्तर राज्यों की जनजातियों के स्वायत शासन तक ही सीमित नहीं रहा अपितु गोरखा और लद्दाखी जैसे अन्य जातीय समूहों ने भी यह दावा किया कि उन्हें अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और भाषाई पहचान को बनाए रखने के लिए छठी अनुसूची के तहत स्वायत्त दर्जा दिया जाना चाहिए।

गोरखा संजातीय समुदाय की स्वायत शासन की मांगों व आंदोलनों (वेनर, 2015) के परिणामस्वरूप पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा राष्ट्रपति की स्वीकृति से 2011 में अधिनियमित गोरखालैंड प्रादेशिक प्रशासन (जीटीए) अधिनियम ने दार्जिलिंग जिले के भीतर गोरखालैंड प्रादेशिक प्रशासन के लिए एक रूपरेखा स्थापित की। यह कानून जी.टी.ए. को सीमित सीमा तक विधायी, कार्यकारी और लेखापरीक्षा शक्तियां प्रदान करता है। जी.टी.ए. के प्रशासनिक ढांचे में पांच साल के कार्यकाल के लिए चुने गए 50 सदस्य शामिल हैं, जिनमें से 45 सदस्य निर्दिष्ट निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष चुनावों के माध्यम से चुने जाते हैं और पांच अन्य राज्यपाल द्वारा नामित किए जाते हैं (पश्चिम बंगाल सरकार, 2011)। यह उल्लेखनीय है कि नामित सदस्यों के पास मतदान का अधिकार नहीं होता है और वे आम तौर पर संसद के सदस्यों, विधान सभा के सदस्यों या नगरपालिका अध्यक्षों के रैंक से चुने जाते हैं। जी.टी.ए. अधिनियम की धारा 26 के अनुसार, प्रशासन को 59 अलग-अलग विषयों पर प्रशासनिक, कार्यकारी और वित्तीय नियंत्रण प्राप्त है। इन विषयों में शिक्षा (स्कूल और कॉलेज), वानिकी, सिंचाई, पर्यटन, परिवहन, शहरी विकास और भूमि प्रबंधन और निपटान जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र शामिल हैं। इसके अलावा, जी.टी.ए. को पंचायतों, पंचायत समितियों, जिला परिषदों और नगर पालिकाओं सहित स्थानीय शासन निकायों की देखरेख और निरीक्षण करने का अधिकार है, जो उन्हें नीति निर्माण और विकासात्मक योजना बनाने में मार्गदर्शन प्रदान करता है (पश्चिम बंगाल सरकार, 2011)। अधिनियम का अध्याय-3 जी.टी.ए. के कार्यकारी कार्यों को रेखांकित करता है, जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मुख्य कार्यकारी और उप मुख्य कार्यकारी जैसे प्रमुख पदों के लिए चुनाव प्रोटोकॉल की रूपरेखा तैयार की गई है। अध्याय 5 वित्तीय संसाधनों के प्रबंधन को संबोधित करता है, जिसमें लेखा परीक्षा और बजटीय प्रक्रियाओं के प्रावधान शामिल हैं।

इसी प्रकार लद्दाख स्वायत्त पहाड़ी विकास परिषद (एलएएचडीसी) अधिनियम 1995, लद्दाखी लोगों की मांगों के जवाब में लागू किया गया था, जो अपनी विशिष्ट धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान के कारण एक अलग भारतीय केंद्र शासित प्रदेश बनाने की मांग कर रहे थे, जो जम्मू और कश्मीर के बाकी हिस्सों से अलग थी। अधिनियम में एक परिषद के गठन का प्रावधान किया गया था जिसके 26 सदस्य सीधे चुने जाएंगे और 4 सदस्य राज्यपाल द्वारा मनोनीत किए जाएंगे। इसमें एक कार्यकारी परिषद का भी प्रावधान किया गया था जिसमें एक अध्यक्ष होगा, जो मुख्य कार्यकारी पार्षद होगा और परिषद के सदस्यों में से मुख्य कार्यकारी पार्षद द्वारा मनोनीत चार सदस्य होंगे। परिषद के पास जिले में 28 विषयों से संबंधित कार्यकारी शक्तियां तथा कर और शुल्क लगाने की भी शक्तियां हैं। अधिनियम में एक 'अंतर जिला सलाहकार परिषद' गठित करने का प्रावधान है, जो साझा हितों के मामलों पर परिषदों को परामर्श देगी, मतभेदों को सुलझाएगी तथा क्षेत्र में सांप्रदायिक सद्भाव बनाए रखेगी (भारत सरकार, 1995)।

भारतीय संविधान में असममित संघीय प्रावधानों के संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि भारत के संविधान निर्माताओं ने एक अमेरिकी शैली के आधार पर संघीय राज्य नहीं बनाया जिसमें कि संघ की स्थापना संघीय इकाइयों के मध्य समझौते के परिणामस्वरूप हुई तथा सभी संघीय इकाइयों को सममित संघीय प्रारूप के अनुसार एक समान विषय व अधिकार प्रदान किए गए। अपितु भारत की संविधान सभा ने एक राज्यों के एक अविनाशी संघ के रूप में स्थापित किया, दूसरी ओर भारत के संविधान निर्माताओं ने इस तथ्य का भी ध्यान रखा की भारत की विवधताओं हेतु असममित संघवाद प्रारूप को अपनाया जाये जिससे की इसकी विवधताओं को एक संघीय शासन में व्यवसीथ रखा जा सके। भारतीय संविधान में असममित संघवाद के विभिन्न प्रावधान देखने को मिलते है जैसे की अनुछेद 370, 370

क, ख, व ग व पाँचवी व छठी अनुसूची। भारतीय संविधान के असममित संघवाद प्रावधानों द्वारा न केवल तत्कालीन विविधताओं का समावेश किया गया अपितु स्वतंत्रता के पश्चात उभरने वाली मांगों व आंदोलनों को भी उचित प्रकार से संघीय ढांचे में समाहित किया गया। वर्तमान समय में भारत में अनेक अलग राज्यों की माँगें हैं जिसमें से अधिकांश संजातीय समूहों द्वारा की जा रही है जैसे की गोरखा, लद्दाखी, भील व मिथिला इत्यादि (वेनर, 2015; सिंह, 2022; प्रणति, 2024; कुलश्रेष्ठ, 2024; भेलारी, 2024)। भारतीय असममित संघीय व्ययस्था में इन संजातीय समूहों की स्वायत्तता हेतु छठी अनुसूची के आधार पर विकास परिषद का निर्माण किया गया है तथा कालांतर में राज्य का भी दर्जा दिया गया है जैसे की झारखंड विकास परिषद के संदर्भ में किया गया। वास्तव में विकास परिषदों को राज्य निर्माण से पहले आने वाले एक चरण के रूप में देखा जाता है। परंतु इस संदर्भ में यह भी ध्यान देना आवशयक है की इन मांगों का समायोजन संजातीय समूहों के स्वशासन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया। भारतीय संविधान के इसी समायोजी स्वरूप व विशेषता के कारण इसे एक जीवंत दस्तावेज भी कहा जाता है।

संदर्भ सूची

1. एडेनी, के. (2007). टिप्पणी: विषम संघवाद की "आवश्यकता"? एथनोपॉलिटिक्स, 6(1), 117–120. https://doi.org/10.1080/17449050701233031
2. एलाजार, डी. जे. (1987). संघवाद की खोज. यूनाइटेड किंगडम: अलबामा विश्वविद्यालय प्रेस.
3. कुलश्रेष्ठ, पी. (2024). डिकोड पॉलिटिक्स: 'भील प्रदेश' की आदिवासी मांग राजस्थान की राजनीति को क्यों परेशान कर रही है. द इंडियन एक्सप्रेस. https://indianexpress.com/article/political-pulse/bhil-pradesh-demand-rajasthan-politics-9467341/
4. चौधरी, एस. रे. (2017). गोरखालैंड की मांग: कैसे बंगाली भाषा ने दार्जिलिंग में शांति को पटरी से उतार दिया. हिंदुस्तान टाइम्स. https://www.hindustantimes.com/india-news/demand-for-gorkhaland-the-darjeeling-crisis-began-with-the-bengal-govt-announcement/story-S7VdgGSabmfxvLKoXc76mO.html
5. जैन, एम.पी. (1987). भारतीय संवैधानिक कानून (चौथा संस्करण). वाधवा. पृ. 236.
6. टिलिन, एल. (2007). विविधता में एकता? भारतीय संघवाद में विषमता. पब्लियस, 37(1), 45-67. https://www.jstor.org/stable/4624781
7. पश्चिम बंगाल सरकार. (2011). गोरखालैंड प्रादेशिक प्रशासन अधिनियम, 2011. https://wbxpress.com/files/2015/10/GTA-Act-2011.pdf
8. पाठक, जे. (2016). पूर्वोत्तर भारत, छठी अनुसूची और उससे आगे। इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 77(2), 235–240. https://www.jstor.org/stable/26575707
9. प्रणति, डी. वी. एल. एस. (2024). लद्दाख विरोध: राज्य का दर्जा और छठी अनुसूची में शामिल करने की मांगें बढ़ीं। बिजनेस स्टैंडर्ड। https://www.business-standard.com/india-news/ladakh-protests-demands-for-statehood-inclusion-in-6th-schedule-amplify-124022100447_1.html

10. बसु, डी. डी. (2008). तुलनात्मक संघवाद. आगरा-वाधवा एंड कंपनी (द्वितीय संस्करण)
11. भट्टाचार्य, एच. (2023). असममित संघवाद की अवधारणा और मान्यता की राजनीति। एस. कील और ई. एम. बेलसर (संपादक), भारत में असममित संघवाद: संजातीयता, विकास और शासन (पृष्ठ 21). पैल्ग्रेव मैकमिलन।
12. भारत की संविधान सभा. (1949, 19 अगस्त). संविधान सभा की बहसें (खंड 9). https://www.constitutionofindia.net/debates/19-aug-1949/#112167
13. भारत सरकार. (1995). लद्दाख स्वायत्त पहाड़ी विकास परिषद अधिनियम, 1995. विधि, न्याय और कंपनी मामलों का मंत्रालय.
14. भारतीय संविधान. (2024). विधायी विभाग, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार. https://legislative.gov.in/constitution-of-india/
15. भेलारी, ए. (2024). राबड़ी देवी ने बिहार से अलग मिथिला राज्य बनाने की मांग की. द हिंदू. https://www.thehindu.com/news/national/bihar/rabri-devi-demands-separate-mithila-state-to-be-carved-out-of-bihar/article68919327.ece
16. राव, एम., और सिंह, एन. (2004). भारत में असममित संघवाद। यूसी सांता क्रूज़: अर्थशास्त्र विभाग, यूसीएससी। https://escholarship.org/uc/item/0v59942g
17. लिविंगस्टन, डब्ल्यू. एस. (1956)। संघवाद और संवैधानिक परिवर्तन. ऑक्सफ़ोर्ड-क्लेरेडन प्रेस
18. वेनर, एम. (2015). गोरखालैंड को समझना [गोरखालैंड आंदोलन की समीक्षा: जातीय संघर्ष और राज्य की प्रतिक्रिया; गोरखालैंड: राज्य का संकट, एस. सरकार और आर. बागची द्वारा]। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 50(11), 33–36. http://www.jstor.org/stable/24481489
19. सक्सेना, आर. (2012). क्या भारत विषम संघवाद का मामला है? इकनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 47(2), 70–75. http://www.jstor.org/stable/23065612
20. सभा, संविधान. (1949). संविधान सभा वाद-विवाद. खंड- सात
21. सिंह, ए. के. (2009). भारतीय संघवाद का संघ मॉडल. दिल्ली-मानक प्रकाशन
22. सिंह, ए. के. (2009). संघीय परिप्रेक्ष्य, संवैधानिक तर्क और राज्यों का पुनर्गठन. नई दिल्ली-मानक प्रकाशन
23. सिंह, डी. (2022). मिथिलांचल की मांग: क्यों बिहार से अलग होकर नया राज्य बनाने का फैसला उल्टा पड़ सकता है. इंडिया टुडे. https://www.indiatoday.in/news-analysis/story/demand-for-mithilanchal-why-carving-out-a-new-state-from-bihar-may-backfire-1991442-2022-08-23

32

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण की समीक्षा

पंकज अरोड़ा

आचार्य, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

संस्कृति किसी समूह के लोगों या समाज के सामूहिक विश्वासों, रीति-रिवाजों, मूल्यों, व्यवहारों, परंपराओं, कलाओं और सामाजिक संस्थाओं को संदर्भित करती है। संस्कृति के अंतर्गत लोगों के जीवन जीने, सोचने, कोई भी गतिविधि करने और अभिनय करने के साझा पैटर्न शामिल होते हैं, जो एक समुदाय के भीतर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित होते हैं। संस्कृति लोगों को अपने सामाजिक परिवेश को समझने और संचालन करने के लिए एक ढांचा प्रदान करती है। यह उनकी पहचान और अपनेपन की भावना को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र एक शैक्षिक दृष्टिकोण है जो विद्यार्थियों की विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और अनुभवों को पहचानता है और उन्हें महत्व देता है। इसका उद्देश्य एक समावेशी और सहायक शिक्षण वातावरण स्थापित करना है जिसके जरिये विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को शिक्षण के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया में शामिल किया जाता है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा में अध्यापक विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान, अनुभवों, भाषाओं और संचार शैलियों का उपयोग करके विद्यालयी शिक्षा को प्रासंगिक और प्रभावी बनाते हैं। यह शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों के पास पहले से मौजूद ज्ञान और उस ज्ञान को जानने के तरीके को कक्षा में उनके विकास के आधार के रूप में उपयोग करने पर केंद्रित है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र में विद्यार्थियों द्वारा अपनी पृष्ठभूमि से लाए गए सांस्कृतिक ज्ञान और कौशल को महत्व दिया जाता है। यह ज्ञान उनके सीखने के कई दृष्टिकोण और नजरिए विकसित करने के लिए एक संसाधन के रूप में काम करता है। इस शिक्षण के अंतर्गत अध्यापक विद्यार्थियों के साथ मिलकर काम करते हैं तथा उनके ज्ञान व अनुभवों को स्वीकार करते हैं ताकि इसके जरिये सहयोगात्मक रूप से बेहतर शिक्षण पद्धति का निर्माण किया जा सके। यह दृष्टिकोण सकारात्मक पारस्परिक संबंधों व निर्देश तथा मूल्यांकन के गतिशील, सामाजिक रूप से निर्मित तकनीकियों को बढ़ावा देने पर केंद्रित है।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र

यह शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान के जरिए उनमें सकारात्मक शैक्षणिक व मनोवैज्ञानिक क्षमताओं को विकसित कर विद्यार्थियों के सीखने की उच्चतर योग्यताओं को विकसित करने के एक साधन के रूप में काम करता है। इस शिक्षणशास्त्र को कुछ अन्य समानार्थी शब्दों जैसे सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक, संवेदनशील, केंद्रित, सुसंगत, चिंतनशील, मध्यस्थ, प्रासंगिक, समकालिक और उत्तरदायी से भी संदर्भित किया जाता है (गे, जी., 2018)। ऐसा शिक्षण जिसमें विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान, पूर्व अनुभवों, संदर्भों के ढांचे और विविध प्रदर्शन शैलियों का उपयोग

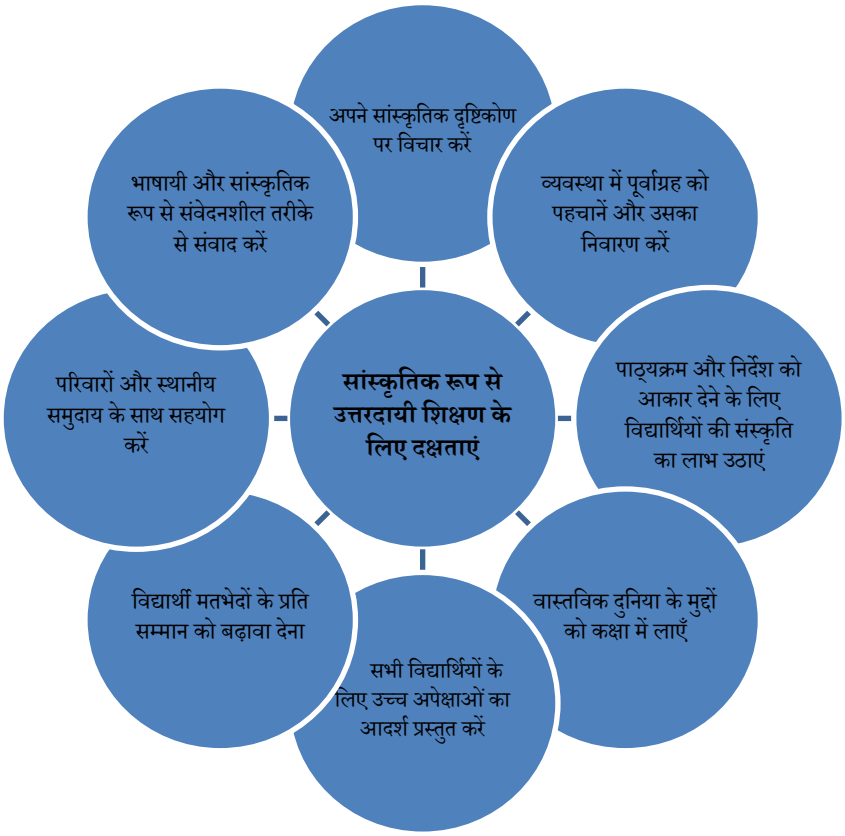
करके विद्यार्थियों के सीखने के अनुभवों को अधिक बेहतर और प्रासंगिक बनाने पर ज़ोर दिया जाता है, सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र कहलाता है (गे, जी., 2018)। इसमें विद्यार्थियों की अंतर्निहित क्षमताओं का उपयोग कर उनके ज्ञान, मूल्यों और विश्वासों की व्यवहारिक अभिव्यक्तियों व सामाजिक असमानता तथा सांस्कृतिक विविधता के महत्व को स्वीकार किया जाता हैं।

इस शिक्षण तकनीकी में विद्यार्थियों की सांस्कृतिक समझ को एक ताकत के रूप में समझा जाता है। यह शिक्षण तकनीकी कक्षा में समवेशिता को बढ़ावा देने में सकारात्मक भूमिका निभाती है। इसमें विद्यार्थियों व उनकी सांस्कृतिक विरासत का सम्मान किया जाता है। इसमें पाठ्यक्रम विकास, कक्षा के वातावरण, शिक्षण रणनीतियों और विद्यार्थियों के आपसी संबंधों को बेहतर करने के लिए विविध संस्कृतियों, परिवारों और समुदायों के सांस्कृतिक ज्ञान का उपयोग किया जाता है। साथ ही सामाजिक असमानता, असहिष्णुता और उत्पीड़न के अन्य रूपों का सामना करने तथा संस्कृति और वर्ग के आधार पर कक्षाओं में असंतुलन को व्यवस्थित किया जाता है (गे, जी., 2018)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों को सशक्त बनाने के साथ-साथ अधिक सफल व बेहतर इंसान बनाने में मदद करता हैं (राजगोपाल, 2011)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र पारंपरिक शिक्षण विधियों के मानदंडों के विरुद्ध मानी जाती है।

गे, जी. (2018), के अनुसार सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है:

- यह कई जातीय समूहों की सांस्कृतिक विरासत को वैध मानता है और इसे अकादमिक पाठ्यक्रम में पढ़ाये जाने का सुझाव देता है।
- यह शिक्षण विद्यार्थियों के घर और विद्यालय के अनुभवों के साथ-साथ शैक्षणिक अमूर्तता और वास्तविक सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकताओं के बीच महत्वपूर्ण संबंध बनाता है।
- इसमें विभिन्न शिक्षण शैलियों से संबंधित शिक्षण तकनीकों की एक विस्तृत श्रृंखला का उपयोग किया जाता है।
- यह विद्यार्थियों को एक-दूसरे की तथा अपनी सांस्कृतिक विरासत का सम्मान करने व उसे स्वीकार करने की शिक्षा देता है।
- इसमें विद्यालयों में अक्सर पढ़ाए जाने वाले सभी पाठ्यक्रमों और कौशलों में अंतर-सांस्कृतिक ज्ञान, संसाधन और सामग्रियों को एकीकृत किया जाता है।

न्यू अमेरिका की शिक्षा नीति कार्यक्रम में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण के लिए अध्यापकों से संबंधित निम्नलिखित आठ दक्षताओं का वर्णन किया गया है:



(स्रोत: Muñiz, J. (2020). Culturally responsive teaching: a reflection guide. New America.)

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के विविध आयाम

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को शमीचेल (2012) ने रेखांकित किया है कि यह विद्यार्थियों के रंग के आधार पर सामाजिक असमानता और उनके श्वेत समकक्षों के बीच उपलब्धि अंतर को कम करने के लिए शिक्षा नीति में व्यापक प्रयास से उभरा है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के समर्थकों का तर्क है कि यह दृष्टिकोण विद्यार्थियों को उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को दर्शाने वाली शिक्षा में शामिल करके अकादमिक प्रदर्शन को बढ़ावा देता है। लैडसन-बिलिंग्स (1995) के काम में निहित यह सिद्धांत सुझाव देता है कि रंग के आधार पर विद्यार्थियों के लिए प्रभावी शिक्षण न केवल अकादमिक उपलब्धि पर ध्यान केंद्रित करता है बल्कि यह सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा देता है (शमीचेल, 2012)। मॉरिसन, रॉबिंस और रोज़ (2008) ने यह पता लगाया कि सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षणशास्त्र को व्यावहारिक रूप में कैसे लागू किया जाता है। इन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि यद्यपि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षणशास्त्र के महत्व पर जोर देते हैं, लेकिन कई अध्यापक कक्षा में इस सिद्धांत को लागू करने के लिए संघर्ष करते हैं। लैडसन-बिलिंग्स (1995) सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षणशास्त्र को तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत करते हैं: उच्च शैक्षणिक अपेक्षाएँ, सांस्कृतिक क्षमता और आलोचनात्मक चेतना। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र की जाँच विभिन्न कक्षा क्रियाओं के माध्यम से की जाती है, जैसे कि

विद्यार्थियों का समर्थन करते हुए कठोर शैक्षणिक मानक निर्धारित करना (मॉरिसन, रॉबिंस और रोज़, 2008)। यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक अध्यापक किस प्रकार विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सीखने के लिए शुरुआती बिंदु के रूप में उपयोग करते हैं और ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जो सहयोग और समावेशिता का पोषण करते हैं। वे विद्यार्थियों के सांस्कृतिक अनुभवों को प्रतिबिंबित करने, उनके मौजूदा ज्ञान को आगे बढ़ाने और स्कूलों और समुदायों के बीच संबंधों को बढ़ावा देने के लिए निर्धारित पाठ्यक्रमों को नया रूप देते हैं (मॉरिसन व अन्य, 2008)। इसके अलावा, अध्यापक विद्यार्थियों को सामाजिक न्याय की चर्चाओं में शामिल करके, सामाजिक असमानताओं की आलोचना करने में उनकी मदद करके और उन्हें कार्रवाई करने के लिए सशक्त बनाकर आलोचनात्मक चेतना को प्रोत्साहित करते हैं। मॉरिसन व अन्य (2008) विविध कक्षाओं में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को लागू करने में शिक्षकों के सामने आने वाली चुनौतियों की पहचान करते हैं।

नवउदारवाद के युग में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र का हाशियाकरण

क्रिस्टीन स्लीटर का तर्क है कि शिक्षा में नवउदारवादी सुधारों के उदय के कारण पिछले दो दशकों में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को तेजी से हाशिए पर रखा गया है। ये सुधार मानकीकृत पाठ्यक्रम और बाजार संचालित मॉडलों को प्राथमिकता देते हैं, और अक्सर विविध प्रष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थियों को सशक्त बनाने वाले आवश्यक सांस्कृतिक और सीमांतीकृत संदर्भों को अनदेखा करते हैं। स्लीटर (2012) भी सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के सामने तीन मुख्य चुनौतियों की पहचान करते हैं: सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण की सरलीकृत और दोषपूर्ण समझ की निरंतरता, सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण को विद्यार्थियों की उपलब्धि से जोड़ने वाले मजबूत शोध की कमी, और प्रणालीगत असमानताओं को संबोधित करने के लिए प्रतिरोधी लोगों से राजनीतिक प्रतिक्रिया। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण को मजबूत करने के लिए स्लीटर अधिक जटिल समझ, कठोर शोध व प्रतिक्रिया का अनुमान लगाने तथा उसे समझने की रणनीतियों का समर्थन करते हैं।

स्लीटर (2012) ने शिक्षा के मानकीकरण और बाजार-संचालित दृष्टिकोणों जैसे नवउदारवादी सुधारों पर प्रकाश डालते हैं, और यह बताते है की यह सुधार किस प्रकार से सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को दरकिनार करते हैं। इस प्रकार के सुधार अक्सर सांस्कृतिक और सामाजिक असमानता जैसे संदर्भों को अनदेखा करते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के सुधार व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्धा पर ध्यान केंद्रित करते हैं। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षकों को पेशेवर विकास के माध्यम से तैयार होने की आवश्यकता होती है, जिससे वे समावेशी वातावरण बनाने में सक्षम हो सकें जो विद्यार्थियों की विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सम्मान और एकीकरण करता हो (फोस्टर, 2018)।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र में बेहतर अध्यापक व विद्यार्थी के मध्य बेहतर संबंध शिक्षण की प्रभावशीलता को सकारात्मक रूप में प्रभावित करते है। सैवेज व अन्य (2011) ने पाया कि माओरी (जनजाति समुदाय) विद्यार्थी जिन्होंने सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण का अनुभव किया, वे विद्यालय में अपनेपन की भावना को अधिक मजबूत महसूस करते थे और सीखने में व्यस्त रहते थे। यह सिवातु (2011) के निष्कर्षों के अनुरूप है, जो

अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों के साथ विश्वास बनाने और व्यक्तिगत संबंधों को बढ़ावा देने के महत्व पर जोर देता है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी अध्यापक जो विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान के लिए प्रामाणिक देखभाल प्रदर्शित करते हैं, वे अधिक समावेशी और सहायक शिक्षण वातावरण बनाते हैं। सैवेज व अन्य (2011) और सिवातु (2011) दोनों ही सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण में अध्यापकों के आत्मविश्वास और क्षमता के निर्माण में पेशेवर विकास और अभ्यास आधारित अवसरों के महत्व को रेखांकित करते हैं। जबकि दोनों अध्ययन कार्यान्वयन में चुनौतियों को उजागर करते हैं, वे हाशिए पर पड़े विद्यार्थियों के लिए शैक्षणिक परिणामों को बेहतर बनाने में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण की परिवर्तनकारी क्षमता पर भी जोर देते हैं। इसे प्राप्त करने के लिए, अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों को सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण को प्राथमिकता देनी चाहिए और सेवा पूर्व शिक्षकों के लिए अधिक व्यापक और व्यावहारिक प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करने चाहिए।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के सफल क्रियान्वयन में अध्यापक की आत्म-प्रभावकारिता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सिवातु (2011) के अनुसार, आत्म-प्रभावकारिता शिक्षकों के सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी प्रथाओं का उपयोग करने की उनकी क्षमता में आत्मविश्वास को संदर्भित करती है। उच्च आत्म-प्रभावकारिता वाले अध्यापक इन प्रथाओं को अपनाने और बनाए रखने की अधिक संभावना रखते हैं, जिससे विद्यार्थियों के बेहतर परिणाम सामने आते हैं। सैवेज व अन्य (2011) ने पाया कि व्यावसायिक विकास सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को लागू करने में शिक्षकों के आत्मविश्वास को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाता है, जबकि सिवातु (2011) इस बात पर जोर देते हैं कि सांस्कृतिक रूप से विविध सेटिंग्स के संपर्क में आने से सेवा पूर्व शिक्षकों को उनकी आत्म-प्रभावकारिता बनाने में मदद मिलती है। हालांकि, सेवा पूर्व शिक्षकों के पास अक्सर विविध कक्षाओं में पर्याप्त व्यावहारिक अनुभव की कमी होती है, जिससे सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण में उनका आत्मविश्वास और क्षमता सीमित हो जाती है।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी **शिक्षणशास्त्र की अवधारणा** सामाजिक न्याय में निहित है। इसके जरिये शैक्षणिक उपलब्धि, सांस्कृतिक क्षमता और आलोचनात्मक चेतना को बढ़ावा देकर विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। एरोनसन और लाफ्टर (2016) ने विभिन्न विषय क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षा के संदर्भ में शोध का एक व्यावहारिक विश्लेषण प्रदान करते हैं। इनका शोध इस बात पर जोर देता है कि मानकीकृत पाठ्यक्रम और नवउदारवादी शिक्षा सुधारों के कारण सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण की प्रभावशीलता अक्सर हाशिए पर है। सामाजिक न्याय में निहित शिक्षण की वकालत करके एरोनसन और लाफ्टर (2016) तर्क देते हैं कि सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षा व्यक्तिवादी शैक्षिक मॉडल का मुकाबला कर सकता है और कक्षाओं में सामूहिक सशक्तिकरण को बढ़ावा दे सकता है, जिससे यह विविध विद्यार्थियों आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक महत्वपूर्ण ढांचा बन जाता है (एरोनसन और लाफ्टर, 2016)। पैंग वीओ व अन्य (2021) ने बताया कि यह शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और अनुभवों को शैक्षिक प्रक्रिया में पहचानने और एकीकृत करने के महत्व पर जोर देता है। इस शिक्षण विधि में अध्यापक एक समग्र दृष्टिकोण अपनाकर कक्षा का एक अधिक आकर्षक और सार्थक शिक्षण वातावरण बना सकते हैं, जो विद्यार्थियों की व्यक्तिगत पहचान को प्रदर्शित कर सके। विद्यालयों में

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को एक पेशेवर अपेक्षा के रूप में संस्थागत बनाने पर ज़ोर देना चाहिए। यह शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान का सम्मान करके अकादमिक उपलब्धि और सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा देता है।

व्यावसायिक जिम्मेदारी के रूप में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा

पार्कहाउस व अन्य (2022) ने सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा को शिक्षकों के लिए एक पेशेवर जिम्मेदारी के रूप में संस्थागत बनाने के महत्व पर ध्यान केंद्रित किया है। इनका तर्क है कि सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षा को एक अस्थायी पहल या एक वैकल्पिक पेशेवर विकास विषय के रूप में मानने के बजाय इसे सभी शिक्षकों के लिए एक बुनियादी अपेक्षा के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए। यह संस्थागतकरण विशेष रूप से ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े समुदायों के विद्यार्थियों में उच्च शैक्षणिक प्रदर्शन और सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा का समर्थन करने वाले साक्ष्यों की भरमार के बावजूद, राजनीतिक विरोध और वैचारिक बाधाओं के कारण शैक्षणिक संस्थानों के भीतर और बाहर अभी भी प्रतिरोध है (पार्कहाउस व अन्य, 2022)। लैडसन-बिलिंग्स (2006) और अन्य के अनुसार, यह शिक्षण विधि सभी विद्यार्थियों के बीच शैक्षणिक सफलता और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देती है (पार्कहाउस व अन्य, 2022)। मार्डी शमीचेल का लेख (2012) सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षणशास्त्र को शिक्षा में प्रमुख समानता अभ्यास के रूप में खोज करता है। शमीचेल सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षणशास्त्र की वंशावली की आलोचना करते हुए तर्क देते हैं कि इसका प्रचार अक्सर सोचने की कमजोरी वाले मॉडल से उपजा है, जहां सामाजिक विभेद के आधार पर विद्यार्थियों को मूल्यवान सांस्कृतिक संपत्ति होने के बजाय सांस्कृतिक रूप से अभावग्रस्त माना जाता है।

कई अध्यापक सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षणशास्त्र को एक परिवर्तनकारी ढांचे के बजाय सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी गतिविधियों की एक चेकलिस्ट के रूप में देखते हैं, जिसके लिए गहन आलोचनात्मक चिंतन की आवश्यकता होती है (शमीचेल , 2012)। यह सीमित दृष्टिकोण सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को विद्यार्थियों की संस्कृतियों के साथ सतही स्तर की सहभागिता तक सीमित कर देता है, न कि शैक्षिक असमानताओं के मूल कारणों, जैसे कि नस्लवाद, सामाजिक भेदभाव और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को संबोधित करता है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को वास्तव में परिवर्तनकारी होने के लिए, इसे सांस्कृतिक मतभेदों को पहचानने से आगे बढ़कर शैक्षिक असमानताओं को पैदा करने वाली उत्पीड़न की प्रणालियों को सक्रिय रूप से चुनौती देनी चाहिए। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र में शिक्षा में समानता को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बनने की क्षमता है। इस शिक्षणशास्त्र को वास्तव में अपनी क्षमता को पूरा करने के लिए, शिक्षकों को इसे एक महत्वपूर्ण रुख के रूप में अपनाना चाहिए जिसमें उनके अपने पूर्वाग्रहों और शैक्षिक अनुभवों को आकार देने वाली प्रणालीगत असमानताओं पर निरंतर चिंतन शामिल है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा के संदर्भ में इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा को अधिक अनुभवात्मक, समग्र, एकीकृत, जांच-आधारित, खोज-उन्मुख, शिक्षार्थी-केंद्रित, चर्चा-आधारित, लचीला और निश्चित रूप से आनंददायक बनाने के लिए शिक्षण पद्धति विकसित होनी चाहिए। यह नीति सुझाव देती है कि इसे सभी छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली प्रदान करनी चाहिए, जिसमें ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े, वंचित और कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, चाहे उनका निवास स्थान कुछ भी हो। यह नीति मानती है कि शिक्षा सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता, समावेशन और समानता के लिए सबसे अच्छा साधन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांतों में से एक सिद्धान्त शिक्षण और सीखने में बहुभाषावाद व भाषा की शक्ति को बढ़ावा देने तथा सभी पाठ्यक्रम, शिक्षण व नीति में विविधता और स्थानीय संदर्भ के प्रति सम्मान पर ज़ोर दिया है (पृ.7)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में परिकल्पना की गई है कि संपूर्ण पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धति को बुनियादी चरण से लेकर आगे तक पुनः तैयार किया जाएगा ताकि यह संस्कृति, परंपराओं, विरासत, रीति-रिवाजों, भाषा, दर्शन, भूगोल, प्राचीन और समकालीन ज्ञान, सामाजिक और वैज्ञानिक आवश्यकताओं, सीखने के स्वदेशी और पारंपरिक तरीकों आदि के संदर्भ में भारतीय और स्थानीय संदर्भ और लोकाचार में दृढ़ता से निहित हो, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षा हमारे छात्रों के लिए अधिकतम रूप से संबंधित, प्रासंगिक, रोचक और प्रभावी हो (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, पृ. 25, पृ.17)।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र छात्रों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को स्वीकार कर उसे निर्देशात्मक रणनीतियों में शामिल करने पर जोर देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र में शामिल तकनीकों के उद्देश्यों को वास्तव में बहुसांस्कृतिक और समावेशी सीखने के माहौल को बनाने के लिए मिलकर काम करना चाहिए। जैसा कि हम सभी जानते हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षकों को ऐसी कक्षाएँ तैयार करने का निर्देश देता है जहाँ प्रत्येक छात्र को स्वीकार किया जाता है, उसकी सराहना की जाती है, और वह आगे बढ़ने के लिए तैयार होता है (चौधरी, एस., एण्ड गोपाल, पी., 2024)।

इस लेख में संस्कृति व उसके जरिये सीखने की प्रक्रिया में योगदान व सुधार के बारे में वर्णन किया गया है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को स्थान देने और इसके जरिये उनके सीखने की प्रक्रिया में सकारात्मक बदलाव पर केन्द्रित है। इस लेख में अध्यापकों के विकास संबंधी विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दों पर बात की गयी है। साथ ही यह शिक्षण में नवउदारवाद के प्रभाव को भी प्रदर्शित करता हैं। इसमें सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र से बारे में अध्यापकों को ध्यान में रखकर विविध पहलुओं पर विचार किया गया है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र को शिक्षा के एक आवश्यक घटक के रूप में औपचारिक रूप दिये जाने की ओर अभिप्रेरित करता है, साथ ही शिक्षकों के लिए सतत व्यावसायिक विकास और असमानता का समर्थन करने वाली गतिविधियों व संरचनाओं को समझाया गया है। इस शिक्षण का उपयोग विद्यार्थियों के प्रदर्शन को बढ़ाने के साथ-साथ एक अधिक न्यायसंगत और समावेशी समाज का निर्माण करने में सकारात्मक रूप से किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. Aronson, B. A. (2020). From Teacher Education to Practicing Teacher: What Does Culturally Relevant Praxis Look Like? *Urban Education*, *55*(8–9), 1115–1141. https://doi.org/10.1177/0042085916672288
2. Chaudhary, S., & Gopal, P. (2024). Guiding Culturally Responsive Pedagogy in the Classroom with Textbooks. *Library Progress International*, *44*(3), 25259-25270.
3. Ladson-Billings, G. (1995). Toward a theory of culturally relevant pedagogy. *American Educational Research Journal*, 32(3), 465-491.
4. Morrison, K. A., Robbins, H. H., & Rose, D. G. (2008). Operationalizing culturally relevant pedagogy: A synthesis of classroom-based research. Equity & Excellence in Education, 41(4), 433–452. https://doi.org/10.1080/10665680802400006
5. *National Education Policy 2020*. (n.d.). Ministry of Education. Retrieved December 1, 2024, from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
6. Parkhouse, H., Bennett, E., Pandey, T., Lee, K., & Wilson, J. (2022). Culturally relevant education as a professional responsibility. *Educational Researcher*, 51(7), 474–480. https://doi.org/10.3102/0013189X221092390
7. Rajagopal, K. (2011). Create success: Unlocking the potential of urban students. Alexandria, VA: Association for Supervision and Curriculum Development.
8. Savage, C., Hindle, R., Meyer, L. H., Hynds, A., Penetito, W., & Sleeter, C. E. (2011). Culturally responsive pedagogies in the classroom: Indigenous student experiences across the curriculum. *Asia-Pacific Journal of Teacher Education*, *39*(3), 183–198. https://doi.org/10.1080/1359866X.2011.588311
9. Siwatu, K. O. (2011). Preservice Teachers' Culturally Responsive Teaching Self-Efficacy-Forming Experiences: A Mixed Methods Study. *The Journal of Educational Research*, *104*(5), 360–369. https://doi.org/10.1080/00220671.2010.487081
10. Sleeter, C. E. (2012). Confronting the Marginalization of Culturally Responsive Pedagogy. *Urban Education*, *47*(3), 562–584. https://doi.org/10.1177/0042085911431472

33

श्रीरामचरितमानस में वर्णित राजनीतिक तत्वों की विवेचना

सिम्मी गुप्ता

शोधार्थी, बी.एड./एम.एड. विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

प्रोफेसर प्रवीण कुमार तिवारी

आचार्य, शिक्षा विभाग (केंद्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राचीन काल से ही भारत में साधना को सर्वोपरि स्थान दिया गया है और इस साधना के द्वारा लौकिक और पारलौकिक दोनों जीवन में एक आदर्श संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया जाता रहा है। हमारी प्राचीन संस्कृति द्वारा अनुसरित पारलौकिक पथ को लौकिक माध्यमों से प्राप्त करने की आशा की गई। समाज में स्थापित वर्णाश्रम व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्थाएँ, धर्म, नीति और परम्पराओं के पालन के द्वारा ही जीवन मुक्ति की संभावनाएँ व्यक्त की गई। हमारी समृद्ध परम्परा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की संसिद्धि को मानव जीवन का पुरुषार्थ माना गया और इन पुरुषार्थों की प्राप्ति को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पक्ष के सामंजस्य पर आधृत माना गया। इसी परम्परा का सुन्दरता के साथ निर्वहन गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस में करते हैं और समन्वयात्मक सिद्धि के मार्ग को निरावृत करते हैं। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि श्रीरामचरितमानस को एक पर्णकुटी से लेकर महल तक एक विशेष आदर दिया जाता है। रामचरितमानस जैसे दिशाबोधक ग्रन्थ शताब्दियों में एकाध बार ही रचित किये जाते हैं, जो प्रत्येक क्षेत्र को आलोकित करने का सामर्थ्य रखते हैं और राजनीति भी इससे प्रेरणा पाती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने समय की उपज होता है, तुलसीदासजी ने जिस समय श्रीरामचरितमानस की रचना की उस समय समाज में अराजकता का वातावरण था। मुगलों के अत्याचार से समाज त्रस्त था। प्रजा को पुत्रवत स्नेह करने वाली राजा के कर्तव्यों की परम्पराएँ विध्वंस हो चुकी थी। उस समय हमारी विरासत और संस्कृति को इतना आघात पहुँचा था, जिसकी छाप यदा-कदा हमें आज भी देखने को मिल जाती है। इतने घोर विपरीत समय में तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस के रूप में जो अमृत वर्षा की, सदियों तक भारतीय जनमानस इस वर्षा से अपने आदर्शों की भूमि को सिंचित करता रहेगा और उनका सदैव ऋणी रहेगा। श्रीरामचरितमानस आदर्शों के प्रतिस्थापना की दृष्टि से बहुआयामी ग्रन्थ है, ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी ने अपनी रचना के माध्यम से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से परिवार, समाज, देश और प्रत्येक व्यक्ति को सुधारने का मार्ग प्रस्तुत किया है। धर्म और राजनीति को समन्वित रूप से प्रस्तुत करते हुए उच्चतम आदर्श स्थापित किये हैं। प्रत्येक सोपान (काण्ड) राजनीति अथवा राजा से सम्बन्धित

आदर्शों की प्रतिस्थापना व्यावहारिक रूप में करता है। इस पत्र में श्रीरामचरितमानस में वर्णित राजनीति के स्वरुप की विवेचना कुछ बिंदुओं के माध्यम से की गयी है।

रामचरितमानस में वर्णित राज्य, राजा एवं उनकी व्यवस्थाएँ:

सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाए तो तुलसीदासजी ने राजा एवं राजनीति की मुख्यतः राजतंत्रात्मक प्रणाली को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार राजा को ईश्वर का अंश समझा जाता है। राजा के रुप में दक्ष, मनु, प्रतापभानु ,राजा जनक, रावण आदि विभिन्न पात्रों की क्रियाओं द्वारा राजा के गुण, अवगुण, पालक, संहारक दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है। इन्हीं राजाओं के द्वारा राजनीति के अनेकानेक तत्वों के बृहद रूप में दर्शन होते हैं। बालकाण्ड में राजा प्रतापभानु के माध्यम से तुलसीदासजी एक अत्यंत महत्वपूर्ण नीति की ओर इशारा करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी साम्राज्यवाद के विरोधी थे परन्तु एक सार्वभौम राज्य प्रतिष्ठित करने के पक्षधर थे, वे लिखते हैं-

सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे।
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला।। (श्रीरामचरितमानस 1/154/4)

अर्थात् अपनी भुजाओं के बल से उसने सातों द्वीपों को वश में कर लिया और राजाओं से कर ले-लेकर उन्हें छोड़ दिया। सम्पूर्ण पृथ्वीमंडल का उस समय प्रतापभानु ही एकमात्र चक्रवर्ती राजा था।

इस प्रकार विजित प्रदेशों को अपने राज्य का अंग बनाना कुशल राजा एवं राजनीति का भाग नहीं है अपितु राज्यों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है, किन्तु उसी राज्य के योग्य व्यक्ति को वहाँ का राजकार्य सौंप देना अधिक उचित निर्णय है। मानस के प्रारंभ में तुलसीदासजी ने प्रतापभानु की नीतियों को इसी प्रकार का बताया है और अंत में श्रीरामजी ने भी इस नीति का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया है बालि का राज्य सुग्रीव की सौंपकर और लंका का राज्य विभीषण को सौंपकर।

तुलसीदासजी श्रेष्ठ राजा उसको मानते हैं जिसके राज्य में प्रजा सुखी है। राजा प्रतापभानु के राज्य का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं-

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई।।
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुन्दर नर नारी।। (श्रीरामचरितमानस 1/155/1)

अर्थात् राजा प्रतापभानु का बल पाकर भूमि सुंदर कामधेनु हो गयी। उनके राज्य में प्रजा सब दुखों से रहित और सुखी थी, सभी स्त्री पुरुष सुंदर और धर्मात्मा थे।

चारों राजकुमारों के विवाहोपरान्त जब महाराज दशरथ ने श्रीराम को युवराज बनाने का विचार किया तो उनकी यह अभिलाषा तब तक मूर्त रुप न पा सकी जब तक गुरु वशिष्ठ और सचिव सुमन्त्र आदि की सहर्ष स्वीकृति नहीं प्राप्त हुई, अयोध्याकाण्ड में वर्णन आता है-

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी।
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू।। (श्रीरामचरितमानस 2/4/1)

अर्थात् अपनी समझ में गुरुजी को सब प्रकार से प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा कोमल वाणी से बोले। हे नाथ! श्रीरामचंद्र को युवराज कीजिए। कृपा करके आज्ञा दीजिये तो तैयारी की जाए।

इस प्रकार गुरु वसिष्ठ की अनुमति प्राप्त होने पर ही राजा दशरथ सेवक, सचिव और सुमन्त्र के सम्मुख अपना प्रस्ताव रखते हैं-

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका।। (श्रीरामचरितमानस 2/5/2)

अर्थात् यदि पंचों को यह मत अच्छा लगे तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्री रामचन्द्र जी का राजतिलक कीजिये।

श्रीरामचरितमानस में स्पष्ट वर्णन मिलता है कि ऋषि, मुनि अथवा तपस्वी वन में रहकर राजनीति के प्रति उदासीन नहीं रहा करते थे, अपितु राजनीति में उनका सक्रिय योगदान रहता था। महाराज दशरथ, महर्षि वशिष्ठ के परामर्श को सर्वोपरि रखते थे और प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णय में उनकी सहमति अवश्य ली जाती थी। विश्वामित्र जी, असुरों के संहार करने के लिए सहायता प्राप्ति हेतु महाराज के समक्ष आते हैं और राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं, उन्हें विभिन्न प्रकार की विद्याओं की शिक्षा देते हैं। ऋषि-मुनि केवल तप, व्रत, नियम आदि ही नहीं जानते थे अपितु वे शस्त्र और शास्त्र दोनों में पारंगत होते थे। चित्रकूट प्रसंग के समय महर्षि वशिष्ठ, भरत के विनती करने से पूर्व श्रीराम को परामर्श देते हैं कि मात्र प्रजा को सुखी रखने से ही राज कर्तव्य की इति श्री नहीं होती-

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।। (श्रीरामचरितमानस 2/258)

उनके इस वक्तव्य के द्वारा एकतंत्र शासन की निरंकुशता का निषेध हो जाता है और सुराज्य के साथ-साथ स्वराज्य की झलक भी देखने को मिलती है। इसी प्रकार तुलसीदासजी ने श्रीराम के वनवास के समय का बहुत सुंदर वर्णन किया है। श्रीराम का वनवास काल कुछ इस प्रकार व्यतीत होता है, जिसके माध्यम से उनकी नीतियाँ एवं आदर्श परिलक्षित होते हैं। तुलसीदासजी लिखते हैं कि श्रीराम ने वन की संस्कृति एवं सभ्यता को जिस सहजता एवं मधुरता के साथ अपनाया है, वह प्रशंसनीय एवं समानता के सिद्धांत का अनुगामी है। दूसरी ओर तुलसीदासजी अहंकारी रावण के राज्य की स्थिति का वर्णन करते हैं, जहाँ न तो विद्वानों का सम्मान है, न ही सदाचार, धर्म, नीति आदि का कोई स्थान। रावण का अहंकेंद्रित स्वभाव एवं शासन व्यवस्था ही उसके समूल विनाश का कारण बनी।

श्रीरामचरितमानस के अनुसार एक आदर्श राजा के वैयक्तिक गुण:

तुलसीदासजी के समय में घोर अराजकता का वातावरण था, छल-कपट, द्वेष और प्रजा की दुर्दशा चरम पर थी। स्पष्ट रूप से शासकों के लिए कुछ भी कहना उन्हें चुनौती देने के समान संहारक सिद्ध हो सकता था। अतः उन्होंने छिट-पुट तरीके से अनेकों स्थान पर अप्रत्यक्ष रूप से ही उपर्युक्त सन्दर्भ के पक्ष में बोला। अयोध्याकाण्ड, जोकि त्याग और वैराग्य का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है, इसमें तुलसीदासजी ने राज, नीति और धर्म का सार ही लिख दिया है। जब भ्राता भरत, वनवास के समय श्रीराम को अयोध्या वापस लाने के लिए चित्रकूट जाते हैं तो श्रीराम उन्हें समझा-बुझाकर अयोध्या वापस भेजने लगते हैं और इस प्रकार राज, नीति और धर्म की शिक्षा देते हैं। राजा को मुख की उपमा

देते हुए तुलसीदासजी ने बहुत ही सुंदर और जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया है जो एक कुशल राजा के विभिन्न गुणों का वर्णन करता है-

मुखिआ मुख सो चाहिए खान पान कहूँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक।। (श्रीरामचरितमानस 2/315)

अर्थात् तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया, मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक अकेला है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

इस प्रकार श्रीराम के नीति वाक्यों के माध्यम से तुलसीदासजी स्पष्ट करते हैं कि राजा के द्वारा लिया गया प्रजा का धन आदि उसके व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति हेतु नहीं होने चाहिए, इसका प्रयोग राजा को विवेकपूर्वक प्रजा के पालन-पोषण में करना चाहिए। इससे पूर्व तुलसीदासजी ने बालकाण्ड में शिव-सती विवाह प्रकरण में प्रजापति दक्ष के अहंकारी व्यवहार का वर्णन किया है, जो अपने समक्ष सभी को तुच्छ मानते हैं और अंततः इसका दुष्परिणाम भोगते हैं। तुलसीदासजी ने राजा के व्यवहार में अहंकार को अवांछनीय बताया है। प्रजापति दक्ष और लंकापति रावण के मन में उपजे अहंकार ने महाज्ञानी होते हुए भी दोनों के विनाश का मार्ग प्रशस्त किया। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड में ही श्रीराम का निषादराज गुह के साथ मित्रवत स्वभाव उन्हें वनवासियों के मध्य प्रिय बना देता है। अयोध्याकाण्ड में वर्णन आता है कि निषादराज आनंदित होकर अपने भाई-बंधुओं और समाज सहित श्रीराम से मिलते हैं-

करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें।।
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूछी कुसल निकट बैठाई।। (श्रीरामचरितमानस 2/88/2)

अर्थात् दण्डवत् करके भेंट सामने रखकर वे (निषादराज) अत्यंत प्रेम से प्रभु को देखने लगे। श्रीरघुनाथजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उन्हें अपने पास बैठाकर कुशल पूछी।

इस प्रकार श्रीराम के मिलन में किसी प्रकार का भेदभाव प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार की समानता के भाव का दर्शन सुग्रीव के साथ मित्रता में देखने को मिलता है, किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत संदर्भ आता है कि जब सुग्रीव ने श्रीराम से अपनी समस्त समस्याओं का बखान किया तो श्रीराम ने उसे धीरज बंधाया और कहा-

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें।। (श्रीरामचरितमानस 4/7/5)

अर्थात् मेरे बल पर अब तुम सोचना छोड़ो, मैं तुम्हारे सब प्रकार से काम करूंगा।

इस प्रकार तुलसीदासजी ने श्रीराम की नीतियों को समाज के वंचित वर्ग को आश्रय प्रदान करने वाला बताया है। श्रीराम की राजनीति साम्य पक्ष का आश्रय लेकर आरंभ होती है जब वे अपने वनवास के समय निषाद जाति के प्रदेश में पहुंचकर निषादराज को अपने समीप आसन देते हैं, तब उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार से संपूर्ण जाति उन पर मोहित हो जाती है और समस्त ग्रामीणवासियों में उनके दर्शन की लालसा जागृत हो जाती है। यद्यपि श्रीराम ने साम्य पक्ष के आश्रय पर आधारित राजनीति के साथ अन्य नीतियों का भी आश्रय लिया जो राक्षसों के संहार के लिए आवश्यक था। सूर्पनखा द्वारा विवाह प्रस्ताव रखने पर संकेत करके लक्ष्मण द्वारा नाक-कान कटवाना, बालि का वध करना, कुछ ऐसे ही नीतियों के उदाहरण हैं, जिनके अंतर्गत श्रीराम ने धर्म की ओट में रहकर अपनी क्रियाओं को नीतिपरक सिद्ध करने का प्रयास किया है। श्रीराम का राजनीतिक चरित्र सीख देता है कि शत्रु को निर्बल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि

अन्य जातियों को अपना मित्र बनाया जाए, उनसे उनके विचारानुरुप परामर्श लिया जाए। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में विशिष्ट होता है, धर्म एवं नीति की राह पर चलकर उसकी विशिष्टता से स्वयं भी लाभ लिया जा सकता है और उसको भी लाभान्वित किया जा सकता है। गिद्धराज जटायु, वानरराज सुग्रीव और शबरी का आश्रय कुछ इसी प्रकार की नीतियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार नीति और अनीति की राह की सुन्दर विवेचना सुन्दरकाण्ड में हनुमानजी के द्वारा की गई है। उनके द्वारा आवश्यकता एवं समय अनुरुप बल-विद्या आदि का प्रयोग कुशल राजनीति की ही एक सुंदर प्रस्तुति है। उदाहरण के रूप में सुंदरकांड में वर्णित संदर्भ है कि उन्होंने प्रारंभ से लेकर अंत तक आवश्यकतानुसार लघु एवं विशाल रुप धारण किया-

सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ।। (श्रीरामचरितमानस 5/2/4)

अर्थात् जब हनुमान जी समुद्र पारकर माता सीता का पता लगाने जा रहे होते हैं तो देवताओं द्वारा उनकी बल-बुद्धि की परीक्षा लेने हेतु सर्पों की माता सुरसा को भेजा जाता है, जब वह हनुमान जी को खाने के लिए अपना मुख सोलह योजन का कर लेती है, तो हनुमान जी तुरंत बत्तीस योजन के हो जाते हैं। इससे पूर्व हनुमान जी उससे विनयपूर्वक कहते कि पहले मैं अपने प्रभु का काम करके आ जाऊं तभी तुम मुझे खा लेना, लेकिन वह हनुमानजी की विनती पर कोई ध्यान नहीं देती है और अंततः हनुमान जी को अपनी विद्या का प्रयोग करना पड़ता है। पुनश्च-

सत जोजन लेहि आनन कीन्हा। अति लघुरूप पवनसुत लीन्हा।। (श्रीरामचरितमानस 5/2/5)

अर्थात् सुरसा ने सौ योजन (चार सौ कोस) का मुख किया। तब हनुमान जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया। इस प्रकार हनुमान जी उसके मुख में जाकर बाहर आ जाते हैं और अपनी परीक्षा में सफल होते हैं तथा लंका के द्वार पर पहुच जाते हैं। इस संबंध में कई और संदर्भ मिलते हैं-

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।। (श्रीरामचरितमानस 5/3)

नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर हनुमान जी ने मन में विचार किया कि अत्यंत छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ क्योंकि विशाल रूप में जाने पर सबको दिख जाता।

मसक समान रूप काप धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।। (श्रीरामचरितमानस 5/4/1)

अर्थात् हनुमान जी ने मच्छर के समान छोटा सा रूप धारण कर नररूप से लीला करने वाले भगवान श्रीरामचंद्र जी का स्मरण करके लंका को चले।

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।। (श्रीरामचरितमानस 5/5/2)

अर्थात् हनुमान जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

गहनता से यदि विचार किया जाए तो हनुमान जी को रोकने का सामर्थ्य किसी में नहीं था चाहे वे विशाल रूप में अथवा अपने स्वाभाविक रूप में लंका में प्रवेश करते। यहाँ पर हनुमान जी का चरित्र आवश्यकता अनुरूप अपनी शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग करने की प्रेरणा देता है। किसी भी कुशल राजनीतिज्ञ को अपनी शक्ति का अनावश्यक प्रदर्शन करने से बचना चाहिए। आगे वर्णन आता है माता सीता को हनुमान जी के सौम्य और लघु रूप को देखकर

संदेह हो जाता है कि इन जैसे वानरों की सेना की सहायता से प्रभु श्रीराम रावण को कैसे पराजित करेंगे? इस संदेह को दूर करने के लिए हनुमान जी अपना रूप माता सीता को दिखाते हैं-

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा।। (श्रीरामचरितमानस 5/16/4)

अर्थात् उनका सोने के पर्वत (सुमेरु) के आकार का अत्यंत विशाल शरीर है, जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाला, अत्यंत बलवान और वीर स्वरूप है।

इस प्रकार माता का संदेह दूर हो जाने के पश्चात पुनः वे अपने लघु रूप में आ जाते हैं। इसी प्रकार हनुमानजी का अपमान करने के उद्देश्य से उनकी पूँछ में आग लगा दी जाती है, लेकिन शत्रुओं से घिरे होने पर भी वे बुद्धिमत्ता से काम लेते हैं और पुनः अपना रूप छोटा करके रावण की पूरी लंका और उसके अभिमान को जला डालते हैं।

पावक जरत देख हनुमंता । भयउ परम लघु रुप तुरंता।। (श्रीरामचरितमानस 5/25/4)

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रुप बहोरि। (श्रीरामचरितमानस 5/26)

अर्थात् पूँछ को समुद्र में बुझाकर थकावट दूर करके और पुनः छोटा रूप धारण कर हनुमानजी, श्रीजानकी जी के सामने जाकर खड़े हो गए।

एक कुशल राजनीतिज्ञ की दृष्टि प्रतिकूलताओं में भी अनुकूलता खोज ही लेती है। रावण की पापों से भरी लंका में विभीषण का खोजना हनुमान जी की कुछ इसी प्रकार की चातुर्यता का उदाहरण है, जिसके परिणाम बहुत दूरगामी सिद्ध हुए। हनुमान जी विचार करते हैं कि

एहि सन हठ करिहौं पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।। (श्रीरामचरितमानस 5/6/2)

अर्थात् साधु से हठ करके (अपनी ओर से) जान पहचान करने से भी कार्य में हानि नहीं होती, वरन् लाभ ही होता है। उनकी यह सोच राजनीति में नैतिकता, विनम्रता के भाव की प्रतिस्थापना करती है।

एक कुशल राजनीतिज्ञ की भांति श्रीराम की नीतियों ने सर्वत्र प्रसन्नता एवं आनंद का संचार किया। श्रीराम का विभीषण के प्रति शरणागति का भाव और उनके साथ की गयी मित्रता और आते ही शीघ्र समुद्र जल से उनका राज्याभिषेक करना, श्रीराम की कुशल राजनीति का ही एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। सुन्दरकाण्ड में ही वर्णन आता है कि विभीषण के भक्ति मांगने पर ऐसा ही हो कहकर प्रभु श्रीराम ने तुरंत ही समुद्र का जल माँगा–

एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिन्धु कर नीरा।।

अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा।। (श्रीरामचरितमानस 5/49क/4-5)

अर्थात् श्रीराम ने एवमस्तु कहते हुए समुद्र का जल मँगाया और उस जल से विभीषण का राजतिलक कर दिया, आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई।

विभीषण के साथ इस मित्रता को और भी अधिक प्रबल बनाते हुए उन्हें अपने मंत्रिमण्डल का एक मंत्री मानते हुए श्रीराम ने विभीषण से समुद्र पार करने का परामर्श माँगा और उसका पालन भी किया-

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक।

जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई।। (श्रीरामचरितमानस 5/50/4)

अर्थात् विभीषण ने कहा कि हे रघुनाथ जी, सुनिए यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रों को सोखने वाला है, तथापि नीति ऐसी कही गयी है कि पहले सागर से जाकर विनय की जाए। इसके उत्तर में श्रीराम कहते हैं-

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई।। (श्रीरामचरितमानस 5/50/5)

अर्थात् हे सखा तुमने अच्छा उपाय बताया। यदि दैव सहायक हों तो यही कर लिया जाय।

श्रीराम की यह नीति सर्वसामर्थ्य होते हुए भी धर्म की राह पर चलकर किसी राजनीतिक समस्या के समाधान की सीख देती है। एक अन्य महत्वपूर्ण गुण जो श्रीराम की कुशल राजनीति का परिचय देता है कि सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानस में उन्होंने अपने प्रत्येक मंत्री, सचिव, प्रजाजन की परामर्श को महत्व दिया और आदर के साथ पालन किया; दूसरी ओर रावण ने प्रत्येक कदम पर अपने योग्य मंत्रियों के परामर्श की अवहेलना की। अहंकारवश उसे अपने आस-पास रहने वाले सचिव, मंत्रियों और अपने भाई के सद्गुण दिखना बंद हो जाते हैं।

सुन्दरकाण्ड का अंतिम अंश राजनीति में साम, दान, दण्ड और भेद चारों नीतियों के यथासमय पालन की सीख देता है, जिसमें एक राजा का पारंगत होना बहुत आवश्यक है। तीन दिन विनय करने के पश्चात भी जब समुद्र की ओर से कोई रास्ता नहीं मिलता है तो श्रीराम को क्रोध आ जाता है और वे दण्ड नीति का पालन करते हैं-

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।। (श्रीरामचरितमानस 5/57)

अर्थात् जड़ जलधि जब तीन दिनों से की जा रही प्रार्थना को नहीं माना, तब श्रीराम क्रोधपूर्वक बोले कि बिना भय के प्रीति नहीं हो सकती।

वे आगे कहते हैं कि-

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू।।

सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती।। (श्रीरामचरितमानस 5/57/1-2)

लक्ष्मण! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाण से समुद्र को सुखा दूँगा। दुष्ट से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूस से सुंदर नीति की बात कहना व्यर्थ है।

तुलसीदासजी ने एक आदर्श राजा की चारों नीतियों का वर्णन सूक्ष्म रूप से अन्यत्र भी किया है। बालिपुत्र अंगद जब दूत बनाकर रावण के दरबार में भेजे जाते हैं तो वे रावण समेत समस्त राक्षस कुल का गर्व चूर कर देते हैं और प्रतीक स्वरूप रावण के चार मुकुटों को श्री श्रीराम के चरणों में अर्पण कर देते हैं। श्रीराम के कारण पूछने पर अंगद उत्तर में कहते हैं-

सुन सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी।।

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।।

नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए।। (श्रीरामचरितमानस 6/38 क/8-10)

अर्थात् हे सर्वज्ञ! हे शरणागत को सुख देने वाले! सुनिए! वे मुकुट नहीं है, वे तो राजा के चार गुण है। हे नाथ! वेद कहते हैं कि साम, दान, दण्ड, और भेद ये चारों राजा के हृदय में बसते हैं। ये नीति-धर्म के चार सुन्दर चरण हैं, किन्तु रावण में धर्म का अभाव है, ऐसा जानकर ये सभी मुकुट के रूप में नाथ के पास आ गए हैं।

इसी प्रकार किष्किन्धाकाण्ड में भी एक स्थान पर इन चारों नीतियों का सूक्ष्म रूप से वर्णन आता है, जब वानरराज सुग्रीव वर्षा ऋतु बीत जाने पर एवं शरद् ऋतु आ जाने पर भी अपने वचन के अनुसार माता सीता की खोज हेतु कोई यत्न नहीं करते हैं, और अपने विषय रस में उलझकर श्रीराम को भूल जाते हैं। तुलसीदासजी लिखते हैं-

निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।। (श्रीरामचरितमानस 4/19/2)

अर्थात् हनुमान जी ने सुग्रीव के पास जाकर उसके चरणों में सिर नवाया साम, दान, दण्ड, और भेद चारों प्रकार की नीति कहकर उसे समझाया।

इस प्रकार हनुमान जी के समझाने पर सुग्रीव अपनी भूल स्वीकार करते हैं और श्रीराम से क्षमा मांगते हैं। अपनी भूल सुधार हेतु पूरे मनोयोग से प्रभु के काज हेतु अपनी समस्त सेना को सज्ज करने लगते हैं।

इस प्रकार एक आदर्श राजा के रूप में श्रीराम व्यक्ति की प्रवृत्ति के अनुरूप उसके साथ आचरण करने की सीख देते हैं। इसी प्रकार अनेकानेक सदवृत्तियों पर आधारित नीतियों से श्रीराम ने रावण और उसकी अन्याय से भरे राज्य का समूल विनाश किया और रामराज्य की स्थापना की।

राजा और उसके मंत्रिपरिषद् के परस्पर सम्बन्ध और दायित्व:

बालकाण्ड में महाराज दशरथ के द्वारा प्रत्येक निर्णय पर अपने मंत्रियों से परामर्श उनकी कुशल राजनीति का ही परिचायक है। उनकी इन्हीं नीतियों ने अयोध्या नगरी के नाम को सार्थकता प्रदान की। अयोध्या अर्थात् जिसे जीता न जा सके। उनके प्रिय मंत्री सुमंत्र उनके परिवार के ही एक सदस्य प्रतीत होते है। तुलसीदासजी ने सुमंत्र जी की महत्वपूर्ण भूमिका को बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रभु श्रीराम के वनवास जाते समय महाराज दशरथ सुमंत्र जी को ही नियुक्त करते हैं कि उन्हें रास्ते से ही समझा-बुझाकर वापस ले आएँ। सुमन्त्र जी का उत्तरदायित्व, महाराज दशरथ का उनके प्रति प्रेम और विश्वास की सुंदर झांकी प्रस्तुत करता है।

अयोध्याकाण्ड में वर्णन आता है कि जब भ्राता भरत, श्रीराम को अयोध्या वापस लाने के लिए चित्रकूट जाते हैं तो श्रीराम और उनके मध्य बहुत ही गंभीर, प्रेमरस से परिपूर्ण संवाद होता है। राजनीति और धर्म की शिक्षा देकर श्रीराम भरत को वापस अयोध्या भेज देते हैं। श्रीराम द्वारा दी गयी यह शिक्षा राजा और उसके मंत्रिमंडल के अन्योन्याश्रित संबंधों को अत्यंत सुंदर ढंग से प्रस्तुत करती है-

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ।। (श्रीरामचरितमानस 2/306)

अर्थात् सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिए। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं।

यद्यपि भरत जी किसी भी स्थिति में अयोध्या का राज्य स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे श्रीराम उनकी मनोदशा समझते हुए पुनश्च कहते हैं कि

मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहूँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक।। (श्रीरामचरितमानस 2/315)

अर्थात् तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक अकेला है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

शरीर एवं पोषण विज्ञान की सुंदर उपमा देते हुए तुलसीदासजी कहते हैं कि संपूर्ण समाज एक शरीर है मुखिया उसका मुख है संपूर्ण शरीर प्रयत्न करके जो कुछ अर्जन करता है उसे मुख को अर्पण करता है। मुख उसे कूट-पीसकर पाचन तंत्र मन्त्रिमण्डल आदि के सुपुर्द करता है। वहाँ से रस रक्तादि अर्थात सभी के लिए योग्य पोषण व अर्थ-कामादि की व्यवस्था के माध्यम से यथायोग्य सब अंगों का पोषण करता है। मुख अपने पास कुछ भी नहीं रखता, जिस रस से आँख का पोषण होता है वह उसे मिले और जो नख के पोषण के लिए आवश्यक है वह उसे मिले। इस विवेक में तनिक सी ढिलाई पड़ने से समाजरूपी शरीर का ही नाश हो जाता है। इस प्रकार राजा और उनके मंत्रियों का परस्पर स्वस्थ सम्बन्ध ही एक स्वस्थ राजनीति अथवा स्वस्थ समाज का आधारस्तंभ है।

आगे वर्णन आता है, श्रीराम के वनवास के समय के उस मंत्रिमंडल (वानर और भालुओं की) का जिसे तत्कालीन समाज और राजनीति में कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं था। उनके इस मंत्रिमंडल में प्रत्येक व्यक्ति को यथोचित सम्मान दिया गया और उसके परामर्श को महत्व दिया गया।

अयोध्याकाण्ड में तुलसीदासजी ने सूत्र रूप में मंत्री, सचिव आदि की महत्ता का वर्णन किया है तो सुन्दरकाण्ड में कार्य-रूप में इस सूत्र की परिणति दर्शायी गई है। सचिव व मंत्रियों का परामर्श राजनीति का एक महत्वपूर्ण अंश है। जब श्रीराम की सेना समुद्र पार आ जाती है तो रावण के मंत्री आदि उसे साधारण सी घटना मानकर टाल देते हैं-

बैठउ सभाँ खबरि असि पाई। सिन्धु पार सेना अब आई।।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।। (श्रीरामचरितमानस 6/37/4)

अर्थात्ज्यों ही वह सभा में जाकर बैठा,उसने ऐसी खबर पायी कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गयी है। उसने मंत्रियों से पुछा उचित सलाह कीजिए। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किये रहिये (इसमें सलाह की कौन सी बात है)। तुलसीदासजी मंत्रियों के इस प्रकार के व्यवहार को एक विष के समान बताते हुए आगे कहते हैं-

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।। (श्रीरामचरितमानस 6/37)

अर्थात् मंत्री, वैद्य और गुरु ये तीनों यदि भय या लोभ से हित की बात न कहकर प्रिय बोलते हैं, ठकुरसुहाती करने लगते हैं, तो क्रमशः राज्य, शरीर और धर्म इन तीनों का शीघ्र नाश हो जाता है।

यद्यपि रावण की सभा में कुछ भले और योग्य मंत्री भी थे, किन्तु उनके परामर्श का रावण ने अपने मद में कोई मूल्य नहीं समझा। माल्यवंत और विभीषण के परामर्श की अवहेलना एवं उनका अपमान रावण के लिए घातक सिद्ध हुआ। वे दोनों ही मान, मोह, मद त्यागकर रावण को कोसलपति श्रीराम का भजन करने का परामर्श देते हैं। सुन्दरकाण्ड में ही वर्णन आता है-

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना।
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन।। (श्रीरामचरितमानस 5/40/1)

अर्थात् माल्यवन्त नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान मन्त्री था। उसने विभीषण के वचन सुनकर बहुत सुख माना और कहा कि आपके छोटे भाई नीति विभूषण हैं। वे जो कह रहे हैं, उसे हृदय में धारण कीजिए।

रावण उत्तर स्वरूप दोनों मंत्रियों का अपमान करते हुए कहता है-

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ।। (श्रीरामचरितमानस 5/40/2)

अर्थात् रावण ने कहा कि ये दोनों मूर्ख, शत्रु की महिमा का बखान कर रहे हैं, इन्हें यहाँ से कोई दूर करो। अहंकार में अन्धा रावण सभी नीतियों को दरकिनार करते हुए विभीषण को अपमानित करता है-

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।। (श्रीरामचरितमानस 5/41/3)

इस प्रकार रावण की नीतियों ने उसके विनाश का मार्ग प्रशस्त किया, जबकि श्रीराम की नीतियों ने सर्वत्र आनन्द और प्रसन्नता का संचार किया। लंकाकाण्ड के प्रकरण में भी राजनीति के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को व्यावहारिक रूप से देखा जा सकता है। सर्वसामार्थ्यवान होते हुए भी श्रीराम द्वारा अपने वयोवृद्ध मंत्री जामवंत से परामर्श लेना और उनके कहे अनुसार बालिपुत्र अंगद को दूत के रूप में लंका भेजना एक कूटनीति का ही भाग है। जामवंत जी कहते हैं-

मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालिकुमारा।। (श्रीरामचरितमानस 6/17 क/2)

अर्थात् मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिपुत्र अंगद को दूत बनाकर भेजा जाय।

श्रीराम के सम्पूर्ण मंत्रिमंडल द्वारा पूर्ण सम्मान के साथ इस परामर्श का पालन किया जाता है और बालिकुमार अंगद भी अपने उत्तरदायित्व को अत्यंत सुन्दरता के साथ पूर्ण करते हैं। चतुराई के साथ अपना परिचय देते हुए अंगद ने सभी प्रकार से रावण का मानमर्दन करने का सुन्दर प्रयास किया। तुलसीदासजी लिखते हैं-

बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।

प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस।। (श्रीरामचरितमानस 6/23ङ)

अर्थात् वक्रोक्ति रुपी धनुष से वचन रुपी बाण मारकर अंगद ने शत्रु का हृदय जला दिया। वीर रावण उन बाणों को मानो प्रत्युत्तर रुपी सड़सियों से निकाल रहा हो। इसी निरंतर श्रृंखला में अंगद पुनः एक शक्तिशाली बाण रुपी वचन बोलते हैं-

एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा।।

कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा।। (श्रीरामचरितमानस 6/24/8)

अर्थात् एक रावण को सहस्त्रबाहु ने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकार के विचित्र जंतु की तरह पकड़ लिया। तमाशे के लिए वह उसे घर ले आया, तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया।

आगे की पंक्तियों में अंगद स्वयं के पिता बालि के बल का और रावण के साथ घटित उस घटना का वर्णन करते हैं जिसको सुनकर रावण को लज्जा महसूस होने लगती है। तुलसीदासजी लिखते हैं-

एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं काँख।

इन्ह महूँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख।। (श्रीरामचरितमानस 6/24)

अर्थात् एक रावण की बात कहने में तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। वह बहुत दिनों तक बालि की काँख में रहा था। इनमें से तुम कौन से रावण हो? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ।

इस प्रकार परस्पर उत्तर-प्रतिउत्तर की श्रृंखला में अंगद का आत्मविश्वास और साहस एक क्षण के लिए भी नही डोला और अंततः उन्होंने अपना पैर रावण की सभा में जमा दिया जिसको हिलाने में रावण के सभी महारथी असफल रहे। वस्तुतः अंगद का पैर श्रीराम और उनकी समस्त सेना के संकल्प की भाँति अडिग था। इस प्रकार अंगद का चरित्र शत्रु के गर्व का दमन करने की नीति सिखलाता है।

रावण के पास तत्कालीन राज्य का सर्वशक्तिशाली मंत्रिमंडल था किन्तु उसके अहंकार ने और मंत्रियों की चाटुकारिता ने लंका के समूल विनाश का मार्ग प्रशस्त किया। कभी मंत्री अपने कर्तव्य पथ से भटके तो कभी रावण उनकी योग्यताओं से लाभ नहीं उठा पाया। दूसरी ओर श्रीराम के सौम्य और सरल स्वभाव ने समस्त वानर और भालू की सेनाओं में उन्हें प्रिय बना दिया और उन्होंने भी प्रत्येक की विशिष्टता को एवं उसके परामर्श को पूर्ण सम्मान दिया। इस प्रकार समस्त वानर और भालुओं की सहायता से लंका विजय के पश्चात श्रीराम अयोध्या वापस आते हैं और अयोध्या में राज्याभिषेक होता है और रामराज्य की स्थापना होती है।

श्रीरामचरितमानस में वर्णित रामराज्य एवं उसका स्वरुप:

तुलसीदासजी के रामराज्य की परिभाषा समतामूलक है, उसमें अनीति के प्रति क्रोध का भाव है, तथा जनतंत्र की ऐसी नई-नई अवधारणाएँ हैं जो प्रत्येक दृष्टि से लोकोपकारी है। तुलसीदासजी का रामराज्य लोकतंत्र के चरम आदर्शों की कल्पना है। राजा राम सोलहवीं-सत्रहवीं सदीं के भारत की विषमताओं को तोड़ते हुए एक लोकतांत्रिक नायक के रूप में व्यक्त होते हैं। उनकी छवि को यदि तत्कालीन युग की आवश्यकताओं के अनुसार देखा जाए तो राजा राम ने एक निर्बल, दीन-हीन वर्ग की सहायता से ही परम शक्तिशाली रावण को समूल नष्ट किया। श्रीराम की राजनीति स्वहित पर नहीं अपितु परमार्थ पर आश्रित है फलत. उनकी नीतियों में स्नेह, विश्वास, सहयोग, श्रद्धा और वात्सल्य का अपूर्व मिश्रण है। उन्होंने अपने चरित्र के इन्हीं गुणों को आधार बनाकर धर्ममार्ग की स्थापना की। रामराज्य में समता का भाव प्रमुख है। समस्त चर-अचर, जीव-जगत के प्रति समता का भाव रामराज्य की प्रमुख विशेषता है। उत्तरकांड में वर्णन आता है-

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरू न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई।। (श्रीरामचरितमानस 7/20/4)

अर्थात् श्रीरामचंद्र जी के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गए, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। उनके प्रताप से सबकी विषमता एवं आंतरिक भेद-भाव मिट गए।

किसी भी राजा का इस प्रकार अपनी प्रजा के साथ समान अथवा पुत्रवत व्यवहार प्रजा को नैतिकता के पथ पर निरंतर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है। तुलसीदासजी आगे रामराज्य की विशेषता के बारे में लिखते हैं-

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।। (श्रीरामचरितमानस 7/20)

अर्थात् सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग सताता है।

रामराज्य में प्रजा तीनों तापों से मुक्त है। उत्तरकाण्ड में वर्णन आता है-

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।। (श्रीरामचरितमानस 7/21/1)

अर्थात् रामराज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते।

संपूर्ण श्रीरामचरितमानस में जिन राजनीतिक आदर्शों की चर्चा की गई है उनकी परिणति कार्यरूप में उत्तरकाण्ड में दर्शायी गयी है। रामराज्य की स्थापना, भगवान श्रीराम की विशिष्ट उपलब्धि है। जिस पद्धति से इस रामराज्य की स्थापना हुई, राजनीति के जिन सिद्धान्तों का श्रीराम ने न केवल प्रतिपादन किया अपितु चरितार्थ भी किया, वह वर्तमान राजनीति से बहुत भिन्नता रखती है। भगवान राम का जीवन दर्शन ही धर्म सेतु के समान लोगों के हित का साधक है। श्रीरामचरितमानस में हम पाते हैं कि दोनों गुरुओं ने श्रीराम की उपमा सेतु से की है-

गुरु विश्वामित्र के अनुसार -

धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। (श्रीरामचरितमानस 1/218/4)

धर्म सेतु करुनायतन कस न अहहु अस राम। (श्रीरामचरितमानस 2/248)

सेतु का उद्देश्य होता है दो पक्षों को निकट लाना और रामराज्य में भी यही देखने को मिलता है-

सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।। (श्रीरामचरितमानस 7/21/1)

तुलसी का रामराज्य एक सबल और जनमत से नियंत्रित लोकतंत्र है उसमें मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी और वनस्पति भी अनुशासन में हैं। वृक्ष फलों से परिपूर्ण हैं, सभी जानवर परस्पर वैरभाव भुलाकर साथ रहते हैं, सूरज उतना ही तपता है जितनी आवश्यकता है। कुल मिलाकर प्रकृति और मनुष्य एक दूसरे के सहयोगी है।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।।

खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।। (श्रीरामचरितमानस 7/23/1)

रामराज्य का राजा स्वयं को प्रजा का सेवक समझता है। राजनीति में स्वयं जनता की सुनना, जनता को अपनी सुनाना अर्थात् परस्पर संवाद बहुत आवश्यक है, यह निरंतर संवाद रामराज्य की एक प्रमुख विशेषता है। उत्तरकाण्ड में श्रीराम राज्याभिषेक के बाद जनता से संवाद करने हेतु बुलाते हैं और कहते हैं -

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।। (श्रीरामचरितमानस 7/43/3)

अर्थात् वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहता हूँ तो भय भुलाकर मुझे रोक देना।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।। (श्रीरामचरितमानस 7/43/4)

अर्थात् बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया, वह बाद में पछताता है।

इसी प्रकार से अनेकों उदाहरणों एवं वक्तव्यों के माध्यम से श्रीराम अपनी प्रजा को सद्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करते हैं। इस परस्पर प्रत्यक्ष संवाद से प्रजाजन सत्संगति के महत्व को समझते हैं साथ ही भयमुक्त होकर निरंतर सदाचार की राह पर चलते हैं।

श्रीरामचरितमानस में राजनीति विषयक सन्दर्भों पर परिचर्चा:

निष्कर्ष रूप में यदि देखा जाए तो तुलसीदासजी श्रीराम का लोकतांत्रीकरण करते हैं। वे अपने राम के राज्याभिषेक के लिए जनस्वीकृति के उद्देश्य से पूरे देश में उन्हें घुमाते हैं, सभी वर्गों से उनका संपर्क कराते हैं। धरातलीय स्तर पर समस्त वर्ग उनके व्यवहार को समझ पाते हैं और साथ ही श्रीराम भी इन लोगों के प्रेम, सम्मान को पाकर अपनी उदारता, प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। तुलसीदासजी द्वारा श्रीरामचरितमानस में इस प्रेम और सम्मान का परस्पर प्रस्तुतीकरण अत्यंत मनोहर है और राजनीति की दृष्टि से प्रेरणाप्रद भी है। इस प्रकार तुलसीदासजी अपने लोकतंत्र में राम को एक व्यक्ति नहीं अपितु आदर्श और मूल्य के तौर पर गढ़ते हैं।

तुलसीदासजी लोकतंत्र का एक बहुत सुन्दर दृश्य चित्रकूट में प्रस्तुत करते हैं, जहाँ समस्त अयोध्या का समाज बहुमत से राम को वापस लाने के पक्ष में था। यह उस समय के जनमत का आदेश था। लेकिन तुलसी के राम यह सिद्ध करते हैं कि मोह व्यक्ति को नहीं अपितु पूरे समाज को भी डस सकता है। समूह के फैसले सदैव सही नहीं होते। राम, पूरे धैर्य से भरत जी और अयोध्यावासियों को सुनकर विनम्रता के साथ सबको पृथक-पृथक दायित्व बताते हैं। इस प्रकार तुलसीदासजी बताते हैं कि यदि नेतृत्व चैतन्य है तो समूह की भूल भी सुधारी जा सकती है। यहाँ पर श्रीराम लोकमत के विरुद्ध जाकर लोकतंत्र का अनोखा आदर्श प्रस्तुत करते हैं। अयोध्या को चौदह वर्ष तक दो राजा चलाते है और दोनों ही सिंहासन पर नहीं बैठते। अयोध्याकाण्ड में भरत जी का चरित्र नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरकर सामने आता है, जिनके द्वारा नैतिक, राजनीतिक और पारिवारिक आदर्शों की स्थापना की गयी। भरत जी के चरित्र में आत्मपक्ष और लोकपक्ष का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। सत्ता का पालन करते हुए भी सत्ता से विरक्त रहने की सीख भरत जी के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता है। इस प्रकार इतनी विकट राजनीतिक समस्या का इतना व्यावहारिक निर्णय सर्वसम्मति से निकल कर आता है, जिसमें न तो किसी की हानि होती है और न किसी का धर्म जाता है।

वनवास और लंका विजय के समय की यदि बात की जाए तो बूढ़े जामवंत जी ने समस्त वानर सेना के लिए सदैव पथ प्रदर्शक का कार्य किया और उनके परामर्श का सम्मान भी किया गया। दूसरी ओर रावण के मंत्रिमंडल के बूढ़े माल्यवंत के परामर्श को कभी महत्व नहीं दिया गया, अपितु लंका में उनका अपमान ही किया गया, जिसका दुष्परिणाम समस्त राक्षस कुल को भोगना पड़ा। वास्तव में मंत्रिमंडल का आधारभूत ढाँचा तभी शक्तिशाली हो पाता है, जब उसमें योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों को महत्व दिया जाए। इसी मध्य एक प्रसंग बालिपुत्र अंगद के पैर का आता है जिसे डिगाने में रावण की पूरी सभा असफल रही। आधुनिक विदेश नीतिकारों, राजदूतों को अंगद के आचरण से सीख लेनी चाहिए जिसने रणभूमि से पहले ही शत्रु के घर जाकर अपनी शब्द संरचना और आत्मविश्वास से समस्त राक्षसों को हराकर रावण को तेजहीन कर दिया। इसी प्रकार एक प्रसंग भ्राता लक्ष्मण का आता है, उन्होंने रावण के दूतों के माध्यम से ही एक पाती रावण के लिए भिजवाई। ये राक्षस वानर का रूप धरकर छल से भेद लेने आए थे। यहाँ पर लक्ष्मण जी अपनी

दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उन्हें सामान्य सा दण्ड देकर छोड़ देते हैं और एक पत्र रावण के लिए भिजवाते हैं जिससे रावण के आत्मविश्वास का किला हिल जाता है और फिर राजकुमार अंगद के अडिग पैर तो उसे ध्वस्त ही कर देता है। एक अन्य बात जो लंका और रावण के साम्राज्य से स्पष्ट हो जाती है कि अपरिमित संसाधन किसी भी राज्य के शक्तिशाली होने का मापदण्ड नहीं होते। रावण को परास्त करने वाले श्रीराम एक वनवासी थे जिनके पास संसाधनों के नाम पर मात्र वनों का ही आश्रय था और जिनके समर्थक वानर और भालू बने। यद्यपि सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो दोनों पक्षों का कोई मेल नहीं था किन्तु श्रीराम की कुशल नीतियों से एक ऐसे स्वस्थ और शक्तिशाली मंत्रिमंडल की रचना हुई जिसकी सहायता से रावण की लंका समूल नष्ट हो गयी।

एक महत्वपूर्ण पक्ष जो सम्पूर्ण रामचरितमानस और रामराज्य से स्पष्ट होती है, जो जीवन के प्रत्येक पक्ष में अनुकरणीय भी है, चाहे वह पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक कोई भी पक्ष क्यों न हो? दो पक्षों में स्वस्थ संबंधों के लिए संवाद का निरंतर चलना बहुत आवश्यक होता है और ये पहल दोनों पक्षों के सक्रिय रहने से ही संभव होती है। एक भी पक्ष का शिथिल होना संवाद के प्रवाह को रोक देता है और यह संबंधों के भविष्य के लिए हानिकर सिद्ध होता है। रामचरितमानस एक संवाद शास्त्र है जिसमें दो पक्षों की आपसी उत्तर-प्रतिउत्तर की निम्नलिखित सुंदर श्रृंखला अनुकरणीय है-

- भगवान शंकर और माता पार्वती (महादेव और महादेवी से संवाद)
- महर्षि याज्ञवल्क्य और महामुनि भारद्वाज (योगी और ज्ञानी का संवाद)
- कागभुशुंडी और गरुड़ जी (सामान्य पक्षी और पक्षीराज का संवाद)

श्रीरामचरितमानस के श्रोता और वक्ता के स्वरूपों में यद्यपि विषमताएँ हैं किन्तु सम्पूर्ण शास्त्र में न तो किसी भी वक्ता को अपने ज्ञान का अभिमान है और न ही किसी भी श्रोता को अपनी अज्ञानता की लज्जा अथवा संकोच, न किसी को अपने पद-प्रतिष्ठा का मोह है और न ही किसी को समाज में अपने निकृष्ट माने जाने की हीनता।

इस प्रकार किसी भी राजा का अपने मंत्रिमंडल एवं अपनी प्रजा से परस्पर संवाद करना चाहिए तथा प्रजा को भी अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों के प्रति जागरूक रहना चाहिए। क्योंकि संवाद ही संबंधों की आधारशिला होते हैं। जब तक राजा एवं उसकी प्रजा के मध्य स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित नहीं होते तब तक एक आदर्श राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना करना स्वप्न मात्र है। राजा को कभी अपनी सत्ता का अहंकार नहीं करना चाहिए और प्रजा को कभी भी राजा एवं उसकी नीतियों के प्रति निष्क्रियता नहीं अपनाना चाहिए और इन दोनों का परस्पर यही स्वभाव संबंधों को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानस में तुलसीदासजी सत्ता की बुराइयों और बुराइयों की सत्ता के प्रति मुखर हैं। इसलिए इनके आदर्शों का अनुसरण करके राजनीति की बुराइयों और बुराइयों की राजनीति से मुक्ति का मार्ग प्राप्त कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. पोद्दार, हनुमान प्रसाद (टीकाकार)(सं.2050). तुलसीकृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर।
2. शरण, अंजनीनंदन (सं.2079). मानस पीयूष, खण्ड-एक, बालकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।
3. शरण, अंजनीनंदन (सं.2079). मानस पीयूष, खण्ड-दो, बालकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।
4. शरण, अंजनीनंदन (सं.2079). मानस पीयूष, खण्ड-तीन, अयोध्याकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।
5. शरण, अंजनीनंदन (सं.2079). मानस पीयूष, खण्ड-चार, अरण्यकाण्ड एवं किष्किन्धाकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।
6. शरण, अंजनीनंदन (सं.2079). मानस पीयूष, खण्ड-पाँच, सुन्दरकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।
7. शरण, अंजनीनंदन (सं.2079). मानस पीयूष, खण्ड-छः, लंकाकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।
8. शरण, अंजनीनंदन (सं.2079). मानस पीयूष, खण्ड-सात, उत्तरकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।
9. उपाध्याय, रामकिंकर (सं.2071). मानस के चार घाट, रामायणम ट्रस्ट. श्री धाम अयोध्या।
10. उपाध्याय, रामकिंकर (सं.2071). रामकथा मंदाकिनी, रामायणम ट्रस्ट, श्री धाम अयोध्या।
11. उपाध्याय, रामकिंकर (सं.2071). श्री राम गीता, रामायणम ट्रस्ट. श्री धाम अयोध्या।
12. उपाध्याय, रामकिंकर (सं.2078). चित्रकूट महिमा, रामायणम ट्रस्ट. श्री धाम अयोध्या।
13. उपाध्याय, रामकिंकर (सं.2071). प्रेममूर्ति भरत, रामायणम ट्रस्ट. श्री धाम अयोध्या।

34

भारत में लोकतंत्र एवं शिक्षा के साहचर्य का स्वातन्त्र्योपरांत साक्ष्य-आधारित अनुभवात्मक अध्ययन

डॉ. चन्द्र शेखर पाण्डेय
सहायक आचार्य, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आधुनिक लोकतंत्र और शिक्षा एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और परस्पर पोषक हैं | ज्ञानोदय से आज तक लोकतांत्रिक आदर्शों की यात्रा शैक्षिक तंत्रों के विकास की सहवर्ती रही है|

डीवी ने लोकतंत्र और शिक्षा के मध्य परस्पर निर्भरता और पोषकता को रेखांकित किया है | उनके अनुसार "लोकतंत्र केवल सरकार चलाने का एक तरीका मात्र नहीं है बल्कि, यह जीवन का साहचर्य भी है जो संयुक्त संप्रेषित अनुभवों से बनता है (डीवी, 1916, पृष्ठ, 87) |" लोकतंत्र का शिक्षा के प्रति समर्पण सर्वविदित है | इसका एक आसान व्याख्या यह है कि लोकप्रिय निर्वाचन आधारित सरकारें तब तक सफल नहीं हो सकतीं, जब तक कि निर्वाचन करने वाले नागरिक स्वयं शिक्षित न हों | शिक्षा का मुख्या लक्ष्य विकास है जो बौद्धिक, भावात्मक और नैतिक आयामों को दृढ कर के विद्यार्थियों को सतत रूप से सीखने और अनुकूलन के लिए तैयार करता है | शिक्षा तभी ज्यादा प्रभावी होती है जब यह विद्यार्थियों के सजीव अनुभवों से जुड़ती है | शिक्षा संयुक्त अनुभवों से बनती है इसलिए इसे सक्रिय भागीदारी, सहयोग, साझी जिम्मेदारी जैसे सामजिक मूल्यों का विकास करना चाहिए |

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा एवं लोकतंत्र के संवाद को उद्घाटित करने के लिए विषय पर एक परिचर्चा प्रस्तुत करने के साथ आंकड़ों के आधार पर इस सामान्य परिकल्पना का परीक्षण करता है कि लोकतंत्र के विविध प्रकारों की मौजूदगी किस प्रकार शिक्षा में समानता के विकास से जुडी हुई है | शैक्षिक अवसरों की समानता एक ऐसा लक्ष्य है जिसे सतत विकास लक्ष्यों में स्थान दिया गया है और इस प्रकार यह महत्वपूर्ण विषय है **शिक्षा एवं लोकतंत्र के सम्बन्ध के विषय पर किये गए अध्ययनों का साहित्यिक सर्वेक्षण**

लोकतंत्र और शिक्षा का सम्बन्ध राजनीतिक विमर्श का केंद्र है और लोकतंत्रिक शासन एवं शिक्षा गुणवत्ता के मध्य संबंध के बारे में साहित्य में पर्याप्त साक्ष्य हैं | डेहलम और नॉटसन (2017) इस विडम्बना को उजागर करते हैं कि आधुनिक लोकतंत्र अभी तक लोगों तक शिक्षा की पहुँच तो सुनिश्चित कर पाए हैं, लेकिन इनमें शिक्षा की गुणवत्ता निरंकुश शासन व्यवस्थाओं से बेहतर नहीं होती है | ऐसा इसलिए होता है क्योंकि लोकप्रतिनिधि शिक्षा के परिमाणात्मक और प्रदर्शनीय मुद्दों पर ज्यादा ध्यान देते हैं जिनका श्रेय लेकर वो जनता का विश्वास और भागीदारी का वरण करते हैं | यह राजनीतिज्ञों, जनप्रतिनिधियों और प्रशासकों के लिए शिक्षा का प्रत्यक्ष राजनैतिक लाभ है | लेक और बौम (2001) का अध्ययन भी इस बात का साक्ष्य देता है कि लोकतंत्र शिक्षा के परिमाणात्मक पक्ष पर ज्यादा प्रभाव डालता है , जैसे – नामांकन, विद्यालय में व्यतीत वर्षों की संख्या, विद्यालयों की संख्या, शौचालयों की संख्या;

इत्यादि| वस्तुतः, शिक्षा के गुणात्मक पक्ष में होने वाला परिवर्तन प्रत्यक्षतः मात्रात्मक पक्ष की तरह भौतिक रूप से देखा नहीं जा सकता है; अतः इसमें निवेश का राजनैतिक लाभ भी कम होता है| शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन का श्रेय प्रत्यक्ष रूप से सरकार को देना समयसाध्य एवं श्रमसाध्य कार्य है | ऐसे में इसका तात्कालिक राजनैतिक लाभ भी कम होता है और इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं शिक्षा की गुणात्मकता की दृष्टि से निरंकुश व्यवस्थाओं से श्रेष्ठ प्रदर्शन नहीं करती हैं | डेहलम और नॉटसन (2017) पुनः निरंकुश और लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में शिक्षा की गुणवत्ता के बारे में विमर्श करते हैं कि लोकतांत्रिक व्यवस्थायों में शिक्षा की पहुँच तो बेहतर है लेकिन गुणवत्ता औसत दर्जे की है | उदाहरण के लिए दक्षिणी कोरिया और ताइवान अपने लोकतंत्रीकरण से पहले राष्ट्रीय कौशल परीक्षाओं में बेहतर प्रदर्शन कर रहे थे| वहीं पूर्वी यूरोप और भूतपूर्व सोवियत संघ की साम्यवादी सरकारों में गणित और प्राकृतिक विज्ञानों की शिक्षा की गुणवत्ता बेहतर मानी जाती थी |

डेविड व अन्य (2009) ने निजी विद्यालयों की उपस्थिति का सार्वजनिक शिक्षा पर प्रभाव का अध्ययन करते हुए यह पाया कि विविधतापूर्ण व्यापक लोकतांत्रिक व्यवस्था में जहां राजनीतिज्ञ निम्न आय परिवारों के प्रति जवाबदेह हैं वहां निजी शिक्षा की उपस्थिति एक प्रतियोगितापूर्ण परिदृश्य का सृजन कर के सार्वजनिक शिक्षा में सुधार और गुणवत्ता का संवर्धन करने में समर्थ हैं | | इस अध्ययन का संकेत इस बात की तरफ है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था के व्यापक और सुदृढ़ होने से निजी और सार्वजनिक शिक्षा दोनों उपक्रम साहचर्य भाव रख सकते हैं | शिक्षा और लोकतंत्र के सम्बन्ध के बारे में ग्लेजर (2007) व अन्य प्रतिपादित करते हैं कि शिक्षा व्यक्ति के संज्ञानात्मक कौशलों और लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देकर लोकतंत्र को सुदृढ़ करती है | शिक्षित नागरिक राजनीतिक प्रक्रियाओं में संलग्नता हेतु श्रेष्ठतया तत्पर होते हैं और सूचित निर्णय लेने और लोकतांत्रिक संस्थाओं को दृढ करने में सक्षम होते हैं |

लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास और सहभागिता, लोकतंत्र को स्थिरता प्रदान करते हैं | द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर कालावधि में पाश्चात्य लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में सामाजिक, आर्थिक और तकनीकि बदलावों के सहनुवर्ती हुए अनुकूलनों को रेखांकित करते हुए कासे (2010) लोकतांत्रिक शिक्षा के द्वारा राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि, अनुकूलनशीलता एवं मूल्योन्मुखता में परिवर्तन की बात करते हैं | शिक्षा से राजनीतिक मामलों की जानकारी जनता में बढती है और उससे व्यक्ति की राजनैतिक प्रक्रियाओं में सार्थक और सूचित भागीदारी होना संभव होता है | जनभागीदारी के कारण राजनैतिक दलों पर एक जवाबदारी सुनिश्चित होती है जिससे राजनैतिक एजेंडा में बदलाव होता है | इस प्रकार शिक्षा लोकतंत्र में राजनैतिक भागीदारी को बेहतर कर के भी उसे बदलती है और प्रभावित करती है | कई बार शैक्षिक सुधारों की मंद गति से ऊब कर जनता द्वारा प्रत्यक्ष कार्यवाही भी की जाती है जिसे नागरिकता का सक्रियता सिद्धांत (एक्शन थ्योरी ऑफ़ सिटीजनरी) का एक विस्तार माना जा सकता है (कासे 2010)| एक सुशिक्षित नागरिकता की भागीदारी किसी भी संवैधानिक और लोकतान्त्रिक सुधार की सफलता के लिए आवश्यक है | शिक्षा के द्वारा लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ भी किया जा सकता है और लोकतंत्र में आस्था का स्थापन किया जा सकता है |

विपरीततया, संभ्रांत परिवारों द्वारा प्रभावित और संचालित पूर्णतया पूंजीवादी व्यवस्थाओं में निजी विद्यालय सार्वजनिक शिक्षा से संसाधनों का आहरण कर लेते हैं और उसकी स्थिति दयनीय कर देते हैं (डे ला क्रोइक्स एवं डोप्के, 2009)| उनके अध्ययन का सन्दर्भ लोकतंत्र, राजनैतिक सत्ता का वितरण और सार्वजनिक शिक्षा की गुणवत्ता से सम्बद्ध था | राजनैतिक सत्ता के वितरित होने से या विकेन्द्रित होने से सार्वजनिक शिक्षा पर निवेश उच्च एवं स्थायी

होता है और एक वृहद् निजी क्षेत्र की उपस्थिति प्रतियोगिता को बढ़ाकर निम्न आयावर्ग के प्रति प्रतिनिधितियों और शासकों की जवाबदेही सुनिश्चित करती है | हालांकि आय में असमानता से अलग अलग प्रकार के शिक्षा तंत्रों को बल मिलता है और संभ्रांत वर्ग निजी विद्यालयों को वरीयता देता है जिससे सार्वजनिक क्षेत्र में शिक्षा का स्तर अधोमुखी होता है | कम लोकतांत्रिक या गैर लोकतांत्रिक समाजों में जहां सत्ता अल्पसंख्यक संभ्रांत वर्ग में निहित है, वहां सार्वजनिक शिक्षा की गुणवत्ता कम है | यह अध्ययन तर्क देता है कि सार्वजनिक और निजी शिक्षा के सम्बन्ध की अनुकूलता या प्रतिकूलता राजनैतिक सत्ता के वितरण और प्रकार पर निर्भर करती है | व्यापक लोकतांत्रिक आधार में दोनों प्रकार की शिक्षा व्यवस्थाएं साहचर्य में समृद्ध होती हैं |

ग्लेजर व अन्य (2007) शिक्षा को लोकतान्त्रिक स्थिरता प्रदान करने में सहायक मानते हैं | उनके अनुसार शिक्षा नागरिक सहभागिता के माध्यम से राजनैतिक संलग्नता का विस्तार करती है | उन्होंने एक प्रतिमान प्रस्तुत किया जिसमें निरंकुश व्यवस्थाओं की तुलना में शिक्षा लोकतांत्रिक व्यवस्था को ज्यादा कारगर बनाती है | लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं ज्यादा समावेशी होने के कारण सबको लाभ प्रदान करती हैं और इससे सहभागिता के लाभ सबमें वितरित होकर कम हो जाते हैं, लेकिन निरंकुश व्यवस्थाएं चुनिन्दा समूहों को ही शिक्षा एवं अन्य सेवाओं का प्रचुर लाभ देती हैं | लोकतंत्र में शिक्षा का व्यापक आधार उसे दृढ बनाता है | शिक्षा और लोकतंत्र में सार्थक सहसंबंध यह सिद्ध करता है कि शिक्षा के संकेतकों में सुधार से लोकतंत्र की गुणवत्ता और स्थिरता बेहतर होती है |

एक महत्वपूर्ण प्रस्तुत विषय करते हुए मलिक (1979) लोकतंत्र में जन आस्था एवं व्यक्तिगत दक्षता को महत्वपूर्ण कारक मानते हैं और शिक्षा को लोकतंत्र में जन आस्था, विश्वास में संवृद्धि करने के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं | निम्न सामजिक आर्थिक वर्ग से आने वाले विद्यार्थियों में जन आस्था की कमी को देखते हुए शिक्षा को इसे वृद्धि करने वाला कारक मानते हैं| रॉबर्ट लेन का उद्धरण देते हुए वह कहते हैं " एक ऐसा लोकतंत्र जिसमें लोग एक दूसरे पर भरोसा नहीं करते, साहचर्य नहीं स्वीकारते उसमें लोकतंत्र का भविष्य अंधकारमय है"| ऐसे में लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास, दक्षता और लोकतंत्र के प्रति रवैया को समझना महत्वपूर्ण हो जाता है | जो व्यक्ति परिवार के अलावा अन्य लोगों में अधिक विश्वास प्रदर्शित करता है वह लोकतांत्रिक रुझान वाला ज्यादा होता है | शिक्षा व्यक्ति को बाहरी दुनिया पर विश्वास करना भी सिखाती है जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में वह बढ़ चढ़ के भागीदारी करता है |

मोर्लिनो (2002) के अनुसार एक आदर्श लोकतंत्र में नागरिकों के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता, कानूनी रक्षा का अधिकार, निवास का अधिकार , संवाद की निजता और स्वतंत्रता का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार और मुक्त प्रेस का होना आवश्यक है | शिक्षित नागरिक सरकारों को उत्तरदायी रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और यह उदारवादी परंपरा की दो मान्यताओं पर आधारित है | नागरिक दो प्रकार से सरकार को उत्तरदायी रखते हैं – प्रथम , शिक्षित नागरिक सरकारों को अपनी संतुष्टि, आवश्यकताओं और अनुरोधों को पूरा करने के लिए और न करने के आधार पर मूल्याङ्कन करते हैं और द्वितीय मान्यता यह है कि अपनी आवश्यकताओं को केवल नागरिक ही तय कर सकते हैं कोई दूसरा समूह या एजेंसी नहीं |

पश्चिमी समाजों में प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र पर कम होते विश्वास का मामला उठाते हुए कॉफ़े एवं माइकेल (2014) प्रतिपादित करते हैं कि शिक्षा के स्तर और लोकतंत्र के लिए समर्थन के मामले में कम शिक्षित लोग प्रत्यक्ष लोकतंत्र को अधिक वरीयता देते हैं , जब कि उच्च शिक्षित लोगों ने प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र में कोई विशेष भरोसा नहीं

प्रदर्शित किया | वहीं कम और मध्यम शिक्षा स्तर के लोगों ने लोकतंत्र में तुलनात्मक रूप से ज्यादा भरोसा प्रदर्शित किया | यह अध्ययन बताता है कि शिक्षा और लोकतंत्र के सम्बन्ध जटिल हैं और इनमें एक रैखिक सहसंबंध नहीं है | महत्वपूर्ण बात यह है कि यह अध्ययन नीदरलैंड जैसे देश में किया गया है |

लोकतंत्र की गुणवत्ता बढ़ने से नागरिकों का राजनैतिक व्यवस्था में विश्वास बढ़ता है | उच्च शिक्षा का स्तर नागरिकों के संज्ञानात्मक क्षमताओं को बढ़ाकर उनको लोकतांत्रिक गुणवत्ता का उचित मूल्याङ्कन करने में समर्थ बनाता है | सुशिक्षित नागरिक लोकतांत्रिक गुणवत्ता का यथार्थ मूल्याङ्कन कर सकते हैं | शिक्षा राजनैतिक रूचि को बढाकर शिक्षित लोगों को लोकतांत्रिक निष्पादन का निष्पक्ष आंकलन करने के लिए प्रोत्साहित करती है | हालांकि लोगों के मन में लोकतंत्र के प्रति विश्वास के कई प्रकार हैं लेकिन उदारवादी विचारधारा के लोग लोकतंत्र का वास्तविक और यथार्थ मूल्याङ्कन करने में सक्षम पाए गए (मौक, 2021) |

कीस (2021) राजनीतिक विश्वास और भागीदारी पर शैक्षिक परिस्थितियों में लोकतांत्रिक सहभागिता के व्यावहारिक प्रभाव का अन्वेषण करते हैं उनके अनुसार स्कूलों और विश्वविद्यालयों के भीतर लोकतांत्रिक प्रथाओं में सहभागिता के संवर्धन से छात्रों के बीच राजनीतिक प्रभावकारिता और लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है। कीस का तर्क है कि यह अनुभवात्मक शिक्षा सक्रिय और सूचित नागरिकों के पोषण के लिए महत्वपूर्ण है |

सामूहिक रूप से, ये अध्ययन लोकतंत्र और शिक्षा के बीच बहुमुखी संबंधों को रेखांकित करते हैं। वे बताते हैं कि जबकि लोकतंत्र आम तौर पर शिक्षा तक बेहतर पहुंच प्रदान करते हैं ,शिक्षा की गुणवत्ता और लोकतांत्रिक मूल्यों और राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा देने में इसकी भूमिका राजनीतिक जवाबदेही, सामाजिक विश्वास और सामाजिक आर्थिक स्थितियों सहित विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। इन तत्वों के बीच परस्पर क्रिया शैक्षिक और लोकतांत्रिक सुधारों के लिए एक समग्र दृष्टिकोण के महत्व पर प्रकाश डालती है| इससे यह सुनिश्चित होता है कि शिक्षा तक पहुंच सार्थक लोकतांत्रिक जुड़ाव और स्थिरता में परिवर्तित हो जाती है। शिक्षा केवल लोकतंत्र का एक निष्क्रिय लाभार्थी न होकर एक सक्रिय और मजबूत स्तम्भ है | लोकतंत्र को सुदृढ़ करने के लिए शिक्षा आवश्यक है |

चीन जैसे साम्यवादी व्यवस्था वाले देश में वांग व अन्य (2015) द्वारा किये गए अध्ययन से पता चलता है कि आर्थिक परिवर्तन के बावजूद चीन में मंद गति से राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं | अपने अनुभवात्मक अध्ययन में इन्होने पाया कि महाविद्यालयी शिक्षा प्राप्त नागरिक लोकतांत्रिक मूल्यों, सहिष्णुता और तार्किक प्रतिनिधित्यात्मक अभ्यासों को चुनने में बेहतर रवैया प्रदर्शित करते हैं और अधिनायकवाद को चुनौती देते हैं | वही पढ़े लिखे व्यापारी एवं संभ्रांत वर्ग का रवैया भी लोकतंत्र के प्रति सकारात्मक है लेकिन वे विरोध प्रदर्शन और राजनैतिक रैलियों में प्रतिभाग नहीं करते |

रीमर्स (2007) 1990 ई. से 2000 ई. के मध्य लैटिन अमेरिका में राजनैतिक, सामाजिक एवं शैक्षिक बदलावों का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष देते हैं कि इस अवधि में महाद्वीप ने सैनिक अधिनायकवाद से लेकर राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना का सघन अनुभव किया है और इसके कारण लोकतंत्र के पक्ष में लोगों का रुझान बढ़ा है | इस दौरान शिक्षा की पाठ्यचर्या में नागरिक शिक्षा को पर्याप्त स्थान दिया गया जिससे कि लोकतंत्र को दृढ़ता मिली है | एक सुसंरचित नागरिक शिक्षा से जागरूक, सूचित और राजनैतिक रूप से सक्रिय नागरिकों का निर्माण किया जा सकता है जिससे लोकतंत्र की गुणवत्ता बेहतर की जा सकती है |

हस्फेल्ट और निकोलोवा (2003) ने छात्रों की लोकतंत्र की अवधारणाओं का अन्वेषण करके पाया कि विद्यार्थियों को कानून के शासन के रूप में लोकतंत्र की सामान्य समझ है लेकिन सहभागी लोकतंत्र के बारे में उनकी समझ कम है। नोल्स (2018) लोकतांत्रिक जुड़ाव के लिए शैक्षिक रणनीतियों के महत्त्व पर बल देते हुए एक ऐसे शैक्षणिक दृष्टिकोण की अनुशंसा करते हैं जो समालोचनात्मक दृष्टि और समावेशी रूप से अधिगम को प्रोत्साहित करता है । विद्यार्थियों को लोकतांत्रिक जीवन में प्रभावी ढंग से संलग्न होने के लिए तैयार करने हेतु ऐसी रणनीतियाँ महत्वपूर्ण हैं। आलोचनात्मक पूछताछ और भागीदारीपूर्ण शिक्षा को बढ़ावा देने वाली शैक्षणिक रणनीतियाँ लोकतांत्रिक जुड़ाव को समृद्ध करने के लिए आवश्यक हैं|

बालाएव (2014) शिक्षा के समाजशास्त्रीय पहलुओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए शैक्षणिक संस्थानों को सामाजिक पदानुक्रमों सुदृढ़ करने के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। शिक्षा प्रणालियाँ अक्सर मौजूदा सामाजिक असमानताओं को कायम रखती हैं, लेकिन वे इन संरचनाओं को चुनौती देने और बदलने की क्षमता भी रखती हैं। उनका काम सामाजिक स्तरीकरण के पुनरुत्पादक और संभावित समतुल्य, दोनों के रूप में शिक्षा की दोहरी भूमिका पर प्रकाश डालता है। शिक्षा सामजिक यथास्थिति बनाने में भी मदद कर सकती है और सामाजिक परिवर्तन में भी उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है |

ज्ञान अंतराल

शिक्षा और लोकतंत्र दोनों ही व्यक्ति को सशक्त करते हैं, समता और समानता पर बल देते हैं और लोकतांत्रिक समाज में सक्रिय सहभागिता करने वाले जागरूक और प्रबुद्ध नागरिकों का निर्माण करते हैं | इन दोनों के मध्य का सम्बन्ध जटिल होते हुए भी अध्ययनों का विषय रहा है और भारतीय परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के अनुभवात्मक अध्ययन बहुत ही कम देखे गए हैं | उपयुक्त साहित्य समीक्षा से पता चलता है कि भारत में लोकतांत्रिक विकास और उसके शैक्षिक अवसरों पर समानता को लेकर आंकड़ा आधारित अध्ययनों की कमी है | इस दृष्टि से यह अध्ययन 1947-2023 तक के लोकतांत्रिक आंकड़ों और शैक्षिक समता के आंकड़ों के मध्य प्रतिगमन विश्लेषण का प्रयोग करते हुए एक नई दृष्टि प्रस्तुत करने का प्रयास करता है जिससे भारत में लोकतांत्रिक विकास में अंतर्दृष्टि के साथ उसके शैक्षिक समता पर पड़ने वाले प्रभाव को भी समझने में मदद मिल सकती है |

अध्ययन के उद्देश्य

अध्ययन के दो उद्देश्य हैं -

1. भारत में 1947-2023 ई. की अवधि में प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र., उदारवादी लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र, विमर्शाधारित लोकतंत्र, और समतावादी लोकतंत्र तथा शैक्षिक समता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. समग्र लोकतांत्रिक सूचकांक एवं शैक्षिक समानता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना |

शोध प्रविधि –

प्रस्तुत शोध विधि का उपागम ज्ञान के प्रत्यक्षवादी प्रतिमान पर आधारित है और इसमें सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है | यह अध्ययन 1950-2023 तक के लोकतांत्रिक आंकड़ों और शैक्षिक समता के आंकड़ों का विश्लेषण करता है | वैरायटीज ऑफ़ डेमोक्रेसी प्रोजेक्ट (VDEM) एक सर्वमान्य और मुक्त संसाधन सर्वेक्षण करता है जो कई प्रकार के

लोकतांत्रिक आंकड़ों को वैश्विक रूप से संगृहीत करता है | इसके आंकड़ा समुच्चय से लिए गये आंकड़ों में इस अध्ययन में निम्न सूचकांक सम्मिलित हैं –

अध्ययन के चर

लोकतंत्र सूचकांक

इस अध्ययन के लिए लोकतंत्र के पांच सूचकांकों का प्रयोग किया गया | प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र., उदारवादी लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र, विमर्शाधारित लोकतंत्र, और समतावादी लोकतंत्र के लिए क्रमशः *v2x_polyarchy, v2x_libdem, v2x_partipdem, v2x_delibdem,* और *v2x_egaldem* कोड वाले सूचकांकों को कोडबुक से चयनित किया गया (कोपेज व अन्य, 2024 द्वारा विकसित)

लोकतंत्र सूचकांकों के बीच बहुसंरेखता की समस्या को दूर करने के लिए, मुख्य अक्ष विश्लेषण (पीसीए) किया गया। प्रत्येक सूचकांक के डेटा को मानकीकृत कर के यह सुनिश्चित किया गया कि प्रत्येक चर का माध्य 0 और मानक विचलन 1 हो। इस प्रकार z अंकों में तबदीली के बाद, सहप्रसरण आव्यूह की गणना की गई |

अगले चरण में सहप्रसरण मैट्रिक्स के इगेनवैल्यू और eigenvectors की गणना की गई | लोकतांत्रिक मूल्यों के 5 सूचकांकों में तीन प्रमुख अक्षों का चयन किया गया जो आंकड़े में कुल प्रसरण के लगभग 95% अंश की व्याख्या की | मुख्य अक्ष में प्रत्येक चर के प्रसरण प्रभाव को समझने के लिए प्रमुख घटकों पर प्रत्येक मूल चर के या अधिभार का विश्लेषण किया गया। PC1 के लिए, अधिभार के मान थे: v2x_partipdem (0.445), v2x_libdem (0.458), v2x_polyarchy (0.438), v2x_delibdem (0.456), और v2x_egaldem (0.426)। PC2 के अधिभार के मान थे : v2x_partipdem (0.063), v2x_libdem (-0.188), v2x_polyarchy (-0.221), v2x_delibdem (-0.453), और v2x_egaldem (0.829)। PC3 के लिए अधिभार के मान थे : v2x_partipdem (-0.706), v2x_libdem (-0.313), v2x_polyarchy (0.183), v2x_delibdem (0.246), और v2x_egaldem (0.498)

दोनों प्रकार के छः सूचकांकों का 1947-2023 तक के आंकड़ों का प्रयोग विश्लेषण में किया गया |

शैक्षिक समानता का सूचकांक [Educational equality (v_23_26)] भी वैरायटीज ऑफ़ डेमोक्रेसी प्रोजेक्ट डाटासेट से प्राप्त किया गया है | यह उच्च गुणवत्ता युक्त प्राथमिक शिक्षा की सुलभता को मापता है जिसके द्वारा नागरिक अपने संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग कर पाते हैं (पेम्स्टीन व अन्य, 2020 द्वारा विकसित, प्रोजेक्ट VDEM).

अध्ययन की परिकल्पना

1. लोकतांत्रिक सूचकांकों (v2x_partipdem, v2x_libdem, v2x_polyarchy, v2x_delibdem, v2x_egaldem) और शैक्षिक समानता के सूचकांक (v_23_26) में सार्थक सहसंबंध नहीं है |
2. समग्र लोकतांत्रिक सूचकांक एवं शैक्षिक समानता में सार्थक सहसंबंध नहीं है

आंकड़ा विश्लेषण एवं सांख्यिकीय तकनीक

इस अध्ययन में संबंधों के विश्लेषण हेतु पियर्सन-r सहसंबंध विश्लेषण का प्रयोग किया गया | लोकतांत्रिक सूचकांकों प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र., उदारवादी लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र, विमर्शाधारित लोकतंत्र, और समतावादी लोकतंत्र का शैक्षिक समानता सूचकांक से सहसंबंध की दिशा और सार्थकता की जांच की गई |

परिणामों का निर्वचन

शोध उद्देश्य 1

1. भारत में 1947-2023 ई. की अवधि में प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र., उदारवादी लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र, विमर्शाधारित लोकतंत्र, और समतावादी लोकतंत्र तथा शैक्षिक समता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना |

परिकल्पना : लोकतांत्रिक सूचकांकों और शैक्षिक समानता में सार्थक सहसंबंध नहीं है |

सारणी 1 : लोकतांत्रिक सूचकांकों और शैक्षिक समानता में सहसंबंध गणना

Variable		v2peedueq_sd	v2x_partipdem	v2x_libdem	v2x_polyarchy	v2x_delibdem	v2x_egaldem
1. शैक्षिक समानता सूचकांक (v2peedueq_sd)	पियर्सन r	—					
	सार्थकता स्तर	—					
2. सहभागी लोकतंत्र सूचकांक(v2x_partipdem)	पियर्सन r	-0.343	—				
	सार्थकता स्तर	0.002	—				
3. उदारवादी लोकतंत्र सूचकाक (v2x_libdem)	पियर्सन r	-0.215	0.976	—			
	सार्थकता स्तर	0.060	< .001	—			

सारणी 1 : लोकतांत्रिक सूचकांकों और शैक्षिक समानता में सहसंबंध गणना

Variable		v2peedueq_sd	v2x_partipdem	v2x_libdem	v2x_polyarchy	v2x_delibdem	v2x_egaldem
4. प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र सूचकांक(v2x_polyarchy)	पियर्सन r	-0.185	0.964	0.992	—		
	सार्थकता स्तर	0.108	< .001	< .001	—		
5. विमर्शात्मक लोकतंत्र सूचकांक(v2x_delibdem)	पियर्सन r	-0.178	0.975	0.973	0.962	—	
	सार्थकता स्तर	0.121	< .001	< .001	< .001	—	
6. समतावादी लोकतंत्र सूचकांक (v2x_egaldem)	पियर्सन r	-0.165	0.973	0.982	0.979	0.990	—
	सार्थकता स्तर	0.151	< .001	< .001	< .001	< .001	—

सारणी 1 अध्ययन ने शैक्षिक समानता और विभिन्न लोकतंत्र सूचकांकों के बीच सहसंबंध प्रस्तुत किये गए हैं । शैक्षिक समानता (v2peedueq_sd) और सहभागी लोकतंत्र (v2x_partipdem), r = -.343, p = .002 के बीच एक सार्थक नकारात्मक सहसंबंध पाया गया, जो दर्शाता है कि जैसे-जैसे सहभागी लोकतंत्र बढ़ता है, शैक्षिक समानता कम होती जाती है। अन्य लोकतंत्र सूचकांक- उदारवादी लोकतंत्र (v2x_libdem), r = -.215, p = .060; प्रतिनिधित्यात्मक लोकतंत्र (v2x_बहुसत्ता), r = -.185, p = .108; विमर्शात्मक लोकतंत्र (v2x_delibdem), r = -.178, p = .121; और समतावादी लोकतंत्र (v2x_egaldem), r = -.165, p = .151- शैक्षिक समानता के साथ गैर-महत्वपूर्ण सहसंबंध दिखाता है। विशेष रूप से, लोकतंत्र सूचकांकों के बीच सार्थक सकारात्मक अंतर्संबंध मौजूद

थे, जिसमें r = .964 से r = .992, p <.001 तक के सहसंबंध थे, जिससे पता चलता है कि इन सूचकांकों में सहविचरण है और इस लिए इन सहसंबंधों की और जांच की आवश्यकता है |

अतः केवल सहभागी लोकतंत्र का सम्बन्ध शैक्षिक समानता के साथ नकारात्मक पाया गया जो कि एक स्वाभाविक निष्कर्ष नहीं है | इसलिए अध्ययन में आंकड़ों की और जांच पड़ताल की गई |

उद्देश्य 2 : समग्र लोकतांत्रिक सूचकांक एवं शैक्षिक समानता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना |

परिकल्पना : समग्र लोकतांत्रिक सूचकांक और शैक्षिक समानता में सार्थक सहसंबंध नहीं है |

सभी प्रकार के लोकतांत्रिक सूचकांकों में सार्थक सहसंबंध (सारणी 2) को देखते हुए इनका मुख्य अक्ष विश्लेषण कर के एक नए सूचकांक का निर्माण किया गया | इस सूचकांक को समग्र लोकतांत्रिक सूचकांक का नाम दिया गया है | इस सूचकांक का सहसंबंध शैक्षिक समानता सूचकांक से परिकलित किया गया | यह सम्बन्ध मध्यम सार्थकता स्तर पर एक दुर्बल धनात्मक सहसंबंध को दर्शाता है , r=०.219, p= 0.056 | यह निष्कर्ष इस तथ्य को प्रदर्शित करता है कि लोकतांत्रिक परिवर्तन ने भारतीय परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक समानता की वृद्धि में सकारात्मक योगदान दिया है लेकिन यह शैक्षिक समानता को प्रभावित करने वाले अन्य कारक भी हैं जिनकी व्याख्या की जा सकती है | ये कारक संभावित रूप से नीतिगत गत्यात्मकता से प्रभावित हो सकते हैं और किस प्रकार शैक्षिक नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है|

सारणी 2- पियर्सन सहसंबंधों का मान

Variable		Democracy	v2peedueq_sd
1. समग्र लोकतंत्र सूचकांक	पियर्सन r	—	
	सार्थकता स्तर	—	
2. शैक्षिक समानता सूचकांक(v2peedueq_sd)	पियर्सन r	0.219	—
	सार्थकता स्तर	0.056	—

परिणामों की विवेचना

शैक्षिक समानता (v2peedueq_sd) और सहभागी लोकतंत्र के आयाम (v2x_partipdem), r = -.343, p = .002 के बीच एक सार्थक नकारात्मक सहसंबंध की उपस्थिति भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक विशेष परिघटना है | यह निष्कर्ष इस बात पर बल देता है कि भारत में प्रतिभागिता के बढ़ने के सार्थक अपेक्षित प्रभाव शैक्षिक समता और गुणवत्ता पर नहीं पड़ा है | इसका एक और अर्थ यह भी हो सकता है कि भारत में राजनैतिक सहभागिता का शिक्षा पर अभी तक सकारात्मक प्रबाव नहीं है | इस के कारण जटिल और बहुआयामी हो सकते हैं | जैसा कि पेटरमैन (1970) और बार्बर (1984) ने कहा है कि सहभागी लोकतंत्र नागरिकों के प्रत्यक्ष प्रतिभागिता पर आधारित होता है लेकिन यह

कभी कभी केवल समृद्ध वर्ग को ही लाभ पहुँचाने में मदद करता है और इससे कई प्रकार की असमानताएं जन्म लेती हैं जिनमें शैक्षिक असमानता भी हो सकती है | ग्लासमैन और पैटन (2014) भी इस प्रकार का तर्क प्रस्तुत करते हुए प्रतिपादित करते हैं कि इस प्रकार के लोकतंत्र में समृद्ध और संसाधन संपन्न लोग ज्यादा सक्रिय होते हैं और इस प्रकार से ऐसी नीतियों का निर्माण करते हैं जो समता को हतोत्साहित करती हैं | नीमिनेन और अट्टिला (2018) भी इस तथ्य की तरफ ध्यान आकर्षित करते हैं कि ऐसे समाजों में जहां उच्च स्तर की जनसहभागिता है , संसाधन विहीन लोग राजनैतिक नीतिगत रूप से सक्रिय कम होते हैं और संसाधन संपन्न वर्ग नीतियों को अपने पक्ष में सरेखित करने में सफल हो जाता है | इस प्रकार समाज में असमानताएं बढ़ती हैं |

अन्य लोकतंत्र सूचकांक- उदारवादी लोकतंत्र (v2x_libdem), r = -.215, p = .060; प्रतिनिधित्यात्मक लोकतंत्र (v2x_बहुसत्ता), r = -.185, p = .108; विमर्शात्मक लोकतंत्र (v2x_delibdem), r = -.178, p = .121; और समतावादी लोकतंत्र (v2x_egaldem), r = -.165, p = .151- शैक्षिक समानता के साथ गैर-महत्वपूर्ण सहसंबंध दिखाता है।

इन परिणामों का तात्पर्य सीधे सीधे इस बात से है कि अलग अलग प्रकार के लोकतंत्र सूचकांक शैक्षिक समानता के सूचकांक से सार्थक या सकारात्मक रूप से सहसम्बन्धित नहीं थे और इससे कहीं न कहीं आंकड़ों की सघन पड़ताल की आवश्यकता थी

मुख्य अक्ष विश्लेषण से प्राप्त समग्र लोकतांत्रिक सूचकांक का शैक्षिक समानता से सहसंबंध निकाला गया जो कि दुर्बल सकारात्मक सहसंबंध था (r=०.219, p= 0.056)| इस सहसंबंध से भारत में लोकतांत्रिक विकास और शैक्षिक समता एवं गुणवत्ता के विकास के मध्य सकारात्मक सम्बन्ध का पता चलता है | दोनों ही एक पुष्ट करते हैं लेकिन अभी तक भारत में शिक्षा एवं लोकतंत्र एक दूसरे के साथ सम्पूर्ण साहचर्य में नहीं आये हैं | यह निष्कर्ष तार्किकता के ज्यादा निकट लगता है कि दुर्बल सकारात्मक सहसंबंध कहीं न कहीं सुधार की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है | शिक्षा के लोकतंत्रीकरण से ही लोकतंत्र को दृढ किया जा सकता है (डीवी, 1916)| अर्थात अभी भी शैक्षिक प्रक्रियाओं और पाठ्यचर्या का लोकतंत्रीकरण आवश्यक है जिससे कि एक ऐसा नागरिक समुदाय निर्मित हो जो लोकतंत्र के सम्पूर्ण संभावित हितांशों का अनुकूलतम लाभ ले सके |

अध्ययन के निहितार्थ

इस अध्ययन के दूरगामी शैक्षिक एवं नीतिगत निहितार्थ हैं | शैक्षिक स्तर पर यह अध्ययन लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के पाठ्यचर्या में समावेशन पर बल देता है | पाठ्यचर्या में समावेशन से तात्पर्य सिर्फ पाठ्यक्रम या सिलेबस में लोकतंत्र के विषय प्रकरण को सम्मिलित करने से नहीं है अपितु सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाने से है | शैक्षिक लक्ष्यों के निर्धारण से लेकर, पाठ्यक्रम की तैयारी, शिक्षण- अधिगम सामग्री के निर्माण, शैक्षिक कार्यक्रमों के लक्ष्यों को लोकतांत्रिक सिद्धांतों के साथ सरेखित करना, अधिगम परिणामों के निर्वैयक्तिकरण के स्थान पर लोकतंत्रीकरण करना, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया एवं मूल्यांकन का लोकतंत्रीकरण तथा शैक्षिक एवं रोजगार परक अवसरों को पूर्वाग्रह

मुक्त करने में लोकतान्त्रिक मूल्यों और सिद्धांतों का ध्यान रखा जाना चाहिए | इसके लिए पाठ्यचर्या की प्रच्छन्न पाठ्यचर्या या अलिखित पाठ्यचर्या को भी लोकतांत्रिक एवं व्यवसायिक मूल्यों और मानकों के साहचर्य में होना चाहिए |

लोकतांत्रिक सूचकांकों प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र., उदारवादी लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र, विमर्शाधारित लोकतंत्र, और समतावादी लोकतंत्र का शैक्षिक समानता सूचकांक से संबंधों पर प्रकाश डालने से यह अध्ययन नीतिगत विमर्श का राजनैतिक पक्ष उजागर करता है |राजनैतिक स्तर पर यह अध्ययन कहीं न कहीं भारतीय परिप्रेक्ष्य में अब तक के लोकतान्त्रिक मूल्यों के विकास पर भी प्रकाश डालता है और संकेत देता है कि शैक्षिक समता और गुणवत्ता के विकास के लिए बनाई गई रणनीतियां अपने स्वरूप या क्रियान्वयन के स्तर पर लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ सरेखित नहीं रहीं जिनसे इनका जितना प्रभाव शैक्षिक समानता एवं गुणवत्ता पर पड़ना चाहिए था उतना विकास नहीं प्राप्त हुआ | समग्र लोकतंत्र सूचकांक का शिक्षा से सकारात्मक लेकिन दुर्बल सम्बन्ध जहां सुधार की गुंजाइश को दर्शाता है वहीँ यह विकास की सही दिशा की तरफ भारतीय लोकतंत्र की गति की अनुशंसा भी करता है |

इस विषय पर भावी अध्ययनों को अन्य चरों के शैक्षिक समता, गुणवत्ता और विकास से सम्बन्ध को भी प्रकाशित करना चाहिए | जेंडर, क्षमता, सामजिक आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक बुद्धिमत्ता, आय, संस्कृति जैसे चरों के गुणात्मक और मात्रात्मक अध्ययनों से भी विशेष अंतर्दृष्टि मिल सकती है | शिक्षा के विकास और लोकतंत्र के संबंधों को समझने के लिए क्षेत्रीय विशिष्टताओं, सांस्कृतिक विशिष्टताओं, राजनैतिक विशिष्टताओं. समेत ऐतिहासिक कारकों के परिप्रेक्ष्य में देखना एक विस्तृत बोध प्रदान कर सकता है

संदर्भ सूची

1. बलदेव, डी. (2014). द रोल ऑफ एजुकेशन इन सोशल स्ट्रैटिफिकेशन. जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन, 55(1), 30-50.
2. बार्बर, बी. (1984). स्ट्रॉन्ग डेमोक्रेसी: पार्टिसिपेटरी पॉलिटिक्स फॉर ए न्यू एज. बर्कले, CA: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
3. बाउम, एम. ए., & लेक, डी. ए. (2001). द इनविजिबल हैंड ऑफ डेमोक्रेसी: पॉलिटिकल कंट्रोल एंड द प्रोविजन ऑफ पब्लिक सर्विसेज. कम्पेरेटिव पॉलिटिकल स्टडीज, 34(6), 587-621. https://doi.org/10.1177/0010414001034006001
4. ब्राउन, डी. एस. (2002). डेमोक्रेसी, ऑथोरिटेरियनिज़्म एंड एजुकेशन फाइनेंस इन ब्राज़ील. जर्नल ऑफ लैटिन अमेरिकन स्टडीज, 34(1), 115-141. https://doi.org/10.1017/S0022216X01006307
5. कॉफे, एच., & मिचेल्स, ए. (2014). एजुकेशन एंड सपोर्ट फॉर रिप्रेजेंटेटिव, डायरेक्ट एंड स्टेल्थ डेमोक्रेसी. इलेक्टोरल स्टडीज, 35, 1-11. https://doi.org/10.1016/j.electstud.2014.03.006

6. कॉपेडगे, एम., गेरिंग, जे., नटसेन, सी. एच., लिंडबर्ग, एस. आई., टियोरेल, जे., ऑल्टमैन, डी., ... & विल्सन, एस. (2022). वी-डेम डेटासेट v12. वेरायटीज ऑफ डेमोक्रेसी (V-Dem) प्रोजेक्ट.
7. कॉपेडगे, एम., गेरिंग, जे., नटसेन, सी. एच., लिंडबर्ग, एस. आई., टियोरेल, जे., ऑल्टमैन, डी., एंगियोलिलो, एफ., बर्नहार्ड, एम., बोरेला, सी., कॉर्नेल, ए., फिश, एम. एस., फॉक्स, एल., गैस्टाल्डी, एल., गेरलोव, एच., ग्लिन, ए., गुड गॉड, ए., ग्रहन, एस., हिकेन, ए., किंजलबैक, के., मारक्वार्ड्ट, के. एल., मैकमैन, के., मेचकोवा, वी., नीयून्डोर्फ, ए., पेक्सटन, पी., पेमस्टीन, डी., राइडन, ओ., वॉन रोमर, जे., सेम, बी., सिगमन, आर., स्कैनिंग, एस.-ई., स्टेटन, जे., संडस्ट्रॉम, ए., टजेलगोव, ई., उबर्टी, एल., वांग, वाई., विग, टी., & जिबलैट, डी. (2024). वी-डेम कोडबुक v14. वेरायटीज ऑफ डेमोक्रेसी (V-Dem) प्रोजेक्ट.
8. डाहलम, एस., & नटसेन, सी. एच. (2017). डू डेमोक्रेसीज प्रोवाइड बेटर एजुकेशन? रिविजिटिंग द डेमोक्रेसी–ह्यूमन कैपिटल लिंक. वर्ल्ड डेवलपमेंट. doi:10.1016/j.worlddev.2017.01.001
9. डेविड, एम. ई. (2009). सोशल डाइवर्सिटी एंड डेमोक्रेसी इन हायर एजुकेशन इन द 21st सेंचुरी: टुवर्ड्स ए फेमिनिस्ट क्रिटीक. हायर एजुकेशन पॉलिसी, 22, 61-79.
10. ड्यूई, जॉन (1916). *डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन: एन इंट्रोडक्शन टू द फिलॉसफी ऑफ एजुकेशन*। न्यूयॉर्क: मैकमिलन।
11. दे ला क्रॉक्स, डी., & डोपके, एम. (2009). टू सेग्रेगेट और टू इंटीग्रेट: एजुकेशन पॉलिटिक्स एंड डेमोक्रेसी. रिव्यू ऑफ इकोनॉमिक स्टडीज, 76(2), 597–628. https://doi.org/10.1111/j.1467-937X.2009.00551.x
12. ग्लीज़र, ई. एल., पोनज़ेट्टो, जी. ए. एम., & श्लाइफर, ए. (2007). व्हाई डज़ डेमोक्रेसी नीड एजुकेशन? जर्नल ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ, 12(2), 77-99. https://doi.org/10.1007/s10887-007-9015-1
13. ग्लासमैन, एम., & पैटन, आर. (2014). कैपेबिलिटी थ्रू पार्टिसिपेटरी डेमोक्रेसी: सेन, फ्रेरे, और डेवी. एजुकेशनल फिलॉसफी एंड थ्योरी, 46(12), 1353-1365.
14. हुसेफेल्ट, वी., & निकोलेवा, आर. (2003). स्टूडेंट्स' कॉन्सेप्ट्स ऑफ डेमोक्रेसी. यूरोपियन एजुकेशनल रिसर्च जर्नल, 2(3), 396-408.
15. इंगलेहार्ट, आर., & नॉरिस, पी. (2003). राइजिंग टाइड: जेंडर इक्वालिटी एंड कल्चरल चेंज अराउंड द वर्ल्ड. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
16. कैसी, एम. (2010). डेमोक्रेसी एंड पॉलिटिकल एक्शन. इंटरनेशनल पॉलिटिकल साइंस रिव्यू, 31(5), 539-551.
17. कार्वोनेन, एल. (2014). द नॉर्डिक डेमोक्रेसीज. कोपेनहेगन: कोपेनहेगन यूनिवर्सिटी प्रेस.
18. कीस, जे. (2021). लर्निंग बाय डूइंग: द इम्पैक्ट ऑफ एक्सपीरियंसिंग डेमोक्रेसी इन एजुकेशन ऑन पॉलिटिकल ट्रस्ट एंड पार्टिसिपेशन. पॉलिटिक्स, 42(1), 75-94.

19. लेन, आर. ई. (1964). पॉलिटिकल लाइफ: व्हाई एंड हाउ पीपल गेट इनवॉल्व्ड इन पॉलिटिक्स. यूनाइटेड स्टेट्स: फ्री प्रेस.
20. मॉक, एम. (2021). क्वालिटी ऑफ डेमोक्रेसी मेक्स अ डिफरेंस, बट नॉट फॉर एवरीवन: हाउ पॉलिटिकल इंटरेस्ट, एजुकेशन, एंड कॉन्सेप्शन्स ऑफ डेमोक्रेसी कंडीशन द रिलेशनशिप बिटवीन डेमोक्रेटिक क्वालिटी एंड पॉलिटिकल ट्रस्ट. फ्रंटियर्स इन पॉलिटिकल साइंस, 3, 637344. https://doi.org/10.3389/fpos.2021.637344
21. मॉर्लिनो, एल. (2002). व्हाट इज ए गुड डेमोक्रेसी? थ्योरी एंड एम्पिरिकल एनालिसिस. यूनिवर्सिटी ऑफ फ्लोरेंस & इंस्टीट्यूट फॉर इंटरनेशनल स्टडीज, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी. डिलीवर्ड एट द कांफ्रेंस ऑन "द यूरोपियन यूनियन, नेशन्स स्टेट, एंड द क्वालिटी ऑफ डेमोक्रेसी. लेसन्स फ्रॉम सदर्न यूरोप", यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले, अक्टूबर 31-नवंबर 2, 2002.
22. निमिनेन, टी., & अटिला, एच. (2018). अनइक्वल इनइक्वालिटीज? हाउ पार्टिसिपेटरी इनइक्वालिटीज अफेक्ट डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी. यूरोपियन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू.
23. पेटेमन, सी. (1970). पार्टिसिपेशन एंड डेमोक्रेटिक थ्योरी. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
24. पेमस्टीन, डी., मारक्वार्ड्ट, के. एल., टजेलगोव, ई., वांग, वाई., मेदज़िहोस्र्की, जे., क्रुसेल, जे., & मिरी, एफ. (2020). द वी-डेम मेजरमेंट मॉडल: लैटेंट वेरिएबल एनालिसिस फॉर क्रॉस-नेशनल एंड क्रॉस-टेम्पोरल एक्सपर्ट-कोडेड डेटा. वी-डेम वर्किंग पेपर, 21.
25. रीमर्स, एफ. (2007). सिविक एजुकेशन व्हेन डेमोक्रेसी इज़ इन फ्लक्स: द इम्पैक्ट ऑफ एम्पिरिकल रिसर्च ऑन पॉलिसी एंड प्रैक्टिस इन लैटिन अमेरिका. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सिटिज़नशिप टीचिंग एंड लर्निंग, 3(2), 5-20
26. वांग, जी., वू, एल., & हान, आर. (2015). कॉलेज एजुकेशन एंड एटीट्यूड्स टुवर्ड डेमोक्रेसी इन चाइना: ए एम्पिरिकल स्टडी. एशिया पैसिफिक एजुकेशन रिव्यू, 16(3), 399–412. https://doi.org/10.1007/s12564-015-9386-5

35

भारत में भाषाई विविधता: संस्कृत भाषा का संवैधानिक और सांस्कृतिक महत्व

डॉ. भानु प्रताप सिंह
सहायक आचार्य, आई०एल०एस०आर०, जी०एल०ए० विश्वविद्यालय, मथुरा
चेतना चौधरी
शोध छात्रा , एस०एम०पी० राजकीय महिला महाविद्यालय, मेरठ

भारत में भाषाई विविधता और संस्कृत का ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व

भारत को भाषाओं की भूमि कहा जाता है, जहां सैकड़ों भाषाएं और बोलियां प्रचलित हैं। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है, लेकिन देश में 19,500 से अधिक मातृभाषाएं और बोलियां पाई जाती हैं। यह भाषाई विविधता भारत के इतिहास, भूगोल और सांस्कृतिक विकास का परिणाम है। हालांकि यह विविधता भारत की समृद्ध विरासत को दर्शाती है, लेकिन इसके साथ राष्ट्रीय एकता बनाए रखने की चुनौती भी जुड़ी हुई है।

संस्कृत, जिसे "देवभाषा" कहा जाता है, भारतीय भाषाई परंपरा का आधार रही है। संस्कृत न केवल एक शास्त्रीय भाषा है, बल्कि यह अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी भी मानी जाती है। हिंदी, बंगाली, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु और तमिल सहित कई भाषाओं ने संस्कृत से शब्दावली, व्याकरण और साहित्यिक शैली ग्रहण की है। संस्कृत के वैदिक साहित्य, महाकाव्यों, और दर्शन ग्रंथों ने भारत की सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत को गहराई से प्रभावित किया है।

इतिहास में, संस्कृत ने केवल धार्मिक और शास्त्रीय संदर्भों में ही नहीं, बल्कि शिक्षा, विज्ञान और प्रशासन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों, जैसे नालंदा और तक्षशिला, में संस्कृत शिक्षा का माध्यम थी। यह भारत के भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान को संरक्षित और प्रसारित करने का प्रमुख साधन रही है। संस्कृत की यह बहुआयामी भूमिका इसे भारत की भाषाई विविधता में एकता का प्रतीक बनाती है।

संस्कृत का एक शास्त्रीय भाषा के रूप में विकास और इसका क्षेत्रीय भाषाओं पर प्रभाव

संस्कृत, जिसे "विश्व की सबसे पुरानी जीवित भाषा" कहा जाता है, का विकास प्राचीन भारत में वैदिक काल से हुआ। इसकी जड़ें वैदिक संस्कृत में हैं, जो ऋग्वेद जैसे ग्रंथों में प्रकट होती है। इसके बाद "लौकिक संस्कृत" का विकास हुआ, जो साहित्य, विज्ञान, और दर्शन के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा बनी। महर्षि पाणिनि द्वारा रचित *अष्टाध्यायी* ने संस्कृत व्याकरण को व्यवस्थित किया, जिससे यह एक अत्यधिक संरचित और मानकीकृत भाषा बन गई। संस्कृत ने भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं के व्याकरण, शब्दावली, और साहित्यिक शैली को प्रभावित किया। हिंदी, मराठी, बंगाली, कन्नड़, मलयालम, और तेलुगु जैसी भाषाओं ने संस्कृत से व्यापक शब्दावली और साहित्यिक परंपराएं ग्रहण की हैं। यह प्रभाव आज भी इन भाषाओं के साहित्य और बोलचाल में देखा जा सकता है।

संस्कृत का भारतीय साहित्य, दर्शन, और संस्कृति को आकार देने में योगदान

संस्कृत ने भारतीय साहित्य, दर्शन, और सांस्कृतिक परंपराओं की नींव रखी। महाकाव्य जैसे *रामायण* और *महाभारत* ने न केवल साहित्यिक उत्कृष्टता स्थापित की, बल्कि नैतिक और सामाजिक मूल्यों को भी परिभाषित किया। संस्कृत साहित्य में नाटककार कालिदास, भाष्यकार शंकराचार्य, और वैज्ञानिक आर्यभट्ट जैसे विद्वानों ने अपने क्षेत्रों में अभूतपूर्व योगदान दिया। दर्शन में, वेदांत, सांख्य, और योग जैसे भारतीय दर्शन की प्रमुख धाराओं का विकास संस्कृत में हुआ। संस्कृत ग्रंथों ने केवल धार्मिक और आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि भौतिक विज्ञान, गणित, और खगोलशास्त्र के क्षेत्रों में भी योगदान दिया। संस्कृत ने भारतीय संस्कृति में धार्मिक अनुष्ठानों, संगीत, और कला को भी प्रेरित किया। संस्कृत के श्लोक और मंत्र आज भी धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा हैं। इसने भारतीय समाज को एकता और पहचान प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय भाषाओं में संस्कृत से व्युत्पन्न शब्दावली, व्याकरण और वाक्य रचना का तुलनात्मक विश्लेषण

संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी मानी जाती है। इसकी गहरी छाप हिंदी, बंगाली, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम और अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली, व्याकरण और वाक्य संरचना पर देखी जा सकती है। संस्कृत का प्रभाव इन भाषाओं की जड़ों को एकता प्रदान करता है, जो भारत की भाषाई विविधता में अंतर्निहित है।

शब्दावली का प्रभाव

हिंदी और मराठी जैसी भाषाओं में संस्कृत शब्द सीधे उपयोग होते हैं, जैसे "प्रकाश," "विद्या," "सत्य," और "धर्म"। बंगाली और गुजराती में भी इन शब्दों का थोड़ा परिवर्तित रूप, जैसे "प्रकाश" को "प्रोकाश" और "धर्म" को "धोर्म" के रूप में प्रयोग किया जाता है। दक्षिण भारतीय भाषाएं, जैसे कन्नड़ और तेलुगु, संस्कृत के शब्दों जैसे "आनंद," "सौंदर्य," और "विज्ञान" को अपने साहित्य और बोली में शामिल करती हैं।

व्याकरण की समानता

संस्कृत का व्याकरणिक ढांचा, पाणिनि के *अष्टाध्यायी* से प्रेरित है, और यह हिंदी, मराठी, बंगाली और दक्षिण भारतीय भाषाओं में दिखाई देता है। संज्ञा, विशेषण, और क्रिया के लिंग, वचन और कारक के अनुसार परिवर्तन संस्कृत के व्याकरणिक नियमों पर आधारित हैं।

वाक्य रचना का प्रभाव

भारतीय भाषाओं में संस्कृत की "कारक सिद्धांत" संरचना का अनुसरण किया जाता है। उदाहरण के लिए, हिंदी वाक्य "राम ने रावण को हराया" और मराठी वाक्य "रामाने रावणाचा पराभव केला" में संरचना संस्कृत की तर्ज पर आधारित है। इसी प्रकार, कन्नड़ और तेलुगु वाक्यों में भी संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। संस्कृत का यह योगदान भारतीय भाषाओं को एक भाषाई और सांस्कृतिक धरोहर प्रदान करता है, जो उन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से जोड़ता है।

हिंदी, बंगाली, कन्नड़, तमिल और अन्य भारतीय भाषाओं में साझा भाषाई तत्वों के उदाहरण

भारतीय भाषाएं विविधता में एकता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। संस्कृत से व्युत्पन्न होने के कारण हिंदी, बंगाली, कन्नड़, तमिल, और अन्य भाषाओं में कई साझा भाषाई तत्व पाए जाते हैं। इनमें शब्दावली, व्याकरणिक संरचनाएं, और वाक्य रचना प्रमुख हैं।

1. साझा शब्दावली (Vocabulary)

संस्कृत ने भारतीय भाषाओं में गहरी छाप छोड़ी है, और कई शब्द मामूली उच्चारण परिवर्तनों के साथ इन भाषाओं में पाए जाते हैं।

- **ज्ञान (Knowledge):**
  - हिंदी: ज्ञान
  - बंगाली: জ্ঞান (Gyaan)
  - कन्नड़: ಜ್ಞಾನ (Jñāna)
  - तमिल: ஞானம் (Ñānam)

धर्म (Religion/Duty):

- हिंदी: धर्म
- बंगाली: ধর্ম (Dhôrmô)
- कन्नड़: ಧರ್ಮ (Dharma)
- तमिल: தருமம் (Taramam)

प्रकाश (Light):

- हिंदी: प्रकाश
- बंगाली: প্রাকাশ (Prakash)
- कन्नड़: ಪ್ರಕಾಶ (Prakāsha)
- तमिल: பிரகாசம் (Prakācam)

2. साझा व्याकरणिक संरचनाएं (Grammar)

संस्कृत व्याकरणिक संरचना, जैसे लिंग (Gender), वचन (Number), और कारक (Cases), भारतीय भाषाओं में समान हैं।

- **लिंग का परिवर्तन (Gender):**
  - हिंदी: लड़का/लड़की
  - बंगाली: ছেলে/মেয়ে
  - कन्नड़: ಹುಡುಗ/ಹುಡುಗಿ

- तमिल: பையன்/பெண்

बहुवचन (Plural):

- हिंदी: पुस्तक/पुस्तकें
- बंगाली: বই/বইগুলো
- कन्नड़: ಪುಸ್ತಕ/ಪುಸ್ತಕಗಳು
- तमिल: புத்தகம்/புத்தகங்கள்

3. साझा वाक्य रचना (Syntax)

संस्कृत की "कार्य-कारक" संरचना का प्रभाव वाक्य निर्माण में स्पष्ट है।

- **वाक्य संरचना:**
  - हिंदी: राम ने रावण को हराया।
  - बंगाली: রাম রাবণকে পরাজিত করেছিল।
  - कन्नड़: ರಾಮನು ರಾವಣನನ್ನು ಸೋಲಿಸಿದನು।
  - तमिल: ராமன் ராவணனை தோற்கடித்தான்।

साझा भाषाई तत्वों का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व

इन साझा तत्वों ने भारत की भाषाई विविधता को एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक एकता दी है। यह न केवल भाषाई संरचना में दिखता है, बल्कि भारतीय भाषाओं के साहित्य और संस्कृति को भी प्रभावित करता है।

संस्कृत: भाषाई सेतु जो परस्पर समझ को बढ़ावा देता है

संस्कृत को भारतीय भाषाओं के बीच एक प्रभावी भाषाई सेतु माना जाता है, जो भारत की भाषाई विविधता में परस्पर समझ और समन्वय स्थापित करने में सहायता करता है। संस्कृत का व्याकरण, शब्दावली, और ध्वनि संरचना ऐसी विशेषताएं प्रस्तुत करती हैं जो भारतीय भाषाओं को एक दूसरे से जोड़ती हैं और उनकी आपसी समझ को सरल बनाती हैं।

1. शब्दावली में समानता

संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द अधिकांश भारतीय भाषाओं में सामान्य हैं, चाहे वे हिंदी, बंगाली, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, या तमिल हों। उदाहरण के लिए:

- मूल शब्द: "आकाश" (आकाश)
  - हिंदी: आकाश
  - बंगाली: আকাশ (आकाश)
  - कन्नड़: ಆಕಾಶ (आकाश)
  - तमिल: ஆகாயம் (आकायम्)

- तेलुगु: ఆకాశం (आकाशम्)

2. व्याकरणिक संरचनाओं में समानता

संस्कृत की व्याकरणिक संरचना, विशेष रूप से संज्ञा के लिंग और वचन में परिवर्तन, भारतीय भाषाओं में साझा किए गए महत्वपूर्ण तत्व हैं। उदाहरण के लिए, "राम खाता है" (हिंदी), "राम খায়" (बंगाली), और "ರಾಮ ಊಟಿಸುತ್ತಾನೆ" (कन्नड़) जैसी संरचनाएं संस्कृत के नियमों से प्रभावित हैं।

3. वाक्य रचना और अभिव्यक्ति में समानता

संस्कृत की "कारक" सिद्धांत आधारित वाक्य रचना ने भारतीय भाषाओं की वाक्य संरचना को प्रभावित किया है। कारक-क्रिया-कार्य (Subject-Verb-Object) का उपयोग कई भाषाओं में मिलता है।

4. ध्वनि विज्ञान और उच्चारण

संस्कृत की ध्वनि संरचना और उच्चारण प्रणाली ने भारतीय भाषाओं को समान स्वर और व्यंजन प्रदान किए हैं। उदाहरण के लिए, "क" से "ज्ञ" तक वर्णमाला सभी भारतीय भाषाओं में पाई जाती है, जो पारस्परिक समझ में सहायक होती है।

संस्कृत की यह विशेषता भारत की भाषाई विविधता को एक सूत्र में पिरोती है, जो न केवल भाषाओं को जोड़ती है, बल्कि सांस्कृतिक एकता को भी बढ़ावा देती है।

नीचे दी गई तालिका भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित 22 भाषाओं की संस्कृत भाषा के साथ समानता का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस तालिका में व्याकरण, शब्दावली, लिपि और संरचना के आधार पर समानताएं दर्शाई गई हैं:

भाषा	व्याकरण में समानता	शब्दावली में समानता	लिपि में समानता	संरचना में समानता
हिंदी	उच्च	उच्च	देवनागरी	उच्च
बंगाली	मध्यम	मध्यम	भिन्न	मध्यम
गुजराती	मध्यम	उच्च	भिन्न	मध्यम
मराठी	उच्च	उच्च	देवनागरी	उच्च
पंजाबी	मध्यम	कम	गुरुमुखी	कम
तमिल	कम	कम	तमिल	कम
तेलुगु	मध्यम	मध्यम	तेलुगु	कम
कन्नड़	मध्यम	मध्यम	कन्नड़	कम
मलयालम	कम	कम	मलयालम	कम
ओड़िया	मध्यम	मध्यम	ओड़िया	मध्यम
असमिया	मध्यम	मध्यम	असमिया	मध्यम

उर्दू	कम	मध्यम	उर्दू	मध्यम
कोंकणी	उच्च	उच्च	देवनागरी	उच्च
सिंधी	मध्यम	मध्यम	अरबी/देवनागरी	मध्यम
डोगरी	मध्यम	मध्यम	देवनागरी	मध्यम
मैथिली	उच्च	उच्च	देवनागरी	उच्च
मणिपुरी	कम	कम	मेइतेई	कम
संताली	कम	कम	ओल चिकी	कम
बोडो	कम	कम	देवनागरी	कम
नेपाली	उच्च	उच्च	देवनागरी	उच्च
कश्मीरी	मध्यम	मध्यम	अरबी/शारदा	मध्यम

विश्लेषण

- **देवनागरी लिपि की समानता:** हिंदी, मराठी, कोंकणी, मैथिली, और नेपाली जैसी भाषाओं में देवनागरी लिपि का उपयोग संस्कृत से गहरा जुड़ाव दिखाता है।
- **शब्दावली की समानता:** संस्कृत शब्दों का प्रभाव सभी भाषाओं में अलग-अलग मात्रा में देखा जाता है, हिंदी, मराठी और मैथिली में यह सबसे अधिक स्पष्ट है।
- **व्याकरण की समानता:** हिंदी, मराठी, और नेपाली जैसी भाषाओं में संस्कृत व्याकरण के नियमों का उच्च प्रभाव है, जबकि दक्षिण भारतीय भाषाओं में यह प्रभाव कम है।
- **संरचना:** हिंदी और नेपाली जैसी भाषाओं की वाक्य संरचना संस्कृत से अधिक मेल खाती है।

संस्कृत की केंद्रीय भूमिका इसे भारतीय भाषाओं के बीच एक "लिंगुआ फ्रैंका" बनाती है, जो भारतीय भाषाई विविधता को जोड़ने में सहायक है।

संस्कृत से संबंधित संविधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में भाषाई और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए कई प्रावधान हैं, जो संस्कृत जैसी भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन को सुनिश्चित करते हैं। इन प्रावधानों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और भाषाओं को संरक्षण प्राप्त होता है।

अनुच्छेद 29 (Article 29)

अनुच्छेद 29 भारतीय नागरिकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति के संरक्षण का अधिकार प्रदान करता है। यह प्रावधान विशेष रूप से अल्पसंख्यक समुदायों को उनकी भाषा और सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखने का अधिकार देता है। संस्कृत, जो एक प्राचीन और सांस्कृतिक धरोहर है, इस प्रावधान के तहत संरक्षण के योग्य है।

अनुच्छेद 51A(f)

यह अनुच्छेद भारतीय नागरिकों को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करता है और उन्हें भारतीय संस्कृति और भाषाओं के संरक्षण में योगदान करने का दायित्व सौंपता है। संस्कृत भाषा को भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है, और इस अनुच्छेद के तहत नागरिकों का कर्तव्य है कि वे इसे संरक्षित और प्रोत्साहित करें।

अनुच्छेद 351

संविधान का यह अनुच्छेद केंद्र सरकार को यह निर्देश देता है कि वह भारतीय भाषाओं के विकास के लिए उपायों को अपनाए, और विशेष रूप से हिंदी की सहायता से राष्ट्रव्यापी समझ को बढ़ावा दे। संस्कृत, जो हिंदी के विकास में सहायक रही है, इस संदर्भ में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इन प्रावधानों के माध्यम से भारतीय संविधान संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के संरक्षण और विकास को प्राथमिकता देता है, जो भारतीय संस्कृति की समृद्धि में योगदान करते हैं।

आठवीं अनुसूची में संस्कृत का महत्व

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में विभिन्न भारतीय भाषाओं की सूची दी गई है, जो भारतीय संघ और राज्य सरकारों द्वारा सरकारी कार्यों में और शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग की जाती हैं। संस्कृत को इस अनुसूची में शामिल किया गया है, जिससे इसे संविधान द्वारा एक विशेष दर्जा प्राप्त है और यह भारतीय भाषाओं के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आठवीं अनुसूची का उद्देश्य भाषाई विविधता को संरक्षित करना और भारतीय भाषाओं को समान अधिकार प्रदान करना है, जिससे संस्कृत को भी एक सशक्त पहचान मिलती हैं।

संस्कृत की सांवैधानिक स्थिति

संस्कृत को आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाना इसे भारतीय संविधान के तहत मान्यता प्राप्त एक महत्वपूर्ण भाषा बनाता है। यह न केवल संस्कृत के संरक्षण और संवर्धन के लिए सरकार की जिम्मेदारी को स्पष्ट करता है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि संस्कृत को एक प्रमुख भाषा के रूप में सम्मानित किया जाएगा। भारतीय संविधान के अनुसार, आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं को संघीय और राज्य स्तर पर आधिकारिक रूप से उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि सरकारी कार्य, संसद में संवाद, और न्यायालयों में।

संस्कृत का साहित्यिक और सांस्कृतिक योगदान

संस्कृत का साहित्यिक और सांस्कृतिक योगदान भारतीय समाज में महत्वपूर्ण है। संस्कृत में अभिव्यक्त साहित्य, दर्शन, धर्म, और विज्ञान के कई ग्रंथ और पाठ उपलब्ध हैं, जो भारतीय संस्कृति की नींव हैं। आठवीं अनुसूची में संस्कृत का समावेश इसे न केवल एक प्राचीन भाषा के रूप में, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के प्रतीक के रूप में मान्यता प्रदान करता है।

संस्कृत के संरक्षण के लिए राज्य सरकार की भूमिका

संस्कृत की पहचान और उसका संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकारों को विशेष योजनाएं और कार्यक्रम चलाने का निर्देश दिया जाता है। जैसे, संस्कृत विद्यालयों की स्थापना, शोध कार्यों को प्रोत्साहन देना और संस्कृत की शिक्षा को बढ़ावा देना। आठवीं अनुसूची में संस्कृत का समावेश इसे भारतीय भाषाओं के संवर्धन और विकास के लिए एक महत्वपूर्ण स्तंभ बनाता है और यह भाषाई समृद्धि और विविधता को बढ़ावा देता है।

संविधान सभा की बहसों में संस्कृत के महत्व पर दृष्टिकोण

भारत के संविधान को तैयार करते समय संविधान सभा में कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की गई थी, जिनमें भारतीय भाषाओं का स्थान और महत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय था। संस्कृत को लेकर संविधान सभा में जो विचार-विमर्श हुआ, वह न केवल इसकी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को बल्कि भारतीय समाज में इसकी स्थायी भूमिका को समझने का प्रयास था।

संविधान सभा में संस्कृत का स्थान

संविधान सभा की बहसों में संस्कृत का उल्लेख विशेष रूप से उसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्वता के संदर्भ में हुआ था। कई संविधान सभा के सदस्य यह मानते थे कि संस्कृत भारतीय संस्कृति की जड़ें हैं और इसे भारतीय संविधान और समाज में एक विशिष्ट स्थान मिलना चाहिए। हालांकि, कुछ सदस्य संस्कृत के स्थान पर अन्य भाषाओं को प्राथमिकता देने के पक्ष में थे, क्योंकि वे मानते थे कि संस्कृत के प्रचलन की स्थिति वर्तमान समय में कमजोर हो गई है। फिर भी, संस्कृत को भारतीय संविधान में एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में मान्यता देने की आवश्यकता महसूस की गई।

संविधान सभा में बहस के प्रमुख बिंदु

संविधान सभा के सदस्य डॉ. भीमराव अंबेडकर और जवाहरलाल नेहरू ने संस्कृत की ऐतिहासिक महत्ता को स्वीकार किया, लेकिन उन्होंने इसके वर्तमान प्रभावी उपयोग पर सवाल उठाए। नेहरू ने संस्कृत को एक "संपन्न" भाषा के रूप में स्वीकार किया, लेकिन उन्होंने इसे "जीवित" भाषाओं से अधिक समर्थन देने की आवश्यकता को खारिज किया।

वहीं, संविधान सभा के सदस्य श्री नीलकंठ ने संस्कृत को भारतीय संविधान की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता देने का पक्ष लिया, और उनके अनुसार यह केवल एक प्राचीन भाषा नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान और साहित्य की नींव भी है।

संविधान सभा की चर्चा के निष्कर्ष

संविधान सभा की चर्चाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत को भारतीय भाषाओं की विविधता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह न केवल एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में है, बल्कि भारतीय संविधान में संस्कृत को सम्मान देने से भारतीय संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में यह सशक्त भूमिका निभा सकती है।

संविधान सभा की बहसों से यह भी स्पष्ट हुआ कि संस्कृत का महत्व केवल एक भाषिक तत्व के रूप में नहीं, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, साहित्य, और धार्मिक परंपराओं का एक अभिन्न हिस्सा है, और इसके संरक्षण के लिए उपयुक्त कदम उठाए जाने चाहिए।

संस्कृत का भारत की सांस्कृतिक एकता में योगदान

भारत एक भाषाई दृष्टि से अत्यधिक विविध देश है, जहाँ सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं। इस विविधता के बावजूद, संस्कृत ने भारतीय समाज और संस्कृति को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य किया है। संस्कृत को न केवल एक प्राचीन भाषा के रूप में, बल्कि भारतीय संस्कृति की आधारभूत धारा के रूप में देखा जाता है।

संस्कृत और सांस्कृतिक एकता

संस्कृत का योगदान भारत की सांस्कृतिक एकता में अविस्मरणीय है। यह भाषा भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं के बीच एक सांस्कृतिक सेतु का कार्य करती है। संस्कृत में लिखित धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ, जैसे कि वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, और भगवद गीता, भारतीय समाज के विभिन्न हिस्सों में समान रूप से पढ़े और समझे जाते हैं। इन ग्रंथों का भारत के विभिन्न हिस्सों में गहरे प्रभाव हैं, और ये भारतीयों को एक साझा सांस्कृतिक पहचान प्रदान करते हैं।

संस्कृत का साहित्य न केवल धार्मिक और दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत करता है, बल्कि यह भारतीय समाज के आदर्शों, नैतिकता, और परंपराओं को भी स्थापित करता है, जो कि सांस्कृतिक एकता को प्रोत्साहित करते हैं। इसलिए, संस्कृत को भारतीय संस्कृति का आधार माना जाता है, जो देश की विविधता को जोड़ने का कार्य करता है।

संस्कृत-आधारित शब्दावली का शासन, कानून और शिक्षा पर प्रभाव

संस्कृत की शब्दावली और उसकी संरचना भारतीय शासकीय, न्यायिक, और शैक्षिक संस्थाओं पर गहरे प्रभाव डालती हैं। संस्कृत से कई आधुनिक भारतीय भाषाओं ने शब्दों और शैक्षिक परिभाषाओं का लिया है, जो शासन और प्रशासन के कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संस्कृत और शासन

संस्कृत का शासन में योगदान विशेष रूप से कानूनी और संविधानिक शब्दावली में देखा जा सकता है। भारतीय संविधान, जिसमें संस्कृत आधारित शब्दों का समावेश है, भारतीय न्यायपालिका और शासकीय कार्यों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, 'न्याय' (justice), 'संविधान' (constitution), और 'समाज' (society) जैसे शब्द संस्कृत से ही निकले हैं और इनके उपयोग से भारतीय शासन प्रणाली में एकता और सुसंगतता सुनिश्चित होती है।

संस्कृत और कानून

संस्कृत के शब्दों का कानूनी दस्तावेजों और न्यायालयी निर्णयों में अत्यधिक प्रभाव है। संस्कृत में लिखी गई प्राचीन कानूनी ग्रंथों, जैसे 'मनुस्मृति', का भारतीय न्याय व्यवस्था पर प्रभाव पड़ा है। 'धर्म' (dharma), 'न्याय' (nyaya), और 'अधिकार' (adhikar) जैसे शब्द, जो संस्कृत से उत्पन्न हुए हैं, आज भी भारतीय कानून में प्रासंगिक हैं।

संस्कृत और शिक्षा

संस्कृत को शैक्षिक प्रणाली में एक उच्च स्थान प्राप्त है, विशेष रूप से संस्कृत साहित्य, दर्शन और विज्ञान की पढ़ाई के संदर्भ में। आज भी भारतीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन विभिन्न विषयों में किया जाता है, जो शैक्षिक और बौद्धिक विकास में सहायक है। संस्कृत में दी गई शिक्षा ने भारतीय समाज को न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान दिया, बल्कि वैज्ञानिक और गणितीय ज्ञान में भी योगदान किया, जिसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समाहित किया गया है।

संस्कृत के संरक्षण और संवर्धन के लिए सरकारी प्रयास और शैक्षिक पहल

संस्कृत भाषा के संरक्षण और संवर्धन के लिए भारत सरकार ने कई नीतियां और योजनाएँ लागू की हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मे संस्कृत को प्राथमिकता दी गई है, जहाँ इसे भारतीय संस्कृति और परंपरा के अभिन्न हिस्से के रूप में

प्रस्तुत किया गया। इसके तहत संस्कृत को स्कूल स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक पढ़ाने और शोध के माध्यम से बढ़ावा देने का प्रावधान है।

भारतीय संस्कृत संस्थान और राज्य स्तर के संस्कृत विश्वविद्यालय, जैसे कि राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (तिरुपति) और राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (नई दिल्ली), भाषा के अध्ययन और अनुसंधान को प्रोत्साहित करते हैं। इन संस्थानों के माध्यम से छात्रों को संस्कृत में शिक्षा प्राप्त करने और प्राचीन ग्रंथों पर शोध करने का अवसर मिलता है।

संस्कृत के संरक्षण की सरकारी योजनाएँ

1. संस्कृत भारती योजना: संस्कृत को रोज़मर्रा की भाषा बनाने के लिए यह पहल चलाई गई।
2. संस्कृत दिवस: हर साल 'रक्षाबंधन' के दिन संस्कृत दिवस मनाया जाता है।
3. डिजिटल संस्कृत कोष: प्राचीन ग्रंथों और शब्दावली को डिजिटल रूप में संरक्षित करने के प्रयास।

आधुनिक भाषाई विमर्श में संस्कृत के एकीकरण की चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

संस्कृत को आधुनिक भाषाई परिदृश्य में एकीकृत करना कई चुनौतियों और आलोचनाओं के साथ आता है।

लोकप्रियता की कमी: संस्कृत को "मृत भाषा" कहा जाता है क्योंकि इसका मौखिक उपयोग सीमित है।

शैक्षणिक सीमाएँ: स्कूलों और कॉलेजों में संसाधनों और योग्य शिक्षकों की कमी।

आलोचना: कुछ लोग इसे 'भाषाई वर्चस्व' का प्रतीक मानते हैं, जो विविधता को खतरे में डाल सकता है।

डिजिटल तकनीक और आधुनिक संचार में संस्कृत

डिजिटल युग में संस्कृत का पुनरुत्थान एक दिलचस्प क्षेत्र है। संस्कृत भाषा को डिजिटल प्लेटफॉर्म्स, ऐप्स, और ऑनलाइन कोर्स के माध्यम से लोकप्रिय बनाया जा रहा है।

संस्कृत-आधारित AI:

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) में संस्कृत का उपयोग संस्कृत की संरचनात्मक पूर्णता के कारण हो रहा है।
2. ऑनलाइन पाठ्यक्रम: Coursera और अन्य प्लेटफार्म पर संस्कृत पढ़ाई जाती है।
3. डिजिटल शब्दकोश और अनुवाद: संस्कृत को डिजिटल रूप से संरक्षित और उपयोग में लाने का प्रयास।

क्षेत्रीय स्तर पर संस्कृत के संवर्धन का विरोध

संस्कृत भाषा के संवर्धन को लेकर कई क्षेत्रों में प्रतिरोध देखा गया है। यह विरोध मुख्य रूप से भाषाई विविधता और क्षेत्रीय भाषाओं की पहचान के संरक्षण से संबंधित है। कुछ राज्यों, जैसे तमिलनाडु और केरल, ने संस्कृत के प्रति आरंभिक अनिच्छा प्रकट की, इसे अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के महत्व को कम करने वाला माना।

क्षेत्रीय भाषा संगठनों का मानना है कि संस्कृत को प्राथमिकता देने से स्थानीय भाषाओं और बोलियों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। वे इसे "उत्तर भारत केंद्रित" प्रयास मानते हैं, जो दक्षिण भारतीय और पूर्वोत्तर भाषाओं की अद्वितीयता को खतरे में डालता है।

संस्कृत के ऐतिहासिक महत्व और क्षेत्रीय भाषाओं की स्वायत्तता के बीच संतुलन

संस्कृत भारतीय संस्कृति और परंपरा का प्रतीक है, लेकिन इसकी प्रासंगिकता को बनाए रखते हुए क्षेत्रीय भाषाओं की स्वायत्तता को बनाए रखना एक चुनौती है।

संविधान का अनुच्छेद 351 हिंदी को अन्य भारतीय भाषाओं के साथ विकसित करने में संस्कृत की सहायता लेने का सुझाव देता है। हालांकि, क्षेत्रीय भाषाएँ अपनी सांस्कृतिक और भाषाई पहचान को बनाए रखने पर जोर देती हैं।

भारत में भाषाई नीतियों को इस तरह संतुलित करना आवश्यक है कि संस्कृत की विरासत संरक्षित हो, लेकिन क्षेत्रीय भाषाएँ भी बढ़ती और फलती-फूलती रहें। यह संतुलन नीतिगत स्तर पर बहुभाषावाद को प्रोत्साहित करने से हासिल किया जा सकता है, जो सभी भाषाओं को समान महत्ता प्रदान करता है।

संस्कृत को 'एलीट' भाषा के रूप में देखे जाने की धारणा का समाधान

संस्कृत को अक्सर "एलीट" भाषा माना गया है, जिसका उपयोग मुख्य रूप से ब्राह्मण वर्ग द्वारा किया गया। इस धारणा के कारण संस्कृत आम जनता से दूर होती चली गई।

संस्कृत को एक समावेशी भाषा के रूप में पुनर्स्थापित करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जा सकते हैं:

लोकप्रिय कार्यक्रम: संस्कृत को सरल और प्रासंगिक बनाकर स्कूलों और समुदायों में प्रस्तुत करना।

अभिगम्यता बढ़ाना: इसे डिजिटल प्लेटफॉर्म और अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से सभी के लिए सुलभ बनाना।

सांस्कृतिक संदर्भ: यह दिखाना कि संस्कृत केवल धार्मिक ग्रंथों की भाषा नहीं, बल्कि साहित्य, विज्ञान और सामाजिक विचारों की भी भाषा है।

शिक्षा और प्रशासन में संस्कृत के एकीकरण के लिए नीतिगत प्रस्ताव

1. शिक्षा में संस्कृत

संस्कृत को पुनर्जीवित करने और इसे आधुनिक समाज में प्रासंगिक बनाए रखने के लिए इसे शिक्षा प्रणाली में व्यवस्थित रूप से एकीकृत करना आवश्यक है।

पाठ्यक्रम में समावेश: संस्कृत को प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक वैकल्पिक विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 पहले ही बहुभाषी शिक्षा और शास्त्रीय भाषाओं के संवर्धन पर जोर देती है। इस नीति का विस्तार करके यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सभी छात्रों को संस्कृत अध्ययन तक पहुंच मिले, जिससे इसकी सांस्कृतिक और भाषाई महत्ता का प्रसार हो।

कौशल-आधारित संस्कृत शिक्षा: संस्कृत पर आधारित कौशल कार्यक्रम विकसित किए जा सकते हैं, जो छात्रों को संविधानिक भाषा विज्ञान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, और पारंपरिक चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में लाभान्वित करें। उदाहरण के लिए, संस्कृत व्याकरण की संरचना प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) और मशीन लर्निंग में उपयोगी हो सकती है।

शिक्षक प्रशिक्षण: संस्कृत शिक्षकों को आधुनिक शिक्षण विधियों के साथ प्रशिक्षित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए, ताकि इसे छात्रों के लिए अधिक सुलभ और आकर्षक बनाया जा सके।

2. प्रशासन में संस्कृत

संस्कृत कानूनी और प्रशासनिक शब्दावली में समानता स्थापित करके शासन प्रणालियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

मानकीकृत कानूनी शब्दावली: भारत के कई कानून और प्रशासनिक शब्द संस्कृत से लिए गए हैं। एक नीति ढांचा सरल संस्कृत शब्दों के उपयोग को औपचारिक रूप दे सकता है, जिससे बहुभाषी प्रशासनिक प्रणालियों में समानता बनी रहे और क्षेत्रीय भाषाई स्वायत्तता का सम्मान हो।

सरकारी दस्तावेजों का संस्कृत में अनुवाद: सरकारी दस्तावेजों और पहलों को क्षेत्रीय भाषाओं के साथ संस्कृत में अनुवादित किया जा सकता है। यह कदम संस्कृत को एकीकृत भाषाई सेतु के रूप में सुदृढ़ करेगा, क्षेत्रीय भाषाओं को प्रतिस्थापित किए बिना।

3. राष्ट्रीय संस्कृत संवर्धन पहल

संस्कृत पर केंद्रित शोध, डिजिटल परियोजनाओं और सांस्कृतिक गतिविधियों को निधि देने के लिए संस्कृत संवर्धन बोर्ड की स्थापना की जा सकती है। डिजिटल संस्कृत शब्दकोशों और ऑनलाइन शिक्षण मंचों का विकास युवाओं को आकर्षित कर सकता है।

ये नीतियां संस्कृत के ऐतिहासिक महत्व और समावेशिता के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करेंगी, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि यह भारत की भाषाई विविधता को प्रभावित किए बिना इसे पूरक रूप से समर्थन करे।

संदर्भ सूची

1. चौधरी, एस. (2019). भारत की भाषाई विविधताः चुनौतियां और अवसर। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. मिश्रा, आर. (2020). संस्कृत और भारतीय भाषाओं पर इसका प्रभाव। वाराणसीः बनारस हिंदू विश्वविद्यालय प्रेस।
3. शर्मा, पी. (2018). "संस्कृत और भारतीय संस्कृतिः एक ऐतिहासिक अध्ययन"। जर्नल ऑफ इंडियन स्टडीज, 15 (1) 30-50।
4. चौधरी, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में संस्कृत की विरासत। नई दिल्लीः आर्य प्रकाशन।
5. शर्मा, पी. (2020). संस्कृत का सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रभाव। वाराणसीः बनारस हिंदू विश्वविद्यालय प्रेस।
6. बासु, D.D. (2015) भारत के संविधान का परिचय। नई दिल्लीः लेक्सिसनेक्सिस। पृ. 467.
7. अग्रवाल, ए. (2018). भाषाओं और सांस्कृतिक संरक्षण पर संवैधानिक प्रावधान। नई दिल्लीः एकेडेमिक प्रेस। पृ. 153.
8. सिंह, के. (2014). भारतीय संवैधानिक कानून में संस्कृत की भूमिका। जर्नल ऑफ इंडियन लिंग्विस्टिक स्टडीज, 5 (2) 45-59. पृ. 59.
9. बासु, D.D. (2015). भारत के संविधान का परिचय। नई दिल्लीः लेक्सिसनेक्सिस। पृ. 328.
10. अग्रवाल, ए. (2018). भाषाओं और सांस्कृतिक संरक्षण पर संवैधानिक प्रावधान। नई दिल्लीः एकेडेमिक प्रेस। पृ. 78.
11. सिंह, के. (2014). भारतीय संवैधानिक कानून में संस्कृत की भूमिका। जर्नल ऑफ इंडियन लिंग्विस्टिक स्टडीज, 5 (2) 45-59. पृ. 56.
12. बासु, D.D. (2015). भारत के संविधान का परिचय। नई दिल्लीः लेक्सिसनेक्सिस। पी. 330.
13. जैन, एम. (2010). संविधान सभा बहसः एक आलोचनात्मक विश्लेषण। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृ. 45.
14. जैन, एम. (2010). संविधान सभा बहसः एक आलोचनात्मक विश्लेषण। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृ. 45.
15. बासु, D.D. (2015). भारत के संविधान का परिचय। नई दिल्लीः लेक्सिसनेक्सिस। पी. 330.

16. भट्टाचार्य, डी। (2012). भारत की सांस्कृतिक एकता में संस्कृत की भूमिका। नई दिल्लीः अवधारणा प्रकाशन। पी. 102.
17. बासु, D.D. (2015) भारत के संविधान का परिचय। नई दिल्लीः लेक्सिसनेक्सिस। पृ. 180.
18. बेदी, वी. (2017). संस्कृत और आधुनिक शिक्षा। नई दिल्लीः सत्यम पब्लिशर्स। पृ. 214.
19. भारत सरकार। (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा मंत्रालय, पृ. 34.
20. चतुर्वेदी, एम. (2018) भारतीय भाषाई विरासत। नई दिल्लीः हेरिटेज पब्लिकेशंस, पृष्ठ 90.
21. अन्नामलाई, ई. (2010). भारत में बहुभाषावाद का प्रबंधनः राजनीतिक और भाषाई अभिव्यक्तियाँ। नई दिल्लीः सेज प्रकाशन। (p. 45).
22. बसु, एस. (2015). भारत में भाषाई विविधता और राष्ट्रीय एकता। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (p. 178).
23. पोलक, एस. (2006). पुरुषों की दुनिया में देवताओं की भाषाः पूर्व-आधुनिक भारत में संस्कृत, संस्कृति और शक्ति। बर्कलेः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस। (p. 130).
24. भारत सरकार। (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय।
25. राजपोपट, र। (2023)। आधुनिक कम्प्यूटेशनल भाषाविज्ञान में संस्कृत की भूमिका। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ लिंग्विस्टिक स्टडीज, 15(2), 43–58।
26. बसु, एस। (2018)। भारत में भाषा नीति और प्रशासन: संस्कृत की भूमिका। जर्नल ऑफ़ इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव स्टडीज, 10(3), 65–71।

36

वस्त्र से विचार तक: महामना मालवीय, स्वदेशी और स्वराज

भुवन कुमार झा
सह-आचार्य, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

स्वतंत्रता संग्राम में पचास वर्षों से अधिक समय के लिए शामिल अपने राजनीतिक जीवन में, और लगभग तीन दशकों तक विधायिका में अपने कार्यकाल के माध्यम से, अनगिनत भाषणों और लेखों के द्वारा, महामना मालवीय स्वराज की परिभाषा के विस्तारक और दृढ़ समर्थक के रूप में उभरे। राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में स्व-शासन के विस्तार की वकालत करते हुए उन्होंने सेवाओं के भारतीयकरण, उनके लिए सेना में उच्च पद, भारत और इंग्लैंड में एक साथ आईसीएस परीक्षाओं का आयोजन, पुलिस में सुधार, आदि की भी मांग की। वस्त्र से लेकर विचार तक, उन्होंने हर क्षेत्र में स्वदेशी अपनाने और स्थापित करने पर बल दिया। भारत के आर्थिक उन्नयन के अभिलाषी, मालवीय जी ने उन सभी शिल्पों को प्रोत्साहित और पुनर्जीवित करने की माँग की जो कभी भारतवर्ष की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हुआ करती थीं। स्वदेशी और स्वराज पर भारत-केंद्रित विचारों ने उच्च शिक्षा पर उनके दृष्टिकोण और राष्ट्रीय आंदोलन में उनके नेतृत्व को भी प्रभावित किया।

निजी जीवन में स्वदेशी का प्रयोग

स्वदेशी आंदोलन (1905-1907) और असहयोग आंदोलन (1920-21) में खद्दर के कार्यक्रम की शुरुआत से पहले ही मालवीयजी ने अपने निजी और सार्वजानिक जीवन में स्वदेशी की भावना को मूर्त रूप दिया। 1881 में ही, जब वह कॉलेज के छात्र थे, विदेशी वस्तुओं का उपयोग त्याग दिया और स्वदेशी का प्रचार करना शुरू कर दिया। इस वर्ष पहली बार उन्होंने सार्वजानिक रूप से स्वदेशी का मुद्दा उठाया। बाद में तो उन्होंने अपनी घड़ी भी भारत में बनवाई। पद्मकांत मालवीय के शब्दों में: 'उन्होंने स्वदेशी भावना को, जिसे अंग्रेज लोग हिंदू धर्म का पुनरुद्धार कहते थे, समाहित कर लिया था। दरअसल, यह कोई पुनरुद्धार नहीं था बल्कि युवाओं के बीच पश्चिमी आदर्शों और विचारों के हमले के खिलाफ पुरानी परंपराओं को संरक्षित करने का एक प्रयास था।' पद्मकांत मालवीय के अनुसार मदनमोहन मालवीय जी ने अब निजी जिंदगी में भारत में निर्मित वस्तुओं के ही प्रयोग का निश्चय कर लिया। कॉलेज में छात्र जीवन में धोती के बजाय पाजामा और सर पर पगड़ी पहनना शुरू किया। इस पगड़ी को ऐसे बाँधते थे जैसे बनारस राज के दुर्गा प्रसाद मालवीय, जिनसे उनकी मुलाकात मिर्ज़ापुर में हुई थी। 'गर्दन के चारों ओर लिपटा रेशम का दुपट्टा, जिसका दोनों तरफ घुटनों के नीचे तक गिरने से उनकी पोशाक पूरी हो गई। इस पोषक को उन्होंने अपने पूरे सक्रिय जीवन में बरकरार रखा'।

विऔद्योगीकरण की अवधारणा, ग्रामोद्योग और भारतीय उत्पाद

मालवीयजी ग्रामोद्योगों की रक्षा और भारतीय उत्पादों की सुरक्षा के प्रबल समर्थक थे। 1881 में स्वदेशी विनिर्माण के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए प्रयाग में एक देसी तिजारत कंपनी शुरू की गई। मालवीयजी कंपनी के प्रमुख समर्थकों में से एक थे। 1898 में कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने प्रस्ताव दिया कि सरकार को देशी उद्योग और कला को बढ़ावा देना चाहिए। ब्रिटिश आर्थिक नीति के अंतर्गत भारत के विऔद्योगीकरण के प्रश्न पर उन्होंने पूछा: 'बुनकर कहाँ हैं, वे लोग कहाँ हैं जो विभिन्न उद्योगों और विनिर्माण द्वारा जीवन यापन करते थे, और वे उत्पाद कहाँ हैं जो साल-दर-साल बहुत बड़ी मात्रा में इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों में भेजे जाते थे? बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में औद्योगिक आंदोलन में उनकी रुचि और अधिक बढ़ी। जब 1904 में हिंदू विश्वविद्यालय का प्रारम्भिक प्रॉस्पेक्टस तैयार किया गया, तो इसकी स्थापना के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में स्वदेशी उद्योगों में अनुसंधान भी शामिल था। उन्होंने 1905 में बनारस में भारतीय औद्योगिक सम्मेलन और 1907 में प्रयाग में संयुक्त प्रांत औद्योगिक संघ की स्थापना में मदद की और इन निकायों के विचार-विमर्श में सक्रिय भाग लिया। उन्होंने प्रयाग शुगर कंपनी लिमिटेड को शुरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो प्रथम संयुक्त प्रान्त औद्योगिक सम्मेलन का प्रत्यक्ष परिणाम था। अपनी सोच को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने तकनीकी शिक्षा के प्रोत्साहन में उद्योग विकसित करने का मार्ग देखा। इसलिए वह इसके प्रमुख समर्थक के रूप में आगे आए। 1916 में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तो उसमे औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। गांधीजी ने भी मालवीयजी के इस दृढ़ विश्वास की सराहना की कि भारत की आर्थिक स्वतंत्रता चरखा और हथकरघा पर निर्भर है और आर्थिक स्वतंत्रता के बिना कोई वास्तविक स्वतंत्रता नहीं हो सकती।

भारतीय औद्योगिक आयोग और मालवीयजी की असहमति

1916 में नियुक्त भारतीय औद्योगिक आयोग, जिसकी रिपोर्ट 1918 में तैयार हुई, के सदस्य के रूप में मालवीयजी ने अपनी असहमति के बिंदुओं को इंगित करते हुए वृहत और गहन शोध द्वारा तैयार किया गया नोट प्रस्तुत किया। सौ से अधिक पृष्ठों की इस लंबी रिपोर्ट में भारत की गरीबी के आर्थिक कारणों की विस्तृत जाँच और देश की औद्योगिक प्रगति के लिए ठोस सुझाव दिए गए। उन्होंने कई व्यावहारिक तरीके सुझाए जिनसे भारत अपने हित में अपने उद्योगों को विकसित कर सकता था। इस यूरोपीय धारणा को चुनौती दी कि भारतीयों में आमतौर पर औद्योगिक क्षमता और वाणिज्यिक उद्यम की कमी है। उन्होंने जोर देकर कहा कि इसके विपरीत, ब्रिटिश शासन की शुरुआत और प्रगति से पूर्व ही भारत ने औद्योगिक और आर्थिक विकास हासिल कर लिया था, जिस प्रगति को ब्रिटिश नीति के द्वारा रोक दिया गया।

आयोग से जुड़े कार्य के दौरान उन्हें लगातार उस 'भ्रमात्मक धारणा' की याद आती थी जो कई यूरोपीय लोग भारत के बारे में रखते थे कि उसे मुख्य रूप से कृषि प्रधान देश ही रहना चाहिए, कि भारत के लोग स्वभाव और प्रथा से औद्योगिक क्षमता और वाणिज्यिक उद्यम में कम हैं, और इसके विपरीत, ये गुण पश्चिम के देशों में प्राकृतिक रूप से मौजूद हैं। उन्होंने भारत के औद्योगिक और आर्थिक विकास के इतिहास को रेखांकित किया और आरोप लगाया कि यह प्रगति ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ धीरे-धीरे रुक गयी थी। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए वेबर,

विल्सन, रानाडे, र.सी. दत्त जैसे प्रामाणिक लेखकों का उल्लेख किया: 'यह व्यापार और समृद्धि ही थी जिसने यूरोप के व्यापारियों को भारत की ओर आकर्षित किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश आर्थिक नीति के कारण भारत में गरीबी बढ़ी थी और आर्थिक राष्ट्रवाद के चिंतन को आगे बढ़ाते हुए मालवीयजी ने भारत के विऔद्योगीकरण के लिए ब्रिटिश नीति को जिम्मेदार बताया:

> भारतीय उद्योगों की क्षति, ब्रिटिश उत्पाद के बढ़ते आयात और भारत से कच्चे माल के निर्यात ने देश के सभी हिस्सों में उत्पादक वर्गों को अनिवार्य रूप से गरीब बना दिया और जनसंख्या के बढ़ते अनुपात को कृषि पर निर्भर होने के लिए मजबूर कर दिया। ... इन दोनों कारणों के संयुक्त संचालन से देश की आर्थिक स्थिति ऐसी हो गई कि उसे बार-बार पड़ने वाले अकाल की गंभीर बुराइयों का सामना करना पड़ा।

अकालों की बढ़ती आवृत्ति और तीव्रता के साथ-साथ इन अकालों के कारण होने वाली अधिक मौतों का सीधा संबंध इन नीतियों से था। उन्होंने विलियम डिग्बी के हवाले से बताया कि कैसे 1854 से 1901 के बीच मृतकों के संख्या 2.88 करोड़ पहुँच गयी थी। उनकी शिकायत थी कि स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए शायद ही कुछ किया गया और तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए तो नहीं के बराबर प्रयास हुए। उन्होंने जर्मनी, ऑस्ट्रिया, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान का उदाहरण दिया, जहाँ उद्योगों की सहायता और प्रोत्साहन के साथ-साथ सामान्य एवं तकनीकी शिक्षा की एक अच्छी प्रणाली क्रियान्वित करके प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ था। कई अन्य देशों के साथ-साथ इन देशों ने भी भारत पर थोपी हुई मुक्त व्यापार की नीति का भरपूर फायदा उठाया। बिना किसी राजकोषीय दीवारों की सुरक्षा के भारत इस व्यावसायिक अधीनता को भुगतता रहा। करीब चार-पाँच दशक पहले जापान, भारत से बहुत पीछे था, लेकिन उसने सरकार और जनता के बीच समन्वय के माध्यम से अद्भुत औद्योगिक विकास किया। अपनी रिपोर्ट के अंत में मालवीयजी ने भारतीय उद्योगों के विकास हेतु तीन नीतियों को अपनाने का सुझाव दिया— स्थानीय कच्चे माल का उपयोग, नए उद्योगों की शुरुआत और यह सुनिश्चित करना कि ऐसे उद्योगों का मुनाफा देश में ही रहे।

अंग्रेजी साम्राज्य के अंतर्गत स्व-शासन

मालवीयजी का राजनीतिक चिंतन नरमपंथ के उस धारा के अनुरूप था जो स्व-शासन के स्वरुप के विस्तार की मांग कर रहे थे और जो अपने तथ्यों और आंकड़ों को लेकर स्पष्ट थे। कांग्रेस राष्ट्रवादियों की इस पहली पीढ़ी ने इंग्लैंड के उदारवादी नेता ग्लैडस्टोन और रिपन में आशा की किरण देखी। 1907 में लिखते हुए, एक ऐसे समय में जब पहले कर्जन और फिर मिंटो अपनी रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी नीतियों के कारण अत्यधिक अलोकप्रिय हो गए थे, मालवीयजी ने रिपन की विरासत को याद किया। उन्होंने ग्लैडस्टोन को मनुष्य के आंतरिक गुणों का एक अच्छा न्यायाधीश कहा जो वायसराय के पद पर रिपन पर भरोसा करने में परिलक्षित होता था। स्व-शासन, कृषि और शिक्षा के क्षेत्र में रिपन के कार्य की सराहना करते हुए मालवीयजी ने कहा किया कि मिंटो और कर्जन के विपरीत, रिपन केवल उपदेश में नहीं बल्कि उसके कार्यान्वन में विश्वास करते थे।

दिसंबर 1886 में कलकत्ता में कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में मालवीयजी ने वरिष्ठ राष्ट्रवादी नेता सुरेंद्रनाथ बनर्जी द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव के समर्थन में भाषण दिया। यह प्रस्ताव गवर्नर जनरल और प्रांतीय विधान परिषदों की संरचना से संबंधित था। इनके सदस्यों की संख्या में वृद्धि और निर्वाचक मंडल में सुधार की माँग की गई, और इन परिषदों में कम-से-कम आधे में चुनाव करने की माँग की गई थी। प्रतिनिधि लोकतांत्रिक संस्थानों के बारे में उन्होंने ब्रिटेन की उपलब्धियों की याद दिलाया और यह विश्वास व्यक्त किया कि ऐसा देश भारतीयों को इसी प्रकार के अधिकार देने से कभी इनकार नहीं करेगा। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि देश में केवल एक या दो हिस्से ही प्रतिनिधि सरकारों के फायदों से अवगत हैं— ऐसी बात नहीं है, बल्कि इस विशाल भारतीय महाद्वीप के प्रत्येक प्रांत और रियासत में लोग समान रूप से इसकी सराहना करते हैं और इसके प्रति समान रूप से चिंतित है। उन्होंने अंग्रेजी शासकों को उनके ही सिद्धांत— 'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं' की याद दिलाया, और कहा कि वह किस तरह 'अपनी आत्मा को धोखा देकर, गूंगी भेड़-बकरी के समान हम भारतीयों पर कर लगाएँगे, जो उसकी स्वतंत्र और शिक्षित सह-प्रजा हैं?' उन्होंने साम्राज्ञी के 1857 के शपथ की याद दिलाई जिसमें सभी प्रजा की भलाई के लिए समदृष्टि से विचार का संकल्प था। लेकिन शासन-व्यवस्था में भारतीयों की भूमिका नहीं होने से प्रतिवर्ष नए कानून और विधान उनकी सम्मति के बिना ही बनते जाते हैं: 'मैं आप लोगों से पूछता हूँ कि क्या यही समदृष्टि से देखना कहलाता है? क्या यही साम्राज्ञी के अन्य उपनिवेश-वासी अंग्रेज़ों के समान व्यवहार है?'

दिसंबर 1887 में मद्रास में कांग्रेस के तीसरे वार्षिक अधिवेशन में, मालवीयजी ने पुनः सुरेंद्रनाथ बनर्जी द्वारा पेश किए गए इसी तरह के प्रस्ताव पर विस्तृत चर्चा की। कांग्रेस के प्रथम एवं दूसरे अधिवेशनों में कानून से सम्बंधित मामलों में गवर्नर जनरल की परिषद् में विस्तार एवं प्रांतीय विधायकों में सुधार की माँगो को दुहराया गया। मद्रास अधिवेशन में उम्मीद जताई गई कि सरकार इन सुधारों को लाने में अब और देर नहीं करेगी। मालवीयजी ने अपने लम्बे भाषण में स्पष्ट किया कि यह तीसरा अवसर था जब दूर-दराज़ इलाके से आने वाले प्रतिनिधि एक ऐसी सरकार की माँग कर रहे थे जो चुनी हुई हो और जो उनके लिए ही कार्य करे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इस माँग में तनिक भी स्वार्थ नहीं छुपा था:

> 'हमारे पास व्यक्तिगत रूप से हासिल करने के लिए कुछ भी नहीं है, सेवा-भाव के पीछे कोई स्वार्थ भी नहीं है। हम अपने साथी देशवासियों द्वारा मनोनीत होकर मुख्य रूप से सरकार पर इस बात का दबाव डालने के लिए एक साथ आते हैं कि देश को इस सुधार की सख्त जरूरत है, और पूरा देश इसके लिए प्रार्थना करता है। लेकिन दुर्भाग्य से, सरकार ने अभी तक हमारे लोगों की प्रार्थना नहीं सुनी है! ...यह निजी महत्वाकांक्षा नहीं जो इन लोगों को इतने खर्च और इतनी असुविधा के बावजूद एक साथ लाता है। इस मामले में स्वार्थ का तनिक भी भाव नहीं है। उनका एकमात्र विचार यह है कि भारत को सभी चीजों से ज्याद इस मौलिक सुधार की सख्त जरूरत है, और वह आशा करते हैं— और भगवान करे कि उनकी आशा व्यर्थ न हो।'

उनका मानना था कि न तो ब्रिटिश सरकार के पास भारत से संबंधित मुद्दों पर विचार-विमर्श करने के लिए पर्याप्त समय था और न ही वह भारतीयों को अपने मामलों को नियंत्रित करने की अनुमति दे रही थी। इसलिए, यदि ब्रिटिश शासक

अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रहे थे, तो कम-से-कम उन्हें 'हमें इस स्थिति में तो रखना चाहिए कि अपने प्रति कर्तव्यों का कुछ हिस्सा हम स्वयं पूरा कर सकें':

> 'हम आपसे पूरी निष्ठा से अनुरोध करते हैं कि आप हमें हमारे बजट पर कुछ नियंत्रण रखने की अनुमति दें, ताकि जब इसे परिषद में लाया जाए तो हम अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से इसके बारे में कुछ कहने की स्थिति में आ सकें, ताकि हमें अपने घरेलू मामलों के प्रबंधन में आवाज मिल सके। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हमारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ थीं। वह न तो देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाएँगे और न ही हमें ऐसा करने देंगे। क्या अंग्रेजी राष्ट्र के लिए, जो स्वतंत्रता और न्याय को पसंद करने और संवैधानिक एवं स्वतंत्र सरकार के संस्थापक होने का दावा करता है, इससे अधिक क्रूर या अन्यायपूर्ण कुछ हो सकता है? सज्जनों, इसके बाद, मुझे लगता है कि अगर हमें यह रियायत नहीं दी जाती है तो इंग्लैंड के द्वारा न्याय और स्वतंत्रता के बारे में कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं है... मुझे अब निष्कर्ष में यह कहने की अनुमति दें कि हमें सरकार से इस उचित माँग को जारी रखना चाहिए, और यदि सभी उपाय व्यर्थ होते हैं तो फिर उनसे अपने ही ईसाई सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने के लिए कहें जो उन्हें निर्देश देते हैं कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा व्यवहार उनके प्रति होता है'।

ब्रिटिश नीति, कुशासन और भारत की गरीबी

कांग्रेस के 1893 के अधिवेशन में उन्होंने इस विषय पर प्रभावशाली ढंग से चर्चा की। वह चाहते थे कि हर अंग्रेज भारत के कस्बों और गांवों का दौरा करे और स्वयं यह देखे कि लोग किस दुर्दशा में रहते हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ब्रिटिश नीतियों ने भारत को उत्पादक से बदलकर इंग्लैंड के वस्त्र उद्योग का प्राथमिक उपभोक्ता बनाकर इस देश में औद्योगीकरण को खत्म करने का काम किया है। ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार के खर्चों की जांच के लिए 1895 में राजकीय आयोग नियुक्त किया। मालवीयजी ने कांग्रेस के पूना सत्र में कहा कि यह जाँच तब तक बेकार रहेगी जब तक व्यय को नियंत्रित करने वाली नीति की जाँच नहीं की जाती, और आधिकारिक एवं एंग्लो-इंडियन के अलावा अन्य तरह के साक्ष्य प्राप्त करने की व्यवस्था नहीं की जाती। उन्होंने एक और महत्वपूर्ण बात कही— 1857 से पूर्व ईस्ट इंडियन कंपनी की सरकार हर बीस वर्षों में संसदीय जांच के अधीन थी, लेकिन क्राउन के तहत सरकार के हस्तांतरण के बाद इनके आचरण पर ध्यान देने वाला कोई नहीं था। भारत को दो कारणों से कष्ट सहना पड़ रहा है— प्रथम, ब्रिटिश सरकार द्वारा देश की चिंताओं पर ध्यान न देना, और दूसरा भारतीयों को भी उस ओर ध्यान देने से रोकना:

> 'हम इंग्लैंड की सरकार पर भारत की सिविल सेवा पर अनावश्यक रूप से महंगे खर्च का बोझ डालने का आरोप लगाते हैं; हम उन पर अत्यधिक सैन्य व्यय थोपने का आरोप लगाते हैं; हम उन पर भारत की सीमा से परे भारत के धन की भारी बर्बादी में शामिल होने का आरोप लगाते हैं; हम उन पर गृह शुल्क के मामले में भारत के साथ निष्पक्षता की कमी का आरोप लगाते हैं; इतना ही नहीं, हम उन पर— भारत सरकार, इंग्लैंड सरकार और उनके साथ इंग्लैंड के लोगों पर— भारत के प्रति अपने कर्तव्य को ठीक से

नहीं निभाने के कारण भुखमरी से लाखों लोगों की जान के नुकसान के लिए जिम्मेदार होने का आरोप लगाते हैं, जो मुख्य रूप से अत्यधिक कर और अयोग्य प्रशासन का परिणाम है'।

1885 से लेकर 1905 तक ब्रिटेन में अनुदारवादियों की सरकार थी। धीरे-धीरे, कांग्रेस के भीतर राष्ट्रवादियों की पहली पीढ़ी ब्रिटिश सरकार के प्रति अपना धैर्य खो रही थी। 1896 में कलकत्ता कांग्रेस में मालवीयजी ने अकाल और बढ़ती गरीबी के साथ-साथ प्रांतीय अनुबंध प्रणाली पर भी बात की। 1897 में अमरावती कांग्रेस में उन्होंने व्यय से सम्बंधित राजकीय आयोग पर विस्तृत प्रस्ताव पेश किया। नागरिक और सैन्य व्यय में कटौती की माँग की। यदि वह व्यय सामान्य हितों के लिए किया गया था तो उसे ब्रिटेन और भारत दोनों द्वारा साझा किया जाना चाहिए। इसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए सुझाव दी कि भारत सरकार के बजट पर विधान परिषदों द्वारा मतदान किया जाना चाहिए। वह इस तथ्य के बड़े आलोचक थे कि भारत की सीमा पर ब्रिटेन द्वारा छेड़े गए युद्ध, जो पूरी तरह से ब्रिटिश साम्राज्य के हित से संबंधित थे, का बोझ भारतीय खजाने पर पड़ रहा था।

भारतीय गरीबी को बढ़ाने वाली ब्रिटिश नीतियों के खिलाफ उनका मुहिम निरंतर जारी रहा। 1900 की कांग्रेस में उन्होंने भारत की आपदा और गरीबी के लिए सीधे तौर पर सरकार को दोषी ठहराया। चौंकाने वाला तथ्य यह था कि साल-दर-साल कांग्रेस ने इसे सबके सामने और नीति निर्माताओं के ध्यान में लाया लेकिन फिर भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अपने व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभव के आधार पर कांग्रेस नेता लगातार दावा कर रहे थे कि देश के लोगों की स्थिति बद से बदतर होती होती जा रही है, और इस बात पर चर्चा करने का कोई मतलब नहीं है कि लोग ब्रिटिश शासन आने से पहले की तुलना में अब अधिक गरीब हैं या वह भारत के इतिहास में किसी अन्य काल में अधिक गरीब थे।

मालवीयजी ने लगातार और नियमित रूप से अपने बजट भाषणों में शिक्षा, लोक-स्वास्थ्य और औद्योगीकरण पर खर्च बढ़ाने और पुलिस के प्रावधान में कटौती की माँग की। उन्होंने आदर्श बस्तियों के निर्माण का आग्रह किया जिसका परिणाम घरों की उत्कृष्ट पंक्तियों के साथ लूकरगंज (प्रयागराज) की स्थापना में दिखाई दे रहा था; बड़े शहरों में भीड़भाड़ वाले इलाकों को सुव्यवस्थित करने का आग्रह किया, जिसे प्रयागराज और कानपुर में लागू भी किया गया। परिषद के सदस्य के रूप में विकेंद्रीकरण आयोग, विशेषकर प्रांतीय सरकारों के गठन और वित्तीय विकेंद्रीकरण से संबंधित आयोग के समक्ष बहुमूल्य साक्ष्य भी दिए।

पुलिस व्यवस्था में सुधार और सेवाओं का भारतीयकरण

उन्होंने सभी प्रकार की नौकरियों में अधिकारी स्तर पर भारतीयों की भागेदारी बढ़ाने की माँग की। 1891 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन तक मालवीय जी ने इलाहबाद उच्च न्यायलय में वकालत शुरू कर दी थी। नागपुर सत्र में उन्होंने सेवाओं के भारतीयकरण के पक्ष में, विशेषकर सेना में अधिकारी-स्तर के सन्दर्भ में, जोरदार भाषण दिया। सेना में भारतीयों की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा कि इन सैनिकों ने जब भी आवश्यक हुआ देश से बाहर जाकर भी इंग्लैंड की रानी के लिए अपना खून बहाया। परन्तु दुर्भाग्यवश अधिकारी पद यूरोपीय लोगों के लिए आरक्षित होने के कारण वह सूबेदार-मेजर के पद से आगे नहीं बढ़ सकते थे। परिषद में निर्वाचित प्रतिनिधित्व के अपने पसंदीदा मुद्दे पर बोलते हुए, उन्होंने अंग्रेजों से लोकतंत्र के उन महान सिद्धांतों के संदर्भ में सोचने और कार्य करने का

आह्वान किया जिनको स्थापित करने का वह बार-बार दावा करते हैं। देश में बढ़ती गरीबी की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने 1892 में आँकड़ा दिया कि प्रतिवर्ष लगभग दस करोड़ भारतीयों की कमाई अंग्रेज़ अधिकारीयों के वेतन और पेंशन के रूप में इंग्लैंड चली जाती है। इसलिए उच्च पदों से भारतीयों को विमुख रखना अन्यायपूर्ण होने के साथ-साथ आत्मघाती भी है।

पुलिस व्यवस्था में काफी खामियाँ मौज़ूद थीं। एक ओर भारतीय मूल के अभ्यर्थियों को उच्च स्तर से वंचित रखा जाता था, तो दूसरी ओर अधिकारी वर्ग को काफी सुविधाएँ दी जाती थीं। इन सुविधाओं को, जो सिर्फ यूरोपीय मूल के लोगों तक सीमित थीं, वह भारत की अर्थव्यवस्था पर अनावश्यक बोझ मानते थे। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान, 13 मार्च 1918 में केंद्रीय परिषद् में भारतीय पुलिस सेवा में सुधार के लम्बी फेरहिस्त रखी: (i) इस सेवा में भर्ती की आयु 19-21 से बढ़ा कर 21-23 की जाए (ii) लोक सेवा आयोग द्वारा इस सेवा के अधिकारियों के वेतन और पेंशन में वृद्धि की अनुशंसा मंजूर नहीं हो (iii) इस सेवा में भर्ती हेतु सिर्फ यूरोपीय मूल के निवासी को योग्य करार देने वाला नियम तत्काल ख़त्म हो (iv) यह परीक्षा इंग्लैंड के साथ-साथ भारत में भी आयोजित हो, और इसमें कम-से-कम आधे पद भारत में आयोजित परीक्षा के द्वारा भरे जाएँ। इस भाषण के दौरान मालवीयजी ने बताया की किस तरह मौजूदा नियमों से भारत के लोग दुखी थे। पुलिस सेवा में नियुक्ति में नस्ली भेदभाव को रेखांकित करते हुए बताया कि 997 पुलिस अधीक्षकों में सिर्फ 9 भारतीय थे।

नौकरशाही बनाम जन प्रतिनिधि

मालवीयजी का मानना था कि अंग्रेजी नौकरशाही आर्थिक और राजनीतिक सुधार के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते थे। इस बात को उन्होंने कई भाषणों और लेखों के माध्यम से व्यक्त किया। नौकरशाही की जगह वह लोक-प्रतिनिधि की निर्णायक आवाज के समर्थक थे। प्रयागराज से अंग्रेजी में छपने वाले अख़बार *लीडर* के संपादक को जून 1917 में लिखी चिट्ठी में कहा कि कोई भी दमनकारी उपाय भारतीयों को उनके रास्ते से नहीं डिगा सकता:

> 'कोई भी बात हमें अपने उद्देश्य से नहीं डिगा सकती। कोई भी चीज़ हमें हतोत्साहित नहीं करेगी। यह हमारे सिद्धांत का हिस्सा है कि हम अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वैध संवैधानिक साधनों के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं अपनाएँगे। इसलिए हमारे और उन लोक-सेवकों के बीच कोई संघर्ष उत्पन्न नहीं होना चाहिए जिन्हें वर्तमान तर्ज पर देश के प्रशासन को चलाने का कर्तव्य सौंपा गया है।'

जुलाई 1918 में जब प्रथम विश्व-युद्ध समाप्ति के कगार पर था तो स्व-शासन की बढ़ती हुई माँग को लेकर भारत-सचिव मोंटेग्यू और वाइसराय चेम्सफोर्ड ने एक संयुक्त घोषणा-पत्र जारी किया। इसे संक्षेप में मोंटफोर्ड सुधार भी कहा जाता है। राष्ट्रवादी नेतृत्व ने इस घोषणा में कई महत्वपूर्ण कमियों को उजागर किया। मालवीयजी का मानना था कि यद्यपि इसमें कांग्रेस-लीग योजना की कई सिफारिशों को अपनाया गया था, लेकिन इसकी एक 'महत्वपूर्ण विशेषता' को त्याग दिया था— प्रांतों में 'हस्तांतरित' विषयों को छोड़ लोक-प्रतिनिधियों के साथ सत्ता साझा का प्रावधान नहीं था। यह सरकार ब्रिटिश संसद और भारत-सचिव के प्रति उत्तरदायी थी। इस वजह से इस पर प्राकृतिक सीमाएँ लग गई थीं क्योंकि यह केवल वहीं तक जा सकती थी जहाँ तक संसद और भारत-सचिव की अनुमति थी: 'केवल भारत की जनता के प्रति उत्तरदायी भारत सरकार से ही ऐसी नीति अपनाने की उम्मीद की जा सकती है जो उनके हितों पर

आधारित हो। उन्होंने इस बयान और अवधारणा पर कड़ी आपत्ति जताई कि भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों, जातियों और नस्लों का होना इसकी एकजुटता को खतरे में डालता है। उन्होंने प्रतिवाद किया कि भारत के लोग शायद दुनिया के किसी भी अन्य देश की तुलना में अधिक कानून का पालन करने वाले हैं, और धर्म, नस्ल और जाति के मतभेद आम तौर पर उनके एक साथ रहने, काम करने या फिर सामान्य उद्देश्यों के लिए एकजुट होने के रास्ते में नहीं आते हैं।

मोंटफोर्ड सुधारों को लेकर भारतीय राजनीतिक पार्टियों में अलग-अलग मत बन रहे थे। कांग्रेस के दिसंबर 1909 के लाहौर अधिवेशन में मालवीयजी को पहली बार पार्टी का अध्यक्ष चुना गया था। जब दिसंबर 1918 में दिल्ली में पहली बार कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन आयोजित किया गया तो पुनः मालवीयजी को अध्यक्ष चुना गया। स्वराज की माँग और अंग्रेज़ों द्वारा राजनीतिक सुधार के दृष्टिकोण से यह सत्र महत्वपूर्ण था। अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कांग्रेस की नीति को स्पष्ट किया। मोंटफोर्ड सुधारों की कमियों को उजागर करते हुए, स्व-शासन के सही स्वरुप को स्थापित करने की माँग की: 'किसी भी राष्ट्र को अपने मामलों पर प्रशासन का अधिकार है। इसका तात्पर्य यह है कि उस राष्ट्र के लोगों को ही उससे संबंधित मामलों का प्रबंधन करना चाहिए।' सम्मलेन में आए प्रतिनिधियों से कहा कि वह किसी भी प्रकार से हीन समझे जाने का प्रतिकार करें: 'अब से आप पूरी ताकत से दावा करेंगे कि आपको अपने देश में स्वतंत्र रूप से बढ़ने के उतने ही अवसर मिलें जितना कि यूनाइटेड किंगडम में अंग्रेजो को मिलता है।'

फरवरी 1924 में दीवान बहादुर रंगाचारियार ने केंद्रीय विधान सभा में एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें शीघ्र ही एक पूर्ण जिम्मेदार सरकार की स्थापना सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार अधिनियम 1919 में संशोधन के लिए आयोग की नियुक्ति की माँग की गई। गृह सदस्य मैल्कम हैली ने हस्तक्षेप किया कि क्या डोमिनियन स्टैटस का दर्जा तुरंत मांगा गया था? मालवीयजी ने टिप्पणी की कि हैली को लगता है कि भारत एक आदिम देश है जिसने कभी सभ्यता को नहीं जाना और जिसने पहली बार 'इंग्लैंड के शिक्षण के तहत' ही 'सभ्य प्रशासन' के बारे में सीखा और इसलिए भारतीयों को स्व-शासन की कला चरणबद्ध तरीके से ही सिखाई जा सकती है! उन्होंने आरोप लगाया कि कानून-व्यवस्था का इतना कुप्रबंधन पहले कभी नहीं हुआ जितना पिछले दो वर्षों में हुआ था। उन्होंने अफसोस जताया कि प्रांतों के अंदर मंत्री दुखी थे क्योंकि उनके पास सुधारों को बढ़ावा देने के लिए कोई साधन नहीं था: 'देश काफी पीछे चला गया है; इसने प्रगति नहीं की है।'

मालवीय जी अंग्रेजी शासन द्वारा अनेकानेक प्रतिबन्ध लगाने के सख्त विरोधी थे। उनकी नज़र में जिन अधिनियमों को प्रजा की आवाज़ दबाने के लिए बनाया जा रहा था, उनका विपरीत प्रभाव पड़ रहा था। उन्होंने याद दिलाया कि 18 अक्टूबर 1907 को वाइसराय की कौंसिल में राज-विद्रोही सभा-सम्बन्धी बिल पेश करने के समय हार्वी ऐडम्सन ने जो भाषण दिया उसमें उन्होंने स्वीकार किया था कि सरकार की उग्र नीति अभी तक सफल नहीं हुई थी। मालवीय जी ने *अभ्युदय* में लिखा कि एक तरह से देखें तो उग्र नीतियाँ सिर्फ असफल ही नहीं हुई थीं, बल्कि उनका असर उल्टा हुआ था:

> 'उग्र औषध के समान उग्र नीति का प्रायः यह परिणाम होता है कि या तो वह उस रोग को दबा देती है जिसके निर्मूल करने के लिए उसका प्रयोग किया गया हो; या जहाँ रोग उग्र नहीं हैं, वहाँ वह, जैसे किसी

व्यक्ति के शरीर में, वैसे ही प्रजा-समूह में विष फैला देती है, और रोग को दूर करने के स्थान में उसकी जन्म देने वाली पोषक बन जाती है।

समापन टिप्पणी

छः दशकों से भी अधिक के अपने सार्वजानिक जीवन में महामना मदनमोहन मालवीय ने स्वदेशी पर आधारित जीवन और स्वराज की भावना से अभिप्रेरित चिंतन-शैली का अप्रतिम आदर्श प्रस्तुत किया। कांग्रेस का मंच हो या विधायी परिषद् का क्षेत्र, पत्रकारिता का माध्यम हो या फिर विभिन्न समितियों के सदस्य के रूप में, उन्होंने स्व-शासन की माँग को बार-बार दुहराया। उनकी समझ में भारतीयों के लिए प्रतिनिधित्व का प्रश्न आवश्यक रूप से भारत की बढ़ती समस्याओं को सुलझाने से जुड़ा था। अंग्रेज़ प्रतिनिधि और नौकरशाही से भारत की विकास की उम्मीद करना मुश्किल था। औपनिवेशिक राज्य के चरित्र को भलीभाँति समझते हुए, भारत की बढ़ती गरीबी की सम्यक व्याख्या प्रस्तुत की। भारत में आर्थिक विपत्तियों और उद्योग के ह्रास के लिए ब्रिटिश नीतियों को जिम्मेदार ठहराया, और साथ ही इन नीतियों के दोहरेपन को उजागर किया। औपनिवेशिक उद्देश्य को समझते हुए भारत के उद्योगों का भारतीय तरीकों से विकास पर जोर दिया।

संदर्भ सूची

1. *ओरल हिस्ट्री ट्रांसक्रिप्ट ऑफ़ पी.के. मालवीय,* नई दिल्ली: प्रधानमंत्री संग्रहालय एवं पुस्तकालय, पृ.11-12
2. परमानन्द (1985), *महामना मदन मोहन मालवीय: एन हिस्टोरिकल बायोग्राफी*, अंक-1, वाराणसी: मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पृ. 26
3. पट्टाभि सीतारमैया (1969), *हिस्ट्री ऑफ़ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, अंक-1 (1885-1935)*, दिल्ली: एस. चाँद एंड कंपनी, पृ. 41-42
4. *लीडर*, 23 दिसंबर 1909
5. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ पंडित मदन मोहन मालवीय* (1919), *चेन्नई: जी.ए. नटेसन एंड कंपनी,* पृ. 373
6. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 378
7. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 396-397
8. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 406
9. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 407
10. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 493
11. *अभ्युदय*, 4 अक्टूबर 1907

12. मुशीरुल हसन (सम्पादित) (2012), *प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, अंक-1: 1885-1889*, दिल्ली: नियोगी बुक्स, 'रिपोर्ट ऑफ़ द सेकंड इंडियन नेशनल कांग्रेस', पृ.41-43

13. 'रिपोर्ट ऑफ़ द सेकंड इंडियन नेशनल कांग्रेस', पृ.107-108.

14. समीर कुमार पाठक (सम्पादित) (2013), *मदनमोहन मालवीय:विचार-यात्रा*, नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पृ.6-7

15. 'रिपोर्ट ऑफ़ द प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द थर्ड इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1887', पृ.9

16. 'रिपोर्ट ऑफ़ द प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द थर्ड इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1887', पृ. 96-98

17. 'रिपोर्ट ऑफ़ द प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द थर्ड इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1887', पृ. 96-98

18. परमानन्द, *महामना मदन मोहन मालवीय*, अंक-1, पृ.89-90

19. '*स्केच ऑफ़ पंडित मदन मोहन मालवीय*', *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 6-7

20. *लीडर*, 23 दिसंबर 1909

21. मुकुट बिहारी लाल (1978), *महामना मदन मोहन मालवीय: जीवन और नेतृत्व*, वाराणसी: मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पृ.63

22. *लीडर*, 15 मार्च 1918

23. *लीडर*, 18 जून 1917

24. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 165-166

25. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 201

26. *स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ़ मालवीय,*, पृ. 531-34

27. परमानन्द, *महामना मदन मोहन मालवीय*, अंक-2, पृ. 640

28. परमानन्द, *महामना मदन मोहन मालवीय*, अंक-2, पृ., p. 641

29. 25 अक्टूबर 1907, पाठक (सम्पादित), *मदनमोहन मालवीय*, पृ.39, से उद्धृत

37

भारतीय संवैधानिक शैक्षिक मूल्य एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक विश्लेषण

डॉ. अखिलेश कुमार गौतम

सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय), स्वामी रामतीर्थ परिसर

ओम प्रकाश

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शिक्षा एक प्रचलित एवं महत्वपूर्ण विषय है परंतु इसकी सटीक परिभाषा करना एक जटिल एवं उलझा हुआ कार्य है। जिस संबंध में हमें कुछ विद्वान दार्शनिकों के विचार अर्थपूर्ण ढंग से मार्ग दर्शन करते हैं। इसी क्रम में एक ओर स्वामी विवेकानंद शिक्षा को मनुष्य में पहले से मौजूद पूर्णता की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं तो दूसरी ओर महात्मा गांधी शिक्षा को व्यक्ति के शरीर, मन एवं आत्मा में उपस्थित सर्वश्रेष्ठ के सर्वांगीण चित्रण के रूप में परिभाषित करते हैं। प्रचलित शिक्षाविद जॉन डीवी के अनुसार शिक्षा अनुभवों के निरंतर पुनर्निर्माण के माध्यम से जीने की प्रक्रिया है। उपरोक्त सभी विचार यह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करते हैं कि शिक्षा मनुष्य की संपूर्णता से जुड़ी हुई एक अनिवार्य वास्तविकता है। एक ओर यह व्यक्ति के अनुभवों से संबंधित है तो दूसरी और ये व्यक्ति की आध्यात्मिक, भौतिक एवं व्यावसायिक पूर्णता के लिये एक आवश्यक तैयारी है। भारतीय संविधान के निर्माता भी शिक्षा की इस व्यापकता को भलीभाँति समझते थे इसलिए संविधान में शिक्षा के अवसरों एवं इन अवसरों की समानता पर अत्यधिक ज़ोर दिया। भारतीय संविधान एक व्यापक लिखित दस्तावेज है जो भारतीय सांस्कृतिक विरासत, सार्वभौमिक मानव अधिकारों के सिद्धांतों एवं प्रत्येक नागरिक को यथोचित संरक्षण प्रदान करने के विचारों पर आधारित है। ये सभी विचार व्यक्ति की जागरूकता, ज्ञान, आत्मबोध, और सशक्तिकरण से संबंधित है जो एक अर्थपूर्ण एवं प्रगतिशील शिक्षा से ही संभव हो सकते हैं। इसलिए अपने मूलभाव में भारतीय संविधान शिक्षा से संबंधित विभिन्न प्रावधानों और उद्देश्यों को सम्मिलित किए हुए प्रस्तुत होता है। यह भारत के संबंध में शिक्षा के महत्व को महत्वपूर्ण रूप से रेखांकित करता है।

शिक्षा की बुनावट और इसकी सार्वभौमिक उपलब्धता भारत जैसे एक विशाल एवं विविधता भरे देश में एक जटिल एवं चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। परंतु समय-समय पर इस कार्य को अर्थपूर्ण ढंग से करने के लिए विभिन्न नीतियों एवं योजनाओं का निर्माण होता रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी क्रम में एक प्रयास है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक विस्तृत एवं व्यापक दस्तावेज है जो संपूर्ण भारत में शिक्षा के प्रसार एवं उपलब्धता पर विशेष ज़ोर देता है। यह दस्तावेज एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करता है जो भारतीय शिक्षा व्यवस्था के सार्वभौमिकरण एवं प्रासंगिकता को स्थापित करने का प्रयास करती है।

भारतीय संविधान और शिक्षा

भारतीय संविधान एक विशिष्ट दस्तावेज़ है, जो करोड़ो भारतीयों को संरक्षण प्रदान करता है। इस दस्तावेज़ के निर्माण और विकास की कहानी कई मायनों में भारत के विकास की कहानी है । विभिन्न समकालीन संविधानों के विश्लेषण एवं भारतीय ऐतिहासिक संस्कृति-विरासत ने मिल कर इस दस्तावेज़ की रचना की है जो पिछले कई दशकों से हमारा सफलतापूर्ण मार्ग दर्शन करता आ रहा है। भारतीय संविधान एक विस्तृत रूप से लिखा गया एक व्यापक दस्तावेज़ है, जो भारत के हर नागरिक को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के संदर्भ में विभिन्न अवसर प्रदान करता है और साथ ही साथ यह विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से यह सुनिश्चित करता है कि भारत देश का प्रत्येक नागरिक अपना सर्वांगीण विकास कर सके। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का एक अनिवार्य हिस्सा है । भारतीय संविधान इस संबंध में विस्तृत प्रावधान एवं व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है । यह प्रावधान एवं व्याख्याएँ संविधान की आत्मा, उसकी प्रस्तावना से ही परिलक्षित हो जाते हैं । भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत देश के मौलिक सिद्धांतों और उद्देश्यों जैसे न्याय, समानता और स्वतंत्रता को रेखांकित करती है, जो देश की शिक्षा प्रणाली को प्रत्यक्ष ही प्रभावित करते हैं। अगर विस्तृत अर्थों में इस प्रस्तावना को समझने का प्रयास करे तो यह जाति, पंथ, धर्म या लिंग के आधार पर भेदभाव के बिना शिक्षा प्रदान करने और नागरिकों के बीच एकता और भाईचारे को बढ़ावा देने की और प्रगतिशील रूप से अग्रसर है।

संविधान के तीसरे अध्याय में निहित मौलिक अधिकार भारतीय नागरिकों के विभिन्न अधिकारों की रक्षा करते हैं। समानता, स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार सहित ये अधिकार समान अवसर को सुनिश्चित करके, हाशिए पर रह रहे समुदायों के सशक्तिकरण और धार्मिक सद्भाव और सांस्कृतिक अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध दिखते हैं। इन अधिकारों को जब हम गहनता से अध्ययन करते हैं तो इनमे सभी के लिए शिक्षा के अवसरों की समानता और शिक्षा तक हर भारतीय की सरल एवं सहज पहुँच को सुनिश्चित करने वाले विभिन्न प्रावधान परिलक्षित होते हैं । इन प्रावधानों को हम भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेदों के माध्यम से समझ सकते हैं : -

- अनुच्छेद 15: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के अंतर्गत राज्य महिलाओं के लिए विशेष प्रावधानों का निर्माण कर सकता है। इसलिए, महिलाओं के लिए अलग से शैक्षणिक संस्थान स्थापित किए जा सकते हैं।
- अनुच्छेद 28: यह अनुच्छेद अल्पसंख्यों के शिक्षा के विषय में व्याख्या प्रस्तुत करता है यह विशेष रूप से अल्पसंख्यकों की शिक्षा से संबन्धित है।
- अनुच्छेद 29 (1): यह अनुच्छेद स्पष्ट रूप से कहता है, "किसी भी नागरिक को केवल धर्म, नस्ल, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर राज्य द्वारा संचालित या राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले किसी भी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा। यह अनुच्छेद सभी के लिए शिक्षा के सिद्धान्त को विशेष बल प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 30: यह एक विशेष अनुच्छेद है जो शिक्षा के संबंध में एक विशेष प्रावधान करता है । इसके अंतर्गत सभी अल्पसंख्यकों को, चाहे वे धर्म या भाषा पर आधारित हों, अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने और उनका प्रशासन करने का अधिकार होगा।

- अनुच्छेद 30 (ii): राज्य किसी भी शैक्षणिक संस्थान को अनुदान देने और देने में इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह किसी अल्पसंख्यक के प्रबंधन के अधीन है, चाहे वह धर्म या भाषा पर आधारित हो।

जिस प्रकार संविधान अधिकारों से संबन्धित विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से देश के प्रत्येक नागरिक को शिक्षा संबंधी अधिकार प्रदान करता है जो प्रत्यक्ष रूप से नागरिकों को सशक्त करते हैं एवं कानूनी संरक्षण प्रदान करते हैं वैसे ही संविधान के कुछ प्रावधान राज्य को भी निर्देशित करते हैं कि वह नीतियों का निर्माण करते समय यह ध्यान रखे कि वे नीतियाँ लोक-कल्याण को संबोधित करती हो। शिक्षा संबन्धित राज्य की नीतियों को हम लोक-कल्याण के अंतर्गत सम्मिलित करते हुए समझ सकते हैं, इसी क्रम में संविधान ने राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों का प्रावधान किया। संविधान के अध्याय चार में सूचीबद्ध राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत, सामाजिक-आर्थिक कल्याण को प्राप्त करने के लिए सरकार को दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं। वे 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हैं और सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने में केंद्र सरकार, राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों और स्वैच्छिक संगठनों की संयुक्त जिम्मेदारी पर जोर देते हैं।

- अनुच्छेद 41 : संविधान के अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि "सभी नागरिकों को शिक्षा का समान अधिकार है।" इसमें कहा गया है कि "राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर काम करने, शिक्षा पाने और रोजगार, वृद्धावस्था, बीमारी और विकलांगता के मामलों में सार्वजनिक सहायता के अधिकार के लिए प्रभावी प्रावधान करेगा।" (एफ) कमजोर वर्ग के लिए शिक्षा: हमारे संविधान ने हमारे समाज के कमजोर वर्गों के लिए कुछ विशेष प्रावधान किए हैं।
- अनुच्छेद 45: यह अनुच्छेद स्पष्ट रूप से बताता है कि राज्य संविधान के लागू होने से दस वर्ष के भीतर सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।
- अनुच्छेद 46: राज्य लोगों के कमजोर वर्गों और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष रूप से बढ़ावा देगा और उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाएगा।
- अनुच्छेद 337: यह एंग्लो-इंडियन समुदाय के लाभ के लिए शैक्षिक अनुदान के संबंध में विशेष प्रावधान प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 350 ए: प्रत्येक राज्य और स्थानीय प्राधिकारियों का यह प्रयास होगा कि वे भाषाई अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराएं। राष्ट्रपति इस संबंध में किसी भी राज्य को निर्देश जारी कर सकते हैं।
- अनुच्छेद 350 बी: यह भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 351: यह अनुच्छेद हिंदी भाषा के विकास और संवर्धन से संबंधित है। हिंदी भाषा के विकास को बढ़ावा देना और यह सुनिश्चित करना केंद्र सरकार का कर्तव्य होगा कि वह पूरे देश में हिंदी भाषा के प्रसार को बढ़ावा दे।

उपरोक्त सभी अनुच्छेद यह स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि भारतीय संविधान के शैक्षिक मूल्य कितने व्यापक एवं विस्तृत हैं। इन प्रावधानों के माध्यम से संविधान देश के अंतिम व्यक्ति तक के शिक्षा के अधिकार को संरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध है। बात चाहे देश के आम जन की हो या हाशिये पर खड़े समुदायों की , संविधान ने सभी तक शिक्षा का लाभ पहुँचाने के लिए व्यापक प्रावधान सम्मिलित किए हुए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारत सरकार द्वारा देश में शिक्षा के विकास को दिशा देने के लिए पेश किया गया एक व्यापक ढांचा है। इसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा प्रणाली को अधिक समग्र, लचीला, बहु-विषयक, 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना और प्रत्येक छात्र की अद्वितीय क्षमताओं को सामने लाने की दिशा में काम करना है। इस नीति की कुछ प्रमुख विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं की सहायता से समझ सकते हैं :-

स्कूली शिक्षा: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अपने पहले ही खंड में स्कूली शिक्षा पर एक विस्तृत व्यख्या करती है एवं इसमे व्यापक सुधार के लिए विस्तृत दिशा निर्देश देती है। अपने निर्देशों में यह शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ईसीसीई) पर विशेष रूप से ध्यान देती हुई दिखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने स्कूली शिक्षा के ढाँचे में एक बड़ा परिवर्तन किया है। पहले जो व्यवस्था 10+2 में वर्गीकृत थी उस व्यवस्था को 5+3+3+4 में वर्गीकृत किया गया है। इस नवीन ढाँचे के अंतर्गत स्कूली शिक्षा में अब तक अछूते रहे 3-6 वर्ष के आयु समूह के बच्चों को स्कूली पाठ्यक्रम के अंतर्गत लाया जाएगा, जिसे विश्व स्तर पर बच्चे की मानसिक क्षमताओं के विकास के लिए महत्वपूर्ण चरण के रूप में मान्यता दी गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने स्कूली शिक्षा के माध्यम से देश के बच्चों के लिए आधारभूत साक्षारता और संख्या-ज्ञान पर विशेष ज़ोर दिया है। बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता को सीखने के लिए एक जरूरी और आवश्यक शर्त के रूप में मान्यता देते हुए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में एमएचआरडी द्वारा बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता पर एक राष्ट्रीय मिशन की स्थापना करने का आह्वान किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार स्कूली पाठ्यक्रम और शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों को 21वीं सदी के प्रमुख कौशलों से लैस करके उनका समग्र विकास करना, आवश्यक शिक्षण और आलोचनात्मक सोच को बढ़ाने के लिए पाठ्यचर्या सामग्री में कमी करना और अनुभवात्मक शिक्षण पर अधिक ध्यान केंद्रित करना है। शिक्षा नीति ने विद्यार्थियों को विषयों के चयन में लचीलापन और विकल्प देने का प्रावधान भी किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने एक अभूतपूर्व कदम उठाते हुए स्कूली शिक्षा के बीच के विभिन्न कठोर विभाजनों को खत्म करने की अनुशंसा की है। इसके अंतर्गत कला और विज्ञान के बीच, पाठ्यचर्या और पाठ्येतर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षणिक धाराओं के बीच कोई कठोर विभाजन नहीं होगा।

समावेशी शिक्षा: राष्ट्रीय शिक्षा नीति मौजूदा शैक्षिक प्रणाली की असमानताओं को स्वीकार करती है और सभी विद्यार्थियों, विशेष रूप से सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखती है। एनईपी 2020 का एक प्रमुख उद्देश्य सामाजिक रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों, दिव्यांग बच्चों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की शिक्षा में भागीदारी को सुनिश्चित करना है साथ ही साथ यह मुख्य धारा में स्थित लोगो के सापेक्ष इन वर्गों के सीखने के अवसरों के अंतर को कम करना चाहती है।

मौजूदा असमानताओं को दूर करने की रणनीतियाँ : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विस्तृत विमर्श का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह नीति देश में उपस्थित विभिन्न समुदायों एवं वर्गों की शैक्षिक आवश्यकताओं को समझती है और इनको पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण सुधार लाने के लिए प्रतिबद्ध है। जिसके अंतर्गत यह शिक्षा नीति विशेष शिक्षा क्षेत्र (SEZ) बनाने और लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने जैसे उपाय सुझाती है।

विशेष शिक्षा क्षेत्र (SEZ) और लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित विशेष शिक्षा क्षेत्र (SEZ) का विचार एक अत्यंत नवीन विचार है जिसका उद्देश्य शैक्षिक रूप से वंचित समूहों की बड़ी आबादी वाले क्षेत्रों में शैक्षिक परिदृश्य में सुधार करना है। इसके अलावा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के भीतर लड़कियों की शिक्षा के महत्व को भी भली-भाँति पहचानता है और लड़कियों के लिए शिक्षा तक उनकी पहुंच, प्रतिनिधित्व और प्रगति सुनिश्चित करने के लिए विशेष योजनाओं को बनाने पर ज़ोर देता है।

समावेशी शिक्षा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की रूपरेखा में सम्मिलित सुझाव अपनी प्रकृति में स्पष्ट रूप से समावेशी दिखते हैं । राष्ट्रीय शिक्षा नीति यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती है कि कोई भी बच्चा अपने जन्म, पृष्ठभूमि और परिस्थितियों के कारण सीखने और उत्कृष्टता प्राप्त करने का कोई अवसर न खो दे। शिक्षा नीति यह निर्देशित करती है कि शिक्षा में सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों (एसईडीजी) के समावेशन पर विशेष जोर दिया जाएगा जिसके अंदर लिंग, सामाजिक-सांस्कृतिक और भौगोलिक पहचान और विकलांगताएं सम्मिलित हैं। इसके अंतर्गत समावेशन कोष और विशेष शिक्षा क्षेत्र की स्थापना भी सम्मिलित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति दिव्यांग बच्चों को बुनियादी स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित स्कूली शिक्षा प्रक्रिया में पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम बनाने के लिए प्रतिबद्ध दिखती है। इसके लिए यह नीति क्रॉस डिसेबिलिटी ट्रेनिंग, संसाधन केंद्र, आवास, सहायक उपकरण, उपयुक्त प्रौद्योगिकी-आधारित उपकरण और उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप अन्य सहायता तंत्र उपलब्ध करवाने के लिए संकल्पशील है। इस नीति में उल्लेखित है कि प्रत्येक राज्य/जिले को कला-संबंधी, करियर-संबंधी और खेल-संबंधी गतिविधियों में भाग लेने के लिए एक विशेष डे-टाइम बोर्डिंग स्कूल के रूप में "बाल भवन" स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। निःशुल्क स्कूल अवसंरचना का उपयोग सामाजिक चेतना केन्द्रों के रूप में किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत समावेशन को बढ़ावा देने लिए एससी, एसटी, ओबीसी और अन्य एसईडीजी से संबंधित विद्यार्थियों की योग्यता को प्रोत्साहित करने के प्रयास किए जाएंगे जिसके लिए उन्हें आवश्यकता अनुसार यथोचित छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी साथ ही साथ निजी उच्च शिक्षा संस्थानों को अपने छात्रों को अधिक संख्या में निःशुल्क शिक्षा और छात्रवृत्ति प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों पर सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करना : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सभी स्तरों पर स्कूली शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करने पर विशेष जोर दिया गया है । शिक्षा के संबंध में एक बुनियादी ढाँचे का निर्माण, स्कूल बीच में छोड़ने वालों को वापस स्कूल में लाने के लिए नवीन शिक्षा केंद्र, छात्रों और उनके सीखने के स्तर पर नियमित रूप से नज़र रखना, औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह की शिक्षा के तरीकों को शामिल करते हुए सीखने के लिए कई माध्यम बनाना, स्कूलों के साथ परामर्शदाताओं या अच्छी तरह से प्रशिक्षित

सामाजिक कार्यकर्ताओं का जुड़ाव, एनआईओएस और राज्य मुक्त विद्यालयों के माध्यम से कक्षा 3, 5 और 8 के लिए ओपन लर्निंग, कक्षा 10 और 12 के बराबर माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रम और व्यावसायिक पाठ्यक्रम, इसे प्राप्त करने के लिए प्रस्तावित कुछ तरीके हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति यह प्रस्तावित करती है कि स्कूल से बाहर रह रहे लगभग 2 करोड़ बच्चों को विद्यालयों में वापस लाया जाएगा।

बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्कूलों में शिक्षा के माध्यम के संबंध में काफी संवेदनशील दिखती है । यह नीति प्राथमिक स्तर पर मातृ भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने पर ज़ोर देती है। जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में लिखा हुआ है *"फ़ाउंडेशन स्टेज की शुरुआत और इसके बाद से ही बच्चों को विभिन्न भाषाओं में (लेकिन मातृभाषा पर विशेष ज़ोर देने के साथ) एक्सपोजर दिये जाएंगे। सभी भाषाओं को एक मनोरंजक और संवादात्मक शैली में पढ़ाया जाएगा, जिसमें बहुत सारी संवादात्मक बातचीत होगी, और शुरुवाती वर्षों में पढ़ने और बाद में मातृभाषा में लिखने के साथ – ग्रेड 3 और आगे की कक्षाओं अन्य भाषाओं में पढ़ने और लिखने के लिए कौशल विकसित किए जाएंगे"(पृष्ट – 20)।* शिक्षा नीति अपनी भाषा नीति में विद्यार्थियों के लिए त्रि-भाषा सूत्र सहित एक विकल्प के रूप में स्कूल और उच्च शिक्षा के सभी स्तरों पर संस्कृत के प्रसार की बात करती है। इसी के साथ भारत की अन्य शास्त्रीय भाषाएँ और साहित्य भी विकल्प के रूप में उपलब्ध होंगे। किसी भी विद्यार्थी पर कोई भाषा नहीं थोपी जाएगी। माध्यमिक स्तर पर कई विदेशी भाषाएँ भी पढ़ाई जाएँगी। भारतीय सांकेतिक भाषा (आईएसएल) को पूरे देश में मानकीकृत किया जाएगा और श्रवण बाधित छात्रों के उपयोग के लिए राष्ट्रीय और राज्य पाठ्यक्रम सामग्री विकसित की जाएगी।

समग्र बहुविषयक शिक्षा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति की एक विशेषता उसकी समग्र एवं बहुविषयक शिक्षा की योजना है। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों के लिए एक लचीले पाठ्यक्रम, विषयों के रचनात्मक संयोजन, व्यावसायिक शिक्षा के एकीकरण और उचित प्रमाणन के साथ कई प्रवेश और निकास बिंदुओं के साथ बहु-विषयक, समग्र स्नातक शिक्षा की परिकल्पना की गई है।

मुक्त और दूरस्थ शिक्षा : मुक्त और दूरस्थ शिक्षा भारत में अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विशेष रूप से दूरदराज और ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों के लिए पहुंच और समावेशिता को बढ़ाती हैं। यह कामकाजी पेशेवरों, गृहिणियों और विभिन्न बाधाओं के कारण पारंपरिक संस्थानों में जाने में असमर्थ लोगों की जरूरतों को पूरा करते हुए सीखने के भिन्न अवसर प्रदान करती है। इस तथ्य को समझते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने मुक्त और दूरस्थ शिक्षा के लिए विशेष निर्देश दिये हैं। जिसके अंतर्गत ऑनलाइन पाठ्यक्रम और डिजिटल रिपॉजिटरी, शोध के लिए वित्त पोषण, बेहतर विद्यार्थी सेवाएं, एमओओसी की क्रेडिट-आधारित मान्यता आदि जैसे उपाय किए जाएंगे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह उच्चतम गुणवत्ता वाले नियमित शैक्षिक कार्यकर्मों जितनी प्रभावशाली हो पाये।

ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल शिक्षा: राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारत के शैक्षिक पारिस्थिति तंत्र में क्रांति लाने में ऑनलाइन शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालती है। एनईपी 2020 शैक्षिक असमानताओं को दूर करने के लिए प्रौद्योगिकी की क्षमता को स्वीकार करती है और आसानी से सुलभ और उच्च-स्तरीय सीखने की संभावनाओं की उपलब्धता के लिए डिजिटल प्लेटफार्मों के व्यापक उपयोग को बढ़ावा देती है। नीति डिजिटल बुनियादी ढांचे और सामग्री को विकसित करने, डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने और सभी शैक्षिक स्तरों पर प्रौद्योगिकी-संवर्धित शिक्षा

को शामिल करने की आवश्यकता पर जोर देती है। राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच (NETF) एक प्रस्तावित पहल है जिसका उद्देश्य डिजिटल शिक्षा के क्षेत्र में विचारों के आदान-प्रदान और सर्वोत्तम प्रथाओं को साझा करना है। एनईपी 2020 का उद्देश्य मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोणों को बढ़ावा देकर और प्रौद्योगिकी तक समान पहुँच की गारंटी देकर शिक्षा की समावेशिता, लचीलापन और अनुकूलनशीलता को बढ़ाना है।

भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देना : राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने को प्राथमिकता देती है एवं संस्कृति और संज्ञानात्मक विकास के संरक्षण में इसके महत्व को स्वीकार करती है। नीति कई भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देती है और अनुशंसा करती है कि बच्चों को कम से कम ग्रेड 5 तक और आदर्श रूप से ग्रेड 8 और उससे आगे तक अपनी मातृ या क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा प्राप्त हो। इस रणनीति का उद्देश्य मौलिक साक्षरता और संख्यात्मक क्षमताओं को बढ़ाना है, साथ ही सांस्कृतिक विरासत के साथ एक मजबूत बंधन भी विकसित करना है। एनईपी 2020 विभिन्न भारतीय भाषाओं में उत्कृष्ट शैक्षिक सामग्री और संसाधनों के निर्माण को भी बढ़ावा देता है और क्षेत्रीय भाषाओं में कुशल शिक्षकों की भर्ती और प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान करती है। इस रणनीति का उद्देश्य भारत की विविध भाषाई विरासत का सम्मान करने वाली समावेशी और निष्पक्ष शैक्षिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए भाषाई विविधता को बढ़ावा देना है। सभी भारतीय भाषाओं के संरक्षण, विकास और जीवंतता को सुनिश्चित करने के लिए, NEP ने भारतीय अनुवाद और व्याख्या संस्थान (IITI), पाली, फ़ारसी और प्राकृत के लिए राष्ट्रीय संस्थान (या संस्थान) स्थापित करने, उच्च शिक्षा संस्थानों में संस्कृत और सभी भाषा विभागों को मजबूत करने और अधिक उच्च शिक्षा संस्थानों के कार्यक्रमों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा/स्थानीय भाषा का उपयोग करने की सिफारिश की है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की उपरोक्त सभी प्रमुख विशेषताएँ इस नीति की रूपरेखा एवं इसके उद्देश्यों को स्पष्टता से परिभाषित करती हैं । यह शिक्षा नीति अपनी प्रकृति में इतनी विस्तृत एवं व्यापक है कि यह भारत की शिक्षा व्यवस्था के सभी आयामों पर विस्तार से बात करती है।

परिचर्चा

जब हम भारतीय संवैधानिक शैक्षिक मूल्यों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मूल सिद्धांतों को गहनता से समझने का प्रयास करते हैं तो हम स्पष्ट रूप से इन दोनों के बीच के सहसंबद्ध को चिन्हित कर पाते हैं । इनके बीचे के इस गहरे संबंध को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास कर सकते हैं :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की प्रमुख चुनौतियाँ – भारत एक विशाल देश है यह अपने भीतर गहरी विविधाओं को लिए हुए है जो कई बार इस देश के लिए सशक्तिकरण का माध्यम बनती है तो कई बार भिन्न प्रकार की उलझनों को जन्म देती है। अगर विशेष रूप से उलझनों या जटिलताओं की बात की जाए तो जब भी देश में कोई नीति बनती है या नीति बनाने का प्रयास शुरू होता है तो भारत में उपस्थित यह गहरी विविधताएँ एक एकीकृत योजना को बनने के संबंध में कुछ मौलिक जटिलताएँ पैदा करती है । इस संबंध में महत्वपूर्ण सवाल यह होता है कि किसी नीति को इस प्रकार कैसे बनाया जाए कि वह देश के प्रत्येक व्यक्ति को लाभ पहुँचा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के निर्माण एवं विकास संबंधी चर्चाओं में भी यह प्रश्न एक मौलिक प्रश्न रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संबंध में जो दूसरी बड़ी चुनौती प्रतिबिम्बित होती है वह यह है कि देश के संसाधनों का इस्तेमाल किस प्रकार से हो कि वह सभी में समान

रूप से वितरित हो पाये। अभी भी देश में सभी विद्यालयों की स्थिति समान नहीं है ऐसे में देश के सभी विद्यालयों में संसाधनों का समान वितरण एक बड़ी चुनौती के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के समक्ष उपस्थित है। देश के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों में क्षमताओं का निर्माण करना भी एक बड़ी चुनौती के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के समक्ष उपस्थित रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उपरोक्त वर्णित सभी चुनौतियों को स्वीकार करते हुए एवं इस संबंध में गहन विश्लेषण करते हुए विभिन्न सुझाव प्रस्तुत करती है। शिक्षा नीति एक काल खंड का निर्धारण भी करती है जिसके भीतर वह इन चुनौतियों के संबंध में अपने उद्देश्यों को पूर्ण कर सके। इस संबंध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय संवैधानिक शैक्षिक मूल्यों एवं भावों को आधार बनाते हुए आगे बढ़ती है जो इस नीति को निर्देशित तो करता ही है साथ ही साथ इस सैद्धांतिक एवं मौलिक रूप से सशक्त भी करता है।

शिक्षा का सार्वभौमिकरण – भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41, 45 और 46 शिक्षा की पहुँच समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस सार्वभौमिकता में सभी के लिए मुफ्त शिक्षा और समाज में हाशिये पर खड़े समुदायों विशेष के लिए शिक्षा को सुलभ करवाना सम्मिलित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी अपने कई बिन्दुओं में शिक्षा के इस सार्वभौमिकरण को प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पूर्व-प्राथमिक विद्यालय से लेकर उच्चतर विद्यालयों तक विद्यार्थियों की पहुँच सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध प्रस्तुत होती है। इस संबंध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उन बच्चों को भी कक्षाओं में वापस लाने के लिए प्रतिबद्ध है जो किसी कारण से विद्यालयों को छोड़ चुके होते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लगभग दो करोड़ बच्चों को विद्यालयों में वापस लाने की बात करती है।

शिक्षा में समानता एवं समता – समानता एवं समता महत्वपूर्ण संवैधानिक मूल्य हैं। चूंकि भारत देश विविधताओं से भरा देश है यहाँ कई समूह सामाजिक एवं आर्थिक रूप से हाशिये पर स्थित हैं ऐसे में देश के लिए अति आवश्यक है कि समानता एवं समता के सामाजिक मूल्यों को व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक आयाम में क्रियान्वित किया जा सके। शिक्षा के संबंध में इन मूल्यों की उपस्थिती देश को अर्थपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस संबंध कई अर्थपूर्ण उपाय किए हुए प्रस्तुत होती है। आर्थिक एवं सामाजिक रूप से हाशिये पर स्थित समूहों के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विभिन्न लोक कल्याण कार्यक्रम चलाने के निर्देश देती है। यह कार्यक्रम मुफ्त शिक्षा एवं मुफ्त शैक्षिक सुविधाओं की अनुशंशा करते हैं। जिसमे यातायात के साधनों की ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों तक पहुँच और शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न वजीफों को उपलब्ध करवाना सम्मिलित हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लेखित ये सभी प्रयास संवैधानिक मूल्यों के मूल भावों पर खड़े दिखते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्पष्ट रूप से उल्लेख करती है कि निम्नलिखित मूलभूत सिद्धान्त शिक्षा प्रणाली और व्यक्तिगत संस्थाओं दोनों का मार्ग दर्शन करेंगे *"नैतिकता, मानवता और संवैधानिक मूल्य जैसे, सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतान्त्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक सम्मप्ति के लिए लिए सम्मान, वैज्ञानिक चिंतन , स्वतन्त्रता, ज़िम्मेदारी, बहुलतावाद, समानता और न्याय" (पृष्ट -6)*

शिक्षा का अधिकार – अधिकारों के संबंध में भारतीय संविधान विशेष रूप से प्रावधान करता है। यह प्रावधान विशेष रूप से प्रस्तावना एवं अनुच्छेद 12-35 के माध्यम से उपस्थित हैं परंतु सम्पूर्ण संविधान में परिलक्षित होते हैं। अधिकारों के संबंध में संविधान जो विमर्श प्रस्तुत करता है उसमे शिक्षा का अधिकार भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शिक्षा का अधिकार , शिक्षा के महत्व एवं प्रासंगिकता के सापेक्ष ही बुना एवं रचा गया है। यह अधिकार देश के

प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश से लेकर उनकी सम्पूर्ण शिक्षा यात्रा में उन्हे संरक्षण प्रदान करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय संविधान के इस भाव को अपनी सम्पूर्ण रूप रेखा में सम्मिलित करते हुए प्रस्तुत होती है जिसके अंतर्गत सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार देने और उस अधिकार को सुलभता से उपलब्ध करवाने के लिए प्रतिबद्ध है।

बहुभाषावाद और मातृभाषा – भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को सम्मिलित किया गया है। साथ ही साथ अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा के विकास पर भी ज़ोर देता है। यह दोनों ही विशेषताएँ देश की भाषाओं को सम्मान देती हैं और निर्देशित करती हैं कि राज्य इनके विकास एवं संरक्षण के लिए कार्य करेगा। इसी को आधार बनाते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भाषा के संबंध में एक विस्तृत विमर्श प्रस्तुत करती है यह विमर्श बहुभाषावाद एवं मातृ भाषा पर केन्द्रित है। एक तरफ राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 त्री-भाषा सूत्र को मान्यता देती है तो दूसरी तरफ कक्षा 5 तक मातृ भाषा में शिक्षण को प्रोत्साहित करने हेतु निर्देशित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्पष्ट रूप से उल्लेख करती है *"फ़ाउंडेशन स्टेज की शुरुआत और इसके बाद से ही बच्चों को विभिन्न भाषाओं में (लेकिन मातृभाषा पर विशेष ज़ोर देने के साथ) एक्सपोजर दिये जाएंगे। सभी भाषाओं को एक मनोरंजक और संवादात्मक शैली में पढ़ाया जाएगा, जिसमें बहुत सारी संवादात्मक बातचीत होगी, और शुरुवाती वर्षों में पढ़ने और बाद में मातृभाषा में लिखने के साथ – ग्रेड 3 और आगे की कक्षाओं अन्य भाषाओं में पढ़ने और लिखने के लिए कौशल विकसित किए जाएंगे"(पृष्ट – 20)।*

विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रतिबद्ध दिखती है। यह नीति सैद्धांतिक ज्ञान देने पर जितना ज़ोर देती है उतना ही महत्व व्यावहारिक, व्यावसायिक एवं शारीरिक कौशलों के विकास पर भी देती है। यह नीति अपने पूर्व में आई नीतियों से इन मायनों में भी भिन्न है कि इस नीति ने शिक्षा को मात्र सूचनाओं, तथ्यों और सैद्धांतिक ज्ञान की परिसीमा से बाहर निकाल कर इसको वास्तविकताओं के धरातल से जोड़ने का भी प्रयास किया। इस प्रयास का उद्देश्य यह है कि शिक्षार्थियों के मात्र एक आयाम का विकास न करते हुए बहु आयामी विकास को सुनिश्चित किया जा सके। अपने इस प्रयास के संबंध में भी यह शिक्षा नीति भारतीय संविधान के मूल भाव, प्रत्येक भारतीय को पूर्ण विकास का अवसर प्रदान करने एवं ऐसी अनुकूल दशाएँ उपलब्ध करवाए जाने से संबन्धित है जिसमे वह अपना गरिमापूर्ण एवं आत्मसम्मानपूर्ण विकास सुनिश्चित कर पाये।

समावेशन का विचार – भारतीय संविधान विश्व के ऐसे कुछ दुर्लभ संविधानों में से एक जिसने समावेशन के विचार को उसकी वास्तविकता एवं व्यावहारिकता में स्वीकार एवं आत्मसात किया है। भारतीय संविधान में उल्लेखित मौलिक अधिकारों का विचार और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों का विचार स्पष्ट रूप से समावेशन के सार्वभौमिक सिद्धान्त से संबन्धित है। भारतीय शिक्षा नीति भी समावेशन के विचार को अपनी रूपरेखा के मूलभाव में रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समावेशन का विचार अत्यधिक व्यापक है इसके अंतर्गत यह नीति सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समूहों, विविध भौगोलिक पहचानों, सांस्कृतिक विविधताओं, भिन्न लैंगिक समूहों और दिव्यांगता को सम्मिलित करती है। दिव्यांग बच्चों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लेखित है *"दिव्यांग बच्चों को प्रारम्भिक स्तर से उच्चतर स्तर तक की शिक्षण प्रक्रियाओं में सम्मिलित होने के लिए सक्षम बनाया जाएगा। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 समवेशी शिक्षा को ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित करता है जहाँ सामान्य*

व दिव्यांग, सभी बच्चे एक साथ सीखते हैं तथा शिक्षण वे सीखने की प्रणाली को इस प्रकार अनुकूलित किया जाता है कि वह प्रत्येक बच्चे की सभी सामान्य अथवा विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम हो । यह नीति आरपी डबल्यूडी अधिनियम 2016 के सभी प्रावधानों के साथ पूरी तरह से सुसंगत है तथा स्कूली शिक्षा के संबंध में इसके द्वारा प्रस्तावित सभी सिफ़ारिशों को पूरा करती है।"

इस प्रकार प्रस्तुत परिचर्चा यह प्रतिबिम्बित करती है कि किस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय संविधान के शैक्षिक मूल्यों एवं उसके मूल भावों को आधार बनाते हुए आगे बढ़ती है एवं यह प्रयास करती है कि संविधान निर्माताओं ने जिन उद्देश्यों से इस संविधान का निर्माण किया उन उद्देश्यों को शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सके या प्राप्त करना सरल हो सके।

भारतीय संविधान के मूल भावों: न्याय, समता , एवं स्वन्त्रता में संदर्भित शिक्षा का विचार अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत है । यह विचार संविधान के दो महत्वपूर्ण हिस्सों , मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में सरलता से चिह्नित किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय संविधान के इन ही मूल भावों के आधार पर निर्मित शिक्षा नीति है। भारतीय संविधान के शैक्षिक मूल्यों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की मूल विशेषताओं का विश्लेषण एवं इनके अंतरसंबंधों का विश्लेषण और परिचर्चा यह स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय संवैधानिक मूल्यों में निहित शिक्षा के विचार को अपने मूल सिद्धांतों और निर्देशों में प्रभावशाली ढंग से सम्मिलित करते हुए एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत करती है । शिक्षा के संबंध में सार्वभौमिकता के विचार और समानता के अधिकार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विभिन्न प्रकार से अपने प्रावधानों में निहित करती हुई प्रतीत होती है । चाहे बात भारतीय विविधता का सम्मान करते हुए सभी के लिए अर्थपूर्ण ढंग से शिक्षा को उपलब्ध करने से संबंधित हो या बात भारतीयता को शिक्षा में एक गरिमापूर्ण स्थान प्रदान करवाते हुए प्रत्येक भारतीय के समावेशन की हो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अपनी रूपरेखा एवं उद्देशों में संविधान के मूल भाव को प्रगतिशील रूप से आगे बढ़ाने का कार्य करती हुई प्रतीत होती है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने अपनी रूपरेखा में लगभग उन सभी उद्देश्यों को सम्मिलित किया है जो भारतीय संविधान के मूल भावों में निहित शिक्षा दर्शन को वास्तविकता के धरातल पर चरितार्थ करने के लिए आवश्यक हैं.

संदर्भ सूची

1. एन.सी.ई.आर.टी. (2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
2. एन.सी.ई.आर.टी. (2007). शिक्षा के लक्ष्य राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
3. एन.सी.ई.आर.टी. (2007). सामाजिक विज्ञान का शिक्षण राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
4. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली
5. विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग (2021). भारत का संविधान. नई दिल्ली
6. Dewey, J. (1938). Experience and education. New York: Macmillan.

7. Kumar, K. (2005). Quality of Education at the Beginning of the 21st Century: Lessons from India. Indian Educational Review 2. Draft National Education Policy 2019.
8. Kumar, V. (2007). Gandhi The Man, His Life and Vision, Regel Publication, New Delhi.
9. Swami Vivekananda: Life and Teachings, Belur Math, archived from the original on 30 March 2012, retrieved on 30 March 2012. https://web.archive.org/web/20120330175816/http://www.belurmath.org/swamiviveka nanda.htm
10. Bharatbhai, J. R. (2013). Views of Swami Vivekananda for a Better Parameter of Human Life. Indian Journal of Research –Paripex, Volume No. 2, Issue: 8.
11. Vedhathiri, Thanikachalam (2020), "Critical Assessment of Draft Indian National Education Policy 2019 with Respect to National Institutes of Technical Teachers Training and Research", Journal of Engineering Education, 33

38

भारतीय संविधान में निहित संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका

प्रिया गौतम
शोधार्थी, आर्य कन्या डिग्री कॉलेज प्रयागराज
डॉ.अमित कुमार
सहायक आचार्य, आर्य कन्या डिग्री कॉलेज प्रयागराज

किसी भी राष्ट्र के बहुमुखी विकास में उस राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था तथा शैक्षिक गुणवत्ता का अमूल्य योगदान रहता है। भारतीय शिक्षा परम्परा भी व्यक्ति के जीवन में मूल्यों को एक महत्वपूर्ण स्थान देता रहा है। वैदिककाल में भी शिक्षा का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति में आदर्श मूल्यों का विकास करना था। वर्तमान समय में मूल्ययुक्त शिक्षा का प्रबंधन राष्ट्र के विकास में मुख्य भूमिका अदा करता है। इसके लिए भारतीय संविधान में भी मौलिक कर्तव्यों, मूल अधिकारों तथा नीति निर्देशक तत्व में मूल्यों के विकास पर बल देने के लिए महत्वपूर्ण मूल्यों तथा कर्तव्यों का समावेशन किया गया है। संविधान की प्रस्तावना में इन मूल्यों के वृहद् स्वरूप का संक्षिप्त रूप वर्णित है। किसी भी देश का शिक्षित, जिम्मेदार, व मूल्यवान नागरिक अपने राष्ट्र को उन्नति के उच्च कीर्तिमान पर स्थापित करने में किसी न किसी प्रकार से सहायक होते है। अत देश की प्रगति के लिए नागरिक को शिक्षित होने के साथ-साथ मूल्यवान भी होना चाहिए। प्रोफेसर अर्बन ने अपनी पुस्तक "फंडामेंटल ऑफ़ एथिक्स" में मूल्य को परिभाषित किया है कि मूल्य वह है जो मानव इच्छा की तृप्ति करे, जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो। इस कारण से प्रत्येक राष्ट्र का यह कर्तव्य हो जाता है की वह नागरिको को शिक्षा प्रदान करने तथा उनमे मूल्य विकसित करने हेतु अपने संविधान में कर्तव्यों तथा मूल्यों को सम्मिलित करे ताकि उस देश के नागरिक उन मूल्यों और कर्तव्यों को आत्मसात करते हुए देश तथा समाज की प्रगति में अपना योगदान प्रदान करने में समर्थ हो सके। शिक्षा जैसे सशक्त माध्यम का प्रयोग करते हुए नागरिको को इस योग्य बनाया जाये की वह मूल्यों को अपने आचरण में आत्मसात करने तथा आदर्श समाज के निर्माण में अपना योगदान देने में समर्थ हो सके। इस कारण से भारतीय शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत शिक्षा प्राथमिक स्तर से ही विद्यार्थी में संवैधानिक मूल्यों के प्रति जागरूकता का बीजारोपण किया जाता है। अतः शिक्षा विद्यार्थी को केवल विषयो का ज्ञान ही प्रदान नहीं करती अपितु उन्हें समाज में रहने योग्य बनाती है। शिक्षण कक्ष में विद्यार्थी सहानुभूति, भाईचारा, प्रेम, सदाचरण जैसे अनेक मूल्यों को आत्मसात करता हुआ भविष्य में एक योग्य नागरिक बनने की दिशा में कार्यरत रहता है। विद्यालय परिसर के अन्दर तथा बाहर विद्यार्थी ऐसे कई मूल्यों को ग्रहण करता है जो उसे सही गलत में भेद करना सिखाती है। उसे इस योग्य बनाती है कि वह दूसरे मनुष्य के प्रति प्रेम, भाईचारा, सम्मान, ईमानदारी, जैसे मूल्यों को प्रदर्शित कर सके। संविधान में इन मूल्यों की झलक मूल कर्तव्य तथा नीति निर्देशक तत्व के अंतर्गत देखने

को मिलती है। मूल् कर्तव्यों (अनुच्छेद-51) के अनुसार प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे, राष्ट्र ध्वज का सम्मान करे, उच्च आदर्शो को आत्मसात करे, समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे, प्रर्यावरण तथा भारतीय संस्कृति के महत्व को समझे तथा इनकी रक्षा करे।

संविधान में निहित मूल्यों के संरक्षण तथा संवर्धन की आवश्यकता –

"मूल्य रहित शिक्षा मनुष्य को एक चतुर शैतान बनाती है।"

- सी. एस. लेविस

(ब्रिटिशलेखक)

बढ़ती हुयी वैश्विक प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से आगे निकलने की व्याकुलता से ग्रसित है। प्रतिद्वंद्विता की इस अंधाधुंध दौड़ में व्यक्ति में निहित सामाजिक, नैतिक, तथा मानवीय मूल्यों का पतन होता जा रहा है। जहाँ प्राचीन भारतीय परम्परा में आदर्श तथा नैतिकता से परिपूर्ण चरित्र का सृजन करना, मानव समाज की प्रथम आवश्यकता थी आज व्यक्ति की प्राथमिकता स्वयं की प्रगति करना तक सीमित रह गयी है। व्यक्ति स्वयं को विकास की सीढ़ी पर गतिमान रखने के लिए आवश्यक मानवीय व नैतिक मूल्यों को भूलता जा रहा है। पश्चिमीकरण के फलस्वरूप तथा मानव द्वारा पाश्चात्य संस्कृति के आधुनिकीकरण के कारण व्यक्ति मूल्यों को भूलता जा रहा है। जिसका परिणाम हमे नित-प्रतिदिन आतंकवादी गतिवधियों, हिंसात्मक साम्प्रदायिकता, तथा सामाजिक अस्थिरता के रूप में भुगतना पड़ता है। भारतीय संविधान निर्माताओं को पूर्व में ही इस बात का आभास हो गया था की भविष्य में समाज में ऐसे व्यक्ति की बहुलता होगी जो स्वार्थ सिद्धि हेतु मूल्यों को त्यागने में तनिक भी विचार नही करेंगे इस कारण से उनके द्वारा संविधान में ऐसे मूल्यों का समावेश किया गया जो मनुष्य को एक सभ्य व् आदर्श नागरिक बनने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान कर सके। परन्तु चिंताजनक विषय यह है की मूल्यों को आत्मसात करना व्यक्तिगत निर्णय है। यह किसी के द्वारा थोपा नहीं जा सकता अपितु केवल व्यक्ति को इस हेतू प्रेरित किया जा सकता है।

भारतीय संविधान में वर्णित मूल्य है- सम्प्रभुता, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, भारतीय गणराज्य का गणतांत्रिक चरित्र, न्याय, स्वतत्रंता, समानता, बंधुत्व, मानवीय गरिमा, राष्ट्र की अखंडता जो मूल्यों के व्यापक स्वरुप को संक्षेप में प्रस्तुत करते है। विद्यार्थीयों में इन मूल्यों का विकास करना तथा उनमे व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक तथा मानवीय मूल्यों का सृजन करना आदि की भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षा प्रक्रिया का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, परन्तु वर्तमान शिक्षा प्रणालियों के अंतर्गत शैक्षिक प्रक्रियाओं के तकनीकीकरण तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणालियों के अंधानुकरण के फलस्वरूप यह लक्ष्य प्राप्त करना आसान कार्य नहीं रह गया है। मूल्यों के महत्व तथा मूल्यविहीन शिक्षा के भयावह स्वरूप को अग्रलिखित उदहारण द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है – यदि किसी भी देश का शिक्षित नागरिक परमाणु बम जैसा विष्फोटक उपकरण बनाना जानता है तो अन्य देश के विध्वंसन हेतु उसका उपयोग करना पूरी तरह से उस व्यक्ति के मूल्यों पर निर्भर करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सहानुभूति, बंधुत्व, दया, दूसरो के प्रति सम्मान व प्रेम जैसे मूल्यों के कारण विश्व में शांति बनी रहती है। इस कारण से बाल्यावस्था से ही विद्यार्थीयों के मृदु मस्तिष्क में तथ्यों के साथ-साथ सवेंदनशीलता, प्रेम, भाईचारा, बंधुत्व, सम्मान जैसे मूल्यों का बीजारोपण करना अति आवश्यक हो जाता है। एक उत्कृष्ट नागरिक बनने के लिए राष्ट्रप्रेम केवल विचारो में ही विद्यमान नहीं होना चाहिए बल्कि कर्तव्यों के माध्यम से नित प्रतिदिन सामाजिक क्रियाकलापों में परिलक्षित होना

चाहिए। इस बात को सही अर्थो में वास्तविकता प्रदान करने में शिक्षा अपना योगदान दे सकती है। प्राचीन भारतीय परम्परा में भी शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य व्यक्ति के व्यवहार में उच्च मानवीय मूल्यों को आत्मसात कराना था। वर्तमान में शिक्षा प्रणालियों के तकनीकीकरण तथा पाश्चात्य शैक्षिक व्यवस्थाओं के अंधानुकरण की प्रवृत्ति इस लक्ष्य की प्राप्ति में रूकावट डालने का कार्य कर रहे हैं। व्यक्ति के जीवन में मूल्यों का पतन एक सार्वजानिक समस्या बन गयी है। इसी के परिणामस्वरूप यह आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि विद्यार्थीयों में मूल्यों का समावेशन आवश्यक है तथा मूल्यों को विकसित करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा नीति में सुधार अपेक्षित है, वर्तमान समय में मूल्यों के गिरते हुए स्वरुप को उठाने के लिए शिक्षा की संरचना में परिवर्तन करना आवश्यक है।

भारतीय सविंधान में वर्णित संवैधानिक मूल्य –

संवैधानिक मूल्य –प्रत्येक संविधान कुछ आदर्शो एवं सिद्धांतो पर टिका रहता है इसे ही संवैधानिक मूल्य कहते है। भारत देश एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है तथा इस लोकतंत्रात्मक गणराज्य में शिक्षा लोकतंत्र की आत्मा है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति का संज्ञानात्मक, भावनात्मक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास करते हुए उसे एक आदर्श नागरिक बनने हेतु प्रेरित किया जाता है जो कर्म वचन तथा चरित्र से आदर्श नागरिकता प्रदर्शित करने वाला नागरिक हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति एवं लोकतंत्रात्मक परम्परा एवं मानवीय गरिमा को बनाये रखने एवं इसको उत्कृष्टता के पथ पर अग्रसर करने हेतु निम्नलिखित मूल्यों को सविंधान की प्रस्तावना, नीति निर्देशक तत्वों में तथा मूल कर्तव्यों में स्थान दिया गया है इन मूल्यों को आत्मसात करने के उपरांत व्यक्ति अपने आचरण तथा व्यवहार में परिवर्तन कर सकता है तथा स्वयं को राष्ट्रहित में सहयोगकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित कर सकता है। देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए संवैधानिक मूल्यों को आत्मसात किया जाना आवश्यक है, यह मूल्य देश की प्रगति तथा स्वयं मानव को पूर्ण मानव बनाने की दृष्टि से आवश्यक है। सविंधान में वर्णित मूल्य शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होते है। प्राचीन समय से देश में व्याप्त कुरीतियों के खंडन के फलस्वरूप सवैंधानिक मूल्यों का उदय हुआ जो भारत देशवासियों के लिए वरदान है। भारतीय सविंधान में वर्णित मूल्यों, न्याय, समता, स्वतंत्रता तथा बंधुत्व शिक्षा क्षेत्र में सभी व्यक्तियों की शिक्षा में भागीदरी सुनिश्चित करते है। भारतीय सविंधान में वर्णित मूल्य, मूल्यों को पूर्ण रूप से संझेप में प्रस्तुत करते है। उनमे से कतिपय मूल्यों का विवरण अग्रलिखित है –

स्वतंत्रता का मूल्य- भारतीय सविंधान में स्वतंत्रता का व्यापक अर्थ है जिसकी व्याख्या करने पर इसके अंतर्गत अनेक क्षेत्रो से सम्बंधित स्वतंत्रता का समर्थन किया गया है। इसके अंतर्गत विचार तथा कार्य की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है, इच्छानुसार शिक्षा ग्रहण करने तथा किसी भी प्रकार के व्यवसाय को चुनने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। उपर्युक्त मौलिक मूल्य हमारे सविंधान में अंतर्निहित हैं जो व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार को रचनात्मक रूप से प्रकट करने की स्वतंत्रता प्रदान करते है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में दूसरों के विचारों के प्रति सम्मान तथा अन्य व्यक्तियों की मान्यताओं व् परम्परा के प्रति आदर भाव जैसे मूल्यों के सृजन में सहायता मिलती है। शिक्षा विद्यार्थीयों को इस योग्य बनाती है की वह अपने जीविकोपार्जन के लिए व्यवसाय का चयन स्वयं कर सके। व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य में आत्मनिर्भरता तथा दूसरे व्यक्ति के कार्यो के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों का प्रादुर्भाव करती है।

न्याय का मूल्य– एक सभ्य समाज की प्रतिष्ठा स्थापित करने तथा बनाये रखने में न्याय की व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज में शांति बनाये रखने तथा भेदभाव रहित समाज की स्थापना में भी इस मूल्य का योगदान

अद्वितीय है। इसके अंतर्गत सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय, राजनीतिक न्याय तथा धार्मिक न्याय का उल्लेख किया गया है। न्याय मूल्य के समावेशन के फलस्वरूप व्यक्ति में दूसरे लिंग, जाति, धर्म तथा सामाजिक संरचना में विद्यमान वंचित समूहों के प्रतिसम्मान तथा भेदभाव रहित भावना का विकास होता है।

सामाजिक न्याय मूल्य के अंतर्गत समाज में उपस्थित कमजोर वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा स्त्रियो के सामाजिक तथा शैक्षिक विकास हेतु उचित अवसर प्रदान करना तथा जाति, लिंग, धर्म व स्थान के आधार पर किसी भी व्यक्ति से भेदभाव रहित व्यवहार करना व सभी के साथ समानता का व्यवहार करना सम्मिलित किया गया है।

आर्थिक न्याय मूल्य के अंतर्गत लिंग भेद रहित जीविका प्राप्ति के साधन तथा समान कार्य हेतु समान वेतन सभी भारतीय नागरिको को समान रूप से उपलब्ध कराये गए है।

राजनीतिक न्याय का मूल्य 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' की भावना को सुदृढ़ करती है।

धार्मिक न्याय मूल्य सभी धर्मो के प्रति आदर की भावना का विकास तथा धार्मिक रूढ़िवादिता व अंधविश्वास से स्वयं को स्वतंत्र करके पंथनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित करना तथा धार्मिक न्याय मूल्य के औचित्य को आधारशिला प्रदान करता है। भारत में निवास करने वाले प्रत्येक धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि तथा धर्म के अनुसार धार्मिक संस्थायें संचालित करने के अधिकार को संरक्षण प्रदान करने में तथा समाज में धार्मिक न्याय मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देने में सहयोगी है।

समानता का मूल्य- स्वतंत्रता तथा न्याय मूल्य का मुख्य केंद्र बिंदु 'समानता' है अर्थात समानता के आभाव में स्वतंत्रता तथा न्याय मूल्य द्वारा उल्लेखित उद्देश्य की प्राप्ति निरर्थक सिद्ध हो जाएगी। अतः समाजिक विकास को गति प्रदान करने तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने हेतु देश के नागरिको को समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास के लिए समान अवसर प्रदान करना, समानता के मूल्य को सार्थकता प्रदान करता है।

भ्रातृत्व मूल्य- नागरिको में भ्रातृत्व मूल्य का संचरण तभी संभव होगा जब व्यक्ति के अंदर समानता का मूल्य पहले से ही विद्यमान हो। प्रत्येक व्यक्ति में भ्रातृत्व मूल्य के संचरण हेतु समानता, न्याय, तथा स्वतंत्रता के मूल्यों को आत्मसात किया जाना आवश्यक है। इस मूल्य के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति में राष्ट्रीय एकता का प्रादुर्भाव संभव होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करता है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, स्वतंत्र भारत की 1968 की पहली शिक्षा नीति तथा 1986 की दूसरी शिक्षा नीति के बाद तीसरी पारिष्कृत शिक्षा नीति है। 21वी सदी की यह पहली शिक्षा नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि शिक्षा द्वारा न केवल विद्यार्थी के संज्ञानात्मक क्षमताओं को विकसित करना चाहिए बल्कि उसके सामाजिक, नैतिक तथा भावनात्मक क्षमताओं के विकास पर भी बल देना चाहिए। इस नीति द्वारा शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थीका सर्वांगीण विकास करना निर्धारित किया गया है, जो इस नीति के आधार स्तम्भ 'समता व समावेशन के सिद्धांत' पर आधारित होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्पष्ट रूप से यह सिफारिश की गयी है कि विद्यार्थियो के संज्ञानात्मक कौशलों के

विकास के साथ उन्हें नैतिकता, मानवीयता, तथा सवैंधानिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान की जाये, जो विद्यार्थीयों के भावी जीवन की तैयारी हेतु आवश्यक जीवन कौशल विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मूल्यों के विकास पर अधिक बल देते हुए पाठ्यचर्या तथा शिक्षण कार्य में मूल्यों के समावेशन की अनुशंसा की गयी है अर्थात विद्यार्थियों को मूल्यों की शिक्षा अलग से न प्रदान करके कक्षा शिक्षण के साथ-साथ प्रदान करने की बात गयी है। इस शिक्षा नीति के भाग 2.48 में स्पष्ट किया गया है की *'विद्यार्थियों को कम उम्र से ही सही करने का महत्त्व बताना चाहिए, नैतिक निर्णय लेने हेतु सही तर्क का आधार उनमे विकसित किया जाना चाहिए। आगे की शिक्षा में जीवन का संचालन करने में नैतिकता को अपनाने में समर्थ बनाना, सही तार्किक निर्णय नैतिक आचरण को अपनाने हेतु सक्षम बनाया जायेगा। इस प्रकार विकसित की गयी नैतिक समझ में आचरण के आधार पर पारम्परिक मूल्यों, मानवीय व सवैंधानिक मूल्यों को विद्यार्थियों में विकसित किया जायेगा।*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लिखित बहुभाषावाद संप्रत्यय, शिक्षण अधिगम में भाषा की महत्ता को बढ़ावा देता है। जो विद्यार्थीयों में अन्य क्षेत्रीय भाषाई विभिन्नता के प्रति आदर व सम्मान विकसित करने में सहायक होगा।

संवैधानिक मूल्यों यथा सामाजिक न्याय के उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग प्रदान करने हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में 'समतामूलक तथा समावेशी शिक्षा' का प्रावधान किया गया है। समावेशी शिक्षा यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक विद्यार्थी को शिक्षा प्राप्त करने के एक समान अवसर प्राप्त हो सके तथा विद्यालय में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक विद्यार्थीको उसकी व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर शिक्षण अधिगम का लाभ मिल सके।

आर्थिक न्याय मूल्य को प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए इस शिक्षा नीति के अंतर्गत विद्यालय तथा उच्च शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण हेतु प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित करने से सम्बंधित शैक्षिक प्रावधान किये गए है तथा यह लक्ष्य निर्धारित किया गया है कि साल 2025 तक कम से कम 50% शिक्षार्थियों को उच्च शिक्षा के माध्यम से व्यावसायिक अनुभव प्रदान किया जायेगा।

समानता के मूल्य को संरक्षण प्रदान करने तथा शिक्षार्थियों में इस मूल्य के विकास हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भेदभाव रहित शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। इस कार्य हेतु विद्यालय परिषद के अंदर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया तथा पाठ्येतर गतिविधियों के माध्यम से शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों के भीतर भेदभाव रहित आचरण करने की प्रवृत्ति, सहानुभूति, दुसरो के प्रति सम्मान, शिष्टाचार, सहृदयता, जैसे मूल्यों के विकास पर बल प्रदान करना इस शिक्षा नीति का प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में संवैधानिक मूल्यों यथा सत्य, आदर्श आचरण, राष्ट्रप्रेम, सद्भावना, भ्रातृत्व, विश्वबंधुत्व, धर्मनिरपेक्षता तथा नागरिक मूल्य, जीवन कौशल को प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन में प्रदर्शित व्यवहार में परिलक्षित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु पाठ्यक्रम में सामुदायिक सेवाओं से सम्बंधित शैक्षिक गतिविधियाँ, पर्यावरण शिक्षा, मानवीय शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा को पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग निर्धारित किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत विद्यार्थीयों में मूल्य संवर्धन हेतु ऐसे पाठ्यक्रम को शामिल करने में बल दिया गया है जिससे विद्यार्थीके अंदर लक्ष्य मूल्य जैसे समानता, सक्रियता, आत्म सम्मान विश्व शांति, प्रसन्नता, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा पूर्णता का भाव आदि मूल्य विकसित हो सके। इसी के साथ- साथ नैमित्तिक मूल्य यथा उदारता, तार्किकता, संयम, ईमानदारी, क्षमाशीलता, स्वतंत्रता, आज्ञाकारिता आदि मूल्यों का प्रादुर्भाव हो सके।

इन मूल्यों के विकास हेतु शिक्षा में प्राथमिक स्तर से ही पाठ्यचर्या में निम्नलिखित पाठ्यक्रम तथा पाठ्येतर गतिविधियों को सम्मिलित किये जाने की अनुशंसा इस नीति के अंतर्गत की गयी है-

- विद्यालयों में महापुरुषो की जयंतियो का आयोजन किया जाये।
- विद्यालयी शैक्षिक गतिविधियों के अतिरिक्त समय-समय पर नाटक, विभिन्न प्रकार के खेलो तथा विचार-मंथन को बढ़ावा देने वाली आवश्यक गतिविधियों को शामिल किया जाये।
- विद्यार्थीयों में वांछनीय मूल्यों की शिक्षा शिक्षण प्रक्रिया के समय विभिन्न शिक्षण गतिविधियों की सहायता से दी जाये।
- शिक्षकों द्वारा विद्यार्थीयों के समक्ष स्वयं ही उच्च मूल्यों का प्रदर्शन किया जाये जिससे विद्यार्थीअनुकरण द्वारा उच्च मूल्यों को अपने व्यवहार में आत्मसात कर सके।
- कक्षा के भीतर तथा बाहर सहयोगात्मक वातावरण निर्माण को बढ़ावा दिया जाये इसके लिए खेलो का आयोजन किया जाना एक अच्छा विकल्प है। जिसके द्वारा विद्यार्थीस्वस्थ प्रतिस्पर्धात्मक व्यवहार प्रदर्शित करने के साथ-साथ सहानभूति तथा सहयोग की भावना जैसे मूल्यों को विकसित कर सके।

वैश्वीकरण के फलस्वरूप प्रत्येक देश विकास की और अग्रसर होने के लिए प्रतिस्पर्धा में लगे हुए है। इस तकनीकी क्रांति के युग में मनुष्य द्वारा किये जाने वाले कार्यो का स्थान मशीनी उपकरणों द्वारा ले लिया गया है। विकसित राष्ट्रों द्वारा अपने दैनिक कार्यो को संपन्न करने में मशीनी उपकरणों तथा कृत्रिम बुद्धि का उपयोग प्रमुखता से किया जाता है, विकासशील राष्ट्र भी इसका अनुसरण करने में संलग्न है। इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में मानव मस्तिष्क निष्क्रियता के चरम सीमा पर पहुंचने की कगार पर है। जहां कृत्रिम बुद्धि द्वारा उनके व्यवहार को नियंत्रित करने सम्बन्धी कल्पना वास्तविकता की ओर धीमी गति से आगे बढ़ रही है। परन्तु विचारणीय तथ्य यह है कि तकनीकी जितनी भी अधिक सक्षमता ग्रहण कर ले लेकिन यह मानव मस्तिष्क का स्थान नहीं ग्रहण कर पायेगी। इसका कारण मानव मष्तिस्क की जटिलम संरचना है अर्थात मानव बुद्धि उसके व्यवहार की नियंत्रकर्ता है। मानव बुद्धि पर उसके समाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है, जो उसे एक मूल्यवान व्यक्ति बनाते हुए मशीन से भिन्न स्वरुप प्रदान करती है।

मूल्यों के विकास तथा मूल्यों को आत्मसात करने हेतु शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उपर्युक्त ज्वलंत समस्याओ के विश्लेषण के पश्चात् भारतीय शिक्षाविदों द्वारा ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गयी जिसने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की आधारशिला रखी। यह नीति 'प्रत्येक विद्यार्थियों में मूल्यों के सृजन तथा विकास को वर्तमान समय की आवश्यकता' सुनिश्चित करती है। यह नीति मूल्ययुक्त शिक्षा प्रणाली के विकास पर ज़ोर

देते हुए शिक्षक, विद्यालय, तथा पाठ्यक्रम को उसी के अनुसार निर्मित करने सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय का समर्थन करती है जो भारतीय शिक्षा प्रणाली को उत्कृष्ट स्वरुप प्रदान करने की दिशा में एक सराहनीय कदम है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 यह सिफारिश करती है की शिक्षकों को समय-समय पर ऐसा प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए जिससे उनमे शिक्षण प्रक्रिया से सम्बन्धित नवीन शिक्षण क्षमताओं व् कौशलों, तकनीकी सक्षमता के साथ साथ भारतीयता की मूल संस्कृति के प्रति निष्ठा, प्रतिबद्धता, सवैंधानिक मूल्यों के प्रति जागरूकता तथा प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण विकसित हो सके। मूल्य से परिपूर्ण शिक्षण-प्रशिक्षण प्रदान करने के उपरांत शिक्षकों के व्यक्तित्व विकास पर बल दिया जा सकेगा। इस प्रकार 'मूल्य प्रशिक्षण' शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सवैंधानिक मूल्यों के संरक्षण व् संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा में प्राथमिक शैक्षिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक ऐसे विषयो को सम्मिलित करना जिनके अधिगम के फलस्वरूप विद्यार्थियों में मानवीय, संवैधानिक तथा सार्वभौमिक मूल्यों जैसे सत्य, अहिंसा, आदर्श आचरण, नागरिक मूल्य, जीवन कौशल, सामुदायिक कार्यो में सहभागिता तथा एक दूसरे के प्रति सम्मान व् सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक न्याय से संबंधित मूल्यों का निर्माण हो सके इनसे सम्बंधित प्रावधान शिक्षा के स्तर को परिष्कृत करने की दिशा में प्रशंसनीय कार्य है।

इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सवैंधानिक मूल्यों के संरक्षण तथा संवर्धन हेतु प्रशंसनीय प्रावधान किये गए है यदि इनको शैक्षिक प्रणाली में व्यावहारिक स्तर पर सम्मिलित कर लिया जाये तो यह शैक्षिक नीति भारत को पुनः विश्वगुरु का दर्जा प्राप्त कराने में सहयोगी सिद्ध होगी।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता. पी., (2020)., राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 २१वी सदी में नैतिक मूल्यों की पुर्नस्थापना के विशेष सन्दर्भ में., द रॉयल गोंडवाना रिसर्च जर्नल ऑफ़ हिस्ट्री, साइंस, इकोनॉमिक्स, पोलिटिकल एंड सोशल साइंसेज., 3(7)., ISSN 2583-1348., P. 01-06.
2. जोसफ बी. व अन्य (2023), कम्पैरटिव स्टडी ऑन अवेयरनेस ऑफ़ कॉस्टीटूशनल वैल्यू अमंग इन -सर्विस टीचर्स एंड प्री-सर्विस टीचर्स ऐट सेकंडरी लेवल, साउथ इंडियन जर्नल ऑफ़ सोशल साइंसेज, 23(1)., 0972-8845.
3. लक्ष्मीकांत एम., (2024), इंडियन पॉलिटी., नोएडा: मैकग्रोव हिल एजुकेशन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड।
4. मिश्रा यू., (2014)., शिक्षा का समाजशास्त्र., इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस।
5. नेशनल एजुकेशन पॉलिसी2020, मिनिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट, भारत सरकार, नई दिल्ली। http://www.education.gov.in
6. सिंह डी. & मिश्रा आर. एस., (2023)., इक्विटी एंड इन्क्लूज़न इन इंडियन एजुकेशन: कोंस्टीटूशनल प्रिंसिपल्स एंड एन० ई० पी०-2020 अप्प्रोचेस, बीएसएसएस जर्नल ऑफ़ एजुकेशन., 12(1), 2320-1258, P. 128-139.

7. तिवारी के.,(2022)., राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में आकांक्षाओं की पूर्ति के सन्दर्भ में मूल्य शिक्षा., सोशल रिसर्च फाउंडेशन., 7(3)., 2456-4397.
8. http://books.google.com/books/about/value_education_and_national_education_p.htm
9. http://www.india.gov.in/my-goverment

39

समावेशी शिक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान: उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ

डॉ. प्रवीण चंद सिंह
स्वतंत्र शोधकर्ता

किसी राष्ट्र का विकास प्रत्येक बच्चे के विकास और शिक्षा पर निर्भर करता है। इसे हासिल करने के लिए यह जरूरी है कि देश के सभी बच्चों को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया जाए। इस प्रणाली द्वारा प्रत्येक बच्चे को उनके सर्वोत्तम विकास के लिए समान अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। समावेशी शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है जो सभी छात्रों को समायोजित करने के लिए शैक्षिक प्रणाली की क्षमता को बढ़ाती है। इसमें सभी बच्चों को उनकी क्षमताओं या चुनौतियों की परवाह किए बिना उन्हें मुख्यधारा की कक्षाओं में या सबसे उपयुक्त और कम से कम प्रतिबंधात्मक वातावरण (एलआरई) में एकीकृत करना शामिल है। यह दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है कि विभिन्न क्षमता स्तरों के छात्रों को समान रूप से पढ़ाया जाए ताकि प्रत्येक छात्र लाभान्वित हो सके। ऐतिहासिक रूप से 1944 की सार्जेंट रिपोर्ट और 1964 के कोठारी आयोग दोनों ने विकलांग बच्चों (सीडब्ल्यूडी) को नियमित शैक्षणिक संस्थानों में जाने की वकालत की है। समावेशी शिक्षा का लक्ष्य प्रत्येक छात्र तक पहुँचने की शैक्षिक प्रणाली की क्षमता को मजबूत करना है विशेष रूप से उन लोगों तक जो हाशिये पर जाने और बहिष्करण के अधिक जोखिम में हैं। भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है जहां हर व्यक्ति को अवसर की समानता की गारंटी संवैधानिक रूप से दी गई है। हालाँकि समाज में अनौपचारिक तौर पर भेदभाव कायम है जो शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और व्यवहारिक मतभेदों के रुप में प्रकट होता है। इस व्यापक असमानता को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घोषणाओं में सभी बच्चों को बिना किसी भेदभाव के स्कूलों में शामिल करने की वकालत की गई। इन प्रयासों के बावजूद मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के साथ अक्सर समाज में उनके अन्य साथियों की तुलना में समान व्यवहार नहीं किया जाता है। समावेशी शिक्षा का उद्देश्य एक ही छत के नीचे शिक्षा में सभी प्रकार के छात्रों की भागीदारी सुनिश्चित करना और सभी शिक्षार्थियों को समान अवसर प्रदान करना है। समावेशन एक प्रयोग नहीं है जिसे आजमाया जाना चाहिए बल्कि एक सिद्धांत है जिसे कायम रखा जाना चाहिए। यूनिसेफ (2003) की एक रिपोर्ट के अनुसार केंद्र और राज्य सरकारों ने दिव्यांगों के प्रवेश और उनकी उपलब्धि को बढ़ाने के लिए विभिन्न उपाय शुरू किए गए है, फिर भी अधिकांश सुविधाएं बड़े शहरों में ही केंद्रित हैं। 1994 में सलामांका रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद कई विकासशील देशों ने मुख्यधारा के स्कूलों में विकलांग छात्रों को शामिल करने के उद्देश्य से नीतियां बनाना शुरू कर दिया।

समावेशी शिक्षा को अक्सर एक नई रणनीति के रूप में देखा जाता है लेकिन इसका एक व्यापक और जटिल इतिहास है। समावेशी शिक्षा के विकास को सात अलग-अलग चरणों में विभाजित किया जा सकता है जिनमें से प्रत्येक चरण विकलांगता के प्रति समाज के बदलते दृष्टिकोण को दर्शाता है। ये निम्नलिखित है।

1. बहिष्करण की अवधि: इस प्रारंभिक काल में, विकलांग बच्चों को पूरी तरह से समाज से बाहर रखा गया था। जन्म के बाद उन्हें अक्सर मार दिया जाता था, त्याग दिया जाता था या मरने के लिए छोड़ दिया जाता थाI इस प्रकार उन्हें प्रभावी रूप से समुदाय से बाहर कर दिया जाता था।

2. मनोरंजनकर्ताओं के रूप में स्वीकृति: इस समय के दौरान विकलांग व्यक्तियों को समाज के द्वारा स्वीकार तो किया गया था, लेकिन केवल उपहास या मनोरंजन के वस्तु के रूप में। उनका अक्सर मनोरंजन करने वालों, वेश्याओं, नौकरों या गुलामों के रूप में शोषण किया जाता था।

3. भेदभाव का काल: मध्यकाल में, विकलांग बच्चों को गंभीर भेदभाव का सामना करना पड़ता था, जिसे अक्सर धार्मिक मान्यताओं द्वारा उचित ठहराया जाता था। वे कभी-कभी जादू टोना और अंधविश्वास के अन्य रूपों से जुड़े होते थे।

4. सहानुभूति और शरणागत की अवधि: इस चरण ने सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव को चिह्नित किया I अब विकलांग व्यक्तियों को दया और सहानुभूति की वस्तु के रूप में देखा जाने लगा। परिणामस्वरूप, देखभाल और पुनर्वास प्रदान करने के लिए विभिन्न आश्रय घर और संस्थान स्थापित किए गए।

5. अलगाव और विशेष विद्यालय की अवधि: पश्चिमी दुनिया में पुनर्जागरण के दौरान दिव्यांगों के लिए विशेष विद्यालय स्थापित किए गए जिससे उन्हें मुख्यधारा की शिक्षा से अलग किया गया। शिक्षा की इस प्रणाली को अंततः विशेष शिक्षा के रूप में जाना जाता है जो ऐसे बच्चों पर केंद्रित शिक्षा की एक अलग शाखा है।

6. पृथक्करण की अवधि: 20वीं शताब्दी की शुरुआत में विशेष शिक्षा नियमित स्कूलों के अंतर्गत अधिक एकीकृत रुप में परिवर्तित हो गई। मुख्यधारा के स्कूलों में विकलांग बच्चों के लिए विशेष कक्षाएं बनाई गईं, जिससे सभी बच्चों को उनकी विकलांगता की परवाह किए बिना एक ही स्कूल में शामिल करने का प्रयास किया गया।

7. समावेशी काल: यह वर्तमान चरण है। अब सभी बच्चों के साथ समान व्यवहार किया जाता है और मुख्यधारा के स्कूलों में उनका स्वागत किया जाता है। विकलांग बच्चे अब अपने साथियों के साथ नियमित कक्षाओं में जाते हैं जो समावेशी शिक्षा के सिद्धांतों को दर्शाता है

(2)समावेशी शिक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान और उपलब्धियाँ

भारत के संविधान में सभी के लिए शिक्षा से संबंधित विभिन्न प्रावधान शामिल हैं जो शैक्षिक समानता के प्रति देश की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। हालाँकि संविधान के मूल पाठ में शिक्षा के अधिकार का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है लेकिन कई अनुच्छेद इसके महत्व पर जोर देते हैं और शिक्षा को बढ़ावा देने में राज्य की जिम्मेदारियों को रेखांकित करते हैं।

भारत की आज़ादी के समय साक्षरता दर मात्र 19.78% थी, जो दर्शाता है कि लगभग 80% आबादी निरक्षर और अज्ञानी थी। संविधान निर्माता सामूहिक शिक्षा की कमी के कारण उत्पन्न नाजुक सामाजिक-सांस्कृतिक और शैक्षिक परिदृश्य से अत्यधिक परिचित थे। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए उन्होंने लोगों के सांस्कृतिक, धार्मिक और शैक्षिक हितों को संरक्षित, सुरक्षित रखने और उन्हें बढ़ावा देने के लिए आवश्यक संवैधानिक प्रावधान शामिल किए।

कई वर्षों तक शिक्षा को मौलिक अधिकार नहीं माना गया। अन्ततः वर्ष 2009 में, शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009 की शुरुआत के साथ इसे कानूनी मान्यता दी गई। यह कानून शिक्षा के लिए संविधान के दायित्व को पूरा करने में एक महत्वपूर्ण कदम है। भारत में शिक्षा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान नीचे दिए गए हैं।

1. अनुच्छेद 14: यह अनुच्छेद सरकार द्वारा किसी भी प्रकार के भेदभाव पर रोक लगाते हुए सभी के लिए समान शैक्षिक अवसर सुनिश्चित करता है।

2. अनुच्छेद 15(5): यह प्रावधान राज्य को शैक्षणिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के साथ-साथ अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) की प्रगति के लिए, विशेष रूप से शैक्षणिक संस्थानों में, विशिष्ट कदम उठाने की अनुमति देता है।

3. अनुच्छेद 21-ए: इसे 2002 में 86वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से संविधान में पेश किया गया था। यह अनुच्छेद बच्चों (6-14 वर्ष) के लिए शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाता है। इस अनुच्छेद के तहत इस आयु वर्ग के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा राज्य द्वारा प्रदान की जाएगी।

4. अनुच्छेद 24: यह अनुच्छेद बच्चों (14 वर्ष से कम) को किसी अन्य खतरनाक क्षेत्र यानी कारखानों, खदानों आदि में नियोजित करने पर रोक लगाता है।

5. अनुच्छेद 28: यह सुनिश्चित करता है कि राज्य द्वारा संचालित संस्थान सभी के लिए समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देते हुए धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं करेंगे या किसी धर्म का पक्ष नहीं लेंगे।

6. अनुच्छेद 29(2): यह प्रावधान गारंटी देता है कि किसी भी नागरिक को जाति, नस्ल, धर्म, भाषा या इनमें से किसी भी कारक के आधार पर किसी भी सरकारी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

7. अनुच्छेद 30(1): यह अनुच्छेद अल्पसंख्यकों के अधिकार की गारंटी देता है। यह अनुच्छेद अल्पसंख्यकों (धर्म/भाषा के आधार पर) को उनकी पसंद के अनुसार शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने और प्रबंधित करने की अनुमति देता है।

8. अनुच्छेद 41: यह राज्य को उन मामलों में सार्वजनिक समर्थन देने के लिए मार्गदर्शन करता है जहां शिक्षा के अधिकार की रक्षा करना आवश्यक है।

9. अनुच्छेद 45: प्रारंभ में इस अनुच्छेद का उद्देश्य संविधान के प्रारंभ होने के दस वर्षों के भीतर सभी बच्चों (14 वर्ष की आयु तक) के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना था। वर्ष 2002 के 86वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के बाद, राज्य को अब सभी बच्चों को प्रारंभिक बचपन (6 वर्ष तक) की देखभाल और शिक्षा प्रदान करने के लिए भी काम करना होगा।

10. अनुच्छेद 46: यह अनुच्छेद एससी, एसटी और समाज के अन्य कमजोर वर्गों के आर्थिक और शैक्षणिक कल्याण को बढ़ावा देता है।

11. अनुच्छेद 350A: यह प्राथमिक विद्यालय स्तर पर भाषाई अल्पसंख्यकों के बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा की सुविधा प्रदान करता है।

12. अनुच्छेद 51ए(के): इस अनुच्छेद में कहा गया है कि यह प्रत्येक अभिभावक या माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चे (6-14 वर्ष) को शिक्षा प्रदान करें।

आज दुनिया भर में लगभग 12 करोड़ बच्चे प्राथमिक विद्यालय में नहीं जाते हैं। विश्व बैंक द्वारा उद्धृत मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एमएचआरडी) के आंकड़ों के अनुसार, भारत में लगभग 3 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं। इनमें से कई बच्चे जाति, लिंग, गरीबी और विकलांगता जैसे विभिन्न कारणों से हाशिए पर हैं। काफी समय से भारत सरकार द्वारा दिव्यांगजनों और अन्य वंचित और हाशिए पर रहने वाले समूहों के कल्याण में सुधार लाने के उद्देश्य से विभिन्न कार्यक्रम और योजनाएं शुरू की गई हैं। इन पहलों को कालानुक्रमिक क्रम में नीचे उल्लिखित किया गया है।

समाज कल्याण मंत्रालय

1960 के दशक में भारत में विशेष शिक्षा के संगठन और वित्त पोषण में एक बड़ा बदलाव हुआ। शिक्षा मंत्रालय को विभाजित कर दिया गया, जिससे समाज कल्याण मंत्रालय नामक एक नई संगठन का निर्माण हुआ, जिसे समाज के "कमजोर और दयनीय" लोगों की जरूरतों को पूरा करने का काम सौंपा गया था। 1974 में समाज कल्याण मंत्रालय ने विकलांग बच्चों की एकीकृत शिक्षा (आईईडीसी) योजना शुरू की। यह एकीकृत बाल विकास की पूर्ववर्ती योजना के समान नहीं था। आईईडीसी कार्यक्रम के तहत दिव्यांगों को मुख्यधारा के विद्यालयों में एकीकृत करने के लक्ष्य हेतु इन्हें स्कूल की वर्दी, किताबें, परिवहन सुविधा, सहायक सामग्री और विशेष किट सहित मौद्रिक सहायता प्रदान की गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई)

एनपीई-1986 ने आईईडीसी की 1974 की योजना के सिद्धांतों को जारी रखा। एनपीई "मामूली" विकलांगता वाले बच्चों को सामान्य स्कूल में भेजने की वकालत करता है, साथ ही यह सुझाव भी देता है कि "मध्यम से गंभीर" विकलांगता वाले बच्चों को विशेष स्कूलों में भेजा जाना चाहिए। 1992 का एक्शन प्रोग्राम (पीओए), जिसे 1986 के एनपीई को लागू करने के लिए डिज़ाइन किया गया था, विकलांग बच्चों के वर्गीकरण का विस्तार करता है जिन्हें सामान्य शिक्षा में शामिल किया जाना चाहिए। इसमें दावा किया गया है कि "एक विकलांग बच्चा जिसे सामान्य स्कूल में शिक्षित किया जा सकता है, उसे विशेष स्कूल में नहीं रखा जाना चाहिए"।

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम (1987)

1987 का यह अधिनियम मानसिक रूप से विकलांग लोगों की देखभाल और इलाज से संबंधित मौजूदा कानूनों को संश्लेषित और संशोधित करता है। इसका उद्देश्य मौजूदा प्रावधानों में सुधार करना और इन लोगों के लिए उचित देखभाल और उपचार सुनिश्चित करना है।

भारतीय पुनर्वास परिषद-आरसीआई (1992)

इस परिषद को सितंबर, 1992 में स्थापित किया गया और 2000 में संसद द्वारा संशोधित किया गया। यह पुनर्वास सेवाएं प्रदान करने के लिए जनशक्ति को संगठित करने पर केंद्रित है। आरसीआई पाठ्यक्रम का मानकीकरण करता है और विशेष शिक्षा और पुनर्ईकीकरण के क्षेत्र में काम करने वाले पेशेवरों और कर्मचारियों की गुणवत्ता को बढ़ाता है।

सलामांका स्टेटमेंट (1994)

1994 में सलामांका, स्पेन में हुए एक सम्मेलन के अंत में, "विशेष आवश्यकता शिक्षा पर कार्रवाई के लिए सलामांका वक्तव्य और रूपरेखा" शीर्षक के साथ एक संयुक्त घोषणापत्र जारी की गई थी। इस सम्मेलन में 92 सरकारों और 25

वैश्विक प्रतिष्ठानों सहित 300 से अधिक योगदानकर्ताओं ने भाग लिया। वक्तव्य में समावेशी शिक्षा का समर्थन किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि स्कूलों को प्रत्येक बच्चे को उनके बौद्धिक स्तर, शारीरिक अक्षमता, अभिव्यंजक स्तर, सामाजिक स्थिति और भाषाई या किसी अन्य भेदभाव के बिना स्वीकार किया जाना चाहिए। यह रेखांकित करता है कि 'विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले लोगों की नियमित स्कूलों तक पहुंच होनी चाहिए, जो उन्हें उनकी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम बाल-केंद्रित शिक्षण विधि के अनुरूप हो।' भारत सलामांका वक्तव्य का एक हस्ताक्षरकर्ता देश है।

विकलांग व्यक्ति अधिनियम (पीडब्ल्यूडी-1995)

दिसंबर 1995 में भारतीय संसद द्वारा पारित यह अधिनियम, विकलांग व्यक्तियों के लिए समान अवसर और पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से एक ऐतिहासिक कानून है। यह अधिनियम विकलांग बच्चों के लिए अठारह वर्ष की आयु तक अनुकूल वातावरण में मुफ्त शिक्षा का आदेश देता है। यह विकलांगता की रोकथाम और उसकी सुरक्षा तथा भेदभाव से निपटने की सरकार की जिम्मेदारी को रेखांकित करता है। डब्ल्यूडी अधिनियम को बाद में वर्ष 2016 में विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम (आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम) द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई-2009)

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, जिसे बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम के रूप में भी जाना जाता है, को 2 जुलाई 2009 को भारतीय संसद द्वारा अनुमोदित किया गया था और 1 अप्रैल 2010 को लागू किया गया। यह अधिनियम बच्चों के अधिकारों की रक्षा करता है। हाशिए पर रहने वाले समूहों के बच्चों को बिना किसी भेदभाव के प्रारंभिक शिक्षा तक उनकी पहुंच सुनिश्चित कराता है। इसमें अन्य विकलांग बच्चों जैसे सेरेब्रल पाल्सी, मानसिक मंदता, ऑटिज़्म और बहु विकलांगता वाले बच्चों को शामिल करने के प्रावधान शामिल हैं, जो उन्हें मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की गारंटी देते हैं। 2002 में मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. एम. एच. जोशी ने शिक्षा के अधिकार को "नागरिकों के अधिकारों के अध्याय में दूसरी क्रांति की शुरुआत" के रूप में वर्णित किया।

आरटीई अधिनियम की मुख्य विशेषताएं:

• निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार: 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को पास के स्कूल में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा लेने की अनुमति है। इस आयु वर्ग के अंतर्गत सभी बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा पूरी होनी चाहिए।

• पड़ोस के स्कूल की परिभाषा: एक पड़ोस के स्कूल की परिभाषा यह है कि एक प्राथमिक स्कूल 1 किमी के भीतर होना चाहिए और एक उच्च प्राथमिक स्कूल प्रत्येक निवासी के 3 किमी के दायरे में होना चाहिए।

• आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए प्रवेश: विशेष श्रेणी के स्कूलों और निजी मान्यता प्राप्त स्कूलों को इन प्रवेशों के लिए प्रतिपूर्ति प्रावधानों के साथ, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (ईडब्ल्यूएस) और वंचित समूहों के 25% बच्चों को प्रत्येक कक्षा में लेना अनिवार्य है।

• कोई कैपिटेशन शुल्क या स्क्रीनिंग नहीं: स्कूल प्रवेश के लिए कैपिटेशन शुल्क यानी अतिरिक्त शुल्क नहीं ले सकते और कोई स्क्रीनिंग प्रक्रिया भी नहीं चला सकते।

. प्रवेश से इनकार नहीं: आयु प्रमाण की कमी के कारण किसी भी बच्चे को प्रवेश से वंचित नहीं किया जा सकता है और स्कूलों को विस्तारित प्रवेश अवधि के दौरान भी बच्चों को समायोजित करना होगा।

• कोई प्रतिधारण या निष्कासन नहीं: यह अधिनियम किसी भी कक्षा में छात्रों को रोकने या बच्चों को तब तक स्कूल से निकालने से मना करता है जब तक कि वे अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर लेते। लेकिन अब इस प्रावधान में संशोधन किया गया है और बच्चों को 5वीं और 8वीं कक्षा में रोका जा सकता है।

• दण्ड का निषेध: बच्चों का मानसिक उत्पीड़न और शारीरिक दंड देना सख्त वर्जित है।

• स्कूल प्रबंधन समिति (एसएमसी): गैर सहायता प्राप्त निजी मान्यता प्राप्त स्कूलों को छोड़कर, प्रत्येक स्कूल में एक विद्यालय प्रबंधन समिति (एसएमसी) होनी चाहिए। एसएमसी में 75% अभिभावक सदस्यों के साथ 50% महिला सदस्य और एससी/एसटी तथा वंचित समूहों का प्रतिनिधित्व भी शामिल होना चाहिए।

• राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर): एनसीपीसीआर को अधिनियम के तहत प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों की समीक्षा करने, शिकायतों की जांच करने का काम सौंपा गया है, और संबंधित मामलों का फैसला करने के लिए नागरिक अदालत की शक्तियां भी दी गई हैं।

आरटीई अधिनियम स्कूलों के लिए नियम और विनियम स्थापित करता है तथा सरकार, स्कूलों और स्थानीय अधिकारियों की जिम्मेदारियों को परिभाषित करता है। समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह शिक्षकों और अभिभावकों के कर्तव्यों को भी रेखांकित करता है।

विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम (आरपीडब्ल्यूडी) 2016

इस अधिनियम को पूर्ववर्ती पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 1995 की जगह प्रतिस्थापित किया गया था। इस अधिनियम का उद्देश्य विकलांग व्यक्तियों की समानता, गरिमा और सम्मान को बनाए रखना और सभी प्रकार के भेदभाव को रोकना है। यह समाज में दिव्यांगजनों की पूर्ण स्वीकृति और समावेशन की सुविधा प्रदान करता है। यह अधिनियम विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (यूएनसीआरपीडी) के अनुरूप है। भारत पहले ही इसका समर्थन कर चुका हैI अधिनियम एक विकासशील और गतिशील अवधारणा के अनुसार विकलांगता का वर्णन करता है और विकलांगता के 21 रूपों को भी मान्यता देता है I

नई शिक्षा नीति (एनईपी) 2020

शैक्षिक प्रणाली में परिवर्तन और समाज के हाशिए पर मौजूद वर्गों पर विशेष ध्यान देने के साथ इसे अधिक न्यायसंगत, सुलभ और व्यापक बनाना इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य है। मुख्य लक्ष्यों में से एक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाकर और सभी के लिए समान पहुंच सुनिश्चित करके भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति के रूप में स्थापित करना है। इसमें शामिल समावेशी शिक्षा से संबंधित प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं l

. सभी छात्रों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना और शिक्षा प्रणाली के भीतर असमानताओं को दूर करना।

• सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के छात्रों की सहायता करने के लिए छात्रवृत्ति, नकद हस्तांतरण और परिवहन सुविधा प्रदान करना।

• कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के लिए मौजूदा कार्यक्रमों कि प्रभावशीलता को बढ़ाना और लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना।

• शैक्षिक पहुंच में सुधार के लिए शैक्षिक रूप से वंचित क्षेत्रों में विशेष शिक्षा क्षेत्र (एसईजेड) की स्थापना करना।

• विकलांग छात्रों का समर्थन करने के लिए, यह शिक्षकों के लिए संसाधन, सहायक उपकरण, विशेष शिक्षक और प्रशिक्षण प्रदान करता है। पाठ्यक्रम को एकीकृत करते हुए वैकल्पिक स्कूलों को संरक्षित करना और क्षमता विकास और वित्तीय सहायता प्रदान करना इसके अंतर्गत शामिल है।

• उच्च शिक्षा में एस टी और एस सी के प्रवेश को सुविधाजनक बनाने के लिए ब्रिज कोर्स, अद्वितीय छात्रावास और वित्तीय सहायता जैसे विभिन्न कदमों के माध्यम से इनकी शैक्षिक असमानताओं को कम करना।

• छात्रों की क्षमता का दोहन करने के लिए, विशेषकर आदिवासी क्षेत्रों के स्कूलों में , एनसीसी (राष्ट्रीय कैडेट कोर) विंग की स्थापना को प्रोत्साहित करता है।

• सतर्कता बढ़ाने और विभिन्न पहलों तक पहुंच बनाने के लिए एक एकल संगठन और एकल वेबसाइट की स्थापना करना।

शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय कार्यक्रम

भारत ने सामान्य कक्षाओं में दिव्यांग बच्चों की शिक्षा का समर्थन करने के लिए कई राष्ट्रीय योजनाएं लागू की हैं। इनमें एसएसए, आईईडीसी, आरएमएसए, विकलांग बच्चों और युवाओं के लिए शिक्षा में समावेश के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना- 2005, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान आदि शामिल हैं। इनमें से कुछ योजनाओं का वर्णन नीचे दिया गया है।

सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) - 2001

एसएसए का उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण (यूईई) हासिल करना है। इसे 2000 में शुरू किया गया था। यह राष्ट्रीय कार्यक्रम शून्य अस्वीकृति नीति अपनाता है और 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों तक पहुंच, नामांकन बढ़ाने और उन्हें स्कूलों में बनाए रखने के लिए विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों को जोड़ता है। प्रत्येक सीडब्ल्यूएसएन (विशेष आवश्यकता वाले बच्चे) को, उनके विकलांगता के प्रकार या उसकी गंभीरता की परवाह किए बिना, एसएसए के तहत महत्वपूर्ण और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती है। इसकी प्रमुख विशेषताओं इस प्रकार हैं I

. शिक्षक अभिमुखीकरण: विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को प्रभावी ढंग से शिक्षित करने के लिए सभी शिक्षकों को प्रशिक्षण देना।

• बाधा-मुक्त वातावरण: सुलभ वातावरण बनाने के लिए आवश्यक भवन-निर्माण में स्कूलों की सहायता करना।

• विशेष शिक्षक: लक्षित सेवाएं प्रदान करने के लिए विशेष शिक्षकों की भर्ती करना।

एसएसए समावेशी शिक्षा के लिए आठ क्षेत्रों को प्राथमिकता देता है। ये हैं सीडब्ल्यूएसएन की पहचान करना, सीडब्ल्यूएसएन की जरूरतों का मूल्यांकन करना, आवश्यक सहायता प्रदान करना, सरकारी योजनाओं और गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) के साथ सहयोग करना, बाधा मुक्त भौतिक सुविधाओं कि पहुंच की पुष्टि करना, समावेशी शिक्षा के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, विशेष शिक्षकों की नियुक्ति करना, पाठ्यक्रम, शिक्षण शिक्षण सामग्री और पाठ्यपुस्तको को अपनाना I

माध्यमिक स्तर पर विकलांगों के लिए समावेशी शिक्षा (आईईडीएसएस - 2009)

यह योजना पिछली आई ई डी सी योजना को बदलने के लिए 2009-2010 में शुरू की गई थी। इस कार्यक्रम के तहत 9-12वीं कक्षा में विकलांग बच्चों की समावेशी शिक्षा का समर्थन किया जाता है।इसके मुख्य उद्देश्यों में शामिल हैं:

1. पहचान: माध्यमिक स्तर पर विकलांग छात्रों की पहचान करना।

2. शिक्षण सामग्री: आवश्यक शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराना।

3. इन्फ्रास्ट्रक्चर: स्कूलों में ढांचागत बाधाओं को दूर करना।

4. शिक्षक प्रशिक्षण: माध्यमिक स्तर पर सामान्य विद्यालय के शिक्षकों को समावेशी शिक्षा पर बुनियादी प्रशिक्षण प्रदान करना।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (आरएमएसए) - 2009

इसका उद्देश्य भारत में माध्यमिक शिक्षा की पहुंच बढ़ाना और गुणवत्ता में सुधार करना है। कार्यक्रम ने 2017 तक 100% सार्वभौमिक नामांकन और 2020 तक पूर्ण प्रतिधारण प्राप्त करने के लक्ष्य के साथ, अपने घरों से उचित दूरी के भीतर माध्यमिक विद्यालयों में छात्र नामांकन बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया।

आरएमएसए, आरटीई अधिनियम और एसएसए के कार्यान्वयन के साथ, शून्य अस्वीकृति नीति के माध्यम से दिव्यांगों के लिए समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने और शिक्षा की सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालाँकि माता-पिता गंभीर विकलांगता वाले बच्चों के लिए घर-आधारित शिक्षा का विकल्प चुन सकते हैं, लेकिन इस विकल्प का उपयोग संस्थानों में प्रवेश से इनकार करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। समग्र उद्देश्य सार्वभौमिक रूप से सुलभ और विकलांगता-अनुकूल शैक्षिक वातावरण प्रदान करना है।

(3)समावेशी शिक्षा के लिए चुनौतियाँ

2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में लगभग 2.68 करोड़ लोग यानि 2.21% आबादी किसी न किसी प्रकार की विकलांगता से ग्रसित है। इनमें से लगभग 66 लाख 5-19 वर्ष की आयु के बच्चे हैं। प्रगति के बावजूद, भारत को अभी भी इन बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। प्रमुख चुनौतियों निम्नवत है।

• नामांकन और प्रतिधारण: जबकि 5-19 आयु वर्ग के 61% विकलांग बच्चे शैक्षणिक संस्थानों में जा रहे हैं, जबकि 27% कभी भी विद्यालय नहीं जा सके। नामांकन और प्रतिधारण दर दोनों में सुधार के लिए प्रयासों की आवश्यकता है।

• लिंग असमानताएँ: समावेशी स्कूलों में विकलांग और गैर-विकलांग बच्चों के बीच लिंग अनुपात में असमानता मौजूद है। उदाहरण के लिए 30% गैर-विकलांग पुरुष बच्चे और 18% विकलांग पुरुष बच्चे स्कूल जाते हैं, जबकि 38% गैर-विकलांग लड़कियाँ और 14% विकलांग लड़कियाँ नामांकित हैं।

• शैक्षणिक प्रदर्शन: विकलांग और गैर-विकलांग छात्रों के बीच शैक्षणिक प्रदर्शन में उल्लेखनीय अंतर हैं। केवल 12.31% विकलांग छात्र और 23.26% गैर-विकलांग छात्र संतोषजनक प्रदर्शन (50+) हासिल करते हैं। औसत प्रदर्शन श्रेणी (40+) में, 14.35% विकलांग छात्र जबकि 35.65% गैर-विकलांग छात्र हैं। इसके अलावा 5.22% विकलांग छात्र और 8.91% गैर-विकलांग छात्र संतोषजनक स्तर से नीचे आते हैं।

भारत में विकलांग छात्रों (एसडब्ल्यूडी) की वर्तमान स्थिति इस कड़वी सच्चाई को उजागर करती है कि समावेशी शिक्षा अपेक्षित प्रगति नहीं कर पा रही है। स्कूल नामांकन में वृद्धि के बावजूद, शिक्षा प्रणाली सभी छात्रों को शामिल करने के लिए पर्याप्त रूप से अनुकूलित नहीं हो पा रही है। समावेशी शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए एक समग्र सहायता प्रणाली आवश्यक है। समावेशी शिक्षा में निम्नलिखित व्यावहारिक प्रमुख चुनौतियाँ सामने आई है।

1. शिक्षक योग्यताएँ: समावेशी शिक्षा की सफलता के लिए शिक्षक महत्वपूर्ण हैं, फिर भी उनमें से कई में आवश्यक कौशल, ज्ञान और शैक्षिक पृष्ठभूमि का अभाव है। समावेशी शिक्षा को फलने-फूलने के लिए, शिक्षकों को दिव्यांगों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशिष्ट दक्षताओं से सुसज्जित होना चाहिए। शिक्षकों के प्रशिक्षण और योग्यता में मौजूद वर्तमान अंतराल समावेशन के प्रभावी कार्यान्वयन में बाधा डालता है।

2. समावेशन के प्रति दृष्टिकोण: सफल समावेशी शिक्षा के लिए शिक्षकों, प्रशासकों, अभिभावकों, साथियों और नीति नियोजकों का सकारात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। हालाँकि इन समूहों में समावेशन और विकलांगता के बारे में नकारात्मक धारणाएँ और पूर्वाग्रह बने हुए हैं, जो भारत में समावेशी शिक्षा की प्रभावशीलता पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहे हैं।

3. जागरूकता की कमी: कई सामान्य शिक्षकों में विकलांग बच्चों के साथ काम करने के बारे में बुनियादी ज्ञान का अभाव है। यह अज्ञानता वर्गीकरण, लेबलिंग, विशेष आवश्यकताओं और आवश्यक अनुकूलन जैसे आवश्यक पहलुओं तक फैली हुई है। शिक्षक अक्सर वैज्ञानिक और शैक्षिक समझ के बजाय सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से निर्मित विचारों पर भरोसा करते हैं, जो विकलांग छात्रों को प्रभावी ढंग से समर्थन देने की उनकी क्षमता को प्रभावित करता है।

4. कठोर पाठ्यक्रम: मौजूदा पाठ्यक्रम अक्सर दिव्यांगों की विभिन्न आवश्यकताओं को समायोजित करने में विफल रहता है। उचित समायोजन के बिना, ये छात्र अपने साथियों के साथ अध्ययन करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। इसे दूर करने के लिए पाठ्यक्रम को लचीला बनाने और सभी छात्रों की अलग-अलग जरूरतों को पूरा करने के लिए "सीखने के लिए सार्वभौमिक प्रारूप" के सिद्धांतों को शामिल करने की आवश्यकता है। समावेशी शिक्षा वास्तव में सभी छात्रों को लाभान्वित कर सके यह सुनिश्चित करने के लिए प्रणालीगत बदलावों की आवश्यकता हैं।

5. स्कूल का वातावरण और भौतिक पहुंच: समावेशी शिक्षा को वास्तव में प्रभावी बनाने के लिए स्कूलों को आवश्यक ढांचागत सुविधा प्रदान करना होगा। हालाँकि कई स्कूलों में लिफ्ट, रैंप और दिशा संकेतों जैसे आवश्यक बुनियादी ढांचे का अभी भी अभाव है। ऐसी सुविधाओं की अनुपस्थिति समावेशी शिक्षा प्राप्त करने के लक्ष्य में काफी बाधा डालती है I

6. पारिवारिक सहयोग: भारतीय समाज और संस्कृति के संदर्भ में, परिवार समावेशी शिक्षा के समर्थन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अक्सर परिवारों को अपने बच्चों की शिक्षा के लिए पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता है। वास्तविक समावेशन प्राप्त करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि दिव्यांगजनों की ज़रूरतें प्रभावी ढंग से पूरी हों, सक्रिय पारिवारिक भागीदारी और सहयोग को प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

7. अपर्याप्त सेवा-पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण: समावेशी शिक्षा के संबंध में एक प्रमुख बाधा मुख्यधारा के शिक्षकों को प्रदान किया गया अपर्याप्त प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास है। शिक्षकों को अक्सर दिव्यांग बच्चों की विविध

आवश्यकताओं को संभालने के लिए पर्याप्त तैयारी या सहायता नहीं मिलती है जो समावेशी शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

8. विकलांग बच्चों की नकारात्मक आत्म-धारणाएँ: विकलांग बच्चों में स्वयं के प्रति मौजूद नकारात्मक धारणाएँ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा करती हैं। ऐसी धारणाएं अक्सर साथियों, शिक्षकों और समाज द्वारा बलवती होती हैं। समावेशन हेतु इन नकारात्मक आत्म-धारणाओं को दूर करना होगा और इन छात्रों के लिए अधिक सकारात्मक आत्म-छवि को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है।

9. आईसीटी उपलब्धता और योग्यताएँ: आईसीटी (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) आधुनिक शिक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और दिव्यांगों के सीखने की क्षमता को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकती है। अतः सभी हितधारकों को इन प्रौद्योगिकियों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए आवश्यक कौशल हासिल करने की आवश्यकता है।

10. अनुचित नीति नियोजन और कार्यान्वयन: अपर्याप्त नीति नियोजन और प्रभावी कार्यान्वयन की कमी के परिणामस्वरूप कई असंगत अनुप्रयोग हुआ है। विशेष रूप से निजी क्षेत्र में समावेशी शिक्षा के मूल्यांकन और कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए अच्छी तरह से परिभाषित उपायों की आवश्यकता है।

11. वित्तीय बाधाएँ: विशेष रूप से भारत जैसे विविधतापूर्ण और विकासशील देश में समावेशी शिक्षा को बड़े पैमाने पर लागू करने के लिए भरपूर वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता है। समावेशी शिक्षा के लिए पर्याप्त धन आवंटित करने में सरकार की अनिच्छा वित्तीय बाधाओं के साथ शैक्षिक आवश्यकताओं को संतुलित करने की व्यापक चुनौतियों को दर्शाती है।

ये चुनौतियाँ प्रभावी समावेशी शिक्षा सुनिश्चित करने की जटिलता और इन मुद्दों के समाधान के लिए व्यापक रणनीतियों की आवश्यकता पर प्रकाश डालती हैं।

शिक्षा में सबको समान अवसर मिलना तब तक एक असंभव लक्ष्य बना रहेगा जब तक इसमें विकलांगता की परवाह किए बिना सभी बच्चों को शामिल नहीं किया जाता है। समावेशी शिक्षा की दिशा में हुए प्रयासों के कारण विकलांगता को धर्मार्थ या दयाभाव से देखने के दृष्टिकोण से हटकर इसे अधिकारों और सशक्तिकरण के मामले के रूप में पहचानने की ओर बदलाव को दर्शाता है। इस बदलाव ने उपेक्षा, हाशिए और भेदभाव से एक समावेशी, बाधा मुक्त शैक्षिक वातावरण के प्रयास तक की यात्रा का मार्गदर्शन किया है। जबकि आरटीई अधिनियम जैसी नीतियों ने इसमें सुधार का मार्ग प्रशस्त किया है I समावेशी शिक्षा को सही मायने में साकार करने के लिए सामूहिक प्रयास आवश्यक हैं।

हम बेहतर समावेशी शिक्षा के लिए भविष्य में कुछ कदम उठा सकते हैं जैसे स्थानीय स्तर पर मॉडल समावेशी स्कूलों की स्थापना करना, माता-पिता, छात्रों, शिक्षकों और अन्य स्कूल कर्मचारियों को समावेशी शिक्षा (आईई) की आवश्यकताओं के बारे में जागरूक करना, इसके लिए संसाधन उपलब्ध कराने के लिए हम कॉर्पोरेट क्षेत्र को अधिक प्रभावी ढंग से शामिल कर सकते हैं। शैक्षणिक संस्थानों के बीच सहयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। स्थानीय सरकार, समुदायों और परिवारों सहित सभी को मिलकर आवश्यक कदम उठाना चाहिए। मौजूदा विज्ञान, कला और वाणिज्य के अलावा, हमें विकलांग छात्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिए 'रचनात्मक स्ट्रीम' जैसे विकल्पों पर भी विचार करना चाहिए। इसके लिए हम पाठ्यक्रम के एक भाग के रूप में व्यावसायिक और कौशल प्रशिक्षण को भी शामिल कर सकते हैं। व्यापक शिक्षक प्रशिक्षण शुरू करना, नवीनतम शिक्षण सहायता और उपकरण प्रदान करना,

छोटी कक्षा के आकार को बढ़ावा देना, विभिन्न मंत्रालयों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना, गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी बढ़ाना, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (सीडब्ल्यूएसएन) के लिए परीक्षा की एक वैकल्पिक प्रणाली स्थापित करना, विद्यालय-विश्वविद्यालय साझेदारी को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।

मौजूदा अध्ययन का विश्लेषण करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लंबे संघर्ष के बाद भारत उस दौर में प्रवेश कर चुका है जहां प्रत्येक छात्र को शिक्षा का समान अधिकार दिया जा चुका है। भारत सरकार इस समावेशी शैक्षिक आंदोलन को बनाए रखने के लिए सक्रिय रूप से विभिन्न योजनाएं, नीतियां और अधिनियम पेश कर रही है। भारतीय विद्वान और शिक्षक तेजी से इस बात पर सहमत हो रहे हैं कि समावेशी शिक्षा को नियमित कक्षाओं में लागू किया जाना चाहिए, जिसका लक्ष्य मुख्यधारा की शिक्षा में अपने साथियों के साथ दिव्यांगों के एकीकृत विकास को बढ़ावा देना है। हालाँकि इन अनगिनत नियमों, अधिनियमों और योजनाओं के बावजूद सच्ची समावेशिता का अंतिम लक्ष्य अभी भी पूरी तरह से साकार नहीं हुआ है। इसे प्राप्त करने के लिए न केवल शिक्षकों बल्कि छात्रों, अभिभावकों, प्रशासकों और स्थानीय सरकारी अधिकारियों को भी शिक्षा में समावेशन के सिद्धांतों के बारे में पर्याप्त रूप से सूचित और प्रतिबद्ध होना पड़ेगा। प्रत्येक बच्चे से बिना किसी भेदभाव एवं समान सम्मान के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। तभी हमारे देश में समावेशी शिक्षा सही मायनों में स्थापित हो सकेगी।

संदर्भ सूची

1. इंक्लूसिव एजुकेशन: प्रोग्राम्स एंड प्रोविजन्स.https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1102300.pdf
2. कांस्टीटूशनल प्रोविजन्स फ़ॉर एजुकेशन. https://www.egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/71546/1/Unit-1.pdf
3. इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया. https://corescholar.libraries.wright.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1086&context=ejie
4. कंस्टीटूशनल एंड गवर्नमेंट इनिशिएटिव टुवर्ड्स इनक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया. https://www.multidisciplinaryjournal.in/assets/archives/2018/vol3issue2/3-2-234-527.pdf
5. कंस्टीटूशनल प्रोविज़न इन इंडियन एजुकेशन. https://www.collegeofeducation.co.in/iqac/83.pdf
6. इन्क्लूजन. https://nios.ac.in/media/documents/376_ECCE_PDF/LG_E/376_LG_E_L21.pdf
7. इक्विटी एंड इंक्लूजन इन इंडियन एजुकेशन: कांस्टीटूशनल प्रिंसिपल्स एंड नेप 2020 अप्प्रोचेस. https://bssspublications.com/PublishedPaper/Publish_530.pdf
8. कांस्टीटूशनल प्रोविजन्स फॉर एजुकेशन. http://ddugu.ac.in/ePathshala_Attachments/E_PS834902@6db876eci.pdf
9. इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया फ्रॉम कांसेप्ट टू रियलिटी. http://publications.azimpremjifoundation.org/2180/1/22_Inclusive%20education%20in%20india.pdf
10. इंक्लूसिव एजुकेशन एंड आर टी ई एक्ट (2009): पीवटल पॉलिसीज फॉर इंकलकेशन ऑफ़ पी डब्लु डी एस. https://www.jetir.org/papers/JETIR1809963.pdf

11. प्रेजेंट स्टेटस ऑफ़ इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया. https://orionjournals.com/ijeru/sites/default/files/IJERU-2022-0052.pdf
12. नेशनल गाइडलाइन्स एंड इम्प्लीमेंटेशन फ्रेमवर्क ऑन इक्विटेबल एंड इंक्लूसिव एजुकेश. https://dsel.education.gov.in/sites/default/files/update/NGIFEIE_dosel.pdf
13. इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिय. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000373670
14. इंक्लूसिव एजुकेशन: चैलेंजेज एंड प्रॉस्पेक्ट्स इन इंडिया. https://ijcrt.org/papers/IJPUB1801354.pdf
15. प्रॉस्पेक्ट्स एंड प्रोब्लम्स ऑफ़ इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया. https://www.ijfmr.com/papers/2024/1/12505.pdf
16. इंक्लूसिव एजुकेशन इन इंडिया: इश्यूज, चैलेंजेज एंड प्रॉस्पेक्ट्स. https://www.multidisciplinaryjournals.net/assets/archives/2023/vol8issue1/8004-570.pdf

40

भारत का संविधान, शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

संदीप कुमार
आचार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली यूनिवर्सिटी

1950 में अपनाया गया भारतीय संविधान देश के सर्वोच्च कानून के रूप में कार्य करता है जो शासन और अपने नागरिकों के मौलिक अधिकारों के लिए रूपरेखा निर्धारित करता है। यह जिन महत्वपूर्ण क्षेत्रों को संबोधित करता है उनमें से एक शिक्षा है, जो एक न्यायसंगत और प्रगतिशील समाज को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में शिक्षा न केवल ज्ञान प्राप्त करने का एक साधन है, बल्कि सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने का एक साधन भी है। शिक्षा पर संविधान का जोर विभिन्न अनुच्छेदों में परिलक्षित होता है जो राज्य को सभी नागरिकों के लिए शिक्षा तक पहुंच प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं जिससे एक मजबूत शिक्षा प्रणाली की नींव रखी जाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारत के शैक्षिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है जिसका उद्देश्य 21वीं सदी की मांगों को पूरा करने के लिए मौजूदा प्रणाली में बदलाव करना है। यह नीति 1968 और 1986 के बाद भारत में लागू की गई तीसरी प्रमुख शिक्षा नीति है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की कल्पना करती है जो व्यक्तियों के समग्र विकास एवं समावेशिता को बढ़ावा देने और नवाचार को प्रोत्साहित करने पर ध्यान केंद्रित करके भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति में बदलने में सीधे योगदान देती है।

यह लेख भारतीय संविधान, शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बीच के जटिल संबंधों की पड़ताल करता है। यह शिक्षा से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों पर प्रकाश डालता है, भारत में शैक्षिक नीतियों के विकास का पता लगाता है और इन संवैधानिक जनादेशों के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की समीक्षात्मक जांच करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संरेखण का संवैधानिक मूल्यों के साथ विश्लेषण करके और इसके द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का समाधान करके, इस लेख का उद्देश्य भारतीय शिक्षा के भविष्य के प्रक्षेपवक्र की व्यापक समझ प्रदान करना है।

भारत का संविधान और शिक्षा

शिक्षा को अक्सर राष्ट्रीय विकास का आधार, सामाजिक परिवर्तन के उपकरण और व्यक्तिगत सशक्तिकरण के लिए एक महत्वपूर्ण मार्ग के रूप में माना जाता है। भारत में, शिक्षा और संविधान के बीच संबंध गहराई से जुड़े हुए हैं जो अपने सभी नागरिकों को न्यायसंगत और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए राष्ट्र की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। 1950 में अपनाए गए भारत के संविधान में ऐसे कई प्रावधान हैं जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा क्षेत्र को प्रभावित करते हैं और देश के शैक्षिक परिदृश्य को आकार देते हैं। यह लेख शिक्षा से संबंधित संवैधानिक ढांचे की

पड़ताल करता है, प्रमुख लेखों, उनके ऐतिहासिक संदर्भ और वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में उनके महत्व की जांच करता है।

मौलिक अधिकार के रूप में शिक्षा

भारतीय शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण संवैधानिक विकासों में से एक शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देना है। यह 86वें संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा अनुच्छेद 21ए की शुरूआत के माध्यम से महसूस किया गया था जो राज्य को छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का आदेश देता है। इस संशोधन ने भारतीय शिक्षा नीति में एक महत्वपूर्ण क्षण को चिह्नित किया जो शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच के महत्व को रेखांकित करता है।

शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009 के माध्यम से अनुच्छेद 21ए के संचालन ने इस प्रतिबद्धता को और मजबूत किया। शिक्षा का अधिकार अधिनियम स्कूलों के लिए मानदंड और मानक निर्धारित करता है, सरकार की जिम्मेदारियों को रेखांकित करता है और यह सुनिश्चित करता है कि वंचित पृष्ठभूमि के बच्चे वित्तीय या सामाजिक बाधाओं के कारण शिक्षा से वंचित न रहें। यह अधिनियम अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और दिव्यांग बच्चों जैसे हाशिए के समूहों को शामिल करने का भी आदेश देता है, जिससे एक समावेशी शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा मिलता है (Kumar, 2010)। हालांकि, आरटीई अधिनियम के कार्यान्वयन को अपर्याप्त बुनियादी ढांचे, प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी और विभिन्न क्षेत्रों और सामाजिक-आर्थिक समूहों में शैक्षिक परिणामों में असमानताओं सहित चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। इन चुनौतियों के बावजूद, यह अधिनियम सार्वभौमिक शिक्षा के संवैधानिक जनादेश को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम रहा है (कुमार, 2010).

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत और शिक्षा

भारतीय संविधान, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों के तहत सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने में राज्य के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करता है। ये सिद्धांत, हालांकि गैर-न्यायोचित हैं तथा राज्य की शैक्षिक जिम्मेदारियों के लिए एक ढांचा प्रदान करते हैं। प्रारंभ में संविधान में निहित अनुच्छेद 45 ने राज्य को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया। हालाँकि इस प्रावधान में अनुच्छेद 21ए को शामिल करके हटा दिया गया था, लेकिन इसने शिक्षा में राज्य की भूमिका के लिए मूलभूत दर्शन को स्थापित किया। अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और समाज के अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए राज्य की जिम्मेदारी पर जोर देता है। यह प्रावधान शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण और लक्षित छात्रवृत्ति कार्यक्रमों सहित विभिन्न सकारात्मक कार्य नीतियों का आधार रहा है जिसका उद्देश्य शैक्षिक असमानताओं को कम करना और सामाजिक समावेश को बढ़ावा देना है (शर्मा, 2012).

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

भारतीय संविधान देश की समृद्ध विविधता को पहचानते हुए अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की भी रक्षा करता है। अनुच्छेद 29 एक अलग भाषा, लिपि या संस्कृति वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग को इसे संरक्षित करने की अनुमति देकर अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करता है। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करता है कि अल्पसंख्यक समूह शिक्षा के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित कर सकें।

इसी तरह, अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है। यह अधिकार अल्पसंख्यक समुदायों की भाषाई और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने, उन्हें अपनी भाषाओं में और अपनी सांस्कृतिक प्रथाओं के अनुसार शिक्षा प्रदान करने में सक्षम बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में इन अधिकारों को बरकरार रखते हुए इस बात पर जोर दिया है कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान भारत के बहुलवादी ताने-बाने को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (बसु, 2010).

शिक्षा और सामाजिक न्याय

शिक्षा से संबंधित संवैधानिक प्रावधान सामाजिक न्याय के सिद्धांतों में गहराई से निहित हैं। संविधान निर्माताओं ने सामाजिक असमानताओं को दूर करने और हाशिए पर पड़े समुदायों को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा को एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में मान्यता दी। यह दृष्टि उन विभिन्न अनुच्छेदों में स्पष्ट है जो राज्य को वंचित समूहों के शैक्षिक हितों को बढ़ावा देने के लिए सकारात्मक कार्रवाई करने का आदेश देते हैं।

अनुच्छेद 15 (4) और 15 (5) राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है। इन प्रावधानों ने शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण नीतियों के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और यह सुनिश्चित किया है कि इन समुदायों की उच्च शिक्षा और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों तक पहुंच हो।

इसके अलावा, 86वें संशोधन द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद 51ए (के), माता-पिता या अभिभावकों पर यह कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वे छह से चौदह वर्ष की आयु के बीच के अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करें। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करने में राज्य और समाज दोनों की सामूहिक जिम्मेदारी को दर्शाता है कि प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्त हो।

न्यायपालिका की भूमिका

भारतीय न्यायपालिका ने शिक्षा से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के दायरे की व्याख्या और विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्नी कृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993) मामले जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों ने शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने का मार्ग प्रशस्त किया है। इस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि शिक्षा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में निहित है (भट, 2004).

न्यायपालिका अनुच्छेद 30 के तहत गारंटी के अनुसार शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के लिए अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने में भी सक्रिय रही है। अदालतों ने अल्पसंख्यक संस्थानों की स्वायत्तता को लगातार बरकरार रखा है और यह सुनिश्चित किया है कि वे राज्य के अनुचित हस्तक्षेप के बिना काम कर सकें (बसु, 2010).

न्यायिक व्याख्या और शिक्षा के दायरे का विस्तार

भारतीय न्यायपालिका ने शिक्षा से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के दायरे की व्याख्या और विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से न्यायालयों ने नागरिकों के मौलिक अधिकारों को साकार करने में शिक्षा के महत्व को मजबूत किया है।

उन्नी कृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993)

उन्नी कृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993) के ऐतिहासिक मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि शिक्षा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में निहित है। इस निर्णय ने अनुच्छेद 21ए को शामिल करने और उसके बाद शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के अधिनियमन के लिए आधार तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। (भट, 2004).

टी. एम. ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002)

टी. एम. ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) मामला एक अन्य महत्वपूर्ण निर्णय है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 30 के तहत शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के लिए अल्पसंख्यकों के अधिकारों की जांच की। न्यायालय ने कहा कि अल्पसंख्यक संस्थानों को अपने मामलों को प्रशासित करने का अधिकार है लेकिन राज्य यह सुनिश्चित करने के लिए उचित नियम लागू कर सकता है कि ये संस्थान जनता की भलाई के लिए काम करें। यह निर्णय नियामक निरीक्षण की आवश्यकता के साथ अल्पसंख्यक संस्थानों की स्वायत्तता को संतुलित करने में महत्वपूर्ण रहा है (बसु, 2010)।

पी. ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005)

पी. ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) के तहत उच्चतम न्यायालय ने निजी गैर-सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण के मुद्दे को संबोधित किया। अदालत ने फैसला सुनाया कि राज्य अल्पसंख्यक संस्थानों के मामले को छोड़कर निजी गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों पर आरक्षण नहीं लगा सकता है। यह फैसला राज्य की सकारात्मक कार्रवाई नीतियों और निजी शैक्षणिक संस्थानों की स्वायत्तता के बीच तनाव को उजागर करता है।

संवैधानिक अधिदेशों को लागू करने में चुनौतियां

यद्यपि भारतीय संविधान शिक्षा के लिए एक मजबूत ढांचा प्रदान करता है फिर भी इसके प्रावधानों के कार्यान्वयन को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ये चुनौतियां प्रणालीगत और संरचनात्मक दोनों हैं जो शिक्षा के संवैधानिक लक्ष्य की प्राप्ति को प्रभावित करती हैं।

शिक्षा से संबंधित संवैधानिक जनादेश को लागू करने में प्राथमिक चुनौतियों में से एक अपर्याप्त वित्त है। शिक्षा के लिए संसाधनों का आवंटन ऐतिहासिक रूप से अनुशंसित स्तरों से नीचे रहा है जो शिक्षा की गुणवत्ता और अपने संवैधानिक दायित्वों को पूरा करने की राज्य की क्षमता को प्रभावित करता है। पर्याप्त बुनियादी ढांचे की कमी, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, इन चुनौतियों को और बढ़ा देती है, जिससे शैक्षिक परिणामों में असमानता पैदा होती है (मुखर्जी, 2019).

शिक्षा की गुणवत्ता भी एक महतवपूर्ण सरोकार है जिसे सम्बोधित करने की आवश्यकता है। शिक्षा तक सभी वर्गों की पहुंच में काफी सुधार हुआ है, लेकिन फिर भी शिक्षा की गुणवत्ता एक प्रमुख चिंता का विषय बनी हुई है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के साथ-साथ निजी और सरकारी स्कूलों के बीच शैक्षिक गुणवत्ता में असमानताएं शिक्षा प्रणाली में असमानताओं को कायम रखती हैं। पुस्तकीय ज्ञान पर ध्यान केंद्रित करना और आलोचनात्मक सोच और समस्या समाधान कौशल पर जोर देने की कमी भी संविधान के लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधाएं हैं।

अतः भारत का संविधान एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की मजबूत नींव रखता है जो समानता, समावेशिता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है। विभिन्न अनुच्छेदों और संशोधनों के माध्यम से यह एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की कल्पना

करता है जो सभी नागरिकों, विशेष रूप से हाशिए के समुदायों के लोगों को सशक्त बनाती है और राष्ट्र की सांस्कृतिक विविधता को संरक्षित करती है। हालांकि शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन यह सुनिश्चित करने में चुनौतियां बनी हुई हैं कि संवैधानिक जनादेश पूरी तरह से साकार हो। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, असमानताओं को दूर करने और संविधान में निहित अधिकारों को बनाए रखने के लिए चल रहे प्रयास अधिक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं।

भारत में शैक्षिक नीतियों का विकास

भारत की शैक्षिक नीतियां स्वतंत्रता के बाद महत्वपूर्ण रूप से विकसित हुई हैं, जो बदलते सामाजिक-आर्थिक संदर्भ और राष्ट्र की आकांक्षाओं को दर्शाती हैं। पहली प्रमुख नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) 1968, कोठारी आयोग (1964-66) की सिफारिशों का परिणाम थी, जिसने पूरे देश में एक मानकीकृत शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता पर जोर दिया था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 ने भारतीय शिक्षा के आधुनिकीकरण की नींव रखी जिसमें शैक्षिक अवसरों को बराबर करने और भारतीय भाषाओं के अध्ययन को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया ।

दूसरी प्रमुख नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का उद्देश्य शिक्षा क्षेत्र में उभरती चुनौतियों का समाधान करना था। इसने असमानताओं को दूर करने, महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा को बढ़ावा देने और अनुसंधान और नवाचार की संस्कृति को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया। इस नीति को बाद में 1992 में विकेंद्रीकरण, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार और व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देने के उपायों को शामिल करने के लिए संशोधित किया गया था ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में परिवर्तन शिक्षा के प्रति भारत के दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण बदलाव को दर्शाया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को तेजी से बदलते वैश्विक और तकनीकी परिदृश्य से उत्पन्न नई चुनौतियों का जवाब देते हुए पिछली नीतियों के अंतराल और कमियों को दूर करने के लिए तैयार किया गया है। इसका उद्देश्य एक लचीली, बहु-विषयक शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना है जो आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक संक्षिप्त विवरण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक व्यापक नीतिगत दस्तावेज है जो भारत की शिक्षा प्रणाली को बदलने के दृष्टिकोण को रेखांकित करता है। यह पहुंच, समानता, गुणवत्ता, सामर्थ्य और जवाबदेही के मूलभूत स्तंभों पर बनाया गया है। इस नीति का उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना है जो छात्रों को वैश्वीकृत दुनिया में फलने-फूलने के लिए तैयार करते हुए भारतीय लोकाचार में गहराई से निहित हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को संक्षेप में समझने के लिए निम्नलिखित पहलुओं पर गौर करने की आवश्यकता है:

प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई): राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बच्चे के विकास में शुरुआती वर्षों के महत्व को पहचानती है और एक मजबूत प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा के ढांचे की आवश्यकता पर जोर देती है। यह प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा के सार्वभौमिकरण और औपचारिक विद्यालय प्रणाली में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के एकीकरण का प्रस्ताव करता है। यह नीति समग्र विकास को बढ़ावा देने के लिए छोटे बच्चों के लिए एक खेल-आधारित, गतिविधि-आधारित और खोज-आधारित पाठ्यक्रम की सिफारिश करती है ।

स्कूली शिक्षाः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पारंपरिक 10+2 संरचना से 5+3 + 3+4 संरचना में बदलाव का प्रस्ताव करती है, जो बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के चरणों से मेल खाती है। इस नई संरचना में पाँच साल की मूलभूत शिक्षा, तीन साल की प्रारंभिक शिक्षा, तीन साल की मध्य शिक्षा और चार साल की माध्यमिक शिक्षा शामिल है। यह नीति अनुभवात्मक शिक्षा, कक्षा 6 से व्यावसायिक शिक्षा को शामिल करने और मुख्य अवधारणाओं पर ध्यान केंद्रित करने के लिए पाठ्यक्रम की सामग्री में कमी पर जोर देती है (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020).

उच्च शिक्षाः इस नीति में 2035 तक सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) को 50% तक बढ़ाने के उद्देश्य से उच्च शिक्षा प्रणाली में पूर्ण बदलाव की परिकल्पना की गई है। यह बहु-विषयक संस्थानों की स्थापना, एकल-धारा वाले कॉलेजों को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने और एक लचीले पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन को बढ़ावा देता है जो विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों में विषय चुनने की अनुमति देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उच्च शिक्षा संस्थानों में एक मजबूत अनुसंधान संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए एक राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (एनआरएफ) की स्थापना की भी वकालत करता है (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020)।

व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षणः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली में व्यावसायिक शिक्षा के एकीकरण पर जोर देती है। इसका उद्देश्य 2025 तक कम से कम 50% छात्रों को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना है जिससे यह पाठ्यक्रम का एक महत्वपूर्ण घटक बन जाएगा। नीति में स्कूल स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की स्थापना का भी प्रस्ताव है। यह इसे भी सुनिश्चित करता है कि छात्र व्यावहारिक कौशल हासिल करें और आर्थिक स्वावलम्बन की दिशा में आगे बढ़े।

शिक्षक शिक्षाः विद्यार्थियों के भविष्य को आकार देने में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षक शिक्षा और व्यावसायिक विकास में सुधारों का प्रस्ताव है। यह चार साल के एकीकृत बी. एड. की सिफारिश करता है। इच्छुक शिक्षकों के लिए कार्यक्रम और सेवाकालीन शिक्षकों के लिए निरंतर व्यावसायिक विकास के अवसर। यह नीति शिक्षकों को नवीनतम शैक्षणिक प्रथाओं से अच्छी तरह वाकिफ होने और शिक्षण के लिए छात्र-केंद्रित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर भी जोर देती है।

शिक्षा में प्रौद्योगिकी एकीकरणः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा में प्रौद्योगिकी की परिवर्तनकारी क्षमता को स्वीकार करती है। यह शिक्षण और सीखने की प्रक्रियाओं को बढ़ाने, शिक्षा तक पहुंच में सुधार और प्रशासनिक कार्यों को सुव्यवस्थित करने के लिए प्रौद्योगिकी के उपयोग का प्रस्ताव करता है। यह नीति शिक्षा में प्रौद्योगिकी के उपयोग में विचारों और सर्वोत्तम प्रथाओं के आदान-प्रदान की सुविधा के लिए एक राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच (एनईटीएफ) की स्थापना की सिफारिश करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का संवैधानिक मूल्यों के साथ संरेखण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 समानता, न्याय और समावेशिता के संवैधानिक मूल्यों में गहराई से निहित है। सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक समान पहुंच प्रदान करने पर नीति का जोर, चाहे उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो, सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के संवैधानिक जनादेश के अनुरूप है।

बहुभाषावाद पर नीति का ध्यान संवैधानिक मूल्यों के साथ इसके संरेखण का एक और प्रतिबिंब है। शिक्षा के शुरुआती वर्षों में शिक्षा के माध्यम के रूप में क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देकर, एनईपी 2020 का उद्देश्य भारत की

भाषाई विविधता को संरक्षित और बढ़ावा देना है। यह दृष्टिकोण संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुरूप है, जो अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और भाषाई अधिकारों की रक्षा करता है (बसु, 2010).

एनईपी 2020 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और विकलांग बच्चों सहित हाशिए पर पड़े समुदायों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने की आवश्यकता को पहचानते हुए समावेशी शिक्षा पर भी जोर देता है। नीति में यह सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न उपायों का प्रस्ताव किया गया है कि इन छात्रों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच हो जिसमें लक्षित छात्रवृत्ति, समावेशी बुनियादी ढांचा और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम शामिल हैं राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020).

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की चुनौतियां और समीक्षा

जहां राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को इसकी व्यापक दृष्टि के लिए व्यापक रूप से सराहा गया है वहीं इसे कई मोर्चों पर आलोचना का भी सामना करना पड़ा है। प्राथमिक चिंताओं में से एक शैक्षिक शासन का केंद्रीकरण है जो कुछ लोगों का तर्क है कि संविधान के संघीय ढांचे को कमजोर करता है। शिक्षा समवर्ती सूची में एक विषय है, जिसका अर्थ है कि केंद्र और राज्य दोनों सरकारों के पास इस पर कानून बनाने का अधिकार है। आलोचकों का तर्क है कि नीति-निर्माण का केंद्रीकरण और राष्ट्रीय उच्च शिक्षा नियामक प्राधिकरण (एन एच ई आर ए) जैसे राष्ट्रीय निकायों की स्थापना स्थानीय जरूरतों के अनुसार शिक्षा को आकार देने में राज्य सरकारों की स्वायत्तता को कम कर सकती है (यादव, 2020).

एक अन्य चुनौती नीति का कार्यान्वयन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा प्रस्तावित महत्वाकांक्षी सुधारों के लिए पर्याप्त वित्तीय निवेश, बुनियादी ढांचे के विकास और क्षमता निर्माण के प्रयासों की आवश्यकता है। हालांकि, संसाधनों की उपलब्धता और इन परिवर्तनों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए शिक्षा प्रणाली की तैयारी के बारे में चिंता जताई गई है (जैन, 2020).

इस नीति के निजीकरण और शिक्षा में निजी परोपकारी भागीदारी को बढ़ावा देने की भी आलोचना की गई है। कुछ विद्वानों का तर्क है कि इससे शिक्षा का व्यावसायीकरण बढ़ सकता है, असमानता बढ़ सकती है और सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली कमजोर हो सकती है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का संभावित प्रभाव

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय शिक्षा प्रणाली में अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों में महत्वपूर्ण बदलाव लाने की क्षमता है। अल्पावधि में, मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता, पाठ्यक्रम सुधारों और शिक्षक शिक्षा पर नीति के ध्यान से प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होने की उम्मीद है। लंबी अवधि में बहु-विषयक शिक्षा, अनुसंधान और व्यावसायिक प्रशिक्षण पर नीति का जोर भारत के उच्च शिक्षा परिदृश्य को बदल सकता है जिससे यह वैश्विक अर्थव्यवस्था की जरूरतों के लिए अधिक लचीला, अभिनव और उत्तरदायी बन सकता है। समानता और समावेश पर ध्यान केंद्रित करने से एक अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी शिक्षा प्रणाली भी बन सकती है, जहां सभी पृष्ठभूमि के छात्रों को सफल होने के समान अवसर मिलते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा प्रस्तावित शैक्षिक शासन और प्रशासन में बदलाव, जैसे कि भारतीय उच्च शिक्षा आयोग (एचईसीआई) की स्थापना से नियामक कार्यों को सुव्यवस्थित करने, जवाबदेही में सुधार करने और भारत में शिक्षा की समग्र गुणवत्ता में वृद्धि होने की उम्मीद है।

भविष्य की संभावनाएं और सिफारिशें

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा प्रणाली को बदलने के लिए एक मजबूत नींव रखता है लेकिन इसकी सफलता प्रभावी कार्यान्वयन पर निर्भर करेगी। सरकार के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि पर्याप्त संसाधन आवंटित किए जाएं और सुधारों की प्रगति की निगरानी और मूल्यांकन के लिए मजबूत तंत्र बनाए जाएं। संघवाद की चुनौतियों से निपटने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि नीति विभिन्न क्षेत्रों की विविध आवश्यकताओं के अनुकूल हो, केंद्र और राज्य सरकारों के बीच अधिक सहयोग की भी आवश्यकता है।

इसके अलावा, सरकार को शिक्षा में सार्वजनिक निवेश को प्राथमिकता देनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निजीकरण शिक्षा प्रणाली की पहुंच और समानता को कमजोर न करे। सार्वजनिक शिक्षा संस्थानों को मजबूत करना और सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच का विस्तार करना सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए।

सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास और राष्ट्रीय एकता के लिए एक उपकरण के रूप में शिक्षा पर भारतीय संविधान का जोर उन विभिन्न प्रावधानों में परिलक्षित होता है जो राज्य को सभी नागरिकों के लिए शिक्षा तक पहुंच प्रदान करने का आदेश देते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस संवैधानिक नींव पर आधारित है जिसमें 21वीं सदी की मांगों को पूरा करने वाली अधिक समावेशी, न्यायसंगत और लचीली शिक्षा प्रणाली बनाने के लिए व्यापक सुधारों का प्रस्ताव किया गया है। जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय शिक्षा प्रणाली को बदलने की क्षमता है, इसकी सफलता प्रभावी कार्यान्वयन, पर्याप्त संसाधन आवंटन और सामाजिक न्याय और समावेश को बढ़ावा देने के लिए सरकार की निरंतर प्रतिबद्धता पर निर्भर करेगी। जैसे-जैस कि भारत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का कार्यान्वयन हो रहा है, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि शिक्षा प्रणाली समानता, न्याय और समावेशिता के संवैधानिक मूल्यों के साथ संरेखित रहे जिससे सभी नागरिकों के लिए एक उज्जवल और अधिक समृद्ध भविष्य का मार्ग प्रशस्त हो।

संदर्भ सूची

1. कुमार, आर. (2010). शिक्षा का अधिकार अधिनियमः चुनौतियां और आगे का रास्ता। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 45 (13) 19-23.
2. गोहेन, एम. (2011). बच्चों का मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009: एक महत्वपूर्ण विश्लेषण। शैक्षिक नीति का जर्नल, 8 (3) 234-245।
3. जैन, एम. (2020). एनईपी 2020 को लागू करने में वित्तीय चुनौतियां आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 55 (34) 45-52.
4. दुबे, एस. सी. (2005). भारतीय समाज। नेशनल बुक ट्रस्ट।
5. बसु, डी. डी. (2010). भारत के संविधान का परिचय (20th ed.). लेक्सिसनेक्सिस।
6. भट, पी. आई. (2004). मौलिक अधिकारः उनके परस्पर संबंध का अध्ययन। ईस्टर्न बुक कंपनी।

7. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1992). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (As Modified in 1992). भारत सरकार।
8. मुखर्जी, डी. (2019). भारत में स्कूली शिक्षा की गुणवत्ताः विश्लेषण और साक्ष्य। इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 65 (3) 541-555।
9. यादव, के. (2020). संघवाद और शिक्षाः एनईपी 2020 को लागू करने की चुनौतियां। जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, 46 (1) 67-78।
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (2020). शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
11. शर्मा, ए. (2012). सकारात्मक कार्रवाई नीतियाँ और भारतीय शिक्षाः कुछ प्रतिबिंब। सामाजिक परिवर्तन, 42 (4) 445-462।
12. शिक्षा मंत्रालय (1968). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 भारत सरकार।

41

सशक्तिकरण के लिए एक उपकरण के रूप में शिक्षा: संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. पतंजलि मिश्र

सह-आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, कला संकाय, सिनेट कैम्पस, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शिक्षा को विश्व स्तर पर मौलिक मानव अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है| यह व्यक्तिगत सशक्तिकरण और सामाजिक विकास का केंद्र है। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा-1948 के अनुच्छेद 26 में यह घोषणा करती है कि सभी को शिक्षा का अधिकार है और प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य होगी। शिक्षा न केवल व्यक्तिगत सुधार का माध्यम है बल्कि समुदायों और राष्ट्रों में समानता, सामाजिक गतिशीलता और विकास को बढ़ावा देने की नींव के रूप में भी कार्य करती है (संयुक्त राष्ट्र, 1948)। जैसा कि अमर्त्य सेन (1999) ने विकास को स्वतंत्रता के रूप में व्याख्यायित किया है शिक्षा व्यक्तिगत क्षमताओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इस प्रकार लोगों को समाज में पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम बनाती है।

शिक्षा का महत्व व्यक्तिगत विकास से कहीं आगे तक विस्तारित है; यह सामाजिक प्रगति की आधारशिला के रूप में भी कार्य करता है। सुशिक्षित व्यक्ति अपने समुदायों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में योगदान देते हैं जिससे समग्र राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा मिलता है। शिक्षा और राष्ट्रीय विकास के बीच संबंध अच्छी तरह से प्रलेखित है क्योंकि उच्च शैक्षिक उपलब्धि वाले राष्ट्र आमतौर पर बेहतर सामाजिक-आर्थिक परिणाम, कम गरीबी दर और मजबूत लोकतांत्रिक शासन का अनुभव करते हैं (हानुशेक और वोसमैन, 2015)।

भारत में शिक्षा का ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ

भारत में शिक्षा का इतिहास वृहद एवं जटिल है जिसे जाति, लिंग और सामाजिक-आर्थिक स्थिति सहित विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों ने निर्मित किया है। ब्रिटिश शासन के आगमन के पूर्व भारत की शिक्षा प्रणाली काफी हद तक देशज परंपराओं द्वारा प्रभावित थी। गुरुकुल और पाठशालाएँ शिक्षा के प्राथमिक संस्थान थे। ये केंद्र न केवल धार्मिक और दार्शनिक ज्ञान प्रदान करते थे बल्कि गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा और विभिन्न व्यावहारिक कौशल की शिक्षा भी प्रदान करते थे। शिक्षा प्रणाली विकेंद्रीकृत और काफी हद तक मौखिक थी, जिसमें शिक्षकों (गुरुओं) को महत्वपूर्ण सामाजिक स्थिति प्राप्त थी (शर्मा और शर्मा, 2013)।

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारत में शिक्षा के आधुनिकीकरण के कुछ प्रयास देखे गए, विशेषकर अंग्रेजी भाषा की शिक्षा और पश्चिमी शैली के स्कूलों की शुरुआत के माध्यम से। हालाँकि, ये प्रयास काफी हद तक शहरी क्षेत्रों और विशिष्ट समूहों तक ही सीमित थे, जिससे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच असमानताएँ और भी गहरी हो गईं (बसु,

1982)। इस अवधि के दौरान महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच भी अत्यधिक प्रतिबंधित थी, साथ ही सामाजिक मानदंडों और पितृसत्तात्मक संरचनाओं ने भी महिला शिक्षा को हतोत्साहित किया।

स्वतंत्रता के बाद, भारत सरकार ने इन शैक्षिक असमानताओं को दूर करने की आवश्यकता को पहचाना। मध्याह्न भोजन योजना, आरक्षण नीतियों की शुरूआत और मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को बढ़ावा देने जैसी पहल का उद्देश्य जाति और सामाजिक-आर्थिक आधार पर शैक्षिक विभाजन को कम करना था। हालाँकि, इन प्रयासों के बावजूद चुनौतियाँ बनी हुई हैं, खासकर लड़कियों और हाशिए पर रहने वाले समूहों के लिए, जिन्हें गरीबी, बाल श्रम, कम उम्र में शादी और भेदभाव जैसी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है (रामचंद्रन, 2009)। गांधी और अम्बेडकर ने शिक्षा के प्रति भारत के दृष्टिकोण को गहरे तक प्रभावित किया है। गांधी की नई तालीम की परिकल्पना, हालांकि पूरी तरह से साकार नहीं हुई, लेकिन खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक शिक्षा में विभिन्न प्रयोगों को प्रेरित किया। शैक्षिक समानता पर अम्बेडकर के बल ने दलितों, आदिवासियों और अन्य वंचित समूहों के ऐतिहासिक बहिष्कार को संबोधित करने के उद्देश्य से नीतियों का निर्माण किया। संविधान में उल्लिखित शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों में आरक्षण नीतियां, इन प्रयासों का प्रत्यक्ष परिणाम थीं (ऑस्टिन, 2003)।

शिक्षा और भारतीय संविधान: सशक्तिकरण का एक उपकरण

भारतीय संविधान, सामाजिक परिवर्तन और सशक्तिकरण के साधन के रूप में शिक्षा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संविधान निर्माताओं ने भेदभाव और अन्याय से मुक्त एक समतापूर्ण और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा। यह दृष्टिकोण संविधान के कई प्रावधानों में अंतर्निहित है, विशेष रूप से राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों और मौलिक अधिकारों में यह अंतर्निहित है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21ए, 2002 के 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा सम्मिलित किया गया, 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार की गारंटी देता है। यह कानूनी प्रावधान भारत में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था और शैक्षिक पहुंच और गुणवत्ता (आरटीई अधिनियम, 2009) में सुधार के लिए राज्य की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। इसके अलावा, सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने पर संविधान का जोर सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative action)से संबंधित प्रावधानों में स्पष्ट है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 15(4) और 46, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के साथ-साथ अल्पसंख्यकों सहित सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधानों को अनिवार्य करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि हाशिए पर रहने वाले समूह शैक्षिक परिदृश्य में पीछे न रहें (ऑस्टिन, 2003)।

इसके अलावा, भारत में शिक्षा को व्यक्तिगत और सामूहिक सशक्तिकरण के साधन के रूप में भी तैयार किया गया है। शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009, जिसने अनुच्छेद 21ए को क्रियान्वित किया, न केवल साक्षरता और संख्यात्मक कौशल प्रदान करने में बल्कि नागरिकों के बीच समानता, भाईचारे और सम्मान की भावना को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका को रेखांकित करता है (आरटीई अधिनियम, 2009)। यह अधिनियम स्कूलों में गैर-भेदभाव को अनिवार्य बनाता है, इस प्रकार इसका लक्ष्य सामाजिक बाधाओं को तोड़ना और शिक्षा के माध्यम से वंचित समूहों को सशक्त बनाना है।

संवैधानिक प्रावधान और शिक्षा का अधिकार

भारतीय संविधान ने विविध प्रावधानों और उसके बाद के संशोधनों के माध्यम से, शिक्षा को एक मौलिक अधिकार और विशेष रूप से हाशिए वाले समुदायों के लिए सामाजिक न्याय, समानता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के साधन के रूप में मजबूती से स्थापित किया है। संविधान शिक्षा के महत्व को न केवल व्यक्तिगत अधिकार के रूप में बल्कि राष्ट्रीय विकास और सामाजिक परिवर्तन के एक उपकरण के रूप में भी देखता है।

अनुच्छेद 21ए: शिक्षा का अधिकार

2002 में 86वें संशोधन के माध्यम से पेश किए गए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21ए ने 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाकर भारत के शैक्षिक परिदृश्य में एक ऐतिहासिक क्षण को चिह्नित किया। इस संशोधन ने शिक्षा को संविधान के मौलिक अधिकार अनुभाग के तहत एक प्रवर्तनीय अधिकार के रूप में स्थापित किया, जिससे राज्य को इस आयु वर्ग के सभी बच्चों को शिक्षा तक पहुंच प्रदान करने के लिए बाध्य किया गया। अनुच्छेद 21ए का सम्मिलन देश भर में शैक्षिक पहुंच और गुणवत्ता में सुधार लाने के उद्देश्य से दशकों के प्रयासों की परिणति था (बसु, 2016)।

शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009, अनुच्छेद 21ए को क्रियान्वित करने और मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार की व्यावहारिक प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। आरटीई अधिनियम कहता है कि 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को वित्तीय बाधाओं के बिना स्कूल जाने का अधिकार है। यह राज्य और निजी शिक्षण संस्थानों पर सभी बच्चों को उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना प्रवेश देने और समान शिक्षा प्रदान करने का दायित्व भी डालता है। यह अधिनियम देश भर में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए बुनियादी ढांचे, शिक्षक-छात्र अनुपात और न्यूनतम शिक्षण मानकों के लिए मानदंड निर्धारित करता है (शर्मा, 2013)।

अनुच्छेद 21ए के माध्यम से सशक्तिकरण:

अनुच्छेद 21ए ने शिक्षा की सामर्थ्य, भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार जैसी प्रमुख बाधाओं को दूर करके हाशिए पर रहने वाले समुदायों को सशक्त बनाया है। प्रावधान यह सुनिश्चित करता है कि आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि, अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और अन्य हाशिए पर रहने वाले समूहों के बच्चे अन्य बच्चों के साथ समान स्तर पर शिक्षा प्राप्त कर सकें। आरटीई अधिनियम स्कूलों को जाति, लिंग, धर्म या सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर बच्चों के खिलाफ भेदभाव करने से रोकता है, जिससे शिक्षा प्रणाली के भीतर अधिक समावेशिता को बढ़ावा मिलता है। कई बच्चों के लिए, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समूहों के बच्चों के लिए, यह संवैधानिक अधिकार ऊर्ध्वगामी गतिशीलता और सामाजिक सशक्तिकरण के अवसर का प्रतिनिधित्व करता है (अग्रवाल, 2015)।

अनुच्छेद 15 और 16: भेदभाव का निषेध और समानता

भारतीय संविधान में कई प्रावधान शामिल हैं जो शिक्षा तक पहुंच में भेदभाव के निषेध और समानता के सिद्धांत को बढ़ावा देते हैं। अनुच्छेद 15 और 16 विशेष रूप से भेदभाव को संबोधित करते हैं और शैक्षिक संस्थानों में सकारात्मक कार्रवाई और आरक्षण के माध्यम से समानता को आगे बढ़ाने का लक्ष्य रखते हैं।

अनुच्छेद 15(3): महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान

अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। हालाँकि, अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है, यह मानते हुए कि इन समूहों को ऐतिहासिक रूप से संरचनात्मक नुकसान का सामना करना पड़ा है, जिसमें शिक्षा तक सीमित पहुंच भी शामिल है। यह प्रावधान महिलाओं और लड़कियों की शैक्षिक उन्नति को बढ़ावा देने वाली नीतियों को सक्षम करने में सहायक रहा है, जैसे शैक्षिक संस्थानों में सीटों का आरक्षण और छात्राओं के लिए छात्रवृत्ति। महिलाओं और बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को लक्षित करके, अनुच्छेद 15(3) शिक्षा में लिंग-आधारित असमानताओं को संबोधित करने और लैंगिक समानता को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है (ऑस्टिन, 2003)।

अनुच्छेद 16(4): सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण

अनुच्छेद 16(4) राज्य को एससी और एसटी सहित सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक रोजगार में सीटों के आरक्षण के लिए प्रावधान करने की अनुमति देता है। यह प्रावधान इन समुदायों को शिक्षा और रोजगार के अवसरों तक पहुंच की गारंटी देकर उनके द्वारा सामना किए गए ऐतिहासिक अन्याय का निवारण करना चाहता है, जो पहले जाति-आधारित भेदभाव के कारण उन्हें वंचित कर दिया गया था। आरक्षण की नीति न्यायसंगत समाज बनाने और यह सुनिश्चित करने के लिए भारत के प्रयासों की आधारशिला रही है कि हाशिए पर रहने वाले समुदायों को विशेष रूप से तृतीयक स्तर पर शैक्षणिक संस्थानों तक समान पहुंच प्राप्त हो (जाफ़रलॉट, 2005)।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत: अनुच्छेद 41, 45 और 46

संविधान के भाग IV में निहित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत, व्यापक सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक लक्ष्य निर्धारित करते हैं जिन्हें राज्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। हालाँकि ये सिद्धांत गैर-न्यायसंगत हैं, अर्थात इन्हें किसी अदालत में लागू नहीं किया जा सकता है, फिर भी ये शिक्षा से संबंधित कानूनों और नीतियों के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में काम करते हैं।

अनुच्छेद 45: नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान

मूल रूप से, संविधान के अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि राज्य को संविधान के प्रारंभ से 10 वर्ष की अवधि के भीतर 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। जबकि राज्य निर्दिष्ट समयसीमा के भीतर इस महत्वाकांक्षी लक्ष्य को पूरा करने में असमर्थ था, अनुच्छेद 45 ने भविष्य के शैक्षिक सुधारों की नींव रखी, जिसमें अनुच्छेद 21ए की शुरूआत भी शामिल थी। मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना व्यक्तिगत और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की मौलिक भूमिका की राज्य की मान्यता को दर्शाता है (ऑस्टिन, 2003)।

अनुच्छेद 46: अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देना

अनुच्छेद 46 राज्य को एससी, एसटी और समाज के अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने और उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाने का निर्देश देता है। यह लेख हाशिए पर रहने वाले समुदायों के शैक्षिक परिणामों में सुधार लाने के उद्देश्य से सकारात्मक कार्रवाई नीतियों की एक श्रृंखला का

आधार रहा है। सरकार ने एससी, एसटी और अन्य वंचित समूहों की शैक्षिक उन्नति को बढ़ावा देने के लिए शैक्षणिक संस्थानों में विशेष छात्रवृत्ति, आवासीय विद्यालय और आरक्षण नीतियां लागू की हैं (शर्मा, 2013)।

मार्गदर्शक शैक्षिक नीति:

हालांकि निर्देशक सिद्धांतों ने भारत में शैक्षिक नीतियों के विकास को गहराई से प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, 1990 के दशक में शुरू की गई मध्याह्न भोजन योजना का उद्देश्य स्कूल छोड़ने की दर को कम करना और विशेष रूप से गरीब और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार करना है। यह योजना शिक्षा तक पहुंच को बढ़ावा देकर और उन सामाजिक-आर्थिक बाधाओं को दूर करके अनुच्छेद 45 और 46 की भावना को दर्शाती है जो अक्सर बच्चों को स्कूल जाने से रोकती हैं (जाफ़रलॉट, 2005)। इसी प्रकार, आरक्षण नीतियों के माध्यम से वंचित समूहों के लिए शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के राज्य के प्रयास अनुच्छेद 46 में उल्लिखित सिद्धांतों द्वारा निर्देशित हैं।

भारतीय संविधान ने अनुच्छेद 21ए, अनुच्छेद 15 और 16 और नीति निर्देशक सिद्धांतों जैसे प्रावधानों के माध्यम से सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय के एक उपकरण के रूप में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक मजबूत नींव रखी है। अनुच्छेद 21ए यह सुनिश्चित करता है कि सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा मिले, जबकि अनुच्छेद 15 और 16 विशेष रूप से महिलाओं और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए गैर-भेदभाव और सकारात्मक कार्रवाई को बढ़ावा देते हैं। ये प्रावधान अधिक न्यायसंगत और समावेशी समाज बनाने के साधन के रूप में शिक्षा के संविधान के दृष्टिकोण को दर्शाते हैं।

सशक्तिकरण के लिए एक उपकरण के रूप में शिक्षा: सैद्धांतिक रूपरेखा:-

शिक्षा के माध्यम से सशक्तिकरण: वैचारिक समझ

शिक्षा के माध्यम से सशक्तिकरण का तात्पर्य मनुष्य को दमनकारी संरचनाओं को चुनौती देने और उनकी सामाजिक-राजनीतिक स्थिति में सुधार करने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और महत्वपूर्ण सोच क्षमताओं से लैस करने की प्रक्रिया से है। शिक्षा व्यक्तियों की सूचित विकल्प चुनने की क्षमता को बढ़ाने के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है, जो उन्हें सामाजिक निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने और अपने स्वयं के विकास के साथ-साथ अपने समुदायों में योगदान करने में सक्षम बनाती है। इस संदर्भ में, सशक्तिकरण में विभिन्न आयाम शामिल हैं - बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक - जिनमें से प्रत्येक व्यक्तिगत स्वायत्तता और सामूहिक उन्नति के लिए महत्वपूर्ण है (कबीर, 1999)।

शिक्षा की परिवर्तनकारी भूमिका को समझने में पाउलो फ्रेरे की '*उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र*' विशेष रूप से प्रासंगिक है। फ्रेरे (1970) का तर्क है कि शिक्षा या तो व्यक्तियों को यथास्थिति के अनुरूप बनाने के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य कर सकती है, इस प्रकार मौजूदा शक्ति संरचनाओं को कायम रख सकती है, या महत्वपूर्ण चेतना (विवेकशीलता- conscientização) को बढ़ावा देकर उत्पीड़ितों को मुक्त करने के साधन के रूप में कार्य कर सकती है। फ्रेरे के अनुसार, आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र, हाशिए पर रहने वाले समूहों को उन प्रणालीगत असमानताओं पर सवाल उठाने और चुनौती देने में सक्षम बनाता है जो उनके अवसरों को बाधित करती हैं। भारतीय संदर्भ में, जहां

जाति, लिंग और सामाजिक-आर्थिक स्थिति ऐतिहासिक रूप से शिक्षा तक पहुंच को प्रतिबंधित करती है, यह सैद्धांतिक ढांचा इन पदानुक्रमों को खत्म करने में शिक्षा के महत्व को रेखांकित करता है।

शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता

शिक्षा को लंबे समय से सामाजिक गतिशीलता के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में मान्यता दी गई है, जो वंचित पृष्ठभूमि के व्यक्तियों को गरीबी के चक्र को तोड़ने और उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति प्राप्त करने में सक्षम बनाती है। शिक्षा तक पहुंच रोजगार के अवसरों में वृद्धि, बेहतर वेतन और बेहतर जीवन स्तर से जुड़ी है, जिससे ऊपर की ओर गतिशीलता की सुविधा मिलती है। भारत में, सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका गहरी जड़ें जमा चुकी जाति व्यवस्था और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को संबोधित करने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है (देसाई और कुलकर्णी, 2008)।

केस स्टडी: हाशिए पर रहने वाले समुदायों पर शिक्षा का प्रभाव

केरल जैसे क्षेत्रों में, जहां साक्षरता दर भारत में सबसे अधिक है, सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देने में शिक्षा के लाभ स्पष्ट हैं। निरंतर सरकारी प्रयासों के माध्यम से, विशेष रूप से प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा तक पहुंच प्रदान करने में, दलितों और आदिवासियों सहित वंचित पृष्ठभूमि के समुदायों ने अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में महत्वपूर्ण सुधार देखा है (रामचंद्रन, 2009)। शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण नीतियों जैसी पहल ने हाशिए पर रहने वाले समूहों को सामाजिक और आर्थिक रूप से आगे बढ़ने के अवसर प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

शिक्षा और लैंगिक सशक्तिकरण

शिक्षा को व्यापक रूप से महिलाओं के सशक्तिकरण में एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है, जो उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त करने, निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भाग लेने और पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती देने में सक्षम बनाता है। महिलाओं में शिक्षा का उच्च स्तर बेहतर स्वास्थ्य परिणामों, कम प्रजनन दर और अधिक आर्थिक भागीदारी से जुड़ा है (किंग एंड हिल, 1993)।

बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने वाली नीतियाँ

भारत में महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई नीतियां लागू की गई हैं, जैसे 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान, जिसका उद्देश्य महिला साक्षरता दर में सुधार करना और शिक्षा में लैंगिक असमानताओं को कम करना है। इसके अलावा, छात्रवृत्ति, मुफ्त पाठ्यपुस्तकों और मध्याह्न भोजन के प्रावधान ने विशेष रूप से आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की लड़कियों के लिए नामांकन दर बढ़ाने में मदद की है (चौधरी, 2015)। इन पहलों का महिला साक्षरता दर में सुधार और शिक्षा में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

शिक्षा और राजनीतिक सशक्तिकरण

शिक्षा अधिकारों और जिम्मेदारियों के बारे में अधिक जागरूकता को बढ़ावा देकर राजनीतिक सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में अधिक सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा मिलता है। एक शिक्षित आबादी शासन की जटिलताओं को समझने, नेताओं को जवाबदेह बनाने और नीतिगत बदलावों की वकालत करने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित है। भारत में, शिक्षा हाशिए पर रहने वाले समुदायों के नेताओं और

कार्यकर्ताओं के पोषण में सहायक रही है जो दमनकारी प्रणालियों को चुनौती देते हैं और अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं (जयल, 2008)।

न्यायिक व्याख्याएँ और ऐतिहासिक मामले:-

उन्नी कृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993)

इस ऐतिहासिक मामले में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि शिक्षा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत *"जीवन के अधिकार"* का एक अंतर्निहित हिस्सा है। यह मामला अनुच्छेद 21ए की शुरूआत के लिए आधार तैयार करने में महत्वपूर्ण था, जिसने स्पष्ट रूप से शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी थी। अदालत ने माना कि राज्य का दायित्व है कि वह सभी नागरिकों को शिक्षा प्रदान करे, विशेषकर आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर रहने वाले समूहों के लोगों को (सिंह, 2010)।

मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य (1992)

मोहिनी जैन मामले ने निजी शैक्षणिक संस्थानों द्वारा ली जाने वाली कैपिटेशन फीस के मुद्दे को संबोधित किया। अदालत ने कहा कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग है और शिक्षा सभी के लिए सस्ती और सुलभ होनी चाहिए। इस फैसले ने इस विचार को मजबूत किया कि सामाजिक-आर्थिक कारकों को व्यक्तियों को शिक्षा तक पहुंचने से नहीं रोकना चाहिए, जिससे शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम (धवन, 1992) का मार्ग प्रशस्त हुआ।

टीएमए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002)

इस मामले ने शैक्षिक स्वायत्तता के संदर्भ में अल्पसंख्यक संस्थानों के अधिकारों को संबोधित किया। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि अल्पसंख्यक संस्थानों को संविधान के अनुच्छेद 30 के तहत शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार है। जबकि इस फैसले ने अल्पसंख्यकों के अपने संस्थानों के प्रबंधन के अधिकारों की पुष्टि की, इसने सभी नागरिकों के लिए शैक्षिक समानता सुनिश्चित करने की राज्य की जिम्मेदारी के साथ इन अधिकारों को संतुलित करने के बारे में भी सवाल उठाए (राज, 2002)।

प्रमति एजुकेशनल एंड कल्चरल ट्रस्ट बनाम भारत संघ (2014)

इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि आरटीई अधिनियम अल्पसंख्यक संस्थानों पर लागू नहीं होता है, जिससे उनके मामलों के प्रबंधन के संवैधानिक अधिकार की पुष्टि होती है। यह फैसला राज्य के सशक्तिकरण लक्ष्यों को अल्पसंख्यकों के संवैधानिक अधिकारों के साथ संतुलित करने में महत्वपूर्ण था, क्योंकि इसमें यह सुनिश्चित करने की मांग की गई थी कि शैक्षिक सशक्तिकरण के व्यापक उद्देश्य को बनाए रखते हुए अल्पसंख्यक संस्थानों की स्वायत्तता की रक्षा की जाए (चंद्रचूड़, 2014)।

नीतिगत सुधार और सरकारी पहल:-

शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009

आरटीई अधिनियम का उद्देश्य 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य बनाकर सार्वभौमिक बनाना है। अधिनियम में उचित दूरी के भीतर स्कूलों की स्थापना, भेदभाव पर रोक और सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की गारंटी को अनिवार्य किया गया है। जबकि आरटीई अधिनियम ने नामांकन दरों में

सुधार करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, गुणवत्ता, बुनियादी ढांचे और प्रतिधारण के मामले में चुनौतियां बनी हुई हैं (अग्रवाल, 2015)।

सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए)

2001 में शुरू किया गया, सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) एक प्रमुख कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य भारत में प्रारंभिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाना है। इसने स्कूल के बुनियादी ढांचे में सुधार, नामांकन दर बढ़ाने और शिक्षा में लैंगिक अंतर को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, शिक्षा की गुणवत्ता और प्रतिधारण दर के संबंध में चिंताएँ बनी हुई हैं (गोविंदा और जोसेफिन, 2004)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020

एनईपी 2020 का लक्ष्य एक समान और समावेशी शिक्षा प्रणाली बनाना है जो वंचित समूहों की जरूरतों को पूरा करे। नीति प्रारंभिक बचपन की शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षा में प्रौद्योगिकी के एकीकरण पर जोर देती है। इसका उद्देश्य आलोचनात्मक सोच और रचनात्मकता को बढ़ावा देना, विद्यार्थियों को समाज में सार्थक योगदान देने के लिए सशक्त बनाना है। हालाँकि, इसकी सफलता इसके प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन पर निर्भर करेगी, विशेष रूप से ग्रामीण और हाशिए पर रहने वाले समुदायों में (झा, 2020)।

मध्याह्न भोजन योजना और अन्य पहल

मध्याह्न भोजन योजना स्कूली बच्चों को मुफ्त भोजन प्रदान करती है| यह योजना स्कूल में उपस्थिति में सुधार लाने और विशेषकर आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों में कुपोषण को दूर करने में सहायक रही है। परिवारों पर लागत का बोझ कम करके, इस योजना ने हाशिए पर रहने वाले समूहों के बीच उच्च नामांकन और प्रतिधारण दर में योगदान दिया है (ड्रेज़ और किंगडन, 2001)।

शैक्षिक सशक्तिकरण प्राप्त करने में चुनौतियाँ और सीमाएँ

महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद भी कई चुनौतियाँ सभी के लिए शैक्षिक सशक्तिकरण की प्राप्ति में बाधा बनी हुई हैं:

I. **बुनियादी ढाँचागत बाधाएँ:** कई स्कूल, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे से पीड़ित हैं, जिनमें उचित कक्षाओं, स्वच्छता सुविधाओं और योग्य शिक्षकों की कमी शामिल है (राव, 2010)।

II. **सामाजिक-आर्थिक और लैंगिक असमानताएँ:** जाति, लिंग और आर्थिक स्थिति पर आधारित असमानताएँ बनी रहती हैं, लड़कियों, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और ग्रामीण आबादी को अक्सर शिक्षा में अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है (रामचंद्रन, 2009)।

III. **शिक्षा की गुणवत्ता:** कई सरकारी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता चिंता का विषय बनी हुई है, जिसमें पुराने पाठ्यक्रम, अपर्याप्त शिक्षक प्रशिक्षण और खराब विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात जैसे मुद्दे सीखने के परिणामों को प्रभावित कर रहे हैं (झा, 2020)।

IV. **ड्रॉपआउट दर और प्रतिधारण:** हाशिए पर रहने वाले समुदायों, विशेष रूप से आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की लड़कियों और बच्चों के बीच उच्च ड्रॉपआउट दर एक चुनौती बनी हुई है (किंगडन, 2007)।

V. **राजनीतिक और नौकरशाही चुनौतियाँ:** शैक्षिक नीतियों का कार्यान्वयन अक्सर राजनीतिक और नौकरशाही अक्षमताओं के कारण बाधित होता है, जो सुधारों में देरी करता है और प्रगति में बाधा डालता है (गोविंदा और जोसेफिन, 2004)।

नीतिगत अनुशंसाएं

I. **शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार:** विशेषकर सरकारी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने पर ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षक प्रशिक्षण, अद्यतन पाठ्यक्रम और बेहतर छात्र-शिक्षक अनुपात को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

II. **व्यावसायिक और कौशल-आधारित शिक्षा:** व्यावसायिक और कौशल-आधारित शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को रोजगार के लिए व्यावहारिक कौशल प्रदान करके सशक्त बना सकता है।

III. **लैंगिक समानता को मजबूत करना:** शिक्षा में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है, जिसमें हाशिए पर रहने वाले समुदायों की लड़कियों को सशक्त बनाने की पहल पर विशेष ध्यान दिया जाए।

IV. **आरटीई अधिनियम के दायरे का विस्तार करें:** शैक्षिक सशक्तिकरण के लिए अधिक व्यापक दृष्टिकोण सुनिश्चित करते हुए, प्रारंभिक बचपन और माध्यमिक शिक्षा को शामिल करने के लिए आरटीई अधिनियम के दायरे का विस्तार किया जाना चाहिए।

V. **भविष्य के अनुसंधान निर्देश:** डिजिटल शिक्षण प्लेटफार्मों के प्रभाव, शिक्षा में प्रौद्योगिकी की भूमिका और हाशिए पर रहने वाले समुदायों पर वर्तमान शैक्षिक नीतियों के दीर्घकालिक परिणामों का पता लगाने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है।

शिक्षा सशक्तिकरण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है, और भारत का संवैधानिक ढांचा शैक्षिक अधिकारों के लिए मजबूत समर्थन प्रदान करता है। न्यायिक व्याख्याओं, ऐतिहासिक मामलों और आरटीई अधिनियम जैसी नीतियों ने शैक्षिक पहुंच के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालाँकि, गुणवत्ता, बुनियादी ढाँचे और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं से संबंधित चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, जे. सी. (2015). *राइट टू एजुकेशन इन इंडिया: पॉलिसीज, इश्यूज एंड चैलेंजेज*. शिप्रा पब्लिकेशंस।
2. ऑस्टिन, जी. (2003). *वर्किंग अ डेमोक्रेटिक कॉन्स्टिट्यूशन: अ हिस्ट्री ऑफ द इंडियन एक्सपीरियंस*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. बासु, ए. (1982). औपनिवेशिक भारत में शिक्षा: अभिजात शिक्षा की जड़ें। *कॉम्परेटिव एजुकेशन रिव्यू, 26*(2), 139–153। https://doi.org/10.1086/446271
4. बासु, डी. डी. (2016). *इंट्रोडक्शन टू द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया* (22वां संस्करण)। लेक्सिस नेक्सिस।

5. चंद्रचूड़, डी. वाई. (2014). *प्रमति एजुकेशनल एंड कल्चरल ट्रस्ट बनाम भारत संघ: अल्पसंख्यक अधिकार और शैक्षणिक संस्थान*। भारत का सर्वोच्च न्यायालय।
6. चौधरी, एस. (2015). भारत में बालिका शिक्षा: चुनौतियाँ और नीतियों का प्रभाव. *इंडियन जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च, 56*(1), 45-60।
7. देसाई, एस., & कुलकर्णी, वी. (2008). भारत में सकारात्मक कार्रवाई के संदर्भ में बदलती शैक्षणिक असमानताएँ। *डेमोग्राफी, 45*(2), 245–270। https://doi.org/10.1353/dem.0.0001
8. धवन, आर. (1992). *मोहीनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य: शिक्षा और कैपिटेशन फीस*। सर्वोच्च न्यायालय के मामले।
9. द्रेज़, जे., & किंगडन, जी. (2001). ग्रामीण भारत में स्कूल भागीदारी. *रिव्यू ऑफ डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स, 5*(1), 1-24।
10. फ्रेरे, पी. (1970). *पेडागॉजी ऑफ द अप्रेस्ड*. कंटिनम।
11. गांधी, एम. (1951). *बेसिक एजुकेशन*. नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
12. गोविंदा, आर., & जोसेफीन, वाई. (2004). *सर्व शिक्षा अभियान: कार्यान्वयन के लिए ढांचा*। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान।
13. हनुशेक, ई. ए., & वोएस्समैन, एल. (2015). द *नॉलेज कैपिटल ऑफ नेशंस: एजुकेशन एंड द इकोनॉमिक्स ऑफ ग्रोथ*। एमआईटी प्रेस।
14. जाफ्रेलोट, सी. (2005). *डॉ. अंबेडकर और अस्पृश्यता: जाति का विश्लेषण और संघर्ष*. कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. जयाल, एन. जी. (2008). *सिटिजनशिप एंड इट्स डिसकंटेंट्स: एन इंडियन हिस्ट्री*. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. झा, पी. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक आलोचना. *इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 55*(29), 43-49।
17. कबीर, एन. (1999). संसाधन, एजेंसी, उपलब्धियां: महिलाओं के सशक्तिकरण के मापन पर विचार। *डेवलपमेंट एंड चेंज, 30*(3), 435-464।
18. किंग, ई. एम., & हिल, एम. ए. (संपादक)। (1993). *विकासशील देशों में महिलाओं की शिक्षा: बाधाएँ, लाभ, और नीतियाँ*। विश्व बैंक।
19. किंगडन, जी. (2007). भारत में स्कूल शिक्षा की प्रगति. *ऑक्सफोर्ड रिव्यू ऑफ इकोनॉमिक पॉलिसी, 23*(2), 168-195।
20. राज, ए. (2002). *टीएमए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य: अल्पसंख्यक अधिकार और शैक्षणिक संस्थान*. भारत का सर्वोच्च न्यायालय।
21. रामचंद्रन, वी. (2009). *एजुकेशन फॉर सोशल चेंज: केस स्टडीज फ्रॉम इंडिया*. रूटलेज।
22. रामचंद्रन, वी. (2009). द *स्कूलिंग रिवॉल्यूशन: लेसन्स फ्रॉम इंडिया*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

23. राव, एन. (2010). ग्रामीण भारत में स्कूलों का बुनियादी ढांचा। *इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 45*(2), 110-130।
24. राइट टू एजुकेशन एक्ट (आरटीई), 2009। (2009). *द राइट ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री एंड कम्पल्सरी एजुकेशन एक्ट, 2009*. भारत सरकार. https://mhrd.gov.in/rte से प्राप्त किया गया ।
25. सेन, ए. (1999). *डेवलपमेंट एज फ्रीडम*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। शर्मा, आर. के. (2013). *भारतीय शिक्षा: समस्याएँ, मुद्दे और सुधार*। अटलांटिक पब्लिशर्स।
26. शर्मा, आर. एन., & शर्मा, आर. के. (2013). *भारत में शिक्षा का इतिहास*. अटलांटिक पब्लिशर्स।
27. सिंह, एम. (2010). *उन्नी कृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य: शिक्षा और जीवन का अधिकार*. सर्वोच्च न्यायालय के मामले।
28. संयुक्त राष्ट्र। (1948)। *सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा*। संयुक्त राष्ट्र. प्राप्त किया गया https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights से।

42

भारतीय संविधान और शिक्षा एक अवलोकन

डॉ. अरुणा कुमारी
सहायक आचार्य, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली विश्विद्यालय
डॉ. ज्योति वत्स
सहायक आचार्य, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली विश्विद्यालय

शिक्षा का अर्थ सिर्फ विद्यालय में प्रदान की जाने वाली शिक्षा ही नहीं होती अपितु शिक्षा का अर्थ विद्यालय से मिलने वाले अनुभवों के साथ साथ बाहर मिलने वालें उन सभी अनुभवों से हैं जो किसी ना किसी प्रकार से उसके जीवन को प्रभावित करतें हैं | शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली वह प्रक्रिया हैं जिससे व्यक्ति के न केवल चरित्र का निर्माण होता हैं अपितु यह मानव को मानवीय गुणों से परिपूर्ण भी करती हैं | शिक्षा मानव विकास की पूर्ण अभिव्यक्ति है। शिक्षा के माध्यम से मानव द्वारा इच्छा शक्ति की धारा पर सार्थक नियन्त्रण पाया जा सकता है। शिक्षा महज शब्द संग्रह या शब्द समूह की स्मृति न होकर अपितु यह विभिन्न मानव शक्तियों के विकासात्मक रूप में जानी जाती हैं। शिक्षा द्वारा ही मानव सही रूप से चिन्तन करना सीखता है। महज तथ्यों का संग्रह करना ही शिक्षा नहीं है, बल्कि मन में एकाग्रता उत्पन्न करना ही शिक्षा है। जो शिक्षा, श्रेष्ठ मानव का निर्माण करती है, चरित्र को श्रेष्ठ बनाती है, व्यक्ति को संस्कारयुक्त बनाती है, सही अर्थों में वही शिक्षा है। शिक्षा के द्वारा स्वयं को पहचानने, अपनी शक्तियों को पहचानने की क्षमता का विकास होता है। शिक्षा एक साधन है, जो मानव के आन्तरिक गुणों को प्रखर करती है, उसमें निहित शक्तियों का विकास करती हैं। इस बात को दूसरे शब्दों में इस तरह कहा जा सकता है कि "शिक्षा बालक अथवा व्यक्ति के नैतिक,शारीरिक, संवेगात्मक मानसिक तथा अन्तर्निहित ज्ञान को बाहर लाने में अहम भूमिका अदा करने वाली एक क्रिया है"।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार *"शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना हैं - जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमे करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हो | इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगो को तैयार करना हैं जोकि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान कर सकें"*, 36वर्षों बाद देश को समर्पित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 संविधान के उन मूल्यों ,आदर्शों और सिद्धांतों को अपने अंदर समाहित करता हैं जिन पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आधारशिला रखी गयी हैं| प्रत्येक संविधान का अपना दर्शन होता हैं जो अपने समाज के लोगों के आदर्शों, मूल्यों, आशाओं और आकांक्षाओं को मूर्त रूप देता है। इसलिए शिक्षा को संविधान में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं । भारत क्योंकि विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश हैं इसीलिए शिक्षा और संविधान के परस्पर संबंधों को नकारा नहीं जा सकता| अतः प्रस्तुत आलेख में शिक्षा और संविधान के संबंधो पर चर्चा करते हुए इस विषय पर चर्चा की गयीं हैं कि संविधान किस प्रकार शिक्षा का विस्तार करते हुए देश के सभी लोगो के लिए शिक्षा की व्यस्था को सुनिश्चित करता हैं|

शिक्षा और संविधान

भारत ने 15 अगस्त 1947 में आज़ादी के बाद

अपने आदर्शों, आशाओं , मूल्यों, उम्मीदों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए संविधान का निर्माण किया जिसे नई उम्मीदों और आशाओं के साथ 26 जनवरी 1950 को समस्त देशवासियों को समर्पित किया गया। जिसने सामाजिक और आर्थिक अवधारणा दी, और इस अवधारणा को पाने के लिए देश के बच्चों और युवाओं के शिक्षित होने की संकल्पना की आधारशिला रखी |

संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है**,** "हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिकों को निम्नलिखित सुविधाएँ प्रदान करने के लिए सत्यनिष्ठा से संकल्प लेते हैं: न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और उपासना की स्वतंत्रता, स्थिति और अवसर की समानता; और इन सभी में बढ़ावा देना| व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता का आश्वासन देते हुए, हमारी संविधान सभा, आज 26 नवम्बर, 1949 को इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करती है।" शिक्षा हमारे संविधान में निहित इन सभी मौलिक अधिकारों , प्रावधानों और कर्तव्यों के सन्दर्भों को गहराई से परिभाषित करती हैं| हमें अपने भावी पीढ़ी को क्या पढ़ाना हैं , कैसे पढ़ाना हैं, क्या क्या विषय होंगे, क्या क्या उपविषय होंगे , पढ़ाने की क्या क्या सामग्री होगी आदि संविधान से प्रेरित और प्रभावित होतें हैं | हमारा देश क्योंकि विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश हैं इसीलिए हमारी शैक्षिक रणनीतियाँ, कार्यक्रम, प्रोग्राम, उद्देश्य आदि सभी संविधान द्वारा निर्धारित मानदंडो के सन्दर्भ में परिभाषित और स्वीकार किये जाते हैं | हमारे नीति निर्माताओं द्वारा जो भी शैक्षिक नीतियां बनाई जाती हैं वे सभी संविधान के दायरे में रखकर ही बनाई जाती हैं | शिक्षा का पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से संविधान के विकास और उसके अनुप्रयोग से संबंधित होता हैं | जब भी शिक्षा के क्षेत्र में कोई नीति या प्रयोग किया जाता हैं वो भी संवैधानिक आदर्शो, सिद्धांतों, मूल्यों और शर्तों के रूप में स्वीकार्य मानदंडों से संबंधित होते हैं | शैक्षिक नीतियों का निर्माण परिलक्षित करता हैं की एक देश के रूप में शिक्षा का स्वरूप क्या होगा , किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाएगी और किस तरह से शिक्षा प्रदान की जाएगीं| हमारे संविधान में संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना के लिए आवश्यक सभी तत्व मौजूद थे, जिसमें सभी नागरिकों को, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म या रंग के हों, समान अधिकार प्राप्त थे। हमारे संविधान में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के चार सूत्रीय विचार को अपनाना वास्तव में सामाजिक असमानताओं, आर्थिक विषमताओं और राजनीतिक विशेषाधिकारों को समाप्त करने के लिए शामिल किया गया है।

हमारे संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि कानून की नजर में सभी को समान दर्जा प्राप्त होगा, किसी को भी न्याय से वंचित नहीं किया जाएगा, सभी को विचार, अभिव्यक्ति तथा अपने विश्वास और आस्था का पालन करने की स्वतंत्रता होगी तथा प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित की जाएगी।ये सभी प्रावधान हमारी शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। 1976 में संविधान में 42वां संशोधन करके भारतीय संविधान में बड़े बदलाव किए गए। 1976 से पहले शिक्षा पूरी तरह से राज्य का विषय थी और केंद्र सरकार केवल सलाहकार की भूमिका निभाती थी। शिक्षा प्रशासन से जुड़े लोगों का मानना था कि शिक्षा केंद्र और राज्य सरकारों की संयुक्त जिम्मेदारी होनी चाहिए। 1976 में संविधान संशोधन के ज़रिए इस विवाद को खत्म कर दिया गया। इस संशोधन को भारतीय संविधान के बयालीसवें संशोधन के

तौर पर जाना जाता है और इसे 18 दिसंबर 1976 को राष्ट्रपति की मंज़ूरी मिल गई। तदनुसार, शिक्षा को समवर्ती सूची में डाल दिया गया। शिक्षा को समवर्ती विषय बनाने का निहितार्थ यह है कि केंद्र और राज्य दोनों ही प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा के किसी भी पहलू पर कानून बना सकते हैं।

शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल करके केंद्र सरकार राज्यों में किसी भी नीतिगत निर्णय को सीधे लागू कर सकती है। इस संशोधन का सुझाव एस स्वर्ण सिंह की अध्यक्षता वाली समिति ने दिया था। शिक्षा को समवर्ती सूची में 1976 में स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों पर रखा गया था। इस समिति ने कहा, "कृषि और शिक्षा देश की तीव्र प्रगति के लिए प्राथमिक महत्व के विषय हैं, ताकि वांछित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन प्राप्त किए जा सकें। इन दोनों विषयों के संबंध में अखिल भारतीय नीतियां विकसित करने की आवश्यकता पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। यह संशोधन शिक्षा नीतियाँ बनाने में केंद्र और राज्य सरकारों को समान भागीदार बनाता है। शिक्षा के बारे में कानून बनाने में संघ राज्यों से ऊपर हो जाता है। राज्यों को निर्देश देने के लिए कार्यकारी शक्ति संघ को दी गई है। राज्यों के पास इस सीमा तक सीमित शक्तियाँ हैं कि वे संघ की कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग में बाधा या पूर्वाग्रह न डालें। केंद्र सरकार किसी भी राज्य में कोई भी नीतिगत निर्णय सीधे लागू कर सकती है। यूजीसी, एनसीईआरटी जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं और सीएबीई जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं के पास सभी राज्यों में देश की शिक्षा को आकार देने की अधिक शक्ति और ताकत है।

सांविधानिक प्रावधान:-

हमारे संविधान में शिक्षा को मुख्यधारा में लाने और प्रत्येक नागरिक तक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए अनेक प्रावधानों की संकल्पना की गयी हैं ताकि देश के सभी नागरिक शिक्षित बनें:

अनुच्छेद-15 (3) इस के अनुसार राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए विशेष शिक्षा उपलब्ध बनाने की अनुमति प्राप्त है। इस नियम के अनुसार राज्य द्वारा कमजोर वर्गों को विशेष रूप से शिक्षा एवं सामाजिक सम्मान दिए जाने का विशेष अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद-17 इस अनुच्छेद के द्वारा अस्पृश्यता/ छुआछूत के उन्मूलन की घोषणा की गई है तथा किसी भी रूप उसके पालन पर है। अस्पृश्यता दंडनीय अपराध है।

अनुच्छेद-21 (क) के तहत राज्य में 6 वर्ष से 14 वर्ष के आयु के समस्त बच्चो के लिए निःशुल्क शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था जो राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी। पूर्व में यह अनुच्छेद — 45 थी जिसमे सन् 2002 में परिवर्तन किया गया।

अनुच्छेद-25 (क) इसके तहत अंतःकरण और धर्म को अवाध रूप से मानने , आचरण करने और प्रचार-प्रसार करने की स्वतंत्रता है तथा इसके अनुसार प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म को मानने उसका पालन करने तथा उसके प्रति प्रचार-प्रसार करने की स्वतंत्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद-28 (क)इस धारा के अनुसार राज्य विधि द्वारा पूर्णत पोषित किसी शिक्षण संस्थान में कोई धार्मिक शिक्षण नहीं दिए जाने का प्रावधान है। अर्थात इसके अनुसार किसी भी विश्वविद्यालय या विद्यालय में पाठ्यक्रम के स्थान पर धर्म संबंधी पढ़ाई नहीं करवाई जाएगी।

अनुच्छेद-28 (B) इसके अनुसार यदि शिक्षण संस्था किसी ट्रस्ट द्वारा संचालित हो तो इसके प्रावधानों के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने की बाध्यता हो और वह राज्य द्वारा संचालित की जाती है तो, ऐसी संस्था को अनुच्छेद-28 (A) के प्रावधानों की अनिवार्यता से मुक्त रखा जाएगा।

अनुच्छेद-29 (क) इसके तहत कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय या वर्ग अपनी या क्षेत्रीय भाषा , लिपि, और संस्कृति को सुरक्षित रख सकता है।

अनुच्छेद-29 (ख) इसके अनुसार केवल भाषा, जाति, धर्म, और संस्कृति के आधार पर अल्पसंख्यक समुदायों या वर्गों को उसे किसी भी सरकारी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से नहीं रोका जाएगा।

अनुच्छेद **-30** इसके अनुसार अल्पसंख्यक समुदायों को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अधिकार है। कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग अपने अनुसार शैक्षणिक संस्थान चला सकता है और सरकार द्वारा उसे अनुदान में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद-45 (क) इसके तहत अभिभावकों, संरक्षक का कर्तव्य होता है कि वह 6 वर्ष से 14 वर्ष के मध्य आयु वाले बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करेगा। यह धारा सन 2020 संशोधित करके जोड़ा गया है।

अनुच्छेद-350 (क) प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

अनुच्छेद-351 संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

2018 में संसद ने संविधान में 102वां संशोधन पारित किया था जिसमें संविधान में तीन नए अनुच्छेद शामिल किए गए थे. नए अनुच्छेद 338-बी के ज़रिए राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया गया. इसने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 का स्थान लिया। पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा मिला जिसकी की वजह से आयोग को सिविल न्यायालय के बराबर अधिकार दिया गया। इससे आयोग को पिछड़े वर्गों की शिकायतों का निवारण करने का अधिकार मिला। आयोग सरकारों को नीतियों पर सलाह दे सकते हैं और उनकी स्थितियों पर शोध

कर सकते हैं। इसी तरह एक और नया अनुच्छेद 342ए जोड़ा गया जो अन्य पिछड़ा वर्ग की केंद्रीय सूची से संबंधित है. यह राष्ट्रपति को प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश में पिछड़े वर्गों की पहचान करने का अधिकार देता है। राष्ट्रपति आरक्षण और लाभ के लिए समुदायों या समूहों की सूची बना सकते हैं।

9 जनवरी, 2019 को संसद द्वारा 103वां संविधान संशोधन अधिनियम 2019 पारित किया गया. यह अधिनियम आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों से संबंधित व्यक्तियों को 10 फ़ीसदी आरक्षण का प्रावधान करता है| क़ानूनन आरक्षण की सीमा 50 फ़ीसदी से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए और अभी तक देशभर में एससी, एसटी ओबीसी वर्ग को जो आरक्षण मिलता था तो 50 फ़ीसदी की सीमा के भीतर ही मिलता था. लेकिन सामान्य वर्ग का 10 फ़ीसदी कोटा इस 50 फ़ीसदी की सीमा से बाहर है |केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में बताया था कि आर्थिक रूप से कमज़ोरों को 10 फ़ीसदी आरक्षण देने के क़ानून उच्च शिक्षा और रोज़गार में समान अवसर देकर सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के लिए बनाया गया है|

भारत का संविधान संरचनात्मक, अभिशासन और आधारभूत कार्यो का वर्णन करता हैं और इसकी प्राप्ति के सरल मार्ग और साधन प्रस्तुत करता है | यह देश के नागरिकों के अधिकारों और हितों की सुरक्षा करता है | साथ ही, लोगों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके कल्याण के लिए सरकारों को दिशा निर्देश भी देता है| देश का संविधान अपने नागरिकों को स्वंतत्र और समान अवसर प्रदान करता हैं | अतः संविधान में मार्गदर्शन द्वारा देश में शिक्षा कि पद्धति (प्रारम्भिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक) राष्ट्रीय लक्ष्यों और आकांक्षाओं को पूरा करने , देश के नागरिकों कि क्षमताओं का प्रयोग करने , समान रूप से वृद्धि और विकास सुनिश्चित करने के लिए विकसित और निर्देशित कि गयी है| शिक्षा और संविधान एक दूसरे के पूरक हैं जिन्हें एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता| देश में किस प्रकार कि शिक्षा प्रदान की जाएगी, शिक्षा की योजना क्या होगी, शिक्षा नीति किस प्रकार की होगी, शिक्षा के उद्देश्य क्या -क्या होंगे ये सभी देश के संविधान के आधार पर निश्चित किए जाते हैं |

संदर्भ सूची

1. Niranjanaradhya V.P. (2024), Fundamental rights to Education and the Constitution: A Critical Review of Laws, Policies and Programmes, Aakar Books
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), गवर्नमेंट ऑफ इंडिया
3. पाठक. पी.डी. (2020), भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुस्तक भंडार
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), गवर्नमेंट ऑफ इंडिया
5. डॉ. जोशी मनी (2017), संविधान,विभिन्न शिक्षा आयोग नीतियां अवं संत शिक्षा दर्शन, अनु बुक्स
6. भारत का संविधान (2015), भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार

7. एनसीईआरटी (2011), सोशल एंड पोलिटिकल लाइफ, नई दिल्ली, एनसीईआरटी

8. N. K. Chowdhry (2009), Indian Constitution and Education, shipra publication,

9. निरंजनधर वी. पी. एंड के. अरुणा (2006), दी फंडामेंटल्स ऑफ दी फंडामेंटल्स राइट्स ऑफ एजुकेशन इन इंडिया, बंगलौर, बुक्स फॉर चेंज

10. UNESCO Global Monitoring Report 2005

11. Friedrich Huebler, 13 November 2007 (12 October 2008), Creative Commons License

12. URL: http://huebler.blogspot.com/2007/11/india-has-21-millionchildren-out-of.html

13. India Multiple Indicator Cluster Survey (MICS) 2000, India DHS 2005- 06 http://www.indg.in/flashnewsevents/education-development-index

14. भारतीय संविधान अनुच्छेद 351 (Article 351 in Hindi) - हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश :https://hindi.lawrato.com

15. https://testbook.com/hi/ias-preparation/102-constitutional-amendment-act

43

भारतीय संविधान का शिक्षायी परिप्रेक्ष्य

विनीत कुमार आर्य
शोधार्थी, बी.एड./एम.एड. विभाग, शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय ,एम.जे.पी.आर.यू.,बरेली
डॉ. रामबाबू सिंह
सहायक आचार्य, बी.एड./एम.एड. विभाग, शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय ,एम.जे.पी.आर.यू., बरेली

भारतीय संविधान शिक्षा के अधिकार के साथ-साथ जीने की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सुविधा महिया करता है। परंतु इसका लाभ लेने से अभी भी बहुत बड़ा वर्ग वंचित है जो इसके एक नकारात्मक पहलू को भी दर्शाता है। भारतीय संविधान में शिक्षा से जुड़े प्रावधान हैं, इस प्रकार हैं, अनुच्छेद 45 के तहत, संविधान के लागू होने के 10 साल के अंदर सभी बच्चों को 14 साल की उम्र तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करना होगा। संविधान के 86वें संशोधन के तहत, साल 2002 में अनुच्छेद 21-क जोड़ा गया, जिसके मुताबिक, छह से 14 साल के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार है. इसके तहत, सरकारी विद्यालयों में सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा दी जाएगी और निजी स्कूल कम से कम 25 फीसदी बच्चों को मुफ्त में दाखिला देंगे। इसके अलावा, प्रारंभिक शिक्षा से जुड़े सभी पहलुओं पर नजर रखने के लिए राष्ट्रीय आयोग बनाया जाएगा। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं सभी विषयों को विस्तार से अध्ययन कर चर्चा की गई है व शोध प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयास किया गया है।

भारत अधिकार आधारित ढांचे को ध्यान में रखते हुए इसमें प्रमुख रूप शिक्षा संबंधी प्रावधान को समाहित किया गया है।अतः संविधान की प्रमुख सूचियां निम्न है -

1. संघ सूची
2. राज्य/ प्रांतीय सूची
3. समवर्ती सूची

शिक्षा का अधिकार-

अनुच्छेद-21 (A) के तहत राज्य में 6 वर्ष से 14 वर्ष के आयु के समस्त बच्चो के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य। जो राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी। पूर्व में यह धारा - 45 थी। जिसमे सन् 2002 में परिवर्तन किया गया। धारा - 45 के अनुसार संविधान में बालकों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था राज्य सरकार के विधिवत प्रस्तुत की जाएगी।

यूडीआईएसई -2022 के अनुसार भारत में विद्यालयों की संख्या

क्र. सं.	वर्ष	कुल विद्यालय	कुल प्राथमिक विद्यालय	कुल माध्यमिक विद्यालय	कुल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
1.	2022 में भारत में विद्यालयों की संख्या	14,08,115	11,96,265	1,50,452	1,42,3998

2.कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा का प्रावधान-

अनुच्छेद-15,17,45 (एसटी,एससी,ओबीसी) हेतु शिक्षा, इसके द्वारा कमजोर वर्ग को शैक्षणिक रूप से तथा सामाजिक रुप से शिक्षा के लिए सुरक्षा का प्रावधान उपलब्ध कराना है।अनुच्छेद-15 इस धारा के अनुसार राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए विशेष शिक्षा उपलब्ध बनाने की अनुमति प्राप्त है। इस नियम के अनुसार राज्य द्वारा कमजोर वर्गों को विशेष रूप से शिक्षा एवं सामाजिक सम्मान दिए जाने का विशेष अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद-17 इस अनुच्छेद के द्वारा अस्पृश्यता का अंत ध् छुआछूत के उन्मूलन की घोषणा की गई है। तथा किसी भी रूप से उसके पालन पर निषेध है। अस्पृश्यता दंडनीय अपराध है। कोई भी समाज या व्यक्ति द्वारा इसे बढ़ावा देने पर कानूनी रूप से दंड का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद-45 इस धारा के तहत हमारी संगीय सरकार के पास यह अधिकार प्राप्त है कि जो हमारी कमजोर वर्ग है। उसकी सामाजिक एवं शैक्षिक विकास की जिम्मेदारी राज्य के विधिवत है।

3.भाषागत सुरक्षा-

अनुच्छेद-29 (अल्पसंख्यक वर्गो के लिए संरक्षण) अनुच्छेद-29(A) इसके तहत हमारे भारतीय संविधान में यह अधिकार प्राप्त कराता है कि कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय या वर्ग अपनी या क्षेत्रीय भाषा , लिपि, और संस्कृति को सुरक्षित रख सकता है। अनुच्छेद-29(B) इसके अनुसार केवल भाषा, जाति, धर्म, और संस्कृति के आधार पर उसे किसी भी सरकारी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से नहीं रोका जाएगा।

4.प्रारंभिक शिक्षा-

अनुच्छेद-45 के तहत राज्य द्वारा प्रारंभिक अवस्था में छोटे बच्चों की देखभाल और शिक्षा के उपबंध कराने का प्रयास किया जाएगा। प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए राज्य विधिवत श् आंगनबाड़ी श् का गठन किया गया है।

यूडीआईएसई -2022 के अनुसार भारत में ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में विद्यालयों की संख्या

क्र. सं.	स्कूल क्षेत्र	कुल स्कूल
1.	ग्रामीण भारत में विद्यालयों की संख्या	12.34 लाख
2.	शहरी भारत में विद्यालयों की संख्या	2.54 लाख

5.अभिभावकों के कर्तव्य-

सरदार स्वर्ण सिंह समिति की अनुशंसा पर संविधान के 42वें संशोधन (सन् 1976) द्वारा नागरिकों के मौलिक कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए शामिल किया गया है। यह प्रावधान रूस के संविधान से लिया गया है। अनुच्छेद-45 (A) इसके तहत अभिभावकों, संरक्षक का कर्तव्य होता है कि वह 6 वर्ष से 14 वर्ष के मध्य आयु वाले बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करेगा। यह धारा सन 2020 संशोधित करके जोड़ा गया है।

6. शिक्षा में पंथनिरपेक्षता-

अनुच्छेद-25(A) इसके तहत अंतःकरण और धर्म को अवाध रूप से मानने , आचरण करने और प्रचार-प्रसार करने की स्वतंत्रता है तथा इसके अनुसार प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म को मानने उसका पालन करने तथा उसके प्रति प्रचार प्रसार करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। अनुच्छेद-28 (B)इस धारा के अनुसार राज्य विधि द्वारा पूर्णत पोषित किसी शिक्षण संस्थान में कोई धार्मिक शिक्षण नहीं दिए जाने का प्रावधान है। अर्थात इसके अनुसार किसी भी विश्वविद्यालय या विद्यालय में पाठ्यक्रम के स्थान पर धर्म संबंधी पढ़ाई नहीं करवाई जाएगी। अनुच्छेद-28(A) इसके अनुसार यदि शिक्षण संस्था किसी ट्रस्ट द्वारा संचालित हो तो इसके प्रावधानों के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने की बाध्यता हो और वह राज्य द्वारा संचालित की जाती है तो, ऐसी संस्था को अनुच्छेद-28(A) के प्रावधानों की अनिवार्यता से मुक्त रखा जाएगा। अनुच्छेद-28(C) राज्य विधि से पूर्णता पोषित शिक्षण संस्थान अपने विद्यालयों को विश्वविद्यालयों को किसी धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने या किसी धर्म उपदेश में भाग लेने, सुनने हेतु बाध्य नहीं करेगा।

7.धार्मिक कार्य में प्रबंध की स्वतंत्रता-

अनुच्छेद-26 इसके अंतर्गत धार्मिक संस्थाओं की स्थापना करने, उनका रखरखाव करने, धर्म संबंधी अपने स्वयं के मामलों का निपटारा करने, जायदाद को प्राप्त करने और उनका प्रबंध करने, धार्मिक शिक्षा देने, अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति को संरक्षण करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। अनुच्छेद-350(A) इसके अंतर्गत मातृ भाषा को प्राथमिकता, शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध कराने का दायित्व राज्य या स्थानीय प्रशासन का है। इसी के तहत भारत के प्रत्येक राज्य में अपनी भाषा को प्राथमिकता प्रदान करने के लिए मातृभाषा में शिक्षा अनिवार्य कर दिया गया है।

8.उच्च शिक्षा और अनुसंधान-

उच्च शिक्षा और शोध के जिन केंद्रों को सरकार स्वतंत्र रूप से अपने अधीन रख सकती है। वे संघ सूची में 63, 64, 65 एवं 66 उपबंध वर्णित है। उपबंध 63- के अनुसार भारतीय संविधान के प्रारंभ पर काशी हिंदू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के नाम से जाने वाले संस्थान में किया गया है। यह राष्ट्रीय संस्थाएं हैं जिनमें कोई भी व्यक्ति प्रवेश ले सकता है। उपबंध 64- के तहत भारत सरकार द्वारा पूर्णतरू पोषित वैज्ञानिक संस्थाएं या प्राविधिक शिक्षा की संस्थाएं और संसद द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व की संस्थाएं हैं। उपबंध 65- इस उपबंध के अनुसार संघ के अधिकरण और संस्थाएं निम्न है - इसमें पहला है तृतीय व्यवसाई या तकनीकी प्रशिक्षण के लिए। जिसके अंतर्गत पुलिस अधिकारियों की प्रशिक्षण मुख्य रूप से संपन्न कराई जाती है। इसमें दूसरा संस्थाए विशेष अध्ययन अनुसंधान की अभिवृद्धि के लिए है। तीसरा अपराध के अन्वेषण या पता लगाने या तकनीकी सहायता के लिए है। उपबंध 66- इस उपबंध के माध्यम से उच्च शिक्षा विज्ञान की तकनीकी शिक्षा के स्तरों के निर्धारण और शिक्षा सुविधाओं में संबंध में की जाएगी।

9.महिला शिक्षा-

अनुच्छेद-15(A) इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य नागरिकों में लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। इस अनुच्छेद के माध्यम से आज समाज में पुरुष और स्त्री दोनों एक समान माने जाते हैं। अतः स्त्री और पुरुष को एक समान दर्जा दिया गया है। अनुच्छेद-15(C) के अनुसार स्त्रियों और बच्चों के लिए विशेष व्यवस्था करने में अनुच्छेद-50(A) के प्रावधान जोड़ी नहीं जाएगी।

यूडीआईएसई -2022 के अनुसार भारत में विद्यालयों में अध्यनरत बालिकाओं की संख्या

क्र. सं.	विद्यालय की श्रेणी	
1.	भारत में प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की संख्या	5,83,24,595
2.	भारत में उच्च प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की संख्या	3,22,78,942
3.	भारत में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की संख्या	1,84,56,713
4.	भारत में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र	1,38,31,318
5.	भारत में स्कूली छात्रों की कुल संख्या	1,22,81,568

यूडीआईएसई -2022 के अनुसार भारत में विद्यालयों में अध्यनरत बालकों की संख्या

क्र. सं.	विद्यालय की श्रेणी	कुल छात्र
1.	भारत में प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की संख्या	6,35,17,655
2.	भारत में उच्च प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की संख्या	3,45,11,750
3.	भारत में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की संख्या	2,00,71,918
4.	भारत में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र	1,47,47,732
5.	भारत में स्कूली छात्रों की कुल संख्या	13,28,49,055

10.केंद्र शासित प्रदेश में शिक्षा-

अनुच्छेद-239 इस धारा के तहत यदि संसद द्वारा अथवा कानून द्वारा कोई और प्रबंध किया गया हो तो प्रत्येक संघ क्षेत्र पर राष्ट्रपति का शासन सीमा तक जहां तक वह उचित समझे , एक शासन द्वारा जिससे वह नियुक्त करेगा , चलाया जाएगा। अतः स्पष्ट है कि संघ क्षेत्र में शिक्षा केंद्र के अधिकार क्षेत्र में।

11.विदेशी शिक्षा और सांस्कृतिक संबंध-

इस शिक्षा संबंधी प्रावधान के अनुसार अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन, एसोसिएशन में हमारे देश से कोई भी विद्यार्थी ध् व्यक्ति भाग ले सकते हैं। इस प्रावधान के तहत किसी भी व्यक्ति को जाति, धर्म, भाषागत एवं संस्कृति के आधार पर नहीं

रोका जाएगा। इसके तहत आप अंतरराष्ट्रीय स्तर में होने वाले कवि सम्मेलन जैसे प्रतियोगिताओं में शामिल हो सकते हैं।

12.कृषि शिक्षा-

अनुच्छेद-48 इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य चाहे तथा यदि वह उत्तरदायित्व को स्वीकार करने में सक्षम हो तो वह आधुनिक व सामाजिक दृष्टि से कृषि व पशुपालन का संगठन करने नस्लों का संरक्षण वह सुधार करने हेतु कदम उठा सकता है। अर्थात राज्य सरकार द्वारा राज्य के हितों के लिए कृषि तथा पशु पालन से संबंधित निर्णय ले सकता है तथा राज्य में इसके हितों को ध्यान में रखते हुए कोई नई योजना लागू करवाने का अधिकार प्राप्त है ।

भारतीय संविधान में शिक्षा के अधिकार से संबंधित, कमजोर वर्गों की शिक्षा से संबंधित, भाषा की सुरक्षा से संबंधित या फिर नागरिकों की प्रारंभिक शिक्षा के अधिकारों से संबंधित, अभिभावक को की शिक्षा के प्रति जागरूकता व कर्तव्य से संबंधित, धर्मनिरपेक्षता की शिक्षा से संबंधित, धार्मिक कर्तव्य व कार्यों की प्रबंधता से संबंधित, उच्च शिक्षा व अनुसंधान से संबंधित, महिला शिक्षा से संबंधित, केंद्र शासित प्रदेश में शिक्षा व विदेशी शिक्षा तथा कृषि शिक्षा से संबंधित विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख है। इसमें भारतवर्ष की आत्मा निवास करती है इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान ही वह दिव्य शक्ति जो नागरिकों को जीने के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु अधिकार प्रदान करता है तथा भारतीयों को शिक्षा के क्षेत्र में विकास करने के लिए स्वतंत्रता प्रदान करता है। शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति राष्ट्र के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण योगदान कर विकास के लक्ष्य तक पहुचँ सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम. (2012)रूशिसविल सेवा परीक्षाओं के लिए भारतीय राजनीतिश्, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली-08।
2. शुक्ला वी.एन.(2001)रू श्द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडियाश्, ईस्टर्न बुक कंपनी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. बख्शी पी.एम.(2002)रूश्द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडियाश्, यूनिवर्सल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. जैन एम.पी.(1978)रूश्भारतीय संवैधानिक कानूनश्, वाधवा कंपनी पब्लिशर्स, नई दिल्ली-19।
5. मॉरिस जोन्स (1960)रूश्द गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स इन इंडियाश्, ईस्टर्न बुक कंपनी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
6. बसु.डी.डी.(1970)रूश्भारत के संविधान पर टिप्पणीश्, प्रेंटिस हॉल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

44

भारत में चुनाव सुधारों की आवश्यकता: दशा एवं दिशा

डॉ. नमो नारायण
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, दयानन्द वैदिक कॉलेज, उरई, जालौन (उ. प्र.)
डॉ. कुलवीर सिंह चौहान
सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, एनसीईआरटी, भोपाल

लोकतंत्र ही है जो मानवीय समानता को स्वयंसिद्ध मान लेता है और समानता तभी आ सकती है जबकि नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता हो। लोकतंत्र में समान मताधिकार राजनीतिक समानता की अनिवार्य शर्त है क्योंकि लोकतांत्रिक सरकार के कानून और नीतियों से सब संबंधित होते है और जिस बात का प्रभाव सब पर पड़ता हो उसका निर्णय सबके द्वारा होना चाहिए। [1] इस तरह की लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए चुनाव या निर्वाचन आवश्यक प्रक्रिया है। निर्वाचन ही वह विधि है जिसके माध्यम से जनता अपने शासकों का चयन करती है, जनता शासकों पर नियंत्रण रखती है, सरकार चला रहे लोग अपनी वैधता सिद्ध करते है, चुनाव सरकार के लोकतंत्रीय स्वरूप को प्रकट करते है और हिंसक क्रांति का भय समाप्त हो जाता है। स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन आम जनता में सरकार के पुनर्निवाचन अथवा नवीन सरकार के निर्वाचन का एकमात्र माध्यम है। इसके लिए निर्वाचन प्रणाली और उससे जुड़े सभी माध्यमों का पारदर्शी और जवाबदेह होना अति आवश्यक है।

आधुनिक लोकतंत्र में 'राजनीतिक समानता के सिद्धांत के अनुसार 'एक व्यक्ति, एक वोट (One Man, One Vote) की पद्धति अपनाई जाती है। [2] भारत में 61वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम - 1989 के द्वारा मतदान की आयु 21 वर्ष से घटकर 18 वर्ष कर दी गई। इसके द्वारा 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके सभी स्त्री - पुरुषों को मत देने का सामान अधिकार प्राप्त है। दुनिया की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक व्यवस्था भारत है। 18वीं लोकसभा चुनाव 2024 में 96.88 करोड़ पंजीकृत मतदाता हैं।[3] ये सभी मतदाता सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नृजातीयता, क्षेत्रीयता, भाषीयता आदि के आधार पर विविधता लिए हुए है। ऐसी विविधता में लोकतंत्र में सबकी भागीदारी सुनिश्चित हो सके इसके लिए स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की महती आवश्यकता है। संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के लिए एक सशक्त निर्वाचन आयोग की संकल्पना को संविधान में साकार रूप दिया था। सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तांतरण के साधन के रूप में 1952 से अब तक भारत में आवधिक चुनाव नियमित और सफल रहे है। सरकार की कमियों और गलतियों के खिलाफ जनता चुनाव के माध्यम से अहिंसक और शांतिपूर्ण विरोध करती रही है। परन्तु बदलते समय में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के समक्ष अनेक चुनौतियां आती रही जिनका समय के साथ निदान खोजा गया; कुछ का समाधान हो गया, कुछ का समाधान अधूरा रहा तथा कुछ के समाधान के साथ अन्य नई चुनौतियां उत्पन्न हो गई। देश के प्रथम निर्वाचन से अब तक चुनाव प्रणाली में तमाम सुधार हुए है परंतु जो सुधार रह गए है तथा समय की मांग के

अनुरूप जिन सुधारों की महती आवश्यकता है उन आए दिन चर्चा - परिचर्चा के साथ - साथ विधिक समितियों, टास्क फोर्स आदि का गठन किया जाता रहा है। हालांकि के चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की संवैधानिक शक्ति चुनाव आयोग दी गई है। चुनाव आयोग ने समय - समय पर चुनाव संचालन में आने वाली वस्तुनिष्ठ समस्याओं और कठिनाइयों के समाधान के लिए प्रस्ताव तथा सुझाव दिए हैं। सरकार के सुधारात्मक कदमों के साथ न्यायालयों ने भी विभिन्न सुधारात्मक निर्णय दिए है। साथ ही संविधानविद और विशेषज्ञों ने भी अपने स्तर पर चुनाव सुधार सम्बंधी महत्पूर्ण सुझाव दिए।[4]

चुनाव सुधारों के लिए उठाए गए कदम :

1. चुनाव कानूनों में संशोधन पर संयुक्त संसदीय समिति (1971- 72)
2. बी. एम. तारकुंडे समिति (1974)
3. दिनेश गोस्वामी समिति (1990)
4. बोहरा समिति (1993)
5. चुनावों के राज्य वित्त पोषण पर इंद्रजीत गुप्ता समिति (1998)
6. चुनावी कानूनों में सुधार पर विधि आयोग की रिपोर्ट (1999)
7. संविधान की समीक्षा पर राष्ट्रीय आयोग (2001)
8. कार्यनीति की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग (वेंकट चेल्लैया)
9. भारत निर्वाचन आयोग द्वारा प्रतावित चुनाव सुधार (2004)
10. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2008)
11. चुनाव सुधारों पर कोर कमेटी (2010)
12. आपराधिक कानूनों में संशोधन समिति (जे. एस. वर्मा - 2013)
13. राष्ट्रीय विधि आयोग की चुनावी आयोजित पर 244 वीं रिपोर्ट (2014)
14. राष्ट्रीय विधि आयोग की चुनावी सुधारों पर 255 वीं रिपोर्ट (2015)

विश्लेषण :

भारत के संविधान के अनुच्छेद 326 में सार्वभौमिक मताधिकार का प्रावधान है। पहले निर्वाचन (1952) से 1988 तक मतदान करने की न्यूनतम उम्र 21 वर्ष थी; 61वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम - 1988 के द्वारा मतदान की आयु को घटाकर न्यूनतम 18 वर्ष कर दिया गया। जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में एक नई धारा 13 CC जोड़ी गई जिसमें प्रावधानित किया गया कि निर्वाचन के समय प्रशासनिक मशीनरी चुनाव आयोग के अधीन काम करेगी। राज्यसभा और राज्य विधान परिषदों के चुनाव के नामांकन के लिए प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि की गई। अब मान्यताप्राप्त दलों द्वारा खड़े किए गए अभ्यर्थियों के मामले में राज्य सभा अथवा राज्य विधान परिषद के निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी के प्रत्येक नाम निर्देशन पर संबंधित विधान सभा के कुल निर्वाचित सदस्यों के कम से कम दस प्रतिशत

अथवा दस सदस्यों, जो भी कम हो, का प्रस्तावकों के रूप में समर्थन आवश्यक होगा। अन्य अभ्यर्थियों के मामले में, विधान सभा के दस निर्वाचित सदस्यों का समर्थन चाहिए।[5]

पहली बार इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) का प्रयोग साल 1982 में केरल राज्य के उत्तरी पारावुर विधानसभा क्षेत्र के उपचुनाव में किया गया था। 1988 में संसद ने जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में धारा **61ए** जोड़कर ईवीएम के इस्तेमाल को वैध बनाया। चुनाव आयोग ने 1998 से ईवीएम का व्यापक इस्तेमाल शुरू किया। वर्ष 1999 में पहली बार गोवा विधान सभा के आम चुनाव में EVM का इस्तेमाल किया गया था। वर्ष 2003 में पहली बार उपचुनाव और राज्य विधानसभा चुनाव का आयोजन EVM से किया गया था। इसके बाद साल 2004 में चुनाव आयोग की ओर से EVM से ही आम चुनाव कराने निर्णय लिया गया था। जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में धारा 58ए को जोड़ा गया। इसके तहत चुनाव आयोग को बूथ कब्ज़ा करने के आधार पर मतदान स्थगित करने या चुनाव रद्द करने का अधिकार है। प्रक्रिया यह है कि पीठासीन अधिकारी मामले की रिपोर्ट चुनाव आयोग को देता है।[6]

राष्ट्रीय सम्मान अपमान निवारण अधिनियम 1971 की धारा 2 के तहत राष्ट्रीय ध्वज या संविधान के अपमान के संबंध में या राष्ट्रगान को बीच में ही रोकने के अपराध के लिए 6 वर्ष के संसद व विधानसभा के लिए अयोग्य घोषित हो जायेगा। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए निर्वाचन आयोग की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका 90 के दशक में मुख्य निर्वाचन अधिकारी श्री तिरुनेलै नारायण अइयर शेषन जो टी. एन. शेषन (1990-1996) के समय रही। उनके कार्यकाल में निर्वाचन आयोग ने आदर्श आचार संहिता को लागू करने के लिए गंभीर प्रयास किए। निर्वाचन आयोग ने चुनाव नियमों के उल्लंघन पर चुनाव रद्द करने के साथ ही राजनीतिक दल का पंजीकरण रद्द करने की शक्ति की मांग गई।

1996 में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 33 में संशोधन करके धारा 33(7) को जोड़ा गया। इसके तहत एक व्यक्ति दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से लोक सभा/विधान सभा का निर्वाचन नहीं लड़ सकता है। 1996 से पहले उम्मीदवारों के चुनाव क्षेत्रों से चुनाव लड़ने की सीमा तय नहीं थी।[7] उम्मीदवारों के नामों को सूचीबद्ध करने के लिए उन्हें (i) मान्यताप्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवार, (ii) पंजीकृत गैर मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल के उम्मीदवार तथा (iii) अन्य (स्वतंत्र) उम्मीदवार (v) निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा। उक्त श्रेणी में उम्मीदवारों के नाम अलग - अलग नहीं वरन एक साथ वर्णक्रम में लिखे जाएंगे। उम्मीदवारों के नाम राज्य की भाषा की वर्णमाला के अक्षरों के क्रम में ईवीएम अथवा बैलेट पेपर में रखे जाते है। चुनाव के दौरान उम्मीदवारों की मृत्यु की स्थिति में पहले की व्यवस्था के अनुसार चुनाव को रद्द करने की बजाय चुनाव आयोग के नोटिस के बाद राजनीतिक दल दूसरे उम्मीदवार को घोषित कर सकता है।

मतदान के दिन कर्मचारियों को सवेतन अवकाश प्रदान किया जाता है। मतदान के एक दिन पहले से मतदान वाले दिन तक यानि 48 घंटे तक शराब की बिक्री प्रतिबंध रहता है। जन प्रतिनिधित्त्व अधिनियम - 1951 में संशोधन किया गया है कि किसी उम्मीदवार के चुनाव की संभावना को बढ़ाने के लिए या किसी भी उम्मीदवार के चुनाव को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने के लिए पेड न्यूज के प्रकाशन और प्रकाशन को बढ़ावा देना पीआरए 1951 के भाग VII के अध्याय III के तहत चुनावी अपराध माना जाएगा और इसके लिए न्यूनतम दो वर्ष का कारावास या जुर्माना या दोनों

की सजा प्रावधान है। छद्म राजनीतिक विज्ञापन की प्रथा पर रोक लगाने के लिए सभी प्रकार मीडिया के प्रकटीकरण प्रावधान अनिवार्य किया जाना चाहिए।

जन प्रतिनिधित्त्व अधिनियम - 1951 की धारा 151ए के तहत निर्वाचन आयोग को संसद और राज्य विधानमंडलों के सदनों में आकस्मिक रिक्त सीटों की तारीख से छह महीने के भीतर उपचुनावों के माध्यम से भरने हेतु अधिदेशित करती है। यदि कार्यकाल एक वर्ष से कम शेष बचा है तब वहां निर्वाचन आयोग केंद्र सरकार के परामर्श से चुनाव न कराने का निर्णय ले सकता है।[8] एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत संघ 2002 के बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने मतदाता को उम्मीदवारों की आपराधिक, वित्तीय और शैक्षिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करना अधिकार माना।[9]

रमेश दलाल बनाम भारत संघ 2005 वाद के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद तथा राज्य विधानमंडल के वर्तमान सदस्य किसी न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाते है और उन्हें कम से कम 2 वर्ष के कारावास की सजा सुनाई जाती है तो वह चुनाव लड़ने के अयोग्य हो जाएंगे। ।[10]

लिली थॉमस बनाम भारत संघ 2013 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 8(4) को असंवैधानिक और शून्य घोषित करते हुए कहा कि अब अगर संसद के किसी मौजूदा सदस्य को दोषी ठहराया जाता है और उसे 2 साल या अधिक की सजा सुनाई जाती है, तो उसकी सदन की सदस्यता तुरंत समाप्त हो जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय ने 2013 में पीयूसीएल बनाम भारत संघ वाद मामले में निर्णय देते हुए कहा कि चुनाव आयोग को लोकसभा और संबंधित राज्य विधानसभाओं के चुनावों में नोटा को भी शामिल करना होगा।[11] जनप्रतिनिधित्व अधिनियम - 1951 की धारा 9 (ए) और संविधान के अनुच्छेद 102 और 191 (ई) के तहत कोई निर्वाचित जनप्रतिनिधि सांसद या विधायक लाभ का पद धारित नहीं कर सकता। हालांकि 2006 में संसद (अयोग्यता निवारण) अधिनियम 1959 में कुछ संशोधन भी किए गए।

वर्ष 2013 में सुप्रीम कोर्ट के आदेश दिया कि चुनावों के दौरान वीवीपीएटी मशीन का प्रयोग किया जाए। आदेश के बाद नागालैंड के निर्वाचन में वीवीपीएट का सबसे पहले प्रयोग किया गया था। निर्वाचन आयोग ने अगस्त 2013 में चुनाव संचालन नियम, 1961 में संशोधन करके वीवीपीएटी के साथ ईवीएम का इस्तेमाल करने का निर्देश दिया। 2013 में सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयोग को 2014 के लोकसभा चुनावों में वीवीपीएटी लागू करने का निर्देश दिया था। 8 अप्रैल 2019 को सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयोग को वीवीपैट से भौतिक सत्यापन कराने वाले बूथों की संख्या बढ़ाने का आदेश दिया। इसने प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र में बूथों की संख्या 1 से बढ़ाकर 5 बूथ कर दी।[12]

9 अप्रैल, 2019 को जनप्रतिनिधित्व अधिनियम - 1951 की संशोधित दो धाराओं धारा 126 क तथा 126 (1) ख के अनुसार किसी भी चुनाव के अंतिम चरण समाप्त होने के बाद ही एग्जिट पोल के परिणाम प्रसारित किए जा सकते है। [13] विदेश में रहने वाले भारतीयों को 2010 में मतदान का अधिकार दिया गया। 2013 में निर्वाचन आयोग ने डाक मतपत्र का विस्तार करते हुए विदेश में किसी मिशन पर गए भारतीयों तथा सीमित रूप से श्रेणियों का विस्तार करते हुए सेवा मतदाता, विशेष मतदाताओं की पत्नियों, निवारक निरोध के अधीन मतदाता तथा चुनाव ड्यूटी पर मतदाता को अधिसूचित मतदाता के तौर पर मतदान का अधिकार दिया गया। निर्वाचन क्षेत्रों में भ्रम की स्थिति से बचने के लिए 1 मई, 2015 के बाद चुनाव आयोग के निर्देश पर किसी भी चुनाव में मतपत्रों पर उम्मीदवार की तस्वीर के साथ उसका नाम और राजनीतिक दल का चुनाव चिन्ह अंकित होना चाहिए।[14]

सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसले में कहा है कि संसद और राज्य विधानसभाओं के अध्यक्षों को तीन महीने के भीतर सदस्यों की अयोग्यता याचिका पर निर्णय लेना होगा अन्यथा कार्यवाही में देरी होने पर न्यायालय को हस्तक्षेप का अधिकार होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने दूसरा सुझाव दिया कि वह अध्यक्षों की अयोग्यता शक्तियों को समाप्त कर इन याचिकाओं पर विचार करने के लिए एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण बनाने का प्रावधान करे। इसके पीछे यह तर्क था कि अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल से होते है, इसलिए उनका निर्णय पक्षपातपूर्ण होता है।

चुनाव में धनबल का बढ़ता प्रभाव एक बड़ी समस्या है। इसके कारण पारदर्शिता में कमी, व्यापक भ्रष्टाचार और कालेधन का प्रचलन बढ़ा है। 2018 में सर्वोच्च न्यायालय ने लोक प्रहरी एनजीओ की याचिका पर आदेश में कहा कि उम्मीदवारों को नामांकन पत्र भरते समय अपनी आय का स्रोत बताना होगा, अपनी कुल संपत्ति, अपने जीवन साथी, बच्चों और अन्य आश्रितों की संपत्ति का ब्यौरा देना होगा।[15] 2022 में चुनाव आयोग के द्वारा बनाई गई एक कमेटी के द्वारा मतदाताओं की संख्या और कॉस्ट इंफ्लेशन इनडेक्स के आधार पर बड़े राज्यों के लोकसभा सीट के अधिकतम खर्च की सीमा 95 लाख, विधानसभा के एक प्रत्याशी के लिए 40 लाख तथा छोटे राज्यों की लोकसभा सीट के लिए 75 लाख एवं 28 लाख विधानसभा की सीट के लिए निर्धारित की गई है। जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत पंजीकृत एक राजनीतिक दल जिसने पिछले लोकसभा में डाले गए वोटो का एक प्रतिशत से अधिक वोट हासिल किया है, चुनावी बॉण्ड प्राप्त करने का पात्र होगा। वित्त अधिनियम 2016 चुनावी बॉण्ड को विधिक आधार देता था। एडीआर ने चुनावी बॉण्ड योजना को समाप्त करने के लिए 2023 में सर्वोच्च न्यायालय में एक पुनः याचिका आयोजित की। इस मामले पर CJI चंद्रचूड़ की अगुवाई में जस्टिस संजीव खन्ना , बीआर गवई , जेबी पारदीवाला और मनोज मिश्रा की पांच जजों की संविधान पीठ ने 15 फरवरी, 2024 को न्यायालय ने सर्वसम्मति से संघ की 2018 चुनावी बॉन्ड (ईबी) योजना को रद्द कर दिया।[16]

विधि आयोग की सिफारिशें:

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पब्लिक इंटरेस्ट फाउंडेशन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य - रिट याचिका (सिविल) संख्या 536/2011 के मामले में भारत के विधि आयोग को दो विशिष्ट मुद्दों पर सुझाव देने का निर्देश दिया, अर्थात (1) राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाना और आवश्यक कानून सुधार; और (ii) उम्मीदवारों द्वारा झूठे हलफनामे दाखिल करने के प्रभाव और परिणाम तथा इस तरह की प्रथा को रोकने के लिए आवश्यक कानून सुधार। इस निर्णय के आलोक में, आयोग ने इन दो क्षेत्रों पर विशेष रूप से काम किया और कई चर्चाओं के बाद, एक रिपोर्ट तैयार की। 1 फरवरी 2014 को आयोजित राष्ट्रीय परामर्श ने 24 फरवरी 2014 को "चुनावी अयोग्यता" शीर्षक से अपनी 244वीं रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत की (कुमार. 2016)। [17] भारतीय विधि आयोग ने "चुनावी सुधार" पर अपनी रिपोर्ट संख्या 255 केंद्रीय विधि एवं न्याय मंत्रालय को सौंप दी है। भारतीय विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री ए.पी. शाह ने पंजीकृत राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय राजनीतिक दलों सहित हितधारकों के साथ उचित विचार-विमर्श और आयोग द्वारा विभिन्न मुद्दों के गहन विश्लेषण के बाद 201 पृष्ठों की रिपोर्ट प्रस्तुत की (विधि आयोग रिपोर्ट 2015)। [18]

मुख्य सिफारिशें -

- उम्मीदवारों द्वारा चुनावी खर्च के मामले में विधि आयोग ने राज्य के द्वारा वित्त पोषण या समतुल्य अनुदान को व्यवहार्य नहीं माना है।
- विधि आयोग आनुपातिक प्रतिनिधित्व विधि को अधिक प्रतिनिध्यात्मक जबकि फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम स्थिर मानता है। इसलिए विधि आयोग भारत में दोनों प्रणालियों को अपनाने की आवश्यकता को मानता है।
- विधि आयोग दसवीं अनुसूची में सुचार की आवश्यकता की सिफारिश करता है। इसके अनुसार दल बदल के आधार पर अयोग्य सांसद अथवा विधायक की अयोग्यता का निर्धारण लोकसभा अध्यक्ष और सभापति के स्थान पर भारत के राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल को करना चाहिए।
- निर्वाचन आयोग के मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हटाने की प्रक्रिया का पालन निर्वाचन आयुक्तों को भी हटाने में करना चाहिए। मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य आयुक्तों की नियुक्ति की प्रक्रिया को और अधिक पारदर्शी बनाना होगा।
- विधि आयोग अनिवार्य मतदान लागू करने की सिफारिश नहीं करता क्योंकि यह अलोकतांत्रिक, महंगा, गुणवत्तापूर्ण राजनीतिक भागीदारी और जागरूकता में सुधार करने में असमर्थ तथा क्रियान्वयन में कठिन है।
- विधि आयोग वापस बुलाने के (राइट टू रिकॉल) के पक्ष में नहीं है। इससे लोकतंत्र का अतिरेक, उम्मीदवारों की स्वतंत्रता कमजोर होगी। अल्पसंख्यक हितों की अनदेखी, अस्थिरता और अराजकता बढ़ेगी। दुरुपयोग और दुर्व्यवहार होगा। व्यवहार में इसे लागु करना कठिन होगा।
- ईवीएम के प्रयोग से पहले चुनाव नियमों के नियम 59 ए के तहत मतपत्रों को मिलाया जा सकता था परंतु ईवीएम के लिए इसकी अनुमति नही है। इसलिए टोटलाइजर का प्रयोग होना चाहिए। इससे मतगणना के दौरान वोटों की गोपनीयता बढ़ेगी जिससे मतदान पैटर्न का खुलासा नहीं होगा।
- विधि आयोग लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल की समाप्ति की तिथि से छह माह पूर्व सरकार द्वारा प्रायोजित विज्ञापनों को विनियमित और प्रतिबंधित करने की सिफारिश करता है। इससे चुनावों की सुचिता बनी रहेगी और पक्षपातपूर्ण हितों के लिए सार्वजनिक धन का दुरुपयोग रोका जा सके।
- विधि आयोग ने जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33 (7) में संशोधन की सिफारिश की है जो किसी उम्मीदवार को अधिकतम दो निर्वाचन क्षेत्रों से कोई भी चुनाव (संसदीय, विधानसभा, द्विवार्षिक परिषदीय उपचुनाव लड़ने की अनुमति देता है। इस प्रावधान से कोई उम्मीदवार दो जगह से चुनाव क्षेत्रों से जीतने पर एक सीट से इस्तीफा देता है। इस्तीफे के बाद वहां फिर से चुनाव से धन और समय की बरबादी होती है। इसलिए धारा 33(7) में संशोधन किया जाना अपरिहार्य है और एक बार में एक ही चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ने की अनुमति होनी चाहिए।
- विधि आयोग स्वतंत्र चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोकने की सिफारिश करता है क्योंकि निर्दलीय उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने का अधिकार है। स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में डमी/ गैर जिम्मेदार उम्मीदवार जो केवल मतदाताओं के भ्रम को बढ़ाने के लिए खड़ा कर देते है। आईपीए की धारा 4 और 5 में

संशोधन किया जाना है। ताकि केवल धारा 11(4) के तहत ईसीआई के साथ पंजीकृत राजनीतिक दलों को ही लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं के चुनाव में सहभागिता की अनुमति दी जाए।

- विधि आयोग संसदीय, विधानसभा तथा स्थानीय चुनावों के लिए एक ही मतदाता सूची होने के संबंध में ईसीआई के सुझाव का समर्थन करता है।
- विधि आयोग एक वर्ष की निश्चित समयावधि में लोकसभा से लेकर पंचायतों तक सभी प्रत्यक्ष चुनावों को करने की सिफारिश करता है। इस तरह से एक राष्ट्र एक चुनाव (वन नेशन वन इलेक्शन) की अवधारणा साकार होगी। सारे चुनाव एक वर्ष की निश्चित समयावधि के भीतर सम्पन्न होने से धन की बचत होगी तथा सरकारी नीतियों का कार्यान्वयन, प्रशासनिक व्यवस्था और सुरक्षा बलों की संलग्नता एवं जवाबदेही उनके मूल कार्य के प्रति बढ़ेगी।

इसके अतिरिक्त विधि आयोग की रिपोर्ट में राजनीतिक दलों का विनियमन और आंतरिक पार्टी लोकतंत्र, भारत में दलबदल विरोधी कानून में सुधार, भारत के चुनाव आयोग के कार्यालय को मजबूत बनाना, चुनाव याचिका, नोटा, सामान्य मतदाता सूची की तैयारी और उपयोग जैसे विभिन्न मुद्दों पर अनेक सुझाव दिए हैं।

सरकार के अंगों यथा विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तथा चुनावोके नियमन, निर्देशन एवं अधीक्षण की सबसे बड़ी संवैधानिक संस्था निर्वाचन आयोग ने चुनाव सुधारों के लिए समय समय पर अपेक्षित कदम उड़ाए है। समय - समय पर गठित विभिन्न समितियों की रिपोर्टों के साथ - साथ न्यायमूर्ति डी. के. जैन और न्यायमूर्ति ए.पी. शाह की अध्यक्षता वाले बीसवें विधि आयोग ने अपनी 244 वीं और 255 वीं रिपोर्ट में चुनाव सुधारों पर विस्तृत सुझाव दिए। बावजूद इसके भारत में चुनाव सुधारों के धनबल, बाहुबल, जातिवाद, सांप्रदायिकता, राजनीति और अपराध के गठजोड़ आदि को समाप्त करने की बहुत बड़ी चुनौती है। इन समस्याओं और चुनौतियों से मुक्त व्यवस्था ही स्वस्थ लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है। चुनावों को केवल रस्म अदायगी नहीं बल्कि लोकतंत्र की आत्मा माना जाना चाहिए। आपराधिक और भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के लोग राजनीतिक व्यवस्था में कानून निर्माण और क्रियान्वयन की प्रक्रिया से दूर रहे। राजनीति के वास्तविक अपराधीकरण के लिए राजनेताओं और राजनीतिक दलों द्वारा अपराधियों को दिए जाने वाले संरक्षण को समाप्त करने की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार की ओर से दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। हमारे देश के सर्वोच्च न्यायालय ने भी कहा है कि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव संविधान के आधारभूत ढांचे का हिस्सा हैं। चुनाव सुधार एक सतत प्रक्रिया है। इसके लिए सरकार तथा निर्वाचन आयोग सहित सभी हित धारकों का प्रयास होना चाहिए। चुनावी समस्याओं और चुनौतियों से मुक्त होकर ही चुनाव प्रणाली अपने श्रेष्ठतम को प्राप्त कर सकती है। ऐसी चुनाव प्रणाली ही देश की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित कर सकेगी।

संदर्भ सूची

1. Mill, J. S. (1859). *On Liberty.* London: John W Parker abd Sons.
2. गाबा, ओ.पी. (2002). *राजनीतिक सिद्धांत की रूपरेखा.* दिल्ली, मयूर प्रकाशन।

3. Chakrabarty, S. (June 07, 2024). 65.79% turnout in 2024 Lok Sabha polls, says Election Commission. https://www-thehindu-com.cdn.ampproject.org/v/s/www.thehindu.com/elections/lok-sabha/india-general-electon-2024-6579-turnout-in-2024-lok-sabha-polls-says-election-commission/article68259360.ece/amp/
4. Singhvi, L. M., Kashyap, S. C. and Sharma, J. P. (1971). *Elections and Electoral Reforms in India.* Sterling Publishers, Delhi
5. ECI (April 18, 2023). राज्य सभा के निर्वाचन संबंधी बहुधा पूछे जाने वाले प्रश्न. https://hindi.eci.gov.in/faqs/elections/election-to-the-council-of-states
6. Reddy, S. (n.d.). Legislative commentary section 58A Representation of The people Act 1951. https://www.legalserviceindia.com/legal/article-2852-legislative-commentary-section-58a-representation-of-the-people-act-1951.html
7. ECI (April 17, 2019). निर्वाचन मे खड़ा होना. https://hindi.eci.gov.in/faqs/elections/contesting-for-elections/
8. https://indiankanoon.org/doc/186695194/
9. SCO Team (Septembe 04, 2017). Criminalization of Politics [Analysis]. *Supreme Court Observer*. https://www.google.com/amp/s/www.scobserver.in/journal/criminalisation-of-politics/amp/
10. Singh, B. P. (2013). International Journal of Humanities and Social Science Invention ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): Volume 2 Issue 3, March. 2013.
11. PTI (March 09, 2024). NOTA a toothless tiger with no implication on results: ADR Experts. https://www.thehindu.com/news/national/nota-a-toothless-tiger-with-no-implications-on-results-adr-expert/article67931927.ece
12. SCO (n. d.). Increased vote verification. *SupremeCourt Observer*. https://www.scobserver.in/cases/n-chandrababu-naidu-union-of-india-vvpat-case-background/
13. https://ceodelhi.gov.in/PDFFolder/2019/loksabha/BanOnExitPoll12042019.pdf
14. Press Trust of India (Septembe 18, 2015). Photo of candidates will be pasted on EVMs alongside names and party symbols. https://www.business-standard.com/article/politics/photo-of-candidates-will-be-pasted-on-evms-alongside-names-and-party-symbols-115090901076_1.html
15. https://indiankanoon.org/doc/170708893/

16. SCO (n.d.). Constitutionality of the Electoral Bond Scheme. https://www.scobserver.in/cases/association-for-democratic-reforms-electoral-bonds-case-background/
17. H.M., S. K. (2016). Contemporary Indian Politics: Internal Dynamics and External Compulsions. New Delhi: *Pinnacle Learning.*
18. Press Information Bureau (March 12, 2015). Government of India Ministry of Law and Justice Law Commission of India Submits its Report on Electoral Reform to the Ministry of Law And Justice,

45

एक राष्ट्र एक चुनाव

संगीता
आचार्या, राजनीतिक विज्ञान विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज,दिल्ली विश्वविद्यालय
विनायक राय
स्वतंत्र शोधकर्ता

जेम्स एस रॉबिन्स के शब्दों में, 'चुनाव लोकतंत्र का केंद्रबिंदु हैं। वे लोकतांत्रिक समाज में मूलभूत राजनीतिक घटनाएँ हैं और एकमात्र ऐसा अवसर है जिस पर अधिकांश लोग सीधे राजनीति में शामिल होते हैं। चुनाव एक खोज प्रक्रिया है, यह पता लगाने का एक तरीका है कि सरकार का अस्थायी रूप से प्रभारी कौन होगा।। इसमें प्रयास सरकार का चयन करने की दिशा में नहीं होती है, बल्कि लोगों द्वारा प्रतिनिधि चुनने की दिशा में होती है जो संसद में उनकी आवाज़ बन सकते हैं। यह लोकतंत्र में चुनाव को महत्वपूर्ण बनाता है। चुनाव मतदान की एक ऐसी प्रक्रिया है जो आम जनता को यह तय करने का अवसर देती है कि संसद, विधान मंडल आदि जैसे प्रतिनिधि संस्थानों में राष्ट्र के लिए काम करने के लिए शासकीय निकाय में कौन-कौन लोग शामिल होने चाहिए। लोगों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना चुनाव करते समय राजनीतिक दलों द्वारा किए गए वादों, उनके वैचारिक झुकाव और उनके पिछले प्रदर्शन पर उचित विचार करेंगे और उसी के अनुसार अपना वोट देंगे। यह प्रक्रिया लोगों को एक बड़ी जिम्मेदारी देती है क्योंकि सरकार और विचारधारा में कोई भी बदलाव देश की स्थापनाओं, आर्थिक स्थिति और लोकतांत्रिक विकास के साथ-साथ देश की विदेश नीति पर प्रभाव डालता है जिसका सीधा प्रभाव हमारा जीवन तथा राष्ट्र की प्रगति पर देखा जा सकता है। हमारे संविधान के अनुसार, देश का प्रत्येक नागरिक जो 18 वर्ष से अधिक आयु का है, अपना वोट दे सकता है और राष्ट्र के उद्देश्य और भविष्य के संदर्भ में अपनी पसंद व्यक्त कर सकता है लेकिन यह अति आवश्यक है कि वे इस अधिकार का प्रयोग जिम्मेदारी तथा समझदारी के साथ करें।

वास्तविक चुनावों के बिना, लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं है। चुनाव नागरिकों को अपनी राय व्यक्त करने और यह चुनने के लिए एक समान रूप से प्रबंधित तरीका प्रदान करते हैं कि उनके और उनके राष्ट्र के लिए कौन (प्रतिनिधि) और क्या (नीति और विचारधारा) सबसे अच्छा है। ऐसा नहीं है कि स्वतंत्र भारत में चुनाव एक नई अवधारणा है। स्वतंत्रता से पहले भी चुनाव होते थे; अंतर इस तथ्य में निहित है कि उस समय विकल्प और आवाज़ें बहुत सीमित थीं और मताधिकार बहुत निष्पक्ष नहीं हो सकता था। स्वतंत्रता के बाद, भारत ने एक सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का विकल्प चुना और सभी वयस्कों को समान वोट देने का अधिकार दिया। देश में इस तरह का पहला चुनाव 1951-52 में हुआ था।

चुनावों के महत्व और निष्पक्ष कार्यप्रणाली के बारे में कई विद्वानों ने अपनी पुस्तकें और शोध पत्र प्रकाशित किए हैं। प्रो. उज्ज्वल कुमार सिंह और प्रो. अनुपमा रॉय ने 2019 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *'Election Commission of India'* में भारत में चुनाव प्रक्रिया के अनुभव और प्रयोगों पर चर्चा की है। उन्होंने अपनी पुस्तक की शुरुआत 23 अक्टूबर 1951 को द हिंदू में प्रकाशित कहानियों से की, जो पहले आम चुनाव के बारे में थी, जिसमें वयस्क नागरिकों को निकटतम बूथ पर जाकर दो बार मतदान करना पड़ता था - पहला राज्य विधानसभा के लिए और दूसरा संसद के लिए। यह एक सरल प्रक्रिया थी जिसमें संसद और राज्य विधानसभा के लिए चुनाव होते थे परंतु 1967 उसके बाद केंद्र और राज्य में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति के कारण से 'एक साथ चुनाव की प्रक्रिया' भी छोड़ दी गई। तब से मतदाताओं की संख्या और चुनाव प्रक्रिया से जुड़ी जटिलताएँ कई गुना बढ़ गई हैं। लेकिन इस कार्य को पूरा करने के लिए संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव की 'निगरानी, निर्देशन और नियंत्रण' और संचालन के लिए एक संस्था की व्यवस्था की थी और संस्था (भारत का चुनाव आयोग) ने इस उद्देश्य को काफी हद तक हासिल कर लिया है।

एस. वाई. कुरैशी ने अक्टूबर 2023 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *'India's Experiment with Democracy: The Life of a Nation Through Its Elections'* में कई प्रासंगिक सवाल उठाए हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है 'क्या चुनाव आयोग के पास न्यायपालिका की अवमानना की शक्ति के समान दंड देने की शक्ति होनी चाहिए। आयोग को लगता है कि उसे ऐसा करना चाहिए'। उन्होंने तीन उदाहरण दिए हैं कि चुनाव आयोग को ऐसी शक्तियां क्यों दी जानी चाहिए। इसके अलावा लेखक ने चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति से जुड़ी पद्धति और विवादों पर भी चर्चा की है। इसके अलावा उन्होंने सरकार-चुनाव आयोग के संबंधों के बारे में भी बात की है। लेखक ने इस पुस्तक में मुख्य चुनाव आयुक्त के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान और उसके बाद के कई महत्वपूर्ण प्रकरणों पर चर्चा की है।

एक राष्ट्र, एक चुनाव

एक साथ चुनाव (जिसे एक राष्ट्र, एक चुनाव के नाम से जाना जाता है) का मतलब है कि सभी लोकतांत्रिक निकायों जैसे कि लोक सभा, सभी राज्य विधानसभाएं और स्थानीय निकाय यानी नगर पालिका और पंचायतों के लिए एक साथ चुनाव कराना। हालाँकि, एक राष्ट्र, एक चुनाव का नारा हाल ही में भारत की राजनीतिक शब्दावली में शामिल हुआ है, यह अवधारणा बहुत पुरानी है और स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती वर्षों में चुनाव प्रक्रिया में इसका इस्तेमाल किया गया था। इस अवधारणा ने चालू वर्ष में वर्तमान केंद्र सरकार के प्रस्ताव के साथ गति पकड़ी है जिसका उद्देश्य लोकसभा और विधानसभाओं में एक साथ चुनाव कराकर चुनावों में सामंजस्य स्थापित करना है। प्रधान मंत्री ने 2014 के आम चुनावों के दौरान इस विचार को बड़े जोश के साथ प्रस्तावित किया था। इस पद्धति का इस्तेमाल देश में पहले चार आम चुनावों, अर्थात् 1951-52, 1957, 1962 और 1967 के दौरान किया गया था। यह विधि 1960 के दशक के अंत में एक-शक्तिशाली प्रभुत्व के पतन और नए क्षेत्रीय लोकतांत्रिक उदय के साथ समाप्त हुई (पलशीकर 2016; कुमार 2021)। इसके बाद, 1968-69 में राज्य विधानसभाओं और 1970 में लोकसभा के समय से पहले भंग होने के कारण यह चक्र बाधित हुआ था। तब से लोकसभा और विधानसभाओं के लिए चुनाव कराने की प्रक्रिया अलग-अलग हो गई, जिससे राजनीतिक दलों द्वारा वहन किए जाने वाले प्रचार की लागत बढ़ गई। इसमें भारत सरकार द्वारा वहन की जाने वाली चुनाव कराने की लागत, चुनाव में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए पुरुषों के कार्य घंटों

की हानि (छुट्टी की घोषणा के साथ) और राष्ट्र की सुरक्षा को प्रभावित करने वाली चुनाव ड्यूटी में सुरक्षा कर्मियों की नियुक्ति, तथा स्कूलों और स्कूल शिक्षकों को बार-बार चुनाव ड्यूटी में शामिल करने से होने वाली हानि भी शामिल है।

एक साथ चुनाव का मतलब यह नहीं है कि देश भर में सभी चुनावों के लिए एक ही दिन मतदान होना चाहिए। ONOE का मूल उद्देश्य सरकार के विभिन्न स्तरों पर चुनावी चक्रों को संरेखित करना है, चुनावों को एक साथ या एक निश्चित समय सीमा के भीतर आयोजित करना है। इसके लिए महत्वपूर्ण संवैधानिक संशोधनों और विभिन्न चुनाव संबंधी कानूनों और प्रक्रियाओं में बदलाव की आवश्यकता होगी। 1999 में, चुनावी कानूनों के सुधार पर विधि आयोग की रिपोर्ट ने देश में एक साथ चुनावों की वांछनीयता को प्रतिपादित किया था। आयोग ने व्यक्त किया था कि यह पद्धति देश में चुनावी प्रक्रिया को सुसंगत बनाने में मदद करेगी। साथ ही आयोग ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि विधान सभा के लिए अलग चुनाव कराना एक अपवाद होना चाहिए न कि नियम (भारतीय विधि आयोग 1999)। बाद में 2015 में, संसदीय स्थायी समिति की 79वीं रिपोर्ट ने भी देश में चुनावी प्रक्रिया के संबंध में इसी तरह की सिफारिशें कीं। 2016 में, तत्कालीन वित्त और कॉर्पोरेट मामलों के राज्य मंत्री द्वारा लोकसभा में एक साथ चुनाव (सरकार की स्थानीय इकाइयों सहित) का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था। बाद में 2018 में नीति आयोग ने 2024 से लोकसभा और विधान सभा चुनावों के लिए समन्वित दो-चरणीय कार्यक्रम की सिफारिश की, अंततः सितंबर 2023 की शुरुआत में सरकार ने पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में आठ सदस्यीय उच्च स्तरीय समिति गठित की, जिसे एक साथ चुनाव कराने के प्रस्ताव का आकलन करने और देश में इसकी व्यवहार्यता पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का काम सौंपा गया।

कोविंद समिति के मुख्य सुझाव:

केंद्र सरकार द्वारा गठित उच्च स्तरीय समिति (अध्यक्ष: पूर्व राष्ट्रपति श्री राम नाथ कोविंद) ने एक साथ चुनाव कराने पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति का गठन सितंबर 2023 में लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और स्थानीय निकायों के एक साथ चुनाव कराने की व्यवहार्यता की जांच करने और रूपरेखा सुझाने के लिए किया गया था। समिति की प्रमुख टिप्पणियों और सिफारिशों में शामिल हैं:

चुनावों का समन्वय: चुनाव दो चरणों में कराए जाएं जिसके अंतरगत पहले चरण में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराए जाएं तथा दुसरे चरण में आम चुनावों के 100 दिनों के भीतर स्थानीय निकाय चुनाव (पंचायत और नगर पालिका) कराए जाएं।

त्रिशंकु सदन की स्थिति में: वर्तमान में, एक विधानमंडल पांच साल की अवधि के लिए चुना जाता है। इसलिए, किसी भी समय एक त्रिशंकु विधानमंडल उन्हें अगले एक साथ चुनाव के लिए समन्वय से बाहर कर देगा। इस पर ध्यान देने के लिए, समिति ने सिफारिश की कि एक त्रिशंकु विधानमंडल या स्थानीय निकाय के लिए कम अवधि के लिए नए चुनाव कराए जाने चाहिए। कम अवधि एक साथ चुनाव के लिए पांच साल के चक्र की शेष अवधि के बराबर होगी।

संविधान संशोधन प्रस्तावित: उच्च स्तरीय समिति ने तीन अनुच्छेदों में संशोधन, मौजूदा अनुच्छेदों में 12 नए उप-खंडों को शामिल करने और विधानसभा वाले केंद्र शासित प्रदेशों से संबंधित तीन कानूनों में बदलाव का प्रस्ताव रखा था। प्रस्तावित संशोधन निम्नानुसार बताई गई है:

अनुच्छेद 82ए के शामिल होने से निम्नलिखित जुड़ सकते हैं:

अनुच्छेद 82ए(1) जिसमें कहा जाएगा कि आम चुनाव के बाद लोक सभा की पहली बैठक की तिथि पर राष्ट्रपति अनुच्छेद 82ए को प्रभावी करने के लिए अधिसूचना जारी करेंगे। इस अधिसूचना की तिथि को "नियत तिथि" कहा जाएगा।

अनुच्छेद 82ए(2) जिसमें कहा जाएगा कि 'नियत तिथि' के बाद आयोजित किसी भी आम चुनाव में गठित सभी विधान सभाएँ लोक सभा के पूर्ण कार्यकाल की समाप्ति पर समाप्त हो जाएँगी।

अनुच्छेद 83 (संसद के सदनों की अवधि) और अनुच्छेद 172 (राज्य विधानमंडलों की अवधि) में संशोधन, जो सदन में बहुमत न होने, अविश्वास प्रस्ताव या दलबदल की स्थिति, सदन के तत्काल पूर्ववर्ती पूर्ण कार्यकाल की शेष अवधि के लिए नई लोकसभा या राज्य विधानसभा के गठन के लिए नए चुनाव कराए जाने के बारे में होगा। ऐसी स्थिति में यह एक साथ चुनावों के चक्र में निरंतरता सुनिश्चित करेगा।

अनुच्छेद 324ए का प्रविष्टि, जो आम चुनावों के साथ नगर पालिकाओं और पंचायतों के चुनाव एक साथ कराने से संबंधित है। इसमें राज्यों द्वारा अनुसमर्थन आवश्यक है।

अनुच्छेद 325 में संशोधन करके राज्य चुनाव आयोग के परामर्श से भारत के चुनाव आयोग द्वारा एकल मतदाता सूची तैयार करना। इसे भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची, भाग IX और भाग IXA में शामिल किया जा सकता है। साथ ही समिति ने पाया कि संसद और राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल से संबंधित संवैधानिक संशोधनों को राज्यों द्वारा अनुसमर्थन की आवश्यकता नहीं होगी। हालाँकि, स्थानीय निकायों से संबंधित संवैधानिक संशोधनों को कम से कम आधे राज्यों द्वारा अनुसमर्थन के साथ पारित किया जाना आवश्यक होगा।

इसके अलावा समिति ने सुझाव दिया कि लोक सभा और राज्य विधानसभाओं के एक साथ चुनाव कराने के लिए रसद व्यवस्था करने के लिए, भारत का चुनाव आयोग ईवीएम/वीवीपीएटी की खरीद, मतदान कर्मियों, सुरक्षा बलों आदि की तैनाती के अग्रिम अनुमान के लिए एक योजना तैयार करेगा। नगर पालिकाओं और पंचायतों के चुनावों के लिए राज्य चुनाव आयोग ईसीआई के परामर्श से रसद आवश्यकताओं के लिए एक योजना तैयार करेगा।

ONOE के समर्थकों का तर्क है कि इस पहल से महत्वपूर्ण प्रशासनिक दक्षता और वित्तीय बचत होगा। इसके अलावा यह बदलाव चुनावों में देरी के कारण होने वाली लगातार रुकावटों को कम करने में भी मदद करेगा, जिससे सरकारें अल्पकालिक चुनावी रणनीतियों के बजाय दीर्घकालिक नीति कार्यान्वयन पर ध्यान केंद्रित कर सकेंगा। हालांकि, विरोधी संघवाद और लोकतंत्र की गुणवत्ता के निहितार्थों के बारे में चिंता जताते हैं। आलोचकों ने चेतावनी दी है कि एक साथ चुनाव कराने से स्थानीय मुद्दे दब सकते हैं और क्षेत्रीय दल हाशिए पर जा सकते हैं, जिससे राष्ट्रीय दलों को फायदा होगा और राजनीतिक विविधता कम हो जाएगी। इसके अलावा, जब भारत इस महत्वपूर्ण बदलाव का गंभीरता से मूल्यांकन तथा इसे लागू कर रहा है, तो तार्किक चुनौतियों और विविध जनसांख्यिकी में निष्पक्ष प्रतिनिधित्व की आवश्यकता पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

एक राष्ट्र एक चुनाव क्यों ज़रूरी है?

लागत में कमी: एक साथ चुनाव कराने से सुरक्षा कर्मियों, मतदान कर्मचारियों और चुनाव सामग्री पर होने वाले खर्च में कमी आती है। इस तरह मतदाताओं को संसद और राज्य विधानमंडल दोनों के लिए एक साथ वोट देने का मौका

मिलता है। इससे चुनाव कराने की लागत कम होने के साथ-साथ वोट डालने में लगने वाले समय की बर्बादी भी कम होती है। तालिका 1 में दर्शाए गए चुनाव में सरकारी व्यय के विश्लेषण से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि 1951 से संसद चुनाव की लागत कई गुना बढ़ गई है और इस पर तुरंत लगाम लगाने की ज़रूरत है। नीचे दी गई तालिका 1 में दी गई तिथि से खर्च का विश्लेषण किया जा सकता है:

तालिका 1

लोकसभा चुनाव वर्ष	पंजीकृत मतदाता	लोगों की उपस्थिति (Turnout)	लोकसभा चुनाव व्यय	लोकसभा चुनाव व्यय (In Rs)*
1951	17.32	45.67%	10.5 cr	0.6
1957	19.37	47.74%	5.9 Cr.	0.3
1962	21.63	55.42%	7.32 Cr.	0.3
1967	25.02 Cr	61.04 %	10.8 Cr.	0.4
1971	27.42	55.27%	11.61 Cr.	0.4
1977	32.12	60.49%	23.04 Cr.	0.7
1980	35.62	56.92%	54.77 Cr.	1.5
1984-85	40.04	64.01%	81.51 Cr.	2
1989	49.89	61.95%	154.22 Cr.	3.1
1991-92	51.15	56.73%	359.1 Cr.	7
1996	59.26	57.94%	597.34 Cr.	10
1998	60.59	61.97%	666.22 Cr.	11
1999	61.93 Cr.	59.99%	947.68 Cr.	15
2004	67.15cr	58.07%	1113.88 Cr.	17
2009	71.70 cr	58.21%	1114.4 cr	12
2014	83.40 cr	66.44%	3870.3 cr	46
2019	91.2 cr	67%	6500 Cr.	72
2024	96.6 cr	66.61%		

Source: Kumar, Nitish, 'पहले चुनाव में खर्च हुए थे 10.5 करोड़, 72 साल बाद कितना खर्च कर रही सरकार, कौन उठाता है भार? जानिए सबकुछ', https://hindi.news18.com/news/business/e, News 18, March 19, 2024.

Sayeda, Zaina Azhar, 'How India Has Voted Over The Years: Examining Voter Trends In General Elections', https://www.outlookindia.com/, Outlook, April 3, 2024

*Singh, Hemant, 'Election Cost per Voter in Lok Sabha Election since 1952', https://www.jagranjosh.com/ general-knowledge/, April 11, 2019.

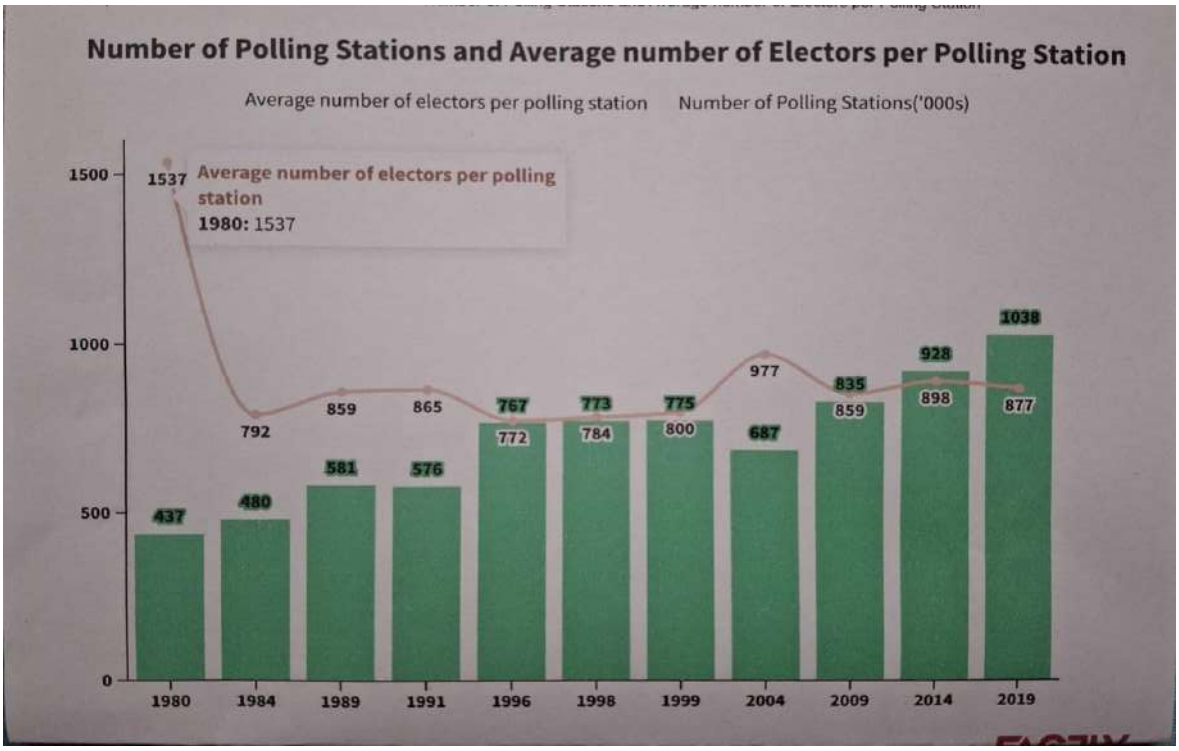
हालांकि यह कुल व्यय का केवल 10% है क्योंकि राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव प्रचार और यात्रा पर किया गया व्यय तथा व्यक्तियों द्वारा यात्रा (वोट डालने के लिए) पर किया गया व्यय यदि जोड़ दिया जाए तो चुनाव का व्यय और अधिक बढ़ जाएगा।

- **आर्थिक लाभ:** ऊपर दी गई तालिका 1 में स्पष्ट रूप से चुनाव कराने में सरकार के बढ़ते खर्च को दर्शाया गया है। इसके अलावा, चुनाव प्रचार और चुनाव कराने में काम करने वाले लोगों के घंटों की हानि होती है और संसाधनों की बार-बार हानि होती है। एक साथ चुनाव कराने से हम इसे काफी हद तक कम कर सकते हैं जिसका सीधा सकारात्मक प्रभाव राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। नीचे दी गई तालिका 2 में स्पष्ट रूप से लोकसभा चुनाव में खर्च के बढ़ते प्रतिशत को दर्शाया गया है। इसके अलावा, मतदाताओं की संख्या में वृद्धि के साथ मतदान केंद्रों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। इससे खर्च में और वृद्धि हो रही है। एक साथ चुनाव कराने से सरकार पर वित्तीय बोझ लगभग आधा कम हो सकता है। कोविंद समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में इस ओर इशारा किया था। रिपोर्ट में संकेत दिया गया है कि एक साथ चुनाव कराने के बाद भारत की राष्ट्रीय वास्तविक जीडीपी वृद्धि पिछले वर्ष की तुलना में 1.5% अधिक हो सकती है।

तालिका 2

लोकसभा चुनाव वर्ष	पंजीकृत मतदाता	% वृद्धि	लोकसभा चुनाव व्यय	% वृद्धि	चुनावी व्यय	% वृद्धि
1951	17.32		10.5 cr		0.6	
1957	19.37	11.83	5.9 Cr.	-43.81	0.3	-50
1962	21.63	11.66	7.32 Cr.	24.07	0.3	0
1967	25.02 Cr	15.67	10.8 Cr.	47.54	0.4	33.33
1971	27.42	9.6	11.61	7.5	0.4	0
1977	32.12	17.14	23.04	98.45	0.7	75
1980	35.62	10.9	54.77	137.72	1.5	114.28
1984-85	40.04	12.41	81.51	48.82	2	75
1989	49.89	26.60	154.22	89.20	3.1	55
1991-92	51.15	2.53	359.1	132.85	7	125.81
1996	59.26	15.86	597.34	66.34	10	42.86
1998	60.59	2.24	666.22	11.53	11	10
1999	61.93 Cr.	2.21	947.68	42.25	15	36.36

2004	67.15cr	8.43	1113.88	17.54	17	13.33
2009	71.70 cr	6.78	1114.4 cr	0.05	12	-29.41
2014	83.40 cr	16.32	3870.3 cr	247.3	46	283.33
2019	91.2 cr	9.35	6500	67.95	72	56.52
2024	96.6 cr	5.92				



Source: Sai Krishna Muthyanolla, 'LS Elections Data: Number of Polling Stations Crossed 1 million, and More Than 70% Constituencies Had More Than 10 Contestants in 2019', https://factly.in/ls-elections-data, April 22, 2024.

चुनाव 2024 में कार्मिकों की तैनाती से संबंधित कुछ तथ्य:[lxxxii]

- पंजीकृत मतदाता: 97 करोड़ (लगभग) (49.70 करोड़ पुरुष मतदाता और 47.10 करोड़ महिला मतदाता हैं)
- चुनाव के चरण - 7 चरण तथा 26 विधानसभा सीटों पर उपचुनाव होंगे;
- मतदान केंद्र- सभी निर्वाचन क्षेत्रों में 10.5 लाख
- मतदान अधिकारी- 1.5 करोड़ (लगभग)
- चुनाव में तैनात सामान्य, पुलिस और व्यय पर्यवेक्षक- 2,100 से अधिक

➢ लोकसभा चुनाव में तैनात ईवीएम- 55 लाख से अधिक

2024 के चुनाव में सुरक्षाकर्मियों की तैनाती के बारे में बताते हुए चुनाव आयुक्त राजीव कुमार ने कहा, "CAPF को पर्याप्त रूप से तैनात किया जाना चाहिए और प्रत्येक जिले में एकीकृत नियंत्रण कक्षों द्वारा सहायता प्रदान की जानी चाहिए। चौकियों और ड्रोनों की निगरानी सुनिश्चित की जानी चाहिए। मतदाताओं का विश्वास सुनिश्चित करना सर्वोपरि है।" उन्होंने आगे कहा, "स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने में चार चुनौतियाँ हैं, 4एम: बाहुबल, धन, गलत सूचना और एम सी सी उल्लंघन। ई सी आई प्रतिबद्ध है और इन विघटनकारी चुनौतियों से निपटने के लिए उन्होंने आवश्यक उपाय किए हैं।" उन्होंने आगे कहा कि 17 आम चुनाव, 400 से अधिक राज्य चुनाव और 16 राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति चुनाव सफलतापूर्वक आयोजित करके, ई.सी.आई ने चुनावी अभ्यास में "स्वर्णिम मानक" स्थापित किया है। इससे स्पष्ट है कि चुनाव आयुक्त निष्पक्ष चुनाव कराने और इसे सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षाकर्मियों की तैनाती के प्रति चिंतित हैं।

- **बेहतर चुनाव निगरानी और मतदाताओं की भागीदारी में वृद्धि:** चुनावों की संख्या/आवृत्ति में कमी से कर्मचारियों और संसाधनों को तैनात करने में मदद मिलती है जो बेहतर चुनाव निगरानी और मतदाताओं की भागीदारी में वृद्धि की सुविधा प्रदान कर सकते हैं। एक साथ प्रक्रिया से चुनाव के द्वारा दोनों ही मतदातायों तथा सुरक्षा कर्मीयों थकान को कम करने में मदद मिल सकती है, जिससे संभावित रूप से मतदाताओं की भागीदारी और मतदान में वृद्धि हो सकती है।

- **सार्वजनिक जीवन में व्यवधान कम होना**: कम बार चुनाव होने का मतलब है सार्वजनिक जीवन में व्यवधान कम होना, जिसका लाभ अक्सर मतदान केंद्रों के रूप में इस्तेमाल किए जाने वाले शैक्षणिक संस्थानों को मिलता है। साथ ही, शिक्षक, अन्य सरकारी सेवा धारकों के साथ, चुनाव ड्यूटी और प्रशिक्षण में लगे रहते हैं, जिससे उनके वास्तविक कर्तव्य बाधित होते हैं। एक साथ चुनाव होने से सरकारी निर्माण कार्य में उनकी भागीदारी कम हो सकती है और राष्ट्र और बच्चों के क्षमता विकास के उनके मूल कर्तव्य पर ध्यान केंद्रित करने में मदद मिल सकती है। इस प्रकार, ONOE अधिकारियों को चुनाव ड्यूटी के बजाय शासन पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की अनुमति देकर प्रशासनिक दक्षता बढ़ा सकता है।

- **शासन की निरंतरता:** कम चुनाव अल्पकालिक चुनावी रणनीतियों और आदर्श आचार संहिता के कारण होने वाली "नीतिगत पक्षाघात" को कम कर सकते हैं, साथ ही संसाधनों की कमी, निरंतर प्रचार और राजनीतिक दलों के बीच भ्रष्टाचार को भी कम कर सकते हैं।

- **सुव्यवस्थित अभियान:** राजनीतिक दलों को केंद्रित अभियान प्रयासों से लाभ मिल सकता है, जिससे छोटे दलों को प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा करने का बेहतर मौका मिल सकता है।

एक राष्ट्र, एक चुनाव की चुनौतियाँ

ONOE के क्रियान्वयन से संघवाद को खतरा होने की गंभीर चिंता है। ऐसा माना जाता है कि राष्ट्रीय और राज्य चुनावों के समन्वय से स्थानीय मुद्दे राष्ट्रीय मुद्दों और चिंताओं से दब सकते हैं। इसका परिणाम यह हो सकता है कि

राष्ट्रीय दल क्षेत्रीय आवाज़ों को दबा दें, जिससे स्थानीय चिंताओं और ज़रूरतों का प्रतिनिधित्व कम हो जाए, जिन्हें अक्सर राज्य स्तरीय दल ही सबसे बेहतर तरीके से समझते हैं। साथ ही, यह भी आशंका है कि समन्वित चुनाव ढांचे में, छोटे क्षेत्रीय दलों को अधिक धन और अधिक प्रभाव वाली पार्टियों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई हो सकती है, जिससे संभावित रूप से राजनीतिक विविधता कम हो सकती है और क्षेत्रीय मुद्दे दब सकते हैं। नई कार्यप्रणाली कम जानकारी वाले या पहली बार मतदान करने वाले मतदाताओं में भ्रम पैदा कर सकती है, जिससे अज्ञानतापूर्ण चुनाव और अधिक अवैध वोट हो सकते हैं, जो लोकतंत्र को कमजोर कर सकता है।

इनके अलावा, नई कार्यप्रणाली के लिए नई ईवीएम मशीनों और वोटर वेरिफ़िएबल पेपर ऑडिट ट्रेल (वीवीपीएटी) मशीनों की खरीद की आवश्यकता है। इससे चुनाव की लागत बढ़ सकती है और ईसीआई और सुरक्षा बलों के संसाधनों और क्षमताओं पर भारी दबाव पड़ेगा। कार्मिक, लोक शिकायत, विधि एवं न्याय (2015) पर संसदीय स्थायी समिति ने इन मशीनों की खरीद के लिए लगभग 9,284.15 करोड़ रुपये का अनुमानित व्यय प्रस्तुत किया है।

सबसे बढ़कर, राजनीतिक संकटों के जवाब में समय से पहले चुनाव कराने के मामले में कम लचीलापन उन राज्यों में लंबे समय तक राष्ट्रपति शासन का कारण बन सकता है, जहां सरकारें बीच में ही गिर जाती हैं।इससे शासन शून्यता पैदा हो सकती है, जिससे नागरिकों को महत्वपूर्ण अवधि के दौरान पर्याप्त प्रतिनिधित्व या निर्णय लेने की क्षमता नहीं मिल पाती।

"एक राष्ट्र, एक चुनाव" का प्रस्ताव निस्संदेह भारत के चुनावी परिदृश्य के लिए एक परिवर्तनकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो शासन की दक्षता को बढ़ाने और लगातार चुनावों से जुड़ी समस्याओं और लागतों को कम करने का वादा करता है। हालाँकि, संघवाद, स्थानीय प्रतिनिधित्व पर प्रभाव के बारे में विरोधियों द्वारा उठाई गई कुछ वैध चिंताएँ हैं, जिनकी चर्चा और विचार-विमर्श द्वारा जाँच और समाधान की आवश्यकता है। इसे लागू करने से पहले, विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करना आवश्यक है, और यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कोई भी सुधार लोकतंत्र और प्रतिनिधित्व में समानता के सिद्धांतों को बनाए रखे।

संदर्भ सूची

1. Bannerjee, Aveek, 'Lok Sabha Elections 2024: 97 crore voters, 10.5 lakh polling booths: Numbers at a glance', https://www.indiatvnews.com/news/india/, March 16, 2024.
2. Government of India, Expenditure Reports, Election Commission of India, https://www.eci.gov.in/expenditure-reports, checked on November 28th, 2024.
3. Government of India, भारतीय विधि आयोग 1999, https://lawcommissionofindia.nic.in/hi/, Checked on 26th November 2024.
4. Goyal, Yugank, 'Electoral Contests in MP, Chhattisgarh and Rajasthan', https://www.epw.in/tags/vidhan-sabha-elections, Economic and Political Weekly, December 02, 2023.

5. Kumar, Nitish, 'पहले चुनाव में खर्च हुए थे 10.5 करोड़, 72 साल बाद कितना खर्च कर रही सरकार, कौन उठाता है भार? जानिए सबकुछ', https://hindi.news18.com/news/business/e, News 18, March 19, 2024
6. Muthyanolla , Sai Krishna , 'LS Elections Data: Number of Polling Stations Crossed 1 million, and More Than 70% Constituencies Had More Than 10 Contestants in 2019', https://factly.in/ls-elections-data, April 22, 2024.
7. Nair, Aparajita, 'One Nation, One Election: A Promise of Stability' **https://www.hindustantimes.com/ht-insight/governance/,** Hindustan Times, October 12, 2024.
8. Quraishi, S. Y., 'Conducting Elections in the World's Largest Democracy', https://www.mea.gov.in/Portal/CountryQuickLink/779_Election_in_India_article_-_S.Y.Quraishi__1_.doc, Ministry of External Affairs, checked on 26th November, 2024.
9. Quraishi, S. Y., India's Experiment with Democracy. Harper Collins India, October 2023.
10. Rao m., Sambasiva, 'ECI Prescribes maximum limit on electionexpenses of each Contesting candidate', https://www.thehindu.com/elections/andhra-pradesh-assembly/ , The Hindu, March 9, 2024.
11. Robbins, James S., 'Introduction: Democracy and Elections', https://www.jstor.org/stable/45288975, The Fletcher Forum of World Affairs,Vol. 21, No. 1, 1997
12. Singh , Nandini, 'Lok Sabha election 2024: How much does it cost to hold elections in India?', https://www.business-standard.com/elections/. Business Standards, April 19, 2024.
13. Sayeda, Zaina Azhar, 'How India Has Voted Over The Years: Examining Voter Trends In General Elections', https://www.outlookindia.com/, Outlook, April 3, 2024
14. Simultaneous Elections in India, https://prsindia.org/policy/report-summaries/simultaneous-elections-in-india checked on 28th November, 2024.
15. Singh, Hemant, 'Election Cost per Voter in Lok Sabha Election since 1952', https://www.jagranjosh.com/ general-knowledge/, April 11, 2019.
16. Singh, Ujjwal Kumar and Anupama Singh, Election Commission of India, Oxford University Press, October 2019.

17. Wani, Aejaz Ahmad and Rouf Ahmad Dar, 'Simultaneous Elections in Plural Societies', Economic and Political Weekly, https://www.epw.in/journal/2024/1/perspectives/, January 06, 2024.

46

लोककल्याणकारी नीतियां एवं मतदान व्यवहार

डॉ. बालूदान बारहठ
राजनीति विज्ञान विभाग, मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय उदयपुर

भारत केवल सांस्कृतिक-सामाजिक और भौगोलिक विविधता वाला ही देश नहीं है अपितु इसकी यह विविधता बहुधा मतदान व्यवहार में भी परिलक्षित होती है। मतदान व्यवहार को निर्धारित करने वाले किसी एक कारक की पहचान करना संभव नहीं है, क्योंकि यह कई प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कारकों, परिवर्त्यो व परिस्थितियों से प्रभावित होता है। नार्मन पावंर ने 1974 में भारत सहित दक्षिण एशिया के देशों का अध्ययन कर मुख्यतः पांच कारक बताए जो मतदाताओं के व्यवहार को निर्धारित करते है। उम्मीदवार के गुण, विचारधारा, राजनीतिक सलंग्नता, सामाजिक-आर्थिक कारक व घनबल-बाहूबल। परन्तु भारत जैसे विकासशील देश में जहां आधारभूत सुविधाओं के साथ-साथ व्यक्तिगत कल्याण की नीतियों अर्थात विकास व लोक कल्याण की नीतियां 21वीं सदी में मतदान व्यवहार का प्रमुख नियामक बन कर उभर रहा है। प्रस्तुत अध्ययन राजस्थान के उदयपुर जिले के अध्ययन पर आधारित है। इसमें उदयपुर शहर के साठ मतदाताओं को अध्ययन में शामिल किया गया है। इस शोध पत्र हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों पद्धतियों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक पद्धति के तहत उदयपुर शहर विधानसभा के 60 उत्तरदाताओं का चयन साद्देश्यमूलक यदृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया। चयनित उत्तरदाताओं से बंद प्रश्नावली के माध्यम से प्रासंगिक तथ्यों का संकलन कर सारणी के माध्यम से उनका विश्लेषण किया गया है। प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण प्रश्नावली के माध्यम से संग्रहित तथ्यों का विश्लेषण मुख्यतः इस प्रकार है।

तालिका: 1

सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी के स्त्रोत का विश्लेषण

जानकारी के स्त्रोत	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
टेलीविजन	18	30
रेडियों	04	6.6
सोशल मीडिया	23	38.33
उपर्युक्त सभी	10	16.6
अन्य	05	8.33
योग	60	100

सरकार की विभिन्न जन कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी के स्त्रोत के बारे में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 38.33 प्रतिशत लोगों को सोशल मीडिया के माध्यम से इसकी जानकारी प्राप्त हुई। टेलीवीजन से जानकारी हासिल करने वालों का प्रतिशत जहां 30 रहा, वहीं करीब 17 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने टीवी, रेडियो व सोशल मीडिया के माध्यम से जानकारी पाना बताया है।

तालिका: 2

सरकारी नीतियों के लिए नामांकन में सहायता का विश्लेषण

सहायता प्रदाता	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि	18	30
निर्वाचित जन प्रतिनिधि	21	35
सामाजिक संगठनों के कार्यकता	14	23.33
किसी से नहीं	07	11.66
योग	60	100

विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में लाभार्थी होने में किसकी सहायता प्राप्त हुई इस प्रश्न के उत्तरदाताओं का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 35 प्रतिशत को निर्वाचित जन प्रतिनिधियों की सहायता प्राप्त हुई जबकि राजनीति दलों के प्रतिनिधियों से सहायता पाने वालो का प्रतिशत 30 रहा है। करीब 23 प्रतिशत लोगों उत्तरदाताओं को जाति आदि के सामाजिक संगठनों ने लाभार्थी होने में सहायता प्रदान की है।

तालिका: 3

तीनों विधानसभा चुनाव में भागीदारी का विश्लेषण

मत	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
एक ही दल को	37	61.66
अलग-अलग दल को	16	26.66
लागू नहीं	07	11.66
योग	60	100

राज्य की पिछली तीनों विधानसभा चुनाव (2013, 2018 व 2023) में एक ही दल को मतदान किया अथवा अलग- अलग दलो को इस प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक करीब 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने तीनों ही विधानसभा चुनावों में एक ही दल को मतदान किया जबकि करीब 27 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे थे जिन्होने अलग-अलग चुनावों में अलग-अलग दल को मतदान किया है।

तालिका: 4

उम्मीदवार के बारे में राय के निर्धारण का विश्लेषण

निर्धारक कारक	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
उम्मीदवार की जाति	13	21.66
उम्मीदवार का धर्म	20	33.33
उम्मीदवार की छवि	15	25
राजनीतिक दल जिसका उम्मीदवार	12	20
योग	60	100

जब उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि चुनावों में उम्मीदवार के बारे में अपनी राय किस आधार पर निर्धारित करते है तब सर्वाधिक 33 प्रतिशत का उत्तर था कि वे उम्मीदवार का धर्म देखकर अपनी राय तय करते है। करीब 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं का जवाब जाति था जबकि 25 प्रतिशत मतदाताओं को कहना था कि वे उम्मीदवार की छवि देखकर अपनी राय निर्धारित करते है। जिस राजनीतिक दल का उम्मीदवार है, उस दल के आधार पर अपनी राय विकसित करने वालो का प्रतिशत 20 था।

तालिका: 5

कल्याणकारी योजनाओं का मतदान व्यवहार पर प्रभाव का विश्लेषण

मतदान व्यवहार पर प्रभाव	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
बहूत अधिक	28	46.66
कुछ सीमा तक	23	38.33
बिल्कुल नहीं	03	0.05
कहा नहीं जा सकता	06	10
योग	60	100

सरकार की कल्याणकारी योजनाएं मतदान व्यवहार को किस सीमा तक प्रभावित करती है इस प्रश्न के उत्तर का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि करीब 47 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना था कि इन योजनाओं का मतदान व्यवहार पर बहूत अधिक प्रभाव पड़ता है जबकि करीब 38 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते है कि कुछ सीमा तक कल्याणकारी योजनाएं मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है।

तालिका: 6

लोक लुभावनकारी नीतियों का मतदान व्यवहार पर प्रभाव का विश्लेषण

प्रभाव	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
महत्वपूर्ण प्रभाव	30	50
सामान्य प्रभाव	20	33.33
बहूत कम प्रभाव	06	10
कोई प्रभाव नहीं	04	06
योग	60	100

लोक लुभावनकारी नीतियां जो मुख्यतः सार्वजनिक कल्याण की जगह मतदाताओं के व्यक्तिगत कल्याण पर आधारित है, उनका मतदान व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके उत्तर के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 50 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते है कि इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि बहूत कम प्रभाव पड़ता है जबकि 6 प्रतिशत का कहना है कि कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता है।

तालिका: 7

सामाजिक संगठनो के पदाधिकारियों की चुनाव में सक्रियता का विश्लेषण

सक्रियता	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
अत्यधिक	18	30
सीमित	21	35
बिल्कुल नहीं	21	35
योग	60	100

जाति धर्म आदि पर गठित विभिन्न सामाजिक संगठनो के पदाधिकारी चुनाव के समय किस स्तर पर सक्रिय रहते है इसका विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनकी सक्रियता अत्यधिक होती है जबकि 35 प्रतिशत सीमित सक्रियता को स्वीकार करते है। 35 प्रतिशत उत्तरदाता मानते है कि सामाजिक संगठनों चुनाव के समय की कोई सक्रियता नहीं रहती है।

तालिका: 8

सामाजिक संगठनों की मतदान व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता का विश्लेषण

क्षमता	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
अत्यधिक	14	23.33
सीमित	19	31.66
बिल्कुल नहीं	21	35
कहा नहीं जा सकता	06	10
योग	60	100

सामाजिक संगठनों की मतदान व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि कुल उत्तरदाताओं का करीब 23 प्रतिशत यह मानता है कि यह संगठन मतदान व्यवहार को अत्यधिक प्रभावित करते है। करीब 37 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करते है कि यह संगठन सीमित मात्रा में मतदान व्यवहार को प्रभावित करते है जबकि सर्वाधिक 35 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करते है कि इनका मतदान व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

तालिका: 9

मतदान के समय प्राथमिकता का विश्लेषण

प्राथमिकता	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
उम्मीदवार की जाति	11	18.33
उम्मीदवार का धर्म	17	28.33
उम्मीदवार व उसके दल द्वारा किए वादो की पूर्ति	30	50
अन्य	60	100

मतदान के बारे में राय निर्धारण में किसे प्राथमिकता देते है, प्रश्न का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उम्मीदवार अथवा उसके दल के द्वारा किए गए वादों की पूर्ति के आधार पर वे मतदान का निर्णय करते है। करीब 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि वे उम्मीदवार का धर्म देखकर निर्णय करते है जबकि 18 प्रतिशत उत्तरदाता उम्मीदवार की जाति को प्राथमिकता देते है।

मतदान व्यवहार पर लोकक्लयाणकारी नीतियों के प्रभावों के अनुभवमूलक अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण संकेत सामने आए है। यह बात भी स्पष्ट हो रही है कि कल्याणकारी नीतियों के अलावा अनेक तत्व मतदान व्यवहार को प्रभावित करते है और इन तत्वों की क्या प्रासंगिकता है। करीब 23 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे थे जिन्हें सरकार की कल्याणकारी नीतियों का लाभार्थी होने में सामाजिक संगठनों के कार्यकताओं ने सहयोग किया। करीब 65 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना था कि सामाजिक संगठनों के पदाधिकारी चुनाव में सक्रिय भागीदारी निभाते है जबकि करीब 54 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि सामाजिक संगठन कम या अधिक मात्रा में मतदान को प्रभावित करते है। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक संगठन के कार्यकर्ता राजनीतिक रूप से निरंतर सक्रिय रहते है तथा अपने समाज के लोगो के मतदान व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता हासिल कर लेते है।

इसी भांति राज्य की कल्याणकारी नीतियां किस सीमा तक मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है, इस बारे में भी रोचक जानकारी सामने आई है। करीब 85 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि कल्याणकारी योजनाओं का मतदान व्यवहार पर कम या अधिक प्रभाव अवश्य पड़ता है। सामाजिक संगठनों व कल्याणकारी नीतियों दोनों के प्रभाव के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विभिन्न राजनीतिक दल वर्तमान में बेहतर डिलीवरी सिस्टम के साथ ही सोशल इंजीनियरिंग पर क्यो जोर देते है। पहचान की राजनीति में मतदाता जाति व धर्म में से किसे प्राथमिकता देते है, इस बारे में स्पष्ट होता है कि करीब 21 प्रतिशत उत्तरदाता जाति देखकर उम्मीदवार के बारे में राय निर्धारित करते है जबकि 33 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाता इस हेतु धर्म को वरीयता देते है। मतदान के समय करीब 18 प्रतिशत उत्तरदाता उम्मीदवार की जाति को प्राथमिकता देते है जबकि धर्म को प्राथमिकता देने वालों का प्रतिशत 28 रहा है। इससे स्पष्ट है कि पहचान की राजनीति में जाति से ज्यादा प्रभावी धर्म रहा है। सार्वजनिक कल्याण की नीतियों व व्यक्तिगत लाभ की लोक लुभावन कारी नीतियों में से मतदान व्यवहार को कौन ज्यादा प्रभावित करता है, इसका विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि करीब-करीब दोनों समान रूप से ही महत्वपूर्ण है। 85 प्रतिशत के करीब उत्तरदाता लोककल्याण को तथा 83 प्रतिशत लोक लुभावन को महत्वपूर्ण मानते है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मतदाता विकास की राजनीति, पहचान की राजनीति तथा अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता इन तीनों आयामों को लेकर जागरूक है।5 जाति, धर्म, विकास व व्यक्तिगत कल्याण यह सारे तत्व मतदाता को प्रभावित करते है।6 ऐसे में सतारूढ़ दल के लिए कुशल, वैज्ञानिक व त्वरित प्रशासन आवश्यक हो गया है। सरकारों की जनकल्याणकारी योजनाओं की क्रियान्विति प्रशासन के माध्यम से ही संभव है।7 इस तरह से प्रशासनिक ढांचा भी चुनावों के समय एक राजनीतिक मुद्दे के रूप में उभर रहा है।8 इससे यह संभावना बन रही है कि भविष्य में राजनीतिक व प्रशासनिक कार्यप्रणाली के संबंधों को नए सिरे से देखा जायेगा।

संदर्भ सूची

1- Roy, P. (2017). *The Verdict Decoding India's Election.* D S Penguin Random House, New Delhi.

2- कुमार, संजयण् राय, प्रवीण (2017) भारत में मतदान व्यवहार का मापन Sage Bhasha New Delhi.

3- सरदेसाई, राजदीप (2020). 2019: मोदी की जीत, हार्वर प्रकाशन, नई दिल्ली

4- Gupta, P. (2021). *How India Votes and What It Means*, Juggernaut Publisher, New Delhi.

5- अग्निहोत्री, कुलदीप. (2021) भारत बोध का संघर्ष 2019 का महासागर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

6- Choudhari, A. (2022). *Election in India: Issues & Challenges,* Whitesmann Publisher Company- New Delhi.

7- Chatterjee, K. Biswas, S. (2024). *Book of Indian Elections,* Hachette, India.

8- Yadav, Y. (2020). *Making Sense of Indian Democracy,* Permanent Black, New Delhi.

47

सूचना का अधिकार: एक सिंहवालोकन

डॉ. राकेश कुमार मीणा
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. विपिन कुमार गुप्ता
पोस्ट डॉक्टरल फेलो, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारत का संविधान विश्व के सबसे लंबे संविधानिक दस्तावेजों में से एक है | व्यक्तिगत अधिकारों की विविधता को, भले ही सतही रूप में, संबोधित करना एक कठिन कार्य है। यह विचार करते हुए कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और इसमें शायद दुनिया की सबसे बड़ी विविधताओं का संग्रह है (जाति, रंग, धर्म, भाषा, संस्कृति, जातीयता, भोजन, और पहनावा), किसी भी लेखक के लिए भारतीय कानूनी प्रणाली के प्रत्येक पहलू को ठीक से संबोधित करना असंभव होगा। भारत का संविधान न केवल दुनिया के सबसे व्यापक संविधानिक दस्तावेजों में से एक है, बल्कि ऐसा भी है जिसे हर वाक्य में सजीव न्यायिक व्याख्या द्वारा जीवंत किया गया है। यह केवल एक शुष्क पाठ नहीं है, बल्कि एक जीवित एवं विकासशील दस्तावेज है। भारतीय संविधान के भाग तीन के अंतर्गत अनुच्छेद 12-35 तक मौलिक अधिकारों को प्रदान किया गया है यह मौलिक अधिकार नागरिकों को मानव के नाते प्राप्त हैं| यह मानव की गरिमा को सुरक्षित रखने के साथ साथ राज्य के विरुद्ध नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा करता है। अधिकारों की सुरक्षा की कड़ी में उसे राज्य से प्रश्न पूछने और जानने का भी अधिकार प्राप्त है जोकि अप्रत्यक्ष रूप से अनुच्छेद19(1) (a) तथा अनुच्छेद 21 मे अंतर्निहित है |

सूचना का अधिकार प्रत्येक मानव का मौलिक अधिकार है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक **मिशेल फूको** ने कहा था कि **"शक्ति का स्रोत ज्ञान है और सूचना ज्ञान का मुख्य घटक है।"** सूचना व्यक्ति को बुद्धिमान बनाती है और उसे आधुनिक दुनिया के साथ तालमेल बिठाने में सक्षम बनाती है। इसलिए, यह सरकार का कर्तव्य है कि वह नागरिकों को सरकार के भीतर हो रही दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों की जानकारी दे।शासन से सुशासन में रूपांतरण तभी संभव है जब शासन में जनता की भागीदारी बढ़ाई जाए और सूचनाओं तक स्वतंत्र पहुंच प्रदान की जाए। इस तथ्य को समझते हुए, भारतीय संसद ने **सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005** पारित किया ताकि सरकार को जवाबदेह, जिम्मेदार, कुशल और पारदर्शी बनाया जा सके।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (आर टी आई) निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है, जो देश द्वारा लोकतांत्रिक संस्थाओं की नींव स्थापित करने और सरकार तथा उसकी विभिन्न एजेंसियों के सार्वजनिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों को गहरा करने के लिए उठाए गए ठोस कदमों में से एक है। यह सरकार के अधिकांश संचालन

में पारदर्शिता सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसका उचित क्रियान्वयन अच्छे शासन की सुनिश्चितता करेगा और भ्रष्टाचार को समाप्त करेगा, जिससे देश की सरकार और संस्थागत कार्यों में ईमानदारी के सूचकांक में देश की रैंकिंग में वृद्धि होगी। इस लेख का उद्देश्य भारत में सूचना के अधिकार अधिनियम के महत्व को समझाना और इस अधिनियम से संबंधित प्रावधानों के बारे में जानकारी देना है।

सूचना का अधिकार 2005:

सूचना का अधिकार (आरटीआई) के लिए लोगों के आंदोलन का अवलोकन प्रस्तुत करता है, जिसकी शुरुआत 1990 के दशक की शुरुआत में राजस्थान में हुई थी। यह आंदोलन की प्रगति को दर्शाता है, जिसने अंततः 2005 में संसद द्वारा आरटीआई अधिनियम को लागू करने का मार्ग प्रशस्त किया। सरकारी जानकारी तक पहुंच प्राप्त करने का संघर्ष 18वीं शताब्दी के अंत में शुरू हुआ। 1766 में, स्वीडन ऐसा पहला देश बना जिसने नागरिकों को सरकारी दस्तावेज़ों तक पहुंचने का अधिकार देने वाला कानून बनाया। इसके बाद, संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1966 में सूचना की स्वतंत्रता (फ्रीडमऑफ़ इनफार्मेशन- फ्रीडमऑफ़ इनफार्मेशन)अधिनियम पारित किया। यूनाइटेड किंगडम का फ्रीडमऑफ़ इनफार्मेशन अधिनियम जनवरी 2005 से प्रभाव में आया। 2010 तक, 70 से अधिक देशों ने इसी तरह के अधिनियम लागू किए।

आरटीआई अधिनियम, 2005 को समझने के लिए यह जरूरी है कि सूचना के अधिकार के आंदोलन का अध्ययन किया जाए। यह अधिनियम जनता के अधिकारों को सशक्त बनाता है और सरकार की जवाबदेही को सुनिश्चित करने का एक प्रभावी माध्यम है। यह कानून यह भी रेखांकित करता है कि पारदर्शिता और उत्तरदायित्व सुशासन के मूल स्तंभ हैं। आरटीआई आंदोलन ने न केवल नागरिकों को उनकी लोकतांत्रिक शक्ति का एहसास कराया, बल्कि सरकारी प्रणाली में भ्रष्टाचार और उत्पीड़न को उजागर करने का साधन भी प्रदान किया। अधिकांश सार्वजनिक प्राधिकरण गोपनीयता के पर्दे के पीछे काम करते हैं। भारत ने 1923 का आधिकारिक गोपनीयता अधिनियम ब्रिटिश शासन से विरासत में प्राप्त किया, जो सरकारी कार्यालयों और नागरिकों के बीच संचार के प्रवाह में बाधा बना। इस अधिनियम के कारण सार्वजनिक प्राधिकरणों के आंतरिक कार्यों की जानकारी प्राप्त करना लगभग असंभव हो गया।

नागरिकों को इन कार्यों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती, जिससे उनकी शासन में भागीदारी, विशेषकर स्थानीय स्तर पर, सीमित हो जाती है। इस प्रकार, सार्वजनिक प्राधिकरणों के कार्यों का खुलासा करना और यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो गया कि वे नागरिकों को आवश्यक जानकारी प्रदान करें।

इसी संदर्भ में, एक आंदोलन शुरू हुआ, जिसका उद्देश्य सार्वजनिक प्राधिकरणों को पारदर्शिता और उत्तरदायित्व के सिद्धांतों का पालन करने के लिए प्रेरित करना था, ताकि लोकतांत्रिक शासन को बढ़ावा दिया जा सके। आरटीआई आंदोलन ने नागरिकों को उनके अधिकारों का एहसास कराया और उन्हें शासन में अधिक सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान किया।

सूचना का अधिकार पंचायत से संसद तक:

लोगों के सूचना के अधिकार के लिए आंदोलन, जो पंचायत स्तर पर शुरू हुआ, जल्द ही राज्य और राष्ट्रीय स्तर तक पहुंच गया। अप्रैल 1995 में, राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री बी. एस. शेखावत ने राज्य विधानसभा में घोषणा की कि राजस्थान के लोगों को सूचना का अधिकार दिया जाएगा। इस घोषणा के बाद, लोगों ने सूचना के अधिकार (आरटीआई) कानून के लिए जोरदार अभियान शुरू किया। अब तक, सूचना के अधिकार के लिए संघर्ष केवल राजस्थान तक ही सीमित था। 1996 के मध्य तक, मजदूर किसान शक्ति संगठन (एमकेएसएस) के प्रयासों में एक राष्ट्रीय गठबंधन, नेशनल कैंपेन फॉर पीपल्स राइट टू इन्फॉर्मेशन (एन सी पी आर आई), शामिल हो गया। "हमारा पैसा, हमारा हिसाब" और "हम जानेंगे, हम जिएंगे" जैसे नारों ने लोगों को इस आंदोलन में सक्रिय कर दिया। इसी बीच, 1997 से कई राज्यों ने अपने-अपने सूचना के अधिकार कानून लागू करना शुरू कर दिया। इस प्रकार, यह आंदोलन राजस्थान के राजसमंद जिले से जयपुर (राज्य की राजधानी) होते हुए दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी) तक पहुंच गया था|

संक्षेप में कहें तो, हमारे समाज के विभिन्न वर्गों की भागीदारी के साथ विचार-विमर्श की एक श्रृंखला के बाद एक नया आरटीआई विधेयक तैयार किया गया। इसे संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित करने के बाद, राष्ट्रपति ने इसे 15 जून 2005को अपनी स्वीकृति दी।

जल्द ही आरटीआई अधिनियम अधिसूचित किया गया और यह 12 अक्टूबर 2005 को लागू हुआ। यह अधिनियम एक अहिंसक जन आंदोलन की मांग के जवाब में आया, इसीलिए इसे सही रूप से "जनता का अधिनियम"कहा जाता है।1 आरटीआई अधिनियम के साथ, भारत में "खुले शासन" को सुनिश्चित करने के लिए एक तंत्र पेश किया गया है। यह भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई में एक उपकरण है। इसके अलावा, यह सरकारी अधिकारियों द्वारा अत्यधिक देरी और निष्क्रियता से निपटने में मदद करता है। चूंकि कानून का शासन लोकतांत्रिक शासन का एक प्रमुख सिद्धांत है, भारत में सार्वजनिक अधिकारियों को अब आरटीआई कानून का पालन करना अनिवार्य है। यह नागरिकों को उनके क्षेत्रों में विभिन्न सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा किए गए विकास कार्यों की निगरानी करने में मदद करता है। इससे नागरिक भ्रष्ट प्रथाओं को रोकने में सक्षम होते हैं। इसलिए, यह नागरिकों के दैनिक जीवन में प्रतीकात्मक महत्व की तुलना में व्यावहारिक उपयोगिता का अधिक है।आरटीआई अधिनियम के महत्व और उद्देश्यों को इसकी प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है। प्रस्तावना नागरिकों के अधिकारों और सार्वजनिक अधिकारियों के विशेषाधिकारों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के प्रयासों को भी दर्शाती है।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005:

यह एक अधिनियम है जो नागरिकों को सार्वजनिक प्राधिकरणों के नियंत्रण में स्थित जानकारी तक पहुँच प्राप्त करने के अधिकार का व्यावहारिक ढाँचा प्रदान करने के लिए है, ताकि प्रत्येक सार्वजनिक प्राधिकरण के कार्यों में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा दिया जा सके, केंद्रीय सूचना आयोग और राज्य सूचना आयोग की स्थापना की जा सके, और इससे संबंधित या इससे जुड़े मामलों के लिए भी प्रावधान किए जा सकें।

जहाँ भारत का संविधान लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना करता है;और जहाँ लोकतंत्र के लिए एक सूचित नागरिकता और जानकारी की पारदर्शिता आवश्यक है, जो इसके कार्य करने के लिए और भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने

तथा सरकारों और उनके संस्थाओं को शासित लोगों के प्रति जवाबदेह रखने के लिए महत्वपूर्ण है;और जहाँ वास्तविक कार्यप्रणाली में जानकारी का खुलासा अन्य सार्वजनिक हितों के साथ टकरा सकता है, जिसमें सरकारों के कुशल संचालन, सीमित वित्तीय संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग और संवेदनशील जानकारी की गोपनीयता का संरक्षण शामिल है;और जहाँइन विरोधाभासी हितों को संतुलित करना आवश्यक है, जबकि लोकतांत्रिक आदर्श की प्रधानता को बनाए रखना है;अब, इसलिए, यह आवश्यक है कि उन नागरिकों को कुछ जानकारी प्रदान की जाए, जो इसे प्राप्त करना चाहते हैं।

सूचना का अधिकार अधिनियम और भारतीय संविधान के अनुच्छेद :

सूचना का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) से प्राप्त एक मौलिक मानव अधिकार है। यह कहता है कि **"सभी नागरिकों को अभिव्यक्ति और वाणी की स्वतंत्रता का अधिकार है।"** वहीं, अनुच्छेद 21 नागरिकों के जीवन के अधिकार से संबंधित है। भारतीय संविधान 1950 में यह स्पष्ट किया गया कि सरकारी विभागों से सूचना तक पहुंच का अधिकार लोकतंत्र के लिए मौलिक है। हालांकि, सूचना का अधिकार यह नहीं दर्शाता कि सूचना पूरी तरह और बिना किसी प्रतिबंध के प्रवाहित हो। अन्य मौलिक अधिकारों की तरह, सूचना के अधिकार पर भी कुछ तार्किक प्रतिबंध लगाए गए हैं। एक बार सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था, "इस देश के लोगों को यह जानने का अधिकार है कि सार्वजनिक कार्यों में, जो भी सार्वजनिक रूप से किया जा रहा है, उनके सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा क्या किया जा रहा है। उन्हें हर सार्वजनिक लेन-देन के सभी पहलुओं को जानने का अधिकार है।"

जानने का अधिकार, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की अवधारणा से प्राप्त होता है, पूर्णतः निरंकुश नहीं है। लेकिन यह एक ऐसा कारक है जो गोपनीयता के दावों पर सवाल उठाता है, खासकर जब लेन-देन का सार्वजनिक सुरक्षा पर कोई प्रभाव न हो। आम दिनचर्या के कार्यों को गोपनीयता के पर्दे में ढंकना सार्वजनिक हित में नहीं है। इस तरह की गोपनीयता शायद ही कभी वैध रूप से वांछित हो सकती है। आमतौर पर इसे राजनीतिक उद्देश्यों, व्यक्तिगत स्वार्थों, या नौकरशाही की प्रक्रियाओं को छिपाने के लिए वांछित किया जाता है।सार्वजनिक अधिकारियों की अपने कार्यों के लिए स्पष्टीकरण और औचित्य प्रदान करने की जिम्मेदारी, उत्पीड़न और भ्रष्टाचार के खिलाफ मुख्य सुरक्षा उपाय है।

सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019:

वर्तमान सरकार, जो अपनी दूसरी अवधि में सत्ता में है, ने अंततः सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019 को लागू करने में सफलता प्राप्त की है, जिसे 22 जुलाई, 2019 को लोकसभा द्वारा और 25 जुलाई, 2019 को राज्यसभा द्वारा पारित किया गया था। सूचना का अधिकार (मुख्य सूचना आयुक्त, सूचना आयुक्तों के पद, वेतन, भत्ते और अन्य शर्तें) नियम 2019, जो 31 अक्टूबर 2019 को प्रभावी हुआ, सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019 के तहत नए नियमों को स्थापित करता है। ये नियम सूचना आयुक्तों के कार्यकाल, वेतन और सेवा की शर्तों में महत्वपूर्ण परिवर्तन करते हैं, जो निम्नलिखित रूप में संक्षेपित किए गए हैं:

क. कार्यकाल - केंद्रीय सूचना आयोग (सी आई सी) और राज्य सूचना आयोग (एस आई सी) के मुख्य सूचना आयुक्तों और सूचना आयुक्तों का कार्यकाल पांच वर्षों से घटाकर तीन वर्ष कर दिया गया है। अधिकतम आयु सीमा 65 वर्ष पर अपरिवर्तित रही है। केंद्रीय और राज्य सरकारों के तहत सेवा में रहे सी आई सी और एस आई सी के मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों को सेवा से सेवानिवृत्त माना जाएगा।

ख. वेतन और भत्ते - सी आई सी और एस आई सी के सूचना आयुक्तों का वेतन घटाकर 2,25,000 रुपये प्रति माह कर दिया गया है (जो कि 25,000 रुपये की कमी है)। हालांकि, सी आई सी और एस आई सी के मुख्य सूचना आयुक्तों का वेतन अपरिवर्तित रहेगा (2,50,000 रुपये)। अन्य भत्तों में महंगाई भत्ता, यात्रा भत्ता, आवास, छुट्टियाँ, अर्जित अवकाश, यात्रा छूट और दैनिक भत्ते शामिल हैं, जो केंद्रीय और राज्य सरकारों के समान वेतन वाले अधिकारियों को मिलने वाले भत्तों के बराबर होंगे। नियमों में पेंशन से संबंधित कोई प्रावधान नहीं दिए गए हैं और इस प्रकार के मामलों को निर्णय लेने का अधिकार केंद्रीय सरकार को दिया गया है।

ग. केंद्रीय सरकार की विवेकाधीन शक्ति- नियम 21 केंद्रीय सरकार को यह पूर्ण अधिकार देता है कि वह 2019 के नियमों द्वारा विशिष्ट रूप से कवर न की गई अन्य भत्तों या सेवा शर्तों पर निर्णय ले, और इस प्रकार केंद्रीय सरकार का निर्णय बाध्यकारी होगा। यह नियमों की व्याख्या में केंद्रीय सरकार को अंतिम निर्णयकर्ता भी बनाता है।

सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019 के प्रभाव:

संशोधन को उचित ठहराने के लिए, डॉ. जितेंद्र सिंह, जो लोक सभा में बिल लेकर आए थे और जो सार्वजनिक शिकायतों और पेंशन के राज्य मंत्री हैं, ने कहा कि यह संशोधन एक उदार और मामूली तंत्र है, न कि सूचना के अधिकार कानून में एक बुनियादी संशोधन है | फिर भी, सरकार ने भारत के लोगों और विपक्ष की अनदेखी करते हुए इस संशोधन के लिए कुछ कारण प्रस्तुत किए। पहला तर्क यह था कि चुनाव आयोग जैसे संवैधानिक निकायों और सूचना आयोगों जैसे वैधानिक निकायों को समान दर्जा देना गलत था और यह जल्दबाजी का परिणाम था। यह वास्तव में हैरान करने वाली बात है कि वह अधिनियम, जिस पर सदन में व्यापक बहस और चर्चा हुई थी, उसे मंत्रियों द्वारा जल्दबाजी में पारित किया गया समझा गया।

सरकार यह भी दावा करती है कि चुनाव आयोग और सूचना आयोग के बीच समानता खींचना मूल अधिनियम में दोषपूर्ण है। चुनाव आयोग भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 के तहत एक संवैधानिक निकाय है, जबकि केंद्रीय सूचना आयोग और राज्य सूचना आयोग वैधानिक निकाय हैं, जो अधिनियम के प्रावधानों के तहत स्थापित किए गए हैं। और सीआईसी और एसआईसी के दर्जे को कम करके यह संशोधन इन दोनों संस्थाओं के दर्जे को समान करता है। "इसके अतिरिक्त, सरकार यह इंगीत करती है कि सीआईसी को सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश के बराबर दर्जा दिया गया है, लेकिन सीआईसी के निर्णयों को उच्च न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती है। इसलिए, सूचना के अधिकार

(आरटीआई) के समग्र ढांचे को मजबूत करने के लिए यह संशोधन लाया गया है। उनके अनुसार, संशोधन अधिनियम अधिनियम को सुव्यवस्थित और सुदृढ़ करता है और अधिक पारदर्शिता लाता है।"

भविष्य के लिए सुझाव:

जैसा कि भारत, शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देने के अपने प्रयासों में प्रगति कर रहा है, सूचना का अधिकार (आरटीआई) अधिनियम का गहन विश्लेषण करने से कई महत्वपूर्ण नीति निहितार्थ सामने आते हैं। ये निहितार्थ लोकतांत्रिक शासन को मजबूत करने और नागरिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भविष्य में किए जाने वाले नीति हस्तक्षेपों का मार्गदर्शन करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। एक महत्वपूर्ण नीति निहितार्थ यह है कि आरटीआई संरचना में उत्पन्न हो रहे चुनौतियों और दोषों से निपटने के लिए निरंतर विधायी संशोधनों की आवश्यकता है। इसमें अधिनियम के तहत अपवादों को स्पष्ट करना और उनका तर्कसंगतकरण, सार्वजनिक कार्यों को अंजाम देने वाली निजी संस्थाओं को इसके दायरे में लाना, और अनुपालन न करने पर दंडों को मजबूत करना शामिल है।

इसके अतिरिक्त, नीति निर्माता आरटीआई प्रक्रिया को सरल बनाने, नौकरशाही की अड़चनों को कम करने, और सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा जानकारी का सक्रिय रूप से खुलासा करने को बढ़ावा देने के उपायों पर विचार करें। इसके अलावा, पारदर्शिता और जवाबदेही के सिद्धांतों को व्यापक शासन सुधारों और नीति प्रयासों में शामिल करने की आवश्यकता है। इसमें आरटीआई विचारों को क्षेत्र-विशिष्ट नीतियों और पहलों में एकीकृत करना, पारदर्शिता उपायों के शासन परिणामों पर प्रभावों की निगरानी और मूल्यांकन के लिए तंत्र स्थापित करना, और सरकारी संस्थाओं में खुलापन और ग्रहणशीलता की संस्कृति को बढ़ावा देना शामिल है। पारदर्शिता और जवाबदेही को शासन के मौलिक सिद्धांत के रूप में स्थापित करके, नीति निर्माता यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि सार्वजनिक संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग हो, सार्वजनिक सेवाओं का प्रभावी वितरण हो, और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा हो।

इसके अलावा, विधायी संशोधनों के साथ-साथ, शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को मजबूत करने के लिए कई रणनीतियों को अपनाया जा सकता है, जो आरटीआई अधिनियम द्वारा स्थापित किए गए बुनियादी ढांचे पर आधारित हैं। सबसे पहले, अधिनियम को लागू करने के लिए संस्थागत क्षमताओं को बढ़ाने की आवश्यकता है, जिसमें सार्वजनिक सूचना अधिकारियों (पी आई ओ) का प्रशिक्षण, सूचना आयोगों की क्षमता को मजबूत करना, और रिकॉर्डों को डिजिटलीकरण करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी (आई टी) बुनियादी ढांचे में निवेश करना शामिल है, ताकि जानकारी तक ऑनलाइन पहुंच को सुविधाजनक बनाया जा सके। दूसरे, सरकारी संस्थाओं के भीतर खुलापन और जवाबदेही की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता अभियानों, कार्यशालाओं और क्षमता निर्माण पहलों की आवश्यकता है। सार्वजनिक अधिकारियों को पारदर्शिता को एक मौलिक सिद्धांत के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए और उन्हें यह समझने की आवश्यकता है कि सक्रिय रूप से जानकारी का खुलासा करना सार्वजनिक विश्वास और आस्था को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी तरह, नागरिकों को उनके सूचना

तक पहुंच के अधिकार का दावा करने, शासन प्रक्रियाओं में भाग लेने और सार्वजनिक अधिकारियों को उनके कृत्यों के लिए जिम्मेदार ठहराने के लिए सशक्त किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त, नागरिक समाज संगठन (सी एस ओ) और मीडिया पारदर्शिता और जवाबदेही की पैरवी करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो उनके सक्रियता, अध्ययन और निगरानी गतिविधियों के माध्यम से होती है। नीति निर्माता को शासन में सी एस ओ और मीडिया के साथ सहयोग करना चाहिए, उनके ज्ञान, नेटवर्क और संसाधनों का उपयोग करके कार्यान्वयन की निगरानी करने, दोषों की पहचान करने और परिवर्तनों की पैरवी करने के लिए। सरकारी संस्थाओं, सी एस ओ और मीडिया के बीच सहयोग को सुदृढ़ करने से पारदर्शिता बढ़ सकती है, सूचना के प्रसार को सुगम बनाया जा सकता है और शासन प्रक्रियाओं में नागरिकों की अधिक भागीदारी को प्रेरित किया जा सकता है। अंत में, भारत में शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देने के लिए भविष्य की रणनीतियों को एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें विधायी संशोधन, संस्थागत सुदृढ़ीकरण और हितधारक शामिल है। पारदर्शिता और जवाबदेही के विचारों को नीति निर्माण और क्रियान्वयन में एकीकृत करके, नीति निर्माता अच्छे शासन, लोकतांत्रिक सशक्तिकरण और समग्र विकास के लक्ष्यों की ओर प्रगति कर सकते हैं। शासन में नागरिकों की भागीदारी हमारे लोकतंत्र की स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान देती है। आरटीआई आंदोलन, जो जमीनी स्तर पर शुरू हुआ था, ने पहले विभिन्न राज्यों में और बाद में राष्ट्रीय स्तर पर आरटीआई अधिनियम के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। कई समाजसेवी व्यक्तियों ने आरटीआई अधिनियम को वास्तविकता में बदलने के लिए कड़ी मेहनत की। यह अधिनियम सार्वजनिक अधिकारियों को आम नागरिकों के प्रति जवाबदेह बनाकर हमारे लोकतंत्र को अधिक जीवंत बनाने की क्षमता रखता है। वास्तव में, हाल के वर्षों में ऐसा कोई अन्य अधिनियम नहीं रहा जिसने आरटीआई अधिनियम जितना जनमानस पर प्रभाव डाला हो।

आरटीआई आंदोलन केवल आरटीआई अधिनियम के पारित होने तक सीमित नहीं है। आरटीआई अधिनियम के सही अर्थ और भावना में क्रियान्वयन की निगरानी पूरे भारत में आरटीआई कार्यकर्ता लगातार कर रहे हैं। यह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि नागरिक इस अधिनियम का उपयोग किस प्रकार करते हैं। निष्कर्ष यह है कि लोकतांत्रिक शासन के लिए हमें आरटीआई अधिनियम के उपयोग को प्रोत्साहित करना होगा और इसके दुरुपयोग को हतोत्साहित करना होगा | फिर भी, शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देने की दिशा में विभिन्न चुनौतियाँ और बाधाएँ बनी रहती हैं। नौकरशाही प्रतिरोध, अपर्याप्त सक्रिय खुलासा, और प्रवर्तन तंत्र में कमियाँ लगातार आरटीआई अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन में अड़चन डालती हैं, जिससे इसके परिवर्तनकारी प्रभाव में कमी आती है। इन बाधाओं को पार करना सभी हितधारकों, जैसे नीति निर्माता, सार्वजनिक सेवक, नागरिक समाज समूह, और मीडिया, से समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है।

आगे बढ़ते हुए, निरंतर विधायी सुधार, क्षमता निर्माण के प्रयास, और हितधारकों के साथ संवाद आरटीआई ढांचे को मजबूत करने और इसके उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। नीति उपायों को अपवादों को स्पष्ट और तर्कसंगत बनाने, अनुपालन न करने पर दंड को मजबूत करने, और पारदर्शिता विचारों को व्यापक शासन सुधारों में शामिल करने पर केंद्रित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, जन जागरूकता बढ़ाने, संस्थागत क्षमताओं को सुदृढ़

करने, और सरकारी संस्थाओं, नागरिक समाज, और मीडिया के बीच सहयोग को बढ़ावा देने की पहलों पर ध्यान केंद्रित करना भी महत्वपूर्ण है। अंत में, शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देना केवल कानूनी दायित्वों से परे है; यह एक नैतिक आवश्यकता है और लोकतांत्रिक शासन का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। पारदर्शिता, जवाबदेही और नागरिक भागीदारी को अपनाकर, भारत एक अधिक समावेशी, उत्तरदायी, और सहभागितापूर्ण शासन मॉडल को विकसित कर सकता है जो सभी नागरिकों के हितों की सेवा करे। इस दृष्टिकोण को साकार करने के लिए सामूहिक प्रयास, राजनीतिक संकल्प, और लोकतंत्र, न्याय और अच्छे शासन के सिद्धांतों के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. कुंडू, एस. (2010). भारत में सूचना के अधिकार की लोकतांत्रिक आवश्यकता"। ग्लोबल मीडिया जर्नल.
2. कर्पगावल्ली, पी. (2019). भारतीय संविधान और मानवाधिकार: एक अवलोकन।
3. भट, आर. ए. (2015)। सूचना का अधिकार अधिनियम: सुशासन के लिए एक उपकरण। मानविकी और सामाजिक विज्ञान पर शोध, 5(5), 185-189।
4. कुंडू, एस. (2023)। सूचना का अधिकार अधिनियम और पारदर्शिता एवं भागीदारी सुनिश्चित करने वाली चुनौतियाँ। जस कॉर्पस एलजे, 4, 259।
5. भट्ट, आर.ए. (2015). सूचना का अधिकार अधिनियम: स्मारक से बहाली के लिए एक बड़ा कदम। ईस्टाईस्टाई, 5(7)
6. मल्लिक, एस.के. (2016)। सूचना का अधिकार और स्थानीय स्तर (गांव और ब्लॉक) पर लोगों की भागीदारी: बिहार और राजस्थान (भारत) का एक तुलनात्मक अध्ययन।
7. अंसारी, एम.एम. (2008)। विकास पर सूचना के अधिकार का प्रभाव: भारत के हालिया अनुभवों पर एक परिप्रेक्ष्य।
8. गुएडॉन, जे.सी. (1977)। मिशेल फौकॉल्ट: शक्ति का ज्ञान और ज्ञान की शक्ति। चिकित्सा के इतिहास का बुलेटिन, 51(2), 245-277।

48

भारत का डिजिटल युग: सरकारी नीतियों से सशक्त नागरिकता तक

आबिदा बानो
स्वतंत्र शोधकर्ता
शमीना खान
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
मुकार्रम बदर ख़ान
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
सोनी कुमारी ठाकुर
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

यूरोप परिषद के अनुसार, डिजिटल गवर्नेंस का मुख्य उद्देश्य तीन प्रमुख क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी का उपयोग करना है: *(स्रोत: यूरोपीय संघ परिषद)*

- सार्वजनिक प्रशासकों और समाज के बीच संवाद और संपर्क।
- लोकतांत्रिक प्रणाली के सभी चरणों में प्रभावी सार्वजनिक प्रशासन।
- नागरिकों को सेवाओं की निर्बाध और कुशल प्रावधान।

डिजिटल गवर्नेंस के अंतर्गत नागरिकों को सशक्त बनाने का दृष्टिकोण "अधिकतम शासन, न्यूनतम सरकार" की विचारधारा पर आधारित है। यह केवल एक आदर्श वाक्य नहीं है, बल्कि समावेशी और उत्तरदायी लोकतंत्र का एक आवश्यक तत्व है। डिजिटल गवर्नेंस के माध्यम से शासन की प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित होती है, जिससे निर्णय प्रक्रिया अधिक लोकतांत्रिक बनती है। डिजिटल गवर्नेंस के चार प्रमुख स्तंभ इसे प्रभावी बनाते हैं:

- **लोग**: नागरिकों को केंद्र में रखकर नीति निर्माण और कार्यान्वयन।
- **प्रक्रिया**: प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल और पारदर्शी बनाना।
- **प्रौद्योगिकी**: सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का कुशल उपयोग।
- **संसाधन**: उपलब्ध वित्तीय, मानव और भौतिक संसाधनों का प्रभावी प्रबंधन।

डिजिटल गवर्नेंस का मुख्य उद्देश्य नागरिकों तक सेवाओं को सुलभ और पारदर्शी तरीके से पहुँचाना है। यह प्रणाली केवल तकनीकी सुधार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शासन प्रणाली को अधिक लोकतांत्रिक और सहभागी बनाती

डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रम इसके प्रभाव का एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जिन्होंने भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज में परिवर्तित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डिजिटल गवर्नेंस का मुख्य उद्देश्य नागरिकों तक सेवाओं को तेज़, सुलभ और पारदर्शी तरीके से पहुँचाना है। यह प्रणाली केवल तकनीकी सुधार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शासन प्रणाली को अधिक लोकतांत्रिक और सहभागी बनाती है।

भारत में ई-गवर्नेंस का विकास: समयरेखा

भारत में ई-गवर्नेंस का उदय एक सुविचारित और चरणबद्ध प्रक्रिया का परिणाम है, जिसने प्रशासन को पारंपरिक पद्धतियों से डिजिटल प्रणाली की ओर परिवर्तित किया। यह परिवर्तन न केवल प्रशासनिक कार्यों को सरल और पारदर्शी बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है, बल्कि यह नागरिकों और सरकार के बीच संबंधों को सुदृढ़ करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

1. **प्रारंभिक चरण (1970-1990):** भारत में ई-गवर्नेंस का विचार 1970 के दशक में साकार हुआ, जब इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग का उद्देश्य प्रशासन में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों और सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग बढ़ाना था। 1977 में, भारत सरकार ने राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र की स्थापना की। इस पहल ने सरकारी विभागों में कंप्यूटरीकरण की नींव रखी। 1980 के दशक तक, अधिकांश सरकारी कार्यालय कम्प्यूटरीकृत हो गए, जिससे सूचना के प्रसार और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की दक्षता में सुधार हुआ। यह चरण भारतीय प्रशासनिक ढाँचे में ई-गवर्नेंस के लिए आधारभूत संरचना तैयार करने का समय था।
2. **सूचना प्रौद्योगिकी और कानूनी आधार (1990-2000):** 1990 का दशक भारत में ई-गवर्नेंस के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। इंटरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार ने सरकारी प्रक्रियाओं में डिजिटल साधनों के उपयोग को बढ़ावा दिया। 1999 में सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की स्थापना: यह मंत्रालय डिजिटल गवर्नेंस को संस्थागत रूप देने और इसकी व्यापकता को बढ़ाने के लिए स्थापित किया गया। 2000 में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम पारित हुआ - यह अधिनियम इलेक्ट्रॉनिक लेन-देन को कानूनी मान्यता प्रदान करने वाला पहला कानून था। इसने डिजिटल अनुबंध, ई-हस्ताक्षर और डेटा संरक्षण को वैध बनाया। *(स्रोत:इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय)*
3. **ई-गवर्नेंस की शुरुआती पहल (2000-2010):** भारत में पहली व्यापक ई-गवर्नेंस परियोजना अक्षय 2000 के दशक में केरल में शुरू की गई। यह परियोजना ई-लर्निंग, ई-लेनदेन और ई-गवर्नेंस के माध्यम से नागरिकों को डिजिटल सेवाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू की गई थी। राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना (National e-Governance Plan) 2006 में भारत सरकार ने की शुरुआत की। यह योजना मिशन मोड प्रोजेक्ट्स के माध्यम से दैनिक प्रशासनिक कार्यों को डिजिटलीकरण करने के उद्देश्य से तैयार की गई थी। इस योजना के तहत 27 मिशन मोड प्रोजेक्ट्स को लागू किया गया, जिनमें भूमि अभिलेख डिजिटलीकरण, पासपोर्ट सेवाएँ, और ऑनलाइन कर भुगतान जैसे क्षेत्र शामिल थे।
4. **डिजिटल इंडिया (2015-वर्तमान):** 2015 में भारत सरकार ने डिजिटल इंडिया कार्यक्रम की शुरुआत की, जिसने ई-गवर्नेंस को एक व्यापक और सशक्त दिशा प्रदान की। इस पहल का उद्देश्य नागरिकों तक डिजिटल सेवाएँ सुलभ बनाना और प्रशासन को अधिक पारदर्शी बनाना था। डिजिटल इंडिया के प्रमुख स्तंभ हैं: प्रत्येक

नागरिक के लिए डिजिटल अवसंरचना को एक उपयोगी सुविधा के रूप में उपलब्ध कराना, आवश्यकता के अनुसार शासन और सेवाओं की उपलब्धता, नागरिकों का डिजिटल सशक्तिकरण। *(स्रोत: इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय)*

- **ई-क्रांति (e-Kranti)**: डिजिटल इंडिया का एक महत्वपूर्ण घटक ई-क्रांति है, जिसके तहत 44 नई मिशन मोड परियोजनाओं को शुरू किया गया। इनमें स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि और वित्तीय सेवाएँ शामिल हैं। उदाहरण के लिए *ई-शिक्षा* पहल के तहत, सभी स्कूलों को ब्रॉडबैंड से जोड़ा गया है और 2.5 लाख स्कूलों में मुफ्त वाई-फाई उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। इसी तरह, *ई-स्वास्थ्य* के माध्यम से सरकारी अस्पतालों में ऑनलाइन पंजीकरण और चिकित्सा रिकॉर्ड प्रबंधन की सुविधा दी जा रही है।
- **डिजी लॉकर और यूपीआई**: डिजी लॉकर ने नागरिकों को अपने दस्तावेज़ों का डिजिटल रूप से भंडारण और साझा करने की सुविधा दी है। अब तक 30 करोड़ से अधिक उपयोगकर्ता डिजी लॉकर का लाभ उठा चुके हैं, और 675 करोड़ से अधिक दस्तावेज़ डिजिटल रूप से उपलब्ध कराए गए हैं। यूपीआई, भारत का अग्रणी डिजिटल भुगतान मंच है, जो सरल और सुरक्षित लेनदेन सुनिश्चित करता है। जून 2024 में, यूपीआई के माध्यम से 1,388 करोड़ से अधिक वित्तीय लेनदेन हुए, जिससे यह न केवल डिजिटल भुगतान को व्यापक रूप से लोकप्रिय बनाने में सफल हुआ, बल्कि वित्तीय समावेशन को भी गांवों और जमीनी स्तर तक ले गया है। *(स्रोत: प्रेस सूचना ब्यूरो)*

ई-गवर्नेंस के प्रकार

डिजिटल गवर्नेंस में सेवाओं का आदान-प्रदान तीन प्रमुख लक्षित समूहों- नागरिकों, व्यवसायों और सरकारी विभागों के बीच किया जाता है। *यादव और सिंह (2013)* द्वारा पहचाने गए डिजिटल गवर्नेंस के चार प्रमुख मॉडल निम्नलिखित हैं, जो शासन की दक्षता और पारदर्शिता को सुनिश्चित करते हैं:

1. **सरकार से नागरिक (Government to Citizen):** इस के तहत, सरकार अपने नागरिकों को विभिन्न सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करती है। डिजिटल माध्यम से नागरिकों के लिए सरकारी सेवाओं का सुगम और तेज़ रूप से उपलब्ध कराना इसका मुख्य उद्देश्य है। ऑनलाइन बिल भुगतान, विभिन्न प्रमाण पत्रों का ऑनलाइन आवेदन, और संपत्ति रिकॉर्ड की डिजिटल प्रतियाँ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस मॉडल के माध्यम से नागरिकों को स्मार्ट, सरल, और प्रभावी शासन का अनुभव होता है, जिससे उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है।
2. **सरकार से सरकार (Government to Government):** इस का उद्देश्य सरकारी विभागों के बीच सूचना और सेवाओं का आदान-प्रदान सुनिश्चित करना है। इसमें सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग सरकारी तंत्र के भीतर विभिन्न संगठनों और विभागों के बीच कार्यों को सुगम बनाने में किया जाता है। यह मॉडल सरकारी एजेंसियों के बीच डेटा और सेवाओं के प्रवाह को बढ़ाता है, जिससे सरकारी कार्यों में तीव्रता और प्रभावशीलता आती है।

3. **सरकार से व्यवसाय (Government to Business):** इस के अंतर्गत सरकार, निजी क्षेत्र और व्यवसायों के बीच संबंधों को और अधिक पारदर्शी, प्रभावी और आसान बनाने के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग करती है। यह मॉडल व्यवसायों को सरकारी प्रक्रियाओं में भाग लेने में आसानी प्रदान करता है। यह लाइसेंसिंग, परमिट, कर संग्रह, पेटेंट अस्वीकृति, अनुमोदन, और बिल भुगतान जैसी प्रक्रियाओं को सरल बनाता है। इस मॉडल के माध्यम से, व्यापारिक माहौल को अधिक पारदर्शी और प्रभावी बनाया जाता है, जिससे निजी क्षेत्र में विश्वास और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलता है और एक ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें व्यवसाय बिना किसी रुकावट के सरकारी प्रक्रियाओं का पालन कर सकें और उनकी उत्पादकता में वृद्धि हो।
4. **सरकार से कर्मचारी (Government to Employee):** यह मॉडल सरकारी कर्मचारियों के लिए डिजिटलीकरण की प्रक्रिया को सुगम बनाता है, ताकि उनके कार्यों को अधिक पारदर्शी और सुसंगत बनाया जा सके। इसके तहत, कर्मचारियों को उनकी व्यक्तिगत जानकारी, कार्य प्रदर्शन, शिकायतों और मूल्यांकन जैसी सेवाएँ डिजिटल माध्यम से प्रदान की जाती हैं। इसके माध्यम से कर्मचारियों को अपनी समस्याओं और सुझावों को सीधे तौर पर सरकार के समक्ष रखने का अवसर मिलता है।

डिजिटल शासन: अनुभव एवं प्रमुख पहल

1. डिजिटल इंडिया कार्यक्रम

भारत सरकार ने 2015 में डिजिटल इंडिया कार्यक्रम की शुरुआत की, जिसका उद्देश्य देश को डिजिटल रूप से सशक्त समाज और ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना है। इसका मुख्य उद्देश्य डिजिटल अवसंरचना तक नागरिकों की पहुंच सुनिश्चित करना, मांग-आधारित सेवाएं प्रदान करना, और नागरिकों को डिजिटल रूप से सशक्त बनाना है। डिजिटल इंडिया के तहत कई महत्वपूर्ण पहल शुरू की गईं, जिनमें प्रधानमंत्री जन धन योजना, जन धन-आधार-मोबाइल, ई-हॉस्पिटल, वाई-फाई हॉटस्पॉट, डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर, भारत नेट, स्मार्ट सिटीज़ और डिजी लॉकर शामिल हैं। 2023 तक, डिजिटल भुगतान में 78 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि देखी गई।

2. सामान्य सेवा केंद्र

सामान्य सेवा केंद्र ग्राम स्तरीय उद्यमियों के माध्यम से ग्रामीण और शहरी समुदायों को डिजिटल सेवाएं प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। वर्तमान में भारत में 5.31 लाख से अधिक सामान्य सेवा केंद्र कार्यरत हैं। ये केंद्र 400 से अधिक सेवाएं प्रदान करते हैं, जिनमें आधार अपडेट, डिजिटल प्रमाणपत्र, पासपोर्ट सेवाएं, ऑनलाइन बिल भुगतान आदि शामिल हैं।

3. डिजी लॉकर

डिजी लॉकर भारत सरकार द्वारा 2015 में शुरू की गई एक अभिनव पहल है। इसका उद्देश्य नागरिकों को महत्वपूर्ण दस्तावेजों को डिजिटल रूप से संग्रहीत करने की सुविधा प्रदान करना है। यह पहल "डिजिटल इंडिया" कार्यक्रम का हिस्सा है और इसका उद्देश्य कागजरहित प्रशासन को बढ़ावा देना है। 2023 तक डिजी लॉकर के 11.7 करोड़ से अधिक उपयोगकर्ता हैं। यह सेवा पैन कार्ड, मार्कशीट, आधार कार्ड और अन्य दस्तावेजों को भौतिक रूप में रखने की आवश्यकता को समाप्त करती है। *(स्रोत: प्रेस सूचना ब्यूरो, 2023)*

4. राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन

राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन 15 अगस्त 2020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा शुरू किया गया। इसका उद्देश्य स्वास्थ्य सेवा को डिजिटल रूप से सुलभ और कुशल बनाना है। इस में स्वास्थ्य आईडी, डिजी डॉक्टर और व्यक्तिगत स्वास्थ्य रिकॉर्ड जैसी विशेषताएं शामिल हैं। 2023 तक, 20 करोड़ से अधिक नागरिकों को स्वास्थ्य आईडी प्रदान की गई है। *(स्रोत: स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)*

5. इंटरनेट बैंकिंग और वित्तीय समावेशन

डिजिटल बैंकिंग ने भारत में वित्तीय समावेशन को एक नई दिशा दी है। एटीएम, मोबाइल बैंकिंग और इंटरनेट बैंकिंग ने बैंकिंग सेवाओं को सरल और सुलभ बना दिया है। डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर ने सरकारी योजनाओं का लाभ सीधे नागरिकों तक पहुंचाना सुनिश्चित किया। इंटरनेट बैंकिंग ने भ्रष्टाचार को कम करने और पारदर्शिता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

6. यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (यूपीआई)

यूपीआई भारत का अग्रणी डिजिटल भुगतान प्लेटफ़ॉर्म है, जो विभिन्न बैंकों और भुगतान प्रणालियों को एकीकृत करता है। 330 से अधिक बैंकों और 10 करोड़ से अधिक उपयोगकर्ताओं से जुड़ा है। अक्टूबर 2023 तक, यूपीआई ने 12 लाख करोड़ से अधिक के लेन-देन को प्रोत्साहित किया। यह पहल भारत को वैश्विक स्तर पर डिजिटल भुगतान का नेतृत्व करने वाले देशों में शामिल करती है।

पहल	लक्ष्य	वर्तमान स्थिति
डिजिटल इंडिया	नागरिक सेवाओं को ऑनलाइन करना	95% से अधिक ग्राम पंचायतें डिजिटल कनेक्टिविटी से जुड़ीं
आधार आधारित सेवाएँ	नागरिक पहचान को केंद्रीकृत करना	130 करोड़ से अधिक आधार जारी
यूपीआई	डिजिटल भुगतान को सरल बनाना	10 अरब से अधिक लेन-देन प्रति माह
ई-नाम	किसानों को उचित मूल्य दिलाना	1.7 करोड़ किसान पंजीकृत

वैश्विक परिप्रेक्ष्य: डिजिटल गवर्नेंस के उदाहरण

- एस्टोनिया: डिजिटल गवर्नेंस के क्षेत्र में एस्टोनिया एक अग्रणी देश है। इसे दुनिया का डिजिटल रूप से सबसे उन्नत देश माना जाता है। एस्टोनिया ने **ई-रेजिडेंसी** कार्यक्रम की शुरुआत की, जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति डिजिटल रूप से एस्टोनिया का निवासी बन सकता है और व्यापार से लेकर बैंकिंग तक की सेवाएँ प्राप्त

  कर सकता है। इसके अलावा, एस्टोनिया में नागरिकों को सरकारी सेवाओं के लिए एक ही डिजिटल प्लेटफॉर्म प्रदान किया गया है, जहाँ 99 प्रतिशत से अधिक सेवाएँ ऑनलाइन उपलब्ध हैं। *(स्रोत: एस्तोनिया गणराज्य)*

- दक्षिण कोरिया: दक्षिण कोरिया का **स्मार्ट गवर्नेंस मॉडल** नागरिक-केंद्रित डिजिटल गवर्नेंस का एक उदाहरण है। सरकार ने नागरिकों के लिए एकीकृत डिजिटल प्लेटफॉर्म बनाया है, जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध हैं। इसके अलावा, दक्षिण कोरिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) और ब्लॉकचेन तकनीक का उपयोग डिजिटल गवर्नेंस को और अधिक सुरक्षित और प्रभावी बनाने के लिए किया जा रहा है।
- संयुक्त अरब अमीरात (यूएई): यूएई ने डिजिटल गवर्नेंस में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए **यूएई स्मार्ट गवर्नमेंट** पहल की शुरुआत की। इस पहल के तहत नागरिकों को मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। इसके अलावा, यूएई ने **ब्लॉकचेन तकनीक** का उपयोग करके सरकारी प्रक्रियाओं को सुरक्षित और तेज़ बनाया है।

डिजिटल शासन की चुनौतियाँ

ई-गवर्नेंस विकास सूचकांक, 2024 संयुक्त राष्ट्र का आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग हर दो वर्ष में ई-गवर्नेंस विकास सूचकांक का सर्वेक्षण करता है। यह सूचकांक मापता है कि कोई देश सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करके सार्वजनिक सेवाओं को प्रभावी ढंग से प्रदान करने में कितना सक्षम है। ई-गवर्नेंस के विकास को तीन प्रमुख आयामों के आधार पर आंका जाता है:

- **ऑनलाइन सेवाओं की उपलब्धता**: सरकारी सेवाओं और सूचनाओं की डिजिटल रूप से उपलब्धता।
- **दूरसंचार अवसंरचना**: इंटरनेट और संचार नेटवर्क की गुणवत्ता और पहुँच।
- **मानव क्षमता**: नागरिकों की डिजिटल साक्षरता और प्रशासनिक दक्षता।

2024 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत 193 देशों में 97वें स्थान पर है। यह स्थिति दर्शाती है कि भारत को डिजिटल शासन के क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की आवश्यकता है। (*स्रोत:* संयुक्त राष्ट्र ई-गवर्नेंस सर्वेक्षण, 2024)

1. **डिजिटल डिवाइड (Digital Divide):** भारत में डिजिटल डिवाइड एक प्रमुख बाधा है। लगभग 50 प्रतिशत आबादी के पास इंटरनेट की पहुँच नहीं है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच तकनीकी पहुँच में बड़ा अंतर है। ग्रामीण भारत में केवल 37 प्रतिशत लोग इंटरनेट का उपयोग कर पाते हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह आँकड़ा 67 प्रतिशत है *(स्रोत: ट्राई रिपोर्ट, 2023)।* महिलाओं और पुरुषों के बीच भी डिजिटल डिवाइड व्यापक है। पुरुषों की तुलना में केवल 33 प्रतिशत महिलाएँ डिजिटल उपकरणों का उपयोग करती हैं।
2. **साइबर सुरक्षा और डेटा गोपनीयता:** डिजिटल गवर्नेंस में साइबर हमलों और डेटा चोरी का खतरा बढ़ गया है। 2022 में, भारत साइबर हमलों के मामले में विश्व में दूसरे स्थान पर रहा (*स्रोत: सीईआरटी-आईएन रिपोर्ट, 2023)*। भारत सरकार ने डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन बिल 2023 पेश किया है। इस कानून का उद्देश्य नागरिकों की व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा सुनिश्चित करना और संगठनों को डेटा प्रबंधन के लिए जिम्मेदार बनाना है।

3. **लागत और वित्तीय बाधाएँ:** डिजिटल गवर्नेंस के लिए आवश्यक अवसंरचना की स्थापना और रखरखाव महँगा है। ग्रामीण भारत में ब्रॉडबैंड और डिजिटल उपकरणों की स्थापना में प्रति ग्राम पंचायत औसतन 50 लाख रुपये की लागत आती है। कई राज्य सरकारें इस खर्च का वहन करने में असमर्थ हैं। डिजिटल गवर्नेंस परियोजनाओं में निजी क्षेत्र को शामिल करना चाहिए। 2023 में, भारत सरकार ने 1 लाख करोड़ रुपये के डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर विकास के लिए निजी कंपनियों को आमंत्रित किया है। *(स्रोत: एनआईआईटी फाउंडेशन)*
4. **डिजिटल साक्षरता और जागरूकता की कमी:** डिजिटल गवर्नेंस की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि नागरिक डिजिटल उपकरणों और सेवाओं का उपयोग कितना कुशलता से कर पाते हैं। भारत में अभी भी 60 प्रतिशत लोग डिजिटल सेवाओं के उपयोग में असहज महसूस करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कई नागरिक ऑनलाइन सेवाओं का उपयोग करने में झिझकते हैं। डिजिटल साक्षरता अभियान को स्कूलों और कॉलेजों में शामिल करने तक। डिजिटल सेवा केंद्रों (Common Services Centres) के माध्यम से नागरिकों को प्रशिक्षित करने से डिजिटल साक्षरता दर में वृद्धि होगी। 2023 में, डिजिटल सेवा केंद्रों ने 5 लाख से अधिक ग्रामीण नागरिकों को डिजिटल लेन-देन के लिए प्रशिक्षित किया।
5. **तकनीकी अवसंरचना की सीमाएँ:** भारत की डिजिटल अवसंरचना में कई खामियाँ हैं, जैसे: धीमी इंटरनेट स्पीड, 5G सेवाओं की सीमित उपलब्धता, तकनीकी अपग्रेडेशन में देरी। डिजिटल अवसंरचना में सुधार के लिए अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देने की जरूरत है। यदि इन पहलुओं पर ध्यान दिया जाए, तो भारत न केवल डिजिटल अवसंरचना को मजबूत बना सकता है, बल्कि नागरिकों को बेहतर डिजिटल सेवाएँ प्रदान कर सकता है और वैश्विक स्तर पर डिजिटल नेतृत्व की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी और ई-गवर्नेंस का संयोजन

ई-गवर्नेंस के माध्यम से सरकार ने कई क्षेत्रों में तकनीकी नवाचारों को अपनाया है। इन नवाचारों ने न केवल प्रशासनिक कार्यों की दक्षता बढ़ाई है, बल्कि नागरिकों के जीवन को भी सरल बनाया है, में नवाचार निम्नवत हैं-

- **क्लाउड कंप्यूटिंग और डेटा प्रबंधन**: क्लाउड कंप्यूटिंग का उपयोग डेटा संग्रहण और साझा करने के लिए बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। उदाहरणस्वरूप, भारत में डिजी लॉकर के माध्यम से नागरिक अपने महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों को सुरक्षित और डिजिटल रूप में संग्रहीत कर सकते हैं। यह सेवा भौतिक दस्तावेजों की आवश्यकता को समाप्त करती है और दस्तावेज़ों तक पहुँच को आसान बनाती है।
- **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence)**: कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग नागरिकों की शिकायतों को हल करने, डेटा विश्लेषण, और नीतिगत निर्णयों को कुशल बनाने के लिए किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र सरकार ने अपने स्वास्थ्य विभाग में एआई आधारित प्रणाली लागू की है, जो रोगियों की प्राथमिकता के अनुसार उपचार की योजना बनाती है। भारत में अन्य राज्यों और संगठनों ने भी एआई को अपनाया है। जैसे, बेंगलुरु स्थित स्टार्टअप आर्टेलस (*Artelus)* ने नेत्र रोगों के निदान के लिए एआई का उपयोग किया, जिससे 81,000 से अधिक मरीजों को लाभ हुआ। इसके अलावा, महाराष्ट्र में पब्लिक हेल्थ सिस्टम में एआई आधारित

समाधानों से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत किया जा रहा है। *(स्रोत: नेशनल मेडिकल जर्नल ऑफ इंडिया)*

- **ब्लॉकचेन तकनीक (Blockchain Technology)**: ब्लॉकचेन तकनीक ने डेटा की सुरक्षा और पारदर्शिता को बढ़ावा दिया है। इसका उपयोग भूमि अभिलेखों के डिजिटलीकरण और पब्लिक प्रोक्योरमेंट में किया जा रहा है। आंध्र प्रदेश सरकार ने ब्लॉकचेन का उपयोग भूमि रिकॉर्ड को सुरक्षित रखने के लिए सफलतापूर्वक लागू किया है।
- **इंटरनेट ऑफ थिंग्स (Internet of Thing)**: इंटरनेट ऑफ थिंग्स आधारित स्मार्ट सिटी परियोजनाओं ने शहरी प्रबंधन को अधिक प्रभावी बनाया है। स्मार्ट ट्रैफिक मैनेजमेंट, जल और ऊर्जा प्रबंधन जैसी सुविधाएँ इसके के माध्यम से संभव हो रही हैं। पुणे और इंदौर जैसे शहरों में स्मार्ट सिटी परियोजनाओं के तहत इसका व्यापक उपयोग हो रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी को, विशेषकर विकासशील देशों में तीव्र और क्रांतिकारी बनाने के एक प्रभावी उपकरण के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। इंटरनेट और संचार प्रौद्योगिकी की तीव्र प्रगति ने सरकारों को अपने सबसे दूरस्थ क्षेत्रों में भी ई-गवर्नेंस की पहल को लागू करने का अवसर दिया है, जिससे वे उन नागरिकों तक सरकारी सेवाएँ पहुँचाने में सक्षम हो रही हैं जिन्हें पहले इन सेवाओं से वंचित रखा जाता था। डिजिटल शासन ने समाज के निचले स्तरों पर भी सार्वजनिक सेवाओं को बढ़ावा दिया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सरकारों ने नागरिकों को बेहतर जानकारी और सेवाएं प्रदान करने के लिए कई प्रभावी और लागत-प्रभावी ई-गवर्नेंस परियोजनाओं की शुरुआत की है। इन परियोजनाओं को सफलतापूर्वक लागू किया जा रहा है और नागरिक इनसे लाभान्वित हो रहे हैं। डिजिटल गवर्नेंस को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए सरकारों को डिजिटल अवसंरचना में सुधार और निरंतर नवाचार की दिशा में कार्य करना होगा। इसमें न केवल तकनीकी उपकरणों का उपयोग बढ़ाना, बल्कि नागरिकों की डिजिटल साक्षरता को भी बढ़ावा देना आवश्यक है। इसके साथ ही, सरकारी योजनाओं और सेवाओं को अधिक समावेशी और पहुंच योग्य बनाने के लिए निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच बेहतर समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। इसके माध्यम से सरकार न केवल प्रशासनिक कार्यों में दक्षता लाने में सफल होगी, बल्कि यह नागरिकों के जीवन में भी सकारात्मक बदलाव लाएगी, जिससे एक अधिक समावेशी और पारदर्शी शासन व्यवस्था स्थापित होगी।

संदर्भ सूची

1. Addink, H. (2019). Democracy and good governance. *Good Governance*, 91-96. https://doi.org/10.1093/oso/9780198841159.003.0006 *Agriculture Marketing*. (n.d.). https://agmarknet.gov.in/

2. Beniwal, V. (2015, June 21). *E-Governance in India: Prospects and Challenges*. https://www.academia.edu/5831125/E_Governance_in_India_Prospects_and_Challenges
3. Behera, B. (2015). *E-governance mediated agriculture for sustainable life in India | Semantic Scholar*. https://www.semanticscholar.org/paper/E-governance-mediated-agriculture-for-sustainable-Behera-Das/15481673c8af93303769703a615a1347ed67af3e
4. Bhattacharya, M. (2013). *New Horizons of Public Administration*. New Delhi: Jawahar Publishers.
5. ClearTax. (2021, July 28). *E-governance in India*. Income Tax efiling in India for FY 2021-22 (AY 2022-23): ClearTax | Upload your Form-16 to e-File Income Tax Returns. https://cleartax.in/s/e-governance
6. Das, R. K., & Patra, M. R. (2013). A Service Oriented Design Approach for E-Governance Systems. *International Journal of Advanced Information Technology*. https://doi.org/10.5121/ijitcs.2013.3301
7. Dwivedi and Bharti (2005): 'E-Governance in India- Problems and Acceptability', *Journal of Theoretical and Applied Information Technology*, New Delhi, Pp. 37-42.
8. *e-Green Watch. Integrated e-Governance Portal for Automation, Streamlining & Effective Management of Processes related to Plantation & Other Forestry Works*. (n.d.). https://egreenwatch.nic.in/
9. E-governance in India: Status, Opportunities & Challenges. (2022). *International Journal of Progressive Research in Engineering Management and Science*. https://doi.org/10.58257/ijprems30469
10. *E-Government Development Index (EGDI) under Global Indices | Ministry of Electronics and Information Technology, Government of India*. ("e-Governance Infrastructure | Ministry of Electronics and Information ...") (n.d.). https://www.meity.gov.in/e-government-development-index-egdi-under-global-indices
11. *eGovernment and digital public services*. (2023, January 9). Shaping Europe's Digital Future. https://digital-strategy.ec.europa.eu/en/policies/egovernment

12. Gajendra, S., Xi, B., & Wang, Q. (2012). E-government: Public participation and ethical issues. *Journal of E-Governance*, *35*(4), 195-204. https://doi.org/10.3233/gov-2012-0320
13. https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1847837#:~:text=So%20far%2C%205.31%20Lakh%20CSCs,services%20to%20citizen%20through%20mobile.
14. INDIA, T. H. (2016, February 2). *E-governance initiatives in India*. Andhra Pradesh Breaking News, Telangana News, Hyderabad News Updates, National News, Breaking News. https://www.thehansindia.com/posts/index/Hans/2016-02-01/E-Governance-Initiatives-in-India/204109
15. Kumar, D. (2017). E-governance: good governance in India. *SSRN Electronic Journal*. https://doi.org/10.2139/ssrn.2908780
16. Kumar, P and Kumar, D &et al. (2013). ICT in Local Self Governance: A study of Rural India. *International Journal of Computer Applications*. Retrieved February 23, 2018, from https://arxiv.org/ftp/arxiv/papers/1401/1401.0591.pdf.
17. *National e-Governance Plan | Ministry of Electronics and Information Technology, Government of India*. (n.d.). https://www.meity.gov.in/divisions/national-e-governance-plan
18. *NeSDA*. (n.d.). https://nesda.gov.in/publicsite/nesdaassessment.php
19. Shah, M. (2007). E-governance in India: Dream or reality. *International Journal of Education and Development Using ICT*, *3*(2), 98. http://ijedict.dec.uwi.edu/include/getdoc.php?id=2391&article=332&mode=pdf
20. Subramanian, C. (2012). E-Governance: A Key to Good Governance in India. *International Journal of Recent Scientific Research*. Retrieved March 3, 2018, from http://recentscientific.com/sites/default/files/Download_228.pdf.
21. Sundaram, S., Nundy, S., & Mallick, T. K. (2020). How India is dealing with COVID-19 pandemic. *SensorsInternational*, *1*,100021. https://doi.org/10.1016/j.sintl.2020.100021
22. Thomas, A., 2022. National e-Governance Plan in Agriculture (NeGP-A). [online] India Filings. Available at:https://www.india_lings.com/learn/national-e-governance-plan-in-agriculture/
23. *UN E-Government Survey 2024*. (n.d.). https://publicadministration.un.org/egovkb/en-us/Reports/UN-E-Government-Survey-2024

24. Verma, R. K., & Kumari, A. (2010). E-Governance at grassroots level in South Asia: A study of citizen-centric E-panchayats in India. *Asia-Pacific Journal of Rural Development*, *20*(1), 131-150. https://doi.org/10.1177/1018529120100109
25. *VTrckS: Vaccine Tracking System | CDC*. (n.d.). https://www.cdc.gov/vaccines/programs/vtrcks/index.html
26. Yadav, N. (2013, August 15). *E-Governance: Past, Present and Future in India*. arXiv.org. https://arxiv.org/abs/1308.3323
27. Yadav, K. and Tiwari, S. (2014). E-Governance in India: Opportunities and Challenges, Advance in Electronic and Electric Engineering. ISSN 2231-1297, Vol. 4, NO. 6, pp. 675-680
28. Zubair Ahmed Khan "E-governance: An Approach to advancing Rural Development through IT Sector." *International Journal of Computer Sciences and Engineering* 07.11 (2019): 19-28

49

भारत की विदेश नीति और संविधान: संप्रभुता, राष्ट्रीय हित और वैश्विक संबंध

नरेन्द्र कुमार आर्य
सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार (भारत)

1. भारतीय विदेश नीति के संवैधानिक आधार

भारत की विदेश नीति इसके संवैधानिक मूल्यों, ऐतिहासिक विरासतों और रणनीतिक हितों का एक जटिल मिश्रण है। हालांकि संविधान स्पष्ट रूप से विदेश नीति के लिए रूपरेखा प्रदान नहीं करता है, लेकिन यह महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांत प्रदान करता है जो भारत की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति और वैदेशिक नीति के उद्घाटन को प्रभावित करते हैं। संविधान संप्रभुता, गुटनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक शासन, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को दर्शाता है, जो इसके विदेशी संबंधों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत की विदेश नीति, जो इसके संविधान पर आधारित है, बदलती वैश्विक गतिशीलता और राष्ट्रीय हितों के जवाब में विकसित हुई है।

1.1 संवैधानिक ढांचा और विदेश नीति निर्देश: एक विश्लेषण

भारत की विदेश नीति के मूल में इसके ढांचे में निहित संवैधानिक प्रावधानों, विशेष रूप से राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के साथ एक विशिष्ट संबंध है। हम पड़ताल शुरु करेंगे अनुच्छेद 51 से, जो इन सिद्धांतों में सबसे महत्वपूर्ण है, जो एक ऐसे दृष्टिकोण को व्यक्त करता है जो व्यापक दुनिया के साथ देश के जुड़ाव को दर्शाता है और निर्देशित करता है। हालाँकि ये निर्देश सख्त न्यायिक अर्थों में कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं, लेकिन राज्य की विदेश नीति को निर्देशित करने में उनके नैतिक और राजनीतिक महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है। ये सिद्धांत मानक और व्यावहारिक दिशा-निर्देश प्रदान कर भारत के विदेशी संबंधों को निर्देशित करने के साथ ही राष्ट्रीय हितों को व्यापक मानवीय आदर्शों के साथ संतुलित करते हैं। इस प्रकार, यह समझना कि संवैधानिक निर्देश भारत के अंतर्राष्ट्रीय आचरण के साथ कैसे जुड़ते हैं, इसके लिए विकसित होते वैश्विक संदर्भों में इसके गहरे निहितार्थों की भी जाँच की आवश्यकता है।

अनुच्छेद 51 (क) शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, आपसी सम्मान और निष्पक्ष व्यवहार पर आधारित एक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की कल्पना करता है, ये सिद्धांत कूटनीति के प्रति भारत के दृष्टिकोण में दिखायी पड़ते हैं। इसके प्रमुख तत्वों में, अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देना सबसे प्रमुख है, जो एक ऐसी दुनिया को बढ़ावा देने के लिए भारत की दीर्घकालिक प्रतिबद्धता का सूचक है जहाँ युद्ध और हिंसक संघर्ष का सहारा ना लिया जाये। यह प्रतिबद्धता भारत के कूटनीतिक विमर्श में गहराई से अंतर्निहित है और संयुक्त राष्ट्र जैसी वैश्विक संस्थाओं में इसकी सक्रिय भागीदारी को दर्शाती है, जहां भारत ने सामूहिक सुरक्षा उपायों और शांतिपूर्ण संघर्ष समाधान तंत्रों की लगातार वकालत की है। संयुक्त राष्ट्र के शांति अभियानों में भारत का योगदान, विशेष रूप से क्षेत्रीय और वैश्विक संघर्ष के समय में, उपरोक्त अनुच्छेद द्वारा समर्थित संवैधानिक लोकाचार का एक यथार्थपरक प्रतिबिंब के रूप में कार्य करता है।

साथ ही, उक्त अनुच्छेद का भाग (ख), राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानजनक संबंधों को बनाए रखना, निष्पक्षता, पारदर्शिता और आपसी सम्मान पर आधारित कूटनीति को बढ़ावा देने के लिए ये भारत के समर्पण को रेखांकित करता है। यह सिद्धांत जबरदस्ती और साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक प्रथाओं के प्रति एक स्थायी विरोध का प्रतिनिधित्व करता है, जो संप्रभुता और आत्मनिर्णय के लिए भारत के ऐतिहासिक संघर्ष को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, बहुपक्षीय व्यापार समझौतों में भारत का रुख अक्सर विकासशील देशों के लिए निष्पक्षता सुनिश्चित करने के प्रयास को दर्शाता है, जो शक्तिशाली आर्थिक गुटों के साथ बातचीत में वैश्विक दक्षिण की आवाज़ के रूप में खुद को स्थापित करता है।

संयुक्त राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (संयुक्त राष्ट्र संघ) सहित बहुपक्षीय मंचों में भारत की भागीदारी, अंतर्राष्ट्रीय कानून की पवित्रता में उसके विश्वास को रेखांकित करती है जो अनुच्छेद 51 के भाग (ग) मे उल्लखित है। संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में पाकिस्तान के साथ कश्मीर विवाद में भारत की भागीदारी या परमाणु अप्रसार संधि (NPT) की वकालत, भारत के अपने राष्ट्रीय हितों को न्याय और बराबरी के वैश्विक मानकों के साथ समायोजित करते हैं। इसके अलावा, पेरिस समझौते जैसे जलवायु परिवर्तन समझौतों के लिए भारत का लगातार समर्थन, देश की इस मान्यता को दर्शाता है कि अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए सामूहिक उपकरण के रूप में काम करती हैं, और भारत वैश्विक पर्यावरणीय स्थिरता की खोज में इस प्रकार के समझौतों का सम्मान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

अंत में, खंड (घ) में मध्यस्थता के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे को प्रोत्साहित करने का भारत का संवैधानिक निर्देश कूटनीतिक संघर्ष समाधान के लिए देश की ऐतिहासिक प्राथमिकता के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता के बाद की अपनी विदेश नीति की शुरुआत से ही भारत ने अंतर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिए पसंदीदा तंत्र के रूप में शांतिपूर्ण वार्ता की वकालत की है।

इसी तरह, अनुच्छेद 51 (घ) द्वारा समर्थित भारत की विदेश नीति लगातार दबावपूर्ण रणनीति या सैन्य हस्तक्षेप के बजाय मध्यस्थता और संवाद पर जोर देती है। चीन और पाकिस्तान के साथ क्षेत्रीय विवादों के संदर्भ में बातचीत के लिए भारत की निरंतर वकालत, काफी रणनीतिक चुनौतियों के बावजूद, अमल के स्तर पर इसी संवैधानिक आदर्श की अभिव्यक्ति है। अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति में भारत का दृष्टिकोण नैतिक अनिवार्यताओं और व्यावहारिक विचारों के बीच एक सूक्ष्म संतुलन को दर्शाता है जो संवैधानिक के ढांचे के द्वारा निर्धारित होता है। समय के साथ, भारत शांति, न्याय और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के मूलभूत मूल्यों पर कायम रहते हुए, इन सिद्धांतों को अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की बदलती रूपरेखा के अनुकूल बनाने में कामयाब रहा है।

2. वैदेशिक मामलों की शक्तियों का संवैधानिक वितरण: एक जटिल संवैधानिक व्यवस्था

भारत का संवैधानिक ढांचा, विशेष रूप से वैदेशिक मामलों के क्षेत्र में, एक संघीय लोकतंत्र की जटिल राजनीतिक प्रणाली के भीतर सुसंगतता और केंद्रीकरण दोनों तत्व प्रदान करने के लिए बना है। विदेश नीति उन कुछ क्षेत्रों में से एक है जहाँ संविधान संघ की कार्यपालिका को विशेष अधिकार प्रदान करता है। संविधान में कई प्रमुख प्रावधानों के माध्यम से संहिताबद्ध यह केंद्रीकरण, भारत के अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार में एकरूपता की आवश्यकता और कूटनीति और राष्ट्रीय सुरक्षा की जटिल आवश्यकताओं को दर्शाता है, जहाँ असमान राज्य-स्तरीय कार्रवाई देश की वैश्विक स्थिति को कमजोर कर सकती है।

नेहरू द्वारा भारत की विदेश नीति के निर्णयों के बारे में राज्य के मुख्यमंत्रियों को विस्तृत पत्र लिखने की प्रथा भारत की विदेश नीति की संघीय प्रकृति के प्रति सम्मान का संकेत है, जिसमें केंद्र ने राज्यों को प्रमुख राष्ट्रीय मुद्दों में शामिल करने का प्रयास किया। यह राज्यों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में एकीकृत करने के प्रयास को दर्शाता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि राज्य के नेता - जो क्षेत्रों से निकटता से जुड़े थे - अंतरराष्ट्रीय मामलों में अच्छी तरह से वाकिफ थे और केंद्र सरकार के वैश्विक रुख के साथ संरेखित थे। इसका ज़िक्र अपर्णा पांडे ने चर्चित किताब 'फ्रॉम चाणक्य टू मोदी' में किया है जो भारतीय विदेश नीति को ऐतिहासिक संदर्भों के माध्यम से समझने की एक कोशिश है।

अन्य पक्षों पर ध्यान दें तो, भारत में विदेशी मामले मुख्य रूप से संघ कार्यपालिका की विस्तारित और काफी हद तक चुनौती रहित शक्तियों पर निर्भर करते हैं। अनुच्छेद 73, विशेष रूप से खंड (बी) के तहत, यह मानता है कि कार्यकारी शक्ति में वे कार्य भी शामिल हैं जो भारत के किसी भी अंतर्राष्ट्रीय संधि या समझौते से उत्पन्न अधिकारों, प्राधिकरण और अधिकार क्षेत्र को लागू करने और उनका प्रयोग करने के लिए आवश्यक हैं। इसका मतलब यह है कि संघ सरकार अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के तहत भारत के दायित्वों को पूरा करने के लिए कार्य कर सकती है, भले ही वे कार्य सीधे घरेलू कानूनों द्वारा कवर न किए गए हों। व्यावहारिक रूप से, यह प्रावधान केंद्र सरकार के नियंत्रण में विदेश नीति को समेकित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि राजनयिक निर्णय, संधि वार्ता और अंतर्राष्ट्रीय संबंध राष्ट्रीय स्तर पर समान रूप से प्रबंधित किए जाते हैं, जो कि अलग-अलग नीतियों या रणनीतियों का अनुसरण करने वाले राज्यों से उत्पन्न होने वाले विखंडन से मुक्त होते हैं। इस संबंध में, संवैधानिक का मूल पाठ राज्य सरकारों के संभावित संकीर्ण हितों से विदेशी मामलों को अलग करने के लिए एक रणनीतिक निर्णय को दर्शाता है, विशेष रूप से भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र में, जहां क्षेत्रीय आकांक्षाएं राष्ट्रीय उद्देश्यों से संघर्ष करने की प्रवृति रखती हैं। इस केंद्रीकरण को अनुच्छेद 246 द्वारा और मजबूत किया गया है, जो विदेशी मामलों, राजनयिक प्रतिनिधित्व और अंतरराष्ट्रीय संधियों को सीधे सातवीं अनुसूची की संघ सूची में रखता है और संसद को संघ सूची में किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने का विशेष अधिकार देता है। यह प्रावधान विदेश नीति पर केंद्र सरकार की विशेष क्षमता को मजबूत करने के लिए एक संवैधानिक उपकरण के रूप में कार्य करता है, जो पारंपरिक रूप से संघ के अधिकार क्षेत्र के रूप में देखे जाने वाले क्षेत्रों में राज्य के हस्तक्षेप की संभावना को रोकता है। संघ सूची में उन विषयों को शामिल किया गया है जिन पर संसद का विशेष अधिकार क्षेत्र है, और विदेशी मामलों को, उनकी प्रकृति से, राष्ट्रीय महत्व के मामले माना जाता है - जिसके लिए घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। विदेशी मामलों को संघ सूची में शामिल करके, संविधान का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि भारत वैश्विक मंच पर एक स्वर में बोले, एक सुसंगत और एकीकृत राजनयिक मोर्चा पेश करे।

इसके अलावा, अनुच्छेद 253 संसद को अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और संधियों के कार्यान्वयन के लिए कानून बनाने में सक्षम बनाकर विदेशी मामलों में विधायी भागीदारी का एक और आयाम जोड़ता है। यह क्षमता एक औपचारिक तंत्र बनाती है जिसके माध्यम से घरेलू स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को प्रभावी बनाने के लिए संसदीय अनुमोदन एक शर्त बन जाता है। जबकि कार्यपालिका संधियों पर बातचीत करने और हस्ताक्षर करने के लिए जिम्मेदार है, यह विधायी शक्ति यह सुनिश्चित करती है कि भारत की व्यापक लोकतांत्रिक संरचना की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के निष्पादन में भूमिका हो।

यह ढांचा प्रभावी रूप से विधायी और कार्यकारी कार्यों को आपस में जोड़ता है और एक महत्वपूर्ण संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करता है यह ध्यान में रखते हुए कि हालांकि संघ कार्यकारी विदेश नीति के लिए प्राथमिक जिम्मेदारी रखता है, फ़िर भी, संसद उस पर निगरानी रखा सके ताकि अन्तर्राष्ट्रीय संधियाँ राष्ट्रीय हितों और संवैधानिक मूल्यों के साथ जुड़ी हों। इसके अलावा, केंद्रीकरण यह भी सुनिश्चित करता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा, रक्षा संधियों या परमाणु समझौतों जैसे रणनीतिक मामलों को एकीकृत अधिकार और सुसंगति के साथ संभाला जाए, जिसकी एक बहुस्तरीय, लोकतांत्रिक संघीय प्रणाली को आवश्यकता होती है। हालांकि, यह केंद्रीकरण की व्यवस्था राज्यों को विदेश नीति के परिणामों को आकार देने में पूरी तरह से शक्तिहीन नहीं बनाती है। हालांकि राज्यों की संधि-निर्माण या कूटनीति के संचालन में प्रत्यक्ष भूमिका नहीं होती है, फ़िर भी विदेशी संबंधों के कुछ क्षेत्रों में उनकी भागीदारी- जैसे सीमा पार व्यापार समझौते, क्षेत्रीय सहयोग और पर्यावरण संधियां-समय के साथ बढ़ी हैं, खासकर पैरा-डिप्लोमेसी (अधकूटनीति-अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में गैर-केंद्रीय सरकारों की भागीदारी की संकल्पना है।) के उदय के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में राज्य-स्तरीय भागीदारी का यह बढ़ता स्वरूप संघवाद की अधिक सूक्ष्म समझ की ओर संकेत करता है, जो राज्यों को विशिष्ट क्षेत्रों में संबंध-संचालन की अनुमति देता है।

भारत की संवैधानिक व्यवस्था जिसमे विदेश नीति शक्तियों को संघीय कार्यपालिका के तहत केंद्रीकृत किया गया है, वह भारत के स्वतंत्रता के बाद के गठन के ऐतिहासिक संदर्भ को भी दर्शाती है। स्वतंत्रता के समय, संविधान के निर्माता विकेन्द्रीकृत विदेशी संबंधों से जुड़े संभावित जोखिमों के बारे में पूरी तरह से जानते थे, विशेष रूप से भारतीय संघ की नई एकीकृत लेकिन विविध प्रकृति को देखते हुए। इस संदर्भ में, विदेशी मामलों को केंद्र सरकार के अधीन करने का निर्णय न केवल राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा के बारे में व्यावहारिक चिंताओं को दर्शाता है, बल्कि वैश्विक मंच पर एक एकजुट इकाई के रूप में खुद को स्थापित करने की भारत के संस्थापक नेतृत्व की आकांक्षाओं को भी प्रतिध्वनित करता है। जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्तियों की प्रमुखता, जिन्होंने भारत की विदेश नीति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, ने एक मजबूत, केंद्रीकृत विदेश नीति तंत्र के इस दृष्टिकोण को मजबूत किया, जो भारत की स्वतंत्रता को बनाए रखने में सक्षम है और साथ ही बहुपक्षीय सहयोग को भी बढ़ावा दे सकता है।

हालाँकि, इस केंद्रीकरण से उत्पन्न होने वाले संभावित तनावों को पहचानना भी महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से भारत के संघीय ढांचे के संबंध में। जबकि संविधान संघ को विदेश नीति में विशेष शक्तियाँ प्रदान करता है, 21वीं सदी की उभरती वैश्विक गतिशीलता, जहाँ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में क्षेत्रीय हितधारक शामिल होते जा रहे हैं, ने इस ढांचे की उपयुक्तता और प्रासंगिकता के बारे में सवाल उठाए हैं। 'वैश्विक आर्थिक संजाल (नेटवर्क)' में राज्यों की बढ़ती भूमिका, सीमा पार क्षेत्रीय संघर्षों का उदय और स्थानीय कूटनीतिक पहलों की आवश्यकता ऐसी चुनौतियाँ पेश करती हैं, जो शायद संविधान के मूल रूप से तैयार किए जाने के समय उतनी साफ़ नहीं थीं। व्यापार संबंधों, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और पर्यावरण समझौतों जैसे क्षेत्रों में राज्य-स्तरीय कूटनीति का उदय विदेशी मामलों में संघवाद के लिए अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण की आवश्यकता को दर्शाता है, जो संघ के संवैधानिक अधिकार की अखंडता को बनाए रखते हुए वैश्वीकृत बातचीत की वास्तविकताओं को ध्यान में रखता है।

3. उत्तरोत्तर विकास और कार्यान्वयन: संवैधानिक व्याख्या का विदेश नीति का प्रभाव हमने पिछली चर्चाओं में देखा है कि भारत की विदेश नीति का प्रक्षेप-वक्र हमारे संविधान के प्रावधानों के साथ जटिल रूप से जुड़ा हुआ है,

लेकिन इसने संवैधानिक सिद्धांतों की व्याख्या और अनुप्रयोग के साथ बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाई है, जिसमें एक गतिशील अंतर्क्रिया शामिल है, जो वैश्विक मंच की बदलती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लगातार विकसित हुई है। स्वतंत्रता के बाद की प्रारंभिक अवधि से, जिसमे ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण न्यायिक व्याख्याएँ सामने आयीं और 1991 के बाद के परिवर्तनकारी बदलावों तक, भारत की विदेश नीति का विकास संवैधानिक व्याख्या, अनुकूलनशीलता और कानूनी सिद्धांतों और तेजी से बदलती दुनिया की मांगों के बीच अंतर्क्रिया की एक जटिल वस्तुस्थिति को दिखाता है।

3.1 प्रारंभिक संवैधानिक व्याख्या (1950-1970): कानूनी मिसालें

भारत की स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में, नवोदित राष्ट्र अपने संवैधानिक ढांचे को एक सुसंगत और प्रभावी विदेश नीति में अनुवाद करने की पेचीदगियों से जूझ रहा था। इस अवधि के दौरान, भारतीय न्यायपालिका ने देश के बाहरी मामलों में संवैधानिक प्रावधानों के लागू होने की समझ को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हम दो ऐतिहासिक मामलों का केस स्टडी या व्यष्टि अध्ययन के रूप में उल्लेख कर सकते हैं - बेरुबारी यूनियन केस (1960) और मगनभाई ईश्वरभाई केस (1969), जो इस कानूनी विकास में महत्वपूर्ण मील के पत्थर के रूप में सामने आए। इन्होंने भारत की भविष्य की विदेश नीति को निर्देशित में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई या मिसाल कायम की।

बेरुबारी यूनियन केस (1960) अंतरराष्ट्रीय संधियों और भारत के संवैधानिक ढांचे के बीच संबंधों को परिभाषित करने में एक आधारभूत क्षण था, विशेष रूप से क्षेत्रीय अखंडता से जुड़े मामलों में प्रस्तावना के महत्व का आह्वान करते हुए। इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि भारतीय क्षेत्र के किसी भी हिस्से को किसी अन्य देश में स्थानांतरित करने के लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता होगी तथा ऐसे सभी मामले जो भारत की क्षेत्रीय सीमाओं को प्रभावित करने हों, राष्ट्रीय महत्व के होते हैं। इस तरह क्षेत्रीय परिवर्तनों के मामलों में विधायी अनुमोदन की आवश्यकता पर बल देकर, बेरुबारी यूनियन केस ने राष्ट्रीय क्षेत्रीय ढांचे को बदलने वाले फैसलों में संसद की प्रधानता की पुष्टि की और भारत की संप्रभुता के समझ को भी प्रभावित किया। इस मामले ने विदेश नीति निर्णय लेने की संवैधानिक सीमाओं को स्पष्ट किया और इस विचार को स्थापित किया कि अंतरराष्ट्रीय संधियों, विशेष रूप से वे, जो देश की क्षेत्रीय अखंडता को प्रभावित कर सकती हैं, को पुष्टि किए जाने से पहले एक कठोर संवैधानिक और विधायी प्रक्रिया से गुजरना चाहिए।

कुछ हद तक इसके विपरीत, भारत और पाकिस्तान की सीमाओं के बीच कच्छ क्षेत्र से संबंधित मगनभाई ईश्वरभाई केस (1969) ने संधियों के प्रकारों और घरेलू कानून के लिए उनके निहितार्थों के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर पेश किया। भारत और पाकिस्तान के बीच कच्छ क्षेत्र में प्राकृतिक अस्थिरता के कारण सीमा निर्धारण को लेकर एक विवाद उत्पन्न हुआ जिसे दोनों देशों के बीच न्यायाधिकरण के निर्णय द्वारा स्वीकार किया जाना था । इस मामले में, न्यायालय यह स्थापित किया कि संविधानिक दृष्टिकोण से भारत की क्षेत्रीय अखंडता को बिना संवैधानिक संशोधन के किसी अंतर्राष्ट्रीय निर्णय के द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता। साथ ही, यह भी कि सरकार का कार्य भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किए बिना अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को लागू करने के लिए वैध है। इन शुरुआती न्यायिक व्याख्याओं ने भारत की विदेश नीति के कानूनी आधार को स्थापित किया।

3.2 आधुनिक विकास (1991-वर्तमान): आर्थिक उदारीकरण और विस्तारित कूटनीतिक क्षितिज

1991 के बाद की अवधि, जिसमे आर्थिक उदारीकरण महत्वपूर्ण पड़ाव है, ने घरेलू और विदेश नीति दोनों में एक नए युग की शुरुआत की, जिसके साथ संवैधानिक सिद्धांतों को अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में लागू करने के तरीके में एक परिवर्तनकारी बदलाव आया। उदारीकरण ने बाजार आधारित आर्थिक नीतियों को लागूकर एक बार फ़िर से भारत की विदेश नीति के ढांचे की जांच करना आवश्यक बना दिया, विशेष रूप से आर्थिक कूटनीति के क्षेत्र में। जैसे-जैसे भारत वैश्विक आर्थिक प्रणाली में अधिक गहराई से एकीकृत होने की कोशिश कर रहा है, विदेशी मामलों को नियंत्रित करने वाले संवैधानिक प्रावधानों और देश की विकसित अंतरराष्ट्रीय आर्थिक रणनीति के बीच परस्पर क्रिया तेजी से महत्वपूर्ण हो गई है। उदारीकरण के युग में विदेश नीति की प्राथमिकताओं का एक उल्लेखनीय पुन:उन्मुखीकरण देखा गया, जिसमें व्यापार समझौतों, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक साझेदारी पर गहन ध्यान केंद्रित किया गया। उदाहरण के लिए, विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में भारत की भागीदारी के लिए न केवल आर्थिक नीति में एक रणनीतिक बदलाव की आवश्यकता थी, बल्कि भारत द्वारा अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संधियों के साथ बातचीत करने के तरीके का कानूनी पुनर्मूल्यांकन भी आवश्यक था।

वैश्विक आर्थिक तंत्रों में भारत के बढ़ते एकीकरण ने संधि-निर्माण प्रक्रिया के बारे में संवैधानिक प्रावधानों की गहन जांच की, विशेष रूप से नए प्रकार की संधियों- जैसे द्विपक्षीय व्यापार समझौते और निवेश संधियों- के अधिक आम हो जाने के कारण। इस अवधि में विदेशी संबंधों में राज्य सरकारों की भूमिका में भी वृद्धि देखी गई, एक ऐसा विकास जो वैश्वीकरण के युग में कूटनीति की बदलती प्रकृति को दर्शाता है। जैसे-जैसे भारतीय राज्य विदेशी निवेश को आकर्षित करने, क्षेत्रीय व्यापार साझेदारी को बढ़ावा देने और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देने की कोशिश कर रहे थे, वे अक्सर केंद्र सरकार के सहयोग से अपने स्वयं के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में तेजी से शामिल हो रहे थे। विदेश नीति के इस संघीय आयाम ने इस बढ़ती मान्यता को उजागर किया कि भारत की बाहरी भागीदारी केवल केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं थी, बल्कि इसमें राज्य-स्तरीय तत्व भी शामिल थे।

उदारीकरण के बाद के दौर में, संधि-निर्माण प्रक्रिया और अधिक गतिशील हो गई क्योंकि भारत ने विभिन्न व्यापार, रक्षा सहयोग और जलवायु परिवर्तन समझौतों में प्रवेश किया। अनुच्छेद 253 के अनुसार संधियों को लागू करने के लिए संवैधानिक रूप से अनिवार्य प्रक्रिया में संसद के अनुमोदन की आवश्यकता थी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसे समझौते घरेलू कानून के अनुरूप हों, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में तेजी का मतलब था कि कार्यकारी विवेक का बार-बार जल्दी प्रयोग। नतीजतन, कार्यकारी लचीलेपन और संसदीय निगरानी के बीच संतुलन, भारत के संवैधानिक कानून में चर्चा का एक महत्वपूर्ण बिंदु बन गया, क्योंकि देश एक अंतर्संबंधित और तेजी से विकसित हो रही दुनिया में, एक वैश्विक खिलाड़ी के रूप में अपनी भूमिका निभा रहा था। भारत द्वारा अनेक मुक्त व्यापार समझौतों (एफटीए) और निवेश संधियों पर हस्ताक्षर करने के साथ ही, कार्यकारी कार्रवाइयों और विधायी जांच के बीच संवैधानिक संबंधों का परीक्षण किया गया।

5. संप्रभुता और संविधान: भारत की विदेश नीति के स्तंभ

संप्रभुता वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्था का सबसे मत्वपूर्ण पहलू है । भारत की विदेश नीति के केंद्र में भी संप्रभुता का सिद्धांत अंतर्निहित है, इसके संविधान और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों दोनों में। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 1 देश को "राज्यों के संघ" के रूप में परिभाषित करता है, जो राष्ट्र की संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता पर जोर देता है। यह

संप्रभुता घरेलू शासन से परे है, जो भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रति दृष्टिकोण को आकार देती है। संविधान भारत की स्वायत्तता की कल्पना करता है, राज्य को वैश्विक भागीदारों के साथ जुड़ते हुए अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने के लिए सशक्त बनाता है। अनुच्छेद 51 जैसे अनुच्छेद भारत के अंतर्राष्ट्रीय आचरण का मार्गदर्शन करते हैं, राज्य को शांति, सुरक्षा और अंतर्राष्ट्रीय कानून के प्रति सम्मान को बढ़ावा देने का निर्देश देते हैं, इस प्रकार भारत को वैश्विक कूटनीति और शासन में एक सक्रिय भागीदार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसलिए, भारत की विदेश नीति संप्रभुता के प्रति अपनी संवैधानिक प्रतिबद्धता और वैश्विक सहयोग में अपनी भूमिका के बीच गतिशील संतुलन बाय रखती है । संप्रभुता के प्रति देश का दृष्टिकोण केवल स्वतंत्रता का दावा करने के बारे में नहीं है, बल्कि सामूहिक वैश्विक जिम्मेदारियों के साथ राष्ट्रीय स्वायत्तता को संतुलित करने के बारे में है, एक चुनौती जो लगातार अपनी कूटनीतिक रणनीतियों को आकार देती है।

संविधान द्वारा अपनी संधि-निर्माण शक्तियों के माध्यम से इसे और अधिक सशक्त बनाया गया है, विशेष रूप से अनुच्छेद 253 के तहत, जो संसद को अंतर्राष्ट्रीय संधियों पर कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है। यह राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हुए कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के भीतर जाँच और संतुलन बनाए रखने में मदद करता है। भारतीय संघवाद का अर्थ है कि यद्यपि विदेश नीति मूल रूप से संघ के हाथों में है, राज्य भी आर्थिक कूटनीति में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। क्षेत्रीय ताकतों के साथ केंद्रीय शक्ति का यह मिश्रण भारत के लिए अंतर्राष्ट्रीय नीति को फिर से परिभाषित करता है, इस प्रकार स्थानीय हित को विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय नीति का हिस्सा बनाता है। भारत की संप्रभुता इसकी रक्षा नीतियों, आर्थिक संबंधों और अंतर्राष्ट्रीय कानून के पालन के लिए महत्वपूर्ण रही है।

5.1 संप्रभुता के समक्ष आधुनिक खतरों के तलाश की चुनौतियाँ

जैसे-जैसे विश्व व्यवस्था की जटिलता बढ़ रही है, भारत को ऐसी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जो संवैधानिक संप्रभुता में इसके लचीलेपन की परीक्षा लेती हैं। ऐसा ही एक महत्वपूर्ण मुद्दा डिजिटल संप्रभुता है, विशेष रूप से वैश्विक सूचना नेटवर्क के संदर्भ में। आंकड़ों और सूचना के स्थानीयकरण और मजबूत साइबर सुरक्षा कानूनों की आवश्यकता भारत को डिजिटल या आँकिक युग में विकसित संप्रभुता के नए आयामों की ओर प्रशस्त करती है। संयुक्त राष्ट्र और विश्व व्यापार संगठन जैसे वैश्विक शासन मंचों में भारत की हिस्सेदारी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के साथ संप्रभुता को संतुलित करने की समस्या को और अधिक स्पष्ट करती है। भारत लगातार वैश्विक नीति को आकार देने में विकासशील देशों को शामिल करने की वकालत करता है, शांति, सतत विकास और आर्थिक समानता पर जोर देता है। जलवायु परिवर्तन, स्वास्थ्य आपातस्थितियाँ और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण जैसे मुद्दों के लिए संप्रभुता के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता होती है, जिसके लिए राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और वैश्विक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन की आवश्यकता होती है।

भारतीय संविधान के भाग चार में नीति-निर्देशक सिद्धांत न्यायालय के अनुसार अधिकारपूर्ण तो नहीं है, लेकिन मानवाधिकार, आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के मामलों में वैश्विक संदर्भ में कल्याण की रूपरेखा प्रदान करते हैं। यही कारण है कि भारत लगातार परमाणु निरस्त्रीकरण और अहिंसा की वकालत करता है, जो शांति और न्यायसंगत विकास के लिए इसकी व्यापक प्रतिबद्धता के साथ संरेखित है। भारत की विदेश नीति पर धर्मनिरपेक्षता के दर्शन का प्रभाव भी उतना ही उल्लेखनीय है। भारत की अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति, विशेष रूप से मध्य पूर्व, दक्षिण पूर्व

एशिया और अफ्रीका में, इसके धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों द्वारा आकार लेती है जो बहु-धार्मिक पहचनों वाले राष्ट्र हैं। भारत संघर्षों, विशेष रूप से धार्मिक या जातीय तनाव वाले संघर्षों में मध्यस्थता करना चाहता है और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों को बनाए रखता है। अनुच्छेद 53 और 73 के माध्यम से, भारत की रक्षा-संरचना रक्षा मामलों पर नागरिक वर्चस्व को स्थापित करती है और परिचालन की स्वतंत्रता को बनाए रखती है। इस संतुलन ने भारत को स्वतंत्र रणनीतिक निर्णय लेने में सक्षम बनाया है। उदाहरण के लिए, 1971 की भारत-सोवियत संधि और वर्तमान समय में कई अन्य देशों के साथ रक्षा सहयोग इस संतुलन के परिणाम हैं। साइबर सुरक्षा, डेटा सुरक्षा और तकनीकी संप्रभुता मौलिक अधिकार प्रावधानों में एक अप्रत्यक्ष संवैधानिक आधार पाते हैं। "जस्टिस के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ" (2017) में सुप्रीम कोर्ट के गोपनीयता निर्णय में डिजिटल कूटनीति और डेटा-साझाकरण समझौतों के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं।

5.2 संवैधानिक तंत्र के तहत संधियाँ

भारत की विदेश नीतियाँ, जिसमें संधि-निर्माण भी शामिल है, बेहतरीन तरह से परिभाषित संवैधानिक ढांचे के अंतर्गत आती हैं। ऐसी संधियाँ तीन श्रेणियों में की जाती हैं: संसदीय अनुसमर्थन वाली संधियाँ, कार्यपालिका की कार्रवाइयों द्वारा प्रभावी की जाने वाली संधियाँ, तथा राज्य परामर्श प्रक्रियाओं के अंतर्गत आने वाली संधियाँ। कुछ संधियाँ जिनके लिए संसदीय अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है, जो घरेलू कानूनों, क्षेत्रीय एकीकरणों को प्रभावित कर सकती हैं।

भारत की संधि-निर्माण प्रणाली को विदेश मंत्रालय और संसदीय अभिलेखों के आंकड़ों से सूचित किया जाता है, जो संधियों की संख्या, प्रकृति और समय अवधि का बोध कराते हैं और उन्हें क्रियान्वित किया जाता है। 2000 से 2023 तक, भारत अनगिनत द्विपक्षीय और बहुपक्षीय संधियों में शामिल था, जिनकी औसत प्रति वर्ष लगभग 35-40 था। लगभग 545 संधियाँ कार्यकारी कार्रवाई के माध्यम से लागू की गईं, जो कूटनीति के संचालन में लचीलेपन के महत्व को प्रदर्शित करती हैं। संधियों को लागू करने की समय-सीमा आमतौर पर औसतन 2.3 वर्ष होती है, जो अंतर्राष्ट्रीय समझौतों की बदलती जटिलता को दर्शाती है। यह समय-सीमा भारत की त्वरित कूटनीतिक प्रतिक्रियाओं को अधिक सुविचारित संवैधानिक प्रक्रियाओं के साथ संतुलित करने की क्षमता को भी उजागर करती है।

6 . निष्कर्ष: संवैधानिक व्यवस्था और व्यावहारिक कूटनीति

विदेश नीति पर भारत के संवैधानिक ढांचे का व्यावहारिक प्रभाव संधियों और अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के क्रियान्वयन में स्पष्ट है, जिसमें संघ की कार्यपालिका, संसद और राज्य सरकारों के संवैधानिक तंत्र भारत की कूटनीतिक रणनीति को आकार देने में पूरक भूमिका निभाते हैं। कार्यपालिका की कार्रवाई और विधायिका के निरीक्षण के बीच संतुलन सुनिश्चित होने के कारण, भारत की विदेश नीति की रूपरेखा लचीली और जवाबदेह दोनों है। यह लोकतांत्रिक सुरक्षा उपायों को बनाए रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की गतिशीलता पर त्वरित प्रतिक्रिया को सक्षम बनाती है। संधि की मात्रा, अनुमोदन प्रक्रियाओं और कार्यान्वयन समय-सीमा पर जो अनुभवजन्य तथ्य और आँकड़े उपलब्ध हैं वे इस संवैधानिक व्यवस्था की दक्षता और अनुकूलनशीलता को रेखांकित करते हैं। यह तथ्य इस बात की सूक्ष्म समझ प्रदान करता है कि भारत के संवैधानिक प्रावधान जटिल और तेजी से विकसित हो रही वैश्विक व्यवस्था में अपनी विदेश नीति का मार्गदर्शन कैसे करते हैं। संविधान, संप्रभुता, न्याय, धर्मनिरपेक्षता और शांति के मूल्यों को सुनिश्चित करके,

यह संदेश देता है कि भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हितों को प्रतिबिंबित करे और वैश्विक मंच पर देश के मूल लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करे। इन संवैधानिक सिद्धांतों से प्रेरित होकर, भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय संप्रभुता को अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के साथ संतुलित करने का प्रयास करती है, जो वैश्विक राजनीति में शांति, स्थिरता और परस्पर सम्मान को प्राथमिकता देने वाला मार्ग बनाती है। अंतर्राष्ट्रीयकरण और वैश्वीकरण की लहरों के युग में, भारत का संविधान, दूरदर्शी और अत्यंत समीचीन होने के कारण, यह सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक बना हुआ है कि भारत की विदेश नीति व्यावहारिक और इसके संस्थापक आदर्शों को प्रतिबिंबित करती रहे, राष्ट्र की संप्रभुता की रक्षा करते हुए आम भलाई के लिए व्यापक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ सरोकारों के प्रति प्रतिबद्धता से गहराई से जुड़ी रहे।

संदर्भ सूची

1. Adler, D. G., & George, L. N. (1996). *The Constitution and the conduct of American foreign policy*. University Press of Kansas.
2. Article 73, The Constitution of India. Legislative Department, Ministry of Law and Justice, GOI. (2024). https://lddashboard.legislative.gov.in/sites/default/files/coi/COI_2024.pdf
3. Badatya, S. (2019). Parliament and foreign policy decision-making in India: Extent, instruments and impediments. *Journal of Governance & Public Policy, 9*(2), 2-15.
4. Centre for Law & Policy Research. (2021, December 8). *Justice K.S. Puttaswamy vs. Union of India - South Asian Translaw Database - PRIVACY*. South Asian Translaw Database. https://translaw.clpr.org.in/case-law/justice-k-s-puttaswamy-anr-vs-union-of-india-ors-privacy/
5. Choudhry, S., Khosla, M., & Mehta, P. (Eds.). (2016). *The Oxford Handbook of the Indian Constitution*. Oxford University Press.
6. Dhanavel, B. (2024, August 30). *Maganbhai Ishwarbhai Patel vs Union of India and Anr | LawFoyer*. LawFoyer. https://lawfoyer.in/maganbhai-ishwarbhai-patel-vs-union-of-india-and-anr/
7. Directive Principles of State Policy, The Constitution of India. Legislative Department, Ministry of Law and Justice, GOI. (2024). https://lddashboard.legislative.gov.in/sites/default/files/coi/COI_2024.pdfli

8. Ganguly, S. (2010). Structure and agency in the making of Indian foreign policy (ISAS Working Paper No. 116). *Institute of South Asian Studies*. https://www.isas.nus.edu.sg
9. Ganguly, S. (2010). *India's Foreign Policy: Retrospect and Prospect*. Oxford University Press.
10. Kapoor, V. (2024, June 27). *In Re Berubari Union and Exchange of Enclaves (1960) - IPleaders*. IPleaders. https://blog.ipleaders.in/in-re-berubari-union-and-exchange-of-enclaves-1960/
11. Kashyap, S. C. (2005). *Constitution of India and International Law*. Brill. https://doi.org/10.1163/9789047415497_006
12. Menon, S. (2016). *Choices: Inside the making of India's foreign policy (Geopolitics in the 21st century)*. Brookings Institution Press.
13. Muni, S. D. (2009). *India's foreign policy: The Democracy Dimension: with Special Reference to Neighbours*. Cambridge India.
14. Pande, A. (2017). *From Chanakya to Modi: The Evolution of India's Foreign Policy*. Harper Collins.
15. Paranjpe, S. (2013). *India's strategic culture: The Making of National Security Policy*. Routledge India.
16. Rohan Mukherjee, D. M. Malone. (2011). Indian foreign policy and contemporary security challenges. *International Affairs, 87*(1), 87–104. https://doi.org/10.1111/j.1468-2346.2011.00961.x
17. Sikri, R. (2009). *Challenge and strategy: Rethinking India's foreign policy*. Sage Publications.
18. Sumit Ganguly. (2010). *India's Foreign Policy: Retrospect and Prospect*. Oxford University Press.
19. Varshney, A. (2013). How has Indian Federalism Done? *Studies in Indian Politics, 1*(1), 43-63. https://doi.org/10.1177/2321023013482787
20. H. Jacob. (2016). *Putting the Periphery at the Centre: India's States Role in Foreign Policy*. Carnegie India. https://carnegieindia.org/2016/10/10/putting-periphery-at-center-indian-states-role-in-foreign-policy-pub-64724

50

संवैधानिक नैतिकता और लोकतांत्रिक आदर्श: आधुनिक शासन में बाबा साहेब डॉ. बी. आर. अंबेडकर का स्थायी योगदान

इंद्रजीत

शोधार्थी, रूस एवं मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र, अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067

भारतीय संविधान के मुख्य वास्तुकार बाबा साहेब डॉ. बी. आर. अंबेडकर लोकतांत्रिक शासन और संवैधानिक नैतिकता के विकास में अपने विचारो के जरिए आज भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी दृष्टि इस विश्वास में निहित थी कि लोकतंत्र केवल सरकार का एक रूप नहीं है, बल्कि न्याय, समानता और बंधुत्व पर आधारित जीवन जीने का एक तरीका है। यह लेख आधुनिक शासन में उनके महत्वपूर्ण योगदान को वर्णित करता है, जिसमें उनके विचारों की स्थायी प्रासंगिकता पर जोर दिया गया है।

बाबा साहेब अंबेडकर का पूरा जीवन लोकतंत्र के आदर्शों से प्रेरित था। उन्होंने लोकतंत्र को जीवन का मूल आधार माना, उन्होंने जोर देकर कहा कि इसके बिना किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास असंभव है। लोकतंत्र को सफलतापूर्वक चलाने के लिए, डॉ. अंबेडकर ने टिप्पणी की, "लोकतंत्र सरकार का एक रूप और तरीका है, जहाँ लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में बिना खून-खराबे के क्रांतिकारी बदलाव लाए जा सकते हैं।" (डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, *भाषण*, पुणे जिला विधि पुस्तकालय, 22 दिसंबर 1952)।

बाबा साहेब अंबेडकर का मानना था कि लोकतंत्र केवल सरकार का एक रूप नहीं है; यह मुख्य रूप से सामूहिक सह-अस्तित्व का अनुभव करने का एक तरीका है। यह नागरिकों के प्रति सम्मान और श्रद्धा प्रदर्शित करने का एक अनिवार्य साधन है। जिस तरह वाल्टर बेजहोट लोकतंत्र को चर्चा (process of discussion) से जोडते हैं, और अब्राहम लिंकन इसे लोगों की, लोगों द्वारा और लोगों के लिए सरकार के रूप में परिभाषित करते हैं, बाबा साहेब अंबेडकर ने लोकतंत्र को एक ऐसी प्रणाली के रूप में देखा जो हिंसा के बिना सामाजिक और आर्थिक जीवन में क्रांतिकारी बदलाव लाने में सक्षम है (अंबेडकर, 1979)। उनका उद्देश्य शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में मौलिक परिवर्तनों को सुविधाजनक बनाना था। उनके अनुसार, राजनीतिक लोकतंत्र सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के बिना सफल नहीं हो सकता, क्योंकि राजनीतिक लोकतंत्र अपने आप में एक लक्ष्य नहीं है। उनका प्राथमिक उद्देश्य सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक समानता हासिल करना था। अपनी लोकतांत्रिक विचारधारा के भीतर, उन्होंने सामाजिक और आर्थिक समानता और अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा के महत्व पर जोर दिया।

संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा

1913 में, बाबा साहेब अंबेडकर ने कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क में पहली बार संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा से परिचित हुए। कोलंबिया में अपने समय के दौरान, उन्होनें "इतिहास 121" नामक एक पाठ्यक्रम का अध्ययन किया, जिसमें ग्रीक इतिहास शामिल था। यह संभव है कि इस अवधि के दौरान उन्हें जॉर्ज ग्रोटे के कार्यों और विचारों के बारे में जाना तथा संवैधानिक नैतिकता से परिचित हुए। आगे चलकर "संवैधानिक नैतिकता" शब्द को बाद में 4 नवंबर, 1948 को संविधान सभा की बहस के दौरान उनके द्वारा भारतीय संदर्भ में लाया गया था। इस अवसर पर, उन्होंने मसौदा समिति द्वारा तैयार किए गए संविधान के मसौदे को विधानसभा द्वारा विचार में लिए जाने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया (Constituent Assembly Debates, 1948)। उन्होनें संवैधानिक नैतिकता के महत्व को विस्तार से समझाने के लिए ग्रोटे के विचारों को दोहराया। उन्होंने ग्रीक इतिहासकार जॉर्ज ग्रोटे को उद्धृत किया, जिन्होंने संवैधानिक नैतिकता को इस प्रकार परिभाषित किया: ग्रोट के मुताबिक, संवैधानिक नैतिकता का मतलब है कि नागरिकों और संवैधानिक संस्थाओं के बीच उनके कर्तव्यों के बंटवारे में संतुलन होना चाहिए. नागरिकों में आज़ादी और आत्म-संयम होना चाहिए. ग्रोट के मुताबिक, संविधान की ज़रूरत है ताकि लोगों में संविधान के प्रति लगाव पैदा हो और वे सत्ता के दुरुपयोग को रोकने के लिए अच्छे इरादे से काम करें. ग्रोट के मुताबिक, संवैधानिक नैतिकता का मतलब है: संविधान के रूपों का सम्मान करना, अधिकारियों का पालन करना और संविधान के रूपों के तहत काम करना, खुलकर बोलना, कानूनी नियंत्रण के अधीन काम करना, सार्वजनिक कार्यों में अधिकारियों की आलोचना करना तथा हर नागरिक को इस विश्वास से रहना कि उसके विरोधियों के लिए भी संविधान के रूप उतने ही पवित्र होंगे, जितने उसके लिए (Lakshmi J.S, 2022)।

संविधान सभा की बहस के दौरान, बाबा साहेब अंबेडकर (भारतीय संविधान के जनक) ने भारत में संवैधानिक नैतिकता को बढ़ावा देने की चुनौतियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने टिप्पणी की: "संवैधानिक नैतिकता एक स्वाभाविक भावना नहीं है। इसे विकसित किया जाना चाहिए। इसे अभी तक हमारे लोगों ने नहीं सीखा है। भारत में, लोकतंत्र केवल एक अंतर्निहित अलोकतांत्रिक देश पर लगाया गया एक आवरण (पर्दा) है।" उन्होंने ये टिप्पणियाँ 4 नवंबर, 1948 को विधानसभा में प्रस्तावित संविधान प्रस्तुत करते समय कीं। बाबा साहेब अंबेडकर के अनुसार, संवैधानिक नैतिकता में सहयोगी शासन और प्रतिस्पर्धी हितों का न्यायसंगत संतुलन शामिल है। यह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत गुटों के बीच विवादों को शांतिपूर्ण और बिना हिंसा के हल करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है (Constituent Assembly Debates, 1948)। उनका मानना था कि संविधान भारत के लिए एक एकीकृत नैतिक दिशा-निर्देश के रूप में कार्य कर सकता है, जहां देश जाति, धर्म, भाषा और अन्य सामाजिक बाधाओं से बड़े पैमाने पर विभाजित है।

भारतीय संविधान: लोकतांत्रिक शासन के लिए एक खाका

बाबा साहेब अंबेडकर ने अपनी लोकतांत्रिक विचारधारा में कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर जोर दिया, एक ऐसे समाज की वकालत की जहां सभी वर्गों के व्यक्तियों को प्रगति के समान अवसर मिलें। उन्होंने कानून के समक्ष समानता, संवैधानिक सिद्धांतों का पालन, बहुसंख्यक अत्याचार की रोकथाम, सामाजिक आचरण के लिए नैतिक जनादेश और जन-जागरूकता के महत्व पर जोर दिया। उनका मानना था कि लोकतंत्र परिवर्तन करने के लिए एक शांतिपूर्ण साधन है, जो शासन की एक प्रणाली के रूप में कार्य करता है जिसके माध्यम से लोगों के आर्थिक और सामाजिक जीवन में हिंसा का सहारा लिए बिना क्रांतिकारी परिवर्तन प्राप्त किए जा सकते हैं। उन्होंने वाल्टर बेजहोट के द इंग्लिश कॉन्स्टिट्यूशन को एक अग्रणी कार्य के रूप में उद्धृत किया, जिसने लोकतंत्र की प्रकृति को स्पष्ट किया, इसे विचार-विमर्श के माध्यम से चुने गए शासन के रूप में प्रस्तुत किया। अंबेडकर ने यह भी कहा कि लोकतंत्र की असली परीक्षा इसके ढांचे के भीतर काम करने वालों को सशक्त बनाने की इसकी क्षमता में निहित है। उन्होंने कहा, "अगर लोकतंत्र इसे चलाने वालों को पर्याप्त रूप से सक्षम बना सकता है, तो मैं कहूंगा कि हमारे यहां लोकतंत्र है। यह वास्तविक परीक्षा है और शायद सबसे बड़ी परीक्षा है।"

संसदीय लोकतंत्र के असफल होने से विद्रोह अराजकता और साम्यवाद का जन्म होगा। (डॉ. अम्बेडकर) दिनांक 28 अक्तूबर, 1951 को पंजाब के जालंधर शहर में डी०ए०वी० कालेज की छात्र संसद के समक्ष दिये गये अपने भाषण में डा० बी०आर० अम्बेडकर ने संसदीय लोकतंत्र की सरल ढंग से व्याख्या की थी। **(**अम्बेडकर, 2019:400**)**

संसदीय लोकतंत्र पर चर्चा करते हुए बाबा साहेब अंबेडकर ने इस प्रणाली के लिए अपनी प्रबल प्राथमिकता व्यक्त करते हुए कहा: "व्यक्तिगत रूप से, मेरा संसदीय शासन प्रणाली के प्रति गहरा झुकाव है। संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा, जैसा कि वाल्टर बेजहोट ने द इंग्लिश कॉन्स्टिट्यूशन में व्यक्त किया है। उनके अनुसार, संसदीय सरकार विचार-विमर्श का नियम है, न कि बल का (अम्बेडकर, 2019:401)। हमें इसे समझने और इससे सीखने और इसे सफल बनाने की आवश्यकता है। हमें लोगों को संसदीय लोकतंत्र और संसदीय प्रणाली के लाभों के बारे में शिक्षित करना चाहिए।" उन्होंने संसदीय शासन की तीन आवश्यक विशेषताओं की पहचान की: **1. वंशानुगत शासन की अस्वीकृति:** संसदीय प्रणाली वंशानुगत शासन को स्वीकार नहीं करती है। **2. प्रतिनिधि विधान:** सार्वजनिक जीवन को प्रभावित करने वाले कानूनों को निर्वाचित प्रतिनिधियों की सलाह के आधार पर लागू किया जाना चाहिए। **3. लोगों के प्रति जवाबदेही:** राष्ट्राध्यक्ष के सलाहकारों को एक निश्चित समय-सीमा के भीतर जनता का विश्वास अर्जित करना चाहिए (अम्बेडकर, 2019:403)।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने इस बात पर प्रकाश डाला कि संसदीय लोकतंत्र दो प्रमुख स्तंभों पर टिका है: एक सक्रिय विपक्ष और निष्पक्ष चुनाव। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि राजनीतिक जीवन के लिए एक सक्रिय विपक्ष अपरिहार्य है, क्योंकि इसके बिना कोई भी लोकतंत्र प्रभावी ढंग से काम नहीं कर सकता। इसके अलावा, हिंसा के बिना सत्ता का शांतिपूर्ण हस्तांतरण सुनिश्चित करने के लिए निष्पक्ष चुनाव आवश्यक हैं (अम्बेडकर, 2019:404)।अम्बेडकर ने चेतावनी दी कि यदि भारत में संसदीय लोकतंत्र विफल हो गया, तो इसके परिणाम विद्रोह, अराजकता और साम्यवाद होंगे। यदि आप चाहते हैं कि संसदीय शासन प्रणाली और संसदीय लोकतंत्र इस देश में प्रचलित हो, यदि आप संतुष्ट हैं तो हमें विचार, बोलने और कार्रवाई की स्वतंत्रता से आश्वस्त किया जाएगा। यदि हमें अपनी स्वाधीनता को बचाकर

रखना चाहिए, यदि हम व्यक्ति स्वतंत्रता के अंतर्निहित अधिकार को मानते हैं तो हमारे देश के प्रबुद्ध समाज के रूप में, आप छात्रों का यह कर्तव्य है कि आप इस संसदीय शासन प्रणाली को, उसके सही अर्थ में संजोए रखने के लिए और उस दिशा में कायम करने के लिए अपना भरसक प्रयास करें।" (अम्बेडकर, 2019:406)।

लोकतंत्र को सफलतापूर्वक चलाने के लिए शर्तें (डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को पूना जिला लॉ लायब्रेरी के सदस्यों द्वारा निम्नांकित कार्यक्रम संम्पन्न करने के लिए 22 दिसम्बर, 1952 को आमंत्रित किया गया।) (अम्बेडकर, 2019; 447)।

लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए, बाबा साहेब अम्बेडकर ने निम्नलिखित शर्तों को रेखांकित किया: 1. सामाजिक और आर्थिक समानता: कोई गंभीर असमानता या उत्पीड़ित वर्ग नहीं होना चाहिए। लोकतंत्र वहां नहीं पनप सकता जहां एक वर्ग विशेषाधिकारों का आनंद लेता है जबकि दूसरा समाज का बोझ उठाता है। 2. सुरक्षा के रूप में विपक्ष: लोकतंत्र का मतलब एक समूह द्वारा निरंतर शासन नहीं है। सरकार को जवाबदेह बनाए रखने के लिए विपक्ष आवश्यक है। 3. कानून और प्रशासन में समानता: शासन को कानूनी और प्रशासनिक दोनों मामलों में समानता सुनिश्चित करनी चाहिए। 4. संवैधानिक नैतिकता का पालन: अंबेडकर ने इस बात पर जोर दिया कि सफल लोकतंत्र के लिए संवैधानिक नैतिकता एक शर्त है। उन्होंने अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों के अत्याचार के खिलाफ चेतावनी दी और समाज में नैतिक व्यवस्था की आवश्यकता पर जोर दिया (अम्बेडकर, 2019)। साथ ही लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए नागरिकों को उनके अधिकारों और जिम्मेदारियों के बारे में शिक्षित करना महत्वपूर्ण है।

भारतीय संविधान में बाबा साहेब अंबेडकर का योगदान: भारतीय संविधान के प्रारूपण में बाबा साहेब अंबेडकर की भूमिका अभूतपूर्व थी, जिसमें लोकतंत्र की रक्षा करने वाले और समानता को बढ़ावा देने वाले सिद्धांतों को शामिल करना सुनिश्चित किया गया। जिसमें शामिल है: 1. **मौलिक अधिकार और सामाजिक न्याय**: उन्होंने नागरिकों को भेदभाव और उत्पीड़न से बचाने के लिए मौलिक अधिकारों को शामिल करने की वकालत की (अनुच्छेद 13, 14, 15, 16, 17, 23 और 24)। अस्पृश्यता के उन्मूलन और कानून के समक्ष समानता जैसे प्रावधान सामाजिक न्याय के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। 2. **राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत**: उन्होंने निर्देशक सिद्धांतों को सामाजिक-आर्थिक न्याय प्राप्त करने के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में देखा, जो औपचारिक और वास्तविक समानता के बीच की खाई को पाटता है (अनुच्छेद 41 से 47) (कुशवाह, 2018)।

लोकतांत्रिक आदर्श: शासन के लिए बाबा साहेब अंबेडकर का दृष्टिकोण

बाबा साहेब अंबेडकर लोकतंत्र को एक राजनीतिक व्यवस्था से कहीं अधिक मानते थे - यह एक जीवन शैली थी जो मानवीय गरिमा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बनाए रखती थी। **स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व:** फ्रांसीसी क्रांति से लेते हुए, उनके द्वारा इन सिद्धांतों को न्यायपूर्ण समाज की नींव माना। उन्होंने कहा, "स्वतंत्रता के बिना समानता व्यक्तिगत पहल को खत्म कर देगी, और समानता के बिना स्वतंत्रता बहुतों पर कुछ लोगों की सर्वोच्चता को जन्म देगी।" **हाशिए पर पड़े समुदायों का सशक्तिकरण**: हाशिए पर पड़े समूहों, विशेष रूप से दलितों और महिलाओं के अधिकारों के लिए एक मजबूती से वकालत के रूप में, अंबेडकर ने उनके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण को सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता पर जोर दिया। **लोकतंत्र में शिक्षा की**

भूमिका: उन्होंने शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति को रेखांकित किया, जोकि जन चेतना के लिए बहुत महत्वपूर्ण है (अम्बेडकर, 2019)। उन्होंने शिक्षा को सामाजिक पदानुक्रम को खत्म करने और एक सूचित और सशक्त नागरिक को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक माना। तथा उनका मानना था कि सामाजिक धरातल पर, भारत में हमारे पास एक ऐसा समाज है जो क्रमिक असमानता के सिद्धांत पर आधारित है जो कुछ लोगों के लिए उन्नति और दूसरों के लिए अवनति है। आर्थिक धरातल पर, हमारे पास एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोगों के पास अपार संपत्ति है जबकि कई लोग घोर गरीबी में रहते हैं। इसलिए इन समस्याओं पर काबू पाए बिना हम सच्चे अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना कल्पना भी नहीं कर सकते।

राजनीतिक लोकतंत्र का अंतिम उद्देश्य: सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना: बाबा साहेब अंबेडकर ने इस बात पर जोर दिया कि राजनीतिक लोकतंत्र का लक्ष्य केवल राजनीतिक ढांचे से आगे बढ़कर सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना को शामिल करना चाहिए (Kumar, 2020)। उन्होंने तर्क दिया कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक खुद को बनाए नहीं रख सकता जब तक कि इसे सामाजिक लोकतंत्र की नींव पर नहीं बनाया जाता।

सामाजिक लोकतंत्र: जीवन का एक तरीका: बाबा साहेब अंबेडकर ने सामाजिक लोकतंत्र को स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित जीवन के तरीके के रूप में परिभाषित किया। ये सिद्धांत, जिन्हें अक्सर एक त्रिमूर्ति के रूप में संदर्भित किया जाता है, अविभाज्य और अन्योन्याश्रित हैं: 1. समानता के बिना, स्वतंत्रता बहुमत पर कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों की सर्वोच्चता की ओर ले जाती है। 2. स्वतंत्रता के बिना, समानता व्यक्तिगत पहल और रचनात्मकता को दबा देती है। 3. बंधुत्व के बिना, स्वतंत्रता और समानता सामंजस्यपूर्ण रूप से कार्य नहीं कर सकती हैं. संक्षेप में, बाबा साहेब अंबेडकर ने इस बात पर प्रकाश डाला कि एक स्थायी और न्यायपूर्ण लोकतंत्र बनाने के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को सह-अस्तित्व में रहना चाहिए और एक दूसरे को परस्पर मजबूत करना चाहिए (नीरज, 2018)।

भारतीय समाज में विरोधाभास: बाबा साहेब अंबेडकर ने कहा कि भारत की सामाजिक संरचना क्रमिक असमानता में निहित है, एक ऐसी प्रणाली जहां कुछ समूह उत्थान का अनुभव करते हैं जबकि अन्य हाशिए पर हैं। आर्थिक रूप से, यह असमानता कुछ धनी लोगों और गरीबी में रहने वाले बहुत से लोगों के बीच की विशाल खाई में परिलक्षित होती है। 26 जनवरी 1950 को, हम विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हमारे पास समानता होगी और सामाजिक और आर्थिक जीवन में हमारे पास असमानता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक वोट और एक वोट एक मूल्य के सिद्धांत को मान्यता देंगे। हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में, हम अपनी सामाजिक और आर्थिक संरचना के कारण, एक व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धांत को नकारते रहेंगे। हम कब तक विरोधाभासों का यह जीवन जीते रहेंगे? हम कब तक अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेंगे? अगर हम इसे लंबे समय तक नकारते रहेंगे, तो हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डालकर ऐसा करेंगे। हमें इस विरोधाभास

को जल्द से जल्द दूर करना होगा अन्यथा असमानता से पीड़ित लोग राजनीतिक लोकतंत्र की संरचना को नष्ट कर देंगे जिसे विधानसभा ने कड़ी मेहनत से बनाया है (CONSTITUENT ASSEMBLY DEBATES, 1949)।

व्यापक लोकतंत्र की आवश्यकता: बाबा साहेब अंबेडकर का दृढ़ विश्वास था कि सामाजिक लोकतंत्र और आर्थिक न्याय के बिना राजनीतिक लोकतंत्र निरर्थक है। उनके विचार में, एक सच्चे समावेशी समाज के लिए ऐसे सुधारों की आवश्यकता है जो लोकतंत्र के सभी आयामों की बात करें। संवैधानिक इतिहासकार ग्रैनविले ऑस्टिन ने ठीक ही कहा कि डॉ अंबेडकर द्वारा आकार दिए गए भारतीय संविधान के प्रावधानों की शुरुआत में एक सामाजिक दस्तावेज के रूप में कल्पना की गई थी। यह राजनीतिक लोकतंत्र के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक समानता को बढ़ावा देने के प्रति अंबेडकर की प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है।

आधुनिक शासन और संवैधानिक नैतिकता में लोकतांत्रिक आदर्शों और प्रथाओं को आकार देने में बाबा साहेब अंबेडकर का स्थायी योगदान आज भी उतना ही महत्व रखता हैं जितना संविधान निर्माण के समय रखता था। लोकतंत्र को केवल सरकार के एक रूप में नहीं बल्कि न्याय, समानता और बंधुत्व पर आधारित जीवन शैली के रूप में देखने का उनका दृष्टिकोण लोकतांत्रिक समाजों के लिए एक प्रकाश स्तंभ के रूप में मार्गदर्शित करता है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के बीच सम्बन्ध पर बाबा साहेब अंबेडकर का जोर किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है। उनका मानना है कि लोकतंत्र को समान अवसरों और अधिकारों के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को सुनिश्चित करना चाहिए, जो भारतीय संविधान में उनके योगदान का आधार है। उनकी विरासत के केंद्र में संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा है, जिसे उन्होंने व्यक्तिगत और वर्गीय हितों के खतरों से लोकतंत्र की रक्षा करने के उद्देश्य से भारत में पेश किया। संवैधानिक सिद्धांतों के सख्त पालन की वकालत करके, उन्होंने एक नैतिक ढांचे का निर्माण करने की कोशिश की जो एक गहरे विभाजित समाज में न्याय और निष्पक्षता को बनाए रखने में सक्षम हो। लोकतंत्र के बारे में उनकी समझ एक ऐसी प्रणाली के रूप में है जो सहयोग, सहिष्णुता और न्यायसंगत विवाद समाधान को बढ़ावा देती है, जो आधुनिक शासन में, विशेष रूप से भारत जैसे बहुलवादी समाजों में गूंजती रहती है।

बाबा साहेब अंबेडकर का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समानता की अविभाज्यता पर जोर इस बात की याद दिलाता है कि समाज में मौजूद असमानताओं को दूर किए बिना सही मायने में लोकतंत्र का उभार नहीं हो सकता। डिप्रेस्ड और महिलाओं सहित हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए उनकी वकालत और सकारात्मक कार्रवाई का उनका आह्वान, एक समावेशी लोकतंत्र के साथ समतावादी समाज के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है जो सभी नागरिकों को सशक्त बनाता है। इसके अलावा, एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में शिक्षा के महत्व पर उनका जोर उनकी लोकतांत्रिक दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पहलू बना हुआ है। अंततः, बाबा साहेब अंबेडकर का कार्य लोकतांत्रिक शासन के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत करता है, जहाँ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांत न केवल सैद्धांतिक आदर्श हैं, बल्कि व्यावहारिक अनिवार्यताएँ भी हैं। उनकी संवैधानिक दृष्टि, जो सामाजिक न्याय के साथ

व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा को संतुलित करती है, गहरी असमानताओं से चिह्नित समाजों में निहित विरोधाभासों को सुलझाने का मार्ग प्रदान करती है। इस प्रकार, उनका स्थायी योगदान न केवल संवैधानिक नैतिकता की एक आधारभूत समझ प्रदान करते हैं, बल्कि आधुनिक समाज में लोकतांत्रिक आदर्शों के निरंतर विकास के लिए एक विस्तृत खाका भी प्रदान करते हैं।

संदर्भ सूची

1. Ambedkar, B. R. (1979). *Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches* (Vol. 17, Part III). Education Department, Government of Maharashtra. Published by Dr. Ambedkar Foundation, Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India. Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/Volume17_Part_III.pdf. (p. 472).
2. Ambedkar, B. R. (1979). *Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches* (Vol. 17, Part III). Education Department, Government of Maharashtra. Published by Dr. Ambedkar Foundation, Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India. Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/Volume17_Part_III.pdf. (p. 473).
3. Ambedkar, B. R. (1979). *Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches* (Vol. 17, Part III). Education Department, Government of Maharashtra. Published by Dr. Ambedkar Foundation, Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India. Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/Volume17_Part_III.pdf. (p. 474).
4. Lakshmi, A. (2022). Constitutional Morality: An Overview. *Indian Journal of Integrated Research in Law, 2*(4), 502–509. Retrieved from https://ijirl.com/wp-content/uploads/2022/07/CONSTITUTIONAL-MORALITY-AN-OVERVIEW.pdf.
5. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). संसदीय लोकतंत्र के असफल होने से विद्रोह अराजकता और साम्यवाद का जन्म होगा। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (p. 400). Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/VolumeH37.pdf.6.
6. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). संसदीय लोकतंत्र के असफल होने से विद्रोह अराजकता और साम्यवाद का जन्म होगा। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 401).

7. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). संसदीय लोकतंत्र के असफल होने से विद्रोह अराजकता और साम्यवाद का जन्म होगा। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 403).
8. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). संसदीय लोकतंत्र के असफल होने से विद्रोह अराजकता और साम्यवाद का जन्म होगा। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 404).
9. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). संसदीय लोकतंत्र के असफल होने से विद्रोह अराजकता और साम्यवाद का जन्म होगा। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 406).10.
10. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). लोकतंत्र सफलतापूर्वक चलाने के लिए शर्तें। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 447). Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/VolumeH37.pdf.
11. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). लोकतंत्र सफलतापूर्वक चलाने के लिए शर्तें। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 450). Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/VolumeH37.pdf.
12. .अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). लोकतंत्र सफलतापूर्वक चलाने के लिए शर्तें। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 451). Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/VolumeH37.pdf.
13. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). लोकतंत्र सफलतापूर्वक चलाने के लिए शर्तें। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 452). Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/VolumeH37.pdf.
14. अम्बेडकर, डॉ. (2019, जून). लोकतंत्र सफलतापूर्वक चलाने के लिए शर्तें। *डॉ. अंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 37: डॉ. भीमराव अंबेडकर और उनकी समतावादी क्रांति भाषण*. डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार. (pp. 454). Retrieved from https://www.mea.gov.in/Images/CPV/VolumeH37.pdf.
15. Constituent Assembly Debates. (1948, November 4). *Constituent Assembly Debates, Part II*. Retrieved from https://indiankanoon.org/doc/843976/.

16. नीरज, डॉ. (2018). डॉ. भीमराव अंबेडकर और सामाजिक न्याय। *RJPP, 16*(2), 44–52. Retrieved from https://anubooks.com/uploads/session_pdf/166246685510.pdf.
17. Kumar, A. (2020). Dr. Ambedkar's Concept of Inclusive Democracy. *Research Review International Journal of Multidisciplinary, 5*(8). DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i08.009.
18. कुशवाह, राखी (2018). डॉ. भीमराव आंबेडकर के सामाजिक न्याय पर विचारः समकालीन परिप्रेक्ष्य में। *IJCRT, 6*(2), ISSN: 2320-2882. Retrieved from https://ijcrt.org/papers/IJCRT1135147.pdf.
19. Constituent Assembly Debates. (1949, November 25). *Constituent Assembly Debates, Volume 11*. Retrieved from https://www.constitutionofindia.net/debates/25-nov-1949/#130318.

51

परंपरा और आधुनिकता का अंतर्संबंध: भारत के संविधान का बहुलवादी ढांचा

प्रियंका शर्मा
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, डिब्रूगड़ विश्वविद्यालय, असम
नीतीश कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
शकूर बशीर
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

संविधान एक औपचारिक कानूनी ढांचा है। भारत का संविधान किसी भी संविधान की तरह शासन और कानूनी प्रणाली की नींव स्थापित करने का उद्देश्य रखता है। यह शासन की संस्थाओं की संरचना, संगठन, शक्तियाँ और मुख्य जिम्मेदारियों का विवरण देता है। जिसमें यह इन संस्थाओं के बीच के संबंधों को परिभाषित करता है और विशेष रूप से राजनीतिक क्षेत्र में, नागरिकों और राज्य के बीच की बातचीत को विनियमित करता है। एक लोकतांत्रिक संविधान के रूप में भारत का संविधान जो विश्व का सबसे लंबा लिखित संविधान है इसकी लोकतांत्रिक संरचना की पहचान है, जिसमें यह समानता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र, और धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल राजनीतिक मूल्यों को ठोस और प्रक्रियात्मक दोनों तरीकों से समेटे हुए है। यह नागरिकों को मौलिक अधिकार सुनिश्चित करता है और उन्हें संरक्षण प्रदान करने के लिए उपाय प्रदान करता है। यह देश का सर्वोच्च कानून है और इसके लोगों के लिए मार्गदर्शक प्रकाश है।

भारत की जनसंख्या और संस्कृति में व्यापक विविधता को देखते हुए, शासन का एक व्यापक और स्पष्ट रूप से लिखित कोड तैयार करना अत्यंत चुनौतीपूर्ण है। यह तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब कोई देश ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारकों से उत्पन्न बहुलवादी विशेषताओं से भरा हो। भारतीय संविधान समानतापूर्ण समाज की स्थापना के दर्शन पर आधारित है, जो पूर्वाग्रहों से मुक्त हो, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करे, और नागरिकों को उनकी पसंद की सरकार बनाने में सक्षम बनाए। ऐसे कानून के शासन की परिकल्पना करना जितना सरल प्रतीत होता है, उसकी व्यावहारिक कार्यान्वयन प्रक्रिया को डिज़ाइन करना उतना ही कठिन कार्य है।

भारत का संविधान कानून के शासन के दार्शनिक आदर्शों को एक कार्यात्मक ढांचे में बदलने का एक ऐतिहासिक प्रयास है। यह शासन को तीन प्रमुख अंगों में विभाजित करता है, जिनमें से प्रत्येक समानांतर संप्रभुता का उपयोग करता है और वर्चस्व को रोकने के लिए एक-दूसरे पर नियंत्रण रखता है। शक्ति के केंद्रीकरण से बचने के लिए, भारत का संविधान शक्तियों का स्पष्ट पृथक्करण सुनिश्चित करता है तथा केंद्र और राज्य सरकारों के बीच अधिकारों का विभाजन करता है साथ ही स्थानीय निकायों के लिए एक तीसरे स्तर का प्रावधान करता है। हालांकि कभी-कभी विचलन और व्याख्याएँ इसके कार्यात्मक ढांचे को चुनौती देती हैं फिर भी भारतीय संविधान लोकतांत्रिक आदर्शों का एक मजबूत प्रतीक बना हुआ है जो वैश्विक शासन के सिद्धांतों को स्थानीय आवश्यकताओं के साथ जोड़ता है।

जनता के संविधान का निर्माण: विविध राष्ट्र का एक जीवंत दस्तावेज

9 दिसंबर 1946 की सुबह, ठीक 11 बजे, संविधान सभा ने पहली बार दिल्ली के संविधान हॉल में एकत्रित होकर स्वतंत्र भारत के लिए संविधान तैयार करने का ऐतिहासिक कार्य प्रारंभ किया।[lxxxiii] इस यात्रा का कोई निश्चित परिणाम नहीं था। 205 सदस्यों, जिनमें दस महिलाएं भी शामिल थीं, के बीच का माहौल उत्तेजना और अनिश्चितता का मिश्रण था। चुनौतियों के बावजूद, यह विविधतापूर्ण सभा अंततः एक ऐसा संविधान तैयार करने में सफल रही जो भारत के भविष्य को आकार देता।[lxxxiv] जब सत्ता का हस्तांतरण निकट आया तब भारत का राजनीतिक भविष्य—साथ ही उसकी जनता और क्षेत्र का भविष्य अभी भी अनिश्चित था। उपमहाद्वीप के विभाजन की औपचारिक घोषणा छह महीने बाद ही हुई, उस समय हिंदू-मुस्लिमों के बीच बढ़ते हिंसक संघर्षों ने पूरे देश में अशांति फैला दी थी, जो संविधान हॉल के पास भी पहुँच गया था। अशिक्षा, गरीबी और गहरे सामाजिक विभाजन की व्यापक समस्याओं ने इस लोकतांत्रिक राज्य के लिए संविधान तैयार करने की प्रक्रिया को और जटिल बना दिया, जहां अंतिम अधिकार नागरिकों के पास होगा।

भारत में संस्कृति, धर्म और सामाजिक जीवन गहरे रूप से आपस में जुड़े हुए हैं जो संविधान निर्माण की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। कई सांस्कृतिक विचार-विमर्श ने बहसों को आकार दिया जिनमें यह सवाल उठे कि संविधान को शासन की किस संरचना को अपनाना चाहिए। क्या भारत को एक धर्मनिरपेक्ष ढांचा अपनाना चाहिए? क्या यह धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी देनी चाहिए? क्या इसमें एक ऐसा मूल अधिकारों का पत्र शामिल करना चाहिए जो सांस्कृतिक स्वतंत्रता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हो? क्या यह अल्पसंख्यकों को विशेष अधिकार और प्रिविलेज़ प्रदान करना चाहिए? क्या यह निजी क्षेत्रों में हस्तक्षेप करके परंपरा और सांस्कृतिक प्रथाओं पर समानता को प्राथमिकता देना चाहिए? ये जटिल और संवेदनशील मुद्दे संविधान निर्माण के दौरान गहरे विमर्श का हिस्सा बने।[lxxxv]

विभिन्न व्यक्तियों और समुदायों से सांस्कृतिक मांगें से आईं। कुछ हिंदू बहुमत से यह प्रस्ताव आया कि हिंदू धर्म को राज्य धर्म के रूप में मान्यता दी जाए। हालांकि, ऐसे प्रस्तावों को जल्दी ही अस्वीकार कर दिया गया फिर भी भारत के संविधान में धर्मनिरपेक्षता के रूप को लेकर व्यापक बहस एक विवादास्पद और हल नहीं होने वाली चुनौती बनी रही।

जैसा कि संविधान सभा के सदस्य के.एम. मुंशी ने कहा,

"गैर-स्थापना खंड (संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का) भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं था और हमें एक विशिष्ट भारतीय धर्मनिरपेक्षता को विकसित करना पड़ा... हम एक ऐसा समुदाय हैं जिनकी धार्मिक जड़ें गहरी हैं। साथ ही, हमारे पास धार्मिक सहिष्णुता की एक जीवित परंपरा है—जो हिंदू धर्म के व्यापक दृष्टिकोण का परिणाम है कि सभी धर्म एक ही भगवान की ओर ले जाते हैं... इस स्थिति को देखते हुए, हमारे राज्य के लिए कोई राज्य धर्म होना संभव नहीं था, न ही राज्य और चर्च के बीच अमेरिका की तरह कठोर रेखा खींची जा सकती थी।"

भारत का संविधान जहाँ एक ओर धर्मनिरपेक्ष राज्य स्थापित करने और सभी व्यक्तियों को धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करने की कोशिश करता है, वहीं दूसरी ओर, यह सरकार को सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या 'सार्वजनिक स्वरूप की हिंदू धार्मिक संस्थाओं को सभी वर्गों और हिंदू समुदाय के हिस्सों के लिए खोलने' के साथ साथ धार्मिक प्रशासन में हस्तक्षेप की अनुमति भी देता है (अनुच्छेद 25)।

संविधान में जाति का मुद्दा, जो संविधान निर्माताओं के लिए गहरे चिंता का विषय था ऐसी विशिष्ट भारतीय चुनौती का समाधान काफी तार्किक तरीके से किया गया है। मौलिक अधिकारों के अंतर्गत अस्पृश्यता के प्रथाओं को स्पष्ट रूप से समाप्त किया गया है और इसे दंडनीय अपराध भी घोषित किया गया है। सदियों तक भारत में कुछ हाशिये पर स्थित जातियों को बहिष्कार और पृथक्करण का सामना करना पड़ा और "अस्पृश्य" का स्पर्श अपवित्र माना जाता था। इस प्रकार की भेदभावपूर्ण प्रथाओं को अक्सर सांस्कृतिक और पारंपरिक मानदंडों के रूप में बचाव किया जाता था। इन गहरे अन्यायपूर्ण और अमानवीय प्रथाओं को समाप्त करने की कोशिश करते हुए, संविधान ने अनिवार्य रूप से प्रचलित सांस्कृतिक दावों को चुनौती दी। इसलिए, सांस्कृतिक प्रथाओं को संरक्षित करने का कोई भी प्रयास सावधानीपूर्वक विचार के साथ किया जाना चाहिए था ताकि अन्याय को बढ़ावा न मिले।

जहां जाति आधारित दावों को स्पष्ट रूप से अस्वीकार किया गया था, वहीं भारत के संविधान में सांस्कृतिक दावों को स्पष्ट रूप से स्वीकार भी किया गया है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 29 भारतीय नागरिकों को जो एक विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति रखते हैं, उन्हें इसे संरक्षित करने का अधिकार प्रदान करता है और अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को चाहे वह धर्म या भाषा के आधार पर हों अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थान स्थापित करने और संचालित करने का अधिकार देता है। इसके अलावा, संविधान धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार भी स्वीकार करता है। इसमें यह धार्मिक संप्रदायों को विशेष स्वतंत्रता प्रदान करता है, उन्हें उनके विश्वासों और प्रथाओं पर पूरी स्वतंत्रता की अनुमति देता है (अनुच्छेद 25 और 26)।[lxxxvi]

उदय एस. मेहता (2016) ने यह उल्लेख किया कि भारत का संविधान एक जटिल और अद्वितीय उत्पत्ति वाला दस्तावेज है, जैसे कि कई अन्य ऐसे मौलिक दस्तावेज होते हैं। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत को सामाजिक असमानता और पूर्वाग्रहों के अपने इतिहास से आगे बढ़ने का एक कठिन कार्य करना था। संविधान को तैयार करने का लक्ष्य केवल राष्ट्र के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करना नहीं था, बल्कि इसके नागरिकों के लिए आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता भी सुनिश्चित करना था।[lxxxvii]

संविधान सभा ने विशेष रूप से उन अधिकारों को लागू करने के उपायों पर ध्यान केंद्रित किया जो भारत के उपनिवेशी अतीत के अवशेषों को समाप्त करने के लिए थे, लेकिन उन्हें यह भी सतर्क रहना था कि वे ऐसे सांस्कृतिक दावों को संरक्षित न करें, जो परंपरा में निहित हानिकारक प्रथाओं को बढ़ावा दे सकते थे। इस प्रकार, किसी भी प्रकार की पूर्ण सांस्कृतिक स्वतंत्रता की मांग, जब तक कि यह दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन न करे, को समानता के मौलिक सिद्धांत के साथ मेल खानी चाहिए थी। यह सिद्धांत, जो अनुच्छेद 14 में निहित है, जो स्थिति और अवसर की समानता की गारंटी देता है, संविधान का एक मौलिक तत्व बन गया है, जो इसके मुख्य बल को दर्शाता है।[lxxxviii]

संविधान के द्वारा सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक एकता के बीच संतुलन स्थापित करने के सवाल पर गहन बहस जारी है। हालांकि, संविधान सभा ने इस संतुलन को खोजने के लिए एक सशक्त प्रयास किया।[lxxxix] उदाहरण के लिए, संविधान एक प्रकार की धर्मनिरपेक्षता को अपनाता है जो पश्चिमी मॉडलों से अलग है; भारत की धर्मनिरपेक्षता फ्रांसीसी या अमेरिकी संस्करणों जैसी नहीं है। जबकि संविधान धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है, वह सामाजिक कल्याण और प्रगति को बढ़ावा देने के लिए राज्य को धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप की अनुमति भी देता है।[xc]

भारत के ऐतिहासिक जाति भेदभाव की चुनौतियाँ संविधान के धर्मनिरपेक्षता के दृष्टिकोण को समझने के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, हिंदू मंदिर पारंपरिक रूप से कुछ जातियों के व्यक्तियों को अपने परिसर में प्रवेश करने से रोकते थे, जिससे व्यवस्थित बहिष्करण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता था। ऐसे प्रथाओं को संबोधित करते हुए, भारतीय संविधान ने राज्य को धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान की, ताकि सामाजिक न्याय को बढ़ावा दिया जा सके, जिसमें हाशिए पर रहने वाली जातियों के लिए मंदिर प्रवेश सुनिश्चित करना भी शामिल था। कुछ आलोचक विशेष रूप से पश्चिमी दृष्टिकोण से इस प्रकार की राज्य कार्रवाइयों को असंविधानिक मान सकते हैं, क्योंकि इसे धार्मिक स्वायत्तता में हस्तक्षेप के रूप में देखा जा सकता है। डोनाल्ड स्मिथ[xci] (1963) भारतीय धर्मनिरपेक्षता पर टिप्पणी करने वाले पहले विशेषज्ञों में से एक है जिन्होंने धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप, जैसे कि मंदिर प्रवेश पर प्रतिबंधों को हटाने, को धर्मनिरपेक्षता के सार को कमजोर करने के रूप में प्रस्तुत किया। यह दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित है कि धर्मनिरपेक्षता राज्य की ओर से धर्म के प्रति पूरी तरह से तटस्थता की आवश्यकता होती है।[xcii] हालांकि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने धर्मनिरपेक्षता को एक अलग दृष्टिकोण से देखा। उन्होंने यह स्वीकार किया कि एक गहरे पदसोपानीय समाज में वास्तविक समानता प्राप्त करने के लिए राज्य की सक्रिय भूमिका आवश्यक थी। उनके अनुसार पूर्ण तटस्थता वर्तमान असमानताओं को कायम रखने का कारण बन सकती थी, बजाय इसके कि उन्हें दूर किया जाए। प्रो. राजीव भार्गव[xciii] (2010) ने इस दृष्टिकोण को "धर्म से सिद्धांतपूर्ण दूरी" बनाए रखने के रूप में सही रूप से वर्णित किया। इस ढांचे ने राज्य को विशिष्ट ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए चयनात्मक हस्तक्षेप की अनुमति दी।

जातिवाद भेदभाव जैसे मुद्दों में राज्य हस्तक्षेप के प्रावधानों को समाहित करके भारतीय संविधान ने धार्मिक स्वायत्तता का सम्मान करने और समर्पित सामाजिक अन्यायों को संबोधित करने के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। यह दृष्टिकोण समानता के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है, जबकि भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की जटिलता को भी स्वीकार करता है।

भारत के संविधान में बहुलतावाद: ऐतिहासिक नींव और दार्शनिक आधार

भारत का संविधान देश की समृद्ध विविधता को अपनाने और उसका प्रबंधन करने की प्रतिबद्धता का प्रतीक है। इसका बहुलतावादी ढांचा भारतीय समाज के ऐतिहासिक और दार्शनिक विकास को दर्शाता है जो विभिन्न धर्मों, भाषाओं और संस्कृतियों के सह-अस्तित्व में निहित है। यह समावेशिता एक आवश्यकता के रूप में उभरी जिसे भारत के उपनिवेशी पूर्व काल के राज्यों के विविधता से आकार दिया गया था, जहां प्रत्येक राज्य की अपनी विशिष्ट परंपराएँ थीं

और ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के दौरान अपनाई गई विभाजनकारी रणनीतियों ने इस आवश्यकता को और भी बढ़ा दिया। ब्रिटिश काल की "फूट डालो और राज करो" नीति ने एक एकीकृत संविधानात्मक ढांचे की आवश्यकता को स्पष्ट किया ताकि भारत की विविधता को सुलह किया जा सके और इसके सामंजस्य को बढ़ावा दिया जा सके। जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय राज्य की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति का समर्थन किया राजनीति से धर्म को अलग कर एक ऐसे समान समाज की स्थापना की जहां सभी धर्म शांति से सह-अस्तित्व में रह सकें। डॉ. बी.आर. आंबेडकर जो संविधान के वास्तुकार थे, ने हाशिए पर स्थित समुदायों को राष्ट्रीय धारा में समाहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका सामाजिक न्याय पर ध्यान केंद्रित करना, कमजोर समूहों के संरक्षण और उनके सक्रिय राष्ट्र निर्माण में भागीदारी की सुनिश्चितता प्रदान करता था।

संविधान की बहुलतावादी दर्शन संविधान की प्रस्तावना में गहरे रूप से निहित है जो भारत की संप्रभुता, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और न्याय के प्रति प्रतिबद्धता को संक्षेप में प्रस्तुत करता है। यह स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को ऐसे मौलिक सिद्धांतों के रूप में रेखांकित करता है जो एक विविध समाज को एकजुट करने का काम करते हैं। धर्मनिरपेक्षता जो बहुलतावाद का एक महत्वपूर्ण आधार है यह सुनिश्चित करती है कि राज्य धार्मिक मामलों में तटस्थ रहे जबकि एक ऐसी समाज की स्थापना की जाती है जहाँ विभिन्न धर्म सामंजस्यपूर्ण रूप से फल-फूल सकते हैं।

भारत का बहुलतावाद मुख्य रूप से सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक विविधताओं की सुरक्षा के लिए किए गए प्रावधानों के समावेश से और भी मजबूत होता है। उदाहरण के लिए मौलिक अधिकार समानता सुनिश्चित करते हैं और सांस्कृतिक स्वतंत्रताओं की रक्षा करते हैं। जबकि संघीय संरचना राज्यों को अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखने की अनुमति देती है। इसके अंतर्गत ऐतिहासिक निर्णय जैसे एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) में इन सिद्धांतों को सुदृढ़ करते हैं जिसमें यह धर्मनिरपेक्षता और समावेशन के मूल्यों को बनाए रखते हैं। भारतीय संविधान की ऐतिहासिक और दार्शनिक नींव बहुलतावाद के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को उजागर करती है। देश के विविध अतीत और उसके नेताओं के दृष्टिकोण से प्रेरित होकर यह एक ऐसी समाज की स्थापना करता है जहाँ विविधता में एकता का उत्सव मनाया जाता है जिससे सभी समुदायों के बीच आपसी सम्मान और सह-अस्तित्व सुनिश्चित होता है।

Stewart, Seiple, और Hoover (2020) एक गहरे विविध समाजों में सह-अस्तित्व के लिए एक ढांचा प्रस्तुत करते हैं, जो कानूनी समानता और एकजुटता दोनों को महत्व देता है। उनका "संधि-बहुलतावाद" (covenantal pluralism) का सिद्धांत नागरिकता को कानूनी समानता और पड़ोसी की एकजुटता पर आधारित करता है, जो संविदानिक समान अधिकारों को आपसी सम्मान और सुरक्षा की संस्कृति के साथ जोड़ता है। यह ढांचा भारत के संविदानिक आदर्शों के अनुरूप है, जिसमें समान नागरिकता और बहुसांस्कृतिवाद का समावेश है, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 में व्यक्त किया गया है जो कानून के सामने समानता की गारंटी देते हैं, भेदभाव पर प्रतिबंध लगाते हैं और हाशिए पर स्थित समुदायों के लिए सकारात्मक कार्रवाई को बढ़ावा देते हैं।[xciv]

इसके अतिरिक्त, संधि-बहुलतावाद संविधान में सांस्कृतिक और भाषाई विविधता के प्रति प्रतिबद्धता की गूंज है, जैसा कि अनुच्छेद 29 और 30 में संहिताबद्ध किया गया है जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करते हैं ताकि वे अपनी संस्कृति को संजो सकें और शैक्षिक संस्थान स्थापित कर सकें।

समकालीन भारत में बहुलतावाद के लिए चुनौतियाँ और संभावनाएँ

भारत का बहुलतावादी ढांचा जो विविधता में एकता के सिद्धांतों पर आधारित है कई समकालीन चुनौतियों का सामना कर रहा है जो इसके समावेशिता और सामंजस्य के मूल्यों को खतरे में डाल सकती हैं। ये चुनौतियाँ राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिशीलताओं से उत्पन्न होती हैं जो देश की विविधता को बनाए रखने की क्षमता को कमजोर कर सकती हैं। राजनीतिक ध्रुवीकरण, उदाहरण के लिए एक गंभीर समस्या बन गई है, जो अक्सर लोगों को धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय आधार पर विभाजित कर देती है। पहचान की राजनीति का बढ़ता हुआ प्रभाव कुछ समूहों के हाशिए पर धकेलने और बहुसंख्यकवाद के बढ़ने का कारण बनता है, जिससे समानता और बंधुत्व के संवैधानिक आदर्शों को कमजोर किया जाता है। राजनीतिक संवाद, विशेष रूप से चुनावों के दौरान, इन विभाजनों का फायदा उठाता है, बहुलतावाद को राष्ट्रीय समानता के लिए खतरे के रूप में प्रस्तुत करता है, न कि एक ताकत के रूप में। धार्मिक तनाव इस मुद्दे को और बढ़ाते हैं जहां सांप्रदायिक हिंसा और धार्मिक पहचान का राजनीतिकरण सामाजिक सामंजस्य को कमजोर कर रहा है। धार्मिक अल्पसंख्यक, जैसे मुस्लिम, ईसाई और दलित, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अक्सर भेदभाव का सामना करते हैं और धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक राष्ट्रवाद के बीच लगातार तनाव होता है।

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और जन मीडिया द्वारा प्रेरित सांस्कृतिक समानता भारत की समृद्ध क्षेत्रीय संस्कृतियों, भाषाओं और परंपराओं को प्रभावित कर रही है, जिससे स्थानीय पहचान का धीरे-धीरे क्षय हो रहा है। साथ ही, जाति आधारित भेदभाव एक स्थायी समस्या बनी हुई है हालांकि संविधान में इसके खिलाफ प्रावधान और सकारात्मक कार्रवाई नीतियाँ मौजूद हैं। जाति आधारित हिंसा, आर्थिक असमानताएँ और सामाजिक बहिष्कार देश के सामाजिक न्याय और समानता के प्रति प्रतिबद्धता को चुनौती देती हैं विशेष रूप से दलितों और अन्य हाशिए पर स्थित समुदायों के लिए।

इन चुनौतियों के बावजूद, भारत के बहुलतावाद को रणनीतिक सुधारों और सामाजिक परिवर्तनों के माध्यम से मजबूत करने के कई अवसर भी हैं। शिक्षा, बहुलतावाद को बढ़ावा देने के लिए सबसे प्रभावी उपकरणों में से एक है क्योंकि यह समानता, न्याय और सांस्कृतिक सम्मान के मूल्यों को विद्यार्थियों में स्थापित कर सकता है। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम को भारतीय समाज की विविधता जिसमें धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक विविधताएँ शामिल हैं पर जोर देना चाहिए, ताकि राष्ट्रीय एकता का अहसास हो सके और विविधता की सराहना की जा सके। शैक्षिक संस्थानों में अंतर-सांस्कृतिक और अंतर-धार्मिक संवाद को प्रोत्साहित करना छात्रों के बीच विभाजन को पाटने और विभिन्न पृष्ठभूमियों से आने वाले छात्रों के बीच समझ को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है।

इसके अलावा, नागरिक समाज संगठनों को सशक्त बनाना और सक्रिय नागरिक भागीदारी को बढ़ावा देना बहुलतावाद को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारत का नागरिक समाज ऐतिहासिक रूप से सामाजिक अन्यायों को चुनौती देने और हाशिए पर स्थित समूहों के लिए वकालत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। जाति भेदभाव, लिंग असमानता और धार्मिक असहिष्णुता जैसे मुद्दों को संबोधित करने वाले सामाजिक आंदोलनों ने अधिक समावेशिता और न्याय के लिए संघर्ष जारी रखा है। इन आंदोलनों का समर्थन नीतिगत सुधारों और सार्वजनिक जागरूकता पहलों के माध्यम से किया जा सकता है, जो सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देने और बहुलतावादी मूल्यों को प्रोत्साहित करने में मदद करेगा।

संविधानिक सुधार और नीतिगत पहलों का महत्व समकालीन चुनौतियों के अनुसार कानूनी ढांचे को अनुकूलित करने में है। जबकि भारतीय संविधान बहुलतावाद के लिए एक मजबूत नींव प्रदान करता है। यह आवश्यक है कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, जाति-आधारित भेदभाव को दूर करने और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने वाले कानूनों को और मजबूत किया जाए। ऐसी नीतियाँ जो राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में हाशिए पर स्थित समूहों का अधिक प्रतिनिधित्व बढ़ाने को प्रोत्साहित करती हैं, यह सुनिश्चित कर सकती हैं कि उनकी आवाजें सुनी जाएं और उनके अधिकारों की सुरक्षा हो।

भारत के धर्मनिरपेक्ष ढांचे को मजबूत करना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय धर्मनिरपेक्षता का मॉडल राज्य की तटस्थता को सामाजिक न्याय के साथ संतुलित करने का प्रयास करता है। यह दृष्टिकोण धार्मिक प्रथाओं से उत्पन्न असमानताओं जैसे धार्मिक संस्थानों में जाति-आधारित भेदभाव को संबोधित करने जबकि धार्मिक स्वतंत्रताओं का सम्मान करते हुए काम करता है। राज्य को सभी धार्मिक समुदायों की सामाजिक समावेशन को सक्रिय रूप से बढ़ावा देना चाहिए ताकि बहुलतावाद को बढ़ावा दिया जा सके।

अंत में, क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचानों का उत्सव और संरक्षण सांस्कृतिक समानता से लड़ने के लिए महत्वपूर्ण है। ऐसी नीतियाँ जो भाषाई विविधता को बढ़ावा देती हैं क्षेत्रीय भाषाओं और साहित्य को प्रोत्साहित करती हैं और स्वदेशी कला रूपों की रक्षा करती हैं। वे भारत की समृद्ध सांस्कृतिक मोज़ेक को बनाए रखने में मदद कर सकती हैं। इन परंपराओं को अपनाना और उन्हें ऊंचा करना उन्हें मानकीकरण करने के बजाय भारत के बहुलतावादी दृष्टिकोण को और मजबूत कर सकता है।

भारत अपने बहुलतावादी आदर्शों के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना कर रहा है लेकिन विविधता, धर्मनिरपेक्षता, और सामाजिक न्याय के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को सशक्त बनाने के कई अवसर भी हैं। राजनीतिक और सामाजिक ध्रुवीकरण, धार्मिक तनाव, सांस्कृतिक समानता और जाति भेदभाव महत्वपूर्ण बाधाएँ बनी हुई हैं लेकिन भारत का संवैधानिक ढांचा इन मुद्दों को हल करने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है।[xcv] शिक्षा, नागरिक भागीदारी, संवैधानिक सुधारों, क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचानों की रक्षा पर ध्यान केंद्रित करके भारत अपने बहुलतावादी ढांचे को मजबूत कर सकता है और यह सुनिश्चित कर सकता है कि संविधान एक जीवित दस्तावेज़ बना रहे जो बढ़ती हुई विविध समाज की जरूरतों के अनुसार अनुकूलित हो।

भारत के बहुलतावाद का भविष्य इसके नागरिकों, विधि निर्माताओं और संस्थाओं के सामूहिक प्रयासों पर निर्भर करता है ताकि विविधता को संरक्षित और पोषित किया जा सके, जो लंबे समय से देश की ताकत रही है।

भारत का बहुलतावादी ढांचा जो इसके संविधान के सिद्धांतों में निहित है देश की विविधता, न्याय और धर्मनिरपेक्षता के प्रति स्थायी प्रतिबद्धता का प्रमाण है। जबकि यह भारत की पहचान का आधार है इसे समकालीन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक ध्रुवीकरण, धार्मिक तनाव, सांस्कृतिक समानता और जाति भेदभाव देश के समावेशिता और एकता के मूल्यों को खतरे में डालते हैं। ये मुद्दे अक्सर सामाजिक सामंजस्य को कमजोर करते हैं, कुछ समुदायों को हाशिए पर धकेलते हैं और धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय आधार पर विभाजन को बढ़ाते हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद, भारत का संविधान इन मुद्दों को हल करने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है, जो समानता, न्याय, और धर्मनिरपेक्षता पर जोर देता है।

बहुलतावाद को मजबूत करने के अवसर रणनीतिक सुधारों और सामाजिक प्रयासों में निहित हैं। विविधता के प्रति सम्मान बढ़ाने वाली शिक्षा, सक्रिय नागरिक भागीदारी, और सामाजिक आंदोलनों का समर्थन समावेशिता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा को मजबूत करने वाले संवैधानिक सुधार और हाशिए पर स्थित समुदायों का अधिक प्रतिनिधित्व बढ़ाने वाली नीतियाँ भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

इसके अलावा, भारत की क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचानों का संरक्षण और उत्सव सांस्कृतिक समानता की ताकतों का मुकाबला करेंगे। इन अवसरों को अपनाकर और मिलकर काम करके भारत अपने बहुलतावादी दृष्टिकोण को मजबूत कर सकता है। यह सुनिश्चित करते हुए कि संविधान एक जीवित दस्तावेज़ बना रहे जो एक विविध समाज की बदलती जरूरतों के अनुसार अनुकूलित हो सके। अंततः, भारत के बहुलतावाद का भविष्य इस पर निर्भर करेगा कि हम सभी मिलकर उस विविधता को पोषित करने के लिए प्रतिबद्ध रहें, जो लंबे समय से इस देश की ताकत रही है।

संदर्भ सूची

1. नारंग, ए एस, भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली, 2013
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारत सरकार
3. कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2022,
4. कश्यप, सुभाष, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, हि . मा . का . नि . दिल्ली विश्वविद्यालय, 2013
5. Kapil Kapoor (n.a.), *Indian Knowledge Systems Nature, Philosophy and Character*: Indian Knowledge Systems Vol. 1
6. Rohit De, Ornit Shani (2023), *Assembling India's Constitution: Towards a New History: Past & Present,* Vol. 263, Issue 1, May 2024

7. Uday S. Mehta (2016), *"Indian Constitutionalism: Crisis, Unity, and History"*, in Sujit Choudhry, Madhav Khosla and Pratap Bhanu Mehta (eds), The Oxford Handbook of the Indian Constitution (Oxford University Press)

8. Harshita Vatsayan (n.a), *"India's Quest for Secular Identity and Feasibility of a Uniform Civil Code",* ILI Law Review Vol. I, Summer Issue 2017

9. Donald Eugene Smith (1963), "*India as a Secular State"* Princeton University Press,

10. Javed Majeed (2010), "The crisis of secularism in India", Modern Intellectual History, Vol. 7, Issue 3, pp. 653–666 C Cambridge University Press

11. Ramesh Kumar (2021), *"Contours of Indian Political Thought: Unravelling Philosophies and Perspectives"*, International Journal of Research in Economics and Social Sciences, Vol. 11 Issue 07, July- 2021

12. Austin, G. (1999). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford University Press

13. Bajpai, R. (2017), "Why Did India Choose Pluralism? Lessons from a Postcolonial State",Global Centre for Pluralism: University of London

52

21वीं सदी में भारतीय संविधान में परंपरा और आधुनिकता: एक विश्लेषण

डॉ० महेंद्र कुमार सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

अनु यादव

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

भारतीय संविधान, जिसे 1950 में अपनाया गया, एक नए स्वतंत्र राष्ट्र की विशिष्ट चुनौतियों का समाधान करने के लिए तैयार किया गया था। इसका उद्देश्य न्याय, समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के मूल्यों को सामंजस्यपूर्ण तरीके से स्थापित करना था और इसके साथ ही भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक विविधता का भी ध्यान रखा गया था। सात दशकों के बाद, देश अब एक वैश्विक, तकनीकी-प्रेरित युग में प्रवेश कर चुका है, जो शासन, कानून और सामाजिक मूल्यों में अनुकूलता की मांग करता है। पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच यह संतुलन 21वीं सदी में भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता बन गया है। भारतीय संविधान पारंपरिकता और आधुनिकता के सामंजस्यपूर्ण मिश्रण का एक अद्वितीय प्रमाण है, जो राष्ट्र की गहरी सांस्कृतिक जड़ों को दर्शाता है, साथ ही प्रगतिशील आदर्शों को अपनाता है। संविधान के निर्माण के समय, भारत को एक ऐसी समाज की चुनौती का सामना करना था जो प्रथा और पदानुक्रम में गहरे रूप से निहित था, फिर भी लोकतांत्रिक मूल्यों, समानता और न्याय की आकांक्षा रखता था। संविधान के द्वारा भारत के पारंपरिक मूल्यों को स्वीकार करने का एक गहरा तरीका उसकी प्रस्तावना और इसमें दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों के माध्यम से प्रकट होता है। न्याय, समानता और भाईचारे जैसे अवधारणाएँ सार्वभौमिक हैं, लेकिन ये भारत के प्राचीन दर्शन के साथ भी गूंजती हैं, विशेष रूप से पंथ के विचार से—एक नैतिक कर्तव्य जो व्यवस्था और सामंजस्य को बनाए रखने के लिए है। राज्य के नीति-निर्देशक के सिद्धांत भी गांधीवादी मूल्यों की गूंज करते हैं, जो स्वावलंबी ग्राम अर्थव्यवस्थाओं, समग्र धन वितरण और सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के महत्व को रेखांकित करते हैं। सांस्कृतिक विविधता संविधान में समाहित है, जो भारत की बहुलतावादी मानसिकता को दर्शाता है। हमारा संविधान नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है ताकि वे अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को संरक्षित कर सकें, जो आधुनिक कानूनी ढांचे के भीतर पारंपरिक पहचानों का सम्मान करता है। इसी तरह, संविधान आदिवासी क्षेत्रों में पारंपरिक प्रथाओं के महत्व को भी पहचानता है, जो पांचवे और छठे अनुसूचियों के माध्यम से इन क्षेत्रों को अपने पारंपरिक कानूनों के अनुसार शासन करने की महत्वपूर्ण स्वायत्तता प्रदान करते हैं। वहीं, संविधान उन परंपराओं को चुनौती देने में भी संकोच नहीं करता जो अन्याय या असमानता को बढ़ावा देती हैं। अनुच्छेद 17, जो अस्पृश्यता को समाप्त करता है, जातिवाद पर आधारित एक लंबी चली आ रही सामाजिक प्रथा का साहसिक खंडन है। यह प्रावधान उदाहरण है कि कैसे संविधान एक नाजुक संतुलन स्थापित करता है—समावेशिता और प्रगति की भावना को बनाए रखते हुए, समाज की सांस्कृतिक जटिलताओं की अनदेखी किए बिना। पंथनिरपेक्षता

का सिद्धांत इस संतुलन का एक और आधार है। जबकि राज्य सभी धर्मों के प्रति तटस्थता बनाए रखता है, यह नागरिकों के जीवन में पंथ के महत्व का भी सम्मान करता है। इससे व्यक्तियों को अपनी आस्था स्वतंत्र रूप से पालन करने का अधिकार मिलता है, साथ ही यह सुनिश्चित किया जाता है कि पंथिक संस्थाएँ राज्य के लोकतांत्रिक कार्यों में हस्तक्षेप न करें।

पारंपरिकता और आधुनिकता का मिश्रण सबसे अधिक प्रभावशाली उदाहरण भारत की जमीनी स्तर पर शासन प्रणाली में देखा जा सकता है। पंचायती राज प्रणाली की शुरुआत, जो प्राचीन ग्राम सभा मॉडल में निहित थी, यह दर्शाता है कि कैसे एक पारंपरिक शासन संरचना को पुनः जीवित किया गया और उसे समकालीन लोकतांत्रिक ढांचे में काम करने के लिए अनुकूलित किया गया। यह दृष्टिकोण न केवल सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करता है, बल्कि स्थानीय समुदायों को सशक्त भी बनाता है। निरंतर कानूनी और सामाजिक विकास के माध्यम से, भारतीय संविधान एक गतिशील दस्तावेज़ बना रहा है। इसकी सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करते हुए प्रगतिशील सुधारों को बढ़ावा देने की क्षमता इसे भारत की एकता में विविधता के प्रति प्रतिबद्धता का जीवित प्रतीक बनाती है। पुराने और नए के बीच यह संतुलन सुनिश्चित करता है कि संविधान केवल एक कानूनी ढांचा न हो, बल्कि यह भारत की आत्मा का भी प्रतीक हो—अपने अतीत में निहित, फिर भी एक न्यायपूर्ण और समान भविष्य की ओर उन्मुख।

आधुनिक युग में पारंपरिक मूल्यों की रक्षा

भारतीय संविधान पारंपरिक भारतीय मूल्यों और आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों का सामंजस्यपूर्ण मिश्रण है। ये मूल्य इसके ढांचे में बुनाई की तरह समाहित हैं, जो देश की समृद्ध धरोहर और गहरे निहित दार्शनिक आदर्शों को प्रतिबिंबित करते हैं। संविधान का उद्देश्य न्याय, समानता और स्वतंत्रता की स्थापना करना है, जबकि इसके साथ ही अपने लोगों में भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना है। न्याय का मूल्य—सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक—भारत की प्राचीन दार्शनिकताओं, जैसे पंथ (नैतिक कर्तव्य) और न्याय (समानता) में गहरे निहित है। ये सिद्धांत निष्पक्षता और जिम्मेदारी पर जोर देते हैं, यह सुनिश्चित करते हैं कि सभी व्यक्तियों के अधिकार, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले लोगों के अधिकारों की रक्षा की जाए। संविधान इस धरोहर को आगे बढ़ाता है, असमानता और भेदभाव को समाप्त करने के लिए तंत्र प्रदान करता है। पंथनिरपेक्षता, जो संविधान का एक प्रमुख आधार है, भारत की लंबे समय से चली आ रही पंथिक सद्भाव की परंपरा से मेल खाती है। "सर्व पंथ समभाव" (सभी धर्मों का समान सम्मान) का विचार भारत की विविधता को अपनाने की क्षमता को दर्शाता है। यह समावेशिता संविधान में पंथिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्धता में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, यह सुनिश्चित करता है कि सभी समुदाय शांति से "सह-अस्तित्व" कर सकें। संविधान की लोकतांत्रिक भावना भारतीय परंपरा में भागीदारी शासन की परंपरा में निहित है, जिसे ग्राम पंचायतों द्वारा उदाहरणित किया गया है। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और विकेंद्रीकृत शासन के माध्यम से लोकतंत्र को संस्थागत बनाने के साथ, संविधान सामूहिक निर्णय-निर्माण के मूल्य को बनाए रखता है, और व्यक्तियों को उनके समाज के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने का अधिकार देता है। भारत का सहिष्णुता और बहुलवाद पर जोर संविधान के प्रावधानों में परिलक्षित होता है, जो विविधता में एकता का उत्सव मनाते हैं। भाषाई,

सांस्कृतिक और पंथिक विविधता की स्वीकृति आपसी सम्मान और समझ का महत्व उजागर करती है, यह सुनिश्चित करते हुए कि प्रत्येक व्यक्ति को एकता का अहसास हो। संविधान की नींव समानता और मानव गरिमा पर आधारित है, जो उपनिषदों जैसी ग्रंथों से प्रेरणा प्राप्त करता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्निहित मूल्य को महत्व देते हैं। अस्पृश्यता को समाप्त करके और कानून के समक्ष समानता को बढ़ावा देकर, संविधान सामाजिक पदानुक्रमों को नष्ट करने और सभी नागरिकों की गरिमा को स्थापित करने का प्रयास करता है। पारंपरिक भारतीय मूल्य के तहत असहायों की रक्षा करने की भावना संविधान में सामाजिक न्याय पर जोर देने के रूप में प्रकट होती है। कल्याणकारी उपाय और सकारात्मक कार्रवाई की नीतियाँ हाशिए पर रहने वाले समूहों को ऊपर उठाने का प्रयास करती हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि करुणा और समावेशिता के सिद्धांतों की रक्षा की जाए।

पर्यावरणीय सामंजस्य, जो भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा है, संविधान में भी संलग्न है। जीवन के सभी रूपों के आपसी संबंध में विश्वास पारंपरिक रूप से भारतीय संस्कृति में निहित है और यह सिद्धांत पारिस्थितिकी संरक्षण और सतत विकास को बढ़ावा देने वाले प्रावधानों में प्रकट होता है। अहिंसा का सिद्धांत, जो भारतीय विचारधारा का केंद्रीय हिस्सा है और महात्मा गांधी जैसे नेताओं द्वारा मजबूत किया गया, संविधान के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और संघर्ष समाधान पर जोर देने में प्रेरणा का स्रोत है। यह मूल्य संविधान में उन प्रथाओं की निषेधता के रूप में स्पष्ट है जो हानि या भेदभाव को बढ़ावा देती हैं। हमारा संविधान भाईचारे को बढ़ावा देता है, जो भारतीय आदर्श "वसुधैव कुटुम्बकम" (पूरी दुनिया एक परिवार है) का प्रतिबिंब है। एकता और एकजुटता की भावना को बढ़ावा देकर, यह नागरिकों के बीच विभाजन को पाटने और संबंधों को मजबूत करने का प्रयास करता है। संघवाद, जो संविधान का एक प्रमुख विशेषता है, देश की भाषाई, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधता को दर्शाता है। आठवीं अनुसूची और अनुच्छेद 29 और 30 जैसे प्रावधान अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि विविध समुदाय बिना राष्ट्रीय एकता से समझौता किए समृद्ध हो सकें।

न्यायिक व्याख्या: पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच सेतु

न्यायिक व्याख्या ने भारतीय संविधान में निहित पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक आकांक्षाओं के बीच पुल का काम किया है। एक गतिशील और जीवित दस्तावेज़ के रूप में, संविधान भारत की न्याय, सहिष्णुता और बहुलवाद की समृद्ध धरोहर को प्रदर्शित करता है, जबकि लोकतंत्र, समानता और पंथनिरपेक्षता के सिद्धांतों को अपनाता है, जो एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य के लिए उपयुक्त हैं। न्यायपालिका, विशेष रूप से भारत का सर्वोच्च न्यायालय, इन आयामों को सामंजस्यपूर्ण बनाने में निर्णायक भूमिका निभाता है, जो संविधानिक आदर्शों को समकालीन चुनौतियों के अनुरूप ढालते हुए, उन परंपराओं का सम्मान करता है जिन्होंने इसके आधार को आकार दिया। न्यायिक व्याख्या का एक महत्वपूर्ण योगदान "मूल संरचना सिद्धांत" का विकास है। केसवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) के ऐतिहासिक मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान के कुछ मौलिक तत्व, जैसे पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र और कानून का शासन, संविधान की मूल संरचना हैं। यह सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि संविधान में संशोधन किए जा सकते हैं, लेकीन इसके मौलिक मूल्य, जो भारतीय परंपराओं में निहित हैं, सुरक्षित रहते हैं। न्यायपालिका ने व्यक्तिगत अधिकारों और सामुदायिक मूल्यों के सामंजस्यपूर्ण सहअस्तित्व पर भी जोर दिया है। मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के मामलों में, अदालत ने अनुच्छेद 21 की व्याख्या का विस्तार किया, जिसमें जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के

अधिकार की गारंटी दी गई थी, और इसे गरिमा, गोपनीयता और स्वतंत्रता से जोड़ा, इस प्रकार न्याय के पारंपरिक अवधारणाओं को आधुनिक रूप दिया। इसी तरह, शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017) के मामले में, अदालत ने ट्रिपल तलाक़ की प्रथा को असंवैधानिक घोषित किया, जो पंथिक परंपराओं का सम्मान करते हुए लिंग न्याय और समानता के संविधानिक आदेश से सामंजस्य बैठाता है। ट्रिपल तलाक़ की न्यायिक व्याख्या भारतीय कानूनी प्रणाली में एक महत्वपूर्ण विकास है, जो पारंपरिक प्रथाओं और समानता, न्याय और मानव गरिमा के आधुनिक संविधानिक आदर्शों के बीच की खाई को पाटता है। पंथनिरपेक्षता के क्षेत्र में भी न्यायिक व्याख्या पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करती है। जबकि भारत में पंथनिरपेक्षता पश्चिमी विचारों से अलग है क्योंकि यह पंथिक विविधता को सक्रिय रूप से समायोजित करती है, अदालतों ने इसके ढांचे को स्पष्ट किया है ताकि सामंजस्य सुनिश्चित किया जा सके। एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) में, सर्वोच्च न्यायालय ने पंथनिरपेक्षता को संविधान की मूल संरचना के रूप में दोहराया, यह कहते हुए कि राज्य को सभी धर्मों के प्रति तटस्थता बनाए रखनी चाहिए और सभी धर्मों से समान दूरी बनाए रखनी चाहिए। न्यायपालिका ने पर्यावरणीय अधिकारों की व्याख्या में भी परिवर्तनकारी भूमिका निभाई है, जो पारंपरिक रूप से प्रकृति के प्रति सम्मान और समकालीन पर्यावरणीय शासन के लक्ष्यों को जोड़ती है। एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (गंगा प्रदूषण मामला) में, अदालत ने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने की जिम्मेदारी को रेखांकित किया, संविधानिक प्रावधानों और भारत की सांस्कृतिक धरोहर के साथ जो प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की परंपरा को आगे बढ़ाता है।

सामाजिक न्याय के क्षेत्र में भी न्यायिक व्याख्या ने संविधानिक सिद्धांतों के दायरे को विस्तृत किया है। इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ (1992) जैसे ऐतिहासिक निर्णयों ने सकारात्मक कार्रवाई नीतियों को न्यायिक रूप से अनुमोदित किया, जो समावेशिता के पारंपरिक भारतीय मूल्यों और प्रणालीगत असमानताओं को हल करने की आधुनिक आवश्यकता के साथ मेल खाते हैं। इसी तरह, नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (2018) में, अदालत ने एलजीबीटीक्यू+ अधिकारों की पहचान की, जो संविधान की गरिमा और समानता की गारंटी के साथ व्यक्तित्व और स्वतंत्रता की बदलती समझ को जोड़ने का प्रयास था। आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के क्षेत्र में, न्यायपालिका ने राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को राज्य क्रियाओं का मार्गदर्शन करने के लिए लागू किया है। हालांकि ये सिद्धांत न्यायिक रूप से बाध्यकारी नहीं हैं, लेकिन ये भारत की पारंपरिक सामाजिक कल्याण की प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हैं और आधुनिक शासन के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं। उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993) जैसे निर्णयों में, अदालत ने शिक्षा के अधिकार को स्थापित किया, यह सुनिश्चित करते हुए कि संविधानिक आकांक्षाएं नागरिकों के लिए ठोस लाभ में बदल जाएं। इस प्रकार, भारतीय न्यायपालिका की व्याख्यात्मक भूमिका एक सेतु के रूप में कार्य करती है, यह सुनिश्चित करते हुए कि संविधान एक जीवित दस्तावेज़ बना रहे, जो आधुनिक चुनौतियों के लिए अनुकूलित हो, जबकि न्याय, समानता और भाईचारे के मूल्यों में निहित रहे।

पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच संतुलन की चुनौती

भारतीय संविधान में पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करने की चुनौती इसके कानूनी और सामाजिक विकास के केंद्र में है। 1950 में अपनाया गया भारत का संविधान देश की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक

परंपराओं को एक आधुनिक, लोकतांत्रिक, और समानता आधारित समाज की आवश्यकता के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से जोड़ने के दृष्टिकोण से तैयार किया गया था। यह संतुलन पारंपरिक प्रथाओं और संविधान द्वारा गारंटीकृत समानता, न्याय और व्यक्तिगत अधिकारों के सिद्धांतों के बीच जटिल अंतःक्रिया द्वारा लगातार परीक्षण में डाला जाता है। इस चुनौती का केंद्रीय मुद्दा पंथिक और सांस्कृतिक बहुलवाद है। भारत विभिन्न पंथिक और सांस्कृतिक समुदायों का घर है, जिनमें से प्रत्येक की अपनी परंपराएँ और कानून हैं। संविधान, जहां पंथ की स्वतंत्रता की रक्षा करता है, वहीं यह कानून के समक्ष समानता और जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार की भी गारंटी देता है, जो कभी-कभी उन पारंपरिक प्रथाओं के साथ संघर्ष करते हैं, जो कुछ समूहों के साथ भेदभाव या उन्हें हाशिए पर डाल देती हैं। यह संघर्ष विशेष रूप से व्यक्तिगत कानूनों, जैसे विवाह, तलाक और उत्तराधिकार से संबंधित मामलों में दिखाई देता है, जो पंथिक परंपराओं से प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिए, ट्रिपल तलाक़ जैसी प्रथाएँ, जिसमें एक मुस्लिम पुरुष अपनी पत्नी को एक ही बैठक में "तलाक़" तीन बार कहकर तलाक दे सकता था, लंबे समय तक व्यक्तिगत कानून का हिस्सा मानी जाती थीं। हालांकि, यह प्रथा महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण थी, जिससे उन्हें कमजोर और बिना उपाय के छोड़ दिया जाता था। भारतीय न्यायपालिका ने 2017 में ऐतिहासिक निर्णय में ट्रिपल तलाक़ को असंवैधानिक घोषित किया, इस प्रकार लिंग समानता और मानव गरिमा के आधुनिक मूल्यों को बरकरार रखते हुए पंथिक स्वतंत्रता के अधिकार का सम्मान किया।

संविधान में पंथनिरपेक्षता का सिद्धांत भी निहित है, जिसके तहत राज्य को सभी धर्मों के प्रति तटस्थ रहना चाहिए, और उनके बीच समानता सुनिश्चित करनी चाहिए। हालांकि, एक ऐसे देश में जहां पंथ सार्वजनिक और निजी जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इस संतुलन को बनाए रखना चुनौतीपूर्ण होता है। पारंपरिक प्रथाएँ और पंथिक पहचान अक्सर राजनीतिक और सामाजिक जीवन में मिल जाती हैं, जो कभी-कभी संविधान द्वारा स्थापित पंथनिरपेक्षता ढांचे से टकराती हैं। सार्वभौमिक नागरिक संहिता (यू सी सी) की मांग इस संतुलन के बीच की चुनौती को और स्पष्ट करती है। यू सी सी सभी नागरिकों के लिए एक समान कानूनी ढांचे की वकालत करता है, जो उनके पंथ से परे समानता को बढ़ावा देता है। हालांकि, पंथिक समुदाय अक्सर इसका विरोध करते हैं, यह दावा करते हुए कि यह उनके व्यक्तिगत मामलों में अपने पंथ का पालन करने के अधिकार का उल्लंघन करता है। यह उस कठिनाई को उजागर करता है जो आधुनिक संविधानिक सिद्धांतों और विभिन्न पंथिक समूहों की गहरी निहित सांस्कृतिक प्रथाओं के बीच सामंजस्य बनाने में होती है। जातिवाद पर आधारित भेदभाव और समाज में पितृसत्ता के निरंतर प्रभाव से भी संविधान के समानता के वादे को पूरी तरह से लागू करने में कठिनाइयाँ आती हैं। कानूनी सुधारों, जैसे अस्पृश्यता का उन्मूलन और ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए सकारात्मक कार्रवाई की नीतियाँ, के बावजूद, देश के कई हिस्सों में पारंपरिक सामाजिक पदानुक्रम बने हुए हैं, जो सामाजिक न्याय और समान अवसर की प्राप्ति में बाधा डालते हैं।

लिंग समानता के मामले में, पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक संविधानिक सिद्धांतों के बीच टकराव विशेष रूप से स्पष्ट है। भारत के व्यक्तिगत कानून, जो विवाह, उत्तराधिकार और तलाक से संबंधित हैं, पारंपरिक रूप से लिंग आधारित मानकों पर आधारित रहे हैं, जहां महिलाओं को अक्सर अधीनस्थ स्थान पर रखा गया है। प्रगतिशील कानूनों और न्यायिक हस्तक्षेपों के बावजूद जो लिंग न्याय सुनिश्चित करने के लिए हैं, कई पारंपरिक प्रथाएँ गहरे रूप से निहित हैं, जो

महिलाओं के अधिकारों को सीमित करती हैं। उदाहरण के लिए, दहेज और बाल विवाह कुछ समुदायों में अब भी प्रचलित हैं, भले ही संविधान ने इन्हें गैरकानूनी घोषित कर दिया है। न्यायपालिका ने कई मामलों में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए हस्तक्षेप किया है, लेकिन चुनौती यह है कि समाजिक दृष्टिकोण को बदलना और उन गहरी निहित सांस्कृतिक मान्यताओं को संबोधित करना जो लिंग असमानता को बढ़ावा देती हैं। आर्थिक असमानता भी पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच संतुलन की चुनौती को उजागर करती है। भूमि मालिकाना हक, पारिवारिक उत्तराधिकार, और कृषि प्रणालियों से संबंधित पारंपरिक प्रथाएँ सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को बढ़ावा देती हैं। ये असमानताएँ अक्सर जाति और लिंग आधारित भेदभाव के साथ मिलकर संविधान के समावेशी विकास और समान अवसर के आदर्शों को पूरा करने में बाधा डालती हैं। जबकि सकारात्मक कार्रवाई की नीतियाँ, जैसे अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण, इन असमानताओं को दूर करने का प्रयास करती हैं, पारंपरिक शक्ति संरचनाएँ अक्सर इन सुधारों का विरोध करती हैं, जो अमीर और गरीब के बीच के अंतर को पाटने के प्रयासों को जटिल बना देती हैं। न्यायपालिका, जो संविधान के व्याख्याकार के रूप में कार्य करती है, पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने में केंद्रीय भूमिका निभाती है। सती प्रथा का उन्मूलन, शिक्षा का अधिकार, और समलैंगिकता का अवैधकरण जैसे ऐतिहासिक निर्णयों ने यह दर्शाया है कि अदालतों ने पारंपरिक प्रथाओं की पुनर्व्याख्या करके उन्हें संविधानिक सिद्धांतों के साथ मेल बैठाने में परिवर्तनकारी भूमिका निभाई है। ये न्यायिक हस्तक्षेप भारतीय संविधान की विकासशील प्रकृति को दर्शाते हैं, जो एक स्थिर दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसे समाज की बदलती जरूरतों के अनुरूप ढालना पड़ता है। अदालत ने बार-बार यह पुष्टि की है कि जबकि परंपरा और पंथ का सम्मान किया जाता है, उन्हें संविधान द्वारा गारंटी दिए गए मौलिक अधिकारों और समानता को कमजोर नहीं करने दिया जा सकता।

एक मजबूत संविधान के लिए सुझाव

इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए भारतीय संविधान को लगातार विकसित होते रहना चाहिए। एक मजबूत संविधान वह होता है जो न केवल शासन के लिए एक स्थिर आधार प्रदान करता है, बल्कि समाज की बदलती जरूरतों और चुनौतियों के अनुसार अनुकूलित भी रहता है। भारतीय संविधान, जो दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र का आधार है, को न्याय, समानता और स्वतंत्रता के मूल्यों की रक्षा करते हुए समकालीन मुद्दों का समाधान करना जारी रखना चाहिए। भविष्य में संविधान को प्रासंगिक और मजबूत बने रहने के लिए, इसे व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करते हुए, समानता सुनिश्चित करनी होगी और आधुनिक चुनौतियों का समाधान करना होगा, जबकि यह अपने मौलिक सिद्धांतों में निहित रहे। न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा करना आवश्यक है ताकि शक्ति का पृथक्करण बनाए रखा जा सके और न्यायधीश बिना बाहरी दबाव के निर्णय ले सकें। न्यायिक समीक्षा को सुदृढ़ करना यह सुनिश्चित करेगा कि मौलिक अधिकारों की रक्षा की जाए, विशेष रूप से गोपनीयता, डिजिटल अधिकारों और पर्यावरण संरक्षण से संबंधित मामलों में। न्यायपालिका को समकालीन चिंताओं के अनुरूप संविधानिक व्याख्याओं को अनुकूलित करने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए, जिससे व्यक्तित्व अधिकारों और सार्वजनिक भलाई की विकसित समझ को दर्शाया जा सके। इस संदर्भ में, मौलिक अधिकारों के दायरे का विस्तार करना संविधान की मजबूती को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकता है। जबकि संविधान पहले ही समानता और न्याय से संबंधित अधिकारों

की गारंटी देता है, समकालीन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए मौलिक अधिकारों के दायरे को और बढ़ाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, डिजिटल गोपनीयता और डेटा सुरक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल करना जरूरी हो गया है, क्योंकि ये नागरिकों की सुरक्षा के लिए डिजिटल युग में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार को स्पष्ट रूप से पहचानना चाहिए, विशेष रूप से प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसे बढ़ते पर्यावरणीय खतरों के संदर्भ में। अधिकारों के दायरे का विस्तार करने से संविधान समकालीन मुद्दों के प्रति प्रासंगिक बना रहेगा और यह नागरिकों को नए प्रकार के शोषण और अन्याय से बचाने में सक्षम होगा।

एक और महत्वपूर्ण सुझाव है कि शासन में जवाबदेही सुनिश्चित करना। संविधान को राजनीतिक प्रक्रियाओं में पारदर्शिता और निष्पक्षता को बढ़ावा देना चाहिए, विशेष रूप से चुनाव सुधारों के संदर्भ में। यह सुनिश्चित करना कि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष हों, अभियान वित्तपोषण में पारदर्शिता और आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों पर सख्त नियम लागू किए जाएं, लोकतांत्रिक प्रक्रिया की अखंडता की रक्षा करेगा। राजनीतिक जवाबदेही पर भी जोर दिया जाना चाहिए, ताकि सार्वजनिक सेवक अपने कृत्यों के लिए जिम्मेदार रहें। सूचना का अधिकार, जो नागरिकों को सरकार को जवाबदेह ठहराने का अधिकार देता है, को सुदृढ़ और प्रभावी रूप से लागू किया जाना चाहिए ताकि भ्रष्टाचार से लड़ा जा सके और सरकारी गतिविधियों में पारदर्शिता बढ़ाई जा सके। नागरिकों को चुने गए प्रतिनिधियों को जवाबदेह ठहराने की क्षमता एक मजबूत लोकतंत्र के लिए केंद्रीय है।

इसके अलावा, संविधान को समावेशी विकास को प्राथमिकता देते हुए, विशेष रूप से स्थायी सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को हल करने में काम करना जारी रखना चाहिए। आरक्षण प्रणाली और सकारात्मक कार्रवाई की नीतियों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए ताकि हाशिए पर रहने वाले समुदायों को सामाजिक उन्नति के समान अवसर मिल सकें। इन प्रावधानों को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना चाहिए ताकि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच बढ़ते संपत्ति अंतर को कम किया जा सके। सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और रोजगार तक पहुंच सुनिश्चित करने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, विशेष रूप से वंचित पृष्ठभूमि वाले लोगों के लिए। सामाजिक और आर्थिक समानता को प्राथमिकता देकर, संविधान यह सुनिश्चित कर सकता है कि उसका न्याय और निष्पक्षता का वादा सभी नागरिकों तक पहुंचे, न कि केवल उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग तक। भारतीय संविधान की एक केंद्रीय विशेषता है इसकी पंथनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्धता, जो यह सुनिश्चित करती है कि पंथ राज्य के कामकाज में हस्तक्षेप न करे। भारत में पंथ और राजनीति के बीच संबंध अब भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। जबकि संविधान एक पंथनिरपेक्षता राज्य की कल्पना करता है, पंथिक पहचान राजनीति में एक शक्तिशाली उपकरण बनकर उभरती है। यह तनाव उत्पन्न कर सकता है, विशेष रूप से जब नीतियाँ या कानून किसी विशेष समुदाय के पक्ष में या उनके खिलाफ देखे जाते हैं। एक मजबूत संविधान सुनिश्चित करने के लिए, यह आवश्यक है कि पंथनिरपेक्षता के सिद्धांत की रक्षा की जाए। साथ ही, सार्वभौमिक नागरिक संहिता (UCC) को सावधानीपूर्वक लागू किया जाना चाहिए, न कि पंथिक स्वतंत्रताओं को कम करने के लिए, बल्कि लिंग न्याय और समानता को बढ़ावा देने के लिए, जैसे कि असमान उत्तराधिकार अधिकारों और पक्षपाती तलाक कानूनों को समाप्त करना। पंथिक विविधता के सम्मान और सभी नागरिकों के लिए समान व्यवहार सुनिश्चित करने के बीच संतुलन बनाकर संविधान एकता और राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा दे सकता है।

संविधान को संघवाद के सिद्धांत की रक्षा करते हुए राज्य सरकारों को स्थानीय मामलों पर स्वायत्तता और अधिकार देना चाहिए। भारत की संघीय संरचना ने क्षेत्रीय भाषाओं, संस्कृतियों और परंपराओं की समृद्ध विविधता को बढ़ावा दिया है। हालांकि, एक मजबूत केंद्रीकृत सरकार कभी-कभी राज्य सरकारों की स्वायत्तता को कमजोर करती है, विशेष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आर्थिक विकास जैसे क्षेत्रों में। एक मजबूत संविधान को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि राज्य सरकारें अपने क्षेत्रों की विशिष्ट जरूरतों को पूरा करने के लिए सशक्त रहें, जबकि साथ ही राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया जाए। पंचायती राज संस्थाओं (स्थानीय स्व-शासन) के माध्यम से स्थानीय शासन को सुदृढ़ किया जाना चाहिए, जिससे समुदायों को अपने विकास और कल्याण पर अधिक नियंत्रण मिल सके। स्थानीय स्वायत्तता को बढ़ावा देकर, संविधान अधिक समावेशी विकास को बढ़ावा दे सकता है और यह सुनिश्चित कर सकता है कि विभिन्न क्षेत्रीय जरूरतें पूरी हों। बढ़ते पर्यावरणीय संकटों का सामना करते हुए, संविधान को जलवायु परिवर्तन, सतत विकास और संसाधन प्रबंधन जैसे मुद्दों का समाधान करने के लिए विकसित होना चाहिए। पर्यावरणीय अधिकारों को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल करने से यह सुनिश्चित होगा कि सरकार प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए जवाबदेह रहे। न्यायपालिका यहां महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, जैसा कि उसने पिछले मामलों में किया है, सरकार को पर्यावरण कानूनों और नीतियों को लागू करने के लिए जवाबदेह ठहराते हुए। संविधान की पर्यावरणीय स्थिरता जैसे समकालीन मुद्दों के प्रति अनुकूलता देश और उसके नागरिकों के दीर्घकालिक कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

एक मजबूत संविधान के लिए एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि नागरिक समाज और सार्वजनिक भागीदारी लोकतांत्रिक प्रक्रिया का केंद्रीय हिस्सा बने रहें। जबकि लोकतंत्र नागरिकों को मतदान के माध्यम से अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार देता है, यह उतना ही महत्वपूर्ण है कि वे नीति चर्चाओं, बहसों और निर्णय-निर्माण में सक्रिय रूप से शामिल हों। नागरिक समाज संगठन, कार्यकर्ता और सार्वजनिक हित समूहों को शासन में भाग लेने और निगरानी प्रदान करने के लिए सशक्त किया जाना चाहिए। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मीडिया की स्वतंत्रता को मजबूत करके किया जा सकता है, जिससे नागरिकों को सरकार को जवाबदेह ठहराने और भय के बिना असहमति व्यक्त करने का अवसर मिले। नागरिक भागीदारी को प्रोत्साहित करके और सार्वजनिक भागीदारी के लिए रास्ते खोलकर, संविधान अपने नागरिकों की आवश्यकताओं और मांगों के प्रति उत्तरदायी बना रह सकता है। भारत जैसे विविध देश में, सांस्कृतिक, भाषाई और पंथिक विविधता का सम्मान करते हुए राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है। संविधान को न्याय, समानता और भाईचारे जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित एक साझा राष्ट्रीय पहचान को बढ़ावा देना जारी रखना चाहिए, न कि सांस्कृतिक या पंथिक समानता को बलपूर्वक लागू करने के लिए। संविधान की मजबूती इस क्षमता में निहित है कि वह भारतीय समाज की बदलती जरूरतों के अनुसार खुद को अनुकूलित करते हुए समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के मूल सिद्धांतों को बनाए रखे।

भारतीय संविधान, जो पारंपरिकता और आधुनिकता दोनों में निहित है, एक जीवित दस्तावेज़ के रूप में कार्य करता है, जो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर और तेजी से बदलती दुनिया की आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास करता है। जैसे-जैसे दुनिया 21वीं सदी में प्रवेश कर रही है, भारत को नए और जटिल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और तकनीकी संकटों का सामना करना पड़ रहा है, जो संविधान की लचीलापन और अनुकूलता

की परीक्षा लेते हैं। संविधान, जो व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए बनाया गया था, को समकालीन मुद्दों जैसे डिजिटल अधिकार, पर्यावरणीय स्थिरता और लिंग समानता को संबोधित करने के लिए विकसित होना चाहिए, साथ ही साथ उन विविध परंपराओं का सम्मान करना चाहिए जिन्होंने देश की पहचान को आकार दिया है। न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, यह सुनिश्चित करते हुए कि यह प्रासंगिक और लोगों की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी रहे, विशेष रूप से पारंपरिक प्रथाओं और आधुनिक संविधानिक सिद्धांतों के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए। हालांकि, पंथनिरपेक्षता व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को गहरे निहित पंथिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मान्यताओं के साथ संतुलित करना अभी भी चुनौती बना हुआ है। पंथिक व्यक्तिगत कानूनों, आरक्षण नीतियों और चुनावी सुधारों जैसे मुद्दों पर चल रही बहसें भारत के पारंपरिक सामाजिक ढांचे और एक आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के विकसित सिद्धांतों के बीच तनाव को उजागर करती हैं।

जैसे-जैसे भारत 21वीं सदी में और अधिक आगे बढ़ता है, भारतीय संविधान को अपना लचीलापन और प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए निरंतर विकसित होना होगा, यह सुनिश्चित करते हुए कि न्याय, समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के मूल्य बने रहे। न्यायपालिका की स्वतंत्रता को मजबूत करके, मौलिक अधिकारों का विस्तार करके, समावेशी विकास को बढ़ावा देकर, शासन में जवाबदेही सुनिश्चित करके, और पंथनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देकर संविधान भारत को आधुनिक चुनौतियों का सामना करने में मार्गदर्शन करता रहेगा। अंततः, संविधान की पारंपरिकता और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने की क्षमता ही इसके स्थायी प्रासंगिकता और भारत को एक अधिक न्यायपूर्ण, समान और समृद्ध भविष्य की ओर मार्गदर्शन करने की भूमिका निर्धारित करेगी।

संदर्भ सूची

1. नारिमन, एफ. एस. (2013). भारत का संविधान: बदलते दृष्टिकोण। *कानून और राजनीति समीक्षा*, 12(2), 85-101।
2. पांडे, र. (2014). भारत में संवैधानिकता: परंपरा, आधुनिकता और सुधार। *इंडिया लॉ रिव्यू*, 8(1), 47-62।
3. फाली एस. नारिमन. (2015). भारत का संविधान: एक संदर्भात्मक विश्लेषण। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. रॉय, एस. (2024, 17 जनवरी)। सूर्यप्रतिम रॉय लिखते हैं: संविधान के समक्ष उभरती चुनौती, जो केंद्र की एकजुटता की आवश्यकता से प्रेरित है। *फ्रंटलाइन।* https://frontline.thehindu.com/the-nation/2023-emerging-challenge-to-the-constitution-suryapratim-roy-outdated-colonial-bjp-vigorous-amendments/article67653063.ece
5. देशपांडे, म. (2019). भारत में पंथनिरपेक्षता को चुनौती। *आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक*, 54(15), 42-48।
6. लोकतंत्र की खामियों और कमजोरियों का समाधान और अधिक लोकतंत्र ही है: उपराष्ट्रपति। (प्रकाशन तिथि अज्ञात)। https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=161368

7. झा, स. (2017). भारत में संवैधानिक मानदंडों के विकास में न्यायपालिका की भूमिका। *इंडियन जर्नल ऑफ कांस्टीट्यूशनल लॉ*, 7(1), 60-80।
8. क्या न्यायपालिका भारतीय संविधान की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार होगी? । *द वायर।* https://thewire.in/law/will-the-judiciary-rise-up-to-meet-challenges-to-indian-constitution?mid_related_new
9. कश्यप, स. (2019). भारत में विधायी समीक्षा। यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग।
10. खोसला, म. (2016). भारतीय संविधान: आधुनिक लोकतंत्र का आधार। *जर्नल ऑफ इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ*, 11(2), 112-130।
11. कोठारी, र. (2018). राजनीतिक शासन और संविधान: भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का विश्लेषण। *जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज़*, 9(4), 233-246।
12. भारतीय संविधान: एक आधुनिक सभ्यता के लिए मानक दस्तावेज। (2022, 25 मार्च)। *टाइम्स ऑफ इंडिया ब्लॉग।* https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/justcorporatethings/indian-constitution-a-benchmark-document-for-a-modern-civilization-42071/
13. केसवानंद भारती बनाम केरल राज्य, (1973) 4 SCC 225।
14. मुरलीधर, स. (2011). सामाजिक न्याय को संवैधानिक रूप देना: सकारात्मक कार्रवाई और इसकी चुनौतियाँ। *इंडियन लॉ रिव्यू*, 5(1), 80-95।
15. राव, स. (2009). भारतीय संवैधानिकता: कानूनी और राजनीतिक संरचनाओं का अध्ययन। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ, (2017) 10 SCC 1।
17. रावत, र. (2017). अधिकार और स्वतंत्रता: भारत में मौलिक अधिकारों का विकास। *भारतीय संविधान और मानवाधिकार*, 1(2), 67-85।
18. भारतीय संघीय प्रणाली। (प्रकाशन तिथि अज्ञात)। *JSTOR।* https://www.jstor.org/stable/26575603
19. सान्याल, न. (2016). भारतीय संविधान में पंथिक और पंथनिरपेक्षता सिद्धांतों का संतुलन। *जर्नल ऑफ कंपेरेटिव कांस्टीट्यूशनल स्टडीज़*, 5(2), 80-95।
20. सिंह, अ. (2020). पंथनिरपेक्षता और भारतीय संविधान: सिद्धांत और अभ्यास। *संविधानिक कानून समीक्षा*, 12(1), 58-75।
21. टशनेट, म. (2014). भारत में संविधान की व्याख्या: परंपरा और आधुनिकता। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
22. वर्मा, ब. (2018). भारतीय संविधान और वैश्वीकरण। *अंतर्राष्ट्रीय संविधानिक कानून जर्नल*, 19(1), 102-120।
23. यादव, य. (2015). भारत में लोकतांत्रिक संक्रमण: संविधान की भूमिका। *भारतीय राजनीतिक विज्ञान पत्रिका*, 76(4), 415-428।

©भारत सरकार
Governemtn of India

ISSN :2321-0443
USG Care Listed Journal

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) पश्चिमी खंड-VII, रामकृष्णपुरम, सेक्टर-1
नई दिल्ली-110066
दूरभाष: +91-11-20867172
वेबसाइट : https://cstt.education.gov.in
https://shabd.education.gov.in

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICALTERMINOLOGY
MINISTRY OF EDUCATION
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)
West Block-VII, Ramakrishnapuram, Sector-1 New Delhi-110066
Telephone: +91-11-20867172
Website: https://cstt.education.gov.in https://shabd.education.gov.in